हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली

2

राजकमल प्रकाशन
नयी दिल्ली पटना

पत्नी सौ भगवतीदेवी के साथ

"नारी की सफलता पुरुष को बांधने में है,
सार्थकता उसे मुक्ति देने में।'

—बाणभट्ट की आत्मकथा

'पुननवा' की पाण्डुलिपि का एक अश

निवेदन

प्रातः स्मरणीय आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के समग्र साहित्य को एक सूत्र में अनुस्यूत करके हिन्दी पाठकों को समर्पित करते हुए हमें अत्यधिक आनन्द का अनुभव हो रहा है। स्वर्गीय आचार्यजी के मन में अनेक परिकल्पनाएँ तथा योजनाएँ थीं जिन्हें कार्यान्वित करने के लिए वे निरन्तर क्रियाशील थे। परन्तु नियति निर्णय से उन्हें अधूरी ही छोड़कर वे चले गये हैं। हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली की प्रकाशन-योजना उसी सम्पूर्णता की शृंखला की पहली कड़ी है।

आचार्यत्व की गरिमा से दीप्त आचार्य द्विवेदी का व्यक्तित्व और उनकी अपार सर्जनात्मक क्षमता किसी भी पाठक को चमत्कृत और अभिभूत करने के लिए पर्याप्त है। मनीषियों की दृष्टि में वे चिन्तन और भावना दोनों ही स्तरों पर महत्त्व बिन्दु पर भासमान हैं। उनकी रचनादृष्टि समय के आरपार देखने में समर्थ थी। इतिहास उनकी लेखनी का स्पर्श पाकर अपनी समस्त जड़ता खो बैठा और सतत प्रवाहित जीवनधारा साहित्य में हिल्लोलित हो उठी, जो तीनों कालों को जोड़ देती है।

आचार्य द्विवेदी की बहुमुखी जीवन साधना ने हिन्दी वाङ्मय के एक पूरे और विशाल युग को प्रभावित किया है। वे संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा हिन्दी और बाङ्ला साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान थे। साथ ही, अंग्रेजी साहित्य का भी व्यापक धरातल पर उन्होंने परिशीलन किया था और अंग्रेजी भाषा के माध्यम से ग्रीक साहित्य का भी रसास्वादन किया था। अगाध पाण्डित्य में सहजता का मणिकांचन योग उन्हें सामान्य मानव की भूमिका में प्रतिष्ठित कर देने की क्षमता प्रदान कर देता था और वे अनायास ही जनहृदय से स्पन्दित और आन्दोलित हो उठते थे। उनका विद्वान् सरलता से सजग हो उठता था। वे प्रत्येक मन में विराजमान हो जाने की अपूर्व मेधा के धनी हो जाते थे।

आचार्यजी की इन्हीं अद्वितीय प्रवृत्तियों को स्थायी रूप देने के लिए इस ग्रन्थावली की योजना बनायी गयी है। विषय और विधा दोनों दृष्टिकोणों को साथ रखकर विभिन्न खण्डों का विभाजन किया गया है। कुल मिलाकर ये ग्यारह खण्ड हैं—

1 पहला खण्ड उपन्यास 1
2 दूसरा खण्ड उपन्यास 2
3 तीसरा खण्ड हिन्दी साहित्य का इतिहास
4 चौथा खण्ड प्रमुख भक्त कवि
5 पांचवां खण्ड मध्यकालीन साधना
6 छठवां खण्ड मध्यकालीन साहित्य
7 सातवां खण्ड लालित्य तत्त्व एव साहित्य मम
8 आठवां खण्ड कालिदास और रवीन्द्र
9 नवां खण्ड निबन्ध-1
10 दसवां खण्ड निबन्ध-2
11 ग्यारहवां खण्ड विविध साहित्य

ग्रन्थावली को क्रमबद्ध करने मे अनेको समस्याएँ आयी हैं। निबन्धो का विभाजन भी निबन्ध सग्रह तथा तिथि क्रम के आधार पर न करके विषय के अनुसार ही किया गया है। निबन्ध के अन्त मे मूल निबन्ध-सग्रह का नाम दे दिया गया है। ग्रन्थावली अधिकाधिक उपयोगी हो सके, इस बात को ध्यान मे रखकर ऐसा किया गया है। कबीर, सूर और तुलसी के अतिरिक्त कालिदास और रवीन्द्रनाथ ठाकुर से आचायप्रवर प्राय अभिभूत रहे हैं, अत दोनो महाकवियो से सम्बद्ध सामग्री एक ही खण्ड मे दे दी गयी है। अन्तिम खण्ड मे विविध प्रकाशित एव अप्रकाशित सामग्री सकलित है। आचाय द्विवेदी ने प्रारम्भ मे काव्य रचनाए भी की थी और अनेक अनुवाद भी। उन्हे यहा समाहित कर दिया गया है।

इस विशाल योजना की परिपूणता मे अनेक लोगो ने अपना अमूल्य सहयोग दिया है जिसके बिना निश्चय ही यह काय पूण नही हो पाता। उन सबके प्रति हम हार्दिक धन्यवाद व्यक्त करते हैं। प राजाराम शास्त्री ने अप्रकाशित ज्योति शास्त्र एव साहित्य शास्त्र सम्बन्धी रचनाओ के विषय मे परामर्श दिया, और श्री महेशनारायण 'भारतीभक्त' ने मुद्रण प्रति तैयार करके हमारे दायित्व को आसान बनाया। हम इन दोनो को साधुवाद अर्पित करते हैं। श्रीमती शीला सन्धू और राजकमल प्रकाशन से सम्बद्ध सभी व्यक्तियो ने जिस तत्परता और रुचि से इस योजना को सम्पूण कराया है, वह प्रशसनीय है।

इन शब्दो के साथ आचाय हजारीप्रसाद द्विवेदी का सम्पूण रचना ससार ग्रन्थावली के रूप म, हम वृहद हिन्दी विश्व-परिवार को समर्पित करते हैं। इससे ज्ञानधारा एव रससृष्टि मे थोडा भी विकास सम्भव हुआ तो हम अपने को कृतकाय मानेंगे

जगदीशनारायण द्विवेदी
मुकुन्द द्विवेदी

हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली

2

"विधि व्यवस्था सम्बन्धी परिस्थितियाँ बदलती रहती हैं। जिसे आज अधर्म समझा जा रहा है वह किसी दिन लोक-मानस की कल्पना से उठकर व्यवहार की दुनिया मे आ जायेगा। अगर निरंतर व्यवस्थाओं का संस्कार और परिमार्जन नही होता रहेगा, तो एक दिन व्यवस्थाएँ तो टूटेंगी ही, अपने साथ धर्म को भी तोड़ देंगी।"

—पुनर्नवा
ग्रन्थावली-2, पृष्ठ 166

"मुझे लगता है, बेटा, जिसे लोग 'आत्मा' कहते हैं वह इसी जिजीविषा के भीतर कुछ होना चाहिए। वे जो बच्चे हैं, किसी की टाँग सूख गयी है, किसी का पेट फूल गया है, किसी की आँख सूज गयी है—ये जी जायें तो इनमे बड़े-बड़े ज्ञानी और उद्यमी बनने की सम्भावना है। अगर यह सम्भावना नही होती तो शायद जिजीविषा भी नही होती। आत्मा उन्ही अज्ञात-अपरिचित अननुध्यात सम्भावनाओं का द्वार है।"

—अनामदास का पोथा
ग्रन्थावली 2, पृष्ठ 337

एक

देवरात साधु पुरुष थे। कोई नहीं जानता था कि वे कहां से आकर हलद्वीप में बस गये थे। लोगों में उनके विषय में अनेक प्रकार की किंवदंतियां थीं। कोई कहता था, वे कुलूत देश के राजकुमार थे और विमाता से अनेक प्रकार के दुर्व्यवहार प्राप्त करने के बाद संसार से विरक्त होकर इधर चले आये थे। कुछ लोग बताते थे कि बाल्यावस्था में ही उन्हें मखलि नामक किसी सिद्ध पुरुष से परिचय हो गया और उनके उपदेशों से वे संसार त्यागकर रमता राम बन गये। उनके गौर शरीर, प्रशस्त ललाट, दीर्घ नेत्र, कपाट के समान वक्षःस्थल, आजानुविलम्बित बाहुओं को देखकर इसमें कोई सन्देह नहीं रह जाता था कि वे किसी बड़े कुल में उत्पन्न हुए हैं। उनके शरीर में पुरुषोचित तेज और शौर्य दमकता रहता था और मन में अद्भुत औदार्य और करुणा की भावना थी। वे संस्कृत और प्राकृत के अच्छे कवि भी थे और वीणा, वेणु, मुरज और मृदंग जैसे विभिन्न श्रेणी के वाद्य-यन्त्रों के कुशल वादक भी थे। चित्र-कर्म में भी वे कुशल माने जाते थे। यह प्रसिद्ध था कि क्षिप्तेश्वरनाथ महादेव के मन्दिर के भीतरी भाग में जो भित्तिचित्र बने थे वे देवरात की ही चमत्कारी लेखनी के फल थे। शील, सौजन्य, औदार्य और मृदुता के वे यद्यपि आश्रय माने जाते थे, परन्तु फिर भी उन्होंने वैराग्य ग्रहण किया था। हलद्वीप के राज परिवार में उनका बड़ा सम्मान था। जब कभी राजा के यहां कोई उत्सव होता था, वे ससम्मान बुलाये जाते थे। वे यज्ञ-याग में उसी उत्साह के साथ सम्मिलित होते थे जिस उत्साह के साथ मल्ल-समाह्वय में। वे पण्डितों की वाद सभा में भी रस लेते थे और नृत्यगीत के आयोजनों में भी। लोगों का विश्वास था कि उन्हें संसार के किसी विषय से आसक्ति नहीं थी। उनका एकमात्र व्यसन था दीन-दुखिया की सेवा, बालकों को पढ़ाना और उन्हीं के साथ खेलना। यद्यपि वे अनेक शास्त्रों के ज्ञाता थे और भगवद्भक्त भी माने जाते थे, परन्तु वे नियमों और आचारों के बन्धनों में कभी नहीं पड़े। साधारण जनता में उनकी रहस्यमयी शक्तियों पर बड़ी आस्था थी, परन्तु किसी ने उन्हें कभी पूजा-पाठ

करते भी नही देखा।

देवरात का आश्रम हलद्वीप से सटा हुआ, थोड़ा पश्चिम की ओर, महासरयू के तट पर अवस्थित था। च्यवनभूमि के चौधरी वृद्धगोप उन पर बड़ी श्रद्धा रखते थे। वृद्धगोप का इस क्षेत्र में बड़ा सम्मान था। उनके पूर्व-पुरुष मथुरा से शुंग राजाओं की सेना के साथ आकर यहीं बस गये थे। नन्दगोप के वंशधर होने के कारण उनका कुल जनता की श्रद्धा और विश्वास का पात्र था। वृद्धगोप के दो पुत्र थे जिनमें एक तो वस्तुतः ब्राह्मण-कुमार था जिसे उन्होंने यत्न और स्नेह से पाला था। कुछ साँवला होने के कारण उन्होंने इसका नाम दिया था श्यामरूप। दूसरा आर्यक उनका अपना लड़का था। श्यामरूप को उन्होंने देवरात के आश्रम में पढ़ने के लिए भेजने का निश्चय किया। उस समय उसकी अवस्था आठ या नौ वर्ष की थी। जब श्यामरूप आश्रम में जाने लगा तो चार-पाँच वर्ष की अवस्था का आर्यक भी पाठशाला जाने के लिए मचल उठा। वृद्धगोप आर्यक को अपनी वंश परम्परा के अनुकूल मल्ल विद्या की शिक्षा देना चाहते थे, परन्तु उसके हठ को देखते हुए उन्होंने उसे भी पाठशाला जाने की आज्ञा दे दी। देवरात इन दोनों शिष्यों को पाकर बहुत अधिक प्रसन्न हुए। उन्होंने वृद्धगोप से आग्रह किया कि दोनों बच्चों को उनके आश्रम में पढ़ने दिया जाय। उन्होंने गद्गद भाव से वृद्धगोप से कहा था कि उन्हें ऐसा लग रहा है जैसे स्वयं बलराम और कृष्ण ही इन दो बच्चों के रूप में उनके सामने आ गये हैं। भाव गद्गद होकर दोनों बच्चों को गोद में लेकर वे देर तक बैठे रहे और फिर आकाश की ओर देखकर बोले, 'प्रभो! यह कैसी अपूर्व लीला है! आज तुमने गौर रूप धारण किया है और बड़े भैया को श्यामरूप दे दिया है।' वृद्धगोप ने सुना तो उन्हें रोमांच हो आया। उन्हें लगा कि सचमुच ही जिस प्रकार नन्दगोप की गोदी में बलराम और कृष्ण आ गये थे, वैसे ही उनकी गोदी में श्यामरूप और आर्यक आ गये हैं। महात्मा देवरात के चरणों में साष्टांग दण्डवत करते हुए उन्होंने कहा 'आर्य, आज मेरा जन्म जन्मान्तर कृतार्थ जान पड़ता है। आपने ही इन दोनों बच्चों में बलराम और कृष्ण का रूप देखा है और आप ही इन्हें बलराम और कृष्ण बना सकते हैं। मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि श्यामरूप अपनी वंश परम्परा के अनुसार पण्डित बने और आर्यक अपनी वंश परम्परा के अनुसार अजेय मल्ल बने परन्तु आपके चरणों में इन्हें सौंपकर मैं निश्चिन्त हुआ हूँ। आप इन्हें यथोचित् शिक्षा दें।" देवरात देर तक दोनों बच्चों के शारीरिक लक्षणों की परीक्षा करते रहे और उल्लसित स्वर में बोले 'चिन्ता न करें भद्र ये दोनों ही बच्चे पण्डित भी बनेंगे और अजेय मल्ल भी। आर्यक में चक्रवर्ती के सब लक्षण दिखायी दे रहे हैं। यदि सामुद्रिक शास्त्र सत्य है तो आर्यक दिग्विजयी होकर रहेगा और श्यामरूप उसका महामात्य बनेगा।" फिर आर्यक की ओर ध्यान से देखते हुए बोले 'मेरा मन कहता है कि यह बालक वृद्धगोप के घर में गाय चराने के लिए पैदा नहीं हुआ है। यह बहुत बड़ा होगा, बहुत बड़ा।' वृद्धगोप सन्तुष्ट होकर घर लौट आये। दोनों बच्चे

देवरात की देख-रेख मे पढने और बढने लगे। देवरात ने त्रिलिंग देश के मल्ल राजुल को उन्हें व्यायाम और मल्ल विद्या सिखाने के लिए नियुक्त किया।

देवरात दीन दुखिया की सेवा मे सदा तत्पर रहा करते थे। उन्हें किसी से कुछ लेना-देना नही था। परन्तु उनकी कला ममज्ञता का राज भवन मे भी सम्मान था। हलद्वीप की जनता का विश्वास था कि देवरात जो हलद्वीप मे टिक गये है उसका मुख्य कारण राजा का आग्रह और सम्मान है। अन्त पुर मे भी उनका अबाध प्रवेश था। वस्तुत वे राजा और प्रजा दोनो के ही सम्मानभाजन थे।

देवरात के शील, सौजन्य, कला-प्रेम और विद्वत्ता ने हलद्वीप की जनता का मन मोह लिया था। लोग कानाफूसी किया करते थे कि उनका विरोध सिर्फ एक ही व्यक्ति की ओर से है। वह थी हलद्वीप के छोटे नगर की नगरश्री मजुला। सारे नगर मे उसके रूप, शील, औदार्य और कला पटुता की धूम थी। बडे-बडे श्रेष्ठि कुमार उसके कृपा-कटाक्ष के लिए लालायित रहा करते थे। उसके नृत्य मे मादकता थी और कण्ठ मे अमृत का रस। हलद्वीप मे वह अत्यन्त अभिमानिनी गणिका के रूप मे विख्यात थी और अपने विशाल सप्तखण्ड हर्म्य के बाहर बहुत कम जाती थी। केवल विशेष विशेष अवसरो पर आयोजित राजकीय उत्सवो मे ही वह अपना नृत्य-कौशल दिखाया करती थी। अन्य अवसरो पर नृत्य और गीत के प्रेमियो को उसके द्वारस्थ होकर ही अपना मनोरथ पूरा करना पडता था। उसके अभिमान और आत्म-गौरव के सम्बन्ध मे लोगो मे अनेक प्रकार की किंवदन्तियाँ प्रचलित थी। कहा तो यहा तक जाता था कि कला-चातुरी के बारे मे राजा भी उसकी आलोचना करने मे हिचकते थे।

हलद्वीप के पश्चिमी किनारे पर जहाँ बोधसागर की सीमा समाप्त होती थी एक ऊँचा-सा बडा टीला था। बरसात मे जब बोधसागर मे पानी भर जाता था और महासरयू मे भी उफान आता था, तो यह टीला चारो ओर पानी से घिर जाता था। इसीलिए वह हलद्वीप मे एक दूसरे द्वीप की तरह दिखायी देता था। उसका नाम 'द्वीपखण्ड सर्वथा उचित ही था। इसी द्वीपखण्ड के दक्षिण पूर्वी छोर पर हलद्वीप का सरस्वती विहार' था। वसन्तारम्भ के दिन इस सरस्वती विहार मे काव्य नृत्य, सगीत आदि का बहुत बडा आयोजन हुआ करता था। उस दिन राजा स्वय इन उत्सवो का नेतृत्व करते थे। कई दिन तक नृत्य-गीत के साथ-साथ अक्षर-च्युतक, बिन्दुमती, प्रहेलिका आदि की प्रतियोगिताएँ चलती थी, न्याय और व्याकरण के शास्त्रार्थ हुआ करते थे, कवियो की समस्यापूर्ति की प्रतिद्वन्द्विता भी चला करती थी और देश-विदेश से आये हुए प्रख्यात मल्लो की कुश्तियाँ भी।

राजा के सभापतित्व मे ही एक बार मजुला का नृत्य इसी सरस्वती विहार मे हुआ। देवरात भी सदा की भाति आमन्त्रित थे। मजुला ने उस दिन बडा ही मनोहर नृत्य किया था। स्वय राजा ने उस उस नृत्य के लिए साधुवाद दिया था। देवरात भाव-गदगद होकर देर तक उस मादक नृत्य का आनन्द लेते रहे। मजुला ने उस दिन पूरी तैयारी की थी। उस दिन उसकी सम्पूर्ण देह-लता किसी निपुण

कवि द्वारा निबद्ध छन्दोधारा की भाँति लहरा रही थी, द्रुत मन्थर गति अनायास विविध भावों को इस प्रकार अभिव्यक्त कर रही थी, मानो किसी कुशल चित्रकार द्वारा चित्रित कल्पवल्ली ही सजीव होकर थिरक उठी हो। उसकी बड़ी-बड़ी काली आँखें कटाक्ष विक्षेप की घूर्णमान परम्पराओं का इस प्रकार निर्माण कर रही थीं जैसे नीलकमलों का चक्रजाल ही चंचल हो उठा हो, शरत्कालीन चन्द्रमा के समान उसका मुखमण्डल चारियों के वेग से इस प्रकार घूम रहा था कि जान पड़ता था, शत शत चन्द्रमण्डल ही आरात्रिक प्रदीपों की अराल माला में गुँथकर जगर मगर दीप्ति उत्पन्न कर रहे हों। उसकी नृत्य भंगिमा से नाना स्थिति की भाव मुद्राएँ अनायास निखर उठी थीं। उसके कन्धे के नीचे मृणाल-कोमल भुज-युगल सुकुमार सग्रथित द्विपदी-खण्ड के समान भाव परम्परा में वलयित हो उठते थे। वस्तुतः पूर्वानिल के झोंकों से झूमती हुई शतावरी लता के समान उसकी सम्पूर्ण देह-वल्लरी ही भावोल्लास की तरंग से लीलायित हो उठी थी। ऐसा लगता था, वह छन्दों से ही बनी है, रागों से ही पल्लवित हुई है, तानों से सँवारी गयी है और तालों से ही कसी गयी है। सभा एकाग्र की भाँति, चित्रलिखित की भाँति, मन्त्र मुग्ध की भाँति साँस रोककर उस अपूर्व तालानुग उत्ताल नर्तन का आनन्द ले रही थी। नृत्य की समाप्ति के बाद भी एक प्रकार की मादक विह्वलता छायी हुई थी। महाराज के साथ सम्पूर्ण राज सभा ने उल्लसित स्वर में 'साधु साधु' की हर्षध्वनि की। देवरात निर्वात निष्कम्प दीप शिखा की भाँति, निस्तरंग जलाशय की भाँति, वृष्टिपूर्व घनघुम्मर मेघमाला की भाँति स्थिर बने रहे। मंजुला ने गर्वपूर्वक उनकी ओर देखा। वे शान्त बने रहे। ऐसा लगता था कि वे अब भी भाव विह्वल अवस्था में थे। महाराज ने उन्हें सचेत किया, 'आर्य देवरात, नृत्य कैसा लगा आपको?" ऐसा लगा कि देवरात आयासपूर्वक अपनी संज्ञा के खोये हुए तन्तुओं को समेटने लगे। बोले, 'क्या कहना है महाराज! मंजुला देवी ने आज नृत्य कला को धन्य कर दिया है। शास्त्रकारों ने जो नृत्य को देवताओं का चाक्षुष यज्ञ कहा है, वह बात आज प्रत्यक्ष देख सका हूँ।" फिर मंजुला को सम्बोधन करते हुए बोले, 'धन्य हो देवि, ताल तुम्हारे चरणों का दास है, भाव तुम्हारे मुखमण्डल का मुँह जोहता रहता है...' कहते कहते वे बीच ही में रुक गये। स्पष्ट जान पड़ा कि वे कुछ और कहना चाहते थे पर कह नहीं सके हैं। महाराज ने जान-बूझकर छेड़ा, 'कुछ त्रुटि भी रह गयी है क्या आर्य?' मंजुला मन ही मन जल उठी। उसे लगा कि देवरात कुछ दोषोद्गार करने के लिए ही यह मीठी भूमिका बाँध रहे हैं। इसके पहले भी कई बार मंजुला देवरात की आलोचना सुन चुकी थी। यद्यपि देवरात ने कभी भी ऐसी कोई बात नहीं कही जिसमें रंच मात्र भी अश्रद्धा प्रकट हुई हो, पर मंजुला ने सदा उनकी आलोचनाओं में द्वेष भाव ही देखा था। आज भी उसे लगा कि देवरात कुछ ऐसा ही करने जा रहे हैं।

परन्तु देवरात कभी विद्वेष बुद्धि से किसी को कुछ नहीं कहते थे। उन्हें सचमुच मंजुला का नृत्य अच्छा लगा था, यद्यपि वे उससे कुछ अधिक की आशा रखते

थे। मंजुला को ही सम्बोधन करते हुए बोले, "बड़ा ही रमणीय साधन तुम्हें मिला है, देवि! अपने को खोकर ही अपने को पाया जा सकता है। तुम्हारा नृत्य इसी महासाधना की ओर अग्रसर हो रहा है। इस महाविद्या के बल पर ही एक दिन तुम स्वयं को दलित द्राक्षा की तरह निचोड़कर महा-अज्ञात के चरणों में दे सकोगी।" फिर यह सोचकर कि कहीं मंजुला के चित्त को ठेस न पहुंच जाय वे फिर उसी को सम्बोधन करके बोले, 'अज्ञ जन दया का पात्र होता है, देवि! अवश्य ही तुमने कुछ समझकर ही भावानुप्रवेश की उपेक्षा की होगी। मैं तो अज्ञ श्रद्धालु के रूप में ही यह प्रश्न कर रहा हूँ। इसे अन्यथा न समझना।' मंजुला का मुख क्षण भर के लिए म्लान हो गया। वह कुछ उत्तर न दे सकी। राजा ने ही बीच में उसे सम्हाला, आर्य, किस प्रकार का भावानुप्रवेश आप चाहते हैं?' देवरात मंजुला का म्लान मुख देखकर अनुतप्त हुए। परन्तु बात उनके मुह से निकल चुकी थी और राजा के प्रश्न का उत्तर देना आवश्यक था। बड़ी संयत वाणी में उन्होंने कहा, 'देव, मंजुला का नृत्य निस्सन्देह बहुत उत्तम कोटि का है। जो बात मेरी समझ में नहीं आयी, वह यह है कि छलित नृत्य में नर्तक या नर्तकी को उन भावों का स्वयं अनुभव सा करना चाहिए जो अभिनीत हो रहे हैं। इसी को भावानुप्रवेश कहते हैं। दूसरों के द्वारा प्रकट किये हुए भाव में स्वयं अपने को प्रवेश कराने का कौशल! निस्सन्देह मंजुला देवी इसमें निपुण हैं। परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि वे आज अपने को भूल नहीं सकी हैं। नृत्य का उद्देश्य मानो कुछ और था—सहज आनन्द से भिन्न कुछ और बात!' देवरात को संकोच अनुभव हो रहा था। बात कुछ अवांछित दिशा की ओर बढ़ती जा रही थी। उसे किसी दूसरी ओर मोड़ देने के उद्देश्य से उन्होंने कहा, 'भावानुप्रवेश तो पहली सीढ़ी है, महाराज! अन्तिम लक्ष्य तो महाभाव की अनुभूति ही है।' मंजुला ने सुना तो उसे बड़ी चोट लगी। नृत्य कला में वह और किसी की विदग्धता स्वीकार नहीं करती थी। परन्तु आज सचमुच ही उसके मन में चोर था। वह देवरात को दिखा देना चाहती थी कि उसके समान नर्तकी संसार में और कोई नहीं। हलद्वीप में एकमात्र देवरात ही उसकी दृष्टि में ऐसे थे, जो उसके रूप और गुण से अभिभूत नहीं हुए थे। आज सचमुच ही उसके मन में देवरात पर विजय पाने की लालसा थी। फीकी हँसी हँसकर उसने कृत्रिम विनय के स्वर में कहा, "आप तो नृत्य के आचार्य जान पड़ते हैं।" परन्तु मतलब यह था कि तुम्हारे आचार्यत्व का अभिमान तुच्छ है।

सभा भंग होने के बाद मंजुला अपने घर लौट आयी, लेकिन एक शब्द उसके कानों के पास बराबर मँडराता रहा—'भावानुप्रवेश'। क्रोधावेश में उसने सोचा, देवरात कहता है कि उसमें भावानुप्रवेश के कौशल की कमी है। यह देवरात दम्भी है क्लीव है, कुत्सा प्रिय है। उसने मंजुला का अपमान किया है। परन्तु जैसे जैसे आवेश ठण्डा पड़ता गया, वैसे वैसे मंजुला के मन में और तरह के विचार आते गये। देवरात एकमात्र समझदार सहृदय है। उसने मंजुला के मन का चोर पकड़ा

है। उसे उसकी सीमा में प्रवेश करके परास्त करना होगा। उसका गर्व चूर्ण करना होगा। उस रात मंजुला को नींद नहीं आयी। देवरात का अक्षोभ्य मुख उसके मानस पटल पर बार बार आ जाता था। यह आदमी कभी उसके रूप से अभिभूत नहीं हुआ और कभी उसके प्रति दमन अश्रद्धा या लोलुप दृष्टि से नहीं देखा। कला का मर्मज्ञ है बाह्य रूप का चाटुकार नहीं। मगर मंजुला यह नहीं समझ सकी कि वह उससे जलता क्या रहता है! जब तब कोई मीठी छुरी चला देता है। कहता है, भाव नुप्रवेश की कमी है। भण्ड है, मायावी है निर्दय है। मगर सारी दुनिया तो मंजुला पर मुग्ध है एक देवरात नहीं मुग्ध होता तो उससे उसका क्या बिगड़ जाता है? मंजुला के पास इसका कोई उत्तर नहीं था। क्या उसका मन बराबर देवरात पर विजय पाने को तरसता है? क्या वह नहीं जानती कि हजार विडम्बक रसिकों की चाटुकारी सच्चे सहृदय के एक बार सिर हिलाने की बराबरी नहीं कर सकती? नहीं देवरात को वश में करने का उपाय कुछ और है। रूप की माया उसे नहीं आकृष्ट कर सकती हाव और विब्बोक उसे नहीं अभिभूत कर सकते, उसे वश में करने का कुछ और ढंग होना चाहिए। मिट्टी के शरीर पर आकृष्ट होनेवाले रसिक जानते ही नहीं कि रस क्या चीज है। सहृदय भाव चाहता है देवरात और भी आगे बढ़कर महाभाव चाहता है। महाभाव क्या होता होगा भला! मंजुला फिर उलझ गयी। देवरात किस महाभाव में रहते हैं? सदा प्रसन्न, सदा श्रद्धा परायण सदा निर्लोभ। मंजुला सोचने लगी उसने देवरात को क्या गलत समझा था? पूरी राज सभा में वही तो एक सहृदय है जो रस का मर्मज्ञ है, बाकी तो भाड़ है। ना, देवरात ही सच्चा पुरुष है। बाकी तो मास के भुक्खड़ भेड़िये हैं। देवरात को परास्त करना होगा, मगर उसी के स्तर पर। उसे पसीना आ गया। अंगुलियों में भी स्वेद की आर्द्रता अनुभूत हुई। यह चिन्ता उसे कई दिना तक व्याकुल किये रही।

कुछ दिन बाद एक दूसरे आयोजन के समय मंजुला को देवरात पर विजय पाने का अवसर मिला। उस दिन उसका चित्त निरन्तर मथित होने के बाद शान्त हो आया था। जैसे विलोय हुए दधि में मक्खन उतर आता है, वैसे ही मंजुला में अब सात्त्विक भाव उमड़ आया था। उसने विशुद्ध कलाकार की ऊँचाई से सहृदय को वश में करने का निश्चय किया था। देवरात उस दिन प्राकृत में एक कविता सुना रहे थे। कविता शृंगार रस की जान पड़ती थी। बहुत-से लोग जो देवरात को वैरागी समझते थे इस कविता को सुनकर विस्मित हुए थे। कविता इस प्रकार थी—

> अज्ज पिताव एक्क मा में वारेहि पियमहि रुअन्ती।
> कल्लि उण तम्मि गए जइ ण मुआ ता ण रोदिस्सम॥
> [रोवन दे सखि आजि तू मति बरजै रहि मौन।
> लगन चलन लखि काहि जो प्राण बच रोओ न॥]

देवरात ने इसको बड़े व्याकुल स्वर में पढ़ा। उनका स्वर काँप रहा था। ऐसा

जान पड़ता था कि नाना प्रहार से निकले हुए बुद्बुद हैं जो समस्त चित्त को अनायास ही वेधकर निकल रहे हैं। देवरात का नादयन्त्र केवल निमित्त मात्र जान पड़ता था। ऐसा लगता था कि कोई विश्वव्यापिनी मर्म-वेदना अनायास ही उनके नाद-यन्त्र के माध्यम से हिल्लोलित हो उठी हो। छिटके रस मर्मज्ञ को इसमें सन्देह नहीं रहा कि इसका कवि स्वयं अनुभव करने के बाद ही ऐसी बात कह रहा है। लोगों ने तो यह भी कहना शुरू किया कि इस कविता का सम्बन्ध देवरात की किसी आप-बीती कहानी से अवश्य है। लेकिन मंजुला विचलित हो गयी। वह मन ही मन देवरात के वैदग्ध्य से मुग्ध हो रही। उसे लगा कि व्यर्थ में उद्धत अभिमान के कारण वह अब तक इस गम्भीर सहृदय पुरुष की उपेक्षा करती रही है। उसका अन्तर इस प्रकार द्रवित हो उठा जैसे दीर्घकाल से जमा हुआ हिम एकाएक उष्ण वायु के स्पर्श से पिघल गया हो। हाय, किस गहराई में उस असामान्य पुरुष के अन्तर-देश में मर्मन्तुद पीड़ा घर किये बैठी है! ऊपर से वह गम्भीर बनी रही। पर उसका अन्तर द्रवित हो चुका था। राजा ने उससे प्रश्न किया, "कहो मंजुला, आर्य देवरात की कविता कैसी लगी?" मंजुला ने कृत्रिम गर्व का भाव धारण किया। विब्बोक-चटुल मुद्रा में 'नासा मोरि नचाइ दृग' बोली 'बासी है!'" और मन्द मन्द मुस्कराती हुई देवरात की ओर इस प्रकार देखने लगी, मानो कह रही हो कि मेरे शब्दों पर न जाना, कविता अच्छी है। देवरात ने उस दृष्टि का अर्थ समझा और बोले, "देवि! अनुग्रह हो तो कुछ प्रत्यग्र मनोहर सुनने की इच्छा है।" लेकिन इस बीच मंजुला का यह उत्तर सुनकर राजा हँस पड़े थे और उनके पीछे बैठी हुई चाटुकारों, भाटों, विदूषकों और विटों की मण्डली भी हँसी से इस प्रकार लहालोट हो गयी थी मानो अन्नदाता ने अभूतपूर्व परिहास किया हो। मंजुला के मन पर चोट लगी। वह नहीं चाहती थी कि देवरात उसे गलत समझें। अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से उसने कातर अपांग से देवरात की ओर देखा, भाव था 'इन भाड़े रसिकों की हँसी की उपेक्षा करें। मैं परवश हूँ।' देवरात ने आँखों की भाषा में ही उत्तर दिया, 'कुछ परवाह न करो ये नासमझ हैं।' फिर एक-दो बार आँखों ही-आँखों में बातें हुई। राज सभा में किसी ने इस दृष्टि विनिमय को समझने का प्रयत्न नहीं किया। राजा ने मंजुला से कहा, "हाँ सुन्दरि, कुछ प्रत्यग्र मनोहर सुनाओ।" प्रत्यग्र मनोहर, अर्थात जो अपनी ताजगी से ही मन हर लेता हो। मंजुला ने एक बार फिर देवरात की ओर ईषत् कटाक्ष निक्षेप किया। भाव यह था कि 'गुरु कहें, अनुमति है?' देवरात ने हँसते हुए कहा, "अवश्य सुनाओ देवि, मगर सौन्दर्य तो वही है जो बासी नहीं होता।" मंजुला ने जीभ काट ली—क्या देवरात को उसकी आलोचना बुरी लग गयी है? राजा की ओर देखते हुए, किन्तु वस्तुतः देवरात को लक्ष्य करके उसने कहा, "मैं बासी को भी ताजा बना सकती हूँ, महाराज!" राजा एक बार फिर हँसे और साथ ही विटों और विदूषकों की मण्डली लहालोट हो गयी। देवरात ने कहा, "अवश्य कर सकती हो देवि विलम्ब का क्या प्रयोजन है?" पीछे से किसी ने टिटकारी दी, "हाय, हाय, सूखी डाल में

कोपलें फूट रही है रे !'' मंजुला को बुरा लगा। देवरात के चेहरे पर कोई भाव नहीं दिखायी दिया। मंजुला ने सोचा कि देर करने से इन विदग्ध रसिकों से न जाने क्या-क्या सुनने को मिले। इसलिए हाथ जोड़कर उसने राजा से कहा, "महाराज पहले प्रत्यग्र मनोहर सुनाने की अनुमति दें और बाद में बासी का ताजा करने की।" महाराज ने उल्लासपूर्वक साधुवाद दिया और मंजुला रंगभूमि में उतरी। उस दिन वह सचमुच 'भावानुप्रवेश' की मुद्रा में थी। बड़ी ही करुण मधुर वाणी में उसने अपनी रचना पढ़ी। लेकिन कविता का पाठ आरम्भ करने के साथ ही वह भाव विह्वल मुद्रा में दिखायी पड़ी। कसा हुआ धम्मिल-पाश (जूड़ा) न जाने कब बिखरकर पीठ पर फैल गया। वह करुण रस की मूर्ति या शरीरधारिणी विरह व्यथा की भाँति कूक उठी। क्या सोचकर उसने यह कविता लिखी थी, यह तो उसके अन्तर्यामी ही जानते होंगे परन्तु दर्शक पढ़ने में अजीब मादकता थी। ऐसा जान पड़ता था कि उसने हृदय का समूचा रस उँडेलकर उसके एक एक अक्षर को भिगोया था। प्रत्येक अक्षर स्फुट रूप में उच्चरित था, यथास्थान 'काकु' का उचित सन्निवेश था और छन्द की लहरी भाव के साथ विचित्र भंगिमा में हिल्लोलित हो उठी थी। उस दिन वह वास्तविक 'भावानुप्रवेश' की अवस्था में थी। उसने संस्कृत का श्लोक नहीं पढ़ा, प्राकृत की आर्या नहीं सुनायी सुनाया ग्राम्य भाषा में प्रयुक्त होनेवाला विरह गीत (बिरहा) का अत्यन्त मनोहर दोहा छन्द। व्याकुल वाणी में उसने सुनाया

> दुल्लह जण अणुराउ गरु लज्ज परव्वसु प्राणु।
> सहि मणु विसम सिणेहु वसु मरणु सरणु णहु आणु॥
> [दुर्लभ जन अनुराग बड़ि लज्जा परवस प्रान।
> सखि मन विषम सनेह बस मरन सरन, नहिं आन॥]

उसने व्याकुल कम्पित स्वर में 'प्राणु' शब्द को खींचा। ऐसा जान पड़ा, आकाश रो उठा है वायु मण्डल काँप उठा है। अन्तिम चरण तक आते आते उसका स्वर शिथिल होने लगा। वह अधमूर्च्छित सी होकर रंगभूमि में शिथिल भाव से पड़ रही। सभासदों ने आशंकित होकर सोचा यह क्या अभिनय है या सच्ची वेदना है? धीरे धीरे मंजुला की संज्ञा लौट आयी। उसने देवरात की पढ़ी हुई आर्या को भी पढ़ा। करुण विकम्पित स्वर से वायु मण्डल विद्ध हो उठा। ऐसा जान पड़ा वह आविष्ट है। जो मंजुला नित्य दिखायी देती है उससे मानो यह भिन्न हो। काव्य संगीत और अभिनय के उत्तम पक्षों का यह बहुत ही रमणीय सामंजस्य था। जब कविता पाठ के बाद वह उठी, तब भी आविष्ट अवस्था में थी। चलने लगी तो चरणों के अलस संचार में भी विरह व्यथा तरंगित हो रही थी, विलुलित केश पाश से अनुभाव लहरा उठे थे और शिथिल नयनों से व्याकुल उच्छ्वास चंचल हो उठा था। स्वयं देवरात के सिवा सभी सभासदों ने यही समझा कि यह देवरात को परास्त करने का आयोजन है। वे यह भी सोच रहे थे कि देवरात अवश्य कुछ-न-कुछ दोषोद्गार करेंगे। परन्तु आश्चर्य के साथ देखा गया कि देवरात की आँखों

स अविरल अश्रु धारा झर रही ह। उनके होठ सूख गये है और कपोल प्रात मुर्झाय हुए कमल के समान पाण्डुर हो उठे ह। मजुला ने यह कल्पना भी नही की था कि देवरात की ऐसी दशा हो जायगी। देवरात कुछ प्रकृतिस्थ होकर बोले, "धन्य हूँ देवि, जो वाग्देवता को प्रत्यक्ष देख रहा हूँ।" उनकी इस प्रशसा को सुनकर मजुला के सहज प्रगल्भ मुख पर पहली बार लज्जा की लालिमा दिखायी पडी। निस्सदेह उस दिन वह देवरात पर विजय प्राप्त करने की कामना से आयी थी। उस अभूतपूर्व सफलता भी मिली, पर विधाता के मन म कुछ और ही था। वह अपन को पा गयी, अपने को ही खोकर। जिसे वह सदा अपना प्रतिद्वन्द्वी सम झती रही, उसी देवरात को हराकर वह स्वय हार गयी। उसन पहली बार अनुभव किया कि हारकर भी मनुष्य चरितार्थ हो सकता है।

देवरात उस दिन अधीर और व्याकुल देखे गये। राजा न समझा कि उन्होने अपने को अपमानित अनुभव किया ह। सुनन मे आया कि राजा ने मजुला पर अपना क्रोध भी प्रकट किया। यद्यपि उन्होने उसके मुह पर कुछ नही कहा, तथापि सारे नगर मे उनके रोष की कहानी फल गयी। मजुला ने सुना तो उसका हृदय व्यथा से तडप उठा। क्या सचमुच देवरात को उस दिन उसने चोट पहुचायी? अभिमानिनी गणिका को अपने औद्धत्य के लिए पहली बार पश्चात्ताप हुआ—हाय अभागी तूने कैसा अनथ कर दिया! परन्तु उसके अन्तर्यामी कहते थे कि यह बात झूठ है। देवरात ऐसे छोटे नही ह। उन्होन मजुला को गलत नही समझा है। राज सभा भोडी रसिकता की शिकार ह। विडम्ब-रसिक अपन मन से दूसरा के मन को माप करत है। देवरात इनसे ऊपर है बहुत ऊपर।

लेकिन देवरात अपने आश्रम मे दीन दुखियो की सेवा और बालको को पढाने लिखाने का काम यथानियम करते रह। उस दिन की क्षणिक अधीरता के बाद कभी भी उन्ह कातर या अभिभूत नही देखा गया। वे राजा की सभा म आयोजित नृत्य गीतो मे भी उसी उत्साह के साथ सम्मिलित होते रहे जिस उत्साह के साथ मल्लशाला म आयोजित मल्ल समाह्वया म। व पण्डितो की वाद-सभा म भी उतना ही रस लेते थे। राज सभा के सभासदो न सिर हिला हिलाकर जो आशका प्रकट की थी कि किसी न किसी दिन यह कला प्रेमी वैरागी मजुला के कटाक्ष-बाणो से घायल होगा, वह कभी सत्य नही हुई। देवरात यथापूर्व निर्विकार और निर्लिप्त बने रह। केवल एक परिवर्तन हुआ जिसे देवरात के अन्तर्यामी के सिवा और कोई नही देख सका। जब कभी देवरात एकान्त म होत, व उदास स्वर म गुनगुना उठते

दुल्लह जण अणुराउ गरु लज्ज परव्वसु प्राणु।
सहि मणु विसम सिणेह वसु मरणु सरणु णहु आणु॥

दो

एक दिन देखा गया कि रूपगर्विता नगरश्री मंजुला अपने सारे अभिमान को ताक पर रखकर उदास भाव से देवरात के आश्रम की ओर नंगे पाँव चली जा रही है। हलद्वीप के लोगों के लिए इससे बड़ा आश्चर्य और कुछ नहीं था। आत्म गौरव की प्रतिमा, अभिमान की मूर्त्ति, शोभा की अविजित रानी, नगर रसिकों की आकांक्षा भूमि मंजुला अकेली चल पड़ी है। साथ में कोई दास दासी नहीं है, रथ नहीं है, पालकी नहीं है, हाथी घोड़े नहीं हैं, वह सब प्रकार से अकेली है।

हलद्वीप के नगरवासियों ने कभी इस प्रकार की बात की कल्पना भी नहीं की थी। मंजुला परम अभिमानिनी के रूप में ही परिचित थी। उसके बारे में सैकड़ों किंवदंतियाँ प्रचलित थीं। कहा तो यहाँ तक जाता था कि वह नित्य एक घड़े दूध से स्नान करती है। इधर सरस्वती विहारवाली नाक झाक ने नगर में अनेक प्रकार की किंवदंतियों को उकसावा दिया था। लोगों ने आश्चर्य के साथ सुना था कि मंजुला में अनेक परिवर्तन हुए हैं। वह अपना अधिकांश समय अब पूजा-पाठ में बिताती है, व्रत उपवासों का विधिवत उद्यापन करती है, उसकी वीणा से अब केवल विरह के स्वर झंकृत होते हैं। परन्तु इन बातों की सच्चाई में बहुत थोड़े लोगों को विश्वास था। बुद्धिमान व्यक्तियों ने सिर हिलाकर कहा था—"देखते रहो, जनम की विलासिनी करम की मायाविनी गणिका अगर पूजा-पाठ करने लगे तो मानना होगा कि बबूल में भी कमल के फूल खिलने हैं, पनाले में भी सुगन्धि फूटती है, सर्पिणी भी पुजारिनी बन सकती है।" लेकिन किंवदंतियाँ अमूलक नहीं थीं। मंजुला में सचमुच परिवर्त्तन हुआ था। वह नृत्य को महाभाव का साधन मानने लगी थी अपने को खोकर अपने को पाने की ओर अग्रसर होने लगी थी। निस्सन्देह उसमें व्याकुलता थी। वह महाभाव का रहस्य समझना चाहती थी। किससे पूछे कौन बतायेगा कि महाभाव क्या है? एकमात्र देवरात ही बता सकते थे पर वे मंजुला के लिए दुरभिगम्य थे। आजीवन जिन ब्रह्मास्त्रों को उसने वशीकरण का उपाय मानकर अभ्यास किया था वे देवरात से टकराकर चूर्ण विचूर्ण हो गये थे। उसने उपेक्षा की थी। गणिकाशास्त्र में इन अस्त्रों से घायल न होनेवाला नपुंसक माना जाता है। मंजुला ने भी बराबर देवरात को ऐसा ही माना था, पर अब उसे दूसरा ही अनुभव हुआ था। गणिकाशास्त्र से ऊपर भी कुछ है। घायल होने के रूप भी अलग अलग होते हैं। देवरात नहीं, मंजुला घायल हुई है। कहाँ? किस गहराई में? और क्या सचमुच देवरात किसी अतल में घायल नहीं हुए हैं? मंजुला उत्तर पाना चाहती है, पा नहीं रही है।

इस बीच एक अनर्थ हो गया था। राजसभा में उसकी पुकार हुई थी। उसे सुधि ही नहीं रही। यथासमय वह अनुपस्थित पायी गयी। राजकोप अयाचित, अप्रत्याशित रूप से उस पर आ गिरा। देवरात ही उसकी रक्षा कर सकते थे। वे

ही राजा को प्रभावित करने में समर्थ थे। मंजुला को अच्छा बहाना मिल गया। दुःख के आवेदन को देवरात कभी उपेक्षा नहीं करते। मंजुला आज निकल पड़ी है। अकेली।

नगर-भर में खलबली मच गयी। लोगों के आश्चर्य और कौतूहल का ठिकाना नहीं रहा। यह भी क्या सम्भव है कि अभिमानिनी नगरश्री इस प्रकार नगर की गलियों में अकेली चले? उसके परिधान के में सिर्फ एक स्वच्छ साड़ी थी, आभूषण के नाम पर केवल एक हाथ में एक सोने की चूड़ी थी और गले में केवल एक सूत्र का हमहार था। उसके पैरों में उपानह भी नहीं थे। ऐसा जान पड़ता था कि शोभा ने ही वैराग्य धारण किया है, शान्ति ने ही व्रतोद्यापन किया है, चन्द्रमा की स्निग्ध ज्योत्स्ना ही धरती पर उतर आयी है, पद्मवन की चारुता ने ही थल पर चलने का संकल्प किया है और रति ने ही उदास भाव ग्रहण करके धरती को धन्य किया है। निस्सन्देह वह इस वेश में भी मनोहर लग रही थी। शैवाल जाल से अनुविद्ध होकर भी कमल पुष्प की शोभा कमनीय होती है, मेघों से आवृत चन्द्र मण्डल की शोभा भी रमणीय जान पड़ती है, मधुर आकृतियों के लिए सब-कुछ मण्डन द्रव्य ही बन जाता है। नगर के गवाक्ष खुल गये, पौर वधुओं के चकित नयनों ने नगर की शोभा को धूल पर चलते देखा, बच्चों का दल पीछे पीछे दौड़ पड़ा, ग्राम वृद्धों ने एक-दूसरे की ओर कौतूहल भरी दृष्टि से देखकर कहा, "बात क्या है?" लेकिन मंजुला ने किसी ओर दृष्टिपात नहीं किया। वह निरन्तर आगे बढ़ती गयी। ऐसा जान पड़ता था कि इस अवस्था में भी उसका अभिमान उसे प्रच्छन्न भाव से अवगुण्ठित किये हुए है।

देवरात के आश्रम के बहिर्द्वार पर आकर वह ठिठक गयी, जैसे स्रोतस्विनी के सामने अचानक शिला खण्ड आ गया हो। उसने चकित मृग शावक की भांति भीत नयनों से चारों ओर देखा, ऐसा लगा जैसे वह किसी ऐसे स्थान पर आ गयी हो जहाँ उसके प्रवेश का अधिकार न हो। क्या करे, क्या न करे? वह सोच नहीं पा रही थी। आश्रम उसे जलते अंगार जैसा दिखायी दे रहा था, जिसको छूने से सम्पूर्ण रूप से जल जाने की आशंका थी। अभिमानिनी गणिका को पहली बार यहाँ अनुभव हुआ कि वह वह नहीं है जो अब तक अपने को समझती आयी थी। एक बार थके निराश नेत्रों से उसने आश्रम के भीतर देखा। उसकी दृष्टि दो बड़े ही सुन्दर बालकों की ओर गयी। ये बालक श्यामरूप और नायक थे। उसने इंगित से उन्हें अपनी ओर बुलाया। दोनों बालक दौड़ते हुए उसके पास आ गये और बड़े शिष्ट भाव से बोले, 'आर्ये आप क्या हमारे गुरुजी को खोज रही हैं? क्या आप भी पढ़ने आती हैं? हमारे गुरुजी आपको बहुत अच्छी तरह पढ़ायेंगे। आइए, आइए स्वागत है।' मंजुला को सन्देह नहीं रहा कि इन बच्चों का गुरु ने ही ऐसी शिष्ट भाषा बोलना सिखाया होगा। उसके मन में वात्सल्य भाव उदित हुआ। उसने दोनों बच्चों के सिर पर हाथ फेरा और प्यार से कहा "हाँ वत्स, मैं गुरुजी के दर्शन के लिए ही आयी हूँ। उनसे निवेदन करो कि मंजुला दर्शन का प्रसाद पाना

चाहती है।" दोना वच्चे दौडकर गुरु के पास गय और थाडी दर मे उनके साथ लौट आये। देवरात ने कभी कल्पना भी नही की थी कि मजुला इस रूप म उनके द्वार पर उपस्थित होगी। उन्होने अत्यन्त मधुर वाणी म मजुला का स्वागत करते हुए कहा 'देवि, इस आश्रम को धन्य करने का कारण क्या हुआ ? मैं किस सेवा के योग्य हूँ ? सुभे, तुम्हारा चेहरा उदास दख रहा हूँ। कल्याण तो है ?' मजुला फूट फूटकर रो पडी और अनायास उनके चरणा पर सिर रख दिया। उसने अपने बिखुरे अलका से ही उनका चरण पाछ दिया और बताया कि अकारण ही उस राजकोप का शिकार होना पडा है। एकमात्र व ही हैं जो राजकोप का निवारण कर सकते हैं।

देवरात ने उसे आश्वासन दिया, "चिन्तित न हो देवि, मैं शक्ति-भर प्रयत्न करूँगा कि तुम्हे कोई कष्ट न हो और राजा का कोप शान्त हो।" मजुला आश्वस्त हुई। फिर आँखें नीची किये कुछ असमजस की मुद्रा म खडी रही जैसे कुछ कहना चाहती हो, कह न पा रही हो। देवरात ने उत्सुकतापूर्वक पूछा 'क्या कहना चाहती हो, देवि ? और मधुर भाव से आश्वस्त करते हुए बोले, "कह जाओ, सकोच की क्या बात है ?'

मजुला न धीमे स्वर म पूछा, 'आय उस दिन मेरे कविता-पाठ से आपको चोट लगी। अपराधिनी को क्षमा करना, मैं बहुत लज्जित हूँ।"

देवरात हँसे, तुम्हारी उस कविता से मुझे चोट लगी ? किसने कहा देवि ?" फिर उत्तर की प्रतीक्षा किय बिना बोलते गये, 'बासी घाव हरा हो गया था, देवि ! उसके बारे म न पूछ बैठना, पर उस दिन तुम्हारे भीतर सुप्त दवता का सधान मुझे मिला था सुप्त देवता, जो जाग उठा था।'

मजुला की आखो से अश्रुधारा फूट पडी। फफककर बोली "हाय आय, मेरे भीतर देवता भी है यह बात तो केवल तुमने ही देखी है। लोग तो इसमे मिट्टी का ढेला ही खोजते है। मैं अपने पाप जीवन से ऊब गयी हूँ आय ! हाय, इस नरक से मेरा कभी उद्धार भी होगा ! " उसन दीर्घ नि श्वास लिया।

देवरात ने कहा मैं भुजा उठाकर कह सकता हूँ देवि तुम्हारे भीतर देवता का निवास है। तुम जिस पाप जीवन की बात कह रही हो वह मनुष्य की बनायी हुई विकृत सामाजिक व्यवस्था की देन है। चिन्ता न करो देवि इससे उद्धार हो सकता है। तुम्हारा देवता तुम्हारे भीतर बैठा हुआ अवसर की प्रतीक्षा कर रहा है। कोई बाहरी शक्ति किसी का उद्धार नही करती। यह अन्तर्यामी देवता ही उद्धार कर सकता है। चिन्ता की क्या बात है देवि ! "

मजुला आँखें फाडकर दवरात की ओर देखती रह गयी। उसे इन बाता का अर्थ स्पष्ट नही हो रहा था। पर बिना अर्थ समझे भी जैसे साम गान चित्त को अभिभूत कर लेता है, कुछ उसी प्रकार का भाव उस अनुभव हुआ।

दवरात ने उसे और भी उत्साहित किया, 'देवता न बडा होता है न छोटा, न शक्तिशाली होता है न अशक्त। वह उतना ही बडा होता है जितना बडा उसे

उपासक बनाना चाहता है। तुम्हारा देवता भी तुम्हारे मन की विशालता और उज्ज्वलता के अनुपात मे विशाल और उज्ज्वल होगा। लोग क्या कहते है इसकी चिंता छोडो। अपने अंतर्यामी को प्रमाण मानो। वे सब ठीक कर देंगे, देवि!"

मंजुला को जैसे नया सुनने को मिला। नवीन बाल मृगी जैसे बरसते मेघ के रिमझिम संगीत को आश्चर्य से सुनती है उसी प्रकार वह सुनती रही—चकित, उल्लसित, उत्सुक!

देवरात ने उपसंहार किया, "अपने देवता की उपेक्षा न करना, देवि! जाओ, मंगल हो!"

मंजुला भहरा गयी। वह इतनी जल्द उपसंहार के लिए प्रस्तुत नहीं थी। वह बहुत सुनना चाहती थी, उसे थोडे मे संतोष नही हो रहा था। हाय उसके भीतर भी देवता है—चिर-उपेक्षित, चिर-पिपासित, चिर-अपूजित! उसकी बडी-बडी आंखें धरती की ओर जो झुकीं सो मानो चिपक ही गयी। वह दाहिने पैर के नाखून से धरती कुरेदती खडी रही। नाना भाव तरंगों के आघात प्रत्याघात से वह जड प्रतिमा की भांति निश्चेष्ट हो गयी। देवरात मुग्ध भाव से उसकी मनोहारिणी शोभा को देखते रह। वे भी चित्रलिखित से खडे के खडे रह गये। श्यामरूप और आर्यक चकित होकर दोनो को देखते रहे। उनकी समझ मे नही आ रहा था कि इन्हे हो क्या गया है! थोडी देर तक यही अवस्था रही। फिर देवरात का ही ध्यान भंग हुआ। बोले, "चारुशीले, मैंने जो कहा, उससे तुम्हारे चित्त को आश्वासन नही मिला क्या?" मंजुला ने आंखें ऊपर उठायी बोली, 'अपराधिनी हूँ, आर्य! आपको सदा गलत समझा है। मैं बिल्कुल नही जानती थी कि कोई मेरे भीतर देवता का भी संधान पा सकता है। मुझे अब लगता है कि केवल आज नही, पहले भी तुमने मेरे भीतर सुप्त देवता को देखा था। मैं आजीवन पाप पंक मे डूबी हुई, तुम्हारी भावनाओं को क्या जानूं। मैं तो सिर्फ यह जानती रही कि लोग मेरे भीतर जाग्रत पशु को ही देखते है, उसी का सम्मान करते हैं। जो इस पशु को नही देख पाता उसे दृष्टि ही नही है। हाय आर्य मेरे अंतरतर का देवता सुप्त रहकर भी तुम्हें जितना प्रभावित कर सका, उसका शतांश भी तुम्हारे जाग्रत देवता से यह पापिनी प्रभावित हो पाती!" देवरात ने बीच में ही टोका "सुनो देवि तुम इतनी व्यथित क्यों हो रही हो? अपने पर तुम्हारी यह अनास्था उचित नही है। तुम बार-बार अपने को पापिनी और अपराधिनी कहती हो, तो मेरा अंतरतर कांप उठता है। यहां शुद्ध सुवर्ण कहीं नहीं है सब जगह खाद मिला हुआ है। सब-कुछ शुद्ध सुवर्ण और खाद से बना हुआ हेमालंकार है। किसने यह आभूषण पहन रखा है? उसी को खोजो। पाप और पुण्य जब उसी को समर्पित हो जाते हैं तो समान रूप से धन्य हो जाते है। मन में खोट न आने दो देवि तुम नारायण की स्मित-रेखा के समान पवित्र हो आह्लादक हो आनन्ददायिनी हो। देवि जिस दिन देवरात ने तुम्हें देखा था उस दिन उसे लगा था कि वह कुछ अपूर्व देख रहा है कुछ नवीन अन्वेषण कर रहा है। तुम विश्वास मानो शुचि,

तुम्हारे दर्शनमात्र से देवरात का सम्पूर्ण अस्तित्व उमड आता है। निश्चय ही तुम्हारे भीतर कोई महा आकर्षक देवता बसता है। लोग उसको ठीक नहीं पहचानते। वे मन्दिर को ही आकर्षण का हेतु मान लेते हैं। बिचारे कृपण हैं, उनका देवता भी सुप्त है। जागेगा मगर कब कहना कठिन है।"

मंजुला का अंग अंग द्रवित हो उठा। नस नस में आनन्द की अननुभूत लहरी सिहरन पैदा कर गयी। वह क्या सुन रही है? उसे देखकर देवरात का सम्पूर्ण अस्तित्व उमड आता है! उसे वे नारायण की स्मित रेखा के समान पवित्र और आह्लादवर्धिनी समझते हैं यह भी क्या चाटूक्ति है? हाय, कितनी बेधक चाटूक्ति है यह! मंजुला के अन्तरतर को वह वेध रही है। अब तक सुनी हुई चाटूक्तियाँ उसे ढँक देती रही है। आज की उक्ति उसे उघेड रही है। नारायण की आह्लादिनी स्मित रेखा! पहले उस स्मित रेखा ने मोहिनीरूप में ही संसार को वशीभूत किया था। आज उसका पवित्र आह्लादक रूप प्रकट हो रहा है। मंजुला अपने को पा रही है।

देवरात ने पुनः कहा, 'देवि, तुम्हारे नृत्य में तुम्हारा देवता अभिव्यक्त होता है। देवरात उसे पहचानता है।"

मंजुला अपने को सम्हाल नहीं सकी। उसने आवेशपूर्वक देवरात के चरणों पर सिर रख दिया। देवरात पीछे हट गये। मंजुला बोली 'इतने से वंचित न रहने दो आर्य! मैं फटी जा रही हूँ। ऐसा जान पडता है कि इस सारे आवरण को छिन्न करके एक नयी मंजुला निकलना चाहती है। इस कलुषित मंजुला के भीतर से शुद्धसत्त्वा अकलुष मंजुला! वह अकलुष मंजुला ही तुम्हें समर्पित है आर्य! उसे अपने पवित्र ममत्व से वंचित न करो। हाय आर्य, बडी देर हो गयी!"

देवरात भाव विह्वल अचंचल!

क्षणभर में क्या-का क्या हो गया। देवरात का सारा सत्त्व मथित होकर ढरक जाना चाहता है।

मंजुला प्रकृतिस्थ हो गयी। बोली, 'इससे अधिक लोभ नहीं करूँगी, आर्य! इस नवीन मंजुला को मत भूलना। पुरानी को क्षमा कर देना!'

देवरात ठगे से, खोये से हारे-से, स्तब्ध!

मंजुला ने उनके चरणों की धूल आँखों में लगायी और चलने को प्रस्तुत हुई। देवरात निश्चल अकम्प!

मंजुला अन्तिम प्रणाम निवेदन करके जाने को हुई। घूमकर पहला ही पग उठा पायी थी कि देवरात ने झपटकर उसका कंधा पकड लिया, 'रुको देवि थोडा और रुको!'

मंजुला ने घूमकर देवरात की ओर देखा। उनका चेहरा लाल था। आँखें न जाने कैसी-कैसी हो गयी था। बोले, देवि, बामी को ताजा करने के लिए उस दिन का साधुवाद ग्रहण करो!'

मजुला इसका ठीक-ठीक अथ नही समझ सकी। उसे उस दिन का राजसभा का परिहास तो याद था, पर इस अवसर पर उसका क्या तुक था ? हाथ जोडकर बोली, "समझ नहीं सकी, आय !" देवरात के चेहरे पर सहज दीप्ति आ गयी। हँसकर बोले, 'सब प्रसाद समझकर ही नही लिये जाते। पर प्रसाद प्रसाद ही है।" मजुला देवरात के मुख पर एकटक दृष्टि लगाये ताकती रही। मन ही मन उसने कहा—यह सहज प्रसन्न मुख-मण्डल अक्षोभ्य नही है ! साहस बटोरकर उसने कहा "यदि अनुचित न समझें तो दासी किसी दिन अपने घर पर चरणो की धूलि पाने की मनोकामना रखती है।" देवरात पुलकित होकर बोले, "अवसर आने पर तुम्हारी यह मनोकामना भी पूर्ण होगी।" गणिका को जैसे राज्य मिल गया हो। अत्यन्त कृतज्ञता-भरी दृष्टि से देवरात की ओर देखते हुए वह सन्तुष्ट चित्त से घर लौट आयी।

पूरे हलद्वीप मे यह बात आधी की तरह फैल गयी। बुद्धिमानो ने सिर हिलाकर कहा "इसमे कुछ रहस्य है। यह गणिका मायाविनी है। वह देवरात को फँसाना चाहती है।" कुछ दूसरे लोग यह कहते सुने गये कि यह राजा का षडयन्त्र है। वह देवरात की लोकप्रियता से चिन्तित है और उसे बदनाम करना चाहता है। तरुण नागरिको म कुछ और ही तरह की कानाफूमी चलने लगी। उनके मन मे गणिका के प्रेमासक्त होने की ही सम्भावना अधिक थी। जितने मुख, उतनी बातें सुनायी देने लगी। बातें धीरे-धीरे वृद्धगोप तक भी पहुची। उन्होने देवरात को सावधान करने की बात भी सोची। परन्तु स्वय देवरात के चित्त मे कोई विकार नही देखा गया। उनका सदा प्रसन्न चेहरा जैसा-का तैसा बना रहा। कोई पूछता तो कहते "मजुला देवी ने निमन्त्रण दिया है, अवसर आने पर उस निमन्त्रण का सम्मान तो करना ही होगा। अवसर आ भी सकता है, नही भी आ सकता है।" और हँस देते। उस हँसी म एक प्रकार का विषाद भाव भी मिला होता था। ऐसा जान पडता था कि उनकी हार्दिक कामना यही थी कि अवसर न आये। लेकिन नगर के विदग्ध रसिको ने उनकी हँसी की भी नाना प्रकार से व्याख्या की। नित्य नयी कहानिया गढी जाती और फैलायी जाती। यहाँ तक भी सुना गया कि नगरश्री मजुला स्वय अभिसार-यात्रा की तैयारी कर रही है। परन्तु देवरात यथानियम अपने काम मे लगे रहते। उन्होने इन बातो की ओर ध्यान देने की आवश्यकता नही समझी।

इस बीच देवरात राजा से कई बार मिल भी आये। यह भी सुना गया कि राजा ने उनकी बात मान ली है और गणिका को क्षमा प्रदान कर दी है। अटकलो के बवण्डर उडते रहे। इतना अवश्य देखा गया कि गणिका ने राजकोप के शमन के बाद धूमधाम से क्षिप्तेश्वर महादेव की पूजा करवायी और सहस्रो नागरिको को अपना नृत्य दिखाकर मुग्ध भी किया। नगर के लोग इस परिणति से सन्तुष्ट हो गये और कानाफूमी धीरे-धीरे दब गयी। लोग धीरे-धीरे इस घटना को भूल गये।

कुछ दिनो बाद देवरात को सचमुच ही गणिका का आतिथ्य स्वीकार करना

पडा। एकाएक नगर मे भयकर महामारी का प्रकोप हुआ। शीतला देवी को प्रसन्न करने के अनेक उपचार किये गये, परन्तु उनका कोप घटने के स्थान पर बढता ही चला गया। नगर मे हाहाकार मच गया। जिधर देखो, उधर ही कराहने की ध्वनि सुनायी देने लगी। लोगो मे भगदड मच गयी। राज परिवार ने भी नगर से दूर बन हुए प्रासाद मे आश्रय लिया। वृद्धगोप के दोनो बच्चो को उनके घर भेजकर देवरात सेवा कार्य म जुट गये। कोई किसी को पूछनेवाला नही था। किसी किसी मुहल्ले मे प्रत्येक व्यक्ति महामारी का शिकार बना था और कोई-कोई मुहल्ला एकदम जनशून्य हो गया था। अपने सगे सम्बन्धी भी दूर भागने लगे। लेकिन देवरात प्रत्यूष से लेकर आधी रात तक घूम घूमकर लोगो की शुश्रूषा करते, दवा पहुँचाते पथ्य की व्यवस्था करते। एक दिन उन्हे समाचार मिला कि मजुला भी रोगग्रस्त हो गयी है और उसके दास-दासी घर छोडकर भाग गये है। कोई पानी देनेवाला भी नही रह गया है। देवरात ने मजुला के आतिथ्य ग्रहण का अवसर आज देखा। वे मजुला के विशाल प्रासाद की ओर बढे। चारो ओर भयकर सुनसान था। घर का द्वार खुला हुआ था, परन्तु कही कोई दिखायी नही पडा। मजुला के घोडे बैल और अन्य पशु या तो छोड दिये गय थे या फिर किसी और की सम्पत्ति बन चुके थ। पूरा प्रासाद साय साय कर रहा था। घर मे एक बत्ती तक नही जल रही थी। देवरात को लगा कि कदाचित मजुला भी कही अन्यत्र चली गयी है। क्षण भर के लिए वे ठिठके। मन मे आया, कदाचित उन्ह गलत खबर मिली है। व सोचने लगे कि लौट जाना ही उचित है। उसी समय ऊपरी तल्ले से अत्यन्त क्षीण कण्ठ के कराहने की ध्वनि उनके कानो म पडी। उस शब्द का अनुसरण करते हुए वे सीढियो पर चढ गय और गणिका के शयन कक्ष म उपस्थित हुए। अन्धकार म उन्ह कुछ भी दिखायी नही दिया। फिर उन्होने निश्चित सूचना पाने के उद्देश्य से आवाज दी "कोई है?" उत्तर मे अत्यन्त क्षीण कातर ध्वनि सुनायी पडी—"पानी!" देवरात की आँखें भर आयी। निस्सन्देह यह मजुला का ही कण्ठ था। हाय समृद्धि की रानी, रूप की लक्ष्मी शोभा की स्रोतस्विनी अनुरागकी तरगिणी मजुला की आज यह दशा है! उनका गला भर आया। भरायी हुई वाणी म बोले, "मैं देवरात हूँ, देवि! तुम्हारा निमन्त्रण स्वीकार करके आ गया हूँ। चिन्ता न करो अभी सब ठीक हुआ जाता है। अँधेरे म उन्ह कही भी कोई बरतन नही दिखायी दिया। न मजुला का वह मुख ही दिखायी दिया जिसे पानी से तर करना था। आँगन म नक्षत्रो के हल्के प्रकाश म एक मिट्टी का घडा दिखायी दिया। सयोग म उसम थोडा पानी भी मिल गया। उन्होने अपना उत्तरीय पानी मे भिगोया। घर म आकर पुकारा, 'किधर हो, देवि! देवरात आया है।' क्षीण कण्ठ म फिर कराहने की ध्वनि हुई। देवरात धीरे धीरे पैर रखते हुए जिधर से आवाज आयी थी उधर गये। हाथ म स्पर्श करके उन्होने मजुला के मुख का पता लगाया और फिर उसके अधरो के पास एक हाथ रखकर दूसरे हाथ म उत्तरीय के पानी की कुछ बूँदें गिरा दी। लगा जान पडा,

मानो मंजुला की चेतना कुछ अधिक सजग हुई। कदाचित उसकी आँखें भी खुलीं। क्षीण कण्ठ से पूछा, "कौन है ?" उत्तर मिला, 'देवरात हूँ देवि !' मंजुला को जैसे विश्वास ही न हुआ हो, बोली, "कौन, आर्य देवरात ?"

"हाँ देवि, आज मैंने तुम्हारा निमन्त्रण स्वीकार किया। साहस न छोड़ो। सब ठीक हुआ जाता है।" अँधेरे में कुछ दिखायी तो नहीं दिया, परन्तु देवरात को समझने में देर न लगी कि उसकी आँखों से अजस्र अश्रुधारा बह रही है। वह सुबक-सुबककर रो रही है। बड़े आयास से उसने कहा, "पापिनी से दूर रहो देव ! यदि इस अधमा के ऊपर दया है तो अपना हाथ हटा लो और उस बच्ची को देखो।" इतना कहकर मंजुला एकदम मौन हो गयी, मानो यही अन्तिम बात कहने के लिए अब तक उसके प्राण बचे थे। देवरात ने आश्चर्य और कौतूहल के साथ पूछा, "कौन-सी बच्ची, देवि ? कहाँ है वह ?" क्षीण कण्ठ से उत्तर मिला—'मृणालमंजरी !' जरा रुककर उसने आयासपूर्वक कहा, "इस नरक-कुण्ड से उसे ले जाओ।" और फिर सब कुछ शान्त हो गया। देवरात जानना चाहते थे कि मृणालमंजरी कौन है ? कहाँ है ? पर देर तक प्रतीक्षा करने के बाद भी कुछ उत्तर नहीं मिला। उन्होंने मंजुला का ललाट स्पर्श किया, बर्फ की तरह ठण्डा मालूम पड़ा। अँधेरे में उन्हें कुछ नहीं दिखायी दिया, परन्तु मंजुला के वाक्य उनके कर्ण-पटल पर बार-बार आघात करते रहे, 'उस बच्ची को देखो !' कहाँ है वह बच्ची ? यहीं कहीं होगी। इसी घर में। जीवित भी है या नहीं, कौन जाने ! अन्धकार बड़ा भयावना लग रहा था। ऐसा जान पड़ता था कि यमराज का काला भैंसा आक्रमण के लिए तत्पर अवस्था में खड़ा है। कब रौंद देगा, कुछ ठिकाना नहीं। दीपक की कोई व्यवस्था करनी होगी। परन्तु दीपक कहाँ है ? दूर तक कहीं आग या धुएँ का चिह्न नहीं दिखायी दे रहा था। उन्होंने टो टोकर सारे घर को समझने का प्रयत्न किया। बड़ी भयंकर अवस्था थी। कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था कि सचमुच यहाँ कोई बच्ची है भी या नहीं। कई बार वे टकराकर गिरते गिरते बचे। अन्त में मंजुला की शय्या के पास ही एक और शय्या का सन्धान मिला उन्हें। आशा हुई कि इस पर ही कोई छोटी बच्ची सो रही होगी। हौले-हौले उन्होंने पूरी शय्या की परीक्षा की। शय्या सूनी थी। निराश होकर उन्होंने मन ही मन निश्चय किया कि चाहे जितनी दूर भी जाना पड़े, वे आग लाकर कुछ प्रकाश की व्यवस्था करेंगे। जब वे घर के द्वार की ओर बढ़ने लगे तो एकाएक फिर टकराये। यह कोई पालना था। उन्होंने पालने के भीतर टोककर देखा। सचमुच ही एक छोटी-सी बच्ची बेहोश पड़ी थी। उसका ललाट जल रहा था। जान पड़ता था उसे तीव्र ज्वर है। धीरे धीरे बच्ची को उन्होंने उठाया और द्वार से निकालकर खुले आसमान के नीचे ले आये। उन्हें लगा कि बालिका के वस्त्रों में एक प्रतोलिका (छोटी सी पटी) जैसी कोई चीज बँधी हुई है। वह क्या है यह समझने का समय नहीं था। प्रतोलिका समेत उस नन्ही बालिका को बाहर लाकर ताराओं के क्षीण प्रकाश में देखा। दो तीन वर्ष की इस फूल-सी बालिका

को देखकर उनका हृदय दुःख से कराह उठा। हाय विधाता, इस भोली दुधमुँही बालिका की क्या दशा है! वह वैसी थी—परिम्लान कमल-कलिका के समान मुरझायी हुई।

ऊपर आकाश और नीचे धरती। दूर तक जनशून्य राजमार्ग अजगर की तरह लेटा हुआ दिखायी दे रहा है परन्तु आग कहाँ मिले? प्रदीप कहाँ से जले? बच्ची को गोदी में लिये हुए देवरात तेजी से आगे बढ़ने लगे। बड़े-बड़े प्रासाद इस प्रकार निस्तब्ध खड़े थे मानो महामारी से ग्रस्त होकर मूच्छित हो गये हों। वे चलते ही गये पर आग का दर्शन कहीं नहीं हुआ। अन्त में उन्होंने यही निश्चय किया कि अपने आश्रम में ही बच्ची को सुलाकर, प्रदीप लेकर फिर इधर आयेंगे। लम्बा रास्ता तय करके वे आश्रम में पहुँचे। वहाँ उन्होंने देखा कि वृद्धगोप और उनकी पत्नी देर से उनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। वृद्धगोप ने अनुयोग के स्वर में कहा, 'प्रभो! इतनी देर तक महामारी ग्रस्त पुरी में न रहा करें।" देवरात ने थके हुए स्वर में कहा, "भद्र बड़ा दुःख देखकर आया हूँ और साथ में एक रुग्ण शिशु को भी लेकर। यह देखो!' दीपक के प्रकाश में तीनों ने उस सुकुमार बालिका का मुँह देखा। ऐसा लगा, मानो पूनम के चाँद को राहु ने ग्रस लिया हो। "हे भगवान! इस नन्ही बालिका की रक्षा करो।'

वृद्धगोप की पत्नी का मातृ स्नेह उमड़ आया। उन्होंने बच्ची को गोद में लेकर उसका सिर सहलाया, फिर वृद्धगोप से बोली "तनिक पानी तो ले आओ।" थोड़ा सा पानी देने के बाद बच्ची की आँखें खुल गयी, परन्तु दृष्टि में एक विचित्र प्रकार की अवसन्नता थी। देवरात ने बच्ची की नाड़ी की परीक्षा की और आश्वस्त होकर बोले 'भगवान का अनुग्रह होगा तो यह बच जायेगी।"

वृद्धगोप दम्पती पर बच्ची की शुश्रूषा का भार देकर, आग और प्रदीप लेकर वे फिर मंजुला के घर लौट आये। प्रदीप जलाकर जो देखा तो मंजुला का कहीं पता नहीं। कहाँ चली गयी? उन्हें लगा कि वह तड़पती हुई बाहर निकली होगी और फिर सदा के लिए सो गयी। दूर दूर तक खोजा, पर मंजुला नहीं मिली। सौ-सौ निर्जीव शवों के भीतर उसे खोजना असम्भव ही लगा।

देवरात का हृदय टूट गया। नगर की शोभा, अनुराग की दीपशिखा कला की प्रतिमा छन्दों की रानी, तालों की नर्म सगिनी शृंगार की रंगस्थली सम्मोहन की सूत्रधारिणी मंजुला चली गयी। बासी को ताजा बनाने की कुशल कलावती सदा के लिए सो गयी। कोई पानी देने भी नहीं आया। हा विधाता! देवरात ने दीर्घ निःश्वास लिया। वहाँ कोई दिखायी भी नहीं दिया।

उन्हें सारा संसार कुलाल चक्र की भाँति घूमता हुआ दिखायी दिया। मंजुला कहाँ चली गयी? क्या वह अपने देवता को पहचान सकी थी? क्या वह महाभाव का अर्थ समझ सकी थी? हाय देवि देवता ने तुम्हें पहचान लिया तुम्हारे देवता को पहचानने का दम्भ करनेवाला पीछे छूट गया।

देवरात अभिभूत की भाँति देर तक खोजते रहे। दिन बीत गया, भगवान्

भास्कर का जरठ रथचक्र पश्चिमी पयोनिधि मे डूब गया। सन्ध्याकालीन शीतल वायु ने उनका ध्यान भग किया। उनके अग अग शिथिल हो गये थ। उठने को हुए तो लगा, वासी घाव उभर आया है। अनायास गुनगुना उठे

दुल्लह जण अणुराउ गरु लज्ज परव्वसु प्राणु।
सहि मणु विसम सिणेह बसु मरणु सरणु णहु आणु ॥

तीन

देवरात ने दूसरे दिन वृद्धगोप दम्पती को अनेक साधुवाद देकर विदा किया। वृद्धगोप की पत्नी वालिका को अपने साथ ले जाना चाहती थी, पर ऐसा नही हो सका। देवरात शोकावेग मे भूल ही गये थे कि बालिका के वस्त्रो मे एक छोटी-सी पेटी भी बँधी थी। प्रातःकाल वृद्धगोप ने उन्हे वह पेटी दिखायी। वह काठ की बनी हुई चौकोर सी छोटी पेटी थी जो लाल चीनाशुक मे लपेटकर रखी हुई थी। उसमे एक छोटा सा भूर्जपत्र भी उलझा हुआ था। उस पर कुछ लिखा हुआ था। देवरात ने उत्सुकतापूर्वक उसे पढा। लिखा था, "कन्या-धन। जिस किसी को यह प्रतोलिका मिले, उसे क्षिप्तेश्वर महादेव की शपथ है। इस प्रतोलिका और इस कन्या को आर्य देवरात के पास पहुचा दे। इसमे इस कन्या के विवाह के समय दिये जाने योग्य उसकी माता का आशीर्वाद है। क्षिप्तेश्वर महादेव की शपथ कुलदेवताओ की शपथ, पितरो की शपथ।" देवरात ने पढा तो उनकी आँखो से अश्रुधारा बहने लगी। उन्होने करुणा विगलित स्वर मे वृद्धगोप पत्नी को सम्बोधन करते हुए कहा, "क्षमा करें आर्ये, यह बालिका देवरात के पास ही रहेगी। उसकी माता की अन्तिम इच्छा यही है। मेरे ऊपर दया करें। मैं इस शपथ की उपेक्षा नही कर सकता।' फिर वृद्धगोप से बोले, भद्र यदि अनुचित न मानें तो इस पटिका को आप ही कही सुरक्षित रख दें। इस बालिका के विवाह के अवसर पर ही इसे खोला जायेगा। इसमे मुमूर्षु माता का आशीर्वाद है। इस न्यास को रखने योग्य सुरक्षित स्थान मेरे आश्रम मे नही है। यथा अवसर इसे मुझे लौटा दें।' इतना कहकर देवरात मर्माहत से स्तब्ध रह गये। वृद्धगोप ने उनकी बात मान ली। भरा हुआ हृदय और आहत मन लेकर वृद्धगोप-दम्पती अपने घर चले गये।

कुछ दिनो बाद नगर की अवस्था ठीक हो गयी। महामारी के समाप्त होने के बाद लोग अपने घरो मे लौट आये और फिर हलद्वीप जमे-का-जमा हो गया।

परन्तु इस महामारी ने देवरात के ऊपर एक नन्ही सी बालिका को पालने-पोसने का भार दे दिया। नियति का कुछ ऐसा ही विधान था कि जिस संसार को छोड़कर देवरात वैरागी बने थे वह उनके ऊपर पूरी शक्ति के साथ आ जमा। देवरात वैरागी से गृहस्थ हो गये। उनकी सारी शक्ति मृणालमंजरी की देखभाल में लगने लगी। स्वच्छन्द जीवन परवशता में परिवर्तित हो गया। स्नेह का बन्धन भी कैसी विचित्र वस्तु है! वह बाँधता है, परन्तु अपने ऊपर पूरी आसक्ति पैदा करके। देवरात के लिए इस अनायास लब्ध पितृत्व का बन्धन जितना कठोर हुआ, उतना ही मोहक भी। बालिका भी कैसी थी, शोभा और कान्ति की मूर्ति! जब हँसती थी तो ऐसा जान पड़ता था कि निखिल चराचर में जीवन का समुद्र लहरा उठा है। बहुत दिनों तक देवरात सब कुछ भूलकर उस बालिका की सेवा में ही दिन बिताते रहे। श्यामरूप और आर्यक को भी इस बालिका के रूप में एक निधि सी मिल गयी। विशेष रूप से आर्यक और मृणालमंजरी दिन रात खेलने में लगे रहते। श्यामरूप कुछ बड़ा था और अपने बड़प्पन का पूरा अधिकार भी मानता था। वह दोनों पर शासन करता था, दोनों के झगड़े का फैसला करता था और आवश्यकता पड़ने पर दण्ड देने की भी व्यवस्था करता था। बालिका कुछ बड़ी हुई तो उसने भी पढ़ने में साथ दिया। इन तीन शिष्यों को पढ़ाकर देवरात मानो धन्य होते। श्यामरूप और आर्यक जब अखाड़े में लड़ने जाते तो मृणालमंजरी एकटक उन्हें देखती रहती। कभी कभी अपने पिता से आग्रह करती कि उसे भी व्यायामशाला में जाने की अनुमति दी जाये। परन्तु देवरात हँसकर रह जाते, कहते, 'बेटा यह लड़ना और व्यायाम करना पुरुषों का काम है। तुझे मैं इसके बदले में चित्र विद्या सिखाऊँगा और नृत्य कला की शिक्षा दूँगा।" धीरे धीरे मृणालमंजरी को अनुभव होने लगा कि वह श्यामरूप आर्यक से कुछ भिन्न है। उसके आचरण और आदर्श पुरुषों के आचरण और आदर्श से भिन्न हैं। देवरात ने उसे नारी-सुलभ कलाओं का ज्ञान करवाया, स्त्री धर्म की शिक्षा दी, व्रत और उपवास में कुशल बनाया, वीणा और वंशी बजाना सिखाया और अन्य सुकुमार कलाओं से परिचय करवाया। लोगों को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि देवरात सुकुमार नृत्य में भी कुशल हैं और इस विषय में भी वह कुछ सिखा सकते हैं।

श्यामरूप जब अठारह वर्ष का हुआ तो देवरात ने वृद्धगोप को बुलाकर कहा कि श्यामरूप धार्मिक ब्राह्मण की अपेक्षा मल्ल ही अधिक बनता जा रहा है। उन्होंने पहली बार बताया कि वे स्वयं क्षत्रिय-कुल में उत्पन्न होने के कारण वैदिक कर्मकाण्ड से अपरिचित हैं। श्यामरूप को वैदिक कर्मकाण्ड की शिक्षा के लिए क्षिप्तेश्वर की पाठशाला में भेज दिया जाय। वृद्धगोप ने उनकी सलाह मान ली और उसे क्षिप्तेश्वर महादेव के मन्दिर से सम्बद्ध वैदिक पाठशाला में भेज दिया। यह पाठशाला राजकीय सहायता से चलती थी। वहाँ वैदिक कर्मकाण्ड के निष्णात विद्वान अध्यापन-कार्य करते थे। हलद्वीप में उस पाठशाला की बड़ी ख्याति थी। जनता में वह नगरकाशी नाम से प्रसिद्ध थी। लोग कहा करते थे कि जो बातें

काशी मे सीखी जाती है वे सब इस पाठशाला मे सीखी जा सकती है। परन्तु श्यामरूप का मन इस पाठशाला म नही लगा। उसे वदिक कमकाण्ड की अपेक्षा मल्ल विद्या से अधिक प्रेम था। वह बार-बार भागकर देवरात के आश्रम म आ जाता था, और वद्धगोप उसे हर बार पकडकर क्षिप्रेश्वर की पाठशाला म द आते। एक दिन सुना गया कि श्यामरूप न जाने कहा लापता हो गया है। वद्धगोप बहुत दिना तक रोते रह। ज्योतिषियो और तान्त्रिको के पास उसका पता जानने के लिए दौड-धूप करते रह, परन्तु श्यामरूप का पता नही चला। आयक की अवस्था उस समय कोई चौदह साल की रही होगी। बडे भाई को खोजने के लिए उसका चित्त व्याकुल हो उठा। एक दिन उसने मणालमजरी स कहा कि मैं अपने बडे भाई को खोजने जाऊँगा। मणालमजरी व्याकुल हो गयी। उसने कहा, नही तुम जाओगे तो मैं किसके साथ खेलूगी ? परन्तु आयक दृढ रहा और गुपचुप भागने की तैयारी करने लगा। मृणालमजरी ने उसे समझाने की बहुत कोशिश की लेकिन उस पर कोई प्रभाव नही पडा। अन्त म उसने अपना ब्रह्मास्त्र चलाया, बोली, "मैं अपने पिताजी स कह दूगी कि तुम भागना चाहते हो।' आयक घबराया। मिन्नत करता हुआ बोला, "नही मैना गुरुजी से यह बात न कह। मै अपने बडे भाई के बिना जी नही सकता। तेरी सब मानूगा केवल इतनी सी बात मुझे अपने मन की करने द !" मैना अर्थात मणालमजरी पसीज गयी, बोली, "लौटकर आओगे न ?" 'अवश्य आऊँगा मैना, मैं भाई का पता लगाकर यहा फिर लौट आऊँगा।' मैना ने वादा किया कि वह अपने पिता से उसके भागने की बात नही कहेगी और एक दिन आयक भी चुपचाप खिसक गया। मृणाल उदास हो गयी।

कुछ दिन बाद मृणालमजरी को उसके पिता ने बताया कि आयक का पता चल गया है और वद्धगोप उसे घर ले आये है। वे अब बहुत सावधान हो गये हैं। आयक पर कडी निगाह रखते है। आयक को वे अब आश्रम मे नही आने देंगे। मृणालमजरी (मैना) ने सुना तो उसकी उदासी और बढ गयी। वह बार-बार पिता से आग्रह करती कि आयक को बुला लें पर देवरात चुप हो जाते। मणाल मजरी कुछ समझ नही सकी। उसके मन म बेचैनी रहने लगी। सोचती, पिताजी आयक को क्या नही बुलाते ? उसके न रहने से मेरा मन कैसे लगेगा ? वह क्या अब अकेली ही रहेगी ? परन्तु देवरात उसे कुछ भी नही बताते। जब वह पूछती तो कह देते कि आयक अपने पिता की आज्ञा के बिना यहा नही आ सकेगा। उसे और और बाता म भुलाने का भी प्रयत्न करते। मृणालमजरी उदास रहने लगी। फिर भी मन ही मन वह आशा लगाये रही कि आयक फिर लौट आयगा। परन्तु ऐसा हुआ नही। उस समय तक मणालमजरी के बालक मन मे आयक खेल के साथी के रूप म ही विद्यमान था। परन्तु जैसे जैसे दिन बीतते गये और आयक के लौटने की आशा समाप्त होती गयी वैसे वैसे उसका चित्त अधिकाधिक सूना होता गया। शुरू-शुरू म तो वह अपने पिता से बराबर पूछती रही कि आर्यक कहाँ है ? और

क्या कर रहा है ? परन्तु समय के लम्बे व्यवधान के बाद एक ऐसी अवस्था भी आयी जब पिता से पूछने में उसे संकोच अनुभव होने लगा। मृणालमंजरी को पहली बार अनुभव हुआ कि आयक के बारे में पूछना ठीक नहीं। क्या ऐसा हुआ, यह प्रश्न उसके मन में उठा ही नहीं। ऐसा लगता था जैसे कोई हृदय के अज्ञात गह्वर में बैठा कह रहा है कि सयानी लड़कियों का किसी लड़के के बारे में इतना पूछना उचित नहीं है। कालिदास ने जिसे 'अशिक्षित पटुत्व' कहा है, यह बहुत कुछ उसी प्रकार का भाव था। देवरात ने मृणालमंजरी को बहुत से काव्य नाटकों का अभ्यास कराया था और उनमें ऐसे प्रसंग भी आते थे जिनमें युवावस्था में एक विशेष प्रकार के चित्तगत विस्फार या फैलाव की चर्चा हुआ करती थी। परन्तु मृणाल मंजरी ने कभी प्रत्यक्ष अनुभव नहीं किया था कि चित्त का फैलाव होता क्या है। उसे पहली बार चित्तगत संकोच का अनुभव हुआ। यह भी क्या युवावस्था का लक्षण था ? मृणालमंजरी के मन में यह प्रश्न भी नहीं उठा। जो हुआ वह सिर्फ यही था कि उसके मन ने पहली बार अनुभव किया कि आयक उसके लिए बचपन के साथी से कुछ भिन्न प्रकार का साथी भी हो सकता है। बचपन के साथी के बारे में किसी से पूछने में संकोच नहीं होता। लेकिन उसकी समझ में यह बात भी नहीं आ रही थी कि बचपन के साथी के अतिरिक्त आयक और है क्या ? उदास तो वह पहले भी रहती थी लेकिन नये सिरे से जो उदासी शुरू हुई वह निश्चित रूप से अन्य श्रेणी की थी। पहली उदासी किसी के सामने छिपाने की चीज नहीं थी, जबकि यह नयी उदासी अपने आपको छिपाने की बुद्धि के साथ आयी। मृणाल मंजरी स्वयं ही अपने को समझ नहीं पा रही थी। जितना ही वह आयक के बारे में उत्सुकता प्रकट न करने और उसके लिए चित्त में उत्पन्न व्याकुलता को छिपाने का प्रयास करने लगी उतना ही उसका अंग प्रत्यंग मानो चिल्लाकर कहने लगा कि वह उदास है वह व्याकुल है। उसका हृदय उस कली के समान तड़पने लगा जो रंग रूप गंध के रूप में फूट पड़ने को विवश है लेकिन इस विवशता को छिपाने का भरपूर प्रयत्न करती है।

देवरात के आश्रम में केवल दो ही व्यक्ति रहते थे—एक स्वयं वे और दूसरी उनकी पुत्री। दिन भर तरह तरह के लोग आते रहते थे और अपनी कठिनाइयों का उपचार उनसे पूछते रहते थे। मृणालमंजरी भी यथाशक्ति अपने पिता की सहायता करती रहती थी और समय बड़ी व्यस्तता में कट जाता था। उसके मन में किसी प्रकार का व्यक्तिगत प्रश्न उठता ही नहीं था। ऐसा लगता था कि उसका अपना कोई व्यक्तित्व नहीं है। अपने परोपकारी पिता का वह अंश मात्र है—ऐसा अंग, जिसकी कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं होती, जिसकी नाड़ी में पूर्ण की ही धड़कन प्रतिध्वनित होती है। परंतु इन सारी व्यस्तताओं की ठोस नीरंध्र दीवार को भेदकर न जाने कब उसके शरीर में युवावस्था बिना बुलाये ही आ पहुँची। जिस प्रकार तूलिका के सम्पर्क से चित्र उन्मीलित हो उठता है और उसका उच्चावच भाव उभर आता है और जिस प्रकार सूर्य की किरणों के सम्पर्क से कमल की कली

रूप, वर्ण, प्रभा और गंध से उद्भिन्न हो उठती है, उसी प्रकार नवीन तारुण्य के सम्पर्क से अनायास ही उसका शरीर चतुरस्र उदभिन्न हो उठा और शरीर का यह उदभेद अन्तस्तल तक भेद गया। जिस प्रकार उसके शरीर में उच्चावच भाव का उन्मीलन हुआ, उसी प्रकार उसके चित्त में भी संकोच और विस्फार तत्त्वों का उद्भेद हुआ। कहना तो यह चाहिए कि उसके शरीर का उन्मीलन तूलिका द्वारा स्पष्ट चित्र की भांति और मन का उद्भेद सूर्य किरणों द्वारा उन्मीलित कमल-पुष्प की भांति हुआ।

इस बीच हलद्वीप में कई नयी घटनाएँ घटीं। राजा का स्वर्गवास हुआ। सारे नगर में शोक छा गया। फिर युवराज का राज्याभिषेक हुआ। नगर में उत्सवों का तांता बँध गया। देवरात पुराने राजा के शोक कृत्यों में शामिल होते रहे, पर नये राजा के अभिषेक समारोह में शामिल नहीं हो सके। नगर की कष्ट पीड़ित वहुएँ बराबर आश्रम में आया करतीं और नित्य होनेवाले समारोहों का समाचार मृणालमंजरी को भी देती रहतीं। इन्हीं दिनों किसी मुखरा पौर वधू ने मृणालमंजरी को बताया कि नगर के लोग कहा करते हैं कि मंजुला के नृत्यगान जिन्होंने देखे हैं वे अब इन नृत्य गानों का क्या आदर करेंगे। मंजुला के साथ ही साथ नगर की शोभा और श्री चली गयी। उसने ही प्रथम बार मृणाल को बताया कि वह मंजुला की ही बेटी है। उसने गाल पर हाथ रखकर बड़ी महानुभूति का भाव दिखाते हुए कहा कि उसकी माता जीवित होती तो आज क्या वह यों ही म्लान मलीन होती। उसने और भी बहुत सी बातें कहीं, पर मृणाल सबका अर्थ नहीं समझ सकी। उसे सुनकर कैसा-कैसा लगा। उसने पिता से इस बारे में कुछ पूछना चाहा, पर इस विषय में भी उसे संकोच का अनुभव हुआ। वह पौर वधू फिर नहीं आयी, पर उसने मृणाल के मन में एक विचित्र प्रकार का अवसाद उत्पन्न कर दिया। मृणाल अन्य स्त्रियों से नगर के नृत्य गान समारोहों का समाचार पाती रही और यह भी समझने लगी कि गणिकाओं के सम्बन्ध में जनता की धारणा बहुत हीन कोटि की है। उसके मन में रह रहकर अपने जन्म के विषय में खेद और जुगुप्सा के भाव उठते रहे। पर वह पिता से अपनी मनःस्थिति छिपाये रही। कभी-कभी जब वह उद्विग्न होती तो आर्यक उसके मन में आ जाता। वह कातर-भाव से उसकी मानस मूर्ति से अनुरोध करती कि वह उस भयंकर मनोवेदना से बचा ले।

देवरात अब चिन्तित दिखायी देने लगे। बेटी सयानी हो गयी, उसे सुयोग्य पात्र के हाथ सौंपकर ही वे निश्चिन्त हो सकते थे। पर सुयोग्य पात्र कहाँ मिले? उनकी दृष्टि आर्यक पर आकर रुक जाती थी। वही इस कन्या के योग्य वर है। पर वृद्धगोप क्या यह सम्बन्ध स्वीकार करेंगे? स्वयं आर्यक क्या इस सम्बन्ध से प्रसन्न होगा? उन्होंने मन ही मन इस सम्बन्ध की कल्पना कर ली। कन्या का मन क्या चाहता है यह जानना भी जरूरी था। चतुर देवरात ने ध्यान देकर मृणाल-मंजरी के मन को परखना चाहा। आर्यक का किसी प्रसंग में नाम आ जाने पर वह कुछ उपेक्षा भाव दिखाती है, पर प्रसंग बदल देने पर चाहती है कि किसी प्रकार

फिर छिड़ जाये। उसमें आर्यक के प्रति अभिलाप-भाव है, यह बात उनसे छिपी नहीं रही। एक दिन उन्होंने आर्यक के मन का भाव जानने की इच्छा से वृद्धगोप के घर जाने का निश्चय किया। मृणाल को भी साथ चलने को कहा, पर उसने केवल सिर हिलाकर ना कह दिया। उस समय उसकी आँखें झुक गयी थीं। देवरात यदि अधिक आग्रह करते तो वह कदाचित् चलने को तैयार भी हो जाती, पर देवरात ने वैसा कुछ भी नहीं किया। वे अकेले ही च्यवनभूमि की ओर बढ़ गये। चलते समय उन्होंने मुड़कर देखा मृणालमंजरी उत्सुक नयनों से उनका रास्ता देख रही है। जब तक वे आँखों से ओझल नहीं हो गये वह उसी प्रकार एकटक देखती रही। देवरात मन ही मन पुलकित हुए।

च्यवनभूमि के गोपाटक गाँव में वृद्धगोप का घर था। हलद्वीप से वह बहुत दूर नहीं था। देवरात जब उस गाँव में पहुँचे तो पहले-पहल आर्यक ही उन्हें मिल गया। वह कहीं बाहर से आ रहा था। देवरात ने इसे शुभ शकुन माना। आर्यक को देखकर उनकी आँखें जुड़ा गयीं। तीन वर्ष के भीतर आर्यक अब सिंह किशोर की भाँति पराक्रमी दीख रहा था। उसकी चौड़ी छाती, विशाल बाहु और कसा हुआ शरीर बरबस आँखों को आकृष्ट करते थे। उसकी गति में अन्तर्मदावस्थ गजराज की भाँति मस्ती थी और आँखों में तरुण शार्दूल के समान अकुतोभय भाव लहरा रहे थे। उसके अंग अंग में प्रच्छन्न तेज की दीप्ति दमक रही थी। उसने बड़ी भक्ति के साथ देवरात के चरणों को स्पर्श किया और हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। देवरात को एक अद्भुत वात्सल्य भाव का अनुभव हुआ। ऐसा जान पड़ता था जैसे पूर्ण चन्द्रमा को देखकर चन्द्रकान्त मणि पसीज उठी हो। उसके स्पर्श से उन्हें एक विचित्र प्रकार की शीतलता का अनुभव हुआ, मानो चित्तभूमि में किसलयवती चन्दनलता ही उग आयी हो, प्रवाहवती कर्पूर धारा ही उमड़ उठी हो और चन्द्रमा की स्निग्ध सुधा ही उपप्लित हो गयी हो। वृद्धगोप ने बहुत दिनों के बाद देवरात का दर्शन करके अपने आपको कृतार्थ अनुभव किया। बोले, "आर्य, आपके आशीर्वाद से आपका यह शिष्य सब प्रकार से आपके शिक्षण और उपदेश के उपयुक्त सिद्ध हुआ है। वृद्धावस्था में मेरे मन में एक ही कचोट रह गयी है कि मेरा श्यामरूप जाने कहाँ चला गया है। आज वह भी होता तो मैं निश्चिन्त होकर संसार-त्याग कर सकता। परन्तु मेरे भाग्य में यह सुख नहीं बदा है। आर्यक के मन में भी मेरी तरह श्यामरूप के बिछोह का दुःख है। परन्तु परमात्मा की इच्छा कुछ और ही प्रकार की है। मेरा मन कहता है कि मेरा श्यामरूप अवश्य लौटकर आयेगा परन्तु कदाचित् मैं उसे नहीं देख सकूँगा।' वृद्ध की आँखों में आँसू भर आये। देवरात को भी कष्ट हुआ। उन्होंने वृद्धगोप को आश्वस्त करते हुए कहा, 'चिन्ता न करो तात, श्यामरूप अवश्य आयेगा। मेरी बात अन्यथा नहीं हो सकती। भगवान पर विश्वास रखो। वे सब मंगल ही करेंगे।" देवरात देर तक आर्यक के साथ बातचीत करते रहे और वृद्धगोप को भी आश्वस्त करते रहे। जब वृद्धगोप थोड़ी देर के लिए किसी काम से अन्यत्र चले गये तो अवसर पाकर आर्यक

ने धीरे से पूछा, "मणालमजरी कैसी है गुरुदेव ?" देवरात ने इस बात पर विशेष रूप से ध्यान दिया कि आयक ने पिता के सामने यह प्रश्न नही पूछा। उन्होने यह भी लक्ष्य किया कि प्रश्न करते समय आयक की आखें नीचे झुक गयी थी। उन्होने प्यार से कहा, "बहुत अच्छी है, बेटा! तुम तो कभी आय ही नही। वह तो तुम्ह हमेशा याद करती रहती है।" आयक के गम्भीर मुखमण्डल पर उद्विग्नता की हल्की लकीरें उभर आयी। उसकी आखें और भी झुक गयी। अस्फुट स्वर म बोला, "आऊँगा।" परन्तु देवरात के पारखी चित्त को इसका अर्थ समझने म विशेष अडचन नही हुई। उसका भाव था कि आयक के जाने मे कही न कही कुछ बाधा है। उस दिन देवरात प्रसन्न मन वहा से लौटे। उन्ह लगा कि मृणालमजरी के योग्य वर खोजने मे उन्ह विशेष कठिनाई नही होगी।

मणालमजरी ने पिता से आयक के बारे मे पूछा अवश्य, परन्तु उसकी भाषा थोडी जडिमाग्रस्त थी। वह पूछना कम और सुनना ज्यादा चाहती थी। देवरात ने उल्लासपूर्वक आयक के रूप, गुण, विनय और शील की बार-बार प्रशसा की। मणालमजरी चुपचाप सुनती रही। परन्तु उसे अनुभव हो रहा था कि सुनने स उसकी तृप्ति नही हो रही है। यह प्रसग कुछ और चलता रह, उसम कोई और नयी शाखा प्रशाखा निकल आये यह उसकी हार्दिक मनोकामना जान पडती थी। देवरात भी देर तक आयक का ही बखान करते रह।

परन्तु देवरात ने आयक और मृणालमजरी के विवाह को जितना आसान समझा था, उतना वह सिद्ध नही हुआ। दूसरी बार वे फिर गोपाटक गये और वृद्ध-गोप मे स्पष्ट रूप से इस विवाह का प्रस्ताव किया तो वे एकदम चौक पडे। बोले "ऐसा कसे हो सकता है आय? मणालमजरी बहुत अच्छी लडकी है। मैं उसे बहुत प्यार करता हूँ। परन्तु है तो वह गणिका-पुत्री ही! मैं अगर मान भी लू तो मेरे परिवार के लोग कसे मानेंग?" देवरात इस उत्तर स बहुत निराश हुए। उन्ह इस बात म कोई सन्देह नही रहा कि वृद्धगोप का कहना ठीक है। लोकाचार वृद्धगोप के पक्ष मे है। परन्तु उनका हृदय कहता था कि विधाता न यह जोडी समझ बूझकर बनायी है। लोकाचार इसम बाधक भी हो तो भी यह करणीय ह। परन्तु वृद्धगोप को सन्तुष्ट करन योग्य कोई तक या युक्ति उनके पास नही थी। व उदास हो गय। उनको विषादयुक्त देखकर वृद्धगोप के मन म उनके प्रति सहानुभूति जगी, परन्तु फिर भी लोकाचार मे उनका चित्त ऐसा बँधा हुआ था कि व देवरात को आश्वस्त करन योग्य कोई बात नही कह सके। उदास होकर भीगी वाणी से देवरात ने उपसहार किया। बोले, 'थोडा और सोचकर देखिए!" वृद्ध-गोप का मन सिकुड गया। क्या सोचना है इसम!

देवरात लौटकर आये तो मृणालमजरी उनके निकट देर तक मँडराती रही। वह कुछ सुनना चाहती थी। देवरात इधर उधर की बातें करत रह पर एक बार भी उन्होने आयक का नाम नही लिया। मृणाल को लगा कि पिता कुछ उदास और उद्विग्न है। क्या कष्ट है उन्ह! बालिका के अबोध चित्त म नवीन चेतना

अंकुरित हुई। उसी के कारण तो पिताजी चिंतित नहीं हैं ? किस उद्देश्य से वे आयक के गाँव गये थे, क्या परिणाम हुआ ? उसके मन में अज्ञात आशंका का उदय हुआ। परन्तु पिता एकदम मौन। वह मन मसोसकर रह गयी।

देवरात के आश्रम में एक छोटी सी कुटिया थी, जिसमें एकमात्र देवरात ही जा सकते थे। वे उसे उपासना-गृह कहा करते थे। स्नान करने के बाद वे एक बार उसमें अवश्य जाया करते थे। मृणाल भी उस उपासना गृह में नहीं जा सकती थी। उस दिन देर तक वे उपासना गृह में बैठे रहे। निकले तो उनकी आँखें गीली थीं। मृणाल का हृदय फटने को आया। पिताजी क्या इतने उदास हैं ?

देवरात ने बेटी के मुरझाये मुख को देखा तो बड़े व्यथित हुए। उन्हें लगा कि सयानी लड़की के सामने उदासी का भाव दिखाकर उन्होंने गलती की है। उन्होंने हँसने का प्रयत्न किया। मृणाल को एक ओर ले जाकर उन्होंने प्यार से उसके माथे पर हाथ फेरा। बोले 'तू उदास क्यों हो गयी है बेटी।"

मृणाल का हृदय उमड़ गया। उसकी आँखों से आँसू बहने लगे। बोली कुछ नहीं। देवरात समझ गये कि लड़की ने उनके हृदय के विषाद का अनुमान कर लिया है। ये आँसू अभिमान के हैं। पिता अपना दुःख पुत्री को क्यों नहीं बताते ? उन्होंने प्यार से उसे गोदी में खींच लिया। रोती है पगली, तेरे कष्ट का कारण क्या है। वे देर तक दुलार करते रहे। मृणाल का अनुमान और भी पुष्ट हुआ। वही पिता की चिन्ता का कारण है। देवरात के मौन ने उसे और भी उद्विग्न किया।

चार

हलद्वीप के राजा यन्तसेन भारशिव नागवंश के थे। कान्तिपुर के राजाधिराज वीरसेन के सेनापति प्रवरसेन को जब काशी में नवम अश्वमेध-यज्ञ के आयोजन का भार दिया गया, तो अपने पिछले अनुभवों के आधार पर उन्होंने निश्चय किया कि साकेत से पाटलिपुत्र तक कुषाण नरपतियों का जो भी प्रभाव अवशिष्ट रह गया है उसे समाप्त कर दिया जाये। उनके पुत्र विजयसेन को अश्व रक्षा का भार दिया गया। उसी समय से हलद्वीप में भारशिवों का आधिपत्य हुआ। ये लोग साधारण जनता में भर्गशिव या भर कहे जाते थे। यन्तसेन विजयसेन के पुत्र थे और कान्तिपुरी की ओर से हलद्वीप का शासन करते थे। यन्तसेन ने समझ लिया था कि आभीरों की सहायता के बिना वे इस प्रदेश में अधिक दिन तक नहीं टिक सकेंगे। यद्यपि वे स्वयं शिव के उपासक थे और आभीरगण वासुदेव कृष्ण के उपासक थे, फिर भी

उन्होने किसी प्रकार सकीर्णता नही दिखायी। भृगु आश्रम का विशाल विष्णु-मन्दिर उन्होने ही बनवाया था। उस मन्दिर मे चतुर्व्यूह विष्णुमूर्ति की प्रतिष्ठा उन्होने धूमधाम से करायी थी। भरो और आभीरो की मैत्री सुदृढ करने के लिए वे सदा प्रयत्नशील रहते थे। पर उनके पुत्र रुद्रसेन ने इस मैत्री मे दरार पैदा कर दी। वह लम्पट और दुर्वृत्त राजा सिद्ध हुआ। उसके औद्धत्य से हलद्वीप की प्रजा त्रस्त हो उठी। बहू बेटियो का शील भी दुर्वृत्त राजा की जुगुप्सित लालसा की बलिवेदी पर घसीटा जाने लगा। देवरात ने नये राजा को नीति मार्ग पर ले आने के अनेक प्रयत्न किये, पर राजा उससे और भी क्रुद्ध हो उठा। उसे देवरात की हर सलाह मे स्पर्द्धा ही दिखी। प्रजा मे असन्तोष बढता गया। भर सैनिको का औद्धत्य भी बढता गया। बात बात मे निरीह प्रजा को कष्ट पहुँचाया जाता खलिहान जला दिये जाते, घर गिरा दिये जाते, खडी फसलें काट ली जाती। नये-नये करो से प्रजा त्राहि त्राहि कर उठी। देवरात के पास सताये हुए निरपराध लोगो की भीड बढने लगी। पहले तो उन्होने राजा को समझाने बुझाने का प्रयत्न किया पर उन्हे इसमे सफलता नही मिली।

मृणाल अब सयानी हो गयी थी। नागरिको की पीडा को वह समझने लगी थी। पिता की विवशता से वह दुखी होती पर वह समझ नही पा रही थी कि किस प्रकार वह पिता का भार हल्का कर सकती है। नगर की प्रौढ स्त्रिया उसे इस प्रकार की रोमाचकर कहानिया सुना जाती कि वह व्याकुल हो उठती। उसके मन मे बार बार प्रश्न उठता कि स्त्रिया क्या सचमुच अबला है। क्या वे इस प्रकार के अत्याचारो का सामना नही कर सकती? कैसे कर सकती है? प्रौढा महिलाएँ उसे यही सिखाती कि वह घर से बाहर न निकले। मृणाल इस प्रकार की सलाह से और भी व्याकुल हो उठती। क्या विधाता ने स्त्रिया को केवल भार रूप मे बनाया है? वे पर रक्षा तो क्या आत्म रक्षा मे भी समर्थ न रहे यही क्या विधाता की इच्छा थी? वह केवल सोचती रहती उसे कुछ रास्ता नही दिखायी देता। पिता की व्याकुलता को कम करने मे वह अपने को असमर्थ पाती। उसे अब अपनी विवशता असह्य लगने लगी। हाय वह अपने देवता-तुल्य पिता की चिन्ता को क्या कुछ भी हल्का नही कर सकती! अत्याचार की कहानिया सुन सुनकर वह विकल हो उठी थी।

राजा को अन्तिम बार समझाने बुझाने के उद्देश्य से उस दिन जब देवरात चलने लगे, तो मृणाल ने उदास दृष्टि से उनकी ओर देखा। उस दृष्टि मे एक विचित्र प्रकार के विवशताबोध का भाव था, मानो वह रही हो मैं क्या किसी काम नही आ सकती?' देवरात को वह भाव बडा करुण जान पडा। पास आकर उन्होने अपनी बेटी के सिर पर हाथ फेरा। प्यार से कहा, 'एक और प्रयत्न कर लेता हूँ। जानता हूँ, यह दुष्ट नाग समझाने-बुझाने से वश मे नही आयगा। पर एक और प्रयत्न कर लेने मे कोई हानि नही है। अन्त मे तो कालिय-दमन ही रास्ता रह जायगा।"

मणाल को लगा कि पिता उसके मनोभाव बिल्कुल नही समझ रहे हैं। उसके हृदय म जो द्वन्द्व चल रहा है, उसका आभास भी उन्होंने नही पाया है। व्यथित स्वर म उसने कहा पिताजी, मैं क्या इस समय आपके किसी काम नहीं आ सकती ? दिन दहाडे प्रजा की सम्पत्ति लूटी जा रही ह, बहू बेटियों का शील नष्ट किया जा रहा है। आपकी यह अभागिन कन्या क्या इस समय कुछ भी नहीं कर सकती ? आपका मुरझाया मुख मुझसे नही देखा जाता। मुझे भी कुछ करने की आज्ञा दें।'

दवरात ने चकित होकर कन्या की ओर देखा। उन्होंने कभी भी यह नही सोचा था कि उनकी नन्ही-सी मणाल मे इतना तेज है। वे भरसक यही प्रयत्न करते थ कि उसे इन अनाचारो की बात न सुनायें। वे हतबुद्धि-से होकर सोचन लगे ऐसी लडकिया इन बातो मे क्या सहायता कर सकती ह ? उन्होंने प्यार से मृणाल का सिर सहलाया 'मेरी प्यारी बेटी, इस अनाचार को दूर करने का ही तो उपाय कर रहा हूँ। बेटियो की शील-रक्षा का भार पुरुषो पर है। तुझे मैं कौन सा काम द सकता हूँ ? तू तो जो सम्भव है, सब कर ही रही है। दीन दुखियो की सेवा करना उनके भीतर आत्मबल सचारित करना, यही तो तेरा काम है। तू कर तो रही है। इससे अधिक जो कुछ करना होगा, वह हलद्वीप के नौजवान करेंगे। तुझे मैं वैसा काम कैसे दे सकता हूँ ?"

मृणाल उदास हो गयी। उसे पिता की विवशता से क्षोभ हुआ। स्त्रियों की शील रक्षा का भार पुरुषो पर है ! पिता ने अन्तिम बात कह दी है। पर राजा के गुण्डे क्या पुरुष नही। उनके ऊपर तो शील नष्ट करने का भार आ पडा है। मणाल का मन विद्रोह कर उठा। बोली नही पर उसके नासा पुट बार बार फडकन लगे, भृकुटियाँ म खिचे हुए धनुर्दण्ड के समान तनाव आ गया। पिता न उसके भावो को समझन का प्रयास किया। उन्हें कुछ नया अनुभव हुआ। कुछ सोचकर बोले 'सुना है बेटी कि कान्तिपुरी के निकट विन्ध्याटवी म कोई सिद्ध पुरुष आये हैं। उन्हें देवी न स्वप्न म आदेश दिया है कि मेरे सिंहवाहिनी, महिषमर्दिनी रूप की पूजा का प्रचार करो। जो पुरुष शूर है धर्म के अनुकूल है पापी से डरना नही जानते अन्यायी का रक्त पान करते हैं वे सिंह है। मैं उन्हीं को वाहन बनाकर धर्म-स्थापना करती हूँ परन्तु जो तामसिक हैं अविवेकी हैं धर्म द्वेषी हैं निरीहो को भय दिखाते हैं दूसरो का शस्य क्षेत्र नष्ट करते है मदमस्त होकर चलते हैं वे महिष हैं। मैं उनका सहार करके धर्म की स्थापना करती हूँ। सुना है कि इस स्वप्न के बाद उन्होंने इस मूर्ति की उपासना चलायी है और महिषमर्दिनी की स्तुति के मनोरम काव्य लिखे हैं।'

मृणाल का रोमाच हो आया। महिषमर्दिनी दुर्गा ! उल्लसित होकर बोली, पिताजी मुझे महिषमर्दिनी की उपासिका बनने की अनुमति दें। मैं इन घृणित पापाचारियो को ध्वस्त करने की दीक्षा लेना चाहती हूँ। मुझसे यह सब नही सहा जाता। इन मिनौने पशुओ को अधिक छूट मिली तो य धरती को धर्महीन कर

देंगे !"

देवरात अवाक् होकर बेटी का मुह देखने लगे।

थोडी देर तक वे मन्त्रमुग्ध की भाँति मृणाल के तेजोमण्डित अदनार मुख की ओर देखते रह। फिर बोल, "नही बेटी महिषमर्दिनी की उपासिका नही, तू सिहवाहिनी की उपासिका बन। जो बात मेरी समझ मे नही आ रही है उसे करने की सलाह मैं नही दे सकता। मुझे सिहवाहिनी की उपासना तेरे जैसी लडकियो के लिए उचित जान पडती है। महिषमर्दिनी केवल भावलोक की साधना है। वह कविता मे फबती है, व्यवहार मे नही।"

मृणाल को पहेली जैसा लगा। वह उत्सुकता के साथ पिता की ओर दखती रही, कुछ अधिक स्पष्ट समझने की आशा से, परन्तु पिता विचारो की दुनिया मे खो गये, अपनी बात के सर्वांग सत्य होने के विश्वास से। मणाल ने उनका ध्यान भग किया, "नही समझ म आया पिताजी! जो बात कविता मे फबती है, वह व्यवहार म क्या नही फबेगी ?"

देवरात शान्त वाणी मे बोले, "कविता, भगवती महामाया की इच्छा शक्ति है, व्यवहार-जगत उनकी क्रिया शक्ति का विलास है। इच्छा शक्ति कल्प लोक का निर्माण कर सकती है, क्रिया शक्ति केवल सप्ट पदार्था तक सीमित है। मुझे ऐसा लगता है कि उपपन्न कवि चाहे तो कविता के कल्प लोक मे फूल सी सुकुमार बालिका से वज्र-कठोर महिष का निदलन करवा सकता है, पर व्यवहार-जगत म यह सम्भव नही दिखता।"

मणाल मुरझा गयी। बोली, "तो कविता निरथक हुई पिताजी ?"

देवरात ने हँसते हुए कहा, "नही, अथभार से हीन, सत्त्वाथमात्र! मगर यह कविता पर विचार करने का समय नही है बेटी! मेरी बात को समझने का प्रयत्न कर। मैं जब तक लौटकर आता हूँ तब तक तू इस बात पर विचार कर कि तुझे सिहवाहिनी की उपासिका बनना है। तू सिहो को कत्तव्य पालन की प्रेरणा देगी। दख बेटी भगवती महामाया नारी के रूप मे केवल प्रेरणा शक्ति है पुरुष के रूप मे प्रेरणावाहिनी शक्ति।" देवरात ने कन्या को नयी पहेली मे उलझाकर राज भवन की ओर प्रस्थान किया। मृणालमजरी पिता के वाक्यो का अथ समझन का प्रयत्न करती रही। नारी भगवती महामाया की प्रेरणा शक्ति है पुरुष उनकी प्रेरणा को वहन करनेवाली शक्ति है। उसे सिहवाहिनी की उपासिका बनना है महिषमर्दिनी की उपासना केवल कविता म फबती है। कविता महामाया की इच्छाशक्ति का विलास है अथभार हीन सत्त्वाथमात्र! सब मिलाकर क्या बना ? मृणाल समझने का प्रयत्न कर रही है मगन रही है।

एक बार उसे लगता था कि उसके पिता ठीक ही कह रह है। महिषमर्दिनी दवी केवल भावो की दुनिया म रह सकती है। तथ्यो की दुनिया मे सुकुमार बालिकाओ के लिए महिष मदन सम्भव नही है। सिहवाहिनी देवी ही उपास्य हो सकती हैं। जो सिह के समान पराक्रमी है, अकुतोभय है सत्त्ववान है उनके भीतर जो शक्ति

रानी ? गुरु गया है राजा को मनाने और चेला निकला है लहुरा वीर को जगाने।"

मृणाल ने हँसते हुए प्रणाम किया। सुमेर काका देवरात के घनिष्ठ मित्र थे। आयु में काफी बड़े थे, पर देवरात के साथ उनकी समवयस्कों की सी दोस्ती थी। सच तो यह था कि सुमेर काका नगर के बाल-युवक-वृद्ध सबके समवयस्क थे। जिस मण्डली में बैठते, उसी के हो जाते। अल्पवय में अन्य की रक्षा में वीरता पूर्वक काम करने के कारण उन्हें इन्द्रद्वीप के उत्तर की ओर भूमि मिली थी। पत्नी का बहुत पहले देहान्त हो चुका था। एकमात्र कन्या का विवाह धूमधाम से किया था, पर विदाई के दिन नाव डूब जाने से वह भी चल बसी। तब से सारे नगर के बच्चे उनके अपने हो गये। मृणाल पर तो उनका बहुत अधिक स्नेह था। दुर्भाग्य उन्हें पराजित नहीं कर सका था। जहाँ जाते आनन्द और उल्लास उनके अनुचर की भाँति वहाँ पहुँच जाते। सुमेर काका को नगर के उच्चपदस्थ लोग भी सम्मान देते थे। राज्य के सर्वाधिक गम्भीर न्यायाधीश आचार्य पुरगोभिल भी, जिन्हें 'प्राड्विवाक' कहा जाता था सुमेर काका के प्रशंसक थे। कहा तो यहाँ तक जाता था कि कई पेचीदे मामलों में वे काका की सहज-बुद्धि पर भरोसा रखकर विचार करते थे। काका जब मृणाल के पास आते तो कोई-न-कोई नया समाचार अवश्य दे जाते। उनके लिए प्रत्येक समाचार का एक ही मूल्य था—आनन्द पाना। कोई समाचार उनके लिए चिन्ताजनक नहीं होता। चींटियों की लड़ाई की बात करते तो उतनी ही रसीली बनाकर जितनी बड़े-बड़े राजाओं के युद्ध की। उनके लिए मारपीट भी उतनी ही रस निष्पत्ति का विषय थी, जितना ब्याह बरसी।

सुमेर काका को देखते ही मृणाल का चित्त उल्लास से भर गया। मृणाल का सदा का अनुभव था कि सुमेर काका का पहला वाक्य पहेली होता है। श्रोता को इस पहेली को बूझने के लिए उन्हीं की सहायता लेनी पड़ती थी। सुमेर काका अपना पहला वाक्य बोल चुके थे, 'गुरु गया है राजा को मनाने और चेला निकला है लहुरा वीर को जगाने।' मृणाल ने सदा की भाँति हँसते हुए पूछा, "आज की पहेली भी बुझा दो काका। कहना क्या चाहते हो ?"

सुमेर काका ने प्यार से कहा, 'बिटिया रानी, तेरा काका पहेली ही नहीं बुझाता कभी-कभी ठीक समाचार भी देता है। गुरु है तेरा बाप देवरात और चेला है तेरा सगा गोपाल आर्यक। वह जो गंगा के किनारे किनारे लौण्डों का दल चिल्लाता हुआ जा रहा है न, वह लहुरा वीर की उपासना करनेवाला का दल है। उसका नेता है गोपाल आर्यक। सुना है मथुरा के आभीरों ने नये देवता का सन्धान पाया है और वहाँ से अब यह नया देवता उत्तरापथ के हर घर में पहुँचता दिखायी दे रहा है। यहाँ यह गोपाल आर्यक है जो लहुरा वीर का सबसे बड़ा सेवक बना है। कहता फिरता है कि राजा अत्याचारी हो गया है, उसको ध्वस्त करने का आदेश लहुरा वीर ने दिया है। नगरवासी अपनी कष्ट ।

आयक को ही सुनाते हैं। आयक ने सैकडो युवको की एक छोटी-मोटी सेना ही तैयार कर ली है। आज उसका दल नगर की गली गली म घूमा है और उसने लोगो को अभय का आश्वासन दिया है। राजा न अभी तक तो छेड छाड नही की है लेकिन बादल घुमड रहे है कब बरस पडें, कहा नही जा सकता।"

मणाल ने सुना तो उसे गर्व का भाव अनुभव हुआ और थोडा भय भी लगा। उसके हृदय म जोर जोर की धडकन होने लगी। अपने को सम्हालकर उसने पूछा यह लहुरा वीर कौन है काका ?"

सुमेर काका ठठाकर हँस पडे। बोले सच तो मैं भी नही जानता बिटिया, लेकिन सुना है कि मथुरा के कुषाणो पर विजय पाने के बाद किसी आभीर राजा ने अनुभव किया कि कुषाण लोग जिस प्रकार पचध्यानी बुद्धो की उपासना करते है उसी प्रकार की पचमूर्त्ति आभीरो की भी उपास्य बननी चाहिए, क्योकि मथुरा की जनता मे पाच की सख्या बहुत प्रिय है। भागवत धर्म म चतुर्व्यूह की उपासना प्रचलित है। ये चार देवता है—बलराम, श्रीकृष्ण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध। आभीर राजा ने इस मण्डली मे श्रीकृष्ण के छोटे पुत्र साम्ब को भी जोडकर पाच वृष्णि वीरो की उपासना प्रचलित की है। सुना है कि मथुरा मे उन्होने पाच वृष्णि वीरो का विशाल मन्दिर बनवाया है। यही साम्ब लहुरा वीर है। पुराने चार वीरो के बाद इनका नाम जुडा है कदाचित इसीलिए इन्हे लहुरा वीर कहा गया है। लहुरा वीर की इस नयी उपासना ने आभीरो म नवीन उत्साह और आत्म-बल का सचार किया है। समूचे उत्तरापथ मे अब यह उपासना चल गयी है। लहुरा वीर अत्याचार और अनाचार को ध्वस करने के प्रतीक बन गये है। गोपाल आयक ने हल द्वीप के राजा के विरुद्ध जो अभियान किया है वह भी आभीरो के नये उत्साह और आत्म-बल का सूचक है।" फिर जरा अवहेलना की हँसी हँसकर सुमेर काका ने कहा 'अभी गधा पचीसी मे है न, बेटा ! समझता है कि राजा की सघटित सैन्य शक्ति से लोहा लेना बच्चो का खिलवाड है। भारशिवो की शक्ति का पता सुमेर काका को है। बिचारा गोपाल आयक कुछ जानता ही नही। लेकिन कर अच्छा रहा है। पिट तो अवश्य जायेगा, लेकिन राजा को भी छठी का दूध याद आ जायेगा। यह नरक का कीडा अब कुल ललनाओ का शील नष्ट करने पर तुला हुआ है। इसका पाप ही इसे खा जायेगा। कौन जाने आयक को ही निमित्त बनाकर भगवान इसे दण्ड देना चाहते हो। पर चाहे कुछ भी हो बेटा हलद्वीप मे तो चहल पहल अवश्य होगी मार पीट होगी धर-पकड होगी, और जाने क्या क्या होगा।" मणाल के चेहरे पर व्याकुलता की रेखाएँ उभर आयी थी, पर काका ने उधर ध्यान ही नही दिया। उसी प्रवाह के साथ बोलते रहे, तेरे बाप का दिमाग भी खराब हो गया है। समझता है राजा को समझा बुझाकर मना लेगा। बम भोलानाथ है। आज तक समझ ही नही पाया कि विधाता जिसे मारना चाहता है उसकी बुद्धि पर सम्पत्ति मद का ताला लगा देता है। आज समझ जायेगा।'

सुमेर काका ने उठने की इच्छा प्रकट की। मृणाल ने उन्हे रोका, 'थोडा

रुको काका, तुम तो सब पर एक एक लकडी मारकर चलते बने। मुझे बताते जाओ कि इनमे तुम्हे ठीक माग कौन सा जान पडता है। या छोडो इस बात को। अगर ऐसा ही कुछ आ घट कि तुम्हे किसी एक ओर शामिल होना जरूरी जान पडे, तो किधर जाओगे ?"

काका ठठाकर हँसे, "तेरा काका तो सदा का अबोध है और वह बालकों का ही पक्ष लेता है। तेरा यह काका, गोपाल आर्यक की ओर से पिटते हुए देखा जायेगा। देवरात भी अबोध है, लेकिन उसकी अबोधता मे गति नही है, हलचल नही है, क्षोभ नही है और तेरे सुमेर काका को यही सब पसन्द नही है। आर्यक अबोध है, लेकिन उसमे गति है, प्रचण्ड गति। जब से मैंने लडको की मण्डली का जय-जयकार सुना है, तब से मेरा मन उसी दल मे भर्ती होने के लिए व्याकुल है। उधर ही जा रहा हूँ।"

मृणाल को उल्लास का अनुभव हुआ। बोली, "तुम थोडा रुक नही सकते, काका ? एक बहुत आवश्यक प्रश्न तुमसे करना है।"

सुमेर काका ने पीछे फिरकर देखा। अबकी बार उन्हे लगा कि मृणाल के चेहरे पर कुछ चिन्ता की लकीरें उभरी हुई हैं। पहली बार उन्होने उधर ध्यान नही दिया था। लाठी दीवार के सहारे टिकाकर बैठ गये, "ले, यह बैठ गया। पूछ, क्या पूछना चाहती है।"

मृणाल ने धीरे-धीरे कहा, "लडकिया इस अनाचार के उन्मूलन मे कुछ हाथ नही बँटा सकती, काका ? पिताजी बता रहे थे कि विन्ध्याटवी म कोई सिद्ध पुरुष हैं जो देवी के सिंहवाहिनी और महिषमर्दिनी रूप की उपासना का प्रचार कर रहे है। परन्तु पिताजी कहते है कि लडकिया सिंहवाहिनी की ही उपासना कर सकती है महिषमर्दिनी की नही। उनका कहना है कि लडकियो का महिषमर्दिनी होना सम्भव नही है। केवल कविता मे यह बात फबती है। ऐसा क्यो होगा, काका ? जो बात कविता मे फबेगी, वह व्यवहार मे क्या नही फबेगी ?"

सुमेर काका ठठाकर हँसे, "यही आवश्यक प्रश्न है रे ?" फिर थोडे गम्भीर होकर बोले, 'तेरे पिता देवरात पण्डित है। जो कुछ कहते है तर्क की तराजू पर तौलकर कहते है। पर तेरा काका अटट गँवार है। जवानी मे उसने एक ही काम किया है—सीधे टूट पडना फिर प्राण चाहे रहे, चाहे जायें। बुढापे मे भी उसकी यही आदत बनी हुई है। तू पूछना चाहती है कि भैसा अगर चढ दौडे तो तेरी जैसी लडकी को क्या करना चाहिए ? तेरे बाप का जवाब है कि शेर को बुलाने के लिए दौड पडना चाहिए। तेरे काका का जवाब है, जो कुछ आस-पास मिल जाय, उसी से उस भैसे को दमादम पीट देना चाहिए। नाक पर मार सको तो क्या कहना ! आख फोड सको तो और अच्छा ! सिंह बाद म आयेगा, पहली चोट तुम्हे करनी होगी। अगर डर है कि रगेद देगा, प्राण ले लेगा तो ऐसा सवाल पूछना ही नही चाहिए। सुमेर काका एक ही बात जानता है सज्जन है चरण की धूल लो। दुर्जन है, नाक तोड दो। जो डरता है वह देवी की उपासना के बारे

म पूछना ही छोड द। दवी क्या है र ? तेरे भीतर जो 'अभय' है वही दवी है। पिशाची क्या है जानती ह ? तर भीतर जा 'भय' है वही पिशाची है ।' सुमेर काका न यह देखन का प्रयत्न नहीं किया कि मृणाल पर उनकी बात का क्या असर पड रहा है। देखत तो उन्ह पता चलता कि मृणाल के मुख मण्डल पर अद्भुत दीप्ति दमक उठी है। वे कहते ही गये, 'दयरात पोथी क बल पर मुझे हरा दता है। जब कभी उसके विचारो के विरुद्ध कुछ कहना चाहता हूँ तभी तर्कों का कोडा मार मारकर उस द्वार की ओर धकेल देता है जहाँ से घुटन टक बिना भागना भी कठिन है।"

सुमेर काका हँस-हँसकर दोहरे हो गये।

मृणाल भी हँसने लगी। बोली, "पिताजी तो कहते हैं कि तुम कभी हारते ही नही।"

सुमेर काका थोडा सुस्ताने लगे। जरा सम्हलकर बोले, "हार जाता हूँ, बिटिया बुरी तरह हार जाता हूँ। पर हार मानता नही।'

मृणाल ने कहा, "जरा समझाकर कहो काका, हारत हो मगर हार मानत नही।"

"देख रे तेरा बाप शास्त्र का बडा भारी पण्डित है। काव्य का, सगीत का, चित्र का मूर्ति का सहृदय पारखी है। मगर मैं उसकी कमजोरी जान गया हूँ। वह इन बातो को तैयार माल की तरह दखता है। सुनार जैसे अँगूठी बनाकर ले आता है तो ग्राहक जसे देखता है उसी प्रकार। मगर ज्ञान या रस तैयार माल की तरह नही होते। वे इतिहास से पलते हैं और इतिहास को बनाते है, मगर मेरे मन म जो कुछ है उसे मैं प्रकट नही कर पाता। तैयार माल का दाम आकनेवाली बुद्धि मुझे मार गिराती है। अनपढ हूँ क्या करूँ। मगर जानता हूँ कि ठीक मैं कहता हूँ। सो हार तो जाता हूँ, पर हार मानता नही। उसने तुम्हे कविता और व्यवहार का जो भेद बताया है न वह उसी तैयार माल का दाम आकनेवाली बुद्धि से। समझ गयी बिटिया रानी। ले अब तेरा आवश्यक प्रश्न और भी उलझ गया होगा। कहकर सुमेर काका उठ पडे।

मृणालमजरी को काका की बातें पूरी समझ मे नही आयी, पर उसे आह्लाद का अनुभव हुआ। बोली "सचमुच गोपाल आयक के पास जा रहे हो काका ?'

सुमेर काका फिर हँसे एकदम जा रहा हूँ बिटिया।"

मृणाल ने कहा 'काका, एक बात मेरी ओर से आयक से कह देना। कहना कि वह मृणाल को भी अपने दल म शामिल कर लें।"

सुमेर काका और जोर से हँसने लगे, 'यह नही होगा। न तो तेरा बाप ही इसे मानगा और न उसका चेला। लेकिन तेरा नाम मैंने अपनी वही मे लिख लिया है। तेरा सुमेर काका भी पगला है और तू भी पगली है। पागलो की अलग सेना बनेगी और उसमे दो ही सिपाही होग—सुमर काका और मृणालमजरी बस।"

काका ने पीछे फिरकर दखन की जरूरत नही समझी। हँसत हँसत कहते गये,

"सुमेर काका के भी समानधमा है। अगर ऐसे ही सौ पचास आदमी मिल जायें, तो आनन्द आ जाये।"

पाँच

राज सभा में देवरात का अपमान हुआ। उन्हें बैठने को आसन भी नही दिया गया। राजा ने उनकी ओर देखा भी नही। वे बहुत मर्माहत हुए। देर तक इधर-उधर भटकते रहे। उनके लौटने मे देरी हुई। जब लौटे तो देखा कि मृणाल की आखें सूजी हुई है मुख पीला पड गया है। निस्सन्देह वह बहुत रोयी थी। देवरात ने पुत्री का मुरझाया हुआ मुख देखा, तो उन्हें बडा ही क्लेश हुआ। परन्तु पूछने पर उसने कुछ कहा नहीं, और भी अधिक रोने लगी। देवरात एकदम व्याकुल हो उठे। उन्हें सन्देह हुआ कि मृणालमजरी के साथ किसी ने छेडछाड की है या कोई कुवाच्य कहा है। परन्तु बार बार पूछने पर भी मृणालमजरी ने कुछ बताया नही। केवल सिसक सिसककर रोती रही। देवरात अपने को असहाय और निरुपाय अनुभव करने लगे। उनके मन मे मातहीना कन्या के लिए बडी दारुण वेदना हुई। उन्होंने प्यार से मृणालमजरी को गोद मे लेकर उसका दुख जानने का प्रयत्न किया। परन्तु वे जितना ही पूछते थे, उतना ही वह अधिक रोने लगती थी। देवरात ने पूछना बन्द कर दिया। केवल गोदी मे उसको दुलराते सहलाते रहे। पिता का स्नेह स्पर्श पाकर मृणालमजरी उनकी गोदी मे सो गयी। देवरात उदास-चिन्तित भाव से उसे गोदी म लिये ही बैठे रहे। उनकी समझ मे नही आया कि उनकी प्यारी बिटिया को हो क्या गया है। कुछ देर बाद उन्होंने मृणालमजरी को खाट पर सुला दिया और उसके सिरहाने बैठकर स्नेह-वत्सल भाव से उसका सिर सहलाते रहे। कितनी देर वे इस प्रकार बैठे रहे इसका पता उन्हें भी नही चला। मन मे विचारो का एक तूफान चलता रहा। मृणालमजरी की माता मजुला उनके चित्त पट पर न जाने कितनी बार आयी और न जाने क्या-क्या कह गयी। वे चिन्ता-कातर मुद्रा मे मृणालमजरी के सिरहाने बैठे रह गये। मृणालमजरी भी जो सोयी तो ऐसा लगा कि सज्ञाशून्य ही हो गयी है।

वह रात यो ही बीत गयी। मृणालमजरी वात्सल्य रस से भीगी-सी निद्रित पडी रही और देवरात उसके सिरहाने बैठे ही रह गये। पूर्व दिशा मे उषा की लालिमा दिखायी पडी। तरु-कोटरो से पक्षियो का कलरव सुनायी देने लगा। सूर्य की लाल-लाल किरणो रूपी शलाकाओ से झाडे गये आकाश के नक्षत्रगण स्म

प्रकार लुप्त हो गये मानो किसी ने लाल रंग की झाड़ू से सारा आसमान साफ़ कर दिया हो। पुत्री को उसी प्रकार निद्रित छोड़कर देवरात उठे और प्रातःकालीन कृत्य के लिए तैयार होने लगे। स्नानादि से निवृत्त होकर जब वे आश्रम के द्वार पर आये, तो देखा कि उनका अत्यन्त विश्वसनीय सेवक सुदिन वहीं से चला आ रहा है। सुदिन कभी बहुत बीमार पड़ा था और देवरात की परिचर्या से स्वस्थ हुआ था। वह पास ही के गाँव में रहता था और समय-समय पर उनकी सेवा के लिए आ जाया करता था। मृणालमंजरी को वह अपनी बेटी के समान ही प्यार करता था। जब कभी उसे पता चलता कि देवरात बाहर गये हुए हैं और मृणालमंजरी अकेली है तभी सब काम-काज छोड़कर वह मृणालमंजरी के पास आ जाता। देवरात नहीं चाहते थे कि सुदिन घर का काम-काज छोड़कर उनकी सेवा के लिए आया करे। परन्तु सुदिन सदा यही सोचता रहता था कि वह किसी प्रकार उनके काम आ सके। उस दिन देवरात जब बाहर गये तो संयोग से सुदिन को पता चल गया था और वह मृणालमंजरी के पास पहुँच गया था। मृणालमंजरी रो रही थी। सुदिन ने भी देवरात की तरह उसके दुःख का कारण जानने का प्रयत्न किया था, परन्तु उसने उसे कुछ नहीं बताया था। उसके बहुत आग्रह करने पर मृणालमंजरी ने उसे भूर्जपत्र का एक टुकड़ा दिया था जिस पर कोई श्लोक लिखा हुआ था। मृणालमंजरी ने उस पत्र की पीठ पर स्वयं कुछ लिख दिया था और सुदिन से अनुनय करके कहा था कि इस पत्र को आर्यक तक पहुँचा दे। उसने यह भी कह दिया था कि वह पत्र आर्यक के सिवा और किसी के हाथ में न दे। सुदिन ने मृणालमंजरी को उस अवस्था में छोड़कर जाने से इनकार किया था और कहा था कि जब आर्य देवरात आ जायेंगे, तभी वह आर्यक के पास पत्र लेकर जायेगा। परन्तु मृणालमंजरी ने आग्रह किया था कि पिताजी शीघ्र ही आ जायेंगे, तुम आर्यक के पास चले जाओ। सो, सुदिन वह पत्र लेकर आर्यक के गाँव गया था और वहीं से लौट रहा था। देवरात ने सुदिन से पूछा कि वह पत्र क्या उसने आर्यक को दे दिया है? सुदिन ने सहज भाव से कहा, 'मैं क्या करता आर्य, बिटिया ने शपथ दे दी थी।"

देवरात को कुछ आश्चर्य हुआ। उन्होंने पूछा, "सुदिन तू क्या पहली बार ऐसा पत्र लेकर आर्यक के पास गया था?'

'हाँ आर्य, पहली बार गया था।"

'पत्र पढ़ने के बाद आर्यक ने क्या कहा?'

सुदिन बोला, "पत्र पढ़कर उसका मुख क्रोध से लाल हो गया। उसने कहा, सुदिन! तू जल्दी मृणालमंजरी के पास लौट जा और उससे जाकर कह कि आर्यक के रहते उसे चिंतित और कातर होने की कोई आवश्यकता नहीं है। आर्यक मृणालमंजरी की रक्षा भी करेगा और उसके अपमान का बदला भी लेगा।' वह तमतमाया हुआ उठा और घर के भीतर से अपना विशाल कुन्त लेकर बाहर निकल आया। मैं तो कुछ समझ ही नहीं सका। मैं पूछने ही जा रहा था कि इस चिट्ठी में

कैया लिखा है कि उसने डाँटकर कहा, 'तू अभी तक यहीं खड़ा है ! जल्दी जा और मृणालमंजरी से कह दे कि आर्यक शीघ्र ही आ रहा है।' और पता नहीं किधर चला गया। वह इतना क्रुद्ध था कि उसे अपने शरीर और वस्त्र की भी चिन्ता नहीं थी। वह पत्र भी उसके हाथ से गिरकर वहीं पड़ा रह गया था। मैंने उसे उठाकर फिर अपने पास रख लिया, क्योंकि बिटिया ने कहा था कि वह और किसी के हाथ न लगने पाय। मुझे बड़ा डर लग रहा था कि पता नहीं, आर्यक कहाँ क्या कर बैठे ! पहर रात गये मैं यहाँ आ गया था, आकर देखा कि आप ध्यानमग्न बैठे थे। उस समय कुछ बोलना उचित न समझकर मैं यहाँ बाहर ही पड़ रहा।"

देवरात ने व्याकुल भाव से पूछा, "वह पत्र तेरे पास है सुदिन ?"

सुदिन ने कहा, "है तो आर्य, पर वह तो केवल आर्यक के लिए है !"

देवरात बोले, "आर्यक को तो तूने दिखा ही दिया। अब एक बार मुझे देख लेने दे।"

सुदिन धर्म संकट में पड़ गया। बोला, "पता नहीं उसमें क्या लिखा है, आर्य ! मगर बिटिया ने मुझे बार-बार कहा था कि वह सिर्फ आर्यक को दिखाना होगा।"

देवरात ने सुदिन को स्नेह के साथ समझाया, "देख सुदिन, मेरी बिटिया बहुत व्याकुल है। तू भी तो उसे अपने प्राणों से अधिक प्यार करता है। मुझे लगता है कि उसके दुःख का ठीक-ठीक कारण यदि हम नहीं जान सकेंगे तो वह जीवित नहीं रह सकेगी। इसलिए तू वह पत्र मुझे दिखा अवश्य दे। मृणालमंजरी क्या मुझसे छिपाकर कोई बात कर सकती है ! तू चिन्ता न कर, मुझे वह पत्र दिखा दे।"

सुदिन ने मृणालमंजरी के प्राण-संकट की बात सुनी, तो एकदम डर गया। उसने पत्र देवरात के हाथों में देते हुए कहा, "ठीक कहते हैं आर्य, बिटिया के दुःख का कारण जरूर समझना चाहिए। उधर आर्यक भी तो न जाने क्रोध में किधर चला गया है।"

देवरात ने भूर्जपत्र लेकर उसे उलट-पुलटकर देखा। उस समय काफी प्रकाश निकल आया था। उन्हें पढ़ने में कोई कठिनाई नहीं हुई। पत्र के एक ओर लिखा हुआ था

मृणालमंजरी के योग्य—
वाप्यां स्नाति विचक्षणो द्विजवरः मूर्खोऽपि वर्णाधमः
फुल्लां नाम्यति वायसोऽपि हि लतां या नम्यते बर्हिणा।
ब्रह्मक्षत्रविशस्तरन्ति च यया नावा तथैवेतरे
त्वं वापीव लतेव नौरिव जनं वेश्यासि सर्वं भज ॥
[द्विज पण्डित मूरख शूद्र गँवार नहाते हैं, वापी में भेद कहाँ,
वन फूली लता तन देती सभी को मयूर हो, काक हो, खेद कहाँ !
निज गोद में लेती बिठा तरनी सभी जाति कुलीन कुजारज जो,
तुम वापी-लता-तरनी-सम सेविका हो सबकी, सबको ही भजो ॥]

और उसकी पीठ पर मृणालमजरी न अपन काँपत हुए हाथो से लिखा था—'मिट पराक्रम आयचरित आयक को मृणालमजरी की अभ्यर्थना स्वीकृत हो। आज पिताजी न सिहवाहिनी देवी की उपासना का मुझे आदेश दिया और स्वय बाबा महिषमर्दिनी रूप की उपासना का परामश दे गये। परीक्षा का समय तुरत ही आ गया। पागल मस स भी घिनौना चन्दनक मुझे अकेली देखकर यह पत्र फेंककर कुवाच्य बोलने लगा। मैंन उस ललकारा और पास म पडे डण्डे स उस चोट पहुँचायी। भाग न गया होता तो यमलोक म होता। भागा, लेकिन धमकाकर गया है। अब मैं पिताजी के आदश का पालन कर रही हूँ। तुम चाहो, तो मेरी रक्षा कर सकते हो। नही आओगे तो भी मैंन अपना कत्तव्य समझ लिया है। इति—मृणालमजरी। फिर अपरच मे याद लिखा था—'पिताजी स यह बात कस कह सकती हू। तुम यदि मेरी रक्षा करना चाहो तो कर सकते हो।'

देवरात ने चन्दनक के लिखे हुए गन्द श्लोक को देखकर क्रोध म दाँत पीस लिय। उनके मुह से सिफ इतना ही निकला, 'इस अधम का इतना साहस!' उन्हें मृणालमजरी के दुख का कारण अब समझ मे आ गया। परन्तु एकाएक उन्हें ध्यान मे आया कि आयक चन्दनक से बदला लेन के लिए कही कोई अनथ न कर बठे। वह हलद्वीप के राजकुमार का नमसखा है और आयक के लिए सकट की स्थिति उत्पन्न कर सकता है। उन्होन कहा, सुदिन, तू तब तक यही रह, जब तक मैं आयक को देखकर लौटता हूँ। और तेजी से चन्दनक के घर की ओर बढ गय। इधर आयक अपना विशाल कुत लिये आश्रम म प्रविष्ट हुआ।

सुदिन द्वार पर ही मिल गया। बोला, 'आओ भैया, आय देवरात तो यह सुनकर बडे ही उद्विग्न हुए कि तुम अकेले चन्दनक के घर की ओर चले गय हो।'

आयक ने कहा, 'चन्दनक के ग्रह आज प्रसन्न थे। वह घर छोडकर कही भाग गया है। तुम दौडकर गुरुदेव को बुला लाओ। उनमे कह देना कि कही कुछ नही हुआ है। वे निश्चिन्त लौट आयें। कुछ अनथ हो जरूर सकता था, लेकिन हुआ नही। फिर उसने पूछा, मृणाल कहा है?'

सुदिन न कहा, 'रोत रोते सो गयी है।

आयक फिर से उसे गुरुदेव को लौटा लाने का आदश देता हुआ आग बढ गया। सुदिन और आयक की बातचीत सुनकर मृणालमजरी की नीद खुल गयी। वह धडफडाकर उठी। सामने देखा तो आयक विशाल कुत लेकर खडा है। उसने आयक को देखा और चित्रलिखित सी खडी रह गयी। उसके मुह स कोइ बात ही नही निकली। लेकिन आँखो से आसू की धारा बह चली। आयक ने आग बढकर कहा, मैं आ गया मैना! मेरे रहते तेरी छाया भी कोई नही छू सकेगा।'

मैना स्थिर निश्चेष्ट!

आयक ने देखा, मृणालमजरी इन तीन वर्षों म काफी बढ गयी है। उसके अग अग से लावण्य की छटा छलक रही थी। आयक को देखकर उसके मुरझाये हुए मुख पर आनन्द की आभा दमक आयी थी। उसकी दुग्ध मुग्ध मुखश्री म इस

प्रकार का उफान आया था जैसे अचानक दुग्ध भाण्ड को अप्रत्याशित ताप मिल गया हो। परन्तु उसकी आखो से आसू झरते रहे। ये आसू अभिमान के थे। उनमे उलाहना था, अभियोग था, अभिमान था। एक क्षण के लिए आयक मुग्ध की भाति ठिठक गया और मृणालमजरी की निश्चेष्ट मुद्रा और झरते हुए आसुओ का अर्थ समझकर मन ही मन उल्लसित होता रहा। फिर वह मृणालमजरी के पास पहुँच गया। उसने प्यार से उसकी ठुड्डी पकडकर ऊपर उठायी और भीगे हुए स्वर म बोला, "नाराज हो गयी है, मैना ! मेरे ऊपर विश्वास कर—अब मैं तुझे अकेली नही छोड गा।"

मैना और भी व्याकुल होकर रो पडी। एकाएक पता नही, आयक को कौन सा आवेश आया, उसने मैना को कसकर अपनी भुजाओ मे जकड लिया। बचपन मे दोना काफी निकट मे एक दूसरे को पहचान सके थे। सैकडो बार लडाई झगडे से लेकर पुनर्मैत्री तक का अभिनय कर चुके थे। परन्तु आज दोना को कुछ नयी अनुभूतिया हुई। ऐसा जान पडा, अन्तस्तल का सारा सत्त्व उमड आया ह। आयक को रोमाच हो आया और मृणालमजरी पसीने से तर हो गयी। कुछ देर तक दोनो सज्ञाशून्य की तरह एक दूसरे को कसकर जकडे रहे। वह एक विचित्र समाधि थी जिसम दोना का पृथक् व्यक्तित्व एकदम विलुप्त हो गया था। फिर एकाएक मैना की ही सज्ञा लौटी। उसने झटककर अपने को आयक के आलिंगन से अलग कर लिया और झिडकते हुए बोली, "छोडो, क्या कर रह हो !" यह भी एक नयी अनुभूति थी। दोनो मे से किसी ने पहले अनुभव नही किया था कि ऐसा करन मे कुछ अनौचित्य भी होता है। विधाता ही जानते है कि किस प्रकार 'छोडा' के माध्यम से अखण्ड मिलन की अभिव्यक्ति होती है।

आयक चुपचाप अलग हट गया। थोडी देर के लिए उसकी वाक शक्ति रुद्ध हो गयी। थोडा सम्हलकर उसने फिर कहा, 'क्षमा कर दो मैना, मैंने अनुचित किया। मुझे इतने दिना तक तुझे अकेली नही रहने देना चाहिए था। बुरा मान गयी, मैना ?"

मैना की आखें झुकी थीं, कपोलपालि अब भी आसुओ से भीगी हुई थी, नासिका का अग्रभाग अब भी फडक रहा था, नि श्वास अब भी बडी तेजी से भीतर से बाहर और बाहर से भीतर दौड रह थे। उसने धीरे-से कहा, "हाँ, अब मुझे मत छोडना !"

आयक को हँसी आ गयी। बोला, "अभी तो तूने कहा, मैना, छोड दो ! अब कहती हो, मत छोडना।'

मना को भी चुहल सूझ गयी। उसने कहा, 'व्याकरण भी भूल गये। 'छोड दो' वर्तमान काल है और मत छोडना' भविष्यकाल।"

आयक ने देखा, मृणालमजरी मे स्वाभाविक विदग्धता लौट आयी है। बोला, 'कहाँ का व्याकरण और कहाँ का काव्य ! कुश्ती लडता हूँ और दण्ड-बैठक किया करता हूँ। तेरे साथ रहूँगा तो शायद फिर मे काव्य व्याकरण लौट आयें।"

आर्यक सिर झुकाये चुपचाप खड़ा रहा। उसके मुँह से कोई बात ही नहीं निकली। एक बात पर वह पूर्ण रूप से दृढ़ था—चाहे जो हो जाय, वह मैना को अकेली नहीं छोड़ेगा। वह वचन दे चुका है। अब पीछे नहीं हट सकता।

आर्यक जब चुपचाप भाला लेकर घर से निकल पड़ा था, तब वृद्धगोप को कुछ भी पता नहीं था कि वह कहाँ गया है। लेकिन शीघ्र ही गाँव के लड़कों से उन्हें पता चल गया कि आर्यक कुछ लोगों के साथ भाला लेकर हलद्वीप की ओर गया है। उनके मन में कुछ आशंका हुई। ताछ पूछ करने पर उन्हें यह भी पता चल गया कि कुदिन आर्यक उनका कुछ गहना दे गया है। आर्यक के लौटने में जब विलम्ब हुआ तो वे भी देवरात के आश्रम की ओर उसे ढूँढ़ने के लिए चल पड़े और आर्यक को उसी अवस्था में उन्होंने देखा। देवरात ने वृद्धगोप को देखकर प्रसन्नता प्रकट की और आर्यक को वहीं छोड़कर उन्हें अन्यत्र ले गये। देर तक दोनों में बातचीत होती रही। सारी स्थिति समझकर वृद्धगोप को अपने पुत्र के हठ के सामने झुकना पड़ा। वे जानते थे कि उनके कुल-परिवार के लोग इस विवाह का समर्थन नहीं करेंगे, परन्तु वृद्धावस्था में वे अपने पुत्र से भी हाथ धोना नहीं चाहते थे। अन्त में यही तय पाया कि आर्यक और मृणालमंजरी का विवाह तुरन्त कर दिया जाय और पुत्र और पुत्रवधू को लेकर ही वृद्धगोप घर लौटें। हुआ भी ऐसा ही।

छह

मृणालमंजरी के विवाह के एक दिन पूर्व वृद्धगोप ने उसकी माता की धरोहर देवरात को सौंप दी। लाल चीनांशुक में लिपटी हुई वह प्रतोलिका (पटी) इतने दिनों तक ज्यों की त्यों रखी थी। वह लगभग एक बित्ता लम्बी, चार अंगुल चौड़ी और इतनी ही गहरी थी। वृद्धगोप ने उसे न तो खोलकर देखा ही था, न उसे कभी झाड़-पोंछकर साफ ही किया था। इतने दिनों तक पड़े रहने के कारण उसके ऊपर धूल की परत-सी जम गयी थी। देवरात ने उसे लिया और अपने उपासना गृह में ले जाकर सावधानी से खोला। चीनांशुक के भीतर दुर्लभ कर्पूर काष्ठ की एक चौकोर पेटी थी। ऊपर के पाट पर मनोहर कल्पवल्ली अंकित थी। कदाचित मंजुला ने स्वयं अपने हाथ से उसे आँका था। उसमें मनःशिला, हिंगुल, हरिताल और गोरोचन से बने रंगों का प्रयोग किया गया था। दक्षिणावर्त शंख के आधार पर गतिशील मृणालमंजरी में अधस्फुट कमल का अभिप्राय देकर [illegible] हुआ था और फिर कमलिनी पत्रों की ऊर्ध्वगामिनी धारा सी चित्रित की गयी

शरीर उदभि न केसर कदम्ब पुष्प की भाति कण्टकित हो उठा। यह तो मजुला की मनोहर आँखो मे काजल लगानेवाली शलाका है! सारा पत्र काजल को ही स्याही बनाकर लिखा गया था। देवरात का हृदय बुरी तरह धडकने लगा। उनके मुह से अनायास निकल पडा—'विच्छित्तिशेषै सुरसुन्दरीणाम'—सुर सुन्दरियो के प्रसाधन के बाद बचे हुए सिंगारदान के रग से! तो मजुला ने अपने सिंगारदान की सबसे महार्घ और सबसे मोहन प्रसाधन सामग्री से यह पत्र लिखा है। क्षण भर मे मजुला की बडी-बडी काली आँखें उन्हे याद आ गयी भरी सभा मे उस दिन इसी काजल से रजित आखो की विब्बोक चटुल मुद्रा मे उसने लीलापूर्वक देखा था। देवरात ने उसका अर्थ समझा था, 'बुरा तो नही मान गये? बुरा नही माना करते।' हाय, अब वह कटाक्ष नही है, उसका सहायक काजल आज सामने है। देवरात क्षण भर के लिए पुलकित भी हुए। उन्होने अपने को सम्हालने का प्रयत्न करते हुए पत्र पढा। अक्षर मोतियो के समान स्पष्ट और गुम्फित थे। लिखा था

"स्वस्ति। आर्य देवरात योग्य। प्रणाम पुरस्सर अधमा दासी मजुला की विनम्र अभ्यर्थना। चरण कमलो मे सप्रश्रय विनिवेदन। अपराध क्षमा हो। प्रत्यग्र मनोहर अगीकार हो—

दुल्लह जण अणुराउ गरु लज्ज परव्वसु प्राणु।
सहि मणु दिसम सिणेह बसु मरणु सरणु णहु आणु॥

आर्य, बडी साध थी कि इस अधमा दासी के घर को तुम्हारे पवित्र चरणो की धूलि का स्पर्श मिलता। परन्तु यह बालक की चाद पकडने की लालसा के समान दुर्ललित इच्छा मात्र है, यह मैं जानती हूँ। बडी साध थी कि तुम्हारे चरणो को स्वय इन हाथो से धोकर इन केशो से पोछकर अपना कलुष धो डालू। यह नही हो सका, नही होना उचित ही है। यहा मिट्टी के गाहक आते है। अपना सर्वस्व उलीचकर, पाप खरीदकर लौट जाते है। पुस्त्व के वे कलक है, स्त्रीत्व के अपमानकारी। वे रसिकम्मन्य होते हैं रसिक नही। इस विटो, विदूषको और बन्धुलो के स्वर्ग मे केवल नरक यातना के अधिकारी ही आते है। यहा कामुकता को पुरुषार्थ भाडेपन को सरसता, मूर्खता को विदग्धता, स्त्रैण भाव को पौरुष माना जाता है। यहाँ तुम्हारा न आना ही उचित है। मेरी श्रद्धा मे भी वासना का पक था, भक्ति मे भी अभिलाषा की कालिमा लगी हुई थी। गणिका केवल पाना चाहती है। मजुला ने देने का अभिनय किया था पर इस दान मे भी दारुण ग्रहण लालसा की ज्वाला थी। तुम नही आये, अच्छा ही हुआ। जानती हूँ, तुम्हारी शुचिता अमाव है। असुर ससर्ग से लक्ष्मी दूषित नही होती। अन्धकार मे दीपशिखा और भी अधिक चमकती है, मेघ माला मे बिजली और भी उज्ज्वल हो जाती है इस अपवित्र गेह मे तुम्हारी शुचिता और भी ज्वलन्त रूप मे प्रकट होती। परन्तु मैंने मिट्टी के आकर्षण की महिमा देखी है। इसीलिए मैं डरी रहती हूँ। तुम नही आये बहुत अच्छा हुआ। कम से-कम मेरा दुर्बल चित्त आश्वस्त है। महाभाव का रहस्य मुझे नही मिल सका, पर महाभाव का आभास मुझे मिल गया है। क्षमा करना प्रभो,

लिए कैसे रख सकती हूँ ? वह इस पत्र के साथ है। उचित समझना तो बेटी के ब्याह के अवसर पर उसकी माता के आशीर्वाद के रूप मे पहना देना। इति।'

देवरात ने पत्र पढकर दीर्घ नि:श्वास किया। पत्र के नीचे लाक्षा रजित रुई के कोमल परत थे। पहले परत के नीचे एक मुक्तादाम था—मोतिया का एकलरा हार। उसके नीचे पद्मराग मणि जडी हुई मुद्रिका थी, जो हाथीदात के कगणो और शख के बने हुए वलया के बीच रखी हुई थी। उसके नीचे दो शिरीष पुष्प की आकृति के कर्णावतस थे, जो महीन हेम गुणो के हार के बीच रखे हुए थे। एक हाथीदात की छोटी सी डिबिया मे पीला सिन्दूर भी रखा हुआ था। बस !

देवरात अभिभूत, निश्चेष्ट ! थोडी देर तक वे वैसे ही बैठे रह। ऐसा जान पडा जैसे उनके सारे इन्द्रिय व्यापार बाहर से हटकर भीतर की ओर सिमट आये हो। धीरे धीरे उनमे नयी चेतना आयी। उन्होने सारे अलकारो को फिर से यथास्थान रखा। सबके ऊपर पत्र रखने लगे तो देखा कि अन्तिम पन्ने की पीठ पर कुछ और भी लिखा है। उस पर उनका ध्यान नही गया था। यह लिखावट बाद की रही होगी। इसम न तो काजल की स्याही थी, न शलाका की लेखनी। इस लाल रग की चमकदार स्याही से लिखा गया था। लिखा था—"अन्यच्च ! बडी साध यह भी थी आय, कि कभी प्रत्यक्ष पूछती कि आपने जो कहा था कि आपका बासी घाव मेरी कविता से ताजा हो गया था, वह क्या था ? क्या मजुला उस घाव की पीडा को रचमात्र भी कम करने योग्य है ! पर बात मुह से निकल ही नही पायी। हाय अधमे, इतनी लज्जा भी क्या ?"

देवरात को हूक सी उठी। वे कराहकर रह गये। ऐसा लगा जसे किसी ने ममस्थल को ही छेद दिया है। आखो से अविरल अश्रुधारा बह चली।

व दर तक भ्रमित की भाति, चकित की भाति, खोये हुए की भाति ध्यानमग्न बठे रहे। मजुला की एक एक मुद्रा उनके सामने प्रत्यक्ष सी उपस्थित होने लगी। प्रथम बार राज सभा मे जब उसे देखा था, तो उनका चित्त ललक उठा था। अभिमानिनी मजुला ने उनकी ओर इस प्रकार देखा था, मानो किसी घृणास्पद व्यक्ति को देख रही हो। उसने तिरस्कार भरी दृष्टि डालकर तुरन्त हटा ली थी, जैसे किसी अपात्र के ससर्ग से उसमे दोष आ जाने की आशका हो। देवरात के चेहरे पर उस दिन उल्लास और परिताप एक साथ दौड आये थे। वे उसकी ओर साभिलाष सी दृष्टि से देखते रह। गणिका ने उपेक्षा की थी पर उसके अन्तर्यामी ही जानते थे कि वह छिपी दृष्टि से उनके साभिलाष म्लान मुख को देखकर क्रूर आनन्द पा रही थी। उसे यह समझने मे रस मिला था कि यह साधुवेशी देवरात लम्पट है भण्ड है। किसी दिन वह उसके तलवे चाटने का प्रयास करेगा, यह वह निश्चित मान बैठी थी ! पर देवरात पर कुछ और ही बीत रही थी।

देवरात के वृद्धातिवृद्ध प्रपितामह अग्निमित्र के प्रमुख सेनानियो मे थे। सिन्धुनदी के तट पर यवनो को शिकस्त देने मे उनका विशेष योगदान था। वे प्रख्यात यौधेय क्षत्रिय वश के थे। उन्ही दिनो उन्हे कुलूत राज्य का सामन्त-पद

मिल सकता है। यह नही कि वे शर्मिष्ठा और मंजुला के अन्तर को नही समझ सके। भिन्न है, पर फिर भी उसका हल्का आभास मिल रहा है। वे साभिलाष दृष्टि से एकटक मंजुला को देखते रह गये। मंजुला ने उपेक्षा और तिरस्कार की दृष्टि से देखा, देवरात को भण्ड तापस समझकर घृणा भरी आखो से चोट पहुँचानी चाही, पर देवरात को निधि सी मिल गयी। मंजुला के बोल भी वैसे ही मीठे थे। जब वह गाती, तो उनका अंग अंग पुलक कम्प से सिहर उठता। देवरात इस लोभ से हलद्वीप मे रुक गये कि कभी कभी यह रूप देखने को मिलेगा। आज मंजुला भी नही है वह रूप भी इस धरती से उठ गया है। रह रहकर उनके हृदय मे शर्मिष्ठा और मंजुला आती रही। देवरात निश्चेष्ट बैठे रहे। वे व्याकुल थे, व्यथित थे। हा देवि, बासी घाव ताजा हो गया था। इसके लिए प्राण देकर भी तुम्हारे ऋण से उद्धार नही होगा। हाय, बासी घाव अब ताजा नही होता। देवरात आज सचमुच अकिंचन हैं। कैसे बताऊँ देवि तुम्हारे दर्शन मात्र से क्या सारा सत्त्व उमड आता था! तुम इस घाव का क्या उपचार कर सकती थी शुभे! घाव का बार बार ताजा हो जाना क्या साधारण उपचार था? कृतज्ञ हूँ देवि, आज घाव पर घाव हो गया है, फिर भी, जो जी रहा हूँ सो तुम्हारे उपचार के सहारे ही। इस रोग की औषधि मृणालमंजरी है। तुम्हारा प्रसाद पाकर मैं धन्य हुआ हूँ। आश्वस्त हूँ देवि, मुझे शर्मिष्ठा और मंजुला का सम्मिलित रूप मिल गया है। हाय देवि, कैसे बताऊँ कि तुमने इस शून्य हृदय में विश्वास का पारावार हिल्लोलित किया है उल्लास की झंझा बहा दी है। आज जो हृदय शान्त है जीवन लक्ष्यहीन नही जान पडता पूजा निष्फल नही हो रही है, सेवा चरितार्थ बनती जा रही है वह भी तुम्हारी ही कृपा है। तुममें मैंने शर्मिष्ठा को देखा था। मेरे हृदय विहारी देवता ने तुम्हारे भीतर मृणालमंजरी को देकर मेरी शर्मिष्ठा को नया रूप दे दिया है। तुमने माध्यम की कल्पना की थी, मैंने रूपवती माध्यम मूर्ति पायी थी। क्या करूँ देवि, जो तुम्हारी शर्मिष्ठा की और मेरी स्नेहमूर्ति कन्या को सुखी बना सके! हाय देवि, कितनी बार तुम्हें देखकर लगा, शर्मिष्ठा ही मिल गयी है। कितनी बार मुह से परिचित सम्बोधन 'प्रिय' आ-आकर लौट गया है। कितनी बार हृदय ऐसी उछालें भरता रहा है कि मानो कूदकर तुम्हारे हृदय में प्रवेश कर जायेगा, कितनी बार भुजाएँ ऐसी फड़की हैं जैसे संयम के सारे बन्धन तोड़कर तुम्हें कस लेंगी, कितनी बार, कितनी बार! मेरे हृदय में बैठी शर्मिष्ठा ने हर बार सावधान किया है—धोखा है छलना है भ्रान्ति है! और हर बार मेरी उमडी हुई मानस-तरंगें तट-देश पर पछाड़ खाकर गिरी हैं। देवि तुम्हें नहीं मालूम, पर मुझे मालूम है। हाय देवि बासी को ताजा करने का रहस्य जानना चाहती थीं? जानतीं तो तुम्हें कैसा लगता? विधाता ने सादृश्य का इतना साम्य देकर न जाने क्या करना चाहा था। अब देखता हूँ आकार रूप भी वही है वैसा ही कोमल है वैसा ही कमनीय वैसा ही सरल शील। जो जीते जी नहीं कह सका वह अब कहना चाहता हूँ पर अब क्या लाभ है प्रिय!

देर तक मृणाल को गोदी में लिये हुए देवरात रोते रहे। देर तक पिता की गोद में अलसशिथिला मृणाल सुबकती रही। किसी ने कुछ नहीं कहा। दोनों समझते रहे कि दूसरे के मन पर क्या बीत रही है। अन्त में देवरात ने ही साहस किया। बेटी का मुँह अपनी ओर किया। माथा सूँघा, ललाट चूम लिया। बोले, 'बेटा, तू दो माताओं की प्यारी बेटी है। पर आज दोनों ही नहीं हैं। रह गया है यह अभागा अकिंचन पिता देवरात! विवाह के अवसर पर पिता अपूर्ण होता है, देवरात तो और भी अपूर्ण है। मुझे ही तेरी माता का काम करना है। हाय बेटी, विश्वास हिल रहा है, आस्था टूट रही है। क्या करूँ! प्राण व्याकुल हैं। तू शर्मिष्ठा का सतीत्व और मंजुला की कला-चातुरी लेकर उतरी है। तेरी एक माता नारायण की करुणा का अवतार थी, दूसरी उनकी स्मित-रेखा का प्रत्यक्ष विग्रह थी। बेटा, तू नारी-धर्म का प्रतिमान बनेगी, तू पवित्रता की मर्यादा सिद्ध होगी, तू सद्भाव का निदर्शन होगी। तुझे देखता हूँ तो लगता है कि तू गोपवेशधारी विष्णु की वनमाधुरी का रूप है। तेरा अकिंचन पिता तुझे कुछ दे नहीं सकता, पर [illegible], स्वर्ग से तेरी माताएँ ही वह सब देंगी, जो बेटी को दिया जा सकता है।"

मृणाल ने दो माताओं की बात पहली बार सुनी। उसे आश्रम में शुश्रूषा और शिक्षा प्राप्त करने के उद्देश्य से आयी हुई पौर-वधुओं से यह पता चल गया था कि वह हलद्वीप की नगरश्री मंजुला की औरस पुत्री है। उसे यह भी पता था कि वह देवरात की पालिता कन्या है। पर दो माताओं की बात उसकी समझ में नहीं आयी। वह देवरात की ओर आँखें फाड़कर देखती रही। उसने उन्हें ही अपना सब-कुछ जाना था। वह इतना समझती थी कि जन्म देना ही एकमात्र जननीत्व और जनकत्व नहीं है। देवरात उसके पिता, माता, गुरु सबकुछ थे। बाकी बातें उसके लिए गौण था। देवरात ने उसे कभी यह नहीं बताया था कि उसकी जननी कौन है, यद्यपि वे जान गये थे कि मुखरा पौरवधुएँ उसे सब-कुछ बता चुकी हैं। परन्तु आज जिस प्रकार यह बात कह रहे हैं उससे लगता है कि किसी [illegible] सम्भाव्य की वेदना से सिक्त होकर ये शब्द उनके मुँह से निकल रहे हैं।

एकाएक वे चचल हो उठे। जैसे कुछ नया दिख गया हो, एकदम नया ! बोले "दे सकता हूँ बेटी, दे सकता हूँ। अपना सवस्व उलीचकर दे सकता हूँ। ये दोनो चित्र—चित्र नही, प्राण—तुझे देता हूँ। ले बेटा, सम्हालके रख !"

सात

श्यामरूप देर तक मथुरा की गलिया मे घूमता रहा। चतुष्पथो पर स्थापित विशाल यक्ष मूर्त्तियो को वह आश्चय और भय के साथ देखता। उनका ऊँचा कद, भारी-भरकम डील-डौल, चामरधारी दक्षिण हस्त कटिविन्यस्त मुद्रा मे चिपके से बाये हाथ, बडे-बडे कुण्डल, मोटे कडे, महीन उत्तरीय और पचकक्षी धौतवस्त्र उसे विचित्र प्रकार से आकर्षित करत थे। उसने ऐसी मूर्त्तिया इतनी प्रचुर सख्या मे पहले नही देखी थी। लोग इन मूर्त्तिया को प्रणाम करते और प्रदक्षिणा करके चल देते। एक विशाल मूर्त्ति अश्वत्थ वृक्ष के नीचे खडी की गयी थी। उसके पास तिकोनी लाल पताकाएँ लहरा रही थी। श्यामरूप उसे देखकर ठिठक गया। इस मूर्त्ति का दाहिना हाथ अभय मुद्रा मे था। गले मे एक तिखटा हार चिपका हुआ था। मुखाकृति भद्दी और भयजनक थी। पूछने पर उसे मालूम हुआ कि यह मणिभद्र यक्ष की मूर्त्ति है। समुद्र के रक्षक देवता है। नगर के सेठ लोग व्यापार के लिए जब वाहर जाते ह और धन कमाकर जब बाहर से लौटते है तो मणिभद्र यक्ष की पूजा वडी धूमधाम से करते है। ये मथुरा के जाग्रत देवता ह। इस चतुष्पथ मे वायी ओर एक भव्य मन्दिर दूर से ही दिखायी द जाता था। श्यामरूप उधर ही वढ गया। निस्सन्देह वह मन्दिर नया था, पर वहा किसी प्रकार की भीड नही थी। इतने सुदर मन्दिर की यह अवस्था देखकर उसे कुछ आश्चय हुआ। निकट जाकर उसने देखा तो तोरण द्वार पर ही लिखा पाया—'पचवृष्णिवीरा'। उसे कुछ कुतूहल हुआ। हलद्वीप के आभीरा म चतुर्व्यूह की पूजा प्रचलित थी। यहाँ पाच वृष्णिवीरो को देखकर उसे आश्चय हुआ। चार वृष्णिवीर—सकषण (वलराम), श्रीकृष्ण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—ता विश्वविख्यात हैं। यह पाचवाँ कौन है ? मन्दिर भीतर से वन्द था। बाहर बहिर्द्वार पर दोना ओर मकरवाहिनी गगा की अभिराम मूर्त्तिया उत्कीण थी और चौखटो पर शख, चक्र हल, मुसल गदा, और पद्म का अभिप्राय देकर कल्पवल्ली उरेही गयी थी। ऊपरी चौखट के मध्य स्थान पर एक अपूव तेजस्वी मूर्त्ति भी उत्कीण थी, जिसके मुख के चारा ओर सूय क समान प्रभामण्डल उद्भासित हो रहा था। श्यामरूप उस तेजामयी मूर्त्ति

करके सवा राय चलाय जा रहा हूँ, पर मन म अनक प्रकार की आशकाएँ उठती रहती है। कल ही मैंन स्वप्न म लहुरा वीर के दशन किय है। वे मुझे अभय द रहे थ और कह रहे थे कि पूव से कोई परमवीर आ रहा है, जिसे वे अपना तज देकर भेज रह हैं। वही फिर म इस मन्दिर की प्रतिष्ठा बढायगा। पर स्वप्न का क्या विश्वास ! कभी मनुष्य वही बातें स्वप्न मे देखता है जिनकी उसे कामना होती है। अभीप्सित दशन भी माया ही है !" वृद्ध चुप हुए और कुछ उद्विग्न भी लग।

श्यामरूप ने उन्ह आश्वस्त करते हुए कहा, हो सकता ह आय कि आपका स्वप्न फलित हो। परन्तु यदि धृष्टता मार्जित हो तो मैं इस नगर के बारे म कुछ और जानन का प्रसाद पाना चाहता हूँ।"

इस बार वद्ध न श्यामरूप को ध्यान मे दखा। वद्ध को उसके गठे हुए शरीर और चौडी छाती को देखकर आश्चय हुआ। बोले "क्या जानना चाहते हो, भद्र ! तुम तो अच्छे मल्ल जान पडते हो ! तुम क्या यहा किसी मल्ल समाह्वय मे बुलाय गय हो ?"

श्यामरूप न हाथ जोडकर कहा, "मुझे बिल्कुल पता नही है कि यहा कोई मल्लयुद्ध की प्रतियोगिता भी हो रही है। मैं तो बिल्कुल ही नया आदमी हूँ, परन्तु इस समय तो मैं थककर चूर हो गया हूँ। पिछले कई दिनो से मुझे खाने को भी कुछ नही मिला है। जो व्यक्ति प्राय एक मास से बुभुक्षित हो, वह मल्ल प्रतियोगिता म जाकर क्या कर लेगा ! मैं तो जानना चाहता हूँ कि इस नगरी मे मल्ल विद्या का सम्मान करनेवाले कोई श्रीमन्त हो तो उनका आश्रय मैं कैसे पा सकता हूँ ? मैं कुछ दिन इस नगरी मे रहना चाहता हूँ। किन्तु मुझे इस नगरी के बारे म कुछ भी मालूम नही।'

वद्ध ने श्यामरूप के मुरझाये हुए चेहरे को ध्यान से देखा। बोले, भद्र, मल्ल विद्या के सम्मानदाता तो यहा अवश्य है परन्तु अभी तो तुम सचमुच बहुत क्लान्त जान पडते हो। इस नगरी म कई श्रीमन्तो से मेरा परिचय है जो मल्ल विद्या के बडे प्रेमी है, परन्तु पहला काम तो यह जान पडता है कि तुम्हारे लिए थोडे विश्राम की व्यवस्था की जाय। अगर तुम अन्यथा न मानो तो अभी मेरी कुटिया पर चलकर विश्राम करो, स्नान करो भोजन करो, और फिर कुछ अन्य बात सोचो। निधन ब्राह्मण हूँ, किन्तु फिर भी सेवा तो कर ही सकता हूँ। आओ !" वद्ध ने बडे स्नेह के साथ श्यामरूप की पीठ थपथपायी और उसको कुछ बोलने का अवसर दिय बिना, हाथ पकडकर अपने साथ ले लिया।

उपाध्यायपल्ली म एक छोटे से किन्तु साफ-सुथरे घर मे वृद्ध रहा करते थे। व सचमुच निधन थ, लेकिन श्यामरूप को उनके स्नेह म बहुत कुछ मिल गया। वद्ध ने उसे स्नान करने को कहा और स्वय उसके भोजन आदि की व्यवस्था म जुट गये। जब श्यामरूप नहा धोकर लौटा तो उन्होने उसे कुशासन पर बैठाया और स्नेहार्द्र वाणी म पूछा, "तुम किस कुल म उत्पन्न हुए हो, बेटा ?"

श्यामरूप को बडी लज्जा मालूम हुई। उसकी वाणी रुद्ध हो गयी। पिछले कई

वह अच्छा-खासा पहलवान और फुर्तीला नट बन गया। उसके ब्र
प्राय लुप्त हो गये। लेकिन यज्ञोपवीत उसने नहीं छोड़ा। उसे वह
लटका लेता था कभी कमर में बाँध लेता था लेकिन फेंक नहीं सका।
चौधरी ने स्नेह और आदर के साथ उसे छबीला पण्डित' कहना
और नट मण्डली में यही उसका नाम पड़ गया। जम्भल चौधरी के मन
कभी दूर नहीं हुई कि छबीला पण्डित ब्राह्मण है। मल्ल के रूप में छबील
का नाम और यश फैलने लगा था। पर श्रावस्ती में उसने जब मद्रदेश के
मल्ल को पछाड़ा तो उसकी कीर्ति बड़ी तेजी से दूर दूर तक फैल गयी।
चौधरी को अज्जुक के बल पौरुष का पता पहले ही था। एक बार वह उस
भी चुका था परन्तु उसी समय उसे उसकी कमजोरी का भी पता चल गया
वह उससे बदला लेना चाहता था। छबीला के बल पौरुष और कौशल को
निकट से देखकर उसे विश्वास हो गया था कि अज्जुक को यही मात दे सकता
श्रावस्ती के मल्ल समाह्वय में वह जान बूझकर गया था। अज्जुक के दैत्याक
रूप को देखकर बड़े बड़े नामी पहलवान आतंकित हो गये थे। परन्तु जम्भल
छबीले को उत्साहित करते हुए कहा था पण्डित उसके भयंकर रूप की चिंता
न करो। तुम्हीं को परमात्मा ने इसका गर्व चूर्ण करने के लिए पैदा किया है।
बहुत कम पहलवान मैंने ऐसे देखे हैं जिनके दोनों धड़ चलते हैं। अज्जुक ता
बिल्कुल एकधड़ा है। मैं भी एकधड़ा हूँ। परमात्मा ने तुम्हें ही दोनों धड़ (बायाँ
और दाहिना) का कौशल दिया है। साहस न खोना। अखाड़े में उतरते ही बिजली
की तरह टूट पड़ना। एकदम बायीं ओर झपका देना और दाव मार देना। खड़े
घिस्से से भी काम चल जायगा। मेरी हार का कारण यह था कि मेरे दोनों धड़ नहीं
चलते। अज्जुक की भी यही कमजोरी है। रंचमात्र भी चिंता न करो। बस,
इतना याद रखो कि पहला काम बायीं ओर झपका मारना है। दाहिनी ओर कोई
भी दाँव मार सकते हो। अज्जुक मद्रदेशी यवन है। वह फावड़ी और ढोका का
उस्ताद है। सिर्फ इन दो वचनों का प्रयत्न करना। इसी मल्ल उपस्ता में यवनों से
बीस होता है। खड़े घिस्से में उसकी कोई बराबरी नहीं कर सकता। फिर बड़े
प्यार से उसकी पीठ थपथपाते हुए चौधरी ने कहा था बेटा गुरु के अपमान का
बदला भी लेना है। छबीले ने भी वैसा ही किया जैसा जम्भल ने सिखाया था।
पलक गिरते न गिरते उसने बायीं ओर झपका मारा कि अज्जुक भहरा गया। जब
तक वह अपने को सम्हाले तब तक छबीला घिस्सा मार बैठा और दूसरे ही क्षण
उसकी छाती पर सवार दिखायी दिया। सहस्रों कण्ठों से निकली छबीला पण्डित
की जय ध्वनि आकाश फाड़ने लगी थी। जम्भल की मण्डली के लिए वह बड़ा
सम्मानदायक दिन था।

पर उस दिन एक घटना और भी घटी थी जिसने श्यामरूप के जीवन में नया
मोड़ ला दिया। उस रात को नट मण्डली ने जमकर मदिरा-पान किया। पुरुष तो
मस्त हो ही गये स्त्रियाँ भी मत्त हो उठीं। नट मण्डली में युवतियाँ श्याम

रूप से देवर का नाता रखती थी। वे सदा उसके साथ कुछ न कुछ ठिठोली करती रहती थी, श्यामरूप केवल हँस दिया करता था। न कभी कोई उत्तर देता न किसी की ओर आँख उठाकर देखता। उस रात को इन भाभिया म असयत उल्लास दिखायी दिया। उन्होंने उसे घेर लिया और नाना भाव स उसका मनोरजन करना शुरू किया। एक प्रौढा भाभी ने कहा देवर आज आनन्द मनाने का दिन है। तुम्हारी भाभिया का निश्चय है कि तुम हमम म किसी एक को चुन लो। जिस चुनोगे वही तुम्हारी सदा के लिए चेरी हो जायेगी। श्यामरूप हसकर रह गया। इस प्रकार का परिहास वह कई बार सुन चुका था। एक ने आगे बढकर कहा, मेरे रहत यह किसी दूसरी को क्या चुनेगा? वह श्यामरूप के पास आ गयी। उसे धक्का मारकर एक दूसरी प्रौढा बोली नही देवर तुम भोलपन म आकर गलती न कर बैठना। मुझे चुनोगे तो बिना मिहनत के चार बच्चे भी मिल जायेंगे। हा!' एक और युवती ने उसे डाटा, चल हट चार ही क्यो तेरा वह तुझे छोडेगा? बेचारे देवर के सिर पर तेरे चार पिल्ला के साथ साथ एक सवट्टा (सौन पुरुष) भी सवार हो जायेगा। ना देवर ऐसा कभी न करना। मुझे चुनो मैं अपने मरकहे दूल्हे को बिलकुल छोड दूगी। वह सचमुच श्यामरूप की बगल म आ बैठी। श्यामरूप इस प्रकार के परिहास मे घबरा गया। वह पीछे हटा तो प्रौढा भाभी ने उस स्त्री को वहा से हटाते हुए कहा चल हट, हमारा देवर अनसूघा फूल सूघता है।" और भीड म से एक पन्द्रह सोलह वर्ष की लजीली लडकी को घसीटकर ले आयी। बोली पसन्द है न देवर!' श्यामरूप ने देखा कि वह लडकी लज्जा से सिकुडी हुई अपने को छुडाने के लिए छटपटा रही है। प्रौढा हसती हुई बोली अनसूघा फूल है। तुम्हारी ही तरह वैष्णव है। सबने पिया है यह नाक-भौं सिकोडती रही।' फिर उस छोडती हुई और भाडी हसी हँसती हुई बोली 'पिया के हाथ नही पिया तो क्या पिया। उसने बुरी तरह आखें नचायी। श्यामरूप को अब भागने के सिवा और कोई रास्ता नही था। वह भाग खडा हुआ पर वह लजीली लडकी उसके मन म एक विचित्र करुणा उद्रिक्त कर गयी। कौन है यह? कभी तो नही देखा था। श्यामरूप को वह बालिका बडी करुणाजनक लगी थी। वह उसका परिचय पाने के लिए व्याकुल हो गया। कुछ दिना तक वह मण्डली म दिखायी नही दी तो श्यामरूप के पूछने पर एक दिन उसी प्रौढा मुखरा भाभी ने बताया कि उसका नाम मादी था। श्रावस्ती के ही निकट के किसी गाव की अवमानिता कन्या थी। बेचारी सब समय रोती रहती थी। परेशान होकर चौधरानी ने उसे अच्छे दाम पर मथुरा की किसी गणिका के दलाल के हाथ बेच दिया। वह रोती हुई गयी थी।

श्यामरूप इस सवाद स घबरा उठा था। मन ही मन उसका दुख दूर करने का उसने निश्चय कर लिया और नट मण्डली को छोडकर उस लडकी को खोजने के उद्देश्य से ही मथुरा आ पहुँचा था। यहाँ आकर वह दिङ्मूढ हो गया था। कैसे खोजे, कहा खोजे।

जब जब उस उस करुणा कातर बालिका का ध्यान जाता तब-तब एक विचित्र प्रकार का हूक -मन मन म उठती। कहा होगी बचारी! कितनी डरी हुई होगी! कितनी रा -ती होगी! हाय न जान उस किस प्रकार रखा गया होगा। उसका मस्तिष्क चिन्ताओं म -स बुरी तरह जकड गया था कि वह और सोचने का अवसर हो नहीं पाता था। ऐसा जान पडता था कि मस्तिष्क की शिराए फटी जा रही है। उसके अन्तरतर म यह ध्वनि बराबर निकलती थी कि वह बालिका यही कही है। परन्तु कहा है? वह -धर उधर भटकता रहा। एस ही समय इस वद्ध ब्राह्मण स भट हो गया। यह उस शुभ शकुन सा लग रहा था। वह वद्ध का अयाचित स्नेह पाकर धन्य हो गया था। बड विनय और आदर क साथ हाथ जोडकर बोला, "य मेरे भाग्य -वता प्रस न है जो आपका वात्सल्य पाने का मुझे अवसर मिल गया है। म मान न ।पा रहा हू कि आपसे किस प्रकार उऋण हो सकता हूँ।"

वद्ध न उस आश्वस्त करत हुए कहा नही बटा ऐसा नही कहते। तुम्हारे जस गुणी का सम्मान करक म ही धन्य हुआ हू। इस दरिद्र गह म किसी तेजवान का आगमन पूवज म क पुण्या स ही होता है। मै ही धन्य हुआ बटा। पर मरी साध तब पूरी होगा जब म तुम्ह मथुरा क मल्ल मौलिमणि के रूप म दख सकूगा। हाँ यह पूछना तो म भूल ही गया था कि तुम किस दश स आये हो? कहा के निवासी हो

श्यामरूप न उत्तर दिया हलद्वीप का निवासी हू आय।

वद्ध को एक बार फिर धक्का लगा हलद्वीप! क्या वही हलद्वीप जहा का निवासी गोपाल आयक है?

अब श्यामरूप का धक्का लगा। पिछल सात वर्षों स न जान कितनी बार गोपाल आयक की स्मति उस व्याकुल बनाकर उद्वेग चचल कर चुकी थी। न जान कितनी बार गोपाल आयक का भोला मुह याद करक उसकी छाती फटने को आयी थी। परन्तु प्रयत्नपूवक वह उस भुला दना चाहता था। सोचता कि आयक सुनगा कि उसका भाई नगर की मण्डला म भर्ती हो गया है तो न जान कैसी घणा उसके मन म उत्पन्न होगा। वह अपन पुरान इतिहास को भुला दना चाहता था और मन ही मन सकल्प करता था कि वह अपन को अकेला समझेगा। ऐसा अकेला जिसके न कोई पीछ था न आग है। इस विचार ने उसके मन म एक निरकुश भाव उत्पन्न कर दिया था। आज पूरे सात वर्षों क बाद सुदूर मथुरा म अनजाने वद्ध क मुह स गोपाल आयक का नाम सुनकर उस बडा ही आश्चय हुआ। बोला हाँ आय हलद्वीप तो वही है किन्तु आप गोपाल आयक को कसे जानते है?

वद्ध की आखो म कौतूहल दौड आया तुम्ह हलद्वीप छोड हुए कितने दिन हो गय वत्स?

सात वर्ष स भी कुछ ऊपर हो गय होग आय।

अच्छा तभी तुम्ह गोपाल आयक का कोई समाचार मालूम नही। तुमने गोपाल आयक को बहुत छोटा दखा होगा। है न यही बात।

'हाँ आर्य, बहुत छोटा। बिल्कुल दुधमुँहा !"

'सुना है बेटा, वह बहुत ही प्रतापी गणपति था है। कहते हैं कि हलद्वीप से पूर्व की ओर वह कहीं भागा जा रहा था एक अत्यन्त सुन्दर युवती को साथ लेकर। जहाँ गंगा और सरयू का संगम है उसी स्थान पर किसी लिच्छवि राजकुमार से टक्कर हो गयी। झगड़े का कारण वह सुन्दरी स्त्री ही बतायी जाती है। यद्यपि लिच्छवियों का पुराना गौरव अब नहीं रहा, परन्तु फिर भी उनका यश अभी तक बना हुआ है। लिच्छवियों का लोहा सारी दुनिया मानती है। सुना है कि हर लिच्छवि राजकुमार ही होता है। शक्ति और श्रद्धा दोनों के वे धनी हैं। कोई पचास लिच्छवि युवक एक ओर थे और आर्यक अकेला था। जिन दुर्दान्त लिच्छवियों ने किसी का लोहा नहीं माना, वे आर्यक के बाहु-बल का लोहा मान गये। सुना जाता है कि वह अकेला ही शस्त्र सज्जित लिच्छवि-व्यूह में इस प्रकार घिर गया जैसे मदमत्त हाथियों के झुण्ड में कोई किशोर सिंह शावक घिर गया हो। पहर-भर तक वह अकेला ही जूझता रहा, लेकिन अन्त में लिच्छवियों ने उसे बन्दी बना लिया। जब उसे बन्दी बनाकर तीरभुक्ति ले जाया गया तो उस वीर पुरुष के दर्शन के लिए हजारों की संख्या में जनता उमड़ आयी। लिच्छवियों के 'गणमुख्य' ने जो सुना तो उसे बन्धनमुक्त कर दिया और लिच्छवि-युवकों को डाँटते हुए कहा, 'तुमने लिच्छवियों का नाम कलंकित किया है। लिच्छवि-गण वीरों का सम्मान करता है। तुमने उस गण की मर्यादा को कलंकित किया है।' उसने गोपाल आर्यक का राजकीय सम्मान किया। उसकी पत्नी को लौटा दिया और उसे समस्त लिच्छवि गणराज्य में स्वतन्त्रतापूर्वक विचरण करने की आज्ञा दे दी।" वृद्ध ने थोड़ा रुककर ऊपर की ओर देखा और कहा, 'जब वासुदेव भगवान प्रसन्न होते हैं तो विपत्ति में भी सम्पत्ति देते हैं।"

ब्राह्मण देवता थोड़े म्लान हुए। उन्होंने उदासी भरे स्वर में कहा, 'मथुरा से तो अब धर्म-कर्म उठ ही गया है। यहाँ कुछ भी अनर्थ क्यों न हो जाय, कोई पूछनेवाला नहीं है। सुना है तीरभुक्ति में एक बड़ा अधिकारी होता है जिसे 'विनय स्थिति स्थापक' कहते हैं। उसी ने वहाँ के राजकुमारों को दण्ड दिया है। कहा जाता है कि वे चम्पारण्य में निर्वासित किये गये हैं। इधर मथुरा में यह हाल है कि म्लेच्छ राजा स्वयं प्रजा का शील नष्ट करने पर तुला है। भगवान वासुदेव की लीला भूमि न जाने कब तक इस प्रकार के अनाचार का अखाड़ा बनी रहेगी! ऐसा लगता है कि गोपाल आर्यक के रूप में वे फिर इस पवित्र लीला भूमि की सुधि लेने आ रहे हैं। परन्तु धर्म स्थापना के कार्य में कुछ विघ्न पड़ने के समाचार भी सुनायी दे रहे हैं।'

श्यामरूप साँस रोककर गोपाल आर्यक की कहानी सुन रहा था। उसके शरीर में रोमांच हो आया था, बाहें फड़क रही थीं, ललाट पर पसीने की बूँदें उभर आयी थीं। अधीरतापूर्वक उसने पूछा, 'फिर क्या हुआ, आर्य ?"

वृद्ध ने कुछ धीमी आवाज़ में कहा, 'सुनी-सुनायी बातें कह रहा हूँ, वत्स !

आश्वस्त हुई है। सुना गया है कि समुद्रगुप्त की सेनाएँ साहस खो बैठी है और अहिच्छत्रा से आगे बढ़ने को प्रस्तुत नहीं है।

श्यामरूप ने कहानी का जो उपसंहार सुना, वह उसके लिए बड़ा ही पीड़ादायक सिद्ध हुआ। उसका मुखमण्डल विवर्ण हो गया तथा होठ सूखने लगे। आर्यक की वीरता की कहानी सुनकर वह जितना ही उल्लसित हुआ था, उतना ही मर्माहत हुआ उसकी चरित्रहीनता का समाचार पाकर। उसे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई थी कि गोपाल आर्यक का विवाह मृणालमंजरी से हो गया। परन्तु जब उसने यह सुना कि गोपाल आर्यक ने उसे ऐसे ही त्याग दिया है, तो उसका मन क्रोध और घृणा से भर गया। आर्यक क्या इतना हीन चरित्र का युवक सिद्ध हुआ? उसे विश्वास ही नहीं हो रहा था। परन्तु वह दूसरी युवती कौन थी जिसके साथ आर्यक भाग गया था? वृद्ध ने उसे चिन्तातुर देखकर आश्वस्त करते हुए कहा 'राजनीति में यह सब हुआ करता है बेटा! सुना गया है कि समुद्रगुप्त अब पछता रहा है और वह आर्यक जैसे सेनापति को कभी हाथ से न जाने देगा। फिर ये सब सुनी सुनायी बातें हैं। इनमें कितना सच है और कितना झूठ यह कौन बता सकता है? मथुरा में रहोगे तो रोज ही नये नये समाचार सुनोगे। सब बातों को सत्य मान लेना बुद्धिमानी नहीं है। राजधानी में बहुत सी बातें जान बूझकर तोड़ी-मरोड़ी जाती है। तुम चिन्ता न करो बेटा, आर्यक निश्चित रूप से फिर समुद्रगुप्त का सेनापति बनेगा। मथुरा की हालत तो आजकल बहुत बुरी है। कौन जाने किसी दिन तुम्हें यहीं पर गोपाल आर्यक से मिलने का अवसर मिल जाय!"

आठ

श्यामरूप को वृद्ध ब्राह्मण के प्रयत्न से अच्छा आश्रय मिल गया। राजा के पितृव्य चण्डसेन स्वयं मल्ल विद्या के निष्णात थे, और उनके आश्रय में अनेक मल्ल रहा करते थे। श्यामरूप को देखते ही उनकी गुणज्ञ आँखों ने पहचान लिया कि यह युवक यशस्वी मल्ल होगा। उनका आश्रय पाकर श्यामरूप भी प्रसन्न हुआ। मथुरा के मल्ल समाह्वय में उसने बड़ा यश प्राप्त किया। देखते-देखते वह मल्ल-मण्डली में सम्मानित स्थान प्राप्त करने में सफल हुआ। वृद्ध ब्राह्मण ने छबीला नाम का संस्कृत बना दिया था। उसका नाम शार्विलक ही प्रसिद्ध हुआ। शार्विलक अर्थात छबीला! यद्यपि उन दिनों मथुरा के राजवंश में भय और आतंक बना हुआ था, तथापि मथुरा की साधारण जनता अपने ढंग से चलती जा रही थी।

नृत्य गीत का आयोजन यथानियम होता रहता था। मल्लशालाएँ नित्य नवीन मल्लों के आगमन से बराबर आकर्षण का केन्द्र बनी हुई थीं। सरस्वती विहारों में काव्य गोष्ठियों का काम निश्चिन्त चलता रहता था और लाव तित्तिर मेष कुक्कुट आदि की लड़ाइयों की प्रतिस्पर्द्धा में जनता खुलकर भाग लेती थी। इसीलिए श्यामरूप को मथुरा में यश प्राप्त करने में कोई कठिनाई नहीं हुई।

एक दिन चण्डसेन के आमन्त्रण पर विशाल मल्ल प्रतियोगिता का आयो[जन] हुआ। उस दिन राजा के साले भानुदत्त के प्रसिद्ध मल्ल मागू और शार्विलक की भिड़न्त थी। मागू मद्रदेश का रहने वाला नामी पहलवान था। लोगों में उस[के] बारे में अतिरंजित कहानियाँ प्रचलित थीं। कहा जाता था कि भोजन करने [के] बाद जब वह अपना मुँह धोता था तो उसके सेर भर घी नित्य निकलता था। उसके आहार में प्रतिदिन प्रचुर मांस की व्यवस्था हुआ करती थी। कहा जाता था कि वह प्रातःकाल नित्य एक बड़े बकरे के ताज़े खून से जलपान करता था। प्रसिद्ध था कि एक बार राजा के मदमत्त हाथी को उसने थप्पड़ मारकर ही गिरा दिया था। उसके बाहु-बल के बारे में प्रचलित कहानियों की सच्चाई के बारे में तो कुछ कहना कठिन है, लेकिन जनता में तो वह भीम का अवतार ही माना जाता था। राज-श्यालक भानुदत्त अपने मल्ल की विजय के बारे में बिल्कुल आश्वस्त थे। परन्तु चण्डसेन भी शार्विलक के बाहु-बल से कुछ कम आश्वस्त नहीं थे। मथुरा की जनता इस प्रतियोगिता को देखने के लिए समुद्र की भाँति उमड़ पड़ी। चण्डसेन ने बहुत बड़ी मल्ल रंगभूमि का आयोजन किया था। शाल के सौ स्तम्भों पर विशाल पटवास का आयोजन था। अखाड़ा नीचे केन्द्र की ओर बनाया गया था और उसके चारों ओर लम्बी सोपान-वीथियाँ बनायी गयी थीं जो ऊपर क्रमशः चौड़ी होती गयी थीं। इस मल्लशाला में पन्द्रह सहस्र नागरिकों के बैठने की व्यवस्था थी। राज्य की ओर से सशस्त्र दण्डधरों की व्यवस्था की गयी थी ताकि उत्तेजित जन-समूह कुछ उत्पात न कर बैठे। तीक्ष्ण कुन्तवाही सौ अश्वारोही सैनिक पटवास के चारों ओर शान्ति-रक्षा के लिए तैनात थे। हर कोने में प्रत्येक स्थान पर सशस्त्र दण्डधर खड़े किये गये थे। जनता में अधिकांश मागू की शक्ति के प्रति विश्वास रखनेवाले थे। ऐसे लोग बहुत कम थे जिन्हें शार्विलक के बाहु-बल पर भरोसा था। प्रत्येक दर्शक ने मन-ही-मन अपना पहलवान तय कर लिया था। निस्सन्देह मागू मल्ल के प्रति अधिकांश लोगों का झुकाव था। राज-श्यालक भानुदत्त अपनी मण्डली के साथ अखाड़े की दाहिनी ओर बैठे थे और चण्डसेन उसी प्रकार मल्ल-मण्डली से समावृत होकर बायीं ओर विराजमान थे।

दोनों पहलवान अखाड़े में उतरे। भूमि-वन्दना करके उन्होंने अपने-अपने अन्नदाताओं को प्रणाम किया और गुँथ गये। दर्शक-मण्डली में अपार उत्तेजना का संचार हुआ। साँस रोककर लोग मल्ल-कौशल का अवलोकन करने लगे। मागू शार्विलक से दुगुना था। ऐसा जान पड़ता था कि पहाड़ के समान किसी

साथ सिंह किशोर गुथ गया हो। जिन लोगों को यह आशा थी कि हार जीत का फैसला कुछ ही क्षणों में हो जायगा, उन्हें निराश होना पड़ा। कुश्ती देर तक चली। जिन लोगों ने समझा था कि शार्विलक चींटी की तरह मसल दिया जायगा उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि मागू उसको कसकर पकड़ भी नहीं पा रहा है। उसकी फुर्ती देखने लायक थी। दोनों ही मल्ल पसीने से तर हो गये थे। कोई एक घड़ी की विकट भिड़ंत के बाद लोगों ने आश्चर्य के साथ देखा कि मागू चित्त हो गया है और शार्विलक उसकी छाती पर सवार है। तुमुल जय निनाद और साधुवाद से मागू ऐसा निस्तेज हुआ मानो उसकी सारी शक्ति शार्विलक में संक्रमित हो गयी हो। चण्डसेन ने उल्लसित होकर शार्विलक को छाती से लगा लिया। देखते-देखते जन-समुद्र शार्विलक के जय घोष से तरंगित हो उठा। उस दिन मथुरा की जनता ने निःसंदिग्ध रूप से शार्विलक को मल्लों का मौलमणि मान लिया। आयोजन समाप्त हुआ। शार्विलक के लिए एक ओर जहाँ इस यश ने बहुत दिनों की अभिलाषा की पूर्ति का वरदान दिया, वहीं दूसरी ओर वह सदा के लिए क्रूर राजश्यालक भानुदत्त का द्वेष-भाजन भी बन गया। भानुदत्त प्रजा में बड़े ही क्रूर और घृणास्पद व्यक्ति के रूप में प्रसिद्ध था। लोगों ने उसे मथुरा का क्रूर ग्रह मान रखा था। आज के अपमान बोध से उसके चित्त में भयंकर प्रतिक्रिया होगी इस विषय में किसी को भी सन्देह नहीं था। लेकिन चण्डसेन भी कम शक्तिशाली नहीं थे। जनता का विश्वास था कि भानुदत्त मथुरा के लिए धूमकेतु की तरह अनिष्टकर होकर आया है। उनका यह भी विश्वास था कि इस भयंकर क्रूरकर्मा राजश्यालक से मथुरा की मान रक्षा यदि कोई कर सकता है तो वह चण्डसेन ही है। इस मल्ल प्रतियोगिता के परिणाम से प्रजा के हृदय में एक प्रकार का प्रच्छन्न संतोष भी दिखायी दिया। लोगों ने ऐसा समझा कि अब चण्डसेन और भानुदत्त में खुलकर विरोध हो जायगा।

शार्विलक जब अपने आवास-स्थल पर पहुँचा तो वहाँ एक सशस्त्र राजकीय दण्डधर उसकी प्रतीक्षा करता हुआ दिखायी दिया। शार्विलक ने उस दण्डधर की ओर ध्यान नहीं दिया। उस दिन नगरी में इस प्रकार के सशस्त्र दण्डधर हर नुक्कड़ पर तैनात थे। परन्तु जब शार्विलक उस दण्डधर के पास पहुँचा तो उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वह व्यक्ति 'सावरू भैया' कहकर उसके चरणों पर लोट गया। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह कौन व्यक्ति है जो उसे इस नाम से जानता है। क्षण भर ठिठककर वह पहचानने का प्रयत्न करने लगा। उसे उठाया, फिर ध्यान से उसके चेहरे की ओर देखा और स्तब्ध रह गया। वह तो हलद्वीप का वीरक है! यहाँ कैसे आ गया? उसे याद आया, आर्यक के साथ खेलनेवाला पम्मन दुसाध का लड़का वीरक। वह अचरज के साथ बोल उठा "वीरक तू यहाँ कैसे!" वीरक बोला, "भाग्य का मारा यहाँ आ गया हूँ भैया। मगर मैंने तुम्हें कब पहचान लिया! जब तुम अखाड़े में उतरे तभी मैंने मन ही मन कहा कि यह जरूर सावरू भैया है मगर पूरा विश्वास नहीं हुआ। पर जब तुम्हें नजदीक में देखा तो पता

विश्वास हो गया। मैं कही सावरू भैया को पहचानने म गलती कर सकता हूँ।" शार्विलक न प्यार स उसकी पीठ थपथपायी। बोला, देख र वीरक, मैं सावरू भैया नही, शार्विलक हू। मुझ शार्विलक भैया कहकर ही पुकार। आ मेरे साथ, तुमस बहुत सी बात करनी है। वीरक चुपचाप उसके पीछे हो लिया।

वीरक ने शार्विलक को हलद्वीप की बहुत सी बात बतायी। जब उसने बताया कि वद्धगोप उसा चल ज न के बाद कितन दुखी हुए कितने ज्योतिषियो और तान्त्रिका स उसका अता पता बताने का अनुरोध किया महीना तक किस प्रकार खाना पीना भी भूल गये तो शार्विलक की आखा म आसू आ गय। उसने रोकर कहा वीरक मैन बडा पाप किया है जो ऐसे देवतातुल्य पिता को दुखी बनाया। वीरक न गोपाल आयक क बारे म भी नये समाचार दिय। उसने बताया कि गोपाल आयक तुम्ह खोजने क लिए आश्रम स भाग खडा हुआ। परन्तु भगु-आश्रम क विष्णु मन्दिर के पुजक ने उसे पकडकर वद्धगोप क पास पहुँचा दिया। उसने एकाध बार और भी भागने की कोशिश की लेकिन हर बार पकड लिया गया। साल भर बाद वद्धगोप न देवरात की सलाह से उस बाधने का प्रयत्न किया और उसका विवाह मणालमजरी से कर दिया गया। वीरक ने मणालमजरी की प्रशसा करत हुए कहा वह साक्षात लक्ष्मी है भैया। जब से घर म आयी सारा घर जगमग हो उठा है। खेता म फसल दुगुनी होन लगी है गाया के दूध बढ गय है और सारा गाव खुशहाल हो उठा है। आयक भैया का मन भी घर मे लग गया है। रहकर वह तुम्ह याद करते अवश्य है परन्तु अब भागने का प्रयत्न नही करते। कैसा गबरू जवान हुआ है कहते नही बनता। मैं तो उस बीस वष का जवान देखकर ही आया था लेकिन लगता था जैस कोइ मदमत्त हाथी हो। राहुल दादा भी मान गय है कि उनका यह शिष्य एक दिन अपन पौरुष स ससार को चकित कर देगा। उसके पुटठे देखने लायक है। छाती ऐसी चौडी हो उठी है जस वज्र का कपाट हो। शरीर ऐसा गठा हुआ और चिकना है कि देखनेवाले की आख फिसल जाती है। उसक साथ जब भाभी बैठती है तो ऐसा लगता है कि राम जानकी का ही जोडा है। लोग उस अवतार मानते है भैया। गाव की स्त्रियाँ मणालमजरी को मैना मौसी कहती ह और कहती ही नही सचमुच मानती ह कि वह देवी हैं। गुरु गुरु म जाति म इस विवाह का विरोध भी हुआ था। लोग कहते थ कि वद्ध गाप वेश्या की लडकी का घर म ला रह ह। लेकिन अपन शील सौजन्य और दयालुता स उसन सबका हृदय जीत लिया है। सुनिल गाप जो पहल सूना तुइब ने का तैयार थ अब कहना प्रगट ह कि जब उनकी नयी बहू आया तो पहल भाभी क चरण छ लन पर ही वह घर म लायी गयी।

शार्विलक अयात श्यामरूप यह सब सुनकर गदगद हो गया। वह आयक क बार म बहुत सुनना चाहता था लेकिन वद्ध ब्राह्मण स उसन जो कुछ सुना था वह उसक चित्त को कुरेद रहा था। वह जानना चाहता था कि आयक क बार म नगर की कहानी क्या फल गयी। उसन आतुरतापूर्वक पूछा आग क्या हुआ

धीरज ?" वीरक थोड़ा हिचका। ऐसा जान पड़ा कि उसके मन में दुविधा है कि आगेवाली बात कहे या नहीं। शार्विलक ने आतुरता के साथ कहा, "वीरक सब कह जा। कुछ छिपा मत। मेरा मन सुनने को व्याकुल है।" वीरक ने हकलाते हुए कहा, "कह ही तो रहा हूँ भैया।" और फिर रुआँसे स्वर में बोला, "विवाह के दो वर्ष बाद वृद्धगोप ने संसार ही छोड़ दिया। गोपाल आर्यक अनाथ हो गया। तुम इधर चले आये और पिता स्वर्ग सिधार गये। तुम ही बताओ उस गरीब की क्या हालत हुई होगी। लेकिन उसकी सहनशक्ति और धीरता अद्भुत है। उसने इस दुख को बहादुरी से साथ लेना है। गाँव के वृद्धों ने उसकी देख-रेख में कोई कमी नहीं आने दी है। सभी कहते हैं कि आर्यक हलद्वीप का यश सारे संसार में फैलायेगा। इसे कोई कष्ट नहीं होना चाहिए। मेरे पिता ने मुझसे कहा कि वीरक तू आर्यक की सेवा कर। उसे कोई तकलीफ हुई तो तेरी चमड़ी उधेड़ दूँगा। सो मैं भैया की सेवा में लग गया। दादा मुझी थे। मैं। भाभी ने तो मुझे कभी यह समझने ही नहीं दिया कि मैं दूसरी जाति का हूँ और दूसरे घर का हूँ। बड़ा सुखी रहा मैं। लेकिन विधाता से यह सहा नहीं गया। मुझे हलद्वीप छोड़कर भागना पड़ा। भाग्य खोटा हो तो कोई क्या कर सकता है भैया।"

वीरक अपने भाग्य का दुखड़ा और भी रोना चाहता था परन्तु शार्विलक का चित्त बुरी तरह से विक्षिप्त हो गया। "क्या कहा वीरक। पिता भी नहीं रहे। बाला आर्यक अनाथ हो गया और मैं शूलचक्रांकित साँड की तरह अनगल घूम रहा हूँ। हाय वीरक! जिसने मुझ अनाथ को इतने प्रेम से पाल पोसकर बड़ा किया उस देव तुल्य पिता के भी मैं किसी काम नहीं आ सका।" शार्विलक फूट-फूटकर रो पड़ा। "बता वीरक उस भोले बालक की क्या दशा हुई होगी। बेचारा ऊपर से बोला कुछ नहीं होगा। भीतर से उसका चित्त इस अभागे दस्यु-मर्त्य को याद जरूर करता होगा। उस मक्खन की पुतली सी मृणालमंजरी की क्या दशा हुई होगी?" शार्विलक ने अपना सिर पीट लिया। वीरक ने उसे सम्हालते हुए कहा, "भैया, धीरज रखो।" शार्विलक ने फफककर कहा, "कैसे धीरज रखूँ वीरक तू भी तो छोड़कर चला आया।" "क्या चला आया, क्या चला आया! क्या चला आया तू। अरे भाग्यहीन कुछ दिन तो सहारा देता।" अब वीरक के रोने की बारी थी। "ठीक कहते हो भैया मैं सचमुच भाग्यहीन हूँ। मैं छोड़कर आया नहीं मुझे जान पड़ा भागना पड़ा।" शार्विलक के मन में शंका हुई, "भागना पड़ा? क्या भागना पड़ा?" "बताता हूँ भैया। तुम थोड़े शान्त हो जाओ।" वीरक ने कहा।

वीरक बोला, "मृणालमंजरी का विवाह करके आचार्य देवरात जो आश्रम से निकले तो निकले। कुछ भी पता नहीं चला कि वे कहाँ चले गये। उनके जाने के बाद और वृद्धगोप की मृत्यु के बाद हलद्वीप का राजा निरंकुश हो गया। आये दिन प्रजा को लूटा जाता है, बहू-बेटियों का शील नष्ट किया जाता है, खेतों की पकी फसल काट ली जाती है। आर्यक के अतिरिक्त और किसी में साहस नहीं था कि

तू चिन्ता न कर। आवश्यकता पड़ने पर तू अपनी भाभी को भी सिंहनी की भाँति दहाड़ती पायेगा। मैं इस समय उनका साथ नहीं दे सकती इसलिए तुझसे प्रार्थना कर रही हूँ कि उन्हें अकेला न रहने दे।

शार्विलक को रोमांच हो आया। उसकी छाती दुगुनी हो गयी। एकाएक बोल उठा, 'साधु आर्यक! साधु मणालमंजरी! तुम लोगों से ऐसी ही आशा थी।' वीरक थोड़े उत्तेजित स्वर में बोला, "राजा के दुष्ट सभासद उसकी मति मारते हैं। उसकी आड़ में भले घर की बहू-बेटियों का शिकार करते हैं। यदि आर्यक भैया न होते तो हलद्वीप आज श्मशान बन गया होता।" फिर जरा प्रसन्नता से खिलता हुआ धीरे से बोला, "भाभी हम लोगों के साथ जाना चाहती थीं भैया लेकिन मैंने उन्हें रोक दिया। उन दिनों उनके पैर भारी थे। अब तो कोई बच्चा भी हुआ होगा।"

शार्विलक उछल पड़ा, "सच वीरक, तू सच कहता है? तू तो मेरे कानों में अमृत उँडेल रहा है।"

"सच कहता हूँ भैया, तुमसे मैं झूठ बोलूँगा? मेरी माँ ने खुद बताया था। वह दिन रात भाभी के पास रहती हैं। मुझे डाँटती थीं कि भाभी से इधर-उधर की बातें न किया कर। उसका शरीर भारी है। पहले तो मैं कुछ समझ नहीं पाया भैया लेकिन बाद में माँ ने समझाकर बताया कि बच्चा होनेवाला है। तब से मैं लड़ाई झगड़े की बात उनसे नहीं बताता था और आर्यक भैया के पेट से तो कोई बात निकलती ही नहीं थी। एक दिन ऐसा हुआ कि मैं आर्यक भैया के साथ हलद्वीप के बाजार से लौट रहा था। घुप्प अँधेरा था। हम दोनों के हाथ में लाठी के सिवा दूसरा कोई शस्त्र नहीं था। ऊपर ऊपर से सारा हलद्वीप शान्त जान पड़ता था। लेकिन ऐसा प्रतीत होता था कि राजा के भेड़ियों के मुँह लहू का स्वाद लग गया था। वे लुक छिपकर अब भी अपनी हरकतों से बाज नहीं आ रहे थे। हम दोनों जब नगर की सीमा से बाहर निकले तो एक आम्र-वाटिका में रोने का स्वर सुनायी पड़ा। स्पष्ट ही कोई ऐसी बात थी जो असाधारण जान पड़ती थी। हमारे कान खड़े हुए। हमने धीरे धीरे उस स्थान की ओर बढ़कर रहस्य जानने का प्रयत्न किया। अँधेरे में कुछ दिखायी नहीं दे रहा था केवल एक करुण क्रन्दन सुनायी पड़ रहा था। वाटिका के बाहर तो तारों की झिलमिलाहट से थोड़ा प्रकाश भी आ रहा था किन्तु भीतर तो एकदम सूची भेद्य अन्धकार था। वाटिका में स्पष्ट ही जान पड़ता था कि कुछ दुष्ट लोगों ने किसी बालिका को पकड़ रखा है। आवाज केवल उसी गरीब की आ रही थी। अँधेरे में पेड़ तक तो दिखायी नहीं दे रहे थे आदमी का तो कहना ही क्या! फिर कितने आदमी थे और उनके हाथ में क्या क्या शस्त्र थे यह जानना तो असम्भव ही था। आर्यक भैया ने बुद्धिमानी की। भीतर न घुसकर बाहर से ही उन्होंने सिंह की भाँति दहाड़ा और धरती पर लाठी पटककर कहा, 'मैं आर्यक आ गया हूँ। दुष्टों को अपने किये का फल भोगना होगा। सावधान!' मैंने भी उनके स्वर में स्वर मिलाकर दहाड़ा। न तो किसी के

सर ।" वीरक ने उत्साह के साथ कहा, "क्या काम है भैया, कहो !" श्यामरूप ने मथुरा आने का अपना उद्देश्य उसे बताया और जिस बालिका को खोजने वह आया था, उसका हुलिया भी बता दिया । वीरक ने उत्साह के साथ उसका पता लगाने का आश्वासन दिया ।

मथुरा में फिर एक बार खलबली मच गयी । सुना गया कि आयक के स्थान पर पाटलिपुत्र के सम्राट ने किसी और दुर्धर्ष सेनापति को नियुक्त किया है और कड़ा आदेश दिया है कि दस दिन के भीतर मथुरा पर अधिकार कर लिया जाये । यह भी सुना गया कि नया सेनापति सम्राट् का अत्यन्त विश्वासपात्र कोई भटार्क है, जो सम्राट के परिवार का भी सदस्य है । इस समाचार ने मथुरा के जीवन में खलबली पैदा कर दी । बड़े-बड़े सेठ और सामन्त भागने लगे । राजा भागे तो नहीं, पर आवश्यकता पड़ने पर तुरन्त भाग निकलने की पूरी तैयारी कर लेने के बाद ही युद्ध की तैयारी में लगे । राज पितृव्य चण्डसेन ने सच्चे शूर की भाँति मथुरा में रहकर ही शत्रु से लोहा लेने का निश्चय किया, पर इतनी सावधानी उन्होंने भी बरती कि अपने परिवार को चुपचाप उज्जयिनी भेजने की व्यवस्था कर ली । श्यामरूप के बल, पौरुष और शील पर उन्हें पूरा विश्वास हो गया था । उन्होंने श्यामरूप को परिवार के साथ जाने का आदेश दिया । श्यामरूप कुछ चिन्तित हुआ, पर स्वामी की आज्ञा का पालन करने के सिवा उसके पास कोई रास्ता नहीं रह गया था । मांदी की चिन्ता उसे बराबर बनी रही । उसके मथुरा आने का उद्देश्य ही मांदी का पता लगाना था । पता लग नहीं रहा है, लगेगा, ऐसी आशा भी नहीं है । वीरक आता है नित्य आकर कह जाता है कि मांदी का पता वह अवश्य लगायेगा । पर कहां लगा पा रहा है !

वह उदास हो गया । उसे उज्जयिनी जाना पड़ेगा । मांदी का पता अब कभी नहीं लगेगा । वह गयी सो गयी । एक क्षण के लिए बिजली की जो रेखा कौंधी थी, वह उसके मस्तिष्क और हृदय को आर पार चीर गयी थी । क्या ऐसा हुआ? यह क्या एक क्षण की घटना है ? श्यामरूप का मन कहता है कि यह एक दिन की बात नहीं है, यह जन्म जन्मान्तर की कहानी है । नहीं तो मांदी से उसका क्या सम्बन्ध है, कौन होती है वह उसकी ? क्या वह इतना व्याकुल है ? ऐसा तो होता ही रहता है । क्या रखा है इस अकारण उधेड़-बुन में ?

अवसर देखकर श्यामरूप ने पूछा था, 'अच्छा भाभी, यह मादी कौन है ? कब से हमार साथ है ?' भाभी ने बताया था कि मादी थोड़े ही दिना से आयी है। श्रावस्ती के पास की ही किसी बस्ती की है। मा बाप उसके नही है। कहते है किसी गरीब ब्राह्मण की बेटी है। पता नही, क्या बात हुई थी, घरवाला ने निकाल दिया था। फिर किसी नटिनी के साथ हमार दल मे आ गयी थी। बहुत रोती थी। क्या करे बेचारी ? चौधरानी न उसे अपने पास ही रख लिया था। यहा तो उसे निकलन नही दिया जा सकता। सो छिपकर ही रहती थी। हम लोग कुछ और आगे बढ जायेंगे, तो उसे भी काम पर भेज दिया जायगा। अभी तो नयी है। फिर चौधरानी का कहना है कि उसे किसी अच्छी जगह दिया जा सकता है। इस दल के साथ रहने योग्य तो है नही। सुदर है। नगर म किसी गणिका के यहा बेच देने पर अच्छा पैसा मिल सकता है !'

श्यामरूप सन्न रह गया था। भाभी इस प्रकार कह रही थी, मानो यह कोई बहुत मामूली बात हो किसी प्रकार का अधम या पाप इसम है ही नही। श्यामरूप ने कहा था यह तो उचित नही है भाभी ! हमारे दल का ऐसा काम तो नही करना चाहिए।' भाभी फिर हँसी थी 'यह तो होता ही है देवर ! तुम्हारी कई भाभिया ऐसे ही दल म आयी है। बहुएँ विपदा की मारी आ जाती है तो उन्हे दुत्कारा तो नही जा सकता और इस दल म कितनी खप सकती है ? कही न कही तो उनको ठिकाने लगाना ही पड़ता है। जो जरा सुदर होती है उनकी माग होती है, नही होती, वे हमारी तरह काम धधा कर पेट पालती है। पिछले साल ही तो एक ऐसी सुदर लड़की आयी थी। दो दिन मे ही ग्राहक मिल गये। इसके भी मिल जायगे। चौधरानी कहती है कि मथुरा या उज्जयिनी म किसी गणिका के यहा इसकी अच्छी कदर होगी।'

श्यामरूप का हृदय धक धक करने लगा था। चौधरी जम्भल, उसका सरल विद्या गुरु यह काम करता है ! उसका हृदय उस दुखिनी बाला के लिए रो उठा था। सोचने लगा था, कैसे लोगो के बीच रह रहा है ! पर फिर उसने भाभी के सहज निर्विकार चेहरे को भी देखा था। कहती है यह तो होना ही रहता है। विपदा की मारी वधुओ को कही न-कही ठिकाने तो लगाना ही पड़ता है। मानो विपदा की मारी वधुएँ कही भी बच दी जायें, कोई दोष नही होता। यह सब क्या है ? मगर इस बालिका के पास अपने कुल परिवार मे लौट जाने का उपाय भी तो नही है। श्यामरूप व्याकुल भाव मे सोचने लगा था चौधरी पाप कर रहा है या पुण्य ?

उसका मन बुरी तरह मथित हो उठा था। उस बालिका का भोला, निरीह, सलज्ज मुखमण्डल उसे याद आया था। हाय हाय, यह क्या अनर्थ होने जा रहा है ! यह लडकी बेच दी जायगी ! सो भी किसी गणिका के हाथ ! श्यामरूप का क्या कोई कर्तव्य नही है इस मामले मे !

देवर को जल्दी पडाव पर पहुँचने का आदेश देकर, भाभी चली गयी थी और

न व्याख्यान जारी रखा, 'मैं तो कहती थी, मांदी के साथ ही देवर का व्याह कर दिया जाय। वह बेचारी बड़ी सुखी होती। एक दिन मैंने उसके मन की बात जान ली थी। वह तैयार थी। मैं सोच रही थी कि तुमसे पूछूं, पर इस चट चौधराती का आभास मिल गया। चटपट उसे मथुरा के दलाला के हाथ बेच दिया। पैसे के लिए वह सब कर सकती है। बेचारे चौधरी की तो कुछ चलती ही नहीं। वे तो मांदी के साथ तुम्हारे व्याह की बात सोच रहे थे। कल दोनों में खूब लड़ाई हुई। मगर बेचारे करें भी तो क्या करें! मांदी तो चली गयी!'

भाभी की बात से श्यामरूप को आश्चर्य हुआ था। वह सोच रहा है कि क्या ही अच्छा होता यदि भाभी ने यह न बताया होता कि उसने मांदी का मन जान लिया था। निश्चय ही जिस दिन भाभी से उसकी बात हुई थी, वह वही दिन था जिस दिन अचानक मांदी के उदास चेहरे पर उसे देखकर एक मन्दस्मित की रेखा उभर आयी थी और वह अपराधी की भाँति जल्दी जल्दी भाग गयी थी। वह मन्द मधुर हँसी श्यामरूप के कलेजे को बेध गयी थी। उस हिम्मत में मानो साभिप्राय आश्वासन था, मानो उसमें एक संदेशा था— उस दिन की बात का बुरा न मानना, मैं प्रसन्न हूँ।' क्या नहीं समझा तूने मूरख! तुझे समझना चाहिए था। मांदी क्या ढोल बजाकर अपनी स्वीकृति की सूचना देती! मुग्धाओं की यही तो रीति है। धिक् मूरख श्यामरूप!

मांदी उस दिन हल्की सी सफेद साड़ी पहने थी। उसके प्रफुल्ल चम्पक के समान मुख पर झीना घूंघट था। श्यामरूप को देखकर उसकी आँखें चंचल हो उठी थीं— मानहुँ सुरसरिता विमल जल उछरत जुग मीन!

और फिर वह हँसी भी क्या थी, जैसे क्षण भर के लिए कुहर के घने आवरण को भेदकर ऊषा की किरणें खिल गयी हों, जैसे बादलों की परत फोड़कर चन्द्र-मरीचियाँ चमक उठी हों। श्यामरूप उस मन्दस्मित को नहीं भूल सकता। वह उस निरंतर मथ रहा है। कब तक मथता रहेगा? हाय, विद्रुम पात्र में रखे मोती उस लाल लाल अधरों में थिरक गयी मुसकान के सामने फीके हैं, प्रवालमणि के पुष्पाधान में हँसते हुए मल्लिका कुसुम भी उसके सामने निष्प्रभ हैं। एक क्षण में श्यामरूप ने क्या पाया, क्या खोया!

श्यामरूप को स्मरण है कि भाभी की बात सुनकर वह उस दिन एकाएक व्याकुल होकर खड़ा हो गया था— कब चली गयी भाभी? मथुरा गयी? कहाँ गयी, कब गयी, रात रोते गयी? हाय भाभी, तूने पहले क्यों नहीं बताया?'

भाभी ने सोचा भी नहीं था कि वह ऐसा व्याकुल हो उठेगा। उसने सहज भाव से ये बातें कह दी थीं। जो होना था सो हो गया। श्यामरूप अब शाविलक बनकर मथुरा आ गया है और अब स्वामी के कार्य से उज्जयिनी जा रहा है। विधाता ही वाम है!

वीरक भी दो तीन दिनों से नहीं आया। पता नहीं क्या बात हो गयी है। आता है तो श्यामरूप का मन थोड़ा बहल जाता है।

ने व्याख्यान जारी रखा, 'मैं तो कहती थी, मांदी के साथ ही देवर का ब्याह कर दिया जाये। वह बेचारी बड़ी सुखी होती। एक दिन मैंने उसके मन की बात जान ली थी। वह तैयार थी। मैं सोच रही थी कि तुमसे पूछूं, पर इस चट चौधरानी को आभास मिल गया। चटपट उसे मथुरा के दलालों के हाथ बेच दिया। पैसे के लिए वह सब कर सकती है। बेचारे चौधरी की तो कुछ चलती ही नहीं। वे तो मादी के साथ तुम्हारे ब्याह की बात सोच ही रहे थे। कल दोनों में खूब लड़ाई हुई। मगर बेचारे करें भी तो क्या करें! मादी तो चली गयी!'

भाभी की बात से श्यामरूप को आश्चर्य हुआ था। वह सोच रहा है कि क्या ही अच्छा होता यदि भाभी ने यह न बताया होता कि उसने मादी का मन जान लिया था। निश्चय ही जिस दिन भाभी से उसकी बात हुई थी, वह वही दिन था जिस दिन अचानक मांदी के उदास चेहरे पर उसे देखकर एक मन्दस्मित की रेखा उभर आयी थी और वह अपराधी की भाँति जल्दी जल्दी भाग गयी थी। वह मन्द-मधुर हँसी श्यामरूप के कलेजे को बेध गयी थी। उस हिम्मत में मानो साभिप्राय आश्वासन था, मानो उसमें एक सँदेशा था—'उस दिन की बात का बुरा न मानना, मैं प्रसन्न हूँ।' क्यों नहीं समझा तूने मूर्ख! तुझे समझना चाहिए था। मादी क्या ढोल बजाकर अपनी स्वीकृति की सूचना देती! मुग्धाओं की यही तो रीति है। धिक मूर्ख श्यामरूप!

मादी उस दिन हल्दी सी सफेद साड़ी पहने थी। उसके प्रफुल्ल चम्पक के समान मुख पर झीना घूंघट था। श्यामरूप को देखकर उसकी आखें चंचल हो उठी थीं—मानहुँ सुरसरिता बिमल जल उछरत जुग मीन।

और फिर वह हँसी भी क्या थी, जैसे क्षण-भर के लिए कुहरे के घने आवरण को भेदकर ऊषा की किरणें दिख गयी हों, जैसे बादलों की परत फोड़कर चन्द्र-मरीचिया चमक उठी हों। श्यामरूप उस मन्दस्मित को नहीं भूल सकता। वह उसे निरन्तर मथ रहा है। कब तक मथता रहेगा? हाय विद्रुम पात्र में रखे मोती उस लाल-लाल अधरों में थिरक गयी मुसकान के सामने फीके हैं प्रवालमणि के पुष्पाधान में हसते हुए मल्लिका कुसुम भी उसके सामने निष्प्रभ हैं। एक क्षण में श्यामरूप ने क्या पाया, क्या खोया!

श्यामरूप को स्मरण है कि भाभी की बात सुनकर वह उस दिन एकाएक व्याकुल होकर खड़ा हो गया था—'कब चली गयी भाभी? मथुरा गयी? कहाँ गयी, कब गयी, रोते-रोते गयी? हाय भाभी, तूने पहले क्या नहीं बताया?'

भाभी ने सोचा भी नहीं था कि वह ऐसा व्याकुल हो उठेगा। उसने सहज भाव से ये बातें कह दी थीं। जो होना था, सो हो गया। श्यामरूप अब शार्विलक बनकर मथुरा आ गया है और अब स्वामी के काम से उज्जयिनी जा रहा है। विधाता ही वाम है!

वीरक भी दो-तीन दिन से नहीं आया। पता नहीं क्या बात हो गयी है। आता है तो श्यामरूप का मन थोड़ा बहल जाता है।

बाबूजी। केवल दस सुवर्ण के लिए इतना मारा है। उन्हें पकड़िये। मैं तो परदेशी हूँ।' मुझे कुतूहल हुआ। परदेशी होने से अपराध कम हो जाता है? जरा और डाँटकर कहा, 'परदेशी तो क्या जुआ क्या खेलने आया था?' जुआरी ने डरते डरते कहा, 'मैं गाड़ियों के मुखिया की गाड़ी में चढ़कर बाहर कर दिया। जुआ न खेलता तो क्या करता? यह विद्या बड़ी उत्तम विद्या है। जुआ तो युधिष्ठिर भी खेलते थे। मैं तो उन्हें अपना गुरु मानता हूँ। दरिद्रता भी पाया जुए से, घर और पत्नी जुए से, खाया-पीया जुए से, सब कुछ खोया जुए से।* मगर बड़ा मारा है मालिक, बड़ा मारा है। यहाँ के लोग बड़े लम्पट हैं। श्रावस्ती में हारनेवाले को कोई मारता नहीं। उनको अवश्य दण्ड मिलना चाहिए। एक का नाम माथुर है, एक का दर्दुरक। पूरे पिशाच हैं दोनों।'

उसकी बहकी-बहकी बातों से मुझे हँसी आ गयी। बोला, 'तो तू श्रावस्ती से यहाँ जुआ खेलने आया है। तुझे तेरे साथियों ने गाड़ी से क्या धकेल दिया रे युधिष्ठिर के चेले?' जुआरी बोला, 'नाराज क्यों होते हो बाबू, जुए में जोखिम तो उठाना ही पड़ता है। श्रावस्ती में जुआ खेलकर बहुत जीता था, बहुत हारा भी था। युधिष्ठिर का चेला तो हूँ ही। उन्होंने द्रौपदी को दाँव पर रख दिया तो मैंने भी रदनिका को दाँव पर रख दिया। हार गया। युधिष्ठिर भी हार गये थे। किसी तरह दस सुवर्ण इकट्ठा किया कि फिर से नया घर बसाऊँ। देखा, तीन गाड़ियाँ लादे कपोतक अपनी कमाई पर निकला है। उसका काम ही स्त्रियों का क्रय-विक्रय है। मैंने एक लड़की को खरीदना चाहा। नाम उसका मांदी था, बेहद सुन्दर थी। बड़ा घाघ है वह। सौ सुवर्ण माँगता था, मैं पाँच से ऊपर नहीं जा सका। सोचा, थोड़ा मोल भाव करने से दस तक पर राजी हो जायेगा। बात करते-करते गाड़ी पर बैठ गया। लोभी तो है मगर गप्पी भी है। बैठा लिया और गप्प हाँकता रहा। मथुरा तक आते-आते मैं दस सुवर्ण तक उठ गया था, पर वह भाग्यहीन टस से मस नहीं हुआ। कहता रहा, मथुरा में सौ सुवर्ण तो बातों-बातों में मिल जायेंगे। पर मथुरा में इन दिनों आतंक छाया है। लोग घबराये हुए हैं, गणिकाएँ भाग रही हैं। कपोतक का टिप्पस नहीं बैठा। वह उज्जयिनी की ओर बढ़ा। उसे किसी ने बता दिया था कि उज्जयिनी में सौ सौ सुवर्ण तो मामूली लड़कियों के मिल जाते हैं। मैंने सोचा कि यही मौका है। कह दिया कि मांदी को दस सुवर्ण में दे दो, नहीं तो राजा के पास व्यवहार (मुकदमा) करूँगा। उसने कुछ कहा तो नहीं, पर भाव दिखाया कि राजी हो गया है। बोला, नगर के बाहर चलो तो सब हो जायेगा। मैं बातों में आ गया। कुछ दूर जाने पर उसने अपने आदमियों को इशारा किया। वे झपटकर मेरी ओर बढ़े और हाथ-पैर बाँधकर किनारे फेंक दिया। स्वयं उज्जयिनी

* द्यूतेन च धनेन च दारा मित्र द्यूतेन च।
दत्तं भुक्तं द्यूतेन च सर्वं नष्टं द्यूतेन च॥

— मृच्छकटिक

वीरक ने उछलकर कहा, "अवश्य चलूंगा भैया, मथुरा से जी भर गया है। श्यामरूप ने उसे साथ ले लेने की व्यवस्था करने का वचन दिया।

दस

विदिशा से उज्जयिनी जाने का मार्ग यद्यपि ऊँचे-नीचे पहाड़ों के भीतर से ही जाता था, तथापि वह काफी प्रशस्त था। उस पर दो रथ आसानी से चल सकते थे। दो व्यक्ति बात करते हुए उसी मार्ग पर चले जा रहे थे। इनमें से एक ठिगने कद का गोल-मटोल शरीरवाला था। उसके शरीर पर यज्ञोपवीत इस प्रकार दिखायी दे रहा था, जैसे किसी बबूल के पेड़ पर मालती की माला आड़ी करके डाल दी गयी हो। उसके दाहिने कंधे पर एक पीला उत्तरीय था और कमर में पचकक्ष अधोवस्त्र बँधा हुआ था। एक हाथ में एक छोटी-सी पोटली थी जिसमें पता नहीं क्या-क्या बँधा था। लेकिन गाठों के बन्धन की उपेक्षा करके एक लाल रंग का कनटोप दूर से ही दिखायी दे जाता था। उसके हाथ में बांस की एक लाठी थी, जो ऊबड़-खाबड़ और टेढ़ी थी। जान पड़ता था कि रास्ता चलने में सहारा देना उसका मुख्य उद्देश्य नहीं था। उसके ललाट पर त्रिपुण्ड की धवल रेखाएँ पसीने से बुरी तरह क्षत विक्षत हो गयी थीं। ऐसा जान पड़ता था कि अकाल वृष्टि के कारण कोई मरुभूमि अचानक छोटे-छोटे नालों से सिक्त हो गयी है। उसके होंठ मोटे मोटे और नाक चपटी थी। छोटी छोटी आँखें बिल्व फल में चिपकायी हुई कौड़ियों की तरह जगमग दीख रही थीं। सिर घुटा हुआ था, किन्तु पीछे की ओर एक मोटी सी चोटी भी लटक रही थी। जब चलता था तो उसके पैर नाचने से लगते थे। उसके साथ चलने वाला व्यक्ति बहुत ही सौम्य प्रकृति का जान पड़ता था। उसका कद लम्बा था शरीर गौरवर्ण था और पहनावे में कौशेय उत्तरीय और कौशेय अधोवस्त्र भी थे। इस आदमी को फूलों का शौक जान पड़ता था। शिखा में गन्ने में और बाहु मूल में उसने मालती की माला धारण कर रखी थी। उसके हाथ में एक वेत्रयष्टि थी जो किसी समय निश्चित ही सुरुचिपूर्ण रही होगी परन्तु अब धूलि धूसर हो गयी थी। उत्तरीय को उसने बड़ी रुचि के साथ चुनट देकर सजाया था। उसके पास कोई गठरी नहीं परन्तु कंधे पर एक ऐसा झोला लटक रहा था, जो बड़ा ही सुरुचिपूर्ण और दोनों ओर से बन्द था। निश्चय ही उसने इसमें यात्रा के सम्बल रूप कुछ पाथेय रखे होंगे। उसका ललाट प्रशस्त था, आँखें हरिण की आंखों की तरह मनोहर थीं, कान लम्बे और नाक किंचित शुक-तुण्ड की तरह से आगे की ओर

के आंचल में छिपे हुए बीज अंकुर के रूप में फूट पड़ते हैं तो मेरा हृदय हाय-हाय कर उठता है। किस अज्ञात प्रियतम के लिए यह कसमसाहट है ? कौन है वह, जिसे पाने के लिए अंग-अंग में व्याप्त प्राण शक्ति व्याकुल हो उठी है ? मैं व्याकुल हो उठता हूँ दादा, जब देखता हूँ कि इन पर्वतों पर फैली हुई विशाल वनराजि रूप से रंग से गंध से न जाने किस अनन्त प्रियतम के लिए आँचल बिछाये बैठी है ! क्या यह सारा आयोजन केवल बात-की बात है ? क्या इसका कोई प्रयोजन नहीं है ? और दूर की बात छोड़ो मेरे ही मुँह से जो अजस्र श्लोक धारा उमड़ती है, उसी का क्या उद्देश्य है ? यदि वनस्थली के पुष्प पल्लवों का सम्भार निरर्थक नहीं है तो इस श्लोक धारा का भी कोई उद्देश्य होना चाहिए। कौन है जो इस उफनती हुई वाग्धारा का लक्ष्य है ! अब तक मैंने जो कुछ किया है वह मुझे निरुद्देश्य, निरर्थक, वन्ध्य और लक्ष्यहीन जान पड़ता है। मैं सचमुच व्याकुल हूँ दादा !"

माढव्य ने आश्चर्य के साथ किशोर कवि की ओर देखा। बोला, 'मित्र, मैं तुम्हारी पूरी बात नहीं समझ पा रहा। या तो तुम मूर्ख हो या पागल। मैंने ऐसी बातें कभी नहीं सुनीं कि श्लोक लिखने का भी कोई ऐसा लक्ष्य होता है। मैं तो श्लोक लिखने का एक ही लक्ष्य जानता हूँ—'धन कमाओ, यश कमाओ, सुख से रहो। घर में कोई अच्छी गृहिणी ले आओ सद्गृहस्थ बनो ! राजा का सम्मान पाओ प्रजा का मनोरंजन करो और बस !'—देखो बन्धु ! मैं राजसभा में रह चुका हूँ। बहुत से कवियों को देख चुका हूँ। खुद भी कभी कभी श्लोक बनाने का प्रयत्न कर चुका हूँ परन्तु तुम्हारे जैसा लक्ष्य पाने के लिए व्याकुल कवि मैंने आज तक नहीं देखा। मेरी ब्राह्मणी एक बार ऐसी उलटी पुलटी बात कर रही थी। कह रही थी 'मन बड़ा व्याकुल हो रहा है। रुलाई आ रही है। जी नहीं लगता।' मैंने पूछा, 'क्या ?' बोली, 'पता नहीं।' मैं समझ गया कि इसके मस्तिष्क में कुछ विकार आ गया है। मैंने कहा, 'देवीजी सीधे मैके चली जाओ।' वह इस पर भी राजी नहीं हुई। फिर इस सोटे को देखते हो न इसी का सहारा लिया। चुपके से चली गयी। दो महीने बाद अपने आप लौट आयी। मैंने पूछा, मन व्याकुल तो नहीं है ?' बोली 'ठीक है।'" फिर माढव्य ठठाकर हँसा, "मगर तुम्हें कहाँ भेजूं मित्र ? गृहिणी की दवा तो मैके में है। तुम्हारी कहाँ है ?"

चन्द्रमौलि बुरी तरह आहत हुआ। दीर्घ निःश्वास लेकर बोला, "तुम तो परिहास करने लगे दादा मगर मेरी भी दवा कहीं न-कहीं तो होगी ही। कुछ दिन अगर तुम्हारा साथ रहा तो मैं भी ठीक होकर ही रहूँगा।' चन्द्रमौलि ने दीर्घ निःश्वास लिया।

अबकी बार माढव्य की आँखें भर आयीं। बोला, "सखे, बुरा मान गये ? मैंने तो तुम्हारा मन फेरने के लिए ही ऐसी बात कही थी। सभी जानते हैं कि माढव्य मूर्ख है। तुम भी जान लो। उसे समय असमय का ज्ञान नहीं रहता। शायद मुझसे चूक हो गयी हो। बुरा न मानो मित्र मुझे अपना सच्चा हितू समझो। मूर्खता करूँ तो हँस देना। मगर एक बात जानने की इच्छा हो रही है। कहो तो पूछूँ ?"

चन्द्रमौलि इस बार सचमुच हँसा। बोला, "पूछो दादा, तुम्हारी बातें बडी प्यारी लगती है। क्या जानना चाहते हो ?"

माढव्य ने कहा, "जानना यह चाहता हूँ मित्र कि तुम क्या माढव्य से भी बडे मूर्ख हो ? सारी दुनिया जानती है कि माढव्य से बडा मूर्ख और कोई नही। परन्तु माढव्य जानता है कि वह कितना चतुर है। जानते हो मित्र, सारी दुनिया अपनी कुशलता का मूल्य वसूल करती है, लेकिन माढव्य अपनी मूर्खता का दाम वसूल करता है। राजसभा मे मूर्खता भी बिकती है मित्र, और माढव्य ही उसे बेचता है। वह विदूषक बनकर अपनी मूर्खता का दाम राजा से कसकर वसूलता है। अब तो तुम मानोगे न कि सबसे बडा मूर्ख होकर भी माढव्य चतुर है ?"

चन्द्रमौलि ने विकसित नेत्रों से माढव्य को देखा और कहा, 'अवश्य, तुम चतुर हो दादा!"

माढव्य ने आँखें नचाकर कहा, "माढव्य से बडा मूर्ख कौन होगा, जानते हो ? पहला वह जो अपनी चतुरता का दाम न वसूल कर सके। दूसरा वह जो अपने को बिना दाम बेच आये। ठीक है न सखे ?"

चन्द्रमौलि ने हँसते हुए कहा, "इसमे क्या सन्देह है!"

माढव्य आकाश की ओर देखता हुआ बोला, "मुझे सन्देह हो रहा है मित्र, कि तुम दूसरी श्रेणी के मूर्ख हो। कही बिना मोल के बिक आये हो। है न ठीक ?"

चन्द्रमौलि हँसने लगा। माढव्य ने हाथ मे यज्ञोपवीत लेकर सूर्य की ओर देखा और बोला, "सूर्य देवता को साक्षी रखकर कह रहा हूँ मित्र, माढव्य ही इस मूर्खता से तुम्हारा उद्धार करेगा।"

चन्द्रमौलि इस बार ज़ोर से हँस पडा। थोडी कृतज्ञता का भाव भी उसकी आँखो मे दिखायी दिया। बोला, "तुम्हारे जैसा दादा पाकर मैं धन्य हुआ हूँ, मगर तुमने अपने ऊपर बहुत बडा उत्तरदायित्व ले लिया है, क्योंकि मैं कहा बिना मोल ही बिक आया हूँ इसका पता भी तुम्हे ही लगाना पडेगा।"

माढव्य हँसने लगा। बोला, "देखने मे ही अपरिपक्व जान पडते हो मित्र, तुम्हे पकड मे ले आना जरा मुश्किल मालूम पडता है। इस समय तो मैं तुम्हें जैसा जैसा बताऊँ, वैसा वैसा करते जाओ। पहला काम करना होगा उज्जयिनी मे चलकर राजा की स्तुति करना, बढिया श्लोक बनाकर। बाकी मैं देख लूगा। और देखो वह जो व्याकुल वेदनावाली बात है न, उसे मेरे-जैसे मूर्खों को मत बताना। उज्जयिनी मे उनकी संख्या कम नही है।" फिर जरा रहस्यभरी मुद्रा मे आख चमकाते हुए माढव्य ने कहा 'वहाँ जुगाली करनेवाले ही भर पडे हैं। माढव्य अगर मूर्ख है तो राजसभावाले बैल हैं। ये सब बातें उसी से कहना जो तुम्हारा समानधर्मा हो। सबसे कहते फिरोगे तो पागल करार दिये जाओगे। मेरा प्रस्ताव स्वीकार है न मित्र ?'

चन्द्रमौलि ने अनुतप्त स्वर मे उत्तर दिया, "राज-स्तुति!"

माढव्य ने हँसते हुए कहा, "हाँ, राज स्तुति।'

चन्द्रमौलि का चेहरा प्रफुल्ल हो उठा। बोला, 'हिमालय सचमुच ही अप्सराओं का निवास है, दादा! आपने जिन अप्सराओं की चर्चा सुनी है, उनको तो मैं नहीं जानता, लेकिन मेरे मन में नारी सौंदर्य का जो उत्तम रूप है, वह मैं हिमालय में सर्वत्र देखता हूँ।"

माढव्य बोला, "यह तो तुम अपने मन की बात बता रहे हो। उतना तो मैं भी जानता हूँ। यही मेरी ब्राह्मणी मे कुछ उन्नीस-बीस होती होगी। मेरा तो ऐसा विश्वास है कि तुम्हारे-जैसा कवि मेरी ब्राह्मणी को देखकर तिलोत्तमा ही समझेगा। मैं तो देवयानि की अप्सराओं की बात पूछ रहा हूँ। मेरे घर के पास एक बड़ी-सी बाडी है। बचपन से ही सुनता आ रहा था कि उसमें कोई चुड़ैल रहती है। जानते हो, मेरे किशोर मित्र, एक दिन चाँदनी रात में मैंने सचमुच उसे देख लिया। अहा, क्या रूप था उसका! तुम देखते तो जरूर कोई श्लोक बनाते। मगर मैं सोचने लगा था कि लोग उसे चुड़ैल क्या कहते हैं? अप्सरा क्या नहीं कहते? अप्सराएँ भी तो अपना रूप आप बना लेती है और जब चाहती हैं तो गुम हो जाती हैं! अब बताओ, तुमने कैसी अप्सरा देखी?"

चन्द्रमौलि हँसा। बोला, 'दादा, तुमने जैसी अप्सरा की बात सुनी है वैसी अप्सरा तो मैंने नहीं देखी, लेकिन हिमालय की भूमि सचमुच ऐसी है कि वह देव-वधुओं की क्रीडा स्थली कही जा सके। सुन्दरियों के शृंगार में काम आनेवाली गैरिक रंग की चट्टानें दूर-दूर तक फैली हुई है। जब कभी उनके ऊपर बादलों का संचार होता है जो ऐसा जान पड़ता है कि असमय में ही सन्ध्याकाल आ उपस्थित हुआ। क्योंकि बादलों के कोर पर उन धातुमयी शिलाओं की रंगीनी छा जाती है और सारा पर्वत अकाल-सन्ध्या की शोभा से जगमगा जाता है। सुन्दरियाँ जिन रंगों से अनेक प्रकार का प्रसाधन करती हैं और प्रेम प्लुत अवस्था में जिनकी स्याही बनाकर प्रणय गीत लिखा करती है, वे धातु रस वहाँ प्रचुर मात्रा में प्राप्त होते है और प्रेम पत्र लिखने के लिए तो वहाँ भोज पत्रों के घने जंगल भरे पड़े है। मेरे गाँव से कुछ और ऊँचाई पर किन्नर देश है जहाँ की सुन्दरियों का वंशी वादन लोक विश्रुत है। ये वंशियाँ एक विशेष प्रकार के कीचक नामक बाँस से बनती है। इनका घना जंगल दूर दूर तक फैला हुआ है। देवदारु और शाल वृक्षों की कतारें सचमुच मनमोहक होती है। मदमत्त गजराज अपनी खुजली मिटाने के लिए जब शाल वृक्षों पर घिस्सा देते है तो वनस्थली आमोद मग्न हो जाती है। हिमालय सब प्रकार से अभिराम है दादा! तुम्हारे मन में जिस प्रकार की अप्सराओं की कल्पना है, उसे मैं ठीक ठीक पकड़ नहीं पा रहा हूँ। परन्तु हिमालय के गाँव गाँव में ऐसी सुन्दरियाँ तुम्हें मिलेंगी जिनका भोलापन और सौंदर्य कंचन में जड़ी हुई मणि की तरह तुम्हें अभिभूत कर देगा। मणियों की जन्म भूमि, गज मुक्ताओं का आश्रय स्थान, वर्ण-गन्ध-सम्पन्न पुष्पों की मादक शोभा, निर्झरों का अनवरत संगीत, विविध भाँति के पक्षियों का कल-कूजन, बाल व्यजन धारण करनेवाली चमरी गायों की नयनाभिराम शोभा, कृष्णसार मृगों की उन्मद मण्डलियाँ, सब

हिमालय को देवभूमि बना देती है।' चन्द्रमौलि अभिभूत की भाँति बात कह रहा था।

माढव्य ने बीच में ही टोका, 'सुना है मित्र कि हिमालय में हिम बहुत होता है। वहाँ सर्दी पड़ती है। जब मैं सुनता हूँ कि महीनों वहाँ बर्फ पड़ी रहती है तो मेरी ठठरी काँप उठती है।'

चन्द्रमौलि जरा उदास होकर कहने लगा, 'सो तो है दादा! लेकिन एक बार यदि तुम योजनों तक फैले हुए रुई के पहाड़ की तरह सजे हुए हिमाच्छादित शिखरों को देखो तो सर्दी की बात भूल जाओगे। ऐसा जान पड़ेगा कि ताण्डव मत्त धूर्जटि का अट्टहास ही जमकर हिम बन गया है। योजन योजन तक इस पुंजीभूत अट्टहास के समान हिम परम्परा बनती गयी है। हिमालय पृथ्वी का मानदण्ड है दादा। ऐसा जान पड़ता है कि विधाता ने निखिल ब्रह्माण्ड को तौलने के लिए ही एक विशाल तराजू बनाया है, जिसमें विशाल हिमालय मानदण्ड है और पूर्व और पश्चिम के महान समुद्र उस तराजू के पलड़े हैं। एक बार तुम मेरे साथ मेरा गाँव देखने अवश्य चलो दादा!'

माढव्य बोला, 'खतरा है मित्र! एक तो यदि मैं अप्सराओं का दल देखने का संकल्प करूँ तो मेरी ब्राह्मणी अखण्ड उपवास का व्रत लेगी और अगर किसी उपाय करके वहाँ पहुँच भी जाऊँ तो फिर इधर लौटने की कोई आशा नहीं। शिव के पार्षद अवश्य मुझे अपने गणों में भरती कर लेंगे। मेरा मानदण्ड मेरी ब्राह्मणी है। अप्सराओं की कल्पना करता हूँ तो उससे जी भर इधर-उधर की बात सोचता हूँ और शिव के गणों की बात सोचता हूँ तो अपने-आपमें जी भर इधर उधर समझता हूँ। ना बाबा मेरा हिमालय और कैलास तो घर में ही पड़ा है। अब चलो, तुम्हें उज्जयिनी दिखाऊँ। यहाँ भी तुम्हें अप्सराएँ मिलेंगी और वे सारी बातें किसी न किसी रूप में मिल जायेंगी जिनके कारण तुम इतने उच्छ्वसित हो रहे हो। मेरा मन कहता है कि एक बार अगर तुम उज्जयिनी देखोगे तो यक्षपुरी को भूल जाओगे।"

चन्द्रमौलि के चेहरे पर प्रसन्नता की रेखा दिखायी पड़ी 'दादा, तुम जहाँ रहोगे वहाँ स्वर्ग अपने आप आ जायेगा। मैं तुम्हारे साथ अवश्य उज्जयिनी चलूँगा।" फिर दोनों उठ खड़े हुए और उज्जयिनी की ओर चलने लगे।

चन्द्रमौलि ने दीर्घ निःश्वास लेकर कहा, "उज्जयिनी! जानते हो दादा, उज्जयिनी देखने के उद्देश्य से ही निकला हूँ। इस नाम में ही एक जादू है। उज्जयिनी अर्थात ऊपर की ओर जीतने की अभिलाषा रखनेवाली। मेरे हृदय में जब अकारण भयंकर ज्वाला धधकने लगती है तो मैं अनुभव करता हूँ कि इस विराट विश्व में व्याप्त शिव और शक्ति की जो अनादि लीला चल रही है, वह उससे अलग नहीं होनी चाहिए। वही विराट लीला तो दादा, कण-कण में रूप रूप में स्फुरित हो रही है। उज्जयिनी ऊर्ध्वगामिनी अभिसार-यात्रा का प्रतीक है। पुराण मुनियों ने बताया है कि शिव भी देवी का हृदय जय करने के लिए

ता व्याकुलता है, दादा ! उज्जयिनी की कहानी म यही तो बताया गया है कि दवी की प्रसन्नता से शिव को असुर विध्वस करने मे समथ शस्त्र प्राप्त हुआ। शोभा और शालीनता के प्रसाद रूप मे प्राप्त अस्त्र ही अजेय होता है, दादा !

चन्द्रमौलि का सहज कोमल स्वर आवेश मे कुछ उत्तेजित हो गया था। उसके मुख मण्डल पर भी लाल कान्ति झलक उठी थी। माढव्य फिर कुछ परिहास की बात करने जा रहा था। इसी समय दूर से भागते हुए उसी तरफ बढनेवाले किसी व्यक्ति की पदचाप सुनायी पडी। थोडी ही देर मे वह व्यक्ति भागता हुआ माढव्य और चन्द्रमौलि के निकट आ पहुँचा। निस्सन्देह वह बहुत परेशान नजर आ रह था। शायद देर तक वह भागता चला आ रहा था। चन्द्रमौलि और माढव्य को देखकर वह ठिठक गया। माढव्य ने कुछ आग बढकर उससे पूछा, 'क्या बात है?"

उस आदमी ने भयत्रस्त दष्टि से पीछे की ओर देखा और बोला, 'अगर तुम लोग उज्जयिनी जा रहे हो तो लौटो। वहा बडी विध्वस लीला चल रही है। मुझे पकडने के लिए सशस्त्र दण्डधर इधर भी बढे आ रहे हैं। वे देवताओ के विध्वसक हैं, ब्राह्मणा के शत्रु है, प्रजा के उत्पीडक है। जल्दी किसी छिपने लायक स्थान की ओर भागो, नही तो वे तुम्हे खण्ड खण्ड करके कुत्तो और सियारा को खिला देंगे।'

भय के मारे माढव्य चीख उठा। चन्द्रमौलि के ललाट पर भी चिन्ता की रेखाएँ उभरी, परन्तु वह विचलित नही हुआ। उस मनुष्य ने कहा, सब बताता हूँ। पहले छिपने की जगह खोजो। एक बार मेरे हाथ मे कोई शस्त्र आ जान दो और फिर मैं अकेले पूरी सेना को देख लूगा। इन म्लेच्छा ने मुझे किसी प्रकार का शस्त्र लेन का अवसर ही नही दिया। मैं प्रतिशो र लूगा। मैं जीवित रहना चाहता हूँ। इस समय भागो। कही छिपकर मेरे और अपने प्राणो की रक्षा करो।" उस मनुष्य की विशाल भुजाएँ कपाट के समान वक्षस्थल, कसी हुई पेशियां, और लम्बे गठे हुए शरीर को देखकर विश्वास होता था कि वह जो कुछ कह रहा था, वह दर्पोक्ति मात्र नही था। चन्द्रमौलि और माढव्य उसके साथ पावत्य माग की ओर भागन लगे।

ग्यारह

आयक विजयी सेनापति के रूप म विख्यात हो चुका था। पर जिस समय उसकी कीर्ति बहुत ऊँचे शिखर पर पहुँच रही थी, उसी समय उसका दुष्ट ग्रह भी उच्च

स्थान पर आ गया था। वह विराग हारिक सेनापति का काम छो
हुआ। बहुत दिनों तक वह गहन विन्ध्याटवी में निरुद्देश्य भटक
अपने ऊपर ही क्रोध था। क्या वह ऐसा शिथिल चरित्र का व्यक्ति
कहीं जम नहीं पा रहा है? कीर्ति की भूख उसकी मिटी नहीं
समझ नहीं रहा है कि कीर्ति क्या चीज़ है? उसने सुना है कि
लक्ष्य यह होना चाहिए कि लोग अनन्त काल तक यश गाते रहें।
वान है यह रुग्ण होता है वृद्ध होता है मर जाता है। पर एक
है—यश काय। उसमें न रोग होता है न जरा आती है न मृत्यु
है। यह यश काय मनुष्य के पुरुषार्थ से प्राप्त होता है। आयक
प्राप्त करने को व्याकुल है। परन्तु पा नहीं रहा है। विन्ध्याटवी
प्रेरणा देती है। पत्थरों की छाती भेदकर निकले हुए विराट्
शक्ति की महिमा बताते हैं। कहते हैं पुरुष वह है जो पाषाण
की उत्पाटिनी शक्ति की उपेक्षा कर पाताल से अपना भोग्य
आयक पाषाण भेद के लिए व्याकुल है आँधी की उपेक्षा करने
पर कहीं कोई बाधा है जो उसे पथभ्रष्ट कर देती है। क्या है वह

एक शिलाखण्ड पर बैठा हुआ वह सोच रहा है। सोचता जा
परिणाम नहीं निकल रहा है। वह थककर चूर हो गया है पर
न मानसिक उत्तेजना की वृद्धि ही की है। कहीं एक बड़ी कमज
में है जो उसे भागने को बाध्य करती है। उत्साह उसमें कम नह
की सहायता के लिए प्राण दान का उसका संकल्प ज्यों-का-त्य
सम्मुख युद्ध में अकेले ही सहस्रों को ललकारने की उसकी क्षमता
नहीं आयी है अनुगता के लिए सर्वस्व उलीचकर दे देने की
आंशिक रूप से भी शिथिल नहीं हुई है, स्वामी के लिए सब कुछ
की उसकी प्रतिज्ञा में कहीं भी त्रुटि नहीं आयी है फिर भी उसे
उसका चित्त अनुतप्त है। उसमें कहीं भयंकर अपराध का भाव है।
हुआ? उसका शील कहीं न-कहीं म्लान हो गया है। वह जान
भी अनजान बना फिरता है। वह सब जानता है लेकिन ठीक स
है। जानना वस्तुस्थिति के प्रत्यक्षीकरण का नाम है समझना वस्तु
परम्परा की अवगति का नाम है। आयक जानता है समझ नहीं

हलद्वीप के भर राजा रुद्रसेन के विरुद्ध उसी ने सम्राट
पाटलिपुत्र के सिंहासन पर आसीन होते ही उन्होंने आयक का
बोले, आयक, तुम मेरे केलि सखा हो। हलद्वीप के रुद्रसेन का
का काम मैं तुम्हें ही सौंपना चाहता हूँ।' आयक ने उस आज्ञा
स्वीकार किया था। परन्तु चलते समय उसका मन बैठ गया
मंजरी से भेंट होगी। क्या मुँह लेकर उसके सामने वह उपस्थि
को उसने क्या छोड़ दिया? उसका क्या अपराध था? पर अ

अपराध था ? चन्द्रा उसके गले पड गयी। उससे पिण्ड छुडाने के लिए वह भागा। पर चन्द्रा उसका पीछा करती गगा पार भी आ पहुँची। उसने घृणा से मुह फेर लिया। लेकिन चन्द्रा है कि हटने का नाम ही नही लेती। आयक को भय था कि लोग क्या सोचेंगे। वह और भी पूरब की ओर भागा। चन्द्रा ने पीछा नही छोडा। उसे कायर पुरुष कहती, सेवा मे जुट जाती और आयक पानी पानी हो जाता। चन्द्रा उद्वेल प्रेम है—प्रेम, जो सीमा नही जानता, उचित अनुचित का विवेक नही रखता, जो सदा उफनता ही रहता है। चन्द्रा का प्रेम एक भयकर बुभुक्षा है एक सतत अतृप्त पिपासा। उसे समझ मे नही आता कि इसमे दोष क्या है क्या आयक भागा भागा फिर रहा है। क्या वह मृणाल और आयक दोनो को समान रूप से प्रेम नही कर सकती ? आयक को वह कायर और डरपोक कहती है। परन्तु आयक उसका कृतज्ञ भी है। उसी के कारण वह सम्राट् समुद्रगुप्त के निकट पहुँच सका। हलद्वीप विजय का अवसर भी उसी के इशारे पर प्राप्त हुआ। पता नही क्या सम्राट चन्द्रा के किसी इगित की उपेक्षा नही कर सकते।

आयक ने हलद्वीप पर गुप्त सम्राट् की ध्वजा फहरायी। महाराज समुद्रगुप्त 'उत्खात प्रतिरोपण' की नीति मे विश्वास करते थे। जिसे उखाडा, उसी को फिर से रोप दिया। समुद्रगुप्त की यह नीति ही भावी गुप्त साम्राज्य की सफलता की नीव थी। जिस राजा का राज्य जीता, उसे ही अपना अधीनस्थ राजा बना दिया। यही 'उत्खात प्रतिरोपण' कहा जाता था। परन्तु हलद्वीप मे उन्होने ऐसा नही किया। उखाडा रुद्रसेन को, सिंहासन पर आरोपित किया गोपाल आयक को। आयक हलद्वीप का अधिपति बन गया। आयक को कैसा कैसा लगा ! उत्सव हुए, यज्ञ याग हुए पर अभिमानिनी मृणालमजरी नही आयी। आयक को ही जाना पडा। कैसा देखा उसने अपनी प्राणप्रिया मृणालमजरी को ! मुह पीला पड गया था, केश लटियाकर एक वेणी बन गये थे, हिरण की आँखो से प्रतिद्वद्विता करने वाली आखें भीतर धँस गयी थी। वह एक मलिन श्वेत साडी पहने हुए थी। पास मे दो ढाई वर्ष का बडा ही कमनीय कान्ति बालक था। हलद्वीप के अधिपति आयक ने जाते ही मृणाल के चरणो पर सिर रख दिया, 'देवि, प्रिय, क्षमा करो इस भण्ड को !' मृणाल घबराकर खडी हो गयी। आखो से अविरल अश्रु धारा बह चली। वाणी रुद्ध हो गयी। वह ताकती रही, जड की भांति, स्तब्ध की भांति। बच्चा भय और कुतूहल से आयक की ओर देखता रहा। उसने अपनी माँ से तुतलाकर पूछा, 'माँ, यह कौन है ?' मृणाल की सज्ञा लौट आयी। बोली, 'अपने भाग्य से पूछ बेटा !' आयक रो पडा। मृणाल ने आयक को उठाया। आज आयक के मन मे मृणाल की वही स्नेहार्द्र मूर्ति बार-बार उठ रही है। हाय हाय, मैंने कैसी देवी को कष्ट दिया ? और क्यों ? कुछ बात भी तो हो ! लोग क्या सोचेंगे ? यह एक चिन्ता ही उसे बुरी तरह ध्वस्त कर देती है। लोग क्या सोचेंगे, लोग क्या सोचेंगे।

शिला पट्ट को कसकर पकड लिया आयक ने, मानो गिरकर लुढक जाने का

स्थान पर आ गया था। वह विरक्त होकर सेनापति का काम छोडकर भाग खडा हुआ। बहुत दिनों तक वह गहन विन्ध्याटवी में निरुद्देश्य भटकता रहा। उसे अपने ऊपर ही क्रोध था। क्या वह ऐसा शिथिल चरित्र का व्यक्ति है? क्या वह कही जम नही पा रहा है? कीर्ति की भूख उसकी मिटी नही है, पर वह ठीक समझ नही रहा है कि कीर्ति क्या चीज़ है? उसने सुना है कि मनुष्य-जीवन का लक्ष्य यह होना चाहिए कि लोग अनन्त काल तक यश गाते रहे। यह शरीर नाशवान है यह रुग्ण होता है वृद्ध होता है, मर जाता है। पर एक यश का शरीर है—यश काय। उसमे न रोग होता है, न जरा आती है, न मृत्यु का आक्रमण होता है। यह यश काय' मनुष्य के पुरुषार्थ से प्राप्त होता है। आर्यक उसी यश काय को प्राप्त करने को व्याकुल है। परन्तु पा नही रहा है। विन्ध्याटवी उसे सोचने की प्रेरणा देती है। पत्थरो की छाती भेदकर निकले हुए विराट वृक्ष उसे जीवनी शक्ति की महिमा बताते हैं। कहते हैं पुरुष वह है जो पाषाण को छेदकर, आँधी की उत्पाटिनी शक्ति की उपेक्षा कर, पाताल से अपना भोग्य खीच लाता है। आर्यक पाषाण भेद के लिए व्याकुल है आँधी की उपेक्षा करने को कृत-सकल्प है। पर कही कोई बाधा है जो उसे पथभ्रष्ट कर देती है। क्या है वह?

एक शिलाखण्ड पर बैठा हुआ वह सोच रहा है। सोचता जा रहा है, पर कोई परिणाम नही निकल रहा है। वह थककर चूर हो गया है पर शारीरिक क्लान्ति ने मानसिक उत्तेजना की वृद्धि ही की है। कही एक बडी कमजोरी उसके चरित्र मे है जो उसे भागने को बाध्य करती है। उत्साह उसमे कम नही है, दीन-दुखियो की सहायता के लिए प्राण दान का उसका सकल्प ज्यो-का-त्यो बना हुआ है, सम्मुख युद्ध मे अकेले ही सहस्रो को ललकारने की उसकी क्षमता मे रच मात्र कमी नही आयी है अनुगतो के लिए सर्वस्व उलीचकर दे देने की उसकी उदारता आशिक रूप से भी शिथिल नही हुई है, स्वामी के लिए सब कुछ निछावर कर देने की उसकी प्रतिज्ञा मे कही भी त्रुटि नही आयी है, फिर भी उसे भागना पडा है। उसका चित्त अनुतप्त है। उसमे कही भयकर अपराध का भाव है। क्यो? क्या ऐसा हुआ? उसका शील कही-न-कही म्लान हो गया है। वह जानता है, पर जानकर भी अनजान बना फिरता है। वह सब जानता है लेकिन ठीक समझ नही पा रहा है। जानना वस्तुस्थिति के प्रत्यक्षीकरण का नाम है समझना वस्तुस्थिति की कारण परम्परा की अवगति का नाम है। आर्यक जानता है समझ नही रहा है।

हलद्वीप के भर राजा रुद्रसेन के विरुद्ध उसी ने सम्राट को उकसाया था। पाटलिपुत्र के सिंहासन पर आसीन होते ही उन्होने आर्यक का आह्वान किया। बोले, 'आर्यक तुम मेरे केलि सखा हो। हलद्वीप के रुद्रसेन का मान मदन करने का काम मैं तुम्हे ही सौंपना चाहता हूँ। आर्यक ने उस आज्ञा को उल्लास के साथ स्वीकार किया था। परन्तु चलते समय उसका मन बैठ गया था। वहाँ मृणाल मजरी से भेंट होगी। क्या मुह लेकर उसके सामने वह उपस्थित होगा? मृणाल को उसने क्या छोड दिया? उसका क्या अपराध था? पर आर्यक का भी क्या

अपराध था ? चन्द्रा उसके गले पड गयी। उससे पिण्ड छुडाने के लिए वह भागा। पर चन्द्रा उसका पीछा करती गंगा पार भी आ पहुँची। उसने घृणा से मुह फेर लिया। लेकिन चन्द्रा है कि हटने का नाम ही नही लेती। आयक को भय था कि लोग क्या सोचेंगे। वह और भी पूरब की ओर भागा। चन्द्रा ने पीछा नही छोडा। उसे कायर पुरुष कहती, मैना मे जुट जाती और आयक पानी पानी हो जाता। चन्द्रा उद्वेल प्रेम है—प्रेम, जो सीमा नही जानता, उचित अनुचित का विवेक नही रखता, जो सदा उफनता ही रहता है। चन्द्रा का प्रेम एक भयकर बुभुक्षा है, एक सतत अतृप्त पिपासा। उसे समझ म नही आता कि इसमे दोष क्या है क्या आयक भागा भागा फिर रहा है। क्या वह मृणाल और आयक दोनो को समान रूप से प्रेम नही कर सकती ? आयक को वह कायर और डरपोक कहती है। परन्तु आयक उसका कृतज्ञ भी है। उसी के कारण वह सम्राट समुद्रगुप्त के निकट पहुँच सका। हलद्वीप विजय का अवसर भी उसी के इशारे पर प्राप्त हुआ। पता नही क्या, सम्राट चन्द्रा के किसी इंगित की उपेक्षा नही कर सकते।

आयक ने हलद्वीप पर गुप्त-सम्राट की ध्वजा फहरायी। महाराज समुद्रगुप्त 'उत्खात प्रतिरोपण' की नीति मे विश्वास करते थे। जिसे उखाडा उसी को फिर से रोप दिया। समुद्रगुप्त की यह नीति ही भावी गुप्त साम्राज्य की सफलता की नीव थी। जिस राजा का राज्य जीता, उसे ही अपना अधीनस्थ राजा बना दिया। यही 'उत्खात प्रतिरोपण' कहा जाता था। परन्तु हलद्वीप मे उन्होने ऐसा नही किया। उखाडा रुद्रसेन को, सिंहासन पर आरोपित किया गोपाल आयक को। आयक हलद्वीप का अधिपति बन गया। आयक को कैसा कैसा लगा ! उत्सव हुए यज्ञ-याग हुए, पर अभिमानिनी मृणालमजरी नही आयी। आयक को ही जाना पडा। क्या देखा उसने अपनी प्राणप्रिया मृणालमजरी को ! मुह पीला पड गया था, केश लटियाकर एक वेणी बन गये थे, हिरण की आखो से प्रतिद्वंद्विता करने वाली आखें भीतर धँस गयी थी। वह एक मलिन श्वेत साडी पहने हुए थी। पास मे दो ढाई वर्ष का बडा ही कमनीय कान्ति बालक था। हलद्वीप के अधिपति आयक ने जाते ही मृणाल के चरणो पर सिर रख दिया, 'देवि, प्रिय, क्षमा करो इस भण्ड को !' मृणाल घबराकर खडी हो गयी। आखो से अविरल अश्रु धारा बह चली। वाणी रुद्ध हो गयी। वह ताकती रही, जड की भाति स्तब्ध की भाति। बच्चा भय और कुतूहल से आयक की ओर देखता रहा। उसने अपनी मा से तुतलाकर पूछा 'माँ, यह कौन है ?' मृणाल की सज्ञा लौट आयी। बोली, 'अपने भाग्य से पूछ बेटा !' आयक रो पडा। मृणाल ने आयक को उठाया। आज आयक के मन मे मृणाल की वही स्नेहार्द्र मूर्त्ति बार बार उठ रही है। हाय हाय मैंने कैसी देवी को कष्ट दिया ? और क्यो ? कुछ बात भी तो हो ! लोग क्या सोचेंगे ? यह एक चिन्ता ही उसे बुरी तरह ध्वस्त कर देती है। लोग क्या सोचेंगे लोग क्या सोचेंगे !

शिला पट्ट को कसकर पकड लिया आयक ने, मानो गिरकर लुढक जाने का

भय हो। वह व्यथित भाव से कराह उठा, क्या उसका सारा जीवन इस एक ही प्रश्न की चट्टान पर टूट टूटकर बिखर जायगा? इलद्वीप से फिर दूसरे युद्ध क्षेत्र पर जाने में थोड़ा कष्ट हुआ। मृणाल को वह इतनी जल्दी छोड़कर नहीं जाना चाहता था। क्षमा मिलने पर वह थोड़ा प्रगल्भ भी हुआ था। लेकिन मृणाल ने उसे रुकने नहीं दिया। उसके कारण आयक के यश में रंचमात्र भी मलिनता आये, यह उसे बिल्कुल स्वीकार नहीं था। वह चाहती थी कि चन्द्रा भी वहीं आकर उसके साथ रहे। पर आयक चन्द्रा को भूल जाना चाहता था। महाराजाधिराज के बलाधिकृत के रूप में उसने विद्रोही और विरोधी राजाओं का दमन किया। उसे मथुरा तक विजय करने की आज्ञा थी। प्रत्येक युद्ध में वह सिंह की भाँति लड़ा। समुद्रगुप्त की विजय पताका का अभियान कहीं नहीं रुका। इसी बीच एकाएक उसे सम्राट का रोष भरा पत्र मिला। सम्राट् को पता चल गया था कि चन्द्रा उसकी विवाहिता वधू नहीं है। पता देनेवाली स्वयं चन्द्रा थी। सम्राट् ने लिखा था कि उनके बलाधिकृत को इस प्रकार के पाप कार्य में लिप्त जानने पर प्रजा में असंतोष होगा और राजशक्ति को धक्का पहुँचेगा। सम्राट् ने आयक की वीरता से संतोष प्रकट किया था पर उसके असदाचरण से रोष प्रकट किया था। वही प्रश्न सम्राट के सामने था— लोग क्या सोचेंगे?' आयक की आँखों में लुत्ती निकलने लगी। सेना के लोग भी आज नहीं तो कल इस बात को अवश्य जान लेंगे। वे क्या सोचेंगे? जो लोग श्रद्धा से आज जय जयकार करते हैं वे कल घृणा से मुँह फेर लेंगे। वे क्या सोचेंगे? कौन उसकी बात सुनेगा कौन उस पर विश्वास करेगा? कल हर सैनिक के मन में घृणा की लहर उठेगी। उनका सेनानायक परस्त्री लम्पट है, वह अश्रद्धेय है अपावन है कुल धर्म से पतित है। रात भर उसे नींद नहीं आयी। नहीं, अब उसका पत्ता कट गया, अब उसका यश म्लान हो गया। अब वह सेना का सचालन नहीं कर सकेगा। उसे भाग जाना चाहिए। लोग क्या सोचेंगे? वह सचमुच भाग खड़ा हुआ। अपने सबसे विश्वस्त सहयोगी भटार्क को बुलाकर उसने कहा, 'तात, मुझे आवश्यक कार्य से कुछ दिन बाहर रहना होगा। तब तक तुम सेना का सचालन करते रहो।' और चुपचाप वहाँ से खिसक गया था। अपनी परमप्रिय तलवार के सिवा उसने कुछ भी साथ नहीं लिया। पूरब की ओर जाने में भय था, इसलिए वह पश्चिम की ओर बढ़ता गया। उसे स्वयं नहीं मालूम कि वह कहाँ जा रहा है। केवल चलता ही चला है दिङ्मूढ की भाँति। नदियाँ मिली है, पार कर गया है, पर्वत मिले है, लाँघ गया है, जंगल आये हैं रौंद गया है। कहाँ, क्यों? लोग क्या सोचेंगे? यह एक प्रश्न उसके सारे किये-कराये को ध्वस्त कर देता है। उसकी सारी वीरता यहीं टकराकर चूर चूर हो जाती है। उसके लिए लोकापवाद दुर्भेद्य चट्टान बन जाता है।

शिला पट्ट पर आयक बैठा था, फिर लेट गया। दूर तक गिरि शृंखला की ऊबड़ खाबड़ अधित्यका, वनपनसों के झाड़ खदिर की वनस्थली महुआ की उच्च-शीर्ष वृक्षावली। दूर तक कोई मनुष्य नहीं दिखायी देता। निश्चय ही इसमें हिंस्र

जन्तु भी है। दिखायी नही दे रहे है, पर कभी भी दिखायी दे जा सकते है। आयक का मन व्याकुल है। रह रहकर उसका चित्त अपने असफल जीवन को कोसता है। कोई सहारा नही। पिता स्वग सिधार गय। गुरु देवरात जा घर से निकले सो लुप्त ही हो गये। भाई श्यामरूप का कही अता पता नही। पर मणालमजरी हे सेवा और सतीत्व की मर्यादा, तपस्या की स्रोतस्विनी, साहस की उत्मभूमि पर मणाल को उसने कितना कष्ट दिया! क्या कारण था? यही कि लाग क्या सोचेंग। उसके चित्त मे मृणालमजरी की दीप्त किन्तु शुष्क कान्ति उभर आयी। अपराधी हूँ देवि, तुम क्षमा कर सकती हो, मै कैसे क्षमा करूँ अपन इस दुबल चरित्र को? लोग क्या सोचेंग!'

आयक क्लान्त था, शरीर और मन दोना से अवसन्न। कहा आ गया है वह! वह बुरी तरह उद्विग्न था। बिजली की तरह उसके मन मे एक बात चमक उठी। यही क्या सोचा जाये कि लोग क्या सोचेंगे! यह भी तो मन मे प्रश्न उठना चाहिए कि मणाल क्या सोचेगी? मृणाल न जब भरे नयना से उम युद्ध के अभियान के लिए विदा किया था तो क्या उसने सोचा था कि उसका पति भाग खडा होगा? जब वह सुनेगी कि यह भाग्यहीन आयक भाग गया है तो वह क्या सोचेगी? उत्तर की कल्पना करके वह चीख उठा। हाय दुनिया भर की बात सोचनेवाला आयक कभी अपनी सती साध्वी पत्नी की बात सोचता ही नही! धिक!

ऐसा जान पडा कि आयक की छाती पर आरा चल रहा है। क्या अज्ञ अभाजन लोगा की बात का ही मूल्य है? मणाल जैसी शीलवती साध्वी की बात कभी उसके मन मे क्यो नही उठी? क्या मृणाल के प्रति उसका प्रेम झूठा है? हाय, आयक का यह सहारा भी क्या मृग मरीचिका है? वह फिर एक बार मृणाल की मानसी मूर्ति के चरणो पर गिर पडा। उसे शान्ति मिली। ऐसा लगा कि मणाल उसके सिर पर हाथ फेर रही है। कह रही है घबराते क्या हो, मैं जा हूँ। वह शिला-पट्ट पर लुढक गया और सो गया। स्वप्न म उसन देखा कि मृणाल उसका सिर अपनी गोद मे लेकर बैठी है। कह रही है, लोक का भय मिथ्या है। कत्तव्य का निणय बाहर देखकर नही किया जाता। तुम्हारा निर्णायक तुम्हार भीतर है। जो भी तुम्हारे पास है, उसी से उसकी पूजा करो। कमजोरिया जब उसे समर्पित कर दी जाती हैं तो शक्ति बन जाती है। सदा बाहर ही न देखो कुछ भीतर भी दखो। लोक भय झूठी प्रवचना है आत्म-भय दुर्भेद्य कवच है। मरे प्यारे अपन को देखो। मेरे लहुरावीर, तुम्ह अन्याय से लोहा लेना है। कौन क्या कहता है कहन दो। तुम्हारा अन्तयामी क्या कहता है वही मुख्य वस्तु है। घबराने की क्या बात है! मैं मृणाल हूँ सिंहवाहिनी की उपासिका, महिषमर्दिनी की अभिन्नाधिणी! भूल गये मेरे प्यारे मेरे लहुरावीर, मेरे मानमसिंह! अभी महिष मदन का काम बाकी है। आयक गाढ निद्रा मे स्वप्न देख रहा है। वह अमत रस की वर्षा म भीग रहा है।

अचानक उसे लगा कि कोई जगा रहा है। कह रहा है 'उठ जा र कगा...!

छिप जा कहीं। वे मग पीछा करते आ रहे हैं तुझे भी मार डालेंगे। वे जगली भैंसा के समान निघृण हैं। उठ छिप जा कहीं। मैं अकेला हूँ। निःशस्त्र हूँ। भाग रहा हूँ। प्राण भय से नहीं प्रतिशोध की इच्छा से। लौटूँगा, एक-एक को यमराज के द्वार पहुँचाऊँगा। एक एक को रगड़ूँगा। आज अकेला हूँ निःशस्त्र हूँ। उठ, छिप जा कहीं।

आयक को होश आया। यह कौन है जो जगली भैंसा की बात कर रहा है? भैंसा—महिष! अंतिम बात कहते-कहते वह आदमी दूर निकल गया था। आयक ने देखा एक महा बलवान मनुष्य तेज़ी से भागता जा रहा है। जब तक वह उससे कुछ पूछे तब तक वह और दूर निकल गया। आयक को लगा कि स्वर कुछ पहचाना हुआ है। थोड़ी देर तक वह सोचता रहा कि यह परिचित स्वर किसका हो सकता है। अचानक याद आ गया। यह तो श्यामरूप का स्वर था। एकदम श्यामरूप का। निस्सन्देह यह श्यामरूप की आवाज़ थी। वह चिल्ला पड़ा 'भैया मैं आयक हूँ! तुम अकेले नहीं हो! भैया भैया, रुको!' स्वर आकाश में दूर तक फैलकर रह गया। जहाँ पहुँचना चाहिए था वहाँ नहीं पहुँचा। आयक दौड़ा—"भैया, भैया!" पर वह आदमी अदृश्य ही हो गया।

आयक पीछे-पीछे दौड़ता गया, चिल्लाता गया पर कुछ लाभ नहीं हुआ। जो मिलता है वही दूर निकल जाता है। पता नहीं वह किधर चला गया। हाय, आयक का भाग्य ही ऐसा है। वह हताश होकर बैठ गया। उसका मन कहता है निश्चय ही यह और कोई नहीं श्यामरूप था। कौन लोग उसके पीछे पड़े हैं? निस्सन्देह वे लोग भयंकर रक्त पिपासु होंगे। आ ही रहे होंगे। कहीं छिपने का प्रयत्न करना चाहिए। उन्हें देखकर ही उनके बल पौरुष का अनुमान लगाया जा सकता है। श्यामरूप कह गया है वह लौटेगा। शस्त्र उसके पास नहीं है। आयक के पास है। उसने अपनी तलवार की ओर देखा। फिर आश्वस्त होकर छिपने का स्थान ढूँढ़ने लगा। पगडण्डी पकड़कर कुछ दूर चला। छिपने-लायक स्थान नहीं दिखा। फिर लौटकर पुरानी जगह पर पहुँचने का प्रयास किया। पर कदाचित वह दूसरी ओर था। वह और पीछे की ओर मुड़ा। एक सघन झाड़ी की ओर बढ़ा। कदाचित वहाँ छिपने का स्थान मिल जाये। वहाँ से चारों ओर देखा जा सकता है और शत्रु के बलाबल का अन्दाज़ा भी लगाया जा सकता है। वह झाड़ी के पास पहुँचा। उसे देखकर आश्चर्य हुआ कि एक मोटा-सा ठिगना आदमी गाढ़ी नींद में सो रहा है। निश्चय ही यह भी भागता भागता आया है। छिपने का स्थान पाकर एकदम सो ही गया है। हाथ की टेढ़ी लकड़ी हाथ में ही है। एक लाल-सा कनटोप सिर पर ही पड़ा हुआ है जिसके अन्दर से उसकी मोटी चुटिया निकल आयी है। कंधे पर की पोटली कंधे से ही जुड़ी हुई है पर तकिये का काम दे रही है। अब भी उसकी मोटी तोंद लुहार की भाथी नीचे हो रही है। ब्राह्मण जान पड़ता है।

आयक का [illegible] था। यह [illegible] शर्मा

आयक को लगा कि इस आदमी से कुछ अधिक जानकारी अवश्य प्राप्त हो सकती है। पर इसे उठना नहीं चाहिए। बेचारा न जाने कितना दौड़ा है। डरा भी है। वह चुपचाप वहीं बैठ गया। उसे सन्तोष हुआ कि वह केवल छिपने के लिए ही आया था, पर अब उसे एक भय त्रस्त ब्राह्मण की रक्षा का पवित्र कर्तव्य भी मिल गया है। उसने अपनी तलवार की मूठ पर कसकर हाथ रखा और सावधान होकर चुपचाप बैठ गया।

झाड़ी की ओट से बड़े ही मधुर स्वर में कोई गुनगुनाता हुआ आ रहा था। जान पड़ता था, इधर ही आ रहा है। उसका चेहरा तो नहीं दिखायी दे रहा था, पर गान के अक्षर स्पष्ट सुनायी दे रहे थे। जान पड़ता था, झाड़ी के निकट से ही कोई रास्ता था और यह आदमी उसी मार्ग पर गाता हुआ इधर ही आना चाहता था। आयक सावधान हुआ, पर उस अदृश्य गायक का स्वर इतना मधुर था कि वह निश्चित रूप से समझ गया कि यह आदमी क्रूरकर्मा आततायी नहीं हो सकता। कदाचित् इस साथ हुए ब्राह्मण देवता का साथी हो। वह ध्यान से मधुर गान को सुनने लगा। अन्तिम पंक्तियाँ ही उसे स्पष्ट सुनायी पड़ी—हन्तैकस्थं क्वचिदपि न ते चण्डि सादृश्यमस्ति'' (हाय कोपने, एक जगह कहीं भी तुम्हारा सादृश्य नहीं दिखता!) आयक ने अनुमान से समझा कि पहले की पंक्तियों में बताया गया होगा कि अलग-अलग उस देवी के सादृश्य अवश्य मिलते हैं।

इतने में दोनों हाथों में पानी से भरा पात्र लिये चन्द्रमौलि आ गया। उसने आयक को नंगी तलवार लिये बैठा देखा तो उसके मन में भय का संचार हुआ। क्या यह उन्हीं लोगों में से कोई है जिनकी सूचना उस भागते हुए मल्ल ने दी थी? यहाँ इस प्रकार क्यों बैठा है? उसके माथे पर पसीने की बूँदें निकल आयीं। क्या हम आततायियों के हाथ में पड़ गये?

आयक ने चन्द्रमौलि को देखा। उसके सौम्य कमनीय मुख में एक विचित्र प्रकार का आकर्षण था। आयक को समझने में देर नहीं लगी कि यह मनोहर युवा उसे देखकर डर गया है। मीठी वाणी में बोला "आओ मित्र, डरने की कोई बात नहीं है। मैं भी भटका हुआ बटोही हूँ। शस्त्रपाणि सैनिक हूँ। पण्डितों और साधुओं की सेवा की महिमा जानता हूँ, दीनों और असहायों की रक्षा के लिए प्राण देना भी जानता हूँ। मुझसे भीत होने की कोई बात नहीं है। आओ मित्र, तुम्हें आश्वस्त होना चाहिए कि एक विश्वासभाजन सेवक मिल गया है।' इस सुधा स्निग्ध वाणी से चन्द्रमौलि का चित्त आश्वस्त हुआ। वह निकट आया, पानी रखकर बोला "बन्धु मैं अपने अकारण हितू के बारे में कुछ अधिक जानने का प्रसाद पा सकता हूँ?" आयक ने मन्दस्मित के साथ कहा, 'कुछ विशेष बात नहीं है बन्धु, सैनिक हूँ, भटकता हुआ आ गया हूँ। पूर्व का निवासी हूँ। अभी एक व्यक्ति भागा जा रहा था। उससे मालूम हुआ कि कुछ दुर्वृत्त लोग इधर उत्पात करते हुए बढ़े आ रहे हैं। मुझे कहीं छिप जाने की सलाह देकर वह भाग खड़ा हुआ। मैं इधर छिपने का स्थान ढूँढ़ते-ढूँढ़ते आ पहुँचा हूँ। यहाँ इन महानुभाव को सोया देखकर रुक गया।

अब मैं आप लोगों के साथ मे जाकर सुखी हूँगा।" चन्द्रमौलि ने प्रसन्नता प्रकट की। बाला "बन्धु, हम दोनों भी भय से ही इधर आ गिरे हैं। ये साथ हुए सज्जन पण्डित मात्स्य नामा हैं। सहृदय, गुणज्ञ, अकारण बन्धु। मैं चन्द्रमौलि हिमालय की यक्ष भूमि के निकट का निवासी हूँ। दक्षिणापथ की यात्रा करके लौट रहा हूँ। हम दोनों रास्ते में मिल गये हैं। हम भी उस भागते हुए मनुष्य ने सावधान किया और हम लोग इधर आ गये हैं। हमारा अहोभाग्य है कि हम अनायास एक वीर पुरुष की मैत्री प्राप्त हो गयी है।"

दोनों में शीघ्र ही मित्रता हो गयी। चन्द्रमौलि कुछ क्षणों तक इस नये मित्र की ओर ध्यान से देखता रहा। उस गोपाल आर्यक के मुख में एक अपूर्व तेज दिखायी दिया। विनीत भाव से उसने पूछा 'बन्धु, तुमने अपना ठीक परिचय नहीं दिया। मुझे लग रहा है कि मैं एक महान् पुरुष सिंह के निकट बैठा हूँ। यदि अनुचित न समझो तो कुछ अधिक बताने की कृपा करो।" आर्यक ने और भी नम्रता दिखायी 'नहीं मित्र, मैं साधारण किसान-सन्तान हूँ। सनिक हूँ। परन्तु मन मेरा क्षुब्ध है। मैं कुछ खिन्न हूँ कि अपने को अपने से ही छिपाना चाहता हूँ। तुम मुझे गोपाल समझो। यही मेरा कुल, यही मेरा परिचय।"

चन्द्रमौलि यह तो समझ गया कि गोपाल अपने को छिपाना चाहता है, पर उसे अधिक जानने का प्रयोजन भी क्या है, यह सोचकर बोला, 'बन्धु गोपाल, तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध कुछ भी जानने का आग्रह नहीं करूँगा, पर मेरी इच्छा इतनी अवश्य है कि यह बता दूँ कि मैं तुम्हें निम्न श्रेणी का नर-केसरी मान चुका हूँ। तुम जो भी हो, मेरी श्रद्धा और सद्भावना के विषय हो। मन मेरा भी क्षुब्ध है। मैं भी समाधान खोजने का प्रयासी हूँ। परन्तु इतना ही जान पाया हूँ कि अपने अन्तर्यामी ही एकमात्र समाधानकर्त्ता है। मेरे निजी मानस की विक्षुब्धता केवल मेरे ही मानस में अँटती है। संसार में सर्वत्र उसके किसी-न-किसी अंश का साम्य मिलता है। हर पेड़-पौधा कुछ-न-कुछ उसका आभास दे जाता है, पर बन्धु, एकत्र वे साम्य अगर कहीं ठीक-ठीक विद्यमान है तो केवल मेरे मन में ही हैं। उसे बाहर की रूप सामग्री के माध्यम से किसी प्रकार पूर्ण रूप से अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता। शब्द उसे क्या प्रकट करेंगे। मैं समझता हूँ मित्र, तुम्हारी व्यथा भी केवल तुम्हारी ही है। तुम मेरे आग्रह पर कुछ बता भी दो तो मैं पूरा समझ नहीं सकूँगा। अच्छा है इसे अपने तक सीमित रखना ही अच्छा है। गोपाल आर्यक को सुनकर विस्मय हुआ। तो क्या दूसरे लोग उसकी बात कभी ठीक-ठीक नहीं समझ सकते? वह मुग्ध भाव से चन्द्रमौलि की ओर देखता रहा। उसे लगा कि वह असाधारण व्यक्ति से बात कर रहा है। बोला, "लगता है मित्र कि तुम ठीक कह रहे हो, पर मैं पूरी तरह तुम्हारी बात समझ नहीं पा रहा हूँ।"

आर्यक को याद आया कि वह आदमी मृदु मन्द स्वर में जो श्लोक गा रहा था उसमें कदाचित् इसी प्रकार का कोई भाव था। उसे इस व्यक्ति के प्रति एक सहानुभूति भरी संवेदना भी अनुभव हुई। बोला, 'बन्धु, तुम अभी कुछ गाते आ

रह थे। अंतिम पंक्ति बडी करुण थी। क्या उस श्लोक मे ऐसी ही काई बात थी जो तुम अभी समझा रहे थे ? अगर कुछ अन्यथा न समझो तो मैं पूरा सुनने का अभिलाषी हूँ।" फिर कुछ व्याकुल विनय के स्वर म बोला, 'सुना दो न मित्र मुझे बहुत अच्छी लगी थी वह पंक्ति !" चन्द्रमौलि न हँसते हुए कहा "काव्य रसिक जान पडते हो मित्र ! वह एक श्लाक था। मैंने एक दिन या ही बना लिया था। सुनना चाहते हो तो सुनाये देता हूँ।" चन्द्रमौलि सहज भाव स बिना किसी भूमिका के धीरे धीरे सुनाने लगा, इस बात का पूरा ध्यान रखकर कि निद्रित माढव्य जाग न जायें। बडा ही करुण मधुर स्वर था। श्लोक इस प्रकार था—

श्यामास्वंग चकितहरिणीप्रेक्षणे दृष्टिपात
वक्त्रच्छाया शशिनि शिखिना बहभारेषु केशान्।
उत्पश्यामि प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रूविलासान
हन्तैकस्थ क्वचिदपि न ते चण्डि सादश्यमस्ति ॥

[हाय प्रिये, श्यामा लताओ मे तुम्हारे अंगा का सादृश्य मिल जाता है चकित हरिणियो की दृष्टि मे तुम्हारा दष्टिपात दिख जाता है मोरा के बहभार मे तुम्हारे केशा की शाभा देखने का मिल जाती है, पहाडी नदिया की पतली धार की लहरो मे तुम्हारे भ्रू विलास की चारुता देखने को मिल जाती है, पर हाय कोपन स्वभावे, तुम्हारे सम्पूण शरीर की शोभा का सादश्य एक जगह तो कही भी नही मिलता !]

वाणी इतनी आद्र थी कि आयक की आखें छलक आयी। चन्द्रमौलि ने ठीक ही समझाना चाहा था कि तुम्हारी वेदना के किसी-न किसी अंग का सादश्य मिल जाता है, पर पूरा कही नही मिलेगा। कैसी गाढ वेदना होगी यह ! कितनी विचित्र ! आयक को लगा कि यह तो उसके अपने ही हृदय की मम व्यथा है। थोडी देर वह चुप बैठा रहा। फिर उल्लसित स्वर मे बोला, "समझ रहा हूँ मित्र, पर पूरा नही समझ पा रहा हूँ।" चन्द्रमौलि के चेहरे पर स्निग्ध प्रसन्नता दिखायी पडी "पूरी तरह कौन समझ सकता है मित्र, यही तो रोना है!" और वह खिल खिलाकर हँस पडा। आयक अवाक !

आयक एकटक चन्द्रमौलि की ओर देखता रहा। उसे बहुत दिन पहले की बात याद आ गयी। गुरु देवरात उसे समझा रहे थे कि वक्ता की इच्छा से ही शब्द का अथ निश्चित नही हाता। कुछ मीमासक दार्शनिक ऐसा कह गय हैं कि शब्द की एक ही शक्ति होती है वक्ता का तात्पय। शब्द का अंतिम और निश्चित अथ वही होता ह जो कहनेवाले के मन म हाता है। और किसी शक्ति का मानना आवश्यक नही ह। पर आचाय देवरात न समझाना चाहा था कि ऐसी बात नही है। शब्द का अथ केवल वक्ता की इच्छा का विषय नही है श्राता और सन्दभ भी उसम कुछ-न कुछ जोडते घटाते रहते हैं। आयक की समझ म यह बात नही आयी थी। आज चन्द्रमौलि भी कुछ उसी प्रकार की बात कह रहा है। क्या जो कुछ वह सुनता है वह कहनेवाले के तात्पय म कुछ भिन्न हुआ करता है ? चन्द्रमौलि

ने ही पुन अपनी बात स्पष्ट करते हुए कहा, 'मित्र गोपाल, मैं यह अनुभव करता हूँ कि मैं जब कभी अपनी व्याकुलता छन्द की भाषा म अभिव्यक्त करना चाहता हूँ तो सुननेवाले उसका ठीक अथ नही समझते। कुछ-न कुछ वह बदलकर ही उन तक पहुँचती है। मेरे हृदय के साथ जिसका हृदय एकतान हो गया रहेगा, वही मेरी बात पूरी तरह समझ पायेगा। ऐसे समान हृदयवाले कम ही होते हैं, बहुत कम। मैं ऐसे लोगो को ही 'सहृदय' कहता हूँ। हृदय के अतल गाम्भीय की वदना कदाचित् एस सहृदय ही समझ सकते हैं। अधिकतर लोग कुछ-का-कुछ समझ लेते है। इसीलिए कुछ कहने और करने के विषय मे, और लोग क्या सोचते हैं, इसकी परवा मैं कभी नही करता। लोकापवाद झूठ पर आधारित कूड़ा प्रपच है। लोक स्तुति उससे बडा धोखा है।"

आयक को धक्का लगा। वह अभी तक लोगो के सोचने को ही महत्त्व देता आया है और यह सुकुमार युवा कहता है कि वह लोगो के सोचने की परवा नही करता। सहृदय जो समझे वही समझना ठीक है बाकी क्या समझते हैं, वह उपेक्ष्य है। आयक के मन म अनायास मृणालमजरी आ उपस्थित हुई। मृणाल ही एक मात्र सहृदय है। उसने दीघ नि श्वास लिया, 'ठीक कहते हो बन्धु, कोई विरला ही हृदय की वेदना समझ पाता है। सब लोग सहृदय नही होते।"

अब तक माढव्य शर्मा की नीद कदाचित् टूट चुकी थी। कदाचित वे अन्तिम वाक्यो को सुन चुके थे। उठकर एकाएक बैठ गये। बोल उठे, "सखे चन्द्रमौलि, ये कौन है?" चन्द्रमौलि ने प्रसन्न भाव से कहा, "हमारे मित्र गोपाल हैं, दादा! महावीर है पुरुष सिंह!" माढव्य ने प्रसन्न दृष्टि से आयक को देखा। बहुत उल्लसित स्वर म बोले, 'स्वागत है वीरवर, क्या पूछ रहे हो इस कवि किशोर से? यह पता नही, तुम्हे क्या उलटा सीधा समझा दे। सुनो, माढव्य भी मानता है कि पूरी बात कोई नही समझता। सहृदय भी थोडे ही होते है। जो होते हैं वे भी थोडी देर के लिए ही। सहृदयता एक बीमारी का नाम है। एक बार मुझे भी इस बीमारी का शिकार बनना पडा था। पर उस दिन से अपना हृदय दस चुटिया म रख दिया है। अब निश्चिन्त हूँ। जान पडता है इस किशोर कवि की तरह तुम्हे भी सहृदयता का रोग है। मैं दोनो को ठीक कर दूगा। चिन्ता की बात नही है। अच्छे चिकित्सक के पास आ गये हो।'

आयक के चेहरे पर प्रसन्नता झलक उठी। चन्द्रमौलि भी हँस पडा। बोला, "दादा, तुम्हे यह बीमारी कैसे लग गयी थी?' माढव्य गम्भीर मुद्रा मे थोडी देर चुपचाप दिगन्त की ओर देखते रहे फिर परम ज्ञानी की भाति बोले 'सुनो एक बार मेरी ब्राह्मणी मान करके अपने मैके चली गयी। मुझे सहृदयता का दौरा आया। तुम ठीक कहते हो कि जो सहृदय होता है वही किसी बात का या काम का अथ पूरी तरह समझ पाता है। मैं पूरी तरह समझ गया कि वह क्या चाहती है। दौडा दौडा ससुराल पहुँचा। उद्देश्य था, उसकी इच्छा के अनुसार उसकी खुशामद करूँ। यही वह चाहती थी। थका मादा श्वसुर गृह म प्रवेश किया ही

मृणाल को सान्त्वना दी जाये। मृणाल ने कई बार उनसे कहा था कि मुझे क्या प्रसन्न करना चाहती हो। प्रसन्न करो इन गोवर्धनधारी को, जिनकी प्रसन्नता मुझे भी प्रसन्नता दे सकती है और तुम लोगों को भी।

कार्तिकी पूर्णिमा को ग्राम-तरुणियों ने गोवर्धन धारण की लीला करने का निश्चय किया। वह लीला बड़ी ही मनोहर थी। गोवर्धनधारी कृष्ण एक हाथ में वंशी लिये हुए और दूसरे हाथ की उँगली ऊपर किये खड़े थे। तरुणियाँ उनके चारों ओर उल्लसित होकर नाच रही थीं। प्रायः सारा नृत्य अशिक्षित चरण-न्यास से बोझिल हो उठा था। वर्षा-नृत्य में नूपुरों की झीनी ध्वनि उत्पन्न करने का उनका प्रयास बहुत सफल नहीं सिद्ध हो रहा था। मृणाल पहले तो हँसती रही, पर एकाएक उसमें भावावेश आया और उन्मत्त-भाव से थिरक उठी। तरुणियों का उत्साह सौ गुना बढ़ गया, पर वे मृणाल के इशारे पर रुक गयीं। फिर तो मृणाल की मेखला, नूपुर और कंकण वलय के युगपत् क्वणन का ऐसा समाँ बँधा कि मूसलाधार वर्षा का पूरा ध्वनि चित्र उपस्थित हो गया। मृणाल देर तक भाव मदिर नर्तन से अभिभूत रही। फिर वह गोवर्धनधारी के पास आकर ठिठक गयी। उसके इशारे पर तरुणियाँ फिर नाचने लगीं। मृणाल श्रान्त होकर गोवर्धनधारी के पास त्रिभंगी मुद्रा में खड़ी हो गयी। अशिक्षित चरणों का असंयत नृत्य पूरे वेग पर था। मृणाल की एक सखी गा उठी

जइ पावउँ केरीसु पिउ कुडुआ इक्कु करीसु।
पाणिहिं णवइ सरावि जिउँ अगंगेहिं पवसीसु॥
[कौनहु विधि पिय पाउँ जो, कौतुक एक करेउँ।
नव कलसी के नीर ज्यों, अंग-अंग पइसेउँ॥]

भाव गद्गद होकर गाते-गाते उसने मृणाल को कसकर आलिंगन-पाश में बाँध लिया। गोवर्धनधारी के जय जयकार के साथ यह उत्सव समाप्त हुआ। तरुणियों को लगा कि आज वे अपनी प्रिय सखी का मनोविनोद कर सकी हैं। यह ठीक भी था। पर अन्तिम गान मृणाल को एक विचित्र प्रकार की व्याकुलता दे गया। रात को वह और भी उदास हो गयी। रह-रहकर उसके मन पर वह गान आ जाता—'जइ पावउँ'। हाय, क्या ऐसा भी होगा?

दूसरे दिन सुमेर काका आ गये। उनकी फक्कड़ाना मस्ती में उतार आ गया था। उन्हें किसी प्रकार ऐसा लगा था कि मृणाल बहुत उदास है। वे स्वयं भी उदास हो गये थे। कहना कठिन है कि काका के आ जाने से मृणाल का मन अधिक आश्वस्त हुआ या काका का। काका ने मन ही मन मृणाल की जिस परिताप वेदना की कल्पना की थी वह आंशिक रूप से ही सत्य सिद्ध हुई। उन्होंने सोचा था कि मृणाल वृन्तच्छेदित पुष्प की भाँति मुरझा गयी होगी, उसके मनोहर कपोल शरत्कालीन धूप से व्याकुल केतकी पुष्प के भीतरी दलों की भाँति पाण्डुर हो गये होंगे उसके शरीर की सुवर्ण कान्ति मुरझाकर प्रभात-काल में गिरे हुए शेफालिका कुसुम के कोमल पत्तों की भाँति झुलस गयी होगी। पर मृणाल को उन्होंने केवल

बात झूठ है। मैं यह तो नहीं जानती कि उन पर क्या बीती है, वे इस समय किस स्थान पर हैं और क्या कर रहे हैं, परन्तु इतना मैं जानती हूँ कि वे शत्रुओं के भय से नहीं भागे हैं। मैंने आज स्वप्न में देखा है कि वे बहुत व्याकुल हैं। मैंने देखा है कि वे किसी अन्धकार भरी गुफा में रास्ता खो जाने के कारण व्याकुल भाव से इधर-उधर घूम रहे हैं और मेरा नाम ले-लेकर चिल्ला रहे हैं—'मना, किधर हो? दीपक ले आओ, मुझे रास्ता नहीं दिखायी दे रहा है!' अच्छा काका, सपना क्या सच होता है?"

सुमेर काका ने तड़ाक् से जवाब दिया, "बिल्कुल नहीं। तेरे बाप ने मुझे एक दिन बहुत सी बातें समझानी चाही थीं। वह मुझे बताना चाहते थे कि स्वप्न से कुछ न कुछ जाना जा सकता है। उनका तो विश्वास यह था कि स्वप्न में मनुष्य जो कुछ देखता है वह किसी न किसी वास्तविक परिस्थिति का ही रूप होता है। परन्तु उनकी बात मेरी समझ में कभी नहीं आयी। बहुत-से लोग जागते में भी सपना देखते हैं। वे काल्पनिक जगत का निर्माण करके अपने-आपको भुलावा देते रहते हैं। यह भी एक प्रकार का सपना ही है। मैं भी किसी समय आयक के बारे में बड़े बड़े सपने देखा करता था, परन्तु सब झूठ है बिटिया। जागे का सपना सोये के सपने से भी कहीं अधिक झूठ है।" सुमेर काका के सदा प्रसन्न चेहरे पर विषाद की काली रेखा उभर आयी। मृणाल ने टोका, "तुम्हारे सपने कभी झूठ नहीं हो सकते, काका! तुम्हारा चित्त सात्त्विक है, निष्कलुष है, मन-हृदय पवित्र है। तुम्हारे मन में उनके सम्बन्ध में जो सपने थे, वे सब केवल आशीर्वाद ही नहीं, वरदान थे। वे सत्य होकर रहेंगे, पवित्र मन की कल्पना अवश्य साकार होती है। मेरी बात गाँठ बाँध लो काका! तुमने जो कुछ भी सोचा था, सब ठीक होगा। मुझे केवल यही लगता है कि मैंने जो सपने में देखा है, वह सत्य है। वे अन्धकार में रास्ता खो बैठे हैं। मृणाल से वे दीपक के प्रकाश की आशा रखते हैं। कुछ ऐसा उपाय बताओ काका, कि मैं उनके पास उज्ज्वल दीप शिखा ले जा सकूँ।"

सुमेर काका के सामने सचमुच ही प्रकाश की ज्योति उद्भासित हो उठी। उनकी फक्कड़ाना मस्ती में ज्वार आया, बोले, 'मेरे पास तो पहुँच गयी रे! तूने तो बेटी, अपूर्व दीप शिखा प्रज्वलित कर दी। तू नहीं जानती, तेरा सुमेर काका हार गया था। देवरात से कभी नहीं हारा, लेकिन आयक से हार गया था।"

मृणाल को अच्छा लगा। थोड़ा उत्फुल्ल होकर बोली, "काका, मैं अकेली पड़ी-पड़ी ऊब गयी हूँ। मेरा निश्चित विश्वास है कि वे कहीं भटक गये हैं। मैं क्या उनकी कुछ भी सहायता करने योग्य नहीं हूँ? पिताजी ने एक बार मुझसे कहा था कि देख मैना जैसे हर व्यक्ति का एक मन होता है वैसे ही एक समष्टि चित्त भी है। व्यक्तियों का मन समष्टि चित्त का एक अंग ही होता है। अगर ऐसा न होता तो प्रत्येक मनुष्य लाल रंग को लाल ही रंग नहीं देखता, किसी को कष्ट में देखकर उद्विग्न न होता किसी को प्रसन्न देखकर आह्लादित नहीं होता। पूरे समष्टि मानव का एक चित्त है। उसी का अंग होने के कारण व्यक्ति चित्त दूसरों के समान

मेरी शान्ति की बलि न दो। जब तक मुझे शान्ति नहीं मिलेगी, तुम्हें कभी भी शान्ति नहीं मिल सकती। मैं संसार के इस पार से देख रही हूँ। अपनी शान्ति के लिए तपस्या करना सबसे बड़ा स्वार्थ है। वह सबसे बड़ी छलना भी है। औरों की शान्ति के लिए अशान्त होना ही सच्ची साधना है। आर्य देवरात, मैं साधनहीन हूँ। मनुष्य को जो ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय मिली हैं, जिनके द्वारा वह दूसरों की शान्ति का प्रयत्न कर सकता है वह मेरे पास नहीं हैं। मैं केवल भाव मात्र हूँ। तुम्हारे पास ये साधन अब भी विद्यमान हैं। छोड़ दो अपनी इस छलनामयी झूठी तपस्या को, तुम जो साधना पहले करते थे, वही सच्ची साधना है। मनुष्य के दुख से दुखी होना ही सच्चा सुख है।' देवरात की आवाज़ कांपने लगी। मुझे स्पष्ट सुनायी दिया, 'तुम्हारा कहना सत्य हो सकता है देवि, देवरात व्याकुल है। वह तुम्हारी इस बात को समझने का प्रयत्न करेगा।' फिर एकाएक वह आवाज मेरे बहुत नजदीक आ गयी, 'सुमेर भाई, मृणाल के पास जाओ। वह असहाय है। अकेली है। उसे सान्त्वना दो।' मेरी नींद एकाएक खुल गयी। कहीं तो कुछ भी नहीं था। मैंने अपने मन को समझा लिया कि थोड़ी देर पहले जो सोचता था, वही सपने में देख रहा हूँ। पर तू जो कह रही है बेटी, यदि वह सच है तो मानना होगा कि देवरात भी कहीं मेरी और तेरी बात सोच रहे हैं।"

मृणाल की आँखों में आँसू आ गये। उसे ऐसा लगा कि उसकी प्रत्येक शिरा झनझना उठी है—'निस्सन्देह काका, पिताजी मुझे और तुम्हें याद कर रहे हैं। परन्तु ठीक से स्मरण करो, उन्होंने मेरे लिए कोई रास्ता नहीं बताया? कुछ-न-कुछ बताया होगा काका याद करके कहो।" सुमेर काका ने स्मरण शक्ति पर बल देने का प्रयास किया, बोले 'और तो कुछ याद नहीं आ रहा है, बेटा! मैंने तो इस सपने को कोई विशेष महत्त्व नहीं दिया था। मुझे तो यही लगा था कि जो बात जागते में सोच रहा था, वही मैंने सपने में देखी है। मैं जो तेरे यहाँ चला आया, वह सपने के कारण नहीं जाग्रत अवस्था में सोच समझकर।'

थोड़ी देर दोनों मौन रहे। मृणाल बोली, 'काका, तुम एक बार बता रहे थे कि विन्ध्याचल में कोई नये सिद्ध आये हैं, जो महिषमर्दिनी की पूजा का प्रचार कर रहे हैं। सुना है कि वे भूत भविष्य सब बता सकते हैं। एक बार मुझे उनके पास ले चलो न! मैं उनसे पिताजी के बारे में और आर्यक के बारे में कुछ प्रश्न पूछूंगी। सिद्ध लोग मनुष्य का पता ठिकाना भी बता दिया करते हैं। ले चलोगे काका?'

सुमेर काका को मृणाल के भोलेपन पर हँसी आ गयी। 'देख बिटिया, तू जहाँ कहेगी, वहीं तेरा काका तुझे ले जायगा। पर मुझे इन सिद्धों पर रत्तीमात्र भी विश्वास नहीं है। तेरा काका तो उतना ही मानता है जितना कि मानने योग्य होता है। भूतकाल कोई बता दे, यह तो मेरी समझ में आ रहा है, पर भविष्य कैसे बतायगा? जो दावा करता है कि भविष्य बता देगा वह ढोंगी है।' मृणाल का चेहरा म्लान हो गया। उसे काका की बात से दुख हुआ। काका ने उसके मन की बात ताड़ ली। बोले, 'बुरा मान गयी बेटा! तेरा काका गँवार है। उसकी बातों का

बुरा न माना कर। चल, तेरे साथ मैं चलूंगा। उसका ढोंग तो मैं चलने नहीं दूंगा। यदि काम की बात कुछ कहेगा तो सुन लूंगा। भूत भविष्य तो वह क्या बतायेगा, लेकिन तेरे मन को सन्ताप हो जायगा।" मृणाल ने गिड़गिड़ाते हुए कहा, "अवश्य ले चलो बाबा, पर मेरी एक बात मान लो। तुम यह सब सिद्ध के सामने मत कहना। मैं पूछूंगी और तुम चुपचाप सुनना।

सुमेर काका को मृणाल का यह प्रस्ताव अच्छा नहीं लगा। उन्हें यह समझ में नहीं आ रहा था कि सिद्ध अगर उल्टा-सीधा कुछ कहता रहेगा तो उन्हें चुप क्यों रहना चाहिए। किन्तु हाथ घुमाकर उन्होंने स्वीकृति सूचक मौन धारण किया। मानो अभी से चुप रहने का अभ्यास कर रहे हों।

लेकिन सिद्ध के पास जाने का कार्यक्रम रह अवश्य गया। हुआ यह कि जब सुमेर काका बाहर आये तो लड़कों का एक दल कूदता फाँदता चिल्लाता आकर कह गया कि चन्द्रा आ रही है। सुमेर काका तो चन्द्रा के नाम से ही चिढ़ते थे। उन्होंने मृणाल से बातचीत करते समय पूरी सावधानी बरती थी कि चन्द्रा का नाम या प्रसंग न आने पावे। कभी-कभी वे यह भी सोचते थे कि चन्द्रा अगर मिल जाय तो डण्डा से उसकी खबर लेंगे। अब सचमुच चन्द्रा दिख जानजानी है और उनका डण्डा भी उनके हाथ में ही है। मारे क्रोध के उनका चेहरा लाल हो गया। उनकी निश्चित धारणा थी कि आर्यक के पतन के मूल में यही दुश्चरित्रा स्त्री है। यह हतभाग्या इस गाँव में आने का साहस कैसे कर सकी है? क्या लज्जा जैसी कोई वस्तु विधाता ने इसे दी ही नहीं? उनके मन में क्रोध से भी अधिक घृणा का भाव आया। ना इसका मुंह देखना भी पाप है। पर वह आ क्यों रही है? क्या मृणाल को चिढ़ाने आ रही है? अगर ऐसा हुआ तो काका उसका झोंटा पकड़कर घसीटेंगे और यमराज के घर का रास्ता दिखा देंगे। इस घर में तो उसे पैर नहीं रखने देंगे। जनम की अभागिन करम की छोटी चरित्रहीना, कुलटा! सुमेर काका के मन में और भी अपशब्द आ रहे थे, परन्तु चन्द्रा सचमुच ही आ गयी। आते ही उसने अत्यन्त मधुर वाणी में कहा 'कौन, सुमेर काका हैं? प्रणाम करती हूँ काका, मैं चन्द्रा हूँ।" सुमेर काका ने घृणा से मुंह फेर लिया। लेकिन चन्द्रा ने तो नत जानु होकर काका के पैरों पर सिर ही रख दिया।

अजब ढीठ है यह बराकी! वे मन में काका ने आशीर्वाद दिया 'सुखी रह, सच्चरित्र बन, परमात्मा तेरा मुंह काला न होने दें। फिर बोले, "जा यहाँ से, यह कुल वधू का घर है। तू यहाँ कैसे आयी? जा, अपने घर जा। भाग जा, जल्दी भाग जा! तूने अपना भी मुंह काला किया और हलद्वीप का भी काला किया। जा, जा यहाँ से, हट!"

चन्द्रा ने अविचलित-अस्खलित मृदु वाणी में कहा, "कुल वधू नहीं तो क्या हूँ तात! अपने घर ही तो आयी हूँ। मैं चली जाऊँगी तो मेरी बहन मृणाल की कौन देख रेख करेगा? श्यामरूप भाग गया, आर्यक भाग गया, देवरात भाग गया। मैंने सुना तो दौड़ी चली आयी। छोटा बच्चा भी तो है काका। मेरे रहते वह क्यों

कष्ट पायेगा ? मैं उसे कैसे छोड सकती हूँ ?" काका को धक्का लगा। चन्द्रा की वाणी मे स्नेह था, वेदना थी, आत्मीयता थी। उन्होने अब उसकी ओर दृष्टि फिरायी। चन्द्रा है ! उन्हे आश्चय हुआ। चन्द्रा एक बहुत साधारण हल्की नीली साडी पहने थी। उसका सुन्दर मुख सूखा सूखा दिखायी दे रहा था। अधरोष्ठ काले पड गये थे। अलकार के नाम पर एक सोने का कगन हाथो म इस प्रकार झल रहा था, मानो अब गिरा, अब गिरा ! गोल गोरे मुख के ऊपर केश लटिया गये थे, पर सिन्दूर की मोटी रेखा सावधानी से अकित दिखायी दे रही थी। चन्द्रा ही तो है ! नील परिधान की छाया से उसका चन्द्रमा के समान मुख नीलाभ ज्योति से झिलमिला रहा था। काका ने आश्चय के साथ उसकी श्यामल आभा देखी। हा चन्द्रा ही तो है—मनहु कलानिधि झलमलत कालिन्दी के नीर ! पर सुमेर काका ने उसका जो रूप सोचा था, उससे कितनी भिन्न है ! अवश्य कोई निदारुण अन्तर्वेदना की ज्वाला उसके भीतर दीघकाल से सुलग रही है। काका का मन पसीज गया। बोले "कुल वधू तो तू थी ही पर यह सब क्या किया भाग्य हीन !" चन्द्रा की बडी बडी आखें डबडबा गयी। रुआसी होकर बोली, "पाप नही किया काका !'

पाप नही किया ? कैसी निर्विकार मुद्रा है चन्द्रा की ! काका का सरल चित्त चकित हो उठा। वे एक बात ही जानते आये है। पापी आखें चुराता है। उसके मन का विकार उसके वाक्यो से प्रतिफलित होता रहता है। चन्द्रा की वाणी सहज है आँखें साफ है, मन मे कही कोई अपराध भावना नही है। काका हैरान है। बोले, 'क्या री चन्द्रा, यहा जो सब बातें फैली है वे सब झूठ हैं ? तू अपने पति को छोडकर आयक के साथ भाग नही गयी थी ? बोल चन्द्रा, ये सब बातें झूठ है ?'

चन्द्रा ने अस्खलित वाणी मे कहा 'मैं क्या जानू काका, कि यहा क्या-क्या बातें फली है और उनमे कौन बात झूठ है और कौन सच ! तुम एक एक करके पूछोगे तो सब बताऊँगी। फिर तुम स्वय सच झूठ का निणय कर लेना। अच्छा काका, स्त्री का विवाह पुरुष से ही होता है न ?'

'और किससे होगा री ?'

"और स्त्री का विवाह पुरुष से न होकर किसी ऐसे से हो जाय जो पुरुष न हो ? क्या ऐसा विवाह किसी भी दष्टि स मान्य होगा ?"

काका ने तडाक से उत्तर दिया, "नही।"

चन्द्रा ने फिर एक बार सुमेर काका के चरणो का स्पश किया। इस बार उसका आचल भी हाथ मे था। बोली, 'अब तुम्हे जो पूछना हो, पूछो। सबका उत्तर दूगी।

काका को कुछ विचित्र सा लगा। उनके मन म यह बात कभी आयी ही नही कि स्त्री का विवाह किसी ऐसे स हो सकता है जो पुरुष न हो। वे कुछ सोचने लगे। चन्द्रा ने उन्हे विशेष सोचने का समय नही दिया। बोली, मेरा विवाह मेरी इच्छा के विरुद्ध मेरे पिता ने एक ऐसे मनुष्य रूपधारी पशु से कर दिया जो पुरुष

है ही नही। मै उसे पति नही मान सकती। हलद्वीप के मुह मे कालिख लगती है तो सौ बार लगा करे ! जो समाज इस प्रकार के विवाह की स्वीकृति देता है वह अपने मुह मे कालिख पहले ही पोत लेता है। मैने आयक का ही अपना पति माना था। वह मेरा था, और रहेगा। मै उसके साथ भागकर कही नही गयी। वह भागा जा रहा था, मैं साथ हो ली थी। फिर कही भागा है, उसकी खोज म हू। मै आयक की पत्नी हूँ और बनी रहूँगी। मै अपने घर आयी हूँ म अगर कुल वधू नही हूँ तो ससार मे कोई कुल वधू आज तक पदा ही नही हुई।"

काका हैरान। इसी समय मणालमजरी का छोटा शिशु बाहर आया। चन्द्रा ने यपटकर उसे गोद म उठा लिया और बार बार उसे चूमन लगी। एकाध बार शिशु ने भागन की चेष्टा की, लेकिन चन्द्रा न उसे भागने नही दिया। काका अभी तक अपने को सम्हाल नही पाये थे। शिशु मा मा' कहकर चिल्ला उठा। चन्द्रा ने उसे और कसकर छाती से चिपका लिया। बोली, मै ही तो तरी मा हूँ रे ! आवाज़ सुनकर मृणाल बाहर निकली। वह चकित होकर दखने लगी, यह कौन स्त्री है ! शिशु ने कातर भाव से कहा, 'देख मा, मुझे छाड नही रही है।' चन्द्रा ने और कसकर उस छाती से लगा लिया। हँसते हुए कहा, 'तेरे बाप को तो छोडा नही, तुझे कैसे छोड सकती हूँ !" मणाल कुछ समझ नही पा रही थी। काका ने ही बताया—चन्द्रा है ! एक बिजली की धारा सट स मणाल के पैरो से उठी और सिर तक बह गयी। चन्द्रा ने मणाल को देखा तो बच्चे को छोडकर उसी स लिपट गयी, "मेरी मैना, मेरी प्यारी बहिन मैना ! देखती क्या है र, मै तेरी दीदी चन्द्रा हूँ। हाय तुझे बडा कष्ट हुआ। आयक महापापिष्ठ है जो तुझे ऐसी अवस्था म छोडकर चला गया ! कायर ! गँवार !" फिर उसन मृणाल को इस प्रकार उठा लिया, जैसे वह कोई गुडिया हो। वह उसे सिर से पैर तक चूमती रही। लगातार। मणाल लज्जा से विजडित हो उठी। बोली "दीदी, भीतर चलो !" पर कहन की आवश्यकता नही थी। चन्द्रा ही उसे और बच्चे को लेकर भीतर चली गयी। ऐसा लगा, वह चिर परिचित घर मे चिर परिचित स्वजनो के साथ सहज भाव स जा रही हो। काका काठ की मूर्ति की तरह जैसे थे, वैसे ही बने रह। न हिले, न बोले, न आगे बढे—न ययौ न तस्थौ।

गाव की स्त्रिया धीरे धीरे इकट्ठा होन लगी, काका जहा के तहा देर तक उसी तरह खडे रहे। दूर से स्त्रियो के कलकण्ठ से गाने की मधुर ध्वनि उनके कानो से टकरा टकराकर लौट गयी, उनकी चेतना उसी प्रकार जडीभूत बनी रही। अन्त मे वे हारे हुए जुआरी की तरह वहा से लडखडाते हुए चल पडे। भीतर कोई स्त्री गा रही थी—

> अह सभाविअमग्गा सुहय तुए ज्जेव णवरि णिव्वुढठा।
> एण्हि हिअए अण्ण, अण्ण वाआइ ला अस्स॥
> [सजन निबाह्यो एक तुम, आरज-पथ पय मन।
> आजि काल्हि के लोग तो, कछु हियर कछु बैन॥]

एकाएक उनका ध्यान अतीत की ओर मुड गया। वह तो मजुला की गायी गाथा है। मजुला के घर के सामने से वे एक बार जा रह थे, उसी समय वह बडे व्यथापूण स्वर मे यह गाथा गा रही थी। आज कौन वही गान गा रही है!

तेरह

उज्जयिनी मे महाकाल देवता का निवास है। महाकाल केवल गति मात्र हैं, निरन्तर धावमान गति एक क्षण के लिए भी न रुकनेवाला प्रचण्ड वेग। देवरात महाकाल के दरबार म पहुँचकर भी शान्ति नही पा सके। वे स्थिति की खोज मे है। महाकाल के धावमान वेग से वे केवल खिचे जा रहे है और फिर भी उनके भीतर चलते रहनेवाले तूफान की गति मे कोई कमी नही आ रही है। शान्ति चाहिए पर महाकाल देवता प्रचण्ड नत्तन मे व्यापत है। उनके एक एक पद सचार से महाशून्य प्रकम्पित हो रहा है और उस प्रचण्ड गति से समुत्थित कम्पन से सृष्टि मत्यु धारा मे स्नान कर नित्य नवीन जीवन की ओर अग्रसर हो रही है। जो कुछ पुराना है, जीण है, गला सडा है, वह ध्वस्त होता जा रहा है, नवीन के निमाण मे प्रत्यक पग पर मत्यु का ताण्डव दिखायी दे रहा है। काल की यह प्रचण्ड धारा रुक नही सकती, मृत्यु और जीवन की यह परस्पर सापेक्षता दूर नही हो सकती। परन्तु रुको महाकाल एक क्षण के लिए रुको! देवरात रुकना चाहते हैं। कोई प्राथना कारगर नही हो रही है। व केवल कातर भाव से पुकार सके, 'रुद्र, यत्ते दक्षिण मुख तेन मा पाहि नित्यम्!" हे रुद्र, तुम्हारा जो प्रसन्न मुख है उसी के अनुग्रह द्वारा मरी रक्षा करो! परन्तु क्षिप्रा की तरगा म उस प्रसन्न मुख का दशन नही हो सका। दवरात दिग्भ्रान्त हो गये थे। उन्ह लगता था, जस वे लोहे के टुकडे हो और कोई अदश्य चुम्बकीय शक्ति उन्ह खीच रही हो।

देवरात शान्ति नही पा सके। वे नैमिषारण्य के जगलो मे भटके, काशी की शीतल गगा धारा मे अवगाहन करते हुए आगे बढे, त्रिवेणी-तट पर कल्पवास मे विरमे यमुना की निमल धारा म स्नान करते-करते मथुरा पहुँचे और अन्त म उज्जयिनी म महाकाल के दरबार म उपस्थित हुए। साधु सग, शास्त्र चर्चा, देव दशन, व्रतापवास—सब किया, पर शान्ति कही नही मिली। न वे औशीनरा की प्राण-दुहिता को भूल सके और न हलद्वीप की नगरश्री की माया काट सके। वे सब-कुछ करते गय, यन्त्र चालित की भाँति। उन्ह अनुभव हुआ कि महाकाल का अकुण्ठ नत्तन रुकनेवाला नही है। समस्त सुख दुख को रौंदता हुआ वह चल रहा

है—निमम, निर्मोह !

देवरात इस निमम निर्बाध ताण्डव को समझ नही सके। महाकाल की मूर्ति मे उन्ह केवल दुर्निवार वेग की विभीषिका का ही दशन हो सका। उन्हे यह प्रचण्ड *गति केवल क्रूर परिहास सी दिखायी पडी। जो-कुछ है वह होने को बाध्य है, मानो* कोई विराम विहीन घूर्णा चक्र उवा देनेवाले एकघृष्ट स्वर मे घूम रहा है और उस अबाध वेग मे नक्षत्र मण्डल से लेकर अणु परमाणु तक उदभूत और विनष्ट होने को बाध्य हैं। सम्पूण चराचर सृष्टि केवल उदभव और विनाश के लिए विवश है उसी प्रकार जैसे शाण-चक्र पर रखे लौह-खण्ड से छिटकी सहस्रा चिनगारिया छिटकने, भटकने और बुझने को बाध्य है। ऐसा निरुद्देश्य निलक्ष्य वेग भी किस काम का ? मनुष्य केवल जन्म मरण के दुरन्त वात्या चक्र म पच-पचकर मरने के लिए ही बना है ? अनन्त वेग के लिए छोटे मोटे सहस्रा आदि और अन्त निरथक परिहास मात्र हैं ? *काल चक्र के सिंहासन पर आसीन महादेव, क्या बनाया था* तुमने माया ममता के द्वारा जकडे हुए सुकुमार मानव हृदय को ? इस हृदय मे जो दारुण झझा बह रही है, वह क्या तुम्हारे प्रचण्ड वेग के इगित पर ही वह रही है ? इसका भी कोई अन्त नही है इसम भी कही ममता का स्पश नही है, यह भी अपनी सत्ता के लिए आप ही प्रमाण है ? महाकाल देवता, बडी दुर्निवार है तुम्हारी माया ! देवरात क्षिप्रा की वारि धारा मे भी एक अतप्त अधीर वेग को ही देख सके। शान्ति कहा है ? महाकाल का प्रसन्न मुख उन्ह कही नही दिखायी दिया। देख सके केवल निर्बाध वेग की निमम प्रचण्ड ज्वाला।

वे खोये-खोये-से खडे रह। भक्त गण आते जाते रहे उन्ह लगा जैसे सब-के-सब किसी प्रचण्ड जीवन धारा के फेन-बुदबुद हो।

मन्दिर द्वार स दूर कोई बडी ही मधुर वाणी मे धीरे धीर गा रहा था। देवरात उस छन्दोवद्ध सगीत के अन्तिम चरण को सुनकर एकाएक चौक पडे। गानेवाला गा रहा था— न सन्ति याथाथ्यविद पिनाकिन '(पिनाक धारण करनेवाले देवता [शिव] के यथाथ स्वरूप को जानने समझनेवाले नही है !) वह और भी गाता रहा। एक बार उसने कुछ ऐसा कहा जिसे सुनकर देवरात स्तब्ध रह गये। कवि ने जो कुछ कहा, उसम शिव के भयकर और मोहन रूपो की चर्चा थी। उपसहार म कहा था—शिव विश्वमूर्ति है उनके रूप की अवधारणा नही करनी चाहिए।

देवरात का मन इस प्रकार उसकी ओर खिच गया, जैसे किसी ने पाश फेंककर बलात खीच लिया हो। वे सचमुच ही क्या विश्वमूर्ति शिव की अवधारणा नही कर रहे हैं ? क्या फक पडता है यदि शिव मनोहर वेश मे दिख जाते है या यदि वे भयकर रूप मे दिखायी दे जाते है ? विश्वमूर्ति शिव विभूषणो स जगमगाते मनोहर वेश मे हो तो, और भयकर सर्पों की डरावनी माला धारण किये हो तो वे सब प्रकार से वन्दनीय है मनोरम या भयकर ता मनुष्य के सीमित चित्त का विकल्प मात्र है। जो सवरूप है सवमय है, उसके लिए दुकूल और हाथी के रक्तरजित चम का परिधान तो बहुत नगण्य विकल्प है। उसके हाथ मे कपाल कपर है या

माथे पर चन्द्रमा जगमगा रहा है, यह भी कोई बात की बात हुई ! विश्वमूर्त्ति, बस विश्वमूर्त्ति है। रूप रूप में उन्हीं की लीला मुखरित है। एकांगी दृष्टि से क्या देख रहे हो ? समग्र दृष्टि से देखो !

देवरात को विचित्र लगा। कौन है यह किशोर गायक ? कितनी मधुर वाणी में गा रहा है कितनी तन्मयता के साथ ! न विश्वमूर्तेरवधायत वपु ।' वाह, क्या अमृत सी वाणी है—'न विश्वमूर्त्तेरवधायत वपु ।' विश्वमूर्त्ति के रूप की अवधारणा ही तो वे कर रहे थे।

देवरात को लगा कि वे सचमुच अवधारणा के शिकार हो गये हैं। सहस्रों विषय इन्द्रियों से टकराते हैं। मन उन्हीं का संचय करता है जो अच्छे लगते हैं। इसी का नाम धारणा है। जो संचय-योग्य होते तो है, पर मन उन पर रम नहीं पाता उनकी धारणा का नाम ही अवधारणा है। संचय भी करते हो, रमते भी नहीं *यह कैसी माया है ? किशोर गायक ठीक कह रहा है, सर्वव्यापक के एक अंश* मात्र को हृदय में संचित करके भी उसकी अवधारणा करना 'वदतो व्याघात' है, अपनी ही बात का अपने से ही प्रतिवाद करना है। धारणा केवल इसलिए विकृत होती है कि मनुष्य धारणीय के स्वरूप को ठीक समझ नहीं पाता। देवरात ने महाकाल को विश्वमूर्त्ति के रूप में नहीं समझा। वे केवल पिनद्धभोगि (साँप लपटा) रूप से कातर हो उठे हैं। पर यह तरुण गायक है कौन ? देवरात को लगा कि इन छन्दों का रचयिता वह स्वयं है। तो यह केवल गायक नहीं कवि भी है !

विचित्र है यह कवि। एकाग्रभाव से क्षिप्रा की चटुल तरंगों को देख रहा है। निःसन्देह उसे केवल विनाशकारी प्रचण्ड वेग से कुछ भिन्न वस्तु का साक्षात्कार हो रहा है। वह गा रहा है बड़ी सावधानी से, धीरे-धीरे। समाधिस्थ भी नहीं है, असंयत भी नहीं है। शोभा देखकर वह मुग्ध अवश्य हो रहा है, पर उत्क्षिप्त नहीं है। वस्तुतः सावधान तो है पर रागोत्क्षिप्त एकदम नहीं। कितनी कमनीय है उसकी बड़ी बड़ी पद्म पलाश सी आँखें। देवरात भी मुग्ध होकर उसे देखने लगे। मुग्धता भी संक्रामक होती है नहीं तो इस तरुण गायक की मुग्धता से वे कैसे मुग्ध हो गये !

देवरात ने सोचा, इससे कुछ बात करनी चाहिए। बड़ा ही मधुर लगता है इसका गीत। वे उसके निकट जाकर खड़े हो गये। तरुण गायक ने उन्हें नहीं देखा। वह अपने में ही मस्त बना धीरे धीरे गाता रहा। ऐसा लगता था, उसके मन में रह रहकर विभिन्न भावों की तरंगें उठ रही हैं और वह बिना प्रयास छन्दों में उन्हें मूर्त करता जा रहा है। कहीं-न-कहीं उसके मन में भी कोई व्यथा होगी। देवरात उस चारुदर्शन युवक से बात करने के लिए व्याकुलता अनुभव करने लगे। क्या बात करें कैसे उसे सम्बोधित करें, यह निश्चय नहीं कर सके। देर तक वे उत्सुक की भाँति खड़े रहे।

तरुण गायक चुप हो गया। वह अंजलि बाँधकर किसी अज्ञात देवता को प्रणाम करने की मुद्रा में दिखायी दिया। फिर चलने को प्रस्तुत हुआ। उठा तो ऐसा लगा

जैसे किसी अनुभाव राशि को चीरकर निकल रहा हो। वह चल पड़ा। देवरात ने चुपचाप अनुसरण किया।

कुछ दूर तक धीरे धीरे चलने के बाद वह एकाएक तेज चलने लगा। देवरात को लगा कि उसमे अचानक कोई नया भाव आ गया है। वे भी तेज चलने लगे। युवक अपने आपमे ही रमा जान पड़ता था। उसने फिरकर देखा ही नही। अब देवरात ने अधीर भाव से टोका, "सुनो आयुष्मान, मैं कुछ जानना चाहता हूँ।" युवक ने पीछे फिरकर देखा। देवरात को देखकर उसे कुछ आश्चर्य हुआ पर उसके चेहरे पर आह्लाद का भाव भी आया। बोला, "अवहित हूँ आर्य, क्या पूछना चाहते है?" देवरात ने कहा, "आयुष्मान, मैं देवरात हूँ, तीर्थों मे भटकता फिर रहा हूँ, शान्ति पाने के लिए। पर मेरी व्याकुलता दूर नही हुई है। तुम्हारे मधुर कण्ठ से अभी मैंने जो कुछ सुना है उससे मुझे विश्वास हुआ है कि तुमसे मुझे प्रकाश मिल सकता है। भद्र, तुम्हे देखकर मुझे ऐसा लगा है कि मेरे जन्म जन्मान्तर का पुंजीभूत पुण्य ही प्रत्यक्ष विग्रह धारण कर उपस्थित हो गया है। बोलो आयुष्मान्, तुम कौन हो? कौन सा कुल तुम्हे पाकर पवित्र हुआ है, कौन भाग्यशालिनी माता तुम्हे जन्म देकर कृतार्थ हुई है?" युवक के प्रफुल्ल चेहरे पर प्रसन्नता की लहरें खेल गयी। कुछ विनय मिश्रित व्रीडा के साथ बोला, "आर्य मेरा प्रणाम स्वीकार करें, पर आप तो मुझे लज्जित कर रहे है। आप मुझे अनुचित गौरव दे रहे है। केवल आशीर्वाद का अधिकारी हूँ। मेरा नाम चन्द्रमौलि है। हिमालय की गोद मे खेला हूँ। अब पूरे भारतवर्ष को देखने की लालसा से घर से निकल पड़ा हूँ।" देवरात को और भी कुतूहल हुआ। उल्लसित भाव से बोले 'साधु आयुष्मान, मैंने तुम्हे देखकर ही तुम्हारे शील और विनय का अनुमान कर लिया था। भगवान् ने तुम्हे जैसा रूप वैसा ही शील, वैसी ही वाणी दी है। बहुत प्रीत हूँ वत्स, तुम जो कविता अभी गा रहे थे, वह बड़ी ही मधुर और नयी नयी सी लग रही थी।" चन्द्रमौलि के मुख पर सकोच मनोहर मन्दस्मित दिखायी दिया। बोला, 'आपका बालक हूँ, आर्य! अनपहचानी वेदनाएँ मुझे व्याकुल बना देती है। कभी-कभी सोचता हूँ आर्य कि किसी देवता के आशीर्वाद से मुझे छन्दो की वाणी का वरदान मिल जाता, तो सारी वेदनाएँ उँडेल देता। कहा मिला आर्य, मैं व्याकुल हूँ! नदियो का प्रवाह मुझे प्रलुब्ध करता है, अरण्यो की शोभा मुझे आकर्षित करती है सस्य श्यामल मैदान मुझे खीचते है जनपद जनो के सहज व्यवहार मुझे मोहित करते है, नगरो की विलास लीला मुझे उल्लसित करती है। क्या परिचय दूँ अपना, मैं सबकी ममता मे बँधा हूँ, पर मेरा अपना कोई नही दिखायी देता। मैं सर्वत्र किसी व्याकुल अभ्यर्थना से खिच जाता हूँ। पाने की लालसा से नही लुटाने के लोभ से। मेरा क्या परिचय हो सकता है आर्य? जो पाना नही चाहता, वह क्या व्याकुल हो जाता है यह रहस्य मेरी समझ मे नही आता। पर व्याकुलता मुझमे है। शान्ति क्या होती है, यह मुझे नही मालूम आर्य! पर मुझे ऐसा लगता अवश्य है कि सच्चा सुख अपने-आपको दलित द्राक्षा की भांति निचोड़कर उपलब्ध माधुर्य

रस को लुटा देने मे है। भटक मैं भी रहा हू, आर्य ! लुटा सकना इतना आसान नही है।"

देवरात चकित होकर सुनते रहे। युवक अपने मन की बात कह रहा है, पर कितने सुन्दर ढग से। हाय देवरात, तुमने पाने की लालसा से कहा छुटकारा पाया ? युवक के अधरो पर मन्द मन्द मुसकान थी, पर आखें सजल थी। शायद वह जो कह रहा था उसका ठीक ठीक अर्थ देवरात की पकड मे नही आ रहा था। पर वे और भी उत्सुकता के साथ बोले, "आयुष्मान, तुम सच्चे कवि जान पडते हो, पर अपने आपको छिपा भी रहे हो। मैं अधिक जान सकता तो कृतार्थ होता, पर जितने का अधिकारी हूँ उससे अधिक का लोभ नही करूँगा। मैंने तुम्हारे मुख से मनोहारिणी और प्राणतोषिणी कविता सुनी है। इतना पर्याप्त होना चाहिए कि तुम कवि हो। मुझमे अकारण उत्सुकता जाग उठी, क्योकि मैं कवि को उसके सारे वातावरण मे प्रतिष्ठित करना चाहता था।" युवक अत्यन्त विनीत भाव से बोला, "आर्य क्षमा करें। मैने भी कई बार रम्य वस्तुओ को देखकर, मधुर शब्दो को सुनकर अकारण उत्सुकता अनुभव की है। जाने क्यो, हृदय मसोस उठता है, जैसे कोई पुराना सम्बन्ध हो, पर याद न आ रहा हो ! अच्छा आर्य, क्या यह नही हो सकता कि पूर्व जन्मो मे कोई सम्बन्ध इन वस्तुओ से रहा हो, और अब याद नही आ रहा हो केवल चित्त-भूमि पर एक हल्की-सी अस्पष्ट रेखा भर रह गयी हो ?' देवरात को यह बात बहुत अदभुत लगी। अनुभव तो उन्होने भी किया है, पर ऐसी बात तो उनके मन मे नही उठी। क्या इस अकारण स्नेहोद्रेक के उत्पादक युवक के साथ भी उनका जन्मान्तर का कोई सम्बन्ध है ? अवश्य होगा। वह रहा है हिमालय की गोद मे खेला है। इतना सम्बन्ध तो है ही। वे भी हिमालय की गोद मे पले है। पर यह तरुण कवि कुछ अधिक बताना नही चाहता। मगर इतना ही बहुत है। देवरात का मन स्नेह सिक्त था।

थोडी दूर साथ साथ दोनो चलते रहे। एक स्थान पर वह रुक गया। बोला, "आर्य के सत्सग से बहुत आनन्दित हुआ। पर यहाँ मेरे एक मित्र आयेंगे। मुझे प्रतीक्षा करनी होगी। मैं तो यहाँ नया आया हूँ। आर्य को क्या कुछ देर यहाँ विश्राम करने मे कोई बाधा है ? यदि बाधा न हो तो यहाँ आप भी थोडा विश्राम कर लें, मेरे मित्र बडे विनोदी है। उनसे मिलकर आपको भी प्रसन्नता होगी।

देवरात को अच्छा लग रहा था। उन्हे इस युवक कवि मे शील, सौजन्य और प्रतिभा का मिलित रूप मिल रहा था। वे युवक के साथ ही एक टीले पर बैठ गये। युवक विनीत भाव से बोला आर्य देवरात मेरा मन कहता है कि मैं किसी असामान्य महानुभाव को देख रहा हूँ। आप कह रहे हैं कि आप भटके हुए हैं, प्रकाश खोज रहे हैं ज्ञान पाना चाहते हैं, किन्तु अविनय क्षमा करें, मुझे ऐसा कहने की अनुमति दें कि आपकी यह भव्य आकृति, आजानुलम्बित बाहुएँ, प्रशस्त ललाट और घन कुचित केश राशि आपको सामान्य मनुष्यो से अलग कर रही है। आर्य, आप कैसे भटक सकते हैं ? विधाता ने आपको प्रकाश देने के लिए इस धरित्री

पर भेजा है। मैं कुछ अलीक तो नही कह रहा हूँ, आर्य ?"

देवरात को लगा, जैसे कोई वेदना हृदय मे चिपके हुए शल्य को उखाडने के लिए हिला रही हो। यह वेदना बडी ही दारुण सिद्ध हुई। पर वे आह भी नही भर सके। चन्द्रमौलि की ओर इस प्रकार ताकने लगे, जैसे कोई अपराध कर बैठे हो।

चन्द्रमौलि का मन उनकी उस मुद्रा से थोडा विचलित हुआ। हाथ जोडकर बोला, "कुछ अनुचित कह गया होऊँ तो क्षमा करें, आर्य ! मैंने आपको दुखी बनाने का अपराध किया है !" देवरात ने स्नेह सिक्त वाणी मे कहा, "नही वत्स, तुम ठीक ही कह रहे होगे। मुझे भटकना नही चाहिए था पर भटक गया हूँ, मोह-कातर नही होना चाहिए था, पर हो गया हूँ। कदाचित मै विधाता के दरबार मे अपराधी सिद्ध हूँगा। कदाचित वे मुझसे जो कराना चाहते थे, वह मैं नही कर सका। योगी नही बन सका, भोगी नही बन सका, कर्मी नही बन सका, त्यागी भी नही बन सका। प्रकाश देने योग्य 'स्नेह' नही था, जलने योग्य 'दशा' भी नही थी। प्रकाश कैसे दे सकूगा वत्स, जलता हूँ तो नीरस काठ की तरह धधक उठता हूँ, केवल ताप दे पाता हूँ, आलोक नही दे पाता। विधाता ने कराना कुछ और चाहा होगा, अपनी क्षुद्रता के कारण कर कुछ और रहा हूँ। तुम बता सकते हो आयुष्मान, कि जो स्नेह पाता रहा, वह अपने-आपको मिटाकर प्रकाश क्या नही दे सका ? मगर तुम अभी बालक हो, अपनी मर्मव्यथा से तुम्हे दुखी नही करूँगा। मैं अपना प्रतिवाद आप हूँ, वत्स !"

चन्द्रमौलि को ऐसी आशा नही थी कि बात इस प्रकार व्यथावाली दिशा मे मुड जायेगी। वह सोच नही सका कि क्या कहने से सहज स्थिति लौट आयेगी। थोडी देर वह गुम-सुम बैठा ताकता रहा। फिर बात को दूसरी ओर मोडने के उद्देश्य से बोला "बडी दूर से नाना देशो का भ्रमण करता हुआ यहा पहुँचा हूँ। रास्ते मे विचित्र मनुष्यो के दर्शन हुए हैं। अपूर्व सुन्दरियो का साक्षात्कार हुआ है। हर जगह मैंने अनुभव किया है कि विधाता ने जिस उद्देश्य से ऐसे मनोहर रूपो की सृष्टि की होगी वह पूरा नही हो रहा है। कही कोई बाधा पड रही है। मनुष्य के बनाये हुए विधान विधाता के बनाये विधानो से टकराते हैं, उन्हे मोडते है विरूप कर देते है। आपके साथ भी कुछ ऐसा ही हुआ जान पडता है, आर्य ! विधाता अपनी सृष्टि परम्परा को आगे बढाने के लिए प्रकृति को निर्देश दे चुके हैं—'उतना ही, जितने से काम चल जाये।' वह अनेक रूप, रंग वर्ण, प्रभा के द्वारा उसी निर्देश का पालन करती जा रही है। मनुष्य के चित्त ने इस निर्देश का औचित्य अस्वीकार कर दिया है। वह कहता है, 'उतना, जितना मुझे अच्छा लगता है।' और इन दोनो का द्वन्द्व विषम परिस्थितियो की सृष्टि कर रहा है। सारे कष्टो और दुखो के पीछे यही द्वन्द्व है। 'जितने से काम चल जाय' और 'जितना मुझे अच्छा लगता है' का संघर्ष ही दुख है। पर मैं इसका न तो कोई समाधान ही ढूढ पाता हूँ और न इस द्वन्द्व की आवश्यकता का ही रहस्य समझ पाता हूँ।"

देवरात चुपचाप ताकते रहे। उनके चित्त के अतल गह्वर मे आवाज़ आयी—

'नया नही सुन रहा हूँ। यही शाश्वत वाणी बराबर सुनता रहा हूँ। पर इस बार यह बहुत स्पष्ट और बेधक होकर सुनायी दे रही है।'

चन्द्रमौलि ने देवरात की प्रतिक्रिया जानने के लिए थोडी देर मौन भाव से प्रतीक्षा करना उचित समझा, पर देवरात मौन ही रहे।

चन्द्रमौलि को आशका हुई कि बात कही फिर अनुचित स्थान पर न टकरा जाय। वह और सतर्क भाव से बोला, 'बाल बुद्धि से विचार करता हूँ, इसलिए भूल चूक तो होगी ही आर्य पर कितने ही महानुभावो को देखकर इस नतीजे पर पहुचना पडता है कि विधाता की इच्छा पर कही-न-कही आघात अवश्य पहुँच रहा है। अभी हम लोग जब उज्जयिनी की ओर आ रहे थे, तो एक ऐसे ही सुलक्षण महावीर युवक से हमारा परिचय हो गया। सयोग ही कुछ ऐसा था कि वे मिल गये। देखकर मुझे लगा कि किसी अत्यन्त भाग्यशाली का सान्निध्य पा रहा हूँ, पर दुखी वे भी लगते थे। दुखी भाग्यशाली अपने-आपको छिपाया करता है। वह इतना सवेदनशील होता है कि हमेशा डरता रहता है, उसके व्यक्तिगत दुख से किसी और को कोई कष्ट न पहुँचने पाये। मेरे ये नये मित्र गोपाल भी ऐसे ही थे। उन्होने अपने को छिपाया। कहते थे, गोपाल ही मेरा नाम समझो यही जाति समझो और यही विरद मान लो।' मान लिया, पर मेरे दूसरे मित्र माढव्य शर्मा बडे विनोदी है। खोद-खोदकर उन्होने अन्त तक उन्हे पहचान ही लिया। वे गुप्त सम्राटो के प्रसिद्ध सेनापति गोपाल आर्यक थे। पत्नी वियोग से म्लान थे और लोकापवाद भय से कुण्ठित। मैंने थोडी सहानुभूति दिखायी तो रो पडे। बडा महानुभाव व्यक्तित्व है उनका पर सब होने पर भी बडी दुवह व्यथा ढोते फिर रहे है। नाम तो आपने भी सुना होगा आर्य?"

देवरात का हृदय धक धक करने लगा। बोले, 'गोपाल आर्यक? नाम तो अवश्य सुना हुआ है बेटा, पर वे गुप्त सम्राटो के सेनापति है, यह तो मैं नही जानता। क्या ये वही गोपाल आर्यक हैं जो हलद्वीप के निवासी है? तुमने उनको कैसे देखा कहा देखा?"

चन्द्रमौलि उत्फुल्ल हो गया। "कहा के निवासी है यह तो मैं नही कह *सकता, पर वे सम्राट् के सेनापति अवश्य थे। उनके अनुपम शौर्य की कहानी से* सभी जनपद गूज रहे हैं। पर वे हैं कि लोकापवाद भय से छिपते फिर रहे है। मैं उनके विशाल कन्धो और प्रशस्त ललाट को देखकर ही समझ गया था कि वे कोई महावीर हैं विधाता ने उन्हे अपार सामर्थ्य देकर दुखिया का दुख दूर करने के लिए इस धरती पर भेजा है। पर वे भी आपकी ही भाति वह रहे थे कि वे भटक गये है। मेरे साथ उनकी बडी गाढी मित्रता हो गयी थी।" देवरात उत्सुकता के साथ सुनते रहे। हो न हो यह महावीर और कोई नही, उनका प्यारा शिष्य गोपाल आर्यक ही है। पर सेनापति कब हुआ? यह कवि किसी और की बात तो नही कर रहा है? मिलते जुलते नाम तो होते ही हैं। और अधिक जानने के उद्देश्य से उन्होने पूछा, "अच्छा कवि, तुमने गोपाल के व्यक्तिगत जीवन के बारे मे और

कुछ सुना ?" च द्रमौलि ने सहज भाव से कहा, 'हाँ आय एक दिन मैंने उनके दुख की बात जानने का प्रयत्न किया। वे समुद्र के समान गम्भीर जान पडे। अपना दुख छिपाय ही रह। एक दिन बडे कातर दिख रहे थे तो मुझे बडा कष्ट हुआ। मैंन कुछ रोप के साथ कहा कि मित्र गोपाल तुम मुझ पर विश्वास नही करते अपन दुख का रचमात्र भी आभास नही देते, मैं तुम्हार कष्ट का सहभागी होने का सुयोग भी नही पा रहा हूँ। वे मेरी बात स विचलित हुए और एक क्षण की दुबलता मे कह गय—'मित्र, सदा यही सोचता रहा हूँ कि लोग क्या कहेगे एक बार भी यह नही सोचा कि मणालमजरी क्या सोचेगी। यह विपम शल्य हृदय मे जो धँसा सो निकला ही नही। उनके इस कथन स मै अनुमान कर सका कि कोई मृणालमजरी उनकी प्रिया होगी। इससे अधिक उनके बारे म मैं कुछ भी नही जान पाया, पर उनक महाशाय के बारे मे कोई भी बिना बताये ही सब कुछ समझ सकता है। अ तमदावस्थ गजराज को पहचानने म कोई कठिनाई होती है, आय?"

अब स देह का अवसर ही नही रहा। गोपाल आयक मणालमजरी की बात कह रहा था। पर तु व ठीक समय नही सके कि गोपाल के हृदय मे दुख किस बात का है? कौन सा लोकापवाद उसे मथित कर रहा है? समुद्रगुप्त का र ना-पति कब बना? वे उ मथित-से ताकते रहे फिर कातर भाव से बोले तुम्हारे य मित्र इस समय कहाँ हैं आयुष्मान? मैं उनसे मिलना चाहता हूँ।' च द्रमौलि न कुछ उदास स्वर मे कहा, 'यही तो कठिनाई है कि वे अपने को छिपात है अपनी यश-कीर्ति को छिपाते है और दुख ग्लानि को भी छिपाते है। हुआ यह कि मेरे विनोदी मित्र माढव्य शर्मा ने उ ह पहचान लिया। उ होने कुछ विनोद के साथ ही कह दिया कि 'मित्र गोपाल मुझे कोई स देह नही कि जिस प्रबल पराक्रमी गोपाल आयक के नाम-श्रवण मात्र से सम्पूण उत्तरापथ काँप रहा है वह माढव्य स भी बडा मूख है। माढव्य शर्मा लोकापवाद को पूजी बनाकर अपना कारबार करता है और गोपाल आयक अपनी कीर्ति बेचकर लोकापवाद की पूजा करता है।' बस, इसी बात पर व चुपके से खिसक गये। पता नही कहा चले गये। बहुत सुकुमार हृदय उ हे विधाता ने दिया है। जरा सा विनोद भी उनको क्षत विक्षत कर देता है। मेरे मित्र माढव्य शर्मा बहुत दुखी हुए थे। उनका उद्देश्य उनका दिल दुखाना नही था। वे उ ह फिर स उनकी सहज अवस्था म ले आना चाहते थ पर परिणाम बडा दुखद हुआ। माढव्य शमा का विश्वास है कि व कही उज्जयिनी म ही हाग। बेचारे कल से ही खोज रह है। आते ही होग।'

च द्रमौलि उच्छवसित भाव स अपन मित्र गोपाल आयक क विपय म बोलता गया। उस देवरात के चेहरे पर खेलनेवाले भावो को देखने की सुधि ही नही रही। बोला हम लोग बहुत डरे हुए थे आय। एक भागते हुए बलिष्ठ पुरुष न हम छिप जाने को कहते हुए बताया था कि कुछ हीन चरित्र के दुव त्त उसे मारने के लिए पीछा कर रहे है। गोपाल आयक जैस महावीर को इससे क्या भय होता? वे उन दुवृ त्तो को दण्ड दने के लिए उतावले हो गय। माढव्य पण्डित न उ ह ऊँच

नीच समझाकर रोक लेना चाहा, पर उन महावीर का निश्चय नही बदला। जब वे चल ही पडे तो अगत्या हम भी साथ हो लिये। सच कहता हूँ आर्य, उनके साथ चलने से भय एकदम दूर हो गया, सूर्य के साथ चलनेवाले के पास कही अन्धकार फटक सकता है? हम लोग निर्विघ्न यहा पहुँच गये। गोपाल दुवृत्तो को खोजते रहे, कही पा नही सके।"

दवरात कुछ बोले नही, दीर्घ नि श्वास लेकर रह गये।

चन्द्रमौलि समझ नही सका कि देवरात के हृदय मे कौन सा तूफान चल रहा है। थोडी देर दोनो ही चुपचाप दिगन्त की ओर देखते रहे। चन्द्रमौलि ने ही मौन भग किया। बोला, "आर्य, अन्यथा न समझें तो एक बात पूछू?" देवरात ने चुपचाप इगित से बताया कि पूछ सकते हो। चन्द्रमौलि ने कहा, "आप शास्त्र-मर्मज्ञ है साधु सग किया है धर्माचरण से मन और वाणी को पवित्र बनाया है, इसीलिए आपसे पूछ रहा हूँ। यह क्या सत्य है जो पुराण ऋषियो ने बताया है कि मनुष्य अपने पूर्वजन्म के पापो का ही फल भोग रहा है?" देवरात ने सहज भाव से कहा 'ऐसी ही लोगो की धारणा है।" फिर जरा सजग होकर चन्द्रमौलि बोले, 'मैंने अनुभव से जो कुछ जाना है उसे निवेदन करना चाहता हूँ। मेरे मन मे आशका है कि मैं या तो पुराण ऋषियो की विरुद्ध दिशा मे चला गया हूँ या लोगो की ऐसी धारणा ही भ्रान्त है।" देवरात ने कुतूहल के साथ पूछा, "तुम्हारा अनुभव क्या कहता है बेटा?" चन्द्रमौलि को थोडा सकोच हुआ। फिर कुछ रुक रुककर कहने लगा, "दो तरह की रचनाएँ होती है। एक प्रकार की रचनाएँ विधाता की सृष्टि है, दूसरी तरह की रचनाएँ मनुष्य की सृष्टि है। स्वय मनुष्य पहली श्रेणी मे आता है। मनुष्य और प्राकृतिक वस्तुओ, जीव जन्तुओ, लता-पादपो की रचना एक ही कर्त्ता के द्वारा हुई है। इसीलिए हम इन प्राकृतिक वस्तुओ की निर्माण विधि की आलोचना नही करते। वह जैसी बनी हैं वैसी बनेंगी ही। हम उनसे सुख पा सकते है, दुख पा सकते हैं—पर वे है, हम यह कहने के अधिकारी नही हैं कि वे क्यो वैसी बनी है। हम स्वय भी उसी की सृष्टि है पर जो व्यवस्था मनुष्य ने बनायी है उसकी बात और है। उसमे दोष हो तो उसे बदला जा सकता है।" देवरात ने कुछ सोचकर कहा, 'जरा समझाकर कहो, बेटा!" चन्द्रमौलि बोला, "मुझे ऐसा लगता है आर्य कि मेरे मित्र गोपाल की व्यथा मनुष्य की बनायी सामाजिक व्यवस्था की देन है। इस व्यवस्था की आलोचना करने और बदलने का अधिकार मनुष्य को मिलना चाहिए। विधाता ने उन्हे बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य करने को इस धरित्री पर भेजा है, परन्तु मनुष्य की बनायी सामाजिक व्यवस्था ने विधि-व्यवस्था म हस्तक्षेप किया है। क्षमा करें आर्य, आप जो अपने को भटका हुआ अनुभव कर रहे हैं वह भी किसी-न किसी रूप म विधि विधान मे मानवीय समाज-व्यवस्था का ही हस्तक्षेप होना चाहिए। मेरी बातो मे दोष हो तो उसे क्षमा कर दें यह बाल-बुद्धि का ही अनुभव है।"

देवरात आश्चर्य स चकित होकर सुनते रहे। उनके संस्कार इस तरह के

विचार के विरुद्ध जा रहे थे, पर उनका अंतमन इस कथन का मम समझने को व्याकुल हो उठा। बोले, "तुम्हारी बात मान लूं तो उस मूल भित्ति के भहरा जाने की आशका है जिसे आज तक समस्त सामाजिक व्यवस्था को सामंजस्य देने का आधार समझता रहा हूँ। तुम्हारे कथन का अर्थ तो यह होता है कि शास्त्रों में जो समाज-सन्तुलन की व्यवस्था है वह मनुष्य की बनायी है, विधाता के इंगित पर नहीं बनी है। सारा अपौरुषेय समझा जानेवाला ज्ञान, विधि विधान का अंग नहीं है। मनुष्य के बनाये घर द्वार और ईंट पत्थर के समान वह भी आलोच्य और परिवर्तितव्य है। ठीक कह रहा हूँ, आयुष्मान ?"

चन्द्रमौलि न सहज भाव से सिर हिलाया। देवरात सोच म पड गये— यह तरुण कवि साहसी जान पडता है। इतनी बडी बात इतने सहज ढंग से कह गया! उनके मन मे अपनी जीवन गाथा आलोच्य बनकर उपस्थित हो गयी। वे सोचने लगे कि क्या सचमुच ही मनुष्य-रचित व्यवस्था का हस्तक्षेप उनके जीवन को बार-बार मोडकर कुछ-का-कुछ बनाने मे उत्तरदायी नही है? शायद है! मगर यह धर्म-कर्म, संयम नियम क्या व्यर्थ के ढकोसले है? क्या विधाता की बनायी सृष्टि से ये भिन्न हैं? क्या गोपाल आर्यक किसी कृत्रिम सामाजिक विधान से आहत हुआ है? क्या, कैसे?' कुछ देर मौन रहकर चन्द्रमौलि की ओर शून्य दृष्टि से ताककर उन्होंने निःश्वास लिया—"हूँ!" चन्द्रमौलि ने अनुनय के साथ कहा, "बुरा मान गये आर्य? मैं अपौरुषेय माने जानवाले वाक्यों की अवमानना करने के उद्देश्य से ऐसा नही कह रहा हूँ। मुझे ऐसा लगता है कि वाक्य मात्र सीमा म बँधे है, उनका आदि भी होता है और अंत भी होता है। पर सीमा को मैं मामूली गौरव नही देता। सीमा मनुष्य को विधाता का दिया हुआ अनुपम साधन है। मैं अगर एक फूल बनाऊँ, चाहे वह चित्र हो, लकडी का बना हो, पत्थर का हो सीमा के चौखटे म बँधा हुआ होगा। पर उसकी शोभा इसीलिए दीर्घजीवी हो जायेगी। विधाता के बनाये फूल क्षण क्षण परिवर्तित होगे, मुरझायेंगे झडेंगे, फिर नये फल बनने मे निमित्त बनेंगे, पर मेरा बनाया फूल अपेक्षाकृत स्थायी होगा। होगा न आर्य? यह सीमा की महिमा है। अपौरुषेयत्व अधिक से अधिक एक उत्तम कल्पना है। मनुष्य उसमे सीमा के भीतर असीम का इंगित पाता ह।" देवरात ठक रह गये। हाय, विधाता की बनायी शर्मिष्ठा तो कब की समाप्त हो गयी, पर उन्होंने अपने हृदय मे जो कमनीय मूर्ति गढी है वह तो अब भी ज्यो की त्यों है। देवरात ने सीमा के इस माहात्म्य को अभी तक नही समझा था। युवा कवि बरबस उन्हें समझने को प्रेरित कर रहा है। सीमा की भी अपनी महिमा है।

इसी समय माढव्य शर्मा हाफ्ते हाफ्ते उपस्थित हुए। उन्होंने चन्द्रमौलि का अंतिम वाक्य सुन लिया था। एकदम आकर धप्प से बैठ गये, उनका कनटोप छिटक गया और मोटी चुटिया अस्तव्यस्त-सी उनके सारे मुण्ड पर बिखर गयी। हाँफते हाफ्ते ही बोले, 'सीमा टूट रही है मित्र, भटार्क न मथुरा जीत ली है। उज्जयिनी नरेश पालक घबरा गया है। मगर धन्य है भटार्क, राज्य पर-राज्य

नीच समझाकर रोक लेना चाहा, पर उन महावीर का निश्चय नही बदला। जब वे चल ही पडे तो अगत्या हम भी साथ हो लिये। सच कहता हूँ आय, उनके साथ चलने से भय एकदम दूर हो गया, सूय के साथ चलनेवाले के पास कही अन्धकार फटक सकता है ? हम लोग निर्विघ्न यहा पहुँच गये। गोपाल दुवृत्तों को खोजते रहे, कही पा नही सके।"

दवरात कुछ बोले नही, दीघ नि श्वास लेकर रह गये।

चन्द्रमौलि समझ नही सका कि देवरात के हृदय मे कौन सा तूफान चल रहा है। थोडी देर दोनो ही चुपचाप दिगन्त की ओर देखते रहे। चन्द्रमौलि ने ही मौन भग किया। बोला, 'आय, अन्यथा न समझें तो एक बात पूछू ?" देवरात ने चुपचाप इगित से बताया कि पूछ सकते हो। चन्द्रमौलि ने कहा, "आप शास्त्र ममज्ञ ह, साधु सग किया है धर्माचरण से मन और वाणी को पवित्र बनाया है, इसीलिए आपसे पूछ रहा हूँ। यह क्या सत्य है जो पुराण ऋषियो ने बताया है कि मनुष्य अपने पूवजन्म के पापो का ही फल भोग रहा है ?' देवरात ने सहज भाव से कहा, "ऐसी ही लोगो की धारणा है।' फिर ज़रा सजग होकर चन्द्रमौलि बोले, "मैंने अनुभव से जो कुछ जाना है उसे निवेदन करना चाहता हूँ। मेरे मन म आशका है कि मैं या तो पुराण ऋषियो की विरुद्ध दिशा मे चला गया हूँ या लोगो की ऐसी धारणा ही भ्रान्त है।" देवरात ने कुतूहल के साथ पूछा, "तुम्हारा अनुभव क्या कहता है बेटा ?" चन्द्रमौलि को थोडा सकोच हुआ। फिर कुछ रुक रुककर कहने लगा, 'दो तरह की रचनाएँ होती है। एक प्रकार की रचनाएँ विधाता का सष्टि है, दूसरी तरह की रचनाएँ मनुष्य की सष्टि है। स्वय मनुष्य पहली श्रेणी मे आता है। मनुष्य और प्राकृतिक वस्तुओ, जीव जन्तुओ, लता पादपो की रचना एक ही कर्त्ता के द्वारा हुई है। इसीलिए हम इन प्राकृतिक वस्तुओ की निमाण विधि की आलोचना नही करते। वह जैसी बनी हैं, वैसी बनेंगी ही। हम उनसे सुख पा सकते हैं दुख पा सकत है—पर वे हैं, हम यह कहने के अधिकारी नही हैं कि वे क्या वैसी बनी है। हम स्वय भी उसी की सष्टि हैं पर जो व्यवस्था मनुष्य ने बनायी है उसकी बात और है। उसम दोष हो तो उसे बदला जा सकता है।" देवरात ने कुछ सोचकर कहा "ज़रा समझाकर कहो, बेटा।" चन्द्रमौलि बोला, "मुझे ऐसा लगता है आय कि मेरे मित्र गोपाल की व्यथा मनुष्य की बनायी सामाजिक व्यवस्था की देन है। इस व्यवस्था की आलोचना करने और बदलने का अधिकार मनुष्य को मिलना चाहिए। विधाता ने उन्हे बहुत महत्त्वपूण काय करने को इस धरित्री पर भेजा है, परन्तु मनुष्य की बनायी सामाजिक व्यवस्था ने विधि-व्यवस्था मे हस्तक्षेप किया है। क्षमा करें आय, आप जो अपने को भटका हुआ अनुभव कर रहे हैं वह भी किसी-न किसी रूप म विधि विधान म मानवीय समाज-व्यवस्था का ही हस्तक्षेप होना चाहिए। मेरी बातो म दोष हो तो उसे क्षमा कर दें यह बाल-बुद्धि का ही अनुभव है।"

देवरात आश्चय से चकित होकर सुनते रहे। उनके सस्कार इस तरह के

विचार के विरुद्ध जा रहे थे, पर उनका अन्तर्मन इस कथन का मर्म समझने को व्याकुल हो उठा। बोले, "तुम्हारी बात मान लूं तो उस मूल भित्ति के भहरा जाने की आशंका है जिसे आज तक समस्त सामाजिक व्यवस्था को सामंजस्य देने का आधार समझता रहा हूँ। तुम्हारे कथन का अर्थ तो यह होता है कि शास्त्रों में जो समाज-सन्तुलन की व्यवस्था है वह मनुष्य की बनायी है, विधाता के इंगित पर नहीं बनी है। सारा अपौरुषेय समझा जानेवाला ज्ञान, विधि विधान का अंग नहीं है। मनुष्य के बनाये घर-द्वार और ईंट पत्थर के समान वह भी आलोच्य और परिवर्तितव्य है। ठीक कह रहा हूँ आयुष्मान् ?"

चन्द्रमौलि ने सहज भाव से सिर हिलाया। देवरात सोच में पड़ गये—यह तरुण कवि साहसी जान पड़ता है। इतनी बड़ी बात इतने सहज ढंग से कह गया! उनके मन में अपनी जीवन गाथा आलोच्य बनकर उपस्थित हो गयी। वे सोचने लगे कि क्या सचमुच ही मनुष्य रचित व्यवस्था का हस्तक्षेप उनके जीवन को बार-बार मोड़कर कुछ-का-कुछ बनाने में उत्तरदायी नहीं है? शायद है! मगर यह धर्म-कर्म, संयम नियम क्या व्यर्थ के ढकोसले हैं? क्या विधाता की बनायी सृष्टि से ये भिन्न हैं? क्या गोपाल आर्यक किसी कृत्रिम सामाजिक विधान से आहत हुआ है? क्या, कैसे?' कुछ देर मौन रहकर चन्द्रमौलि की ओर शून्य दृष्टि से ताककर उन्होंने निःश्वास लिया—"हूँ!" चन्द्रमौलि ने अनुनय के साथ कहा, "बुरा मान गये आर्य? मैं अपौरुषेय माने जानेवाले वाक्यों की अवमानना करने के उद्देश्य से ऐसा नहीं कह रहा हूँ। मुझे ऐसा लगता है कि वाक्य मात्र सीमा में बंधे हैं, उनका आदि भी होता है और अन्त भी होता है। पर सीमा को मैं मामूली गौरव नहीं देता। सीमा मनुष्य को विधाता का दिया हुआ अनुपम साधन है। मैं अगर एक फूल बनाऊँ, चाहे वह चित्र हो, लकड़ी का बना हो, पत्थर का हो, सीमा के चौखटे में बँधा हुआ होगा। पर उसकी शोभा इसीलिए दीर्घजीवी हो जायेगी। विधाता के बनाये फूल क्षण क्षण परिवर्तित होंगे, मुरझायेंगे, झड़ेंगे, फिर नये फल बनने में निमित्त बनेंगे, पर मेरा बनाया फूल अपेक्षाकृत स्थायी होगा। होगा न आर्य? यह सीमा की महिमा है। अपौरुषेयत्व अधिक-से-अधिक एक उत्तम कल्पना है। मनुष्य उससे सीमा के भीतर असीम का इंगित पाता है।" देवरात ठक रह गये। हाय, विधाता की बनायी शर्मिष्ठा तो कब की समाप्त हो गयी पर उन्होंने अपने हृदय में जो कमनीय मूर्ति गढ़ी है, वह तो अब भी ज्यों की त्यों है। देवरात ने सीमा के इस माहात्म्य को अभी तक नहीं समझा था। युवा कवि बरबस उन्हें समझने को प्रेरित कर रहा है। सीमा की भी अपनी महिमा है।

इसी समय माढव्य शर्मा हाँफते हाँफते उपस्थित हुए। उन्होंने चन्द्रमौलि का अन्तिम वाक्य सुन लिया था। एकदम आकर धप्प से बैठ गये, उनका कनटोप छिटक गया और मोटी चुटिया अस्तव्यस्त सी उनके सारे मुण्ड पर बिखर गयी। हाँफते हाँफते ही बोले, सीमा टूट रही है मित्र, भटार्क ने मथुरा जीत ली है। उज्जयिनी नरेश पालक घबरा गया है। मगर भय है भटार्क, राज्य पर-राज्य

जीतता आ रहा है, पर गोपाल आयक के नाम से ही लडता आ रहा है। सुना गया है कि उसने मगध के सम्राट् को बडा पत्र लिखा है। कहता है, सेनापति तो हमारे गोपाल आयक ही हैं। सम्राट ने पूज्य पूजा का व्यतिक्रम करके गोपाल आयक को अनुचित पत्र लिखा है। सुना है, सम्राट भी पछता रहा है। उज्जयिनी मे तो भीषण आतक छा गया है। प्रजा पहले से ही असतुष्ट है। राजा पालक के साथियो ने सबको चिढा दिया है। सीमा टूट रही है। इस समय यह भाग्यहीन गोपाल न जान कहा जा छिपा ह। मैं कहता हूँ, सखे, पालक जायेंग, गोपाल आयक का राज्य होगा। कही मिल गया तो प्रजा उसे कधे पर उठा लेगी। माढव्य शमा मन्त्री बनेगा मित्र, तुम बनोगे राजकवि! सुना? हा!'

माढव्य उल्लास से उत्क्षिप्त थे। उन्होने देखा ही नही कि चन्द्रमौलि क पास कोई और भी बैठा है। चन्द्रमौलि न हँसते हुए कहा, "दादा, आय देवरात को देखिय। महान शास्त्रज्ञ और तपोनिष्ठ महात्मा है।" दादा उल्लास से आत्म-विस्मत से हो गये थे। अब सामन ज्वलत अग्नि शिखा के समान तपस्वी की ओर देखकर विनीत भाव से बोले, अपराध हो गया आय, इस भोलेराम स आपकी मित्रता कब हो गयी? इसकी कविता सुन रहे थे क्या? अच्छे भले को पागल बना देता है। अपने दादा को तो बिल्कुल वश मे कर लिया है। सबत्र सुदर ही दखता है। मेरा प्रणाम स्वीकार करें आय, मैं भूल गया था। कहा के रहनेवाले हैं?'

देवरात हँसन लगे। उन्हे भी माढव्य शमा को दादा कहने की इच्छा हुई। "तीर्थों मे घूमता फिर रहा हूँ दादा, आपके ये तरुण मित्र सचमुच मोहते हैं। मुझे इनकी बाता से बडी प्रेरणा मिल रही है।"

माढव्य ने मुह बिचकाया। प्रेरणा? इसी से तो मैं घबराता हूँ आय, इसने न जाने गोपाल आयक को क्या प्रेरणा दी कि वह चुपचाप खिसक गया। मैं क्या जानू कि वह प्रेरणा के चक्कर मे है। उस दिन उसने मुझसे इतना ही कहा था कि 'दादा, मेरा मोह टूट गया है, मैं असाध्य साधन करन जा रहा हूँ।' चला गया। भाग्यहीन, यही कही छिपा होगा। मिलेगा तो उसे बता दूगा कि सबसे बडा असाध्य साधन यही है कि माढव्य को मन्त्री बना लो। लोग ठीक बात ठीक ढग मे समझते ही नही। सत्य कहता हूँ आय जब समझन लगेंगे तो माढव्य जस सभी मूख मन्त्री हो जायेंग। इसस बडा असाध्य साधन और क्या हो सकता है भला!"

देवरात हँसन लग। माढव्य शर्मा ने बनावटी रोष दिखात हुए कहा, "आप तो हँस रह है पर कवि मौन है। जानते हैं, क्या? कविजी मुझे समझा चुके हैं। कहग, मूख विधाता की सष्टि है उनकी न आलोचना की जा सकती है, न उनम परिवत्तन की बात सोची जा सकती है पर मन्त्री मनुष्य की बनायी समाज-व्यवस्था की सृष्टि है, उसमे विधाता के बनाय मूख की नियुक्ति ही विधि विधान मे हस्तक्षेप होगा! है न यही बात मेरे प्यारे मित्र! ले भाई गुस्सा न कर, तेरा दादा मन्त्री नही बनगा। गोपाल आयक आकर गिडगिडाकर कहेगा—दादा मेरे मन्त्री बन जाइय! और मैं कहूँगा—कदापि नही, तुम मुझसे विधि विधान मे हस्तक्षेप करन

का पाप कराना चाहते हो ? जाओ, अपना रास्ता नापो ! ले गई, अब तो यहा हो जा।" अब चन्द्रमौलि भी हँस पडा। बोला, "दादा, तुम कभी मन्त्री मत बनना। तुम जैसे हो, वैसे ही बने रहो। मगर गोपाल आयक के बारे मे तुमने कुछ बताया ही नहीं।" माढव्य शर्मा ने आय देवरात की ओर देखकर कहा "देखा न आय मेरा मन्त्री होना अब खटाई मे पड गया। अभी गोपाल का ही क्या ठिकाना है। इतना ही पता लगा है कि नगर के पूर्वी छोर पर कोई एक जीर्ण उद्यान है वहाँ कोई मनुष्य दिखायी दिया है जो उससे मिलती-जुलती आकृति का है। सुना है, राजा पालक के आदमी उसकी तलाश मे हैं। कानाफूसी चल रही है कि उसे बन्दी बनाने का प्रयत्न किया जा रहा है, लेकिन पता नहीं, क्या ठीक है और क्या नहीं।"

देवरात ने सुना तो एकदम विचलित हो उठे। वे उठ पडे और हाथ जोडकर बोले, "मित्रो, विदा लेता हूँ। आप लोगो की कृपपूर्ण मैत्री कभी भूलेगी नहीं। फिर कभी मिलना होगा कि नहीं कौन जाने।"

चन्द्रमौलि ने विस्मय के साथ उन्हे देखा कहा जायगे आय, मैं भी तो आपकी ही भाति यात्री हूँ। साथ हो लू ?"

देवरात बोले, "अभी तो अकेला ही जाऊँगा, आयुष्मान ! कल अगर आप दोनो कही मिल सके तो एक बार और सत्सग का लाभ उठा लूगा।

कल उसी स्थान पर मिलने का निश्चय करके देवरात चल पडे। उनके मन मे दुश्चिन्ता थी।

चौदह

देवरात गोपाल आयक को खोजने निकल पडे। उन्हे यह जानकर बडी चिन्ता हुई कि उज्जयिनी का राजा पालक उसे बन्दी बनाना चाहता है। पिछले कई वर्षो से वे तीर्थो और अरण्यो मे भटक रहे है। उन्हे बिल्कुल पता नही कि बीच मे इतिहास ने कैसा पलटा खाया है। माढव्य शर्मा की बात से उन्हे ऐसा आभास मिला कि समुद्रगुप्त का विजय-अभियान पूरे वेग से चल पडा है। किसी प्रकार गोपाल आयक सम्राट् का विजेता सेनापति बन गया है। कदाचित् वह मृणालमजरी को छोड आया है और किसी लोकापवाद से भीत होकर समुद्रगुप्त की सेना का नतत्व छोडकर भाग खडा हुआ है। उन्होने अनुमान से यह भी समझा कि कोई दूसरा सेनापति भटार्क इस समय उस विजयिनी सेना का नेतृत्व कर रहा है और गोपाल आयक का अत्यन्त विश्वसनीय अनुगत होने के कारण अब भी उसी के नतत्व को

स्वीकार करता है। देवरात को कुछ बातें तो बिल्कुल विश्वसनीय लगी। गोपाल आयक निस्सन्देह महावीर है और उसका शील भी ऐसा ही है कि जो भी उसके सम्पर्क मे आयेगा, वह उसके आचरण से प्रभावित हुए बिना नही रह सकता। सम्राट समुद्रगुप्त से यदि उसका कभी सम्पर्क हुआ हो तो निश्चय ही वह उससे प्रभावित हुआ होगा। और एक बार अवसर मिलने पर गोपाल निस्सन्देह अपने शौर्य और पराक्रम से उसे आसमुद्र धरित्री का विजेता बना देगा। गोपाल मे महाशूर होने के लक्षण निश्चित रूप से विद्यमान हैं। पर लोकापवाद क्या है, यह वे नही समझ सके। मृणालमजरी पर क्या बीत रही होगी, यह सोचकर वे बहुत ही विचलित हुए। पता नही, वह इस समय किस अवस्था मे होगी। वे गोपाल आयक को खोजेंगे। मिला तो उसके हृदय की व्यथा दूर करेंगे। नही मिला तो एक बार फिर हलद्वीप को लौट जायेंगे। परन्तु उज्जयिनी उनका कोई परिचित स्थान तो है नही। गोपाल आयक को कहाँ खोजें, किससे पूछें, क्या पूछें ? राजा यदि विरुद्ध है तो खुलकर किसी से पूछना ठीक नही जान पडता। माढव्य शर्मा कह रहे थे कि नगर के पूर्वी छोर पर कोई जीर्ण उद्यान है, वहा किसी ने उसके समान किसी पुरुष को देखा है। वे नगर के पूर्वी किनारे की ओर ही बढते गये।

वे आगे बढते जा रहे थे, पर उनके मन मे विचारो का तूफान उठ रहा था—'कवि ने ठीक ही कहा है कि सीमा की अपनी महिमा है। यह सीमा ही है कि शर्मिष्ठा उनके मानस मे ज्या-की-त्या विराजमान है, नवविकसित प्रफुल्ल स्वर्ण-कमल के समान वे उसे देख रहे है पा रहे हैं, सदा पाते रहेगे। दुनिया बदल रही है देवरात बदल रहे है पर शर्मिष्ठा स्थिर है, शाश्वत है, मोहन है। मजुला ने कहा था, मैं बासी को ताजा कर सकती हूँ। देवरात ने भी मान लिया था कि बासी ताजा हो रहा है। शायद यह उनके मन का विकार था। कवि ने आज बता दिया है कि मनुष्य द्वारा सीमा मे रचित रचना बासी होती ही नही। देवरात को कुछ नया मिल रहा है। कवि ने उन्हे झकझोर दिया है। हाय प्रिये, देवरात मोह ग्रस्त हो गया था। तुम्हे बासी समझना आत्म वचना थी, विशुद्ध आत्म वचना ! तुम नित्य प्रफुल्ल नित्य मनोहर, नित्य-नवीन होकर सदा इस मानस मन मे विद्यमान हो। तुम मेरे अन्तर्यामी की सृष्टि हो, शुद्ध चैतन्य के उपकरणो से बनी हो, कहीं भी उसमे जड तत्त्वो का स्पर्श नही है—विशुद्ध चैतन्यमूर्त्ति ! मैं व्यर्थ ही भटक गया था। सीमा मे बँधी देवि, तुम चिर सत्य हो !'

यह कवि कह रहा है कि अपने-आपको दलित द्राक्षा की भाति निचोडकर उपलब्ध रस को लुटा देना ही सुख है। कैसे मिलेगा यह सुख ? दीर्घकाल से ऐसा ही मानता आया हूँ पर सुख कहाँ मिला ? इस प्रकार की चिन्ताओ मे उलझे हुए वे आगे बढते जा रहे थे। रास्ते पर कुछ लोग बात करते जा रहे थे। बातचीत के दो चार शब्द उनके कानो मे पडे। बातचीत गोपाल आयक के बारे मे थी। वे ध्यान से सुनने लगे, पर थोडा दूर रहकर ही। एक दुबला-सा नौजवान कुछ उत्तेजित स्वर मे कह रहा था, 'देख लेना, ऐसा अत्याचार भगवान् भी नही सह

सकेंगे। सबकी मर्यादा होती है। किसी के घर मे घुसकर बहू-बेटियां पर कुदृष्टि डालने का परिणाम भयकर होगा। राजा का साला है तो क्या जो चाहे सो कर सकता है? इसी पाप से इस राजा का सत्यानाश हो जायेगा।" दूसरा व्यक्ति धीरे धीरे बोलने को कह रहा था, "जानते नही राजा के चर चारो ओर घूम रहे रहे है। किसी ने जाकर कुछ कह दिया तो चमडी उधेड ली जायगी।" एक ठिगने से ब्राह्मण देवता कह रहे थे, "सत्यानाश हो जायेगा। रावण और कस नही टिके तो यह म्लेच्छ राजा कै दिन टिकेगा! गोपाल आयक की सेना बढती आ रही है।" पहले व्यक्ति ने ज़रा आश्वस्त मुद्रा में पूछा, "यह ग्वालारिक कौन है महाराज?' ठिगने ब्राह्मण ने डाटा, 'तू मूर्ख ही रह गया रे भीमा, गोपाल आयक भी नही बोल सकता?" उसने विनीत भाव से कहा, "हम लोग तुम्हारे समान सासतर थोडे ही पढे है पण्डितजी, ठीक ठीक बोल पाते तो हम भी तुम्हारी तरह पुजवाते न फिरते? तुमने जो नाम बताया वह क्या कहा—गोवाल आरिक, बडा कठिन नाम है। ग्वालारिक-जैसा ही तो सुनायी पडता है देवता!" एक और व्यक्ति ने बीच मे पडकर कहा, 'इस बेचारे को क्यो डाटते हो देवता, वह तो बहुत दूर तक ठीक ठीक ही उच्चारण कर रहा है, उधर मथुरा म तो लोगा ने और भी सक्षेप कर लिया है। वे अपने गीता मे ग्वालारिक भी नही कहते। कह देत हैं—'ल्वारिक' या 'लोरिक'। सुना नही वह प्राकृत दोधक, जिसम गोपाल आयक को महावराह की भाति धरती का उद्धार करनेवाला कहा गया है? अब तो विदिशा के गांवो मे भी ल्वारिक को अवतार कहकर उसकी कीत्ति कथा गायी जाने लगी है। जो पूछ रहा है वह बताओ। हम लोग सुनने को व्याकुल है।"

ठिगने ब्राह्मण देवता को अच्छा नही लगा कि महावीर गोपाल आयक का नाम बिगाडकर ल्वारिक कर दिया जाये, पर गँवार लोगा की मूर्खता से खिन्न होकर बोले, "मूर्खो, नाम बिगाडकर जो भी बना दो, उसस उस महावीर का क्या बिगडता है जिसने म्लेच्छ भार से अकुलायी धरती का उद्धार किया है। भगवान श्रीकृष्णचन्द्र को 'कान्हा' या 'कन्हैया' कह देते हो तो उनकी महिमा कुछ कम थोडे ही हो जाती है। पर वह दोधक क्या है भाई रेभिल, सुना दो न!" रेभिल ने गुनगुनाना शुरू किया। वह कानो के पास हाथ ले जाकर आलाप करने जा ही रहा था कि भीमा ने उसका हाथ झटक दिया। बोला, "धीरे धीर सुनाओ, चिल्लाकर गाने से तो सभी पकडे जायेंगे।' रेभिल ने कहा, 'यह भी ठीक ही कह रहे हो। धीरे धीरे ही सुना रहा हूँ!" फिर उसने धीरे-धीरे सुनाया

"बुड्डमाण धरई विअन, को उद्धरिहइ णाहु।
दन्तरूव करवालहरु ल्वारिकु विअडु वराहु॥
जाव ण ल्वारिक करि पडइ सीह चवेडु चडक्कु।
ताव सु णरवइ मयगयहँ पइ पइ वज्जइ ढक्कु॥"
[बूडि रही धरती विकल, को उद्धारिहि नाह।
दन्त रूप करवाल धर, लारिक विकट वराह॥

जु पै न लारिक वर पडइ, मिह चपट चटाव।
तौ लौं नप मदमत्त गज, पग-पग वाजत ढाव ।।]

ब्राह्मण देवता उत्फुल्ल हो उठे—"वाह, गँवई-गाँव के लोग भी अद्भुत काव्य लिख देते हैं! गोपाल आयक वस्तुत महावराह के अवतार है। उन्होंने धरित्री को एक दांत पर उठा लिया था और गोपाल आयक ने तलवार की नोक पर उठा लिया है। मैं कहता हूँ, जिस दिन उनकी तलवार उज्जयिनी मे चमकेगी, उस दिन म्लेच्छ राजा बिना युद्ध किये ही भाग जायेगा। पापी ने अपने साले शकार को नगर म इस प्रकार छोड रखा है, जैसे व्याध अपने कुत्ते को ललकार देता है। चारुदत्त जैसे साधु सेठ को छेडने से तो अब उसके पाप का घडा पूरा ही भर गया है। रेभिल ने कहा, "क्या कहना है आर्य चारुदत्त का! ऐसा रूप, ऐसा शील, ऐसा विनय, ऐसा औदार्य—ससार में दुर्लभ है! सुना है आर्य, कि नगर की श्री आर्या वसन्तसेना उनके गुणो पर मुग्ध है। गणिका होने से क्या हुआ, उसके समान पतिव्रता मिलना भी दुर्लभ ही है। लोग कहते है, यह दुष्ट शकार उसके पीछे पडा है। उसने ऐसा दुत्कारा है कि बच्चू भाग खड़े हुए। निर्लज्ज पामर है। सुना जाता है कि वसन्तसेना को मरवा देना चाहता है। और यह नपुसक राजा सब कुछ जानकर भी चुप है।" भीमा अवसर पाकर बोल उठा, "महाराज, दो ही तो इस नगरी के तिलक के समान पूजनीय है—धर्मनिधि आर्य चारुदत्त और शोभा की रानी आर्या वसन्तसेना। कल ही किसी को गाते सुना था

दोज्जेव पुजणीआ इह णअरीए तिलअ भूदा अ।
अज्जा वसन्तसेणा धम्मणिही चारुदत्तो अ।।"
[पूजनीय दुइ ही यहा, नगरी तिलक ललाम।
वह वसन्तसेना सती, चारुदत्त गुनधाम।।]

ठिगने ब्राह्मण ने उचककर कहा, 'मरवा देगा? क्या धर्म रसातल को चला जायगा, कला का गला घोट दिया जायेगा, शील का नाश हो जायेगा! हे भगवान, यह पापलीला कब तक चलती रहेगी! रेभिल बोला, "अब अधिक नही चलेगी देवता! बडा हल्ला है कि गोपाल आयक छिपकर आ गया है। राजा उसे पकड़ने की सोच रहा है। दो एक दिन म देखोगे, कुछ होके रहेगा।"

ठिगने पण्डितजी बोले अनर्थ न हो जाये रेभिल वसन्तसेना कलानिधि है। मैंने उसका नृत्य महाकाल के मन्दिर म देखा है। उसके एक एक पद निक्षेप म शोभा बरसती है। विधाता ने उसे अद्भुत कण्ठ दिया है। आलाप लेती है तो वायुमण्डल काप उठता है अन्तरतर से निकले हुए शब्दों से पत्थर पिघल जाते है, भक्ति तो मानो उसका रूप ही है। हाय यह पापी उसे मरवा देगा?' रेभिल ने कहा कहता तो रहा हूँ देवता कि गोपाल आयक आ गया है यहाँ के पाप के अन्धकार को कोई चीर सकता है तो गोपाल आयक की तलवार ही। ो नही, महाकाल के दरबार मे देर होती है, अन्धेर

ब्राह्मण देवता अनमने बन रहे। उन्होंने रे सुने

कुछ भाव-गद्गद अवस्था म बाल उठे, रभिल, गा त वाद्य की रुचि तो तुम्ह प्राप्त है, पर तुमन नत्य वसन्तसेना के भक्ति और नत्य वा नही दखा। वह भावानुप्रवेश की अधिष्ठात्री दवी है। आज म कई वष पहल की बात है। उस समय वह सुकुमार बालिका ही थी, उसन कलादिगुरु नृत्य किया था। कलादिगुरु नत्य ! समझे ?"
रभिल कुछ असमजस के साथ बाला, "नही दवता यह नत्य क्या होता है ? मैं नही जानता।' ब्राह्मण दवता न कहा, 'त ग ज नाग ? म्लच्छ राजा क राज्य स ता यह सब उठ ही गया है। कलादिगुरु नृत्य कभी मथुरा की विशषता माना जाता था। भगवान् श्रीकृष्ण न कालिय नाग क सहस्र फणा पर विकट नत्य किया था। उसकी विशषता यह थी कि नाचनवाला बालक जानता ही नही था कि वह भयकर मत्यु क फूत्कारा स घिरा हुआ है, वह खेल रहा था, सहज भाव से। और मत्यु का भीषण विग्रह कालिय नाग अपन विकराल फण मण्डल क साथ चूर चूर होता जा रहा था। वह पूण रूप स जीवन के उगत अकुर को विदारण करन पर तुला हुआ था और जीवन था कि किलकारी मारकर थिरक रहा था। वसन्तसेना न भगवान् कृष्ण बनकर उस विकट मनाहर नृत्य का उजागर किया था। मैं तो अपन गुरुजी के साथ दखन चला गया था। आहा, बडे दुलभ याग स एसा नृत्य दखन का अवसर मिलता है ! वसन्तसेना तो कृष्णमय हो गयी थी। उसका भावानुप्रवेश बस दखन ही योग्य था। पर गुरुजी तो ऐसे अभिभूत हुए माना उन्ह साक्षात भगवान के ही दशन हो रह थे। वह एक एक थिरकन, एक-एक चारी, एक एक किलकार, एक एक पदाघात अपूव था। गुरुजी भाव विह्वल होकर गा उठे थे

"'एव परिभ्रमहृतौजसमुन्नतासम
आनम्य तत् पृथुशिर स्वधिरूढ आद्य ॥
तन्मूरत्ननिकरस्पशातिताम्र-
पादाम्बुजोऽखिलकलादिगुरुनतत ।' "

रभिल न कहा, "जरा गुरुजीवाले श्लोक का मतलब भी समझा दो दवता।"
'अब मतलब तुम्ह क्या समझाऊँ ? चपल बालिका वसन्तसेना न जब यह श्लोक सुना, तो एक बार फिर थिरक उठी। पसीन से तर थी, पर गुरुजी के भाव विह्वल स्वर से ऐसी प्रभावित हुई कि फिर उठ पडी। मतलब तो उसी न समझा दिया। गुरुजी न जो श्लोक पढा था, वह महर्षि द्वैपायन व्यास की रचना थी। उसका अथ समझना क्या कोई हँसी खेल है ! पर धन्य है वसन्तसेना ! उसन एक एक भाव को पकडकर नाचना शुरू किया और छ द और ताल की भाषा म उसे साकार कर दिया। लोकभाषा मे ताल दे देकर वह गाती जाती थी। आशुकवित्व का वह वैभव बस दखन की ही बात थी। उसने गाया था

'तत्तत्थेई थेई नाचत शिशु हरि
निखिल कलादिगुरु
तरथरिथरकत चण्ड नागसिर,
चार चारिका

भ्रमत निरंतर।
धद्धद्धसक्त उन्नत फण शत-
ओज तेज हृत
नमत भुजगम,
झज्झज्झरत विपाक्त दर्प मद
दद्दद्मक्त मूधरत्न शत-
किरण समुज्ज्वल
चरणाम्बुज द्रुत।
घद्धद्धरक्त नाग वधू-उर
क्लिक्त पुलक्त
विहँसत सुमधुर
ठटठट्ठमकत एक-एक सिर,
नाचत छम छम
फेरि फेरि फिरि
तत्तत्थेइ थेइ, तत्तत्थेइ थेइ
निखिल कलादिगुरु!' "

सबने एक स्वर से कहा, "धन्य है, धन्य है!"

सुनकर देवरात के हृदय में प्रकाश की रेखा कौंध गयी। कलादिगुरु—जीवन के आदिदेवता समस्त विध्वंसक जड शक्ति को अभिभूत करके नाच रहे हैं! आहा!

"जानते हो रेभिल, वसन्तसेना इस नगर की लक्ष्मी है। सत्यानाश हो जायेगा, यदि किसी ने उस पर उँगली उठायी।" इसी समय भीमा ने पीछे की ओर धीरे-धीरे चलते देवरात को देख लिया। कुछ फिसफिसाकर बोला और एक ओर खिसक गया। रेभिल भी डरा और पण्डित को अकेला छोड़कर दूसरी ओर खिसक गया। ठिगने ब्राह्मण अकेले रह गये। जब तक भागे, तब तक देवरात निकट आ गये। ब्राह्मण देवता सकपकाकर उनकी ओर देखने लगे और अन्दाजा लगाने लगे कि इस भलेमानस ने कुछ सुन तो नहीं लिया है। देवरात ने ऐसा चेहरा बना लिया कि जैसे कुछ सुना ही न हो। विनीत भाव से पास आकर बोले "आर्य, परदेशी तीर्थयात्री हूँ। अनुमति हो तो कुछ पूछना चाहता हूँ।" ब्राह्मण देवता डर गये थे। देवरात को घूरने लगे।

देवरात समझ गये कि ब्राह्मण देवता को उन पर सन्देह हो रहा है। अत्यन्त विनीत भाव से बोले, "कुछ अनुचित हो गया हो तो क्षमा करें आर्य, परदेशी हूँ, इसलिए टोकने का साहस किया। मैं किसी और से पूछ लूँगा। कुछ अन्यथा न मानें।" अब ब्राह्मण देवता कुछ पसीजे। बोले, 'भद्र, इन दिनों ... म तीर्थयात्री कम आते हैं, गुप्तचर अधिक। पूछिए ... जो जानता हूँ उसे छिपाऊँगा नहीं।" ब्राह्मण दे... ो स-
देवरात ने कुछ न पूछना ही उचित समझ ... कि

परदेशी पर सन्देह तो होता ही है। अच्छा, प्रणाम स्वीकार करें।" अब ब्राह्मण कुछ आश्वस्त जान पडे। बोले, "नही भद्र, हर परदेशी पर सन्देह करना उचित नही है। इन दिनो उज्जयिनी कुछ असाधारण परिस्थिति मे है, इसलिए सन्देह होता है। हम स्वभाव से ऐसे नही हैं, परिस्थितिया स लाचार है।" देवरात ने विनीत भाव से कहा, "ठीक कहते है आर्य, परिस्थितिया मनुष्य के व्यवहार मे अन्तर तो ला ही देती है। मैं स्वय उद्विग्न हूँ, इसलिए आपके उद्वेग को समझ सकता हूँ।"

ब्राह्मण पण्डित ने कुतूहल के साथ देवरात को देखा। फिर बोले, "भद्र, चित्त मे जमे हुए सस्कारो को जब ठेस लगती है तो उद्वेग होता है। हमारा राजा प्रजा के बद्धमूल सस्कारो पर चोट कर रहा है। कदाचित् म्लेच्छ देश मे इन सस्कारो का ऐसा ही रूप नही है। इसीलिए म्लेच्छ राजा को हमारे सस्कारो को ठेस पहुँचाने मे कोई दुविधा नही होती। सारी उज्जयिनी आज इसलिए उद्विग्न है कि हमारे सस्कारो की अवमानना हो रही है। नही तो प्रजा को राजा से द्वेष करने का कोई कारण नही है। परन्तु तुम क्या उद्विग्न हो भद्र, तुम्हारे सस्कारो को कहा से ठेस पहुँची है?" देवरात को उद्वेग की ऐसी परिभाषा से थोडा आश्चर्य ही हुआ। वे उद्वेग को ऐसा-कुछ नही समझते थे। उनकी धारणा थी कि मन मे कोई भी चिन्ता उद्वेग का कारण हो सकती है। बोले, "आर्य, आप जैसा बता रहे हैं वैसा कारण तो मैं नही जानता, मैं तो अपने व्यक्तिगत पारिवारिक कष्टो से अभिभूत हूँ। शान्ति की खोज मे भटक रहा हूँ, मिल नही रही है। इसी को मैं मानसिक उद्वेग कह रहा था।" ब्राह्मण पण्डित ने एक बार फिर उन्हे नीचे से ऊपर तक देखा। ऐसा जान पडा कि वे आश्वस्त हो आये थे। बोले, "भद्र, तुममे सुपुरुष के लक्षण दिखायी दे रहे है। अभी तक मैं तुम्हे अविश्वास के साथ देख रहा था। मेरा नाम श्रुतिधर है। नाम ही नाम है, गुण वैसा नही है। नगरी के पूर्वी छोर पर मेरी छोटी-सी पाठशाला है। लोग उसे उपाध्यायकुल कहते है, प्राकृत मे 'ओझाउल'। अगर कोई और करणीय न हो तो वही चलकर थोडा विश्राम कर लो। मुझे लगता है कि मैं तुम्हारी कुछ सेवा या सहायता कर सकूँगा। कुछ अन्यथा न मानो तो कहना चाहूँगा कि तुम्हारी आकृति असाधारण जान पडती है। तुम अपने को छिपा रहे हो। अच्छा भद्र, मैं तुम्हारा कुछ परिचय पा सकता हूँ?"

देवरात कुछ असमजस मे पड गये। फिर अत्यन्त विनीत स्वर म बोले, "आर्य आपके इस अकारण स्नेह से अनुगृहीत हुआ। मैं क्या अपना परिचय दू? मेरा नाम देवरात है। कुछ भटक ही गया हूँ।"

श्रुतिधर एकाएक चौंक उठे। बोले, "क्या कहा भद्र, देवरात?" उनके प्रश्न से ऐसा लगा जैसे यह नाम और इस नाम का मनुष्य चिरकाल से उनके परिचित हो। उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही उन्होने नया प्रश्न किया। उनकी वाणी म आदर का भाव था—"अविनय क्षमा करना भद्र, क्या मैं हलद्वीप के तपोनिरत महात्मा आर्य देवरात से बात कर रहा हूँ?"

ही है। निश्छल, निरभिमान! शक्ति और सौजन्य का तो वह मिलित रूप ही है।"

देवरात का हृदय आनन्द गद्गद हो उठा। श्यामरूप ने यशस्वी मल्ल के रूप में ख्याति पायी है, यह बात उन्हें बिल्कुल मालूम नहीं थी। उनके हलद्वीप छोड़ने के पहले ही श्यामरूप कहीं भाग गया था। वृद्धगोप ने बहुत प्रयत्न किया, पर उसका कुछ पता नहीं चला। इतने दिन बाद आज उसका नाम सुन पड़ा। देवरात तो ऐसा ही मान चुके थे कि अब वह इस संसार में ही नहीं है। उन्हें इस बात में तो रंच मात्र सन्देह करने की आवश्यकता नहीं कि अवसर मिलने पर श्यामरूप महान् मल्ल के रूप में कीर्ति पाने के योग्य था। आज यह सुनकर कि उसकी कीर्ति सर्वत्र फैली हुई है उनका मन आनन्द विह्वल हो उठा। वे बार बार आग्रह के साथ पूछने लगे, 'आर्य, आपने श्यामरूप को कहाँ देखा है? कहाँ है वह? कैसे आपसे उसकी मित्रता हुई? आपने उसे प्रेम न देखा है? कहीं निकट ही रहता है क्या? बताओ आर्य, आज मेरे ग्रह प्रसन्न जान पड़ते हैं!"

श्रुतिधर को प्रसन्नता हुई। बोले, 'सब बताऊँगा आर्य परन्तु यहाँ नहीं। आप मेरी कुटिया तक चलने की कृपा करें। बहुत दूर नहीं है।' देवरात ने उतावली के साथ कहा, "ठीक है। चल रहा हूँ।" कुछ दूर तक दोनों चुपचाप चलते रहे। फिर देवरात ने ही मौन भंग किया। इतना सावधान अवश्य थे कि विषय बदला जान पड़े। पूछा "आर्य, आप किस विषय का अध्यापन करते हैं?" श्रुतिधर ने कुछ प्रतिवाद-सा करते हुए कहा, "बड़े अविनय का आचरण कर चुका हूँ, आर्य! आप मुझे इस प्रकार गौरव देकर सम्बोधित न करें। आपके शिष्य का मित्र हूँ, मुझे भी शिष्य ही समझें। शार्विलक से अवस्था में थोड़ा बड़ा अवश्य हूँ, पर हूँ आपका शिष्य-कल्प ही। यहाँ के ओझाओं में व्याकरण का अध्यापन करता हूँ और काव्य और संगीत से मनोविनोद करता हूँ। यथासम्भव भीड़ भाड़ से बचकर रहता हूँ। मेरे विद्यार्थियों की संख्या बहुत है। जीवन यात्रा के निर्वाह के लिए किसी के द्वार नहीं जाना पड़ता।" देवरात को अच्छा लगा। वे श्रुतिधर के विनय और शील से आह्लादित हुए। प्रसन्न भाव से बोले, 'देखो आर्य, भूल न जाना। मेरा यह शरीर क्षत्रिय का है। आपके प्रति मेरा वात्सल्य तो बराबर उसी प्रकार बना रहेगा जैसा श्यामरूप के प्रति है, पर गौरव तो मुझे देना ही चाहिए। ब्राह्मण—तत्रापि विद्वान ब्राह्मण—को सम्मान देना तो मेरा कुल धर्म है।" श्रुतिधर ने विमर्शपूर्वक कहा, 'जानता हूँ आर्य जानता हूँ। परन्तु जो बात आप नहीं जानते वह भी जानता हूँ।" आश्चर्य के साथ देवरात ने पूछा, "वह कौन सी बात है?" श्रुतिधर ने कुछ इतस्तत करते हुए कहा "यही कि श्यामरूप बेचारा इसी कारण से मारा गया। यदि आपने उसे ब्राह्मण आचार में दीक्षित करने के उद्देश्य से क्षिप्तेश्वर महादेव की पाठशाला में न भिजवा दिया होता तो वह नटों की मण्डली के साथ न भागता और कदाचित इतना कष्ट न भोगता। उसके मन में बड़ा कचोट है आर्य!"

देवरात के हृदय मे विचित्र प्रकार की धडकन होने लगी। हाँ, श्यामरूप के भटक जाने का कारण क्या उनके यही दृढ विचार है ? उन्होने ही वृद्धगोप को सलाह दी थी कि श्यामरूप ब्राह्मण कुमार है, उसे अपने कुल धर्म के अनुरूप वैदिक कर्मकाण्ड की शिक्षा देनी चाहिए। क्या कुल धर्म और व्यक्तिगत रुचि मे विरोध भी होता है ? उन्हे अपने सस्कारो की सच्चाई मे कभी सन्देह नही हुआ था। आज पहली बार उनके ऊपर कडी चोट पडी है। श्रुतिधर ने उनके मन के क्षोभ को पहचाना उन्हे देवरात का हृदय दुखाने का कष्ट भी हुआ। बात दूसरी ओर मोडने के उद्देश्य से बोले, "विधाता जब कुछ करना चाहते है तो विचित्र सयोग दे देते हैं, आर्य ! श्यामरूप का भटक जाना अच्छा ही हुआ। अगर नट मण्डली के साथ न भाग गया होता तो आज उसे भुवन विश्रुत मल्ल होने की कीर्ति न मिली होती। अच्छा ही हुआ आर्य, मैंने आपको व्यर्थ ही व्यथा पहुँचायी। मेरे कहने का उद्देश्य केवल इतना ही था कि आप मुझे अपना स्नेह-भाजन शिष्य ही समझें। मुझे अनावश्यक सम्मान देकर लज्जित न करें। मुझे मेरा नाम लेकर ही पुकारें। यदि मेरी प्रार्थना आप नही स्वीकार करते तो सच मानिये आर्य, आपके कुल धर्म के सस्कारो पर और भी चोट पहुँच सकती है, मैं पैर पकड लूगा।" श्रुतिधर ने देवरात के हृदय को ठीक ढग से सहलाया। वे प्रसन्न मुद्रा मे कहने लगे, "साधु आयुष्मान्, तुम्हारे इस शील गुण से मैं पराजित हो गया हूँ। चलो, अपनी कुटिया मे। मैं विस्तार से सुनना चाहता हूँ। मैं तुम्हारी बातो से अपने को ही पा रहा हूँ। चलो, देर करने से क्या लाभ।"

पन्द्रह

उज्जयिनी मे एक बहुत पुराना बगीचा था जिसे चण्डसेन के पूर्व पुरुषो ने निर्माण कराया था। उसमे एक छोटा सा प्रासाद और एक तालाब भी था। दीर्घकाल से उपेक्षित होने के कारण प्रासाद अत्यन्त जीर्ण हो गया था और इसे 'जीर्णोद्यान' कहा जाता था। किसी समय यह उद्यान और भवन निश्चय ही बहुत सुन्दर रहे होगे परन्तु अब यह भुतहा समझा जाने लगा था। उज्जयिनी मे इसके बारे मे अनेक भयजनक कहानियाँ प्रचलित हो गयी थीं। बहुत-से प्रत्यक्षदर्शियो ने इसमे विकराल आकृति के भूत देखने का दावा भी किया था। रात को उधर जाने का साहस बहुत कम लोगो का होता था। उज्जयिनी मे उस समय पालक नामक क्रूर राजा का राज्य था। मथुरा मे इन्हीं के सौतेले भाई उग्रवर्मा राज्य करते थे।

दोना भाइया मे परस्पर विश्वास और प्रेम बताया जाता था, परन्तु साधारण प्रजा दोना को म्लेच्छ समझती थी और दोना से असन्तुष्ट थी। मुख्य कारण राजा और प्रजा के धार्मिक और सामाजिक आदर्शों का विरोध था। दोनो ही राज्या के सैनिक प्रजा के धार्मिक विश्वासो का तिरस्कार करते थे और आय-दिन सनिको के अत्याचारो की झूठी सच्ची खबरें उडती रहती थी। केवल चण्डसेन के प्रति जनता मे श्रद्धा रह गयी थी, क्योकि व प्रजा की भावनाओ का आदर करते थे। मथुरा और उज्जयिनी एक ही वश द्वारा शासित राज्य थे। चण्डसेन पालक और उप्यवदात दोना के पितव्य होने के कारण दोनो के ही सम्मान के पात्र थे, पर नगर मे कुछ इस प्रकार की कानाफूसी चल रही थी कि वे पालक से किसी बात पर अप्रसन्न थे इसलिए मथुरा चले गये थे। शार्विलक ने चण्डसेन के परिवार को चुपचाप इसी उद्यान भवन मे ला रखा था। चण्डसेन की आज्ञा से किसी प्रकार की कोई सफाई नही की गयी। भवन के भीतरी हिस्से को स्वय शार्विलक और वीरक ने झाड पोछकर साफ किया था। बाहर ज्या-का-त्यों रहने दिया था। बाहर से देखनेवालो को बिल्कुल पता नही चलता था कि इसके भीतर कोई रह रहा है। शार्विलक भी अपने को छिपाकर ही इसकी देख-रेख करता था। इस काय मे उसे अनायास ही बहुत अच्छी सहायता मिल गयी थी।

जीर्णोद्यान के टूटे हुए सरोवर की दूसरी ओर एक पाठशाला थी। साधारण जनता म यह 'ओझाउल' (उपाध्याय-कुल) के नाम से प्रसिद्ध थी। इसका खच स्वय चण्डसेन चलाते थे। परन्तु वह खच नाममात्र का ही था। पाठशाला के आचाय श्रुतिधर उज्जयिनी मे सम्मान की दृष्टि से देखे जाते थे। नगर के अनेक प्रतिष्ठित परिवारो के बालक उनसे शिक्षा प्राप्त करते थे। अपनी वृत्ति के लिए उन्हे किसी के द्वार नही जाना पडता था। इन्ही श्रुतिधर से शार्विलक की मत्री हो गयी। स्वय चण्डसेन ने ही यह मैत्री करा दी थी। चण्डसेन का श्रुतिधर पर अगाध विश्वास था। उज्जयिनी मे केवल य ही एक मनुष्य थे जिन्हे यह जानकारी थी कि चण्डसेन का परिवार जीर्णोद्यान के भग्न प्रासाद म निवास कर रहा है। श्रुतिधर की प्रेरणा पाकर उनके विद्यार्थिया न जीर्णोद्यान के भूता की कहानियाँ नगर मे और भी अधिक फैला दी थी। अनक रूपा मे य कहानिया फैली थी, पर साथ ही-साथ श्रुतिधर के अनजाने ही उनकी दैवी शक्तिया का भी प्रचार होना रहता था। विद्यार्थिया ने ऐसी बातें भी गढ ली थी कि उनके गुरु ही जीर्णोद्यान के भूता को वश मे रख सकते है। गुरु के प्रति अत्यधिक श्रद्धा क कारण उन्होने उनकी अलौकिक शक्तिया का प्रचार बहुत बढा चढाकर किया था, स्वय श्रुतिधर का उसम कोई हाथ नही था, परन्तु नगर म वे सिद्ध पुरुष के रूप म ख्याति ता पाने ही लग थे।

श्रुतिधर का उपाध्याय-कुल (ओझाउल) इसी पुराने उद्यान म था। किसी जमाने मे यह उद्यान बहुत मनोरम रहा होगा लकिन इस समय उसकी हालत बहुत अच्छी नही थी। ऐसा लगता था जैसे दीघकाल से उसका सुरक्षित हाथा

का यत्न नहीं मिला था। जिन स्थानों पर कभी चम्पक, सिन्दुवार, कर्णिकार, मदम्म आदि मनोहर पुष्पोंवाले वृक्ष रहे होंगे, वहाँ अब अयत्नवर्धित करवीर और भाण्डीरक गुल्मों का आविर्भाव हो आया था। कुएँ से वृक्षों तक जानेवाली नालियों में घास निकल आयी थी और वेदारों में दूब, कुश और सरकण्डों का प्रादुर्भाव हो आया था। उद्यान को घेरनेवाली दीवारों में पीपल और बरगद के पेड निकल आये थे और गर्वपूर्वक अपनी जीवनी शक्ति की घोषणा कर रहे थे। उद्यान किसी बड़ी योजना और सम्पत्ति से बना होगा। उसमें एक बड़ा-सा महल भी था और उसके मालिक के मनोविनोद के लिए बने हुए रंग-गृह और आस्थान मण्डप भी थे पर दीर्घकाल से उनकी कोई देख-रेख न होने से वे बहुत जीर्ण लगने लगे थे यद्यपि उतने पुराने वे वास्तव में थे नहीं। इस महल से थोड़ी दूरी पर बनी हुई श्रुतिधर की कुटिया सचमुच ही कुटिया थी। उसके बाहर एक विशाल बकुल वृक्ष था। उसकी छाया में श्रुतिधर का अध्ययन-अध्यापन, पूजा-पाठ सब कुछ चलता था। कुटिया का उपयोग केवल बरसात के समय ही कुछ हो जाता था। बकुल वृक्ष के नीचे भूमि अवश्य साफ कर ली गयी थी और मिट्टी पत्थर से कुछ वेदियाँ भी बना ली गयी थीं।

चण्डसेन का परिवार बहुत छोटा था। उनकी पत्नी साध्वी महिला थीं। उनके पिता अलकदात पुरुषपुर के शक सरदार थे और बौद्ध धर्मी थे। पुत्री को उन्होंने बौद्ध उपासना-पद्धति में दीक्षित किया था। वे दिन रात पूजा पाठ में लगी रहती थीं। अष्ट-सहस्री प्रज्ञा-पारमिता का वे नित्य पाठ किया करती थीं, और बुद्ध प्रतिमा के सामने ध्यानावस्थित होकर महायान शाखा के मन्त्रों का जप किया करती थीं। उज्जयिनी के जीर्णोद्यान में उन्हें और कोई कष्ट तो नहीं था, लेकिन एक दुःख उन्हें अवश्य था। वे अपने नित्य नियमों के अनुसार श्रमण साधुओं को यथेष्ट दान नहीं दे पाती थीं, क्योंकि बाहर जाना सम्भव नहीं था और वहाँ श्रमणों को बुला लाने पर नगर में उनके प्रच्छन्न आवास का पता लग जाने की आशंका थी। उनके दो छोटे छोटे पुत्र थे। आचार्य श्रुतिधर ने उन्हें अपनी पाठशाला में ले लिया था और स्पष्ट निर्देश दे दिया था कि वे अपना सही परिचय किसी बालक को न दें। रात को उन्हें प्रच्छन्न रूप से माता के पास पहुँचा दिया जाता था। शार्विलक भी रात को ही स्वामिनी से मिलता था और आवश्यक आदेश प्राप्त करता था। वह पाठशाला में एक ऐसे स्थान पर बैठकर जीर्ण प्रासाद पर कड़ी नज़र रखता था, जहाँ से प्रासाद द्वार स्पष्ट दिखायी देता था। वीरक भी प्रासाद के एक अंश में रहता था और स्वामिनी की सेवा के लिए जो कुछ आवश्यक होता था, उसे जुटा दिया करता था। सब कुछ ठीक ठाक चल रहा था। आचार्य श्रुतिधर शार्विलक को छोटे भाई की तरह स्नेह देते थे। धीरे धीरे उन्होंने शार्विलक के पूर्वजीवन की सारी बातों का पता लगा लिया। दोनों का दोनों पर पूर्ण प्रेम और विश्वास हो गया था।

एक दिन चण्डसेन की पत्नी ने शार्विलक को बुलाकर कहा कि उन्होंने भिक्षुओं

के निमित्त कुछ दान सामग्री रखी है। उन्होंने आदेश दिया कि शार्विलक चुपचाप उसे बौद्ध विहार मे पहुँचा दे।

उज्जयिनी म अनेक बौद्ध विहार थे। सबसे प्रसिद्ध विहार श्रेष्ठिचत्वर के निकट था। नगर के बडे बडे महाजन इस विहार के अनुयायी थे। यहा सौ भिक्षुओ का निवास था। विहार के वरिष्ठ भिक्षु महानन्द स्थविर थे। उनकी विद्वत्ता और तपस्या की बडी ख्याति थी। यद्यपि श्रुतिधर बौद्ध मत के विरोधी थे, परन्तु वे भी महानन्द स्थविर के शास्त्र ज्ञान के प्रशसक थे। उनसे परामश करके शार्विलक ने इसी विहार म दान सामग्री पहुँचाने का निश्चय किया।

विहार तक पहुँचने का रास्ता श्रेष्ठिचत्वर के बीच से होकर जाता था। नगर से पूरी तरह परिचित न होने के कारण शार्विलक को कई लोगो से पूछकर रास्ता पहचानना पडा। वह सूर्यास्त के बाद ही निकला था। विहार से लौटते समय अन्धकार घना हो गया था। श्रेष्ठिचत्वर के सामने के रास्ते पर बडे-बडे मकानो के गवाक्षो स छन छनकर हल्का प्रकाश पड रहा था, जिससे माग साफ-साफ दिखायी देता था। शार्विलक इस हल्के प्रकाश से रास्ते का अन्दाजा लगाते हुए जीर्णोद्यान की ओर बढा जा रहा था। अचानक उसे किसी गली से चिल्लाने की आवाज़ सुनायी पडी। वह उधर ही मुडा और देखकर आश्चय से स्तब्ध रह गया। एक प्रौढ व्यक्ति, जो वेशभूषा मे ब्राह्मण जान पडता था, दो तीन दण्डधरो से उलझा हुआ था। दण्डधर उसे बुरी तरह पीट रहे थे। वह चिल्ला चिल्लाकर कह रहा था—"देखो लोगो, आय चारुदत दरिद्र हो गये है तो ये पापी उनके घर मे घुसकर महिलाओ का अपमान कर रहे हैं।" दरवाजे के भीतर से कोई स्त्री जोर-जोर से चिल्ला रही थी। उसके हाथ का दीया एकाएक गिर गया। वह और जोर से चीखने लगी। ऐसा जान पडता था कि उस स्त्री को पकडने के लिए दण्डधरो मे से कोई भीतर घुस गया था और उसे उठा लेने की कोशिश कर रहा था। ब्राह्मण बुरी तरह चिल्ला रहा था। एक क्षण मे उस स्त्री को भी घसीटकर बाहर ले आया गया। शार्विलक को समझने म देर नही लगी। उसे यह देखकर आश्चय हुआ कि यह सारा अत्याचार बीच नगर मे हो रहा है परन्तु कोई इस ब्राह्मण और इस स्त्री की सहायता करने के लिए बाहर नही आ रहा है। बाहर आना तो दूर रहा, कही कोई विरोध मे एक शब्द भी नही कह रहा है। विचित्र आतक था!

शार्विलक क्रोध स तमतमा गया। ऐसा अनथ उसने कभी देखा नही था। उसे एक क्षण के लिए लगा कि वह भण्डो और कापुरुषो की बस्ती म आ पहुँचा है। सिंह की भाँति वह दहाड उठा "कौन है जो स्त्रियो पर अत्याचार कर रहा है? मैं हूँ शार्विलक, मेरे सामने यह सब नही चल सकता, मैं एक एक को मसल दूगा।' आवेश मे वह भूल ही गया कि उसे अपना परिचय नही देना चाहिए था वह तो छिपकर उज्जयिनी मे रह रहा था। वह तेज़ी स दण्डधरो पर टूट पडा, परन्तु उसे बहुत उलझना नही पडा। उसके नाम ने जादू का सा काम किया। दण्डधर आपस म फुसफुसाये—यह शार्विलक यहाँ स आ गया! और तेज़ी से भाग गये। ब्राह्मण

देवता संज्ञा शून्य होकर गिर पड़े थे। भागते समय दण्डधरों ने उस स्त्री को धकेल कर उनके ऊपर गिरा दिया था। अँधेरे में शार्विलक ने टटोलकर ब्राह्मण देवता को उठाया और उनके ऊपर बेहोश गिरी स्त्री को भी अलग किया। दण्डधरों के भाग जाने के बाद कुछ गृहस्थों में भी साहस का संचार हुआ। वे दीपक लेकर घटना स्थल पर पहुँच गये। पानी मँगाया गया और दोनों को होश में लाया गया। होश में आते ही ब्राह्मण फिर तनकर खड़ा हो गया और आविष्ट के समान बोलता गया, 'आर्य चारुदत्त के घर में यह अत्याचार मेरे रहते नहीं हो सकता। यदि किसी ने इस दासी पर हाथ लगाया तो उसका सिर तोड़ दूगा।" शार्विलक ने ब्राह्मण देवता को आश्वासन दिया, "घबराने की कोई बात नहीं है, गुण्डे भाग गये हैं। मैं शार्विलक हूँ। मुझसे भी यह अत्याचार नहीं देखा जायगा। मेरी ओर देखो, मैं गुण्डों का काल हूँ।' वहाँ जितने लोग थे, शार्विलक को देखकर चकित रह गये। ब्राह्मण ने कहा "भद्र, तुम हमारे रक्षक होकर यहाँ आ गये, नहीं तो इन अत्याचारियों ने इस घर की मान मर्यादा नष्ट ही कर दी थी।" फिर एकाएक पीछे मुड़कर चिल्ला पड़े, "मदनिका! हाय हाय! यह दूसरे घर की दासी यहाँ आकर अपमानित हो गयी। अब चारुदत्त पर किसी की आस्था रहेगी!" इसी समय मदनिका की संज्ञा भी लौट आयी। उसने अर्ध-चेतनावस्था में शार्विलक का नाम सुन लिया था। फटी फटी आँखों से शार्विलक की ओर देखती हुई फफककर रो पड़ी, "हाय, आर्य शार्विलक, तुम यहाँ कैसे पहुँचे! मैं मादी हूँ।" शार्विलक एक क्षण के लिए सन्न रह गया। वह क्या सुन रहा है, यह मादी है! पास खड़े मनुष्य के हाथ से दीपक लेकर उसने मादी को अच्छी तरह देखा। मादी ही तो है! जी में आया कि एकदम उसे उठाकर छाती से लगा ले, परन्तु इतने लोगों के बीच वह ऐसा न कर सका। केवल आश्वासन देने के स्वर में इतना ही कह सका, "मादी, मदनिका मैं शार्विलक ही हूँ।" थोड़ी देर तक विचित्र सन्नाटा रहा। फिर ब्राह्मण देवता ने ही मौन भंग किया, "आर्य शार्विलक, आपके नाम और यश से परिचित हूँ, परन्तु ऐसी विषम स्थिति में आपके दर्शन होंगे, यह मैं कल्पना भी नहीं कर सकता था। मैं हूँ आर्य चारुदत्त का मित्र मैत्रेय। यह चारुदत्त का निवास स्थान है। यह मदनिका है। यह आर्या वसन्तसेना की नयी दासी है। आर्या वसन्तसेना ने इसके हाथों कुछ सन्देश आर्या चारुदत्त को भिजवाया था परन्तु वे घर पर नहीं हैं। मैं इसे आर्या वसन्तसेना के निवास स्थान तक पहुँचाने के लिए जा रहा था कि अत्याचारी म्लेच्छ राजा का साला अपने दण्डधरों के साथ यहाँ पहुँच गया और बलपूर्वक इसका अपहरण करना चाहा। अगर तुम न आ गये होते तो आज इस नगरी के ललाम भूत दो सहृदयों का अपमान हो गया होता। एक आर्य चारुदत्त का और दूसरा उनकी प्रिय सखी आर्या वसन्तसेना का। अपमान तो अब भी हो गया है, लेकिन अनर्थ नहीं हो पाया। मैं तो बुरी तरह से आहत हो गया हूँ। पता नहीं, इस बेचारी मदनिका को कितनी चोट आयी है! हाय हाय, इस उज्जयिनी में ऐसा अनर्थ भी होने लगा! तुमने अपनी आँखों देखा कि इस असहाय ब्राह्मण

को किस बुरी तरह ताडित और अपमानित किया गया। भय के मारे मेरी छाती धडक रही है। काश, इसे किसी प्रकार से सुरक्षित आर्या वसन्तसेना के स्थान पर पहुँचा सकता ! क्या तुम मेरी थोडी और सहायता कर सकते हो ?" शार्विलक ने ब्राह्मण को आश्वस्त करते हुए कहा, "आय, आप चिन्ता न करें। आप घर के भीतर जाकर विश्राम करें, आपको बहुत चोट आ गयी है। मदनिका मेरी पूव परिचित है। मैं इसे आर्या वसन्तसेना के निवास स्थान पर पहुँचा दूगा। फिर मदनिका की ओर घूमकर पूछा, "भद्रे, मेरे साथ अपने निवास पर जान म तुम्हे कोई आपत्ति तो नही है ?" मदनिका का चेहरा प्रफुल्ल हो गया। उसमे लज्जा की थोडी अरुणिमा भी आ गयी, बोली, "आय, आप पर विश्वास न करूँ, एसी अधमा नही हूँ। मैं पूणरूप से आश्वस्त हूँ कि आप मुझे केवल इसी समय निरापद स्थान मे नही पहुँचा देंगे, अपितु भविष्य मे भी सदा सवदा मेरी रक्षा करते रहगे।" शार्विलक के हृदय मे इस गूढ अभिप्रायवाले वाक्य से गुदगुदी पदा हो गयी। मत्रेय से घर के भीतर जाने का अनुरोध करते हुए मदनिका से उसन कहा, "चलो देवि, मैं तुम्हे आर्या वसन्तसेना के घर पहुँचा दू, परन्तु रास्ता तुम्हे ही बताना होगा। मैं इस नगरी म अपरिचित हूँ।"

मदनिका अर्थात मांदी, शार्विलक के साथ वसन्तसेना के घर की ओर चल पडी। थोडा एकान्त पाकर वह फफक-फफककर रो पडी, "हाय, आय, मेरा उद्धार कैसे होगा ! मुझे उन दुष्टो ने पाच सौ सुवण पर बेच दिया है। परन्तु मेरी मालकिन आर्या वसन्तसेना सचमुच देवी है। उनकी शरण मे आकर मुझे सुख ही सुख मिला है, कोई कष्ट नही पहुँचा। परन्तु आय, मेरे हृदय मे निरन्तर एक आधी चलती रहती है। मेरे भाग्य म क्या यही बदा था ? तुम फिर मिल गय हो, अब मुझे छोडो मत, मेरा उद्धार करो ! अब मैं तुम्हारी हूँ !" रास्ते मे एकाएक मादी शार्विलक के चरण पकडकर रो पडी। शार्विलक ने कहा, "उठो मादी, यह उपयुक्त स्थान नही है। तुम्हारे लिए ही पागला की तरह मै भटकता रहा हूँ। मथुरा से उज्जयिनी तक इसी आशा से आया हूँ कि तुम कही मिल जाओगी। सौभाग्य की बात है कि तुम मुझे मिल ही गयी। मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि तुम आर्या वसन्तसेना की शरण मे हो। पाच सौ सुवण कोई एसी चीज नही है। मैं कही न-कही से इतना धन इकटठा करूँगा और धमत तुम्हे मुक्त करके अपन साथ रखूगा। तुमने बहुत दुख भोगा है, उसके लिए अपराधी मैं ही हूँ। मेरी ही कुण्ठा के कारण तुम्हे इतना भोगना पडा। अब तुम निश्चिन्त रहो। मैं शीघ्र ही तुम्हे मुक्त कराऊँगा और स्वय तुम्हारे प्रेमपाश मे बँध जाऊँगा। शार्विलक अब तक उत्साहहीन होकर निर्जीव की भाँति पडा हुआ था। तुमने उसमे आशा और उत्साह भरा है। अब वह असाध्य-साधन करने को कृत सकल्प है। चिन्ता न करो। एक सप्ताह के भीतर ही मैं तुम्हे अवश्य मुक्त करा लूगा।"

मांदी के चेहरे पर उज्ज्वल प्रकाश प्रदीप्त हो उठा, बोली, "सच कहते हो मेरे प्यारे, सिफ एक सप्ताह मे मुझे छुडा लोगे ?" शार्विलक ने उसी प्रकार

देवता सज्ञा शून्य होकर गिर पडे थे। भागते समय
कर उनके ऊपर गिरा दिया था। अँधेरे मे शार्विलक
उठाया और उनके ऊपर वेहोश गिरी स्त्री को भी
जाने के बाद कुछ गहस्था मे भी साहस का सचा
स्थल पर पहुँच गये। पानी मँगाया गया और दोन
मे आते ही ब्राह्मण फिर तनकर खडा हो गया
गया, "आय चारुदत्त के घर मे यह अत्याचार
किसी ने इस दासी पर हाथ लगाया तो उसका
ब्राह्मण देवता का आश्वासन दिया, "घवराने की
हैं। मैं शार्विलक हूँ। मुझसे भी यह अत्याचार न
मैं गुण्डा का काल हूँ।' वहा जितन लोग थे, शा
ब्राह्मण ने कहा "भद्र, तुम हमारे रक्षक होकर
चारिया ने इस घर की मान मर्यादा नष्ट ही
मुडकर चिल्ला पडे, "मदनिका! हाय हाय!
अपमानित हो गयी। अव चारदत्त पर किस
मदनिका की सज्ञा भी लौट आयी। उसने आ
सुन लिया था। फटी फटी आखो से शार्विल
पडी "हाय, आय शार्विलक, तुम यहाँ कैसे
क्षण के लिए सन्न रह गया। वह क्या सुन र
के हाथ से दीपक लेकर उसने मादी को अच
मे आया कि एकदम उसे उठाकर छाती से ल
ऐसा न कर सका। केवल आश्वासन देने के
मदनिका मैं शार्विलक ही हूँ।" थोडी देर त
देवता ने ही मौन भग किया, "आय शार्विल
हूँ परन्तु ऐसी विपम स्थिति मे आपके द
सकता था। मैं हूँ आय चारदत्त का मित्र मै
है। यह मदनिका है। यह आर्या वसन्तसेना
इसके हाथा कुछ सन्देश आर्या चारदत्त को भि
मैं इसे आर्या वसन्तसेना के निवास स्थान त
अत्याचारी म्लेच्छ राजा का साला अपने दण
वलपूवक इसका अपहरण करना चाहा। अग
नगरी के ललाम भून दो सहृदया का अपमान ह
का और दूसरा उनकी प्रिय सखी आया वसन्त
गया है लेकिन अनथ नही हो पाया। मैं तो बुरी
नही इस वचारी मदनिका को कितनी चोट आयी ह
म ऐसा अनथ भी होने लगा! तुमने अपनी आँखा

स्थान पर 'प्रहरी' नियुक्त रहते थे, जो साधारणत नागरिकों को समय बताने के लिए एक घण्टा बजाया करते थे। घण्टे पर प्रहार करने के कारण ही ये लोग 'प्रहरी' कहे जाते थे। पर सार्वजनिक विपत्ति के समय ये लोग निरन्तर घण्टे पर प्रहार करने लगते थे। शार्विलक को इस व्यवस्था के कारण बडी विपत्ति में पडना पडा। दण्डधरों ने शोर मचाकर चिल्लाकर सूचना दी—"चोर भागा जा रहा है।" शीघ्र ही नगर-भर के घण्टे टनटना उठे। सर्वत्र नागरिक सावधान हो गये। वह जिधर ही भागकर जाता था उधर ही लोग 'चोर चोर' चिल्लाकर उसे पकडने का प्रयास करने लगे। एक ओर से भागता तो दूसरी ओर उसी विपत्ति में पड जाता। कई जगह उसे व्यूहबद्ध लोगों का सामना करना पडा। अन्धकार उसका सहायक भी था, बाधक भी। वह फुर्ती से भागकर किसी अँधेरी गली में मुड जाता। वहाँ बाधा मिलने पर दूसरी ओर मुडता। उसे समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करे। वह भाग रहा था, केवल भाग रहा था। सर्वत्र उसे एक ही ध्वनि सुनायी पडती थी—'चोर, चोर! पकडो, पकडो!' बिना सोचे समझे वह भागता रहा। इस भाग दौड में रात प्रायः बीत गयी। अब उसे अपने बच निकलने की आशा नहीं रही। यों भी वह थक गया था। थकान से चूर, हताश शार्विलक की आँखों के सामने अँधेरा छा गया। वह नाक की सीध में भागा। रास्ता सीधा था। आगे कोई आवाज नहीं थी। अँधेरे में लुढककर नीचे गिर गया। छपाक सा शब्द हुआ। शार्विलक ने अपने को नदी की गोद में पाया, वह अवश भाव से पडा रहा। तरने की कोशिश नहीं की, निढाल होकर अपने को धारा में बहने दिया। अब भी नगर में खरभर थी। घण्टे टनटना रहे थे। उसने बहते रहने में विश्राम पाया। सूर्य निकल आया था। वह दम साधकर बहता रहा। परिखा और नदी के संगम पर उसे आवर्त में उलझना पडा। रही सही शक्ति समेटकर वह आगे बढ गया। परिखा पीछे छूट गयी, नगर से वह बाहर आ गया। थोडी देर तक वह नदी की पुलिन भूमि पर निढाल पडा रहा। भीगे हुए वस्त्र ज्वलन्त आतप से शरीर पर ही सूख गये। मध्याह्न तक वैसे ही पडा रहा, मूर्च्छित, निःसंज्ञ। तीसरे पहर आँख खुली। कहाँ है वह! कुछ पता नहीं। एकाएक कानों में वही ध्वनि गूंज उठी—'चोर, चोर! पकडो, पकडो!' वह भडभडाकर उठा और भागा। आवाज उसके भय भ्रान्त चित्त का विकल्प ही थी। कहीं कोई आवाज नहीं थी। केवल कानों में एक प्रकार की भ्रान्ति समा गयी थी। रास्ते से वह अलग हट गया। जो कोई दिख गया उसे ही सावधान किया, पर रुका नहीं। वह पहाडी, जंगली ऊबड खाबड मार्ग से भागता ही चला गया।

वह थककर चूर हो गया। अनेक विकट अरण्य मार्गों और ऊबड-खाबड गिरि पथों को लाँघ गया था, अब चला नहीं जाता था। एक पहाडी कन्दरा में वह पर कटे बाज की तरह गिर गया। स्थान निरापद था, सन्ध्या उतर आयी थी। शार्विलक का अंग-अंग शिथिल हो गया था, पर मन में जो आँधी चल रही थी वह ज्यों की-त्यों थी—मादी, सुवर्ण, शस्त्र! उसे तीनों को प्राप्त करना होगा। क्रम

हँसते हुए कहा, "सच कहता हूँ प्रिये, सिर्फ एक सप्ताह का समय मुझे चाहिए।"

वसन्तसेना के आवास तक मादी को पहुँचाकर शार्विलक बाहर से ही लौट पड़ा। मादी ने बहुत आग्रह किया कि वह भीतर आर्या वसन्तसेना से मिल ले, परन्तु शार्विलक ने यह उचित नहीं समझा और बाहर से ही लौट पड़ा। थोड़ी दूर आकर उसने देखा कि मादी अत्यन्त सतृष्ण नेत्रों से उसका लौटना देख रही है वह भीतर नहीं जा रही है। वह फिर लौट आया, बोला, "प्रिये, क्या तुम्हें विश्वास नहीं होता कि मैं एक सप्ताह के बाद लौट आऊँगा?" मादी की आँखों से आँसू गिरने लगे, कुछ बोल नहीं सकी, केवल करुण नेत्रों ने बताया कि उसका विश्वास हिल रहा है। शार्विलक ने कहा, "विश्वास रखो और भीतर जाओ।" इस स्वर में अनुनय नहीं था, आदेश था। मदनिका भीतर जाने लगी। अब शार्विलक के ठिठकने की बारी थी। उसने देखा, मादी भीतर जा रही थी, लेकिन उसकी आँखें बाहर आने को बाध्य कर रही थीं। उसने फिर कहा, "भीतर जाओ!" और बिना रुके चला गया।

वह इधर उधर भटकता जीर्णोद्यान की ओर अग्रसर होने लगा। इसी बीच एक दण्डधर ने उसे पहचान लिया। उसने अपने एक साथी से कहा, "यही दुष्ट है पकड़ो!" फिर दोनों ने अन्य दण्डधरों को चिल्ला चिल्लाकर पुकारा। चारों ओर से आवाजें आने लगीं—"पकड़ो, पकड़ो, वह भागा जा रहा है पकड़ लो।" कई सशस्त्र दण्डधर उसकी ओर लपके। शार्विलक के हाथ में कोई शस्त्र नहीं था। उसके जी में आया कि किसी दण्डधर का कोई शस्त्र छीन ले। यह सोचकर वह उनकी ओर लपका ही था कि दूसरी ओर से दस पन्द्रह शस्त्रधारी दण्डधर उस पर झपट पड़े। एक क्षण में उसने अपना कर्त्तव्य निश्चित कर लिया। इस अवस्था में वह लड़ नहीं सकता। अगर वह घायल हो गया तो एक सप्ताह में मादी के पास आने की प्रतिज्ञा नहीं पूरी कर सकेगा। फुर्ती से सामनेवाले दण्डधर को धकेलकर आगे निकल गया और बड़ी तेजी से राजमार्ग पर दौड़ने लगा। उसने देखा कि दण्डधरों की एक विशाल वाहिनी उसके पीछे दौड़ रही है। वह बड़ी फुर्ती से भागता गया। उसे स्वयं पता नहीं कि वह कितना दौड़ा। मन में मादी का करुण मुख था। उसे मादी को छुड़ाना है। पाँच सौ सुवर्ण चाहिए, शस्त्र चाहिए। कहाँ मिलेगा यह सब! उसकी बाहरी चेतना सिमटकर इन्हीं तीन बातों में उलझ गयी थी—मादी, सुवर्ण, शस्त्र। वह सोचता जाता था, दौड़ता जाता था—कहाँ? कुछ पता नहीं।

उन दिनों दूर तक संवाद भेजने के लिए क्रोश पद्धति प्रचलित थी। 'क्रोश' चिल्लाकर आवाज देने को कहते थे, जितनी दूर तक आवाज स्पष्ट रूप से पहुँच जाती थी उतनी दूरी को भी 'क्रोश' ही कहा जाता था। प्राकृत जन में यह शब्द घिस घिसाकर 'कोस' बन गया था। उज्जयिनी में प्रत्येक 'क्रोश' (कोस) पर एक दण्डधर वाहिनी का अड्डा था। किसी कठिन स्थिति में एक क्रोश स्थान का दण्डधर चिल्लाकर आनेवाले क्रोश स्थान के दण्डधरों को सूचना दे देता था। क्रोश

स्थान पर 'प्रहरी' नियुक्त रहते थे, जो साधारणतः नागरिकों को समय बताने के लिए एक घण्टा बजाया करते थे। घण्टे पर प्रहार करने के कारण ही ये लोग 'प्रहरी' कहे जाते थे। पर सार्वजनिक विपत्ति के समय ये लोग निरन्तर घण्टे पर प्रहार करने लगते थे। शार्विलक को इस व्यवस्था के कारण बड़ी विपत्ति में पड़ना पड़ा। दण्डधरों ने प्रहरी स्थानों को चिल्लाकर सूचना दी— चोर भागा जा रहा है।" शीघ्र ही नगर भर में घण्टे टनटना उठे। सर्वत्र नागरिक सावधान हो गये, वह जिधर ही भागकर जाता था उधर ही लोग 'चोर चोर' चिल्लाकर उसे पकड़ने का प्रयास करने लगे। एक ओर से भागता तो दूसरी ओर उसी विपत्ति में पड़ जाता। कई जगह उसे व्यूहबद्ध लोगों का सामना करना पड़ा। अन्धकार उसका सहायक भी था, बाधक भी। वह फुर्ती से भागकर किसी अँधेरी गली में मुड़ जाता। वहाँ बाधा मिलने पर दूसरी ओर मुड़ता। उसे समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करे। वह भाग रहा था, केवल भाग रहा था। सर्वत्र उसे एक ही ध्वनि सुनायी पड़ती थी—'चोर, चोर! पकड़ो, पकड़ो!' बिना सोचे समझे वह भागता रहा। इस भाग-दौड़ में रात प्रायः बीत गयी। अब उसे अपने बच निकलने की आशा नहीं रही। थक भी वह थक गया था। थकान से चूर, हताश शार्विलक की आँखों के सामने अँधेरा छा गया। वह नाक की सीध में भागा। रास्ता सीधा था। आगे कोई आवाज़ नहीं थी। अँधेरे में लुढ़ककर नीचे गिर गया। छपाक सा शब्द हुआ। शार्विलक ने अपने को नदी की गोद में पाया, वह अवश भाव से पड़ा रहा। तरने की कोशिश नहीं की, निढाल होकर अपने को धारा में बहने दिया। अब भी नगर में खरभर थी। घण्टे टनटना रहे थे। उसने बहते रहने में विश्राम पाया। सूर्य निकल आया था। वह दम साधकर बहता रहा। परिखा और नदी के संगम पर उसे आवर्त्त में उलझना पड़ा। रही सही शक्ति समेटकर वह आगे बढ़ गया। परिखा पीछे छूट गयी, नगर से वह बाहर आ गया। थोड़ी देर तक वह नदी की पुलिन भूमि पर निढाल पड़ा रहा। भीगे हुए वस्त्र ज्वलन्त आतप से शरीर पर ही सूख गये। मध्याह्न तक वैसे ही पड़ा रहा, मूर्च्छित, निःसंज्ञ। तीसरे पहर आँख खुली। कहाँ है वह! कुछ पता नहीं। एकाएक कानों में वही ध्वनि गूंज उठी—'चोर, चोर! पकड़ो, पकड़ो!' वह भड़भड़ाकर उठा और भागा। आवाज़ उसके भय भ्रान्त चित्त का विकल्प ही थी। कहीं कोई आवाज़ नहीं थी। केवल कानों में एक प्रकार की भ्रान्ति समा गयी थी। रास्ते से वह अलग हट गया। जो कोई दिख गया उसने ही सावधान किया, पर रुका नहीं। वह पहाड़ी, जंगली ऊबड़-खाबड़ मार्ग से भागता ही चला गया।

वह थककर चूर हो गया। अनेक विकट अरण्य मार्गों और ऊबड़ खाबड़ गिरि पथों को लाँघ गया था, अब चला नहीं जाता था। एक पहाड़ी कन्दरा में वह पर-कटे बाज की तरह गिर गया। स्थान निरापद था, सन्ध्या उतर आयी थी। शार्विलक का अंग अंग शिथिल हो गया था, पर मन में जो आँधी चल रही थी वह ज्यों की त्यों थी—चाँदी, सुवर्ण, शस्त्र! उसे तीनों को प्राप्त करना होगा। श्रम

अवश्य उलटा होगा। पहले शस्त्र, फिर सुवर्ण, फिर मदनिका! मगर कैसे मिलेंगे। पहले शस्त्र चाहिए। वह बहुत कठिन नहीं होगा, पर पाँच सौ सुवर्ण मुद्राएँ कहाँ मिलेंगी? तीन ही रास्ते हैं—भिक्षा, ऋण और चोरी। भिक्षा वह नहीं माँगेगा। माँगे भी तो पाँच सौ सुवर्ण मुद्रा उसे कौन दे देगा? और ऋण भी उसे कौन देगा? क्या देखकर कोई उसे ऋण देगा? वह सब प्रकार से निःस्व है। अपनी कही जाने योग्य कुछ भी सम्पत्ति उसके पास नहीं है। और चोरी? शार्विलक का अन्तरतर काँप उठा। नट-मण्डली के साथ रहता था, उस मण्डली के अनेक पुरुष चोरी में प्रवीण थे। पर नटों के चौधरी जम्भल ने उससे कभी चोरी करने को नहीं कहा। यही नहीं, भरसक वह इस बात का प्रयत्न करता था कि उसका होनहार शिष्य छबीला पण्डित जान भी न पावे कि नट लोग ऐसा पाप कर्म भी करते हैं। उसे छबीला पण्डित को पवित्र और निष्पाप बनाये रखने में गर्व अनुभव होता था। आज छबीला पण्डित 'शार्विलक' बना घूम रहा है। क्या अब वह ऐसे पाप-कर्म में लिप्त होगा। देवरात का दुलारा, जम्भल का लाडला, चण्डसेन का विश्वासभाजन शार्विलक अब चोरी करेगा? फट जाओ धरित्री, इस पाप चिन्तक को निगल जाओ! धिक्!

शार्विलक सोच भी नहीं पा रहा है कि ऐसी पाप चिन्ता उसके मन में क्यों आ रही है। मदनिका के कारण? उसने आज तक किसी स्त्री की ओर कुदृष्टि नहीं डाली। मदनिका की ओर वह आकृष्ट हो गया। क्यों हो गया, वह ठीक ठीक नहीं जानता। आरम्भ उसके प्रति करुणा से हुआ। क्या यह पाप था? उसके अन्तर्यामी जानते हैं कि उसमें कलुष का स्पर्श भी नहीं था। पर जिस दिन मुखरा भाभी ने कहा था कि मदनिका का छबीला के प्रति अभिलाषभाव है उस दिन उसकी शिराएँ झनझना उठी थीं। वह बुरी तरह आहत हुआ था। तब से जिस प्रकार लोहा चुम्बक के पीछे भागता है उसी प्रकार वह भी मदनिका के पीछे भाग रहा है। उसके अन्तर्यामी जानते हैं इसमें उसका कोई दोष नहीं है। क्यों ऐसा हुआ? शार्विलक कारण नहीं जानता। कहीं कोई झकझोर रहा है, मसल रहा है, चिथड़ रहा है। वह क्यों खिंचा यन्त्र की भाँति, विवेकहीन की भाँति! सारा संसार चक्र की भाँति घूम रहा है। शार्विलक कर्त्तव्यमूढ़ हो गया है। मदनिका फिर मिल गयी, पर क्या यह अच्छा हुआ? उसका पहला पतन हुआ प्राण बचाने के लिए भागने के रूप में। उसे कभी प्राणों का ऐसा मोह नहीं हुआ। वह भागता रहा है, केवल एक मोह के कारण—प्राण बचाना है, मदनिका को पाना है। यह मोह पाप है। दूसरा पतन हुआ है इस पाप चिन्ता के रूप में। उसके मन में चोरी की बात उठी है। शास्त्रकारों ने बताया है कि जो एक बार विवेकभ्रष्ट होता है उसका शतमुख विनिपात होता है। दोमुख विनिपात तो हो ही गया। और भी होगा। शार्विलक, सावधान! तुम्हारा और भी विनिपात होनेवाला है।

शार्विलक सोच नहीं पा रहा है कि किस जगह वह विवेक से भ्रष्ट हुआ है। हुआ अवश्य है।

परन्तु मदनिका को छुड़ाये बिना वह रह कैसे सकता है! उसे भूल जाना अगर

विवेक है तो विवेक निश्चित रूप से घटिया चीज़ है। मादी को वह भूल नहीं सकता। उसे छुड़ाने के लिए वह जो भी करेगा, सब पुण्य कार्य होगा। पाप इसमें नहीं है। पाप किसी और जगह है। मादी को छुड़ाने का संकल्प पाप नहीं है। उसके लिए उपाय सोचना भी पाप चिंता नहीं है। उसके अंतर्यामी कहते हैं, यह पाप नहीं है। सारा सत्त्व गलकर मादी के निकट ढरक जाना चाहता है। महामाया का त्रिभुवन मोहिनी रूप प्राणों को जलाकर आलोकित हो रहा है। सोचना नहीं है, उसे करना है। बिना करनी के सोचते रहना ही कदाचित असली पाप है! शार्विलक बेचैन है। कहीं कुछ फट रहा है, कुछ मथ रहा है। दारुण उद्वेग से हृदय फटा जा रहा है, फिर भी वह खण्ड खण्ड होकर बिखर नहीं रहा है, शरीर विकल है, परन्तु चेतना नहीं छूटी है, सत्ता भाव भी बना हुआ है, भीतर-ही-भीतर ज्वाला भभक रही है, लेकिन जला नहीं पा रही है। वह जल भी नहीं रहा है, केवल धुंधुआ रहा है, कोई क्रूरता से मर्मच्छेदन कर रहा है, पर प्राण नहीं निकल रहा है। शार्विलक व्याकुल है।

अंधकार घना हो गया और उसके साथ ही शार्विलक की चिंता भी घनी होती गयी। धीरे धीरे वह सो गया। गाढ़ निद्रा ने सारी चिंताओं को आच्छादित कर लिया। भगवती महामाया का निद्रा रूप बड़ा शामक होता है। वह शरीर और मन की थकान पर सुधालेप करता है। वह जीवनी शक्ति को सहलावा देता है और प्राणों को नये सिरे से ताजगी देता है। शार्विलक को निद्रा आ गयी। देर तक वह सोता रहा, दीर्घकाल तक संजीवनी धारा में उसके प्राण प्रक्षालित होते रहे। जब होश में आया तो दिन निकल आया था। उसे अब भूख और प्यास दोनों की अनुभूति हुई। बाहर आकर उसने चारों ओर देखा कि कहीं अन्न और पानी की सम्भावना है या नहीं। दूर दूर तक खदिर और वन पनसों की झाड़ियाँ फैली हुई थीं, पथरीली चट्टानों का सपाट विस्तार दिखायी दे रहा था दूर दूर तक मनुष्य के निवास का कहीं कोई चिह्न नहीं था। वह निराश हुआ। शरीर बिल्कुल चूर हो गया था। पैर आगे बढ़ने को एकदम तैयार नहीं थे। बड़ी कठिनाई से वह एक छोटी पहाड़ी पर चढ़ सका। उद्देश्य था—ऊँचाई पर से कुछ और दूर तक देखने का प्रयत्न करना। उसका श्रम सफल हुआ। पहाड़ी की दूसरी ओर एक छोटा सा मन्दिर दिखायी दिया। मन्दिर है, तो मनुष्य के होने की सम्भावना भी है। वह शिथिल गति से मन्दिर की ओर बढ़ा।

मन्दिर के पास पहुँचते ही उसे संकट का सामना करना पड़ा। एक वृद्ध उसकी ओर झपटे, 'आ गया यमराज का दूत। आगे बढ़ा तो हड्डी पसली चूर कर दूंगा। ले जाना हो तो मुझे ले जा। खबरदार जो उधर बढ़ा!' वृद्ध ने सचमुच ही उस पर डण्डा चला दिया। शार्विलक इस संकट के लिए तैयार नहीं था पर जब डण्डा सिर पर आ ही गया तो फुर्ती से उछलकर अपने को बचा लिया। वृद्ध के केश बिखरे हुए थे, आँखें लाल हो रही थीं और नासिका का अग्रभाग बुरी तरह काँप रहा था। शार्विलक को लगा, वृद्ध विक्षिप्त हैं। शरीर-सम्पत्ति के नाम पर उनके

पास मुट्ठी भर ठठरी ही थी, पर क्रोध से वे काँप रहे थे और अनर्गल गालियाँ बकते जा रहे थे। श्यामरूप हतबुद्धि!

इसी समय मन्दिर के भीतर से कोमल कण्ठ की आवाज आयी, "हैं-हैं! क्या कर रहे हो?" एक वृद्धा तपस्विनी मन्दिर से बाहर आयी। शार्विलक ने देखा तो आश्चर्य से ठगा हो गया। इस वृद्धावस्था में भी उनके मुख-मण्डल से दीप्ति सी बढ़ रही थी। ललाट दर्पण के समान चमक रहा था। सम्पूर्ण शरीर से शालीनता बिखर रही थी। क्या पार्वती भी वृद्ध होती है! साक्षात् पार्वती ही तो है। क्या शोभा ने वैराग्य धारण किया है, क्या तपस्या भी तप करती है, क्या कान्ति भी शरीर धारण करती है? दीप्ति को भी वार्द्धक्य का बाना धारण करना पड़ता है? वह क्या देख रहा है? उस वृद्धा ने आते ही वृद्ध को पकड़कर एक ओर किया। अत्यन्त मृदु कण्ठ से उन्हें डाँटा, "तुम मनुष्य भी नहीं पहचान सकते? यह यमदूत है कि ब्राह्मण-बालक है? तुम्हारा बेटा ही तो है! क्या क्रोध करते हो? शिव आज प्रसन्न हैं। उन्होंने हमारा पुत्र लौटा दिया है। ध्यान से देखो!" वृद्ध ने ध्यान देने का प्रयत्न किया। पथराई आँखों से वृद्धा की ओर देखकर भाग स्वर में बोले, "श्यामरूप है?" फिर एकदम झपटकर शार्विलक को छाती से लगा लिया, "हाय बेटा, तुझे मार दिया, अब नहीं मारूँगा, नहीं मारूँगा! तू अब बूढ़े बाप पर विश्वास कर, हाय बेटा!" वे सारी ताकत लगाकर शार्विलक को छाती से चिपकाते जा रहे थे। वह कुछ भी नहीं समझ पा रहा था, पर वृद्ध के गाढ़ आलिंगन से उसे अपूर्व शान्ति भी मिल रही थी। वह वृद्धा की ओर चकित भाव से देख रहा था। श्यामरूप तो उसी का नाम है। यह वृद्धा उसे कैसे जान गयी! निश्चय ही यह साक्षात् भगवती है। वृद्ध की छाती से चिपका हुआ वह करुण नेत्रों से भगवती को देखता जा रहा था। उसका सिर वृद्ध की अश्रुधारा से सिक्त हो रहा था। यह कैसा विचित्र संयोग है!

वृद्धा ने बड़े प्यार से वृद्ध को समझाया "अभी इसे छोड़ दो। थका हुआ आया है। इसे मुझे ले जाने दो। तुम शान्त होकर शिवजी का ध्यान करो।" वृद्ध ने शार्विलक का सिर सूँघा। कुछ कातर वाणी में बोले, "तू अब जायेगा तो नहीं बेटा!" शार्विलक के उत्तर देने के पहले ही वृद्धा बोल उठी, "जायेगा क्या नहीं! सयाना हो गया है। कामकाज भी तो है। आता जाता रहेगा। बूढ़े बाप और माँ को कैसे छोड़ सकता है?" फिर शार्विलक की ओर देखकर बोली "आता जाता रहेगा न बेटा?" उत्तर की उन्हें अपेक्षा नहीं थी। वृद्ध से बोली, "हाँ, आता जाता रहेगा! तुम क्रोध मत करना।"

शार्विलक को विचित्र नाटक सा दिखायी दे रहा था। वृद्ध ने डबडबायी आँखों से उसकी ओर देखा, बोले, "मैंने यमदूत समझा था बेटा! अब गुस्सा नहीं करूँगा।" वृद्धा माता ने काटकर कहा, "यमदूत पर भी क्या करते हो? वह अपने श्यामरूप को कहाँ ले गया है? यहीं तो सामने है देखो!" वृद्ध ने आश्वस्त होकर कहा, "ठीक कहती हो! यमदूत का कोई अपराध नहीं है। मेरी ही मति मारी गयी है।

नहीं, अब किसी पर क्रोध नहीं करूँगा, किसी पर नहीं।"

शार्विलक इस सारे नाटकीय संवाद का मूक साक्षी बना रहा। उसे कुछ बोलने का अवसर ही नहीं दिया गया, यद्यपि मुख्य पात्र वही था। वृद्धा ने उसका हाथ पकड़कर बड़े प्यार से कहा, "आ बेटा, तू थका थका लग रहा है।" वृद्ध चीत्कार के साथ बोल उठे, "कभी क्रोध नहीं करूँगा, कभी नहीं।" वे एकटक देखते रहे। फिर थके हुए-से, हारे हुए से शिव मन्दिर की ओर चले गये।

वृद्धा माता शार्विलक का हाथ पकड़कर अपनी कुटिया में ले गयी। शार्विलक मन्त्र मुग्ध-सा खिंचता गया। उसे कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था।

वृद्धा ने स्नेह सिक्त स्वर में उसे हाथ-मुँह धोने और जलपान करने को कहा। वह यन्त्र चालित के समान आदेश पालन करता गया। किसी माया के वश में हो गया है क्या?

जलपान के लिए कुछ फल फूल के सिवा कुछ और नहीं था, परन्तु उसमें मातृत्व की गरिमा थी। श्यामरूप (शार्विलक) इस स्नेह सिक्त जलपान से जहाँ अननुभूत तृप्ति पा रहा था, वहीं रहस्य न समझ पाने के कारण संकुचित भी था। वह कुछ जानना चाहता था, परन्तु मुँह से कोई शब्द नहीं निकल पा रहा था। थोड़ी देर में वृद्धा ने ही रहस्योदघाटन किया, बोली 'बेटा, बड़े भाग्य से तुम यहाँ आ गये। इनको तो तुम देख रहे हो न? एकदम पागल हो गये हैं। क्रोधी तो ये शुरू से ही थे, परन्तु अब मस्तिष्क का साम्य एकदम नष्ट हो गया है। अच्छे विद्वान थे, लोगों में सम्मान प्राप्त था, दूर दूर से विद्यार्थी इनके पास शास्त्र का अध्ययन करने के लिए आते थे पर अब कैसी अवस्था हो गयी है! हमारे भाग्य में विधाता ने केवल कष्ट ही लिखा था। बहुत पूजा-पाठ और व्रत-उपवास करने के बाद एक पुत्र प्राप्त हुआ। सुन्दर ऐसा कि रास्ता चलते लोग देखकर ठिठक जाते थे। बहुत कुछ तुम्हारे जैसा ही था। बुद्धि भी उसकी बहुत अच्छी थी। पिता उस पर जान देते थे और मैं अपनी बात क्या बताऊँ! उसे पाकर मैंने अपने जीवन को कृतार्थ समझा था, लेकिन ये उसे जल्दी जल्दी पण्डित बना देना चाहते थे। कभी कभी क्रोध में पीट भी दिया करते थे। जब सोलह वर्ष का हुआ तो वह सचमुच शास्त्रज्ञ के रूप में आदर सम्मान पाने लगा। इनकी बड़ी इच्छा थी कि वह वाद सभा में सदा विजयी बनता रहे। एक बार उज्जयिनी की वाद सभा में उसे बहुत सिखा-पढ़ाकर भेजा। इन्हें बड़ी आशा थी कि इनका लड़का दिग्विजयी पण्डित घोषित होगा। मैं इन्हें बार बार कहती थी कि उतावले क्या होते हो अभी उसकी अवस्था ही कितनी है। कुछ और पढ़े लिखेगा तो तुम्हारी आशा अवश्य पूरी होगी परन्तु विधाता ने इन्हें धैर्य जैसी चीज़ दी ही नहीं। थोड़ी सी बात पर चिढ़ जाते थे और क्रोध से जल भुन जाते थे। उज्जयिनी की वाद-सभा में बड़े-बड़े धुरन्धर विद्वान् आये हुए थे। वहाँ इस बच्चे की क्या सामर्थ्य थी? इनकी आशा पूरी नहीं हुई। लड़का कुछ लज्जित-सा होकर घर लौटा। मैंने उसे प्यार किया ढाढ़स बँधाया, कहा कि कोई बात नहीं है, अभी तुम बच्चे हो, अगली बार तुम अवश्य विजयी

होगे। खूब मन लगाकर पढो। शिवजी तुम्हे शास्त्र ममज्ञ बनायेंगे। जानते हो बेटा, शास्त्रार्थ सभा मे विजयी होना मेरी दृष्टि मे पाण्डित्य की कसौटी नही है। जिसे सचमुच शास्त्र-ज्ञान हो जायेगा, वह भला जीत हार के लिए क्या भटकता फिरेगा! परन्तु इन्ह मेरी बात नही सोहाती थी। ज्यो ही इन्होन सुना कि लडका शास्त्रार्थ मे हार गया है, क्रोध से तमतमाये हुए आये और आते ही उसे पीटन लगे। अगर मैं बीच मे न पड गयी होती तो शायद मार ही डालते। इनकी सारी मार का अधिकाश मैंन ही झेला। सोलह वर्ष का सयाना लडका क्या कभी इस तरह पीटा जाता है? परन्तु उस दिन इनका पारा बहुत चढा हुआ था। मैंन अपने पडौसी को बुलाकर किसी तरह लडके को इनसे अलग कर दिया। ये घर की चीजें तोडते फोडते रहे। दूसर दिन कुछ शान्त हुए।

'उधर लडका घर से भाग गया। भागा तो फिर लौटा ही नही। कई दिन बाद पता लगा कि वह कुएँ मे डूबकर मर गया। मैंने सुना तो सिर पीट लिया। पिता की उतावली न कैसा अनर्थ कर दिया! यह तो पागल ही हो गये। जिस किसी अपरिचित को देखते ह उसे ही यमराज का दूत समझकर मारने दौडते हैं। इनके मन म कुछ भय समा गया है कि यमराज का दूत लडके को तो ले ही गया, पत्नी को भी ले जायेगा। मेरी अवस्था तुम समझ सकते हो। यमराज के दूत अगर उठा ले जाते तो अच्छा ही होता, परन्तु इनके कारण मैं यमराज के दूत को बुला भी नही सकती। भगवान ने जो सबस सुन्दर प्रसाद दिया था उसे तो उठा ही ले गये मुझे यह चिन्ता सताने लगी कि कही इन्ह भी न खो दू। गाव मे न जाने कितन लोगो से झगडा हो गया। जिसे मारने दौडते, वह भी दो चार हाथ इन्हें लगा ही देता। गाव म रहना मुश्किल हो गया। फिर मैं इन्ह लेकर इस निर्जन स्थान म आ गयी। यहा कोई मनुष्य आता ही नही। इसलिए ये कुछ शान्त रहने लगे। कोई बारह साल से मैं इस मन्दिर म शिव की आराधना कर रही हूँ। नित्य प्रार्थना करती हूँ कि प्रभो! जिसे ले लिया उस तो ले ही लिया जिसे रहने दिया है उसे सुबुद्धि दो। इनका मानसिक सन्तुलन ठीक कर दो और जीवन के अन्तिम क्षणो म इनको सेवा करन की सुबुद्धि दो। मेरा गाव यहा से थोडी ही दूर पर है। बीच-बीच मे इन्ह छोडकर चली जाती हूँ और जो कुछ भी इनके शिष्यो से मिल जाता है उसे ले आती हूँ और किसी प्रकार शिव की आराधना करती हुई मृत्यु के दिन गिन रही हूँ।

बेटा, मैंन जो नाटक आज रचा है यह इन्ही परिस्थितियो म। मेरे बेटे का नाम श्यामरूप था, इसीलिए मैंन तुम्हे श्यामरूप कहा। ऐसा लगता है कि इन्हें विश्वास हो गया है कि तुम वही श्यामरूप हो। कौन जाने, आज से इनकी दशा सुधरने लगे! बेटा, तुमसे यहाँ रहने को तो नही कहूँगी परन्तु अगर इनकी दशा सुधरने लगी तो यह आशा अवश्य करूँगी कि तुम कभी कभी आ जाया करो। मेरा विश्वास है कि शिवजी ने ही इनके मानसिक उपचार के लिए तुम्हें भेजा है। बुरा न मानना बेटा, मैंन तुम्हारे बारे म कुछ पूछा ही नही, केवल अपना ही दुखडा

रोती रही। यदि ये कभी तुमसे तुम्हारा नाम पूछें तो श्यामरूप ही बताना।"

वद्धा थोडा रुकी और फिर दुलार से सिर पर हाथ फेरती हुई बोली, 'तुम मेरे श्यामरूप ही तो हो। हाय बेटा, तुम क्या इस वद्धा मा को नही समझ सकते ?'

वृद्धा की आखो से आसू झरने लगे। श्यामरूप भी डबडबा गया। बोला, "मा मैं सचमुच श्यामरूप ही हूँ। कैसा विचित्र सयोग है! मैं अनाथ बालक हलद्वीप के वद्धगोप दम्पती का पाला हुआ हूँ। मेरा नाम श्यामरूप ही है। मैंने सुना है कि मेरे पिता माता किसी मेले मे मुझे लेकर आये और किसी दुघटना मे डूबकर मर गये। मैं अभागा बच गया। यह तो विचित्र बात है। माता तुम कहती हो कि तुम्हारा श्यामरूप डूबकर मर गया। और यह श्यामरूप भी जानता है कि उसके मा बाप डूबकर मर गये। तुम अपने डूबे श्यामरूप को मुझम देख रही हो और मैं अपने डूबे हुए माता-पिता को तुम लोगो मे देख रहा हूँ। यह विचित्र सयोग नही है, मा ?"

वद्धा माता चकित भाव से उसे देखने लगी, बोली "सचमुच विचित्र है बेटा! मैंने अपने डूबे हुए लाल को पाया, तुमने अपने डूबे हुए मा-बाप को पाया। अच्छा बेटा, आये कहा से हो ?"

श्यामरूप ने दीघ नि श्वास लिया, बोला, "आ तो उज्जयिनी से रहा हूँ, मा! मथुरा मे तुम्हारे इस पुत्र को 'मल्ल मौलिमणि' का सम्मान मिला था, लेकिन इसका नाम बदल गया था। अब मैं 'शार्विलक' नाम से जाना जाता हूँ लेकिन मेरा मूल नाम श्यामरूप ही है। उज्जयिनी म एक विचित्र सकट मे पडकर भाग खडा हुआ। भागता भागता यहा आकर छिपा। मुझे बिल्कुल पता नही कि मैं उज्जयिनी से कितनी दूर और किस ओर आ गया हूँ। मा, तुम्हारा यह लडका कायर नही है, परन्तु कुछ ऐसा ही सयोग बना कि प्राण बचाना आवश्यक हो गया। हाथ म कोई हथियार नही था। कही से शस्त्र सग्रह करके फिर मैं उज्जयिनी जाना चाहता हूँ। कुछ ऐसी बात है कि मुझे लौटना ही पडेगा। परन्तु मा, अब तो मैं अपने मा बाप को पा गया हूँ। उज्जयिनी से फिर लौटकर दर्शन करूँगा। तुम अवश्य मेरी मा हो। मैं इस बात को कभी भी भूलूगा नही!"

वृद्धा ने शिव मन्दिर की ओर उत्सुकता-भरी दृष्टि से देखा और मानो अपने से ही बोली, "यह कैसी लीला है, प्रभो!" फिर उन्होंने बडे प्यार से शार्विलक का सिर सहलाया, अस्त व्यस्त बालो को ठीक किया और देर तक एकटक उसकी ओर देखती रही। फिर वहा से दृष्टि हटाकर मन्दिर की ओर देखने लगी। थोडी देर तक व अवश भाव स एकटक उसी ओर देखती रही। वह दृष्टि विचित्र थी। उसम कृतज्ञता भी थी, कातरता भी थी और उल्लास भी था। बीच-बीच म किसी अदृश्य श्रोता को लक्ष्य करके कुछ बोलती-सी जाती थी। शब्द स्पष्ट होते थे वाक्य अधूरे। अदृश्य श्रोता उसका अर्थ समझता था शायद कुछ प्रत्युत्तर भी देता था, परन्तु शार्विलक उन प्रत्युत्तरो को नही सुन पाता था। देर तक एकटक देखते रहने के बाद वृद्धा के मुह से शब्द निकले थे, 'प्रभो! ममता म बाँधते हो, यह कैसी

मुक्ति देते हो ?" अदृश्य श्राता ने क्या उत्तर दिया, वह शार्विलक ने नहीं सुना। पर वृद्धा माता के कपोल दर विगलित अश्रुधारा से भीग गये। आखें खुली रहीं। कुछ देर चुप रहने के बाद वह बोली, "ठगते हो, ठगी को बढ़ावा देते हो !" फिर मौन फिर अश्रुपात ! "ममता में ही मुक्ति देते हो तो यह प्रपच लीला क्या ?" फिर बिना रुके अद्धस्फुट स्वर में बोली, "सब तो लिया तुमने, यह ममता भी क्या नहीं ले लेते ! क्या नाटक रच-रचके भरमाते हो ! तुम्हारी दया भी छलना है !" पता नहीं अदृश्य श्रोता ने क्या उत्तर दिया। वृद्धा माता उसी प्रकार अभिभूत मुद्रा म ताकती रही। आखो से अश्रुधारा उसी प्रकार झरती रही। फिर हारी हुई की भाति अपने आपसे बोल उठी "भाग्यहीना, सब छलना है, सब धोखा है, सब अभिनय है। क्या व्यथा पाती है ! व्यथा भी छलना है !"

शार्विलक कुछ समझ नहीं पाया कि माताजी के मन मे क्या द्वन्द्व चल रहा है। कहीं मर्म पर चोट पहुँची है। उनका सारा अस्तित्व ही झनझना उठा है। वे मौन हो गयी हैं पर कहीं अन्तरतर की अत्यन्त गहराई मे कुछ झनझना उठा है। उनका सारा शरीर उद्भिन्न केसर कदम्ब पुष्प के समान रोमाच कटकित हो उठा है। वे निवात-निष्कम्प दीप शिखा की भाति ऊर्ध्वमुख जल रही है। धरती का जड आकर्षण उन्ह नीचे नहीं खीच सकता। वे उत्फुल्ल हैं, रोमाचित हैं निस्पन्द है।

धीरे धीरे वे सहज अवस्था म आने लगी। आखो की स्निग्धता लौट आयी, अधरो की लालिमा अपनी जगह आ गयी। नाम पुट का स्पन्दन बन्द हो गया। उन्होने स्निग्ध दृष्टि से श्यामरूप (शार्विलक) की ओर देखा। फिर श्यामरूप की ओर मुडकर उन्होने पूछा कौन शस्त्र तुम्हे चाहिए, बेटा ? तुम क्या क्षत्रिय कुमार हो ?' श्यामरूप (शार्विलक) ने कुछ लज्जित होकर कहा, "माता, हूँ तो ब्राह्मणकुमार ही, लेकिन सस्कार भ्रष्ट हूँ।" वृद्धा ने गदगद होकर कहा, 'कोई बात नहीं बेटा ! परमात्मा ने तुम्हारे भीतर जो शक्ति दी है उसी का विकास करो, उसी को दीन दुखिया के कष्ट दूर करने मे उपयोग करो, उसी को अखिलात्मा पुरुष की सेवा म लगा दो। मैंने तो केवल इसलिए पूछा कि साधारणत क्षत्रिय कुमार ही शस्त्र ग्रहण करते है। हम तो अकिंचन हु। हमारे पास कोई शस्त्र नहीं है। केवल एक शस्त्र है जो इस मन्दिर म मुझे मिला था। उसे देख लो अगर तुम्हारे काम का हो तो ले जा सकते हो। वह शिव का ही वरदान है, इसलिए उससे कोई अनुचित कर्म नहीं करना।" शार्विलक एकदम उत्फुल्ल हो उठा, "कहाँ है माता मैं उसे देखूगा। विश्वास करो मॉं अनावश्यक रूप से इस शस्त्र का उपयोग नहीं करूँगा। केवल दीन दुखिया की रक्षा के लिए आवश्यक हुआ तो भगवान शिव की अनुज्ञा से ही उसका उपयोग करूँगा परन्तु वह है कहाँ ? मैं देखना चाहता हूँ। वृद्धा ने श्यामरूप का आश्वस्त किया और कहा, 'पहले तुम स्नान कर लो कुछ विश्राम कर लो फिर सन्ध्या समय मैं तुम्हे दिखा दूँगी।" इसी बीच वृद्ध सज्जन आ गये। उन्होंने आते ही शार्विलक के सिर पर हाथ फेरा।

और बोले, "बेटा श्यामरूप, तुम कहाँ-कहाँ भटक रहे हो ? अब इस बूढ़े को न छोड़ना, बेटा !" श्यामरूप ने उनके चरणों पर सिर रख दिया और बोला, "पिताजी, दो चार दिन के लिए मुझे बाहर जाना होगा और फिर लौटकर आपके चरणों के पास आ जाऊँगा।" वृद्ध ने फटी फटी आँखों से देखते हुए कहा, 'अब क्रोध नहीं करूँगा बेटा, कभी भी नहीं करूँगा।" वृद्ध के कातर स्वर से शार्विलक को कष्ट हुआ। उसकी आँखों में आँसू आ गये। उसने फिर चरणों में सिर रखकर कहा, "पिताजी, आप कभी क्रोध न करियेगा।" वृद्ध ने उसे फिर छाती से चिपका लिया, "कभी नहीं, कभी नहीं ! अब मैं तुझे शास्त्रार्थ सभा में नहीं भेजूँगा। तुझसे शास्त्र चर्चा भी नहीं करूँगा। तू जैसा है वैसा ही मुझे स्वीकार है।" कहकर वे चले गये।

सायंकाल वृद्धा माता शार्विलक को मन्दिर में ले गयी। वहाँ एक पत्थर से दबी हुई तलवार निकाली। बोली, "देख बेटा, इससे तेरा काम होगा ?" श्यामरूप ने उस तलवार को उठाकर हाथ में लिया। भारी मालूम हुई। कोष में से निकालकर देखा तो ऐसा लगता था, जैसे सूर्य ही चन्द्रमण्डलाकार होकर चमक रहा है। किसकी तलवार हो सकती है यह ! गदगद होकर बोला, "मा, यह तो बहुत अच्छी चीज है !" फिर माता के चरणों में सिर रखकर बोला "इसे दीन-दुखियों की रक्षा के अलावा कहीं भी प्रयोग नहीं करूँगा। यह शिव का वरदान है, तुम्हारा आशीर्वाद है। मेरा विश्वास है कि मुझे इसे चलाने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। इसे देखकर शत्रु स्वयं निस्तेज हो जायेंगे। मा, मैं तुम्हारा बहुत ऋणी हूँ।" माता ने बहुत प्यार से कहा, "ले जा, यह तेरी रक्षा करेगी और तुझे दीन दुखियों की रक्षा करने का साहस देगी। यह तलवार कैसे यहाँ आ गयी, यह मैं भी नहीं जानती। मैं यह भी नहीं जानती कि मेरे आने के पहले की पड़ी है या बाद में किसी ने छोड़ दी है। एक दिन मन्दिर में झाड़ू देते समय एक पत्थर हटाने पर मुझे यह अनायास मिल गयी। मैंने इसे छुआ तक नहीं। क्या करती इसे लेकर ? यदि तुम्हारा काम हो जाये तो इसे शिवजी की सम्पत्ति समझकर पीछे यहीं रख सकते हो। जान पड़ता है कि यह किसी महावीर की तलवार है।" शार्विलक ने सिर झुकाकर माता का प्रसाद ग्रहण किया।

सोलह

हलद्वीप शान्त था। आर्यक के राजपद पर अभिषिक्त होने से विरोधी दब गये थे। कुछ लोग तो राज्य छोड़कर अन्यत्र चले गये थे। आर्यक जब साम्राज्य-

वाहिनी का महाबलाधिकृत होकर चला गया, तब भी वहाँ शान्ति बनी रही। सम्राट के दूर के सम्बन्ध के मामा के पुत्र लगनेवाले लिच्छवि राजकुमार पुरन्दर अमात्य पद पर अभिषिक्त थे। वही राज काज देखते रहे। उन्होंने कई बार मृणालमंजरी से अनुरोध किया कि वह आकर प्रजा-पालन करे, परन्तु मृणालमंजरी अपना गाँव छोड़ने पर राजी नहीं हुई। फिर भी पुरन्दर उसका सम्मान रानी के रूप में ही करते रहे। कठिन समस्याओं के बारे में वे मृणालमंजरी की अनुमति अवश्य लेते रहे। यद्यपि मृणालमंजरी ने सदा यही कहा कि आप को जो उचित जान पड़े वही करें। परन्तु इतनी सी बात को भी वे आदेश ही मानते थे। मृणालमंजरी ने कभी अपने को रानी नहीं समझा। वह यथानियम व्रत उपवास का तपोमय जीवन बिताती रही। प्रजा में पुरन्दर के व्यवहार से सन्तोष था। वह अपनी तपस्विनी रानी को पाकर प्रसन्न थी। राज-काज पुरन्दर ही सम्हाल रहे थे, पर कभी भी उन्होंने अपने को एक थाती के व्यवस्थापक से अधिक नहीं समझा। वे मृणालमंजरी के तपोमय जीवन में किसी प्रकार की बाधा नहीं उपस्थित करते थे, पर प्रजा में यह धारणा अवश्य दृढ़ करते रहते थे कि महीयसी रानी की अनुमति के बिना कोई पत्ता नहीं हिल सकता। प्रजा सन्तुष्ट थी। सारा कामकाज सहज गति से चल रहा था। कहीं कोई कठिनाई नहीं दिखायी देती थी।

परन्तु चन्द्रा के आने और मृणालमंजरी के साथ रहने लगने से नगर में थोड़ी अशान्ति दिखायी पड़ी। हलद्वीप के प्रायः सभी लोग चन्द्रा को चरित्रहीन नारी समझते थे। वह किसी और की ब्याहता बहू है अपने पति को छोड़कर वह आर्यक के पीछे लग गयी। यह धर्म कर्म के विपरीत आचरण था। उसके इस स्वैराचार से सबसे अधिक कष्ट स्वयं रानी मृणालमंजरी को हुआ और फिर भी यह उसी के साथ रहने लगी है। और कोई स्त्री होती तो उसकी खाल खिंचवा लेती, पर मृणालमंजरी है कि उसे बड़ी बहिन का सम्मान देती है। इससे प्रजा में जहाँ मृणालमंजरी का मान और भी बढ़ गया, वहीं चन्द्रा के प्रति रोष और घृणा भी बढ़ गयी। चन्द्रा के पति श्रीचन्द्र ने अवसर देखकर अमात्य पुरन्दर के दरबार में व्यवहार (मुकद्दमा) खड़ा कर दिया। उसकी इच्छा केवल यही थी कि चन्द्रा को दण्ड मिले और आर्यक की कुत्सा हो। पुरन्दर बड़े असमंजस में पड़े। उनके मन में भी चन्द्रा के प्रति रोष था पर इस व्यवहार में स्वयं राजा आर्यक के घसीटे जाने की आशंका थी।

असमंजस के और भी कई कारण थे। पुरन्दर को प्रामाणिक रूप से तो कुछ पता नहीं था, पर सारे हलद्वीप में लोग जान गये थे कि स्वयं सम्राट ने आर्यक और चन्द्रा के सम्बन्ध को अनुचित ठहराया है और इस कार्य के लिए अपने प्रिय वयस्य और सेनापति आर्यक की भर्त्सना की है। इस प्रकार सम्राट ने स्वयं निर्णय कर दिया है कि यह सम्बन्ध अनुचित है। व्यवहार में किसी न किसी बहाने सम्राट का निर्णय भी घसीटा जायेगा। उन्होंने मृणालमंजरी से भी इस विषय में परामर्श लिया। मृणालमंजरी ने लज्जा और संकोच के कारण इस विषय में विशेष कुछ

नहीं कहा, लेकिन दृढ़ता के साथ इतना अवश्य कहा, "धर्मतः यह मामला मेरे, चन्द्रा के और आर्यक के बीच का है, कोई चौथा इसमें हस्तक्षेप नहीं कर सकता—राज्य भी नहीं।" पुरन्दर सुनकर कुछ आश्चर्य के साथ बोले, "क्या कहती हो देवि, इस सम्बन्ध में चन्द्रा के पति श्रीचन्द्र को कुछ भी कहने का अधिकार नहीं है?" मृणालमंजरी ने दृढ़ता के साथ कहा, "हाँ आर्य, धर्मतः श्रीचन्द्र चन्द्रा का पति नहीं है।" पुरन्दर इस दृढ़तापूर्वक कहे गये वाक्य से स्तब्ध रह गये। उन्हें मृणालमंजरी से ऐसा सुनने की कल्पना भी नहीं थी। उनकी चिन्ता और भी बढ़ गयी।

ऐसे व्यवहारों में मध्यदेश में प्राड्विवाक की राय ली जाती थी। शक-प्रभावित क्षेत्रों—मथुरा, उज्जयिनी आदि—में परामर्शदाता को 'प्राश्निक' कहा जाता था। दोनों का काम एक ही था। वे लोग वादी प्रतिवादी और साक्षियों से प्रश्न करके सच्चाई का पता लगाते थे। अन्तर यह था कि प्राड्विवाक स्थायी धर्माधिकारी होता था, जबकि प्राश्निक मामले की प्रकृति के अनुसार अस्थायी रूप से नियुक्त किया जाता था। मथुरा को अधिकार में लेने के बाद भारशिव नागों ने दोनों प्रथाओं को मान्यता दी थी। प्राड्विवाक चाहे तो अस्थायी प्राश्निक नियुक्त कर सकता था। मथुरा के हाथ से निकल जाने के बाद भी यह प्रथा चलती रही। हलद्वीप में तो अब भी यह प्रथा प्रचलित थी। यहाँ के प्राड्विवाक कान्तिपुरी से आये महान् धर्मशास्त्रज्ञ आचार्य पुरगोभिल थे, जो अपनी निष्पक्षता और धर्मप्रेम के कारण जनता में सम्मानित थे। राज्य के उलट फेर के बाद भी वे अपने पद पर बने रहे। उनकी विद्वत्ता और धर्म-बुद्धि का सम्मान सभी वर्गों के लोग करते थे।

पुरन्दर ने प्राड्विवाक पुरगोभिल को परामर्श के लिए बुलाया। उन्हें आशा थी कि वे मामले की गुत्थियाँ सुलझा देंगे।

धर्ममर्मज्ञ आचार्य पुरगोभिल पूजा पाठ से निवृत्त होकर राजभवन के लिए निकले तो द्वार पर ही सुमेर काका मिल गये। आचार्यपाद सुमेर काका को भली भाँति जानते थे। वे उनकी खरी बातों और फक्कड़ाना स्वभाव का आदर करते थे। सुमेर काका ने दण्डवत प्रणाम किया। कुशल प्रश्न के बाद आचार्यपाद ने काका के आगमन का कारण पूछा। काका ने हाथ जोड़कर कहा, "अविनय क्षमा हो आर्य, यह जानते हुए भी कि आप राज प्रतिनिधि अमात्य से श्रीचन्द्र के व्यवहार के विषय में वार्त्ता करने जा रहे हैं, मैंने आपको थोड़ी देर के लिए रोक देने की धृष्टता की है। मुझे केवल इतना निवेदन करना है कि यदि यह व्यवहार चलाने की अनुमति दी गयी तो मेरा भी एक अभियोग विचारार्थ स्वीकृत होना चाहिए। अपने अभियोग के लिए प्रमाण देने को प्रस्तुत हूँ।" सुमेर काका की बात सुनकर आचार्यपाद रुक गये। बोले, "तात सुमेर, मैं जानता हूँ कि तुम ऐसे प्रपंचों में नहीं पड़ते, निश्चय ही कोई गम्भीर बात होगी, जिससे तुम इस व्यवहार में अपने को उलझाना चाहते हो। मैं तुम्हारा अभियोग सुनना चाहता हूँ। बोलो, मैं पूर्ण

रूप से अवहित हूँ।"

सुमेर काका ने बिना किसी भूमिका के अपनी बात कह दी, "आर्य, हलद्वीप के सभी स्त्री पुरुषों की तरह मैं भी चन्द्रा के आचरण का विरोधी था। मुझे भी उससे घृणा थी परन्तु कुछ नयी जानकारी मुझे मिली है। मेरा अभियोग यह है कि श्रीचन्द्र में पुंस्त्व है ही नहीं, और चन्द्रा के साथ उसका विवाह धर्म-सम्मत नहीं हुआ। यह विवाह चन्द्रा के पिता ने कन्या की इच्छा के विरुद्ध कराया है, जो मेरी दृष्टि में सामाजिक बलात्कार है। आपके सामने जो व्यवहार आनेवाला है उसकी मूल भित्ति ही यह है कि श्रीचन्द्र दावा करता है कि चन्द्रा उसकी पत्नी है। मेरी समझ में यह दावा गलत है। आर्य, मैं धर्म शास्त्रों का ज्ञाता नहीं हूँ। सीधी बात सीधे समझने का अभ्यासी हूँ। श्रीचन्द्र को मैं मिथ्याचारी समझता हूँ। उसने समाज को धोखा दिया है। आप मुझे शूल विद्ध भी कर दें तो भी मैं इस मिथ्याचार का प्रतिवाद करूँगा। पुराण ऋषियों ने क्या कहा है, मुझे नहीं मालूम, परन्तु सत्य सत्य है बलात्कार बलात्कार! मुझे इतना ही कहना है। आगे आप और राज प्रतिनिधि पुरन्दर जैसा चाहें निर्णय दें, परन्तु यदि आपने इस नीति का स्वीकार करके व्यवहार चलाया तो सुमेर उसका विरोध करेगा।'

आचार्यपाद सुनकर एकदम ठिठक गये। बोले, "तात सुमेर, तुम बड़ी गम्भीर बात कह रहे हो इसे प्रमाणित कर सकोगे?

सुमेर काका ने अकुण्ठ अस्खलित वाणी में उत्तर दिया, "हाँ!" और प्रणाम करके आचार्यपाद के उत्तर की अपेक्षा किये बिना चलते बने।

आचार्यपाद के मन में सैकड़ों शास्त्र वाक्य घूमने लगे। वे विचार-मग्न होकर धीरे धीरे चलते हुए पुरन्दर के आवास पर उपस्थित हुए।

उचित स्वागत सत्कार के बाद पुरन्दर और पुरगोभिल एकान्त में विचार करने के लिए बैठे। पुरन्दर ने संक्षेप में उनसे व्यवहार की बात और अपने मन की उलझन बतायी और साथ ही मृणालमंजरी की बातें भी उन्होंने खोलकर आचार्यपाद के सामने रख दी।

आचार्यपाद आदि से अन्त तक चुप सुनते रहे। उनके चेहरे पर कोई विकार नहीं आया। सब सुन लेने के बाद उन्होंने राज प्रतिनिधि अमात्य पुरन्दर की ओर वेधक दृष्टि से देखते हुए कहा, "धर्मावतार, आप राजा के प्रतिनिधि हैं। आपके मन में यह उलझन है कि इस व्यवहार में हलद्वीप के वास्तविक राजा गोपाल आर्यक घसीटे जा सकते हैं। धर्म की दृष्टि में अनुचित कार्य करनेवाला दण्डनीय है चाहे वह राजा हो या सामान्य जन। इसलिए इस उलझन की न तो कोई आवश्यकता है और न इसका कोई महत्त्व। धर्म की दृष्टि में गोपाल आर्यक हो या चन्द्रा कोई भी अनुचित आचरण करता है तो उसे दण्ड भोगना ही पड़ेगा। आपकी दूसरी उलझन यह है कि आपकी धारणा है कि सम्राट ने स्वयं इस विषय को निर्णीत कर दिया है। यह धारणा भी निरर्थक है। धर्मतः राजा या महाराजाधिराज अकेले में बैठकर कोई निर्णय नहीं ले सकते। धर्मावतार, पितामह और

पुनराचाय-जैसे धमना ने यह कठोर निर्देश दिया है कि राजा या न्यायाधीश या मन्त्री—किसी को भी अकेले मे न तो विवाद सुनना चाहिए और न तो निणय लेना चाहिए। निर्णायक को पाँच दोषो से बचना चाहिए--राग, लोभ, भय, द्वेष और एकान्त म वादियो की बातें सुनना। इसमे पक्षपात की आशका बनी रहती है। यदि सम्राट ने प्राड्विवाक, मन्त्री, पुरोहित और धम शास्त्रियो से परामश किये बिना कोई निणय लिया है तो उसका कोई मूल्य नही है वह निरथक है। फिर आपके पास कोई एसा प्रमाण भी नही है कि सम्राट न सचमुच ही कोई निणय किया है। किया भी हो तो वह धम सम्मत नही है। तीसरी बात यह है कि मुझे ऐसे व्यक्ति से एक सूचना मिली है जिसे राग द्वेष से विचलित होते नही देखा गया है। सूचना यह है कि श्रीचन्द्र का यह दावा गलत है कि वह चन्द्रा का धम सम्मत पति है। मुझे बताया गया है कि उसम पुस्त्व नही है और धमत वह किसी स्त्री से विवाह नही कर सकता। मुझे यह बताया गया है कि चन्द्रा की इच्छा के विरुद्ध उसके पिता ने किसी लोभवश यह विवाह कराया था। इन बातो के लिए प्रमाण की आवश्यकता है। परन्तु यह बात यदि प्रमाणित हो भी जाय तो उसके बाद भी समस्या उलझी ही रहेगी। इस विचित्र स्थिति म क्या करना चाहिए, अस्पष्ट ही है। धमशास्त्र म ऐसा कोई वचन नही दिखता जो इस प्रकार के जटिल व्यवहार का निणय करन म सहायक हो। अन्ततोगत्वा राजा ही इस विषय पर निणय द सकता है। राजा की अनुपस्थिति मे सबसे पहला अधिकार रानी का होना चाहिए। उनका निणय आपन सुन ही लिया है। फिर भी, उनका निणय भी एकान्त का निणय है, इसलिए अमान्य है।"

आचायपाद की इस स्पष्ट उक्ति से पुरन्दर और भी परेशान हुए। उन्ह यह देखकर प्रसन्नता हुई कि आचायपाद धम सम्मत बातें निर्भीकता के साथ कर रह हैं, परन्तु उनकी परेशानी यह थी कि इससे कोई मामला सुलझ नही रहा था। उन्होने विनीत भाव से कहा, "आचायपाद के स्पष्ट धम सम्मत कथन स मुझे बडी प्रसन्नता हुई है। आपने सम्राट राजा, राज प्रतिनिधि और रानी किसी को भी 'धम द्वारा अननुमोदित और असमर्थित माग' की ओर जाने का प्रतिवाद किया है। यह आप जैसे धर्माधिकारी के उपयुक्त वचन है। परन्तु इस विवाद को सुलझाने का कोई रास्ता नही दिखायी दे रहा है। कैसे सुलझाया जाये, इस सम्बन्ध म आचायपाद का क्या विचार है?'

आचाय पुरगोभिल ने कहा "धर्मावतार मेर कथन का उद्देश्य सम्राट, राजा या रानी की अवमानना बिल्कुल नही है। मैं केवल धमसगत निणय की ओर ही आपका ध्यान आकृष्ट कर रहा था। जो कुछ भी होना चाहिए, धम द्वारा अनुमोदित और समर्थित होना चाहिए। धम के आगे सभी समान हैं। किन्तु महाराज, मै वृद्ध हो गया हूँ, मेरे पिता कान्तिपुरी के प्रसिद्ध धर्माधिकारी थे। मेरे पितामह मथुरा मे नाग राजाओ के धमाधिकारी थे। मैंने केवल धमशास्त्रो का अध्ययन नही किया, बल्कि अपने पिता और पितामह से नवीन परिस्थितियो मे

नवीन धर्मसंहिताओं के निर्माण की कहानी भी सुनी है। मैंने सुना है कि शक और कुषाण नरपतियों ने अनेक विद्वत् सभाओं का आयोजन किया था, जिनमें धर्म-अलूक्ष और सम्मर्शी धर्मवेत्ता उपस्थित हुए थे। विदेशी जातियों के आने के कारण समाज में नयी नयी परिस्थितियों का प्रादुर्भाव हुआ है। उनके बारे में निर्णय में पुराने धर्म-सूत्रों और स्मृतियों के वचन प्राप्त नहीं होते थे। इन अलूक्ष सम्मर्शी विद्वानों ने नयी धर्मसंहिताओं का निर्माण किया है, ऐसा मैंने अपने ... के मुख से सुना है। मुझे ऐसा लगता है कि धर्म तो स्थिर और शाश्वत है, ले... इस व्यवहार की मूल भित्ति पर ही सन्देह किया गया है। इसका निर्णय म... और उज्जयिनी की विद्वत् सभाओं में दिये गये निर्णयों के अनुसार ही ... जायेगा। इसलिए मेरे दो सुझाव हैं। पहला तो यह कि अपने राज्य के प्रच... नियमों के अनुसार हमें सुयोग्य प्राश्निक नियुक्त करने चाहिए जो सम्बद्ध व्यक्ति... से पूछताछ करके इस बात का पता लगायें कि श्रीचन्द्र और चन्द्रा का विवाह ... परिस्थितियों में हुआ था, वे धर्म-सम्मत अथवा वैध हैं या नहीं। मुझे आज्ञा... जाये कि मैं इस बात के लिए अधिकारी प्राश्निक नियुक्त करूँ जो बता सकें... श्रीचन्द्र में वास्तव में पुरुषत्व है या नहीं। इस बात की जानकारी मिलने में... समय लगेगा। इस बीच किसी विश्वसनीय व्यक्ति को मथुरा और उज्जयि... भेजकर विद्वत्-सभाओं के नये निर्णयों को प्राप्त कर लिया जाये। इस नवीन ... संहिता को हम श्रुति और स्मृति की कोटि में तो नहीं रखेंगे, परन्तु श्रुति ... स्मृति के मूल उद्देश्यों को समझने में सहायक के रूप में उनका उपयोग करें... वस्तुतः जो व्यवहार इस समय हमारे सम्मुख है उसका निदर्शन अधिकतर ... और यवनों द्वारा प्रभावित आर्य जनों के समाज में ही मिल सकता है। सारी ... का विवेचन करके विद्वान, अलूक्ष, और सम्मर्शी ब्राह्मणों ने जो निश्चय कि... होगा, वह अवश्य हमारे काम आयेगा।"

राज प्रतिनिधि अमात्य पुरन्दर ने शान्ति और धैर्य के साथ आचार्यपाद... बातें सुनीं। किन्तु ऐसा लगा कि वे आचार्य की बातों को गौरव के साथ सुन रहे हैं, पर उनका अनुमोदन नहीं कर पा रहे हैं। जिज्ञासु भाव से वे बोले, "अ... अज्ञजन का अपराध क्षमा हो बात स्पष्ट नहीं हो रही है। ये नयी परिस्थिति... क्या हैं? ये प्रच्छन्न प्रभाव कैसे हैं?" आचार्यपाद ने उसी गम्भीरता से क... "आपके प्रश्न उचित हैं। मैं इसी प्रसंग से कुछ उदाहरण देकर स्पष्ट करने... प्रयत्न करूँ। आपने देखा होगा धर्मावतार, कि आजकल लोक में एकान्तिक ... गाथाएँ बहुत प्रचलित हो गयी हैं। पहले इतनी नहीं थीं। इस देश के कवियों... गृहस्थी के अनेक उत्तरदायित्वों के पालन के साथ चलनेवाले पति और पत्नी... प्रेम को ही उत्कृष्ट माना है। इधर ऐसी गाथाएँ प्रायः सुनने को मिलने लगी... जब प्रेमिका या प्रेमी विवाह के पूर्व गाढ़ प्रेम से आकर्षित होते हैं और परि... और समाज द्वारा खड़ी की गयी सारी बाधाओं का तिरस्कार करके मिलन... प्रयास करते हैं। लोक चित्त में धीरे धीरे ऐसी अविवाहित कुमारियों की ...

प्रतिष्ठा के प्रति आकर्षण बढ रहा है जो अपने प्रेम के मार्ग मे खडे किये गये सारे पारिवारिक और सामाजिक अवरोधो को निरस्त करके अभीप्सित प्रेमी से मिलन का प्रयास करती हैं। है न ऐसा ही धर्मावतार, या मैं अतिरजना कर रहा हूँ ? '

आचार्य पुरगोभिल जब गम्भीर शास्त्र चर्चा कर रहे थे, उसी समय स्त्रियो का कोई उत्सव भी राजभवन के भीतर चल रहा था। थोडी देर तक तो वह धीरे-धीरे ही चल रहा था, पर अब उसने उद्दाम रूप ग्रहण किया। ऐसा जान पडता था कि अत पुर मे कुछ गाने बजानेवाली स्त्रियाँ गा-बजाकर राज-बालाओ का मनोरजन कर रही थीं। वाद्यो का स्वर तीव्र हो गया और ऐसा लगा कि साथ ही साथ कास्य, ताल और नूपुरो की झनकार मे भी तेजी आ गयी। आचार्य और अमात्य अपनी गम्भीर वार्त्ता मे खोये हुए थे। उन्होने इसकी ओर ध्यान ही नही दिया। कुछ ऐसा सयोग हुआ कि आचार्यपाद ने ज्यो ही अपनी बात समाप्त की, त्यों ही झम्म से नृत्य गान बन्द हो गया। उत्ताल वाद्यो के एकाएक शान्त हो जाने से वातावरण एकदम शान्त हो गया। कोलाहल इन दो गम्भीर विचारको का ध्यान भग नही कर सका था, पर उसके अचानक बन्द होने से जो शान्ति आयी, वह अधिक मुखर सिद्ध हुई। दोनो का ध्यान उधर आकृष्ट हुआ। बिना पूछे ही अमात्य पुरन्दर ने बताया कि कोई आभीर महिलाओ की मण्डली जान पडती है। ऐसे उद्दाम मनोहर नृत्य उन्ही की मण्डली किया करती है। परन्तु यह क्षण भर की शान्ति अचानक टूट गयी। एक युवती कोमल कण्ठ से अकेली ही कुछ सुनाने लगी। कण्ठ मनोहर था, स्वर स्पष्ट था और जान पडता था कि वह जान बूझकर प्रत्येक पद का स्पष्ट उच्चारण करती जा रही थी। आचार्य पुरगोभिल के कान उसी ओर लग गये—बिना किसी चेष्टा या इच्छा के। तरुणी ने एक एक पद पर बल देते हुए गाया

सत्थर - लोय - निवारिय पिय - उक्किठिरिय,
मुअइ धुअइ पुणु सुक्खइ सगम वावरिय।
सुविणन्तरि वि न लहइ सुहय पिय तणु फरसु।
को पुणु रहसालिगणु मोहणु मिलण रसु॥
सो जलउ सुवित्थरु सत्थरु पुरजन वज्जणउ।
जो पिय जण मिलणु णिवारइ मारइ सज्जणउ॥

[शास्त्र और लोक से निवारित प्रिय के लिए उत्कण्ठित तरुणी सगम के लिए व्याकुल होकर मर रही है, काप रही है सूख रही है। वह सपने मे भी सुभग प्रिय के शरीर का स्पर्श नही पा रही है, फिर प्रत्यक्ष गाढ आलिगन के सुख और मिलन के मोहन रस की तो बात ही कहाँ उठती है! वह शास्त्र और पुरजनो का बरजना जल जाये, जो प्रिय मिलन का निवारण करता है और साजन को मार डालता है।]

इस कोमल कण्ठ से पठित छन्द के तुरन्त बाद कास्य-करताल झनझना उठे, मर्दल और सयवक गमगमा उठे और एक ही साथ अनेक नूपुरो का कल्लोल मुखर

व्यवहार की दुनिया मे आ जायेगा। अगर निरन्तर व्यवस्थाओ का सस्कार और परिमाजन नही होता रहेगा, तो एक दिन व्यवस्थाएँ तो टूटेगी ही, अपने साथ धम को भी तोड देगी।"

पुरदर की प्रतिक्रियाओ को जानने के लिए थोडा रुककर आचायपाद ने कहा, "देखिये, धर्मावतार, इस व्यवहार को ही लीजिये। चन्द्रा ने मन ही मन आयक को अपना वर चुना और समस्त सामाजिक विधि विधान को मसलकर उसे पाने का प्रयास किया। लोक-गाथाओ मे किसी कवि ने ऐसी कहानी गढी होती तो चन्द्रा उत्तम प्रेमवती नायिका मानी जाती। वास्तविक जीवन मे तो यह व्यवहार (मुकद्दमा) है।"

पुरदर ने केवल 'हूँ' कहकर दीघ नि श्वास लिया।

आचायपाद ने कहा, "नयी-नयी जातिया आयी है, नये नये आदश आय है। कल्पना जगत मे जो आ रहा है वह व्यवहार मे आयेगा। भविष्य मे लोग पूछगे कि चन्द्रा ने अपने अन्तयामी के निर्देश से जो प्रेम किया, क्या वह पाप था? धमशास्त्र के पास इसका क्या उत्तर है? फिर, अगर धम लोक-मानस का नियन्त्रण न कर सके, तो उसकी साथकता ही क्या है? इसीलिए कहता हूँ धर्मावतार, कि लोक मानस मे प्रच्छन्न भाव से जो बात सत्य रूप मे प्रतिष्ठित हो रही है, उसकी उपेक्षा नही होनी चाहिए। यहाँ हो रही है। शक और कुषाण नरपति इनकी उपेक्षा नही करते। धम के अन्तर्निहित तत्त्व भी इनकी उपेक्षा नही करते। बार-बार देखने की आवश्यकता है।"

ऐसा जान पडा, पुरदर के मन मे उथल पुथल हो रही है। फिर थोडी देर सोचने के बाद वे बोले, 'आचायपाद के दोनो प्रस्ताव मुझे उचित जँचते है। पहला काम तो यह है कि आप प्राश्निक नियुक्त करके चन्द्रा के विवाह के विषय मे सभी प्रश्नो का प्रामाणिक विवरण प्राप्त कर लें। दूसरे प्रस्ताव के लिए आप ही किसी व्यक्ति का नाम सुझा दें जो मथुरा या उज्जयिनी जाकर नयी परिस्थितिया वाली शास्त्र व्यवस्था को ले आ सके।"

आचायपाद ने थोडी देर सोचने के बाद निणय देने के स्वर मे कहा, 'धर्मावतार, नयी व्यवस्थाओ के ले आने के लिए सुमेर काका को नियुक्त करता हूँ। व सत्यवादी हैं, लोभ मोह से विचलित होनेवाले नही है और बहुत अधिक पढे लिखे न होने के कारण उनसे यह आशका भी नही है कि वे अपनी ओर से उन व्यवस्थाओ म कोई फेर बदल कर देंग। आज ही उनके नाम से राजाज्ञा निकल जानी चाहिए। मैं कल प्रात काल नये प्राश्निको की नियुक्ति कर दूँगा।"

पुरदर ने आश्वस्त होकर कहा, 'ठीक है आचाय आप जो करेंगे वह निश्चय ही शास्त्रसम्मत होगा।"

सुमेर काका को राजाज्ञा भिजवायी गयी। उनकी समझ म नही आया कि क्या उनको उज्जयिनी भेजा जा रहा है। प्रात काल उन्होने राज्य के प्राडविवाक आचाय पुरगोभिल से जो बातें की थी, उनमे इसका कोई सम्बन्ध है या नही? वे

हो उठा। श्रोत मण्डली मे ज़ोर का ठहाका हुआ, कदाचित गानेवाली ने किसी अश्लील मुद्रा मे अपनी बात प्रकट कर दी थी।

आचार्य पुरगोभिल ने अमात्य की तरफ देखा और मुस्कराते हुए कहा, "सुन लिया धर्मावतार, हर गाव मे, हर हाट मे, हर गली मे ये गाने सुनायी देंगे। आज आप इसे केवल भाव लोक का विद्रोह कहकर टाल सकते है। पर लोक मानस में शुष्क धर्माचार और रूढ मान्यताओ के प्रति यह भाव लोक का विद्रोह किसी दिन वस्तु जगत के विद्रोह का रूप ले सकता है। जानते है धर्मावतार, आदि मनु ने धर्म के लिए हृदय पक्ष को ध्यान मे रखने पर भी बल दिया था—हृदयेनाभ्यनुज्ञात' कहा था। पुराण-ऋषि जानते थे कि शुष्क आचार मात्र धर्म नही है।"

अमात्य चिन्ता मे पड गये। उन्हें लगा कि आचार्यपाद के कथन मे सच्चाई है। पर इसकी सगति धर्म के साथ कैसे बैठ सकती है?

आचार्यपाद ने कहा, 'धर्म के साथ इसकी सगति बैठ सकती है। लोक चित्त के समष्टि रूप के अन्तर्यामी जिस सत्य को ग्रहण करते है वह अपना भाव अवश्य विस्तार करता है। थोडा सोचकर देखिए, अमात्यवर!"

अमात्य इस धर्मपरायण के मुख से ऐसा सुनने की आशा नही रखते थे। परन्तु इस कथन के शब्द शब्द से उनकी शिराएँ स्पन्दित होती गयी। यह जो प्रेमिक युगल के चित्त मे अनुराग का विकट आकर्षण है, जो शास्त्र को नही मानना चाहता, लोक को नही सुनना चाहता, पुरजन-परिजन की उपेक्षा करता है, आजन्म लालित समस्त सम्बन्धो को क्षण-भर मे तोड देता है—यह भी क्या किसी अन्तर्यामी का इगित है? यह क्या व्यक्तिगत स्तर से उठ उठकर समष्टि चित्त को प्रभावित करता रहता है? धर्म के साथ इसका क्या सम्बन्ध है? कैसा सम्बन्ध है? क्या दोनो मे कोई सामजस्य या सगति खोजी जा सकती है? आचार्य कहते है ऐसा हो सकता है किया भी जाता है।

थोडा सोचकर पुरन्दर बोले, "ठीक ही कह रहे है, आर्य!"

आचार्यपाद ने कहा, मैं बिलकुल अतिरजना नही कर रहा हूँ। अब सोचिये कि लोक चित्त मे प्रच्छन्न भाव से सामाजिक विधि व्यवस्थाओ की अवमानना की प्रवृत्ति बढ रही है या नही। निश्चय ही बढ रही है। पर यह केवल काल्पनिक रस भोग मात्र है। अगर सचमुच किसी की पुत्री सामाजिक विधि निषेध का उल्लघन करके प्रेम निभाना चाहे तो लोग पसन्द नही करेंगे। परन्तु लोग चाहें या न चाहे सुकुमार मति की कमठ बालिकाओ के वैचारिक सम्मान को कार्यरूप मे परिणत करने की इच्छा कभी न कभी प्रबल रूप धारण कर सकती है। विचारो और कल्पना की दुनिया मे जो बात आज मान्य होनी है उसे व्यवहार की दुनिया मे स्थान पाने मे देर लगती है पर वह पाती अवश्य है।"

पुरन्दर की आँखें फैल गयी। बोले, "तो?"

'इसी तरह विधि व्यवस्था सम्बन्धी परिस्थितियाँ बदलती रहती हैं। जिसे आज अधर्म समझा जा रहा है वह किसी दिन लोक मानस की कल्पना से उठकर

व्यवहार की दुनिया मे आ जायेगा। अगर निरन्तर व्यवस्थाओ का संस्कार और परिमाजन नहीं होता रहगा, तो एक दिन व्यवस्थाएँ तो टूटेंगी ही, अपने साथ धम को भी तोड देगी।"

पुरन्दर की प्रतिक्रियाओ को जानन के लिए थोडा रुककर आचायपाद न कहा, "देखिय, धर्मावतार, इस व्यवहार को ही लीजिये। चन्द्रा न मन ही मन आयक को अपना वर चुना और समस्त सामाजिक विधि विधान को मसलकर उसे पाने का प्रयास किया। लोक-गाथाओ म किसी कवि न ऐसी कहानी गढी होती तो चन्द्रा उत्तम प्रेमवती नायिका मानी जाती। वास्तविक जीवन म तो यह व्यवहार (मुकद्दमा) है।"

पुरन्दर ने केवल हूँ' कहकर दीघ नि श्वास लिया।

आचायपाद न कहा, "नयी नयी जातिया आयी ह, नये नये आदश आय ह। कल्पना जगत म जो आ रहा हे वह व्यवहार मे आयेगा। भविष्य म लोग पूछेंगे कि चन्द्रा ने अपने अन्तर्यामी के निर्देश से जो प्रेम किया, क्या वह पाप था? धमशास्त्र के पास इसका क्या उत्तर है? फिर, अगर धम लोक मानस का नियन्त्रण न कर सके, तो उसकी साथकता ही क्या है? इसीलिए कहता हूँ धर्मावतार, कि लोक-मानस म प्रच्छन्न भाव से जो बात सत्य रूप मे प्रतिष्ठित हो रही है, उसकी उपेक्षा नही होनी चाहिए। यहा हो रही हे। शक और कुषाण नरपति इनकी उपेक्षा नही करते। धम के अन्तर्निहित तत्त्व भी इनकी उपेक्षा नही करते। बार-बार देखने की आवश्यकता है।"

ऐसा जान पडा, पुरन्दर के मन मे उथल पुथल हो रही है। फिर थोडी देर सोचन के बाद व बोले, "आचायपाद के दोनो प्रस्ताव मुझे उचित जँचते है। पहला काम तो यह है कि आप प्राश्निक नियुक्त करके चन्द्रा के विवाह के विषय मे सभी प्रश्नो का प्रामाणिक विवरण प्राप्त कर लें। दूसरे प्रस्ताव के लिए आप ही किसी व्यक्ति का नाम सुझा दें जो मथुरा या उज्जयिनी जाकर नयी परिस्थितिया-वाली शास्त्र व्यवस्था को ले आ सके।"

आचायपाद ने थोडी देर सोचने के बाद निणय देन के स्वर मे कहा, 'धर्मावतार, नयी व्यवस्थाओ के ले आने के लिए सुमेर काका को नियुक्त करता हूँ। व सत्यवादी हैं, लोभ मोह से विचलित होनेवाले नही हैं और बहुत अधिक पढे लिखे न होने के कारण उनसे यह आशका भी नही है कि वे अपनी आर से उन व्यवस्थाओ मे कोई फेर-बदल कर देगे। आज ही उनके नाम से राजाज्ञा निकल जानी चाहिए। मैं कल प्रात काल नये प्राश्निकों की नियुक्ति कर दूगा।"

पुरन्दर ने आश्वस्त होकर कहा, "ठीक है आचाय, आप जो करेंगे वह निश्चय ही शास्त्रसम्मत होगा।"

सुमेर काका को राजाज्ञा भिजवायी गयी। उनकी समझ म नहीं आया कि क्या उनको उज्जयिनी भेजा जा रहा है। प्रात काल उन्होंने राज्य के प्राड्विवाक आचाय पुरगोभिल से जो बातें की थी, उनम इसका कोई सम्बन्ध ह या नहीं? वे

से भी नयी-नयी समस्याएँ सिर उठाती रहती है। ऊपर ऊपर से लगता है कि समाज पुराने कायदे कानून के अनुसार ही चल रहा है, परन्तु यदि निरन्तर शास्त्रसम्मत व्यवस्थाओं का परीक्षण न किया जाये तो एक दिन ऐसा आ सकता है कि सारा समाज गतिहीन होकर अपनी बनायी व्यवस्थाओं की बेडी में आप ही कस जायगा। कान्तिपुरी के नाग सम्राटों ने भी इस तथ्य को समझा था और मथुरा में उन्होंने विशाल विद्वत सभा का आयोजन किया था। शक राजाओं ने भी उज्जयिनी में इस प्रकार की विद्वत-सभाओं का आयोजन किया, क्योंकि वे दिखाना चाहते थे कि उनका शासन वेद शास्त्र की विधियों से विरुद्ध नहीं है। इन विद्वत् सभाओं के निर्णय यहा तो उपलब्ध नहीं हैं, इसलिए वहां से ही मँगाकर इनका उपयोग किया जा सकता है। मैंने यह दो पत्र लिख रखे है। मैं ठीक नहीं जानता कि इस समय उज्जयिनी में राजा कौन है। उडती उडती जो खबरें आ रही है, उनसे लगता है कि वहाँ की स्थिति डावाडोल ही है। इसलिए एक पत्र मैंने राजा के नाम से और दूसरा राज पुरोहित के नाम से लिखा है। दोनों ही पत्र राजमुद्रांकित हैं। जो भी राजा हो और जो भी राज पुरोहित हो, उसे देकर अभीष्ट-सिद्धि हो सकती है। तुम इस धर्म कार्य में विलम्ब मत करो। जिसे चाहे साथ ले लो, परन्तु जाओ अवश्य।" सुमेर काका ने न 'हां' किया और न 'ना' किया। वे आचार्यपाद की ओर इस प्रकार विस्मय विमुग्ध दृष्टि से देखते रहे मानो वे कुछ ऐसा सुन रहे हैं जो उनकी कल्पना से परे है। आचार्यपाद ने उनके विस्मित चेहरे को देख जरा विनोद करते हुए कहा, "एक बात और भी तो है तात!" सुमेर काका ने पूछा, "वह क्या है आर्य ?" आचार्यपाद ने विनोद चटुल मुद्रा में कहा, "उज्जयिनी में आजकल हालत बहुत डावाडोल है। वहां जाने के लिए सुमेर काका की तलवार से अधिक शक्तिशाली साधन हलद्वीप में क्या है ?" सुमेर काका भी प्रसन्न हुए। बोले, "आर्य, तुम भी इस गँवार से ठिठोली करने का लोभ नहीं रोक सकते। लो, सुमेर काका भी चला और साथ में उसकी तलवार भी जायेगी।" पत्र सावधानी से लेकर यथाविधि प्रणाम करके सुमेर काका लौट आये।

सत्रह

मृणाल उदास बैठी थी। लगता था, समस्त अन्तःकरण के व्यापार अन्तर्निगूढ होकर उसे निश्चेष्ट बनाये दे रहे थे। ऐसे ही समय चन्द्रा चुपचाप आकर खड़ी हो गयी। मृणाल ने उसे देखा ही नहीं, वह अपने आपमें खोयी बैठी रही। उसका वह

रूप बहुत मोहक था। चन्द्रा देर तक उसे मुग्ध-भाव से देखती रही। फिर उसमें एकाएक आवेश-सा आया। वह मृणाल से चिपट गयी। उसने उसके कपोलों को चूमा माथे को बार-बार सूघा और फिर उन्मत्त भाव से उसे कसकर दोनो भुजाओ से बाध लिया। मृणाल घबरा गयी, बोली, "छोडो दीदी, क्या पागल हो गयी हो!" चन्द्रा ने और कसते हुए कहा, "एकदम पागल, तेरी दीदी उन्मादिनी है, विकट उन्मादमयी! पर बता, तू इतनी उदास क्यो हो जाती है? जब तू उदास होती है तो इस उन्मादिनी की छाती फटने लगती है। पापी आयक न तुझे सुख से रहने देगा न स्वय सुख से रहेगा। हाय, हाय, क्या दशा कर दी है मेरी फूल सी बहिन की। कायर, डरपोक, भगाडा!"

मृणाल जानती थी कि चन्द्रा जब ऐसा कुछ कहती है तो वास्तव मे प्यार ही जताती है पर थोडा विब्बोक वक्रिम मुद्रा मे मुह बनाकर बोली, "ना दीदी, तुम उन्हे ऐसा न कहा करो।" दोनो के अन्तर्यामी ही केवल जानते थे कि इस प्रकार बातचीत इसीलिए प्रतिदिन शुरू होती थी कि आयक के बारे मे अधिक चर्चा हो सके।

चन्द्रा ने मृणाल का चिबुक उठा लिया और बोली, "बुरा मान गयी, मैना! तू जानती नही कि उसने मुझे कितना सताया है! हिया फट गया है मैना, मेरा हिया फट गया है! सारी दुनिया कहती है कि चन्द्रा पापिनी है, कुलटा है, आयक को पथभ्रष्ट करनेवाली है। पर चन्द्रा जानती है कि वह पापिनी नही है। आयक मेरा जनम जनम का साथी है। अगर ऐसा न होता तो क्या पागल की तरह उसके पीछे पीछे भागती फिरती। चुम्बक के पीछे भागनेवाला लोहा क्या पापी है रे? वह विवश है लाचार है उसमे इच्छा शक्ति कहा होती है? पर वही लोहा कही और लगा दो तो वज्र बन जाता है। चन्द्रा की भी वही दशा है। आयक के पीछे भागने को विवश है अन्यत्र वह वज्र जैसी दुर्भेद्य है। मेरी प्यारी बहिन, चन्द्रा ने किसी को कष्ट दिया है तो तुझे अपने प्राणो की टुकडी को। जिस दिन से जाना है कि तू उसे क्षमा कर सकती है, उसको स्नेह दे सकती है, उस दिन से उसकी यह हल्की-सी पाप भावना भी समाप्त हो गयी है। मैना, अब यह चन्द्रा बिल्कुल शुद्ध है, उसकी कुण्ठा समाप्त हो गयी है। वह तेरे आयक को जहा कही से पकडकर तुझे सौंप देने का सकल्प कर चुकी है। चन्द्रा के सकल्प को वह अन्यथा नही कर सकता। वह सिर्फ इतना चाहती है कि आयक को जी भरकर देखने की उसकी लालसा को तू बुरा न समझे। चन्द्रा को लोग काम विप्लुता कहते है। मैं आयक के लिए सब कुछ सहन को तैयार हूं, केवल तेरे मन मे कोई अन्यथा भाव नही आना चाहिए। मैं उस पर अधिकार नही चाहती। वह तेरा है और तेरा ही बना रहेगा। पर मैं अपने जनम जनम के सगी को चाहूं भी तो कैसे छोड सकती हूं। बोल बहिन इतना-सी मेरी साध तो तू पूजने देगी न? तेरे मन मे अगर रत्ती भर भी कष्ट होगा तो तेरे लिए सिर्फ तेरे लिए, इस साध को भी मिटा दूंगी। आयक के लिए इतना बडा त्याग नही कर सकती, पर तेरे लिए हृदय फाडकर रख सकती

हूँ। आर्यक के पीछे भागती हूँ, वह मेरी विवशता है, पर तुझे मैं इच्छापूर्वक प्यार करती हूँ। आर्यक को सर्वात्मना चाहती हूँ, तुझे उससे भी अधिक सर्वात्मना प्यार कर सकती हूँ। बता बहिन, मंजूर है ?'

आज पहली बार मृणाल ने चन्द्रा की आँखों में आँसू देखे। वह उसे केवल आनन्दमयी ही मानती है। अनुकूल हो या प्रतिकूल, चन्द्रा सब जगह से आनन्द-रस खींच लेती है। पर आज उसे क्या हो गया है। आँसुओं की धारा बाँध तोड़कर फट पड़ी है। लगता है, जनम भर का दबा हुआ विषाद आज बाँध तोड़कर बह जायेगा। इतने आँसू ! हे भगवान ! मृणाल का कलेजा फटने को आया— नहीं बहिन, तुमको जब तक नहीं जाना था, तब तक जो भी समझा हो अब जानती हूँ। हाय मेरे परम प्रियतम को कोई इतना निश्छल प्यार भी दे सकता है ! नहीं बहिन, मृणाल तुम्हारी दासी है। तुम स्नेह की मूर्ति हो, प्रेम का विग्रह हो। आसक्ति ! आसक्ति तो बहिन, स्त्री के भाग्य में विधाता ने लिख ही दी है। ये सब बातें आज क्यों कह रही हो ? क्या मेरे व्यवहार में तुम्हें कोई कलुष दिखायी दिया है ? ना दीदी रोओ मत।" वह स्वयं फफककर रो पड़ी। दोनों देर तक एक दूसरी को सम्हालने का प्रयत्न करती हुई रोती रहीं।

चन्द्रा ने मृणाल को इस प्रकार गोदी में उठा लिया, जिस प्रकार माता नन्हे शिशु को उठा लेती है। उसका मुँह बार बार चूमकर वह बोली, 'देख मैना, जब तक तुझे नहीं देखा था, तब तक मेरे मन में रत्ती-मात्र भी अपराध भावना नहीं थी। तुझे देखकर ऐसा लगा कि मैंने बड़ा पाप किया है। जिस आचरण से तुझे कष्ट है, वह पाप नहीं तो और क्या है ! सो मेरा मन भारी हो गया था। लेकिन आज हल्का हो गया है। तुझे नहीं मालूम कि ऐसा कैसे हुआ। बताती हूँ।

"कल मैंने अपने कान से सुना है कि तूने मेरे बारे में अमात्य से क्या कहा। पहले मैं समझती थी कि तू केवल अत्यधिक शिष्टतावश मेरा आदर कर रही है, मन ही मन अपराधिनी समझ रही है। पर कल तूने जिस प्रकार दृढ़ता के साथ मेरे निरपराध होने की बात कही उससे मेरा मन हल्का हो गया। अब मैं अपराध भावना से मुक्त हो गयी हूँ। तू नीचे से ऊपर तक कंचन भरी ही भरी है मैना ! ऐसा तो मैंने कहीं नहीं देखा। शिष्ट तो आर्यक भी है पर इतना साफ नहीं है। मैना, तू आर्यक से बहुत बड़ी है बहुत बहुत !' कहकर चन्द्रा ने प्यार के आवेश में मैना का मुँह छाती से चिपका लिया। उसकी आँखें डबडबा आयीं।

मृणालमंजरी ने परम परितृप्ति के साथ चन्द्रा का प्यार स्वीकार किया। बोली, "दीदी, आज तुम बहुत भावुक हो गयी हो।'

"भावुक नहीं हूँगी तो और क्या हूँगी बहना ! जिसे सबने कुलटा समझा और घृणा के साथ देखा, उसे तूने केवल अपने मन में ही आदर नहीं दिया राज-दरबार में भी इतना मान दिया, वह निगोड़ी भावुक भी नहीं बनेगी ? यहाँ जिन स्त्रियों को लोग भली मानते हैं उनमें से कुछ को मैं अच्छी तरह जानती हूँ। वे केवल निर्जीव रूढ़ियों का पालन करती हैं। उनका भीतर और बाहर सदा साफ

नही होता। वे छिपाने की कला अवश्य जानती हैं। चन्द्रा को वह कला नहीं आती, इसीलिए वह कुलटा कहलाती है।"

मृणाल ने प्यार से प्रतिवाद किया, "दीदी, सबकी बुराई क्यो करती हो! रुढिया इसीलिए तो बनी है कि वे लोग भी सही रास्ते पर चल सकें, जिनको बहुत सोचने की शक्ति विधाता ने नही दी है।"

चन्द्रा कुछ अचम्भे मे आ गयी। मृणाल कभी प्रतिवाद नही करती। शायद प्रतिवाद न करने मे किसी प्रकार के दुराव की गध आती है। मृणाल का प्रतिवाद बताता है कि पहले उसके मन मे शायद दुराव का भाव था, अब नही है। चन्द्रा मौन। वह कुछ कहना चाहती है। वह नही पा रही है। मृणाल एकटक उसे देखती रही। उसने क्या कुछ ऐसा कह दिया जो नही कहना चाहिए था! उसने छोटी बालिका की तरह मचलकर कहा "दीदी, तुम बुरा मान गयी?" चन्द्रा खोयी सी बैठी रही। फिर सम्हलकर बोली, "तेरे साथ रहकर भी चन्द्रा का आचरण नही सुधरा। तू ठीक कहती है। मेरा मन जला-जला रहता है, सो अवसर-कुअवसर दूसरा की बुराई कर बैठती हूँ। करनी नही चाहिए। सचमुच मैं बडी बुरी बात कहने जा रही थी। नही, अब नही कहूँगी। अपना ही दोष देखना चाहिए। सारी दुनिया बुरी साबित भी हो जाये, तो अपना क्या बन जाता है?"

मृणाल सोच नही पायी कि क्या कहे! लेकिन उसके मन को कचोट गया कि उसने चन्द्रा का दिल दुखा दिया। चन्द्रा ने मृणाल की मानसिक अवस्था का अनुमान कर लिया। हँसते हुए कहा, "अच्छा मैना, चन्द्रा किसी की बुराई न करे तो फिर तुझसे बातें क्या करे? सब बुरी बातें ही तो उसके पास कहने को हैं। मैं तो सोच नही पाती कि तुझसे क्या कहूँ। लोग स्त्रिया के बारे म कहा करते हैं कि वे आपस म जब बात करती हैं तो किसी न किसी की निन्दा ही करती है। बेचारी पुरुषो की तरह मुक्त तो होती नही, अपनी छोटी दुनिया मे ऐसी बँधी रहती हैं कि उन्हे सब समय यही लगता रहता है कि कोई न-कोई उन्हे नष्ट करन पर तुला हुआ है।' मृणाल ने फिर प्रतिवाद किया, "जो लोग ऐसा कहते हैं वे भोले हैं। वे स्त्रियो को समझ नही पाते। *यहाँ जो बुढिया काकी आती हैं, वही झम्मन राम की बहू,* वे कहती हैं कि स्त्री का जीवन दूध-भरा कटोरा है। इधर-उधर से थोडी भी छीट कही से पड जाये तो दूध फट जाता है। इसलिए उसे सावधानी से चलना चाहिए। इससे अपने को बचाने के प्रयत्न मे स्त्रियो मे अपने इर्द-गिर्द के सभी के प्रति एक प्रकार की प्रच्छन्न शका का भाव होता है और वे उनके काल्पनिक दोषो का चिटठा खोले रहती है। इसी को लोग बुराई कहते हैं।"

चन्द्रा हँसने लगी, 'वाह वा, वाह वा! तू तो आजी दादी की-सी बातें करने लगी। तेर इसी भोलेपन पर तो प्राण वारती हूँ। वाह वा, क्या बात कही है! तुझे तो सभी स्त्रियो को मिलकर अपना वकील बना लेना चाहिए। अरी भोली, तू कुछ नहीं जानती, चन्द्रा जानती है। तेरा न जानना ही अच्छा है। चन्द्रा तो जानने के कारण मारी गयी।" मृणाल सकुचा गयी। उसे लगा कि अपने को

समझदार दिखाने के लिए उसने जो बात कही, वह सचमुच बचकानी है।

चन्द्रा ने हँसना जारी रखा, "अच्छा मेरी भोला मैना अगर कोई ऐसी बात बनाऊँ जो सोलहों आने आपबीती हो और दूसरों के बारे में उतना ही कहूँ जितना अपनी आँखों से प्रत्यक्ष देखा है, तो इसे तू निन्दा कहेगी या सच्चाई ? बिल्कुल आँखों देखी बात !" मृणाल ताकती रही। वह समझ नहीं सकी कि चन्द्रा क्या कहना चाहती है। चन्द्रा ही बोली 'जाने दे, नहीं कहूँगी।" मृणाल हँसने लगी, "मैं जानती हूँ दीदी, अब तुम उनके बारे में कुछ गड़बड़ बोलना चाहती हो। बोलो ना रोज ही तो कुछ-न-कुछ कहती रहती हो। अपना के बारे में कहने में क्या बुराई है ?" चन्द्रा हँसने लगी, "आर्यक के बारे में गड़बड़ भी बोलती हूँ तो तुझे अच्छा लगता है यही न ? बात आर्यक की होनी चाहिए चाहे वह उस बेचारे की निन्दा ही क्या न हो। यही चाहती है न ? मगर मैं आर्यक के बारे में कुछ नहीं कहने जा रही थी, मैं तो अपने बारे में कहने जा रही थी।'

"तो तुम कौन अपनी नहीं हो ! कहो ना !"

"नहीं रे, पहले समझती थी कि अपने बारे में जो भी कह लो, कोई दोष नहीं होता। अब समझती हूँ अपने बारे में भी सबकुछ नहीं कहना चाहिए। वही आत्म-कथा ठीक होती है, जिससे औरों को बल मिले। हमारे जैसों की आत्म कथा तो अपनी और दूसरे की कुत्सा ही होगी। उसे कहने से क्या लाभ ? अगर मैंने उस सम्राट कहे जानेवाले समुद्रगुप्त से अपनी सब बातें साफ-साफ न कह दी होतीं तो बेचारे आर्यक को भाग-भागकर अपने को छिपाते फिरने की नौबत ही नहीं आती। अपने बारे में सच्ची बातें कहकर मैंने आर्यक को भी दुख दिया और तुझे भी कष्ट दे रही हूँ। हाँ, अब अपने बारे में भी कुछ नहीं कहूँगी। जानती है मैना, इस अभागी चन्द्रा को बात बनाना नहीं आता। आता तो क्या यही दशा होती !"

चन्द्रा ने दीर्घ निःश्वास लिया, जैसे प्राणों की जमी हुई व्यथा को ऊपर हवा में उड़ा देने का प्रयास कर रही हो। दीर्घ निःश्वास ! मृणाल को कष्ट हुआ, "नहीं दीदी, मेरी बचकानी बातों का बुरा न मानना। तुम जैसी हो वैसी ही मुझे प्यारी लगती हो। तुम्हारा प्रेम सती का प्रेम है। तुम अपने बारे में आजकल बहुत बेकार बातें सोचने लगी हो।"

चन्द्रा को हँसी आयी—"बचकानी बातों के कारण ही तो तुझे इतना प्यार करती हूँ रे। तू बहुत भोली है और तेरा 'वह' तो तुझसे भी अधिक भोला है—दम भोलानाथ ! तू सती है, तो वह 'सता' है। अपने 'सतेपन' के भंग होने के भय से काँपता रहता है। और यह चन्द्रा है कि उसके 'सतेपन' को नित्य भंग करने का प्रयास करती रही है। पैर भी धो देती थी तो जैसे बिजली मार जाती थी उसे। जानती है, मैं उसे 'कायर' क्या कहती थी ? अब तो नहीं कहूँगी। तुझे व्यथा होती है। और जब तुझे व्यथा होती है तो मुझे बिजली मार जाती है ! अरी भोली, मैं उसके भोलेपन पर ही तो मरती हूँ। बच्चा है, निरा-पूरा नादान बच्चा ! वह मन का ठण्डा है। मैं तन की गरम हूँ। पुरुष का मन का गरम होना चाहिए।

जिसका मन गरम होता है वह बहुत से गरम तनों को ठण्डा कर सकता है। जिसका मन गरम नहीं होता वह कितनी भी तलवार भाज ले, स्त्री के लिए कायर ही है। स्त्री का प्रमादन कोई हँसी खेल है रे? विकट युद्ध है। तेरा 'वह' बराबर डरता है। लगातार भागता है। कहता है, लोग क्या कहेंगे, मणाल क्या सोचेगी! कायर न कहूँ तो क्या कहूँ रे! लेकिन है भोलानाथ!"

चन्द्रा ने ऐसा कहकर मृणाल को काचा, "क्यों रे, यह निन्दा कैसी लग रही है?" उसने कुछ ऐसी हेला के साथ आँखें नचायीं कि मृणाल का चेहरा लाल हो गया। वह मुस्कराती हुई चन्द्रा की ओर ताकती रही। उसकी उत्सुकता बढ़ी जान पड़ी। कानों तक फैली आँखें कह रही थीं कि आगे कहो। आरक्त मुख मण्डल बता रहा था—यह भी कोई कहने योग्य बात है? चन्द्रा उसके लज्जित मुख को प्रसन्नता से देखती रही। बोली, "मैं अब तेरे साथ नहीं रहना चाहती। आयक को खोजने जाऊँगी। तेरा धन तुझे सौंपकर छुट्टी ले लूँगी। इसीलिए जो कुछ कहना है आज ही कह दूँगी। कौन जाने, फिर मौका मिले या नहीं।" मणाल ने कुछ उत्तेजित स्वर में कहा, "मैं नहीं जाने दूँगी। तुम मुझे छोड़ सकती हो मैं तुम्हें नहीं छोड़ सकती। तुम उनके पीछे भागोगी, मैं तुम्हारे पीछे। जान बान की बात मत कहो। बाकी जो कहना चाहती हो अवश्य कहो।" फिर चन्द्रा के गले में हाथ डालकर मचलते हुए बोली "दीदी, मुझे छोड़कर तो नहीं जाओगी न!"

"छोड़कर नहीं जाऊँगी तो ढूँढूँगी कैसे? वह चुम्बक है। खींचता है पर मैं तो चुम्बक नहीं हूँ जो उसे खींच लाऊँ! मैं जानती हूँ कि मैं जिधर जाऊँगी, उधर ही वह अवश्य मिलेगा। खींच रहा है बहिन बुरी तरह खींच रहा है। मेरे प्राण व्याकुल हैं छाती फटी जा रही है। हाय कैसे होंगे, क्या खाता होगा! भोलेराम को किसी से माँगने का भी तो शऊर नहीं है। पड़े होंगे तो पड़े होंगे। 'हाय मैना', 'हाय मैना' कर रहे होंगे! चन्द्रा का तो नाम भी नहीं लेता होगा 'मत नहीं बिगड़ जायेगा? गँवार!"

मृणाल फूट फूटकर रो पड़ी, "दीदी मेरे हृदय पर आरी चल रही है, क्या करूँ! हाय राम भूखे प्यासे कहाँ पड़े होंगे!"

तू मन रो मेरी प्यारी बहिन, वह जहाँ होगा वहाँ चन्द्रा जरूर खिंच जायगी और तू देखेगी कि तेरी दीदी उसकी नकेल पकड़कर ले आयगी।

जानती है मना तू तो समझती होगी कि चन्द्रा उसे अपने भुज पाश में कसकर सोती होगी। कैसा भुज पाश था, सुनेगी? बताती हूँ। भोलेराम भागे जा रहे थे मैं पीछा करती जा रही थी। दो दिन से न अन्न खाया था, न पानी पिया था। गायराल थककर चूर होकर पेड़ के नीचे पड़े थे। चन्द्रा छोड़नेवाली नहीं है। पकड़ ही तो लिया। पेड़ के नीचे धरती पर ऐसे पड़े थे जैसे कहीं कोई चेतना ही न हो। मैंने भी कहाँ खाया पिया था! पर मैं बेहोश नहीं हुई। मैंने धीरे धीरे पैर दबाया सिर दबाया तलवे सहलाये। तब जाकर थोड़ी चेतना लौटी। धर्ममूर्तिजी ने शून्य-दृष्टि से मेरी ओर देखा, फिर मुँह फिरा लिया। मैंने भी कुछ नहीं कहा।

चुपचाप उठ पडी और एक ओर जाने लगी। अब दयानिधान चौक्कर उठे, 'रात को अकेली कहाँ जा रही हो ?' मैंने तडाक-से उत्तर दिया 'तुमसे मतलब ? मैं तुम्हारी कौन होती हूँ ?' आगे बढी तो देखा, लाठी लिये पीछे-पीछे आ रहे है गुमसुम ! मुझे हँसी आ गयी। चुपचाप एक बनिये की दूकान पर गयी। उधर बिना ताके ही कहा 'चुपचाप यही खडे रहो।' हुकुम मान गये। मैंने अनेक हाव-भाव दिखाकर बनिये से कहा, 'मेरा कँगना रख ला आज के लिए कुछ चावल-दाल आदि दे दो।' बनिया रीझ गया। रसिक था। उसकी दृष्टि मे सुन्दरी की वाणी पसे से अधिक मूल्यवान थी। सब दे दिया, कँगना भी नही लिया। फिर उसी के यहा से बरतन लिया, पानी लिया, खाना बनाया। परसकर दिया तो ब्रह्मचारीजी ने नखरा शुरू किया, 'मैं नही खाऊँगा।' मैंने कहा बहुत ठीक। जरा इधर मुह करो खिला दू,' और कौर उठाकर मुह मे देने लगी। अच्छे-भले बच्चे की तरह खा गये। फिर दूसरा कौर उठाया तो थाली खीचकर खाने लगे। मैंने आचल से हवा की प्यार से अँचवाया तो थोडा मान भग हुआ। रात-भर शरीर दबाती रही। अपना आधा आँचल बिछा दिया था। मजे मे उस पर सो गये। बडा अभिमान मन मे पाले थे पर सेवा का सुख भोगने मे भी सजग थे। यही भोलापन तो मुझे उन्मादिनी बना देता है। प्रातःकाल फिर पूरब की ओर बढे। मैंने कहा 'घर लौट चलो।' बोले 'क्या मुह दिखाऊँगा !' हाय हाय, इतनी लाज ! मैंने तो तेरे 'उनकी' सेवा की है प्राण ढालकर मैना ! मगर पाप तो मरा ही था। मैं कृतकृत्य हो गयी रे !"

मृणाल की छाती फटने को आयी—'हाय दीदी इस समय उनकी सेवा कौन करता होगा ? कहा पडे होगे ? दीदी तुम धन्य हो, तुम्हारा ही उन पर सच्चा अधिकार है। अधिकार तो सेवा से ही मिलता है। मै हतभाग्या तो उनके कष्ट के समय तब भी आराम से घर मे पडी थी, अब भी पडी हूँ। हाय दीदी, मैं उनके किसी काम न आयी। फिर क्या हुआ दीदी ?"

'फिर क्या हुआ ? दिन भर चलते रहे। उसी तरह गुमसुम। मैं लौडी की तरह पीछे-पीछे। ताकते नही, साक्षात धर्म का बाना धारे ! ऐसा बानक भी नही देखा मना ! अच्छा बता, ऐसी परिस्थिति मे तू क्या करती ? रोती रहती न ! मगर मैं हँसती रही। मैंने कँगना बेच दिया। कुछ दिन के लिए सम्बल हो गया। एक दिन मैंने धर्म के इस देवता का तप भग करने की ठानी। सायकाल एक जगह रुककर खिला पिला दिया। थोडा अँधेरा हो जाने दिया। निर्जन स्थान था। खूब नाटक किया। दर्द से चीखने लगी। भोलेराम के चेहरे पर हवाइया उडने लगी। कभी पैर दबाते है, कभी सिर दबाते है, कभी हवा करते है, कभी तलवे सहलाते हैं। मैंने देखा बेचारा मरा जा रहा है। आदेश दे देकर एक एक अग दबवाया। फिर दोनो भुजाओ से कसकर सो गयी। सवेरे उठकर देखती हूँ, पहले से ही जागे बैठे है और धीरे धीरे सिर दबा रहे है। क्यो मना, अपने अल्हड प्यारे से कसरत कराने के लिए तू इस दीदी को क्षमा कर देगी ?'

तुम्हे तो दीदी, सब समय परिहास ही सूझता है। पर तुमने उनको सचमुच

कष्ट दिया। वे किसी का थोडा भी कष्ट नही देख पाते।"

"मुझे कष्ट कहा था रे! भालराम अगर इतने नासमझ है, तो मैं क्या करूँ? फिर तो दयानिधान कई दिना तक बीमार की सेवा मन लगाकर करते रहे और बीमार ने जो भी मागा, देते रहे। कुछ भी नही उठा रखा। जो कुछ तेरे लिए छिपाकर रखा था, उसे भी उलीचकर दे दिया—अवढरदानी बनकर!"

"मेरे लिए छिपा रखने का क्या प्रयोजन है? तुम्हारे लिए ही छिपाकर रखा होगा।" कहकर मृणाल हँस पडी। चन्द्रा ने इसका प्रतिवाद नही किया। कुछ सोचकर बोली, "कही तेरी बात सच होती तो चन्द्रा अपना जीवन धन्य मानती!" उसने फिर दीर्घ नि श्वास लिया। उसने पहली बार ऐसा मुह बनाया जिससे लगा कि वह हार गयी है। कुछ उलझे सूत्रो को सुलझाने जैसी चेष्टा करती हुई वह कहने लगी, "मैना, मैं तुमसे आठ महीने बडी हूँ। सुमेर काका ने ही यह हिसाब मुझे बताया है। तू महामारी के समय पैदा हुई, मैं महामारी से आठ महीने पहले। मगर भाग्य दोनो का कुछ एक ही तरह शुरू हुआ। तेरी माँ भी महामारी मे मर गयी, मेरी माँ भी उसी मे समाप्त हो गयी। हम दोनो महामारी की घोर विध्वसक शक्ति पर विजय पाकर जीवित रह गये। मगर बाद मे यह मातहीना चन्द्रा अधिक अभागिनी सिद्ध हुई। इसे किसी महान् पिता की छाया नही मिली। विमाता स्वय उन्मागगामिनी निकली। बचपन से मैं उद्दाम काम वासना के वातावरण मे पली। मेरे शरीर मे विधाता न जाने कैसी आग जला दी थी! केवल वासना केवल उन्मादना, केवल अन्ध पुश्चल विकार! पर सुना है कि हर दोष में भगवान कोई ऐसा गुण दे देता है जो सहारा बन जाता है। मुझे याद नही कि मेरे भीतर ऐसा कोई गुण कभी था या नही। मुझे किसी ने सयम और विवेक की शिक्षा नही दी। इद गिर्द के आचरण से जो शिक्षा मिली वह सयम और विवेक की उलटी दिशा मे ही ले जाती रही। अब सोचती हूँ कि मेरे उन्मद आचरणो मे विधाता ने जो आयक के प्रति प्रेम दिया, वही वह गुण है जो समस्त दोषो को छिपाकर उज्ज्वल दीप शिखा के समान जलता रहा है। इस अभागिनी की समस्त अधतिमिराच्छन्न वासनाओ को यह दीप शिखा सदा निरस्त करती रही। तू नही जानती मैना, कि आयक को पाने के लिए मैंने कैसे कैसे पापाचरण की सहायता ली है। मेरे पास और कोई साधन थे भी नही। आज भी नही है। मगर इस शिखा ने बहुत जलाया भी है। भीतर से बाहर तक जलाकर राख कर दिया है। तेरे साथ आयक का विवाह होने के पहले ही मैं उसे प्रेम करने लगी थी और बाद मे भी प्रेम करती रही पर उपाय मेरे वासना भरे थे। कितनी चिटिठया मैंने उसे लिखी, मगर उत्तर एक का भी नही पाया। फिर भी लिखती रही। उद्दाम वासना की बालोचित भाषा म लिखे गये थे ये सारे पत्र, तू कल्पना भी नही कर सकती कि इनमे कितनी अधवासना का जोर था!"

'कर सकती हूँ दीदी! मैंने तुम्हारे पत्रो को पढा है।"

'क्या कहा, पढा है? कसे पढ लिया तूने? कहाँ मिले तुझे?'

"उन्होंने ही दिये थे।"

चन्द्रा उत्तेजना के आवेश मे फट पडी, "और तूने फिर भी इस हतभागिनी को घर मे घुसने दिया ? झोटा पकडकर निकाल नही दिया ? लात घूसे से इसका भुर्त्ता नही बना दिया ? मैना तू स्त्री नही है ! ऐसी बातो से जिसके हृदय मे ईर्ष्या नही उत्पन्न होती, मन मे क्रोध नही उत्पन्न होता, हाथो मे झोटा पकडकर घसीटने की कसमसाहट नही होती, उसे स्त्री कैसे कहूँ रे ! हा, तू नारी नही है। शायद देवी है। दे, जरा चरणो की धूल दे दे। इन चरणो की धूल ही उन्मार्ग गामिनियो को रास्ता दिखा सकती है। मैना, तू सचमुच सती है !' चन्द्रा ने आवेश के साथ मैना का पैर खीच लिया और अपने झुके हुए माथे पर रगडने लगी। मणालमजरी ने झटके से पैर खीचा। बोली, "दीदी तुम पागल हो गयी हो क्या ?"

"पागल तो हूँ ही मैना, धुत्त पागल ! पर मैना, मेरे पत्र पढकर तूने क्या सोचा था ? बोल मैना, आज मेरा सारा अस्तित्व फटकर निकल जाना चाहता है। अरे, वे पत्र किसी के पढने लायक थे ? छि !'

"दीदी, तुम जरा शान्त हो जाओ। सब बताती हूँ।"

'बता बता, सब बता दे। कुछ भी छिपाने की आवश्यकता नही है।'

"बात कुछ भी नही है, दीदी ! वे तुम्हारे पत्र ले आकर मुझे द देते थे कहते कुछ भी नही थे। उनकी आखे झुकी होती थी और चेहरा उदास। मुझे ऐसा लगता था कि वे कही पर अपनी दुबलता या गलती अनुभव करत थ। पर अपने को निरुपाय पा रह थे। उन्ह उन पत्रो स खीज कम होती थी, अनुताप अधिक। मैंने एक बार उनसे कहा कि यह लडकी तुम्ह हृदय से प्यार करती है, पर प्यार प्रकट करने के लिए सस्कारवती वाणी नही जानती। उनकी आखें भर आती थी। कुछ भी कह नही पाते थे। मैने उनसे कहा कि उसे भी साथ रखन मे क्या हानि है तो तुनक गये। बोले 'ऐसी बात फिर न कहना। मैं मानता हूँ कि यह लडकी मुझे हृदय से प्यार करती है। मगर बेचारी सोच ही नही पाती कि यह असम्भव है।' मगर दीदी, यह कहने मे उनकी वाणी लडखडा जाती थी कण्ठ मे थोडा गद्गद भाव आ जाता था। मुझे अनुभव होने लगता था कि मैं इस उद्दाम प्रेम की बाधिका हूँ। सच कहती हूँ दीदी, अगर मै बीच मे बाधा न बन गयी होती तो वे तुम्हे हृदय उँडेलकर प्यार करते। इसीलिए तो कहती हूँ कि तुम्हारे ही लिए कुछ छिपाकर रखा होगा।'

चन्द्रा ऐसे स्तब्ध हो रही जैसे काठ की प्रतिमा हो। ऐसा लगा कि उसके अन्तर्यामी ही निश्चेष्ट हो गय है और उन्होंने उसके मन और इन्द्रिय के समस्त व्यापारो को किसी अज्ञात इशारे से रोक दिया है। मदन दाह से बेधे गय शिव के गणो को जसे एक ही इशारे मे नन्दी न चाचल्य से विरत होने का निर्देश दे दिया था— मा चापलायति गणान न्यनैषीत।' उसकी उस निश्चेष्ट मुद्रा से मृणाल-मजरी चिन्तित हो उठी, दीदी दीदी, क्या हो गया तुम्ह ! बोलो दीदी !"

चन्द्रा ने आँखें खोली। अभिभूत की भाँति मृणाल को छाती स चिपका

लिया—'सच कहती है मेरी प्यारी मना ? सचमुच आयक का कण्ठ गद्‌गद हो गया था ? सचमुच चन्द्रा का नाम लेते समय उसकी वाणी स्खलित हो गयी थी ? मुझे भरमाना मत मना, तू मुझसे सच्ची बात ही कह ! सचमुच तुझे लगा था कि आयक के हृदय मे मेरे लिए थोडा स्थान था ?"

मृणाल ने भाराक्रान्त वाणी मे कहा, "सच कहती हूँ दीदी, तुमसे क्या झूठी बात कह सकती हूँ ?"

चन्द्रा की आँखो से दर विगलित अश्रु-धारा वह चली। आज चन्द्रा का जीवन कृताथ है। यही वह आज तक नही समझ पायी थी कि आयक के हृदय म भी वह कही स्थान पा सकी है या नही। अब तक वह अपने को गले पडी मानती रही है। आज उसे लग रहा है—यह लीला भी एकतरफा नही है अनुभयनिष्ठा नही है। मृणाल कहती है, आयक ने उसके लिए कही कुछ अवश्य छिपा रखा था।

चन्द्रा कृताथ है। उसने प्यार से मृणाल का सिर चूमा—"बलिहारी है तेरी सच्चाई की, मैना ! प्राण वारती हूँ तेरी मुग्ध आस्था पर। अब चन्द्रा को सब मिल गया। आज तक के सब पाप धुल गये। जानती है बहिन, सती की आत्मा मे ज्योति जलती रहती है। उसके निकट किसी पाप भावना के ठहरन की सम्भावना ही नही रहती। सूरज तपता हो तो अँधेरा टिक कैसे सकता है भला ! तेरे भीतर वही अखण्ड ज्योति जल रही है। तेरे निकट जो भी आयेगा, वह अगर छेडने की कोशिश करेगा तो भस्म हो जायेगा। थोडा दूर-दूर रहेगा तो आलोकित हो जायेगा। चन्द्रा आज आलोकित है। आयक की रक्षा तेरी यह आलोकित शिखा ही करती है। बहिन, जहा भी वह रहगा, उसकी छाया भी कोई नही छू सकेगा।"

मृणालमजरी ने वातावरण के भारीपन को हल्का करने के लिए चुहल की, "दीदी, तुम तो ज्ञानी की भाति बातें करने लगी। कहा सीखा इतना ज्ञान ? आठ ही महीने तो मुझसे बडी हो, पर बात करती हो बुढिया दादी की तरह !" कहकर मृणाल हँसने लगी, पर वातावरण का भारीपन बना ही रहा। चन्द्रा अब भी अभिभूत ही बनी रही।

"मैना, तूने पोथिया पढी है मैंने मनुष्य पढे है। यही मरा ज्ञान स्रोत है। और कहा ज्ञान मिलेगा मुझे ?" कहकर उसने फिर शून्य की ओर दृष्टि गडा दी। मृणाल को विचित्र लगा। क्या कह, कुछ सोच नही पा रही थी। आँगन स शोभन की निंदियारी आवाज सुनायी पडी—"बडी अम्मा !' चन्द्रा धडफडाकर उठ पडी "जग गया क्या ?" मृणाल को अच्छा अवसर मिला—' जब देखो तब बडी अम्मा, मैं जसे कुछ हूँ ही नही। बठो दीदी, मैं जाती हूँ।' चन्द्रा ने उसे बठाते हुए कहा, "नही तू यही रह, सब बाप की आदत पडी है, वह भी सोय सोये चिल्ला उठना है। अभी आती हूँ।" कहकर वह चली गयी। थोडी देर मे लौट आयी बोली शायद कुछ सपना देखकर चौंक उठा था, फिर सो गया। बाप भी सपना देखकर

चिल्ला उठता है, 'मैना, मैना !' मगर बाप स अच्छा है, कम से कम मुझे तो बुलाता है।"

"तुम तो दीदी, कोई बात हो उनको अवश्य घमीट ले जाती हो और मुझे लज्जित कर देती हो। तुम्ह मालूम है, यहा कितनी बार 'चन्द्रा, चन्द्रा' चिल्लाकर नीद म चौंके है ?"

'सच मैना ? अब तू बात बनाना सीखने लगी है !"

सच कहती हूँ दीदी, तुम तो मेरी बात मानती ही नही। बुरा न मानो तो बता दू, दीदी ! तुम्हारा यह उत्फुल्ल मल्लिका सा रूप और उसकी मादक सुगन्ध तुम्हारा निश्छल अनुराग जादू के समान प्रभाव डालनेवाला है। कोइ मोहित न हो तो क्या करे ? मगर तुम मानती क्या नही कि मैं बात बनाकर नही कह रही हूँ !"

"मानती हूँ, मानती हूँ। तू जो कह रही है वह अगर सच है तो जानती है तू क्या कर रही है इस समय ?"

"तुमसे बात कर रही हूँ, और क्या कर रही हूँ ? तुम जब से आयी हो तब स मुझे और कुछ करने भी देती हो !"

"नही री भोली, तू मेरे करेजे पर आरी चला रही है, मेरी चेतना पर कशाघात कर रही है, मेरे अस्तित्व को चूर चूर कर रही है। मैं फट जाऊँगी मैना मैं एकदम टूट जाऊँगी। आज जान कहाँ स विधाता ने वधक दृष्टि डाली है—छेद दिया है रे, अन्तरतर को वेध डाला है !"

"क्षमा करो दीदी मैंने अनजान मे तुम्ह कष्ट पहुँचाया है।" मृणाल श्यामी हो गयी।

"कष्ट पहुँचाया है ? इस वेदना का सुख तू नही समझेगी। हृदय चीरकर दिखा सकती तो तुझे विश्वास हो सकता। कितने जले घावो को अमृत लेप लेपकर तून हरा कर दिया है ! और भी कह और भी वध ! और भी छेद दे मेरी प्यारी मैना ! इस पीडा ने मुझे नया जन्म दिया है। कह मेरी प्यारी रानी, सपने मे उस कापालिक ने क्या क्या कहा था ?"

"बस दीदी अब तुम शान्त हो जाओ। जितना कहा, उतने ही स तप्त हो जाओ। अब अधिक ऐसा कुछ बोलोगी तो तुम्हारी मैना रोन लगेगी।'

'बहुत पा गयी हूँ रे कई जन्मो के लिए पर्याप्त है। तू रोन की धमकी न दे। तुझे बहुत रुलाया है, अब नही रुलाऊँगी, एकदम नही।'

'दीदी, अब तुम थोडी दर चुप रहो। मैं ही बोलूगी। अच्छी बात कहूँगी, भाला-बरछी चलानेवाली बात नही कहूँगी। सुनोगी दीदी !"

'तू जान-बूझकर थोडे ही चलाती है ! पर तेरी बातो मे इस तेरी भाग्यहीना दीदी पर कब बरछी चल जाती है तू जान ही नही पाती। पर चल जरूर जाती है। मगर मैना आज मैं कृतकृत्य हूँ।"

'छोडो दीदी, तुम भी कई बार आरी चला देती हो, एक बार मैंन भी चला

दी। हिसाब चुकता हुआ। उनके बारे मे कुछ उपाय करो न ! मैं तो ऐसी मूख हूँ कि कुछ सोच ही नही पाती कि क्या करूँ। एक बार सुमेर काका से कहा कि विन्ध्याचल के पास कोई सिद्ध है, उनके पास चलो। लेकिन जानती हो, फक्कड आदमी है, जो बात उनकी बुद्धि के घेरे मे नही आती, उसे ढाग कहते हैं, अध विश्वास कहते हैं और कभी-कभी भेडियाधसान भी कहते है। उन्हे उत्साहित न देखकर फिर उनसे कुछ नही कहा। मगर अब तो तुम हो दीदी, चलो न एक दिन उस सिद्ध के पास चलकर उनके बारे मे पूछें। शायद कोई उपाय बता दें। ले चलो मुझे मेरी अच्छी दीदी ! बहुत सी बातें जो साधारण आँखा से नही दिखती, वे इन सिद्धो की तपोमय आँखो से स्पष्ट दिखायी दे जाती हैं।"

चन्द्रा के चेहरे पर आह्लाद की किरणे खेलने लगी। बोली, "सुमेर काका तो देवता पुरुष है। पहले तो मुझे मारने दौडे, फिर बात समझ मे आ गयी, तो मेरे विरुद्ध कोई कुछ कहता है तो उस ही मारन दौडते है। कहते ह 'चन्द्रा, अब समझ गया हूँ। दोष तेरा नही, सामाजिक व्यवस्था का है।' अब तो सुना है, मेरी ओर से आचाय पुरगोभिल से भी उलझ आय है। सुना मैना, उन्हाने मुझस कहा था कि मैना सिद्ध स मिलना चाहती है मुझे यह बात जँच नही रही है। चल न चन्द्रा, तू ही उसकी ओर से पूछ ले। वह बहुत भोली है, उसे कोई भी धोखा द सकता है।

"सुना मैना, मुझे काका की बात ठीक लगी है। मैं ही जा रही हूँ। तू कहाँ भटकती फिरेगी ?" मृणाल ने आग्रह के साथ कहा, "मैं भी चलूगी, दीदी।" चन्द्रा ने लीला कटाक्ष निक्षेप करते हुए कहा, "ना बाबा, कोई आके पूछेगा कि मेरी फूल सी प्राण वल्लभा को जगल पहाड म क्यो भटकाती फिरी, तो क्या उत्तर दूगी ?" मैना ने मन्द स्मित के साथ हेला जडिम वाणी मे कहा, "जाओ !"

अट्ठारह

सिद्धाश्रम से लोटकर चन्द्रा न कहा, "साधुआ मे सब अच्छे ही नहीं होत। मैंन अनेक भण्ड साधु देखे हैं। उन्हे घायल करन के लिए कटाक्ष-बाण स बेधन की भी जरूरत नही होती। स्त्री शरीर की गन्ध ही उन्हे बहोश कर देती है। मैंन मन ही मन ऐसे साधु से मिल जान पर जो कुछ किया जाना चाहिए, वह सोच लिया था। सच तो यह है मैना, कि मैंन स्वच्छ मन लेकर आश्रम म प्रवेश नहीं किया था। आज मैं तुझे कुछ बदली-बदली लग रही हूँ न ? उस दिन ऐसी नही थी।"

अवसर पाकर मृणाल न गम्भीरता का अभिनय करत हुए कहा, "साधुआ का

क्या दोष है, दीदी ! गन्ध के साथ ऐसा वर्ण, ऐसी कान्ति, ऐसी प्रभा, ऐसी सम्मोहक चारुता एक साथ मिल जाय, तो ब्रह्मा का मन भी एक बार डोल जाये !"

चन्द्रा ने चिकोटी काटते हुए कहा, 'बस कर, अब ऐसी चाटूक्तियाँ मुझे न प्रसन्न कर सकती हैं, न अप्रसन्न ! मैं अब समझ गयी हूँ। बात तो सुन !

"लोगों से सिद्ध बाबा का आश्रम पूछ पूछकर हम लोग विन्ध्याटवी के एक गहन वन के निर्जन प्रदेश में पहुँचे। एक कड़ाह की तरह के पर्वत शिखर में सिद्ध बाबा का आश्रम था। पहले ऊपर चढ़ना पड़ता था, फिर नीचे की ओर उतरने पर सिद्ध बाबा की कुटिया मिलती थी। थोड़ा और नीचे की ओर स्वच्छ जल का एक कुण्ड था। बड़ी मनोहर शोभा थी। रास्ता तो इतना विकट था कि तुझे न ले जाने का सन्तोष ही मन में था, पर आश्रम की शोभा देखकर मन में आया कि तुझे साथ ले आती तो अच्छा ही होता। चोटी से कुण्ड तक चारों ओर हरी वनराजि ऐसी सुन्दर लगती थी जैसे किसी ने लोहे के कड़ाह में नीलम की वृक्षावली उरेह दी हो। कुण्ड का पानी बहुत स्वच्छ था। ऐसा लगता था कि वन-लक्ष्मी का साध का सँवारा दर्पण है। नीचे से ऊपर तक वन पनसा, बदरिया और कुटज-गुल्मों की पंक्तियाँ इस प्रकार कमनीय दिख रही थीं मानो वन लक्ष्मी ने कंघी से केशों को झाड़कर सीमन्त रचना की तैयारी कर रखी हो। सर्वत्र निःशब्द शान्ति भरी हुई थी, पर उसमें चुप्पी का खालीपन नहीं था। विचित्र मुखर भाव का भरापन था। सर्वत्र लगता था, कुछ कहा जा रहा है, कोई बातचीत चल रही है, कोई रहस्यपूर्ण संकेत का व्यापार चल रहा है। कोई चेला वहाँ नहीं था। एक विचित्र प्रकार का भरा-भरा सूनापन सर्वत्र व्याप्त था। मैं तो मैं, सुमेर काका की अकारण चपला वाणी भी वहाँ निश्चेष्ट हो गयी। उन्होंने इशारे से कहा कि तू अकेली जा, मैं बाहर ही रहूँगा।

"डरती हुई मैं धीरे धीरे कुटिया में गयी। कुटिया भी एक गुफा-सी थी जिसके एक ओर पहाड़ था, दो ओर घने सीताफलों की कतारें थीं और आगे के हिस्से को किसी प्रकार झाड़-झंखाड़ की अनगढ़ टाटी बनाकर फाटक जैसा बना लिया गया था। इसी कुटिया में सिद्ध बाबा के दर्शन होंगे। मैंने कल्पना कर ली थी कि वे *समाधि लगाये होंगे। पर ऐसा कुछ नहीं था। मुझे सिद्ध बाबा वहाँ नहीं दिखायी* दिये। सोचा, थोड़ा और अन्दर जाने पर शायद अन्धकार के घने आवरण में किसी कोने अँतरे में दिखायी दे जायें। पर कहाँ कुटिया में तो कोई नहीं था !

"कुण्ड की दूसरी ओर से आवाज़ आयी—'भुवन मोहिनी, त्रिपुर सुन्दरी, इधर आ, पुत्र यहाँ है।'

'मैंने चकित होकर अपना नया नामकरण सुना। उधर घूमकर देखती हूँ तो आपादमस्तक सफ़ेद केशों से आवृत एक अशीतिक वृद्ध हँसते हुए मुझे देख रहे हैं। कह रहे हैं—'कहाँ भटक गयी अकुलवल्लभे ! बेटा इधर, माँ उधर !' क्या बताऊँ मैना, मेरे पैर से सिर तक बिजली कौंध गयी, इस सम्बोधन ने मुझे नीचे से ऊपर तक झकझोर दिया। और सिद्ध की हँसी तो जैसे वशीकरण

दी। हिसाब चुकता हुआ। उनके बारे मे कुछ उपाय करो न! मैं तो ऐसी मूख हूँ कि कुछ सोच ही नही पाती कि क्या करूँ। एक बार सुमेर काका स कहा कि विन्ध्याचल के पास कोई सिद्ध है, उनके पास चलो। लेकिन जानती हो, फक्कड आदमी है, जो बात उनकी बुद्धि के घेरे मे नही आती, उसे ढाग कहते हैं, अन्ध विश्वास कहते है और कभी कभी भेडियाधसान भी कहते हैं। उन्ह उत्साहित न देखकर फिर उनसे कुछ नही कहा। मगर अब तो तुम हो दीदी, चलो न एक दिन उस सिद्ध के पास, चलकर उनके बारे मे पूछें। शायद कोई उपाय बता दे। ले चलो मुझे मेरी अच्छी दीदी! बहुत सी बातें जो साधारण आखो से नही दिखती, वे इन सिद्धा की तपोमय आखो से स्पष्ट दिखायी दे जाती है।"

चन्द्रा के चेहरे पर आह्लाद की किरणें खेलने लगी। बोली, "सुमेर काका तो देवता पुरुष हैं। पहले तो मुझे मारने दौडे, फिर बात समझ मे आ गयी, तो मेरे विरुद्ध कोई कुछ कहता है तो उसे ही मारने दौडते है। कहते है, 'चन्द्रा, अब समझ गया हूँ। दोष तेरा नही, सामाजिक व्यवस्था का है।' अब तो सुना है, मेरी ओर से आचाय पुरगोभिल से भी उलझ आये है। सुना मना, उन्हाने मुझस कहा था कि मैना सिद्ध से मिलना चाहती है, मुझे यह बात जँच नही रही है। चल न चन्द्रा, तू ही उसकी ओर से पूछ ले। वह बहुत भोली है, उसे कोई भी धोखा द सकता है।

"सुना मना, मुझे काका की बात ठीक लगी है। मैं ही जा रही हूँ। तू कहाँ भटकती फिरेगी?" मणाल ने आग्रह के साथ कहा, "मैं भी चलूगी, दीदी!" चन्द्रा ने लीला-कटाक्ष निक्षेप करते हुए कहा, "ना बाबा, कोई आके पूछेगा कि मेरी फूल-सी प्राण वल्लभा को जगल-पहाड मे क्या भटकाती फिरी, तो क्या उत्तर दूगी?" मैना ने मन्द-स्मित के साथ हेला जडिम वाणी मे कहा, "जाओ!"

अट्ठारह

सिद्धाश्रम से लौटकर चन्द्रा न कहा, "साधुआ मे सब अच्छे ही नहीं होते। मैंन अनेक भण्ड साधु देखे हैं। उन्ह घायल करने के लिए कटाक्ष-वाण मे बेधन की भी जरूरत नही होती। स्त्री शरीर की गन्ध ही उन्ह बहाश कर दती है। मैंन मन ही मन ऐस साधु से मिल जान पर जो कुछ किया जाना चाहिए, वह सोच लिया था। सच तो यह है मैना, कि मैंन स्वच्छ मन लेकर आश्रम म प्रवेश नहीं किया था। आज मैं तुझे कुछ बदली-बदली लग रही हूँ न? उस दिन ऐसी नहीं थी।"

अवसर पाकर मृणाल न गम्भीरता का अभिनय करत हुए कहा, 'साधुआ का

क्या दोष है, दीदी ! ग ध के साथ ऐसा वण, ऐसी कान्ति, ऐसी प्रभा, ऐसी सम्मोहक चारुता एक साथ मिल जायें, तो ब्रह्मा का मन भी एक बार डोल जाय !"

चन्द्रा ने चिकोटी काटते हुए कहा, "बस कर, अब ऐसी चाटूक्तिया मुझे न प्रसन्न कर सकती है, न अप्रसन्न ! मैं अब समझ गयी हूँ। बात तो सुन !

"लोगो से सिद्ध बाबा का आश्रम पूछ पूछकर हम लोग विन्ध्याटवी के एक गहन वन के निजन प्रदश म पहुँचे। एक कडाह की तरह के पवत शिखर मे सिद्ध बाबा का आश्रम था। पहले ऊपर चढना पडता था, फिर नीचे की ओर उतरने पर सिद्ध बाबा की कुटिया मिलती थी। थोडा और नीचे की ओर स्वच्छ जल का एक कुण्ड था। बडी मनोहर शोभा थी। रास्ता तो इतना विकट था कि तुझे न ले जाने का सन्तोष ही मन मे था, पर आश्रम की शोभा देखकर मन मे आया कि तुझे साथ ले आती तो अच्छा ही होता। चोटी से कुण्ड तक चारो ओर हरी वनराजि ऐसी सुन्दर लगती थी जैसे किसी ने लोहे के कडाह मे नीलम की वृक्षावली उरेह दी हो। कुण्ड का पानी बहुत स्वच्छ था। ऐसा लगता था कि वन लक्ष्मी का साध का सँवारा दपण है। नीचे से ऊपर तक वन पनसो, बदरिया और कुटज गुल्मो की पक्तिया इस प्रकार कमनीय दिख रही थी माना वन लक्ष्मी न कघी मे केशा को झाडकर सीमन्त रचना की तैयारी कर रखी हो। सवत्र नि शब्द शान्ति भरी हुई थी, पर उसमे चुप्पी का खालीपन नही था। विचित्र मुखर भाव का भरापन था। सवत्र लगता था, कुछ कहा जा रहा है, कोई बातचीत चल रही है, कोई रहस्यपूण सकेत का व्यापार चल रहा है। कोई चेला वहा नही था। एक विचित्र प्रकार का भरा-भरा सूनापन सवत्र व्याप्त था। मैं तो मैं, सुमेर काका की अकारण चपला वाणी भी वहा निश्चेष्ट हो गयी। उन्होने इशारे स कहा कि तू अकेली जा, मै बाहर ही रहूँगा।

"डरती हुई मैं धीरे धीरे कुटिया मे गयी। कुटिया भी एक गुफा-सी थी जिसके एक ओर पहाड था, दो ओर घने सीताफलो की कतारें थी और आगे के हिस्से को किसी प्रकार झाड झखाड की अनगढ टाटी बनाकर फाटक जैसा बना लिया गया था। इसी कुटिया म सिद्ध बाबा के दशन होगे। मैंने कल्पना कर ली थी कि वे समाधि लगाये होगे। पर ऐसा कुछ नही था। मुझे सिद्ध बाबा वहा नही दिखायी दिय। सोचा, थोडा और अन्दर जाने पर शायद अन्धकार के घने आवरण म किसी कोन अतरे म दिखायी दे जायें। पर कहाँ, कुटिया मे तो कोई नही था !

"कुण्ड की दूसरी ओर से *आवाज आयी—'भुवन मोहिनी, त्रिपुर सुन्दरी,* इधर आ, पुत्र यहाँ है।'

"मैंने चकित होकर अपना नया नामकरण सुना। उधर घूमकर दखती हूँ तो आपादमस्तक सफेद केशा से आवृत एक अशीतिक वृद्ध हँसते हुए मुझे देख रहे हैं। कह रह हैं— वहाँ भटक गयी अकुलवल्लभे 'बटा इधर, माँ उधर!' क्या बताऊँ मैना, मेरे पैर से सिर तक बिजली कौंध गयी, इस सम्बोधन न मुझे नीचे से ऊपर तक झकझोर दिया। और सिद्ध की हँसी ता जसे वशीकरण

का मन्न थी। आहा इतनी निमल हँसी भी होनी है! ऊपर खडे सुमेर काका ने सुना तो उन्ह कुछ आशका हुई दौडते हुए लाठी ताने खट खट नीचे उतर आये। बाबा ने उन्ह देखते ही जोर से ठहाका लगाया, 'भोलानाथ, महिषमर्दिनी की रक्षा करने आये हो? चले जाओ, कोई डर नही है। कुम्भोदर तो है ही। इसके रहते उनकी ओर कौन आख उठा सकता है!' काका हतप्रभ हो रहे। फिर शिरसा प्रणाम करके बाले जो आज्ञा!' मैंने काका को आश्वस्त करते हुए कहा, 'कोई चिन्ता की बात नही है, काका। पिता के पास हूँ।' काका चले गय। मैंने हाथ जोडकर घुटनो के बल टिककर धरती से सिर लगाकर उनकी वदना की। वे हँसते रह, फिर बोले, 'पुत्र को कैसे स्मरण किया, अम्ब! सब कुशल मगल है न?' मुझे लगा बाबा मेरे बारे मे सब जानते है। इनसे कुछ छिपाया नही जा सकता। मैंने वचना का जो जाल मन ही मन बुना था, वह एकदम छिन्न भिन्न हो गया। वे चुन चुनकर ऐसे सम्बोधन करते थे कि मेरी शिराएँ झनझना उठती थी। उपास्य का नाम किसी भी बहाने से उच्चरित करना तो भक्तो की चिराचरित प्रथा है। बाबा भी चुन-चुनकर जगदम्बा के नाम से मुझे पुकारते थे, पर हर सम्बोधन झकझोर जाता था। उस 'अकुलवल्लभा' सम्बोधन को सुनकर तो मेरा अतरतर काप उठा। क्या बाबा से कुछ भी छिपा नही है? क्या तपस्या अदृष्ट दशन की शक्ति दे देती है? जानती हूँ, 'अकुल' महादेव का नाम है और 'अकुलवल्लभा' आद्या शक्ति का ही नाम है। पर यह कैसा वेधक सम्बोधन है?

"बाबा हँसते रह—'मा, क्या चिन्ता है तुझे? इस अभाजन पुत्र स तू चाहती क्या है? तरे भीतर भुवनमोहिनी का निवास है। उनकी त्रैलोक्य सौभगा लीला तेरे भीतर खेल रही है। तू भुवनमोहिनी के विभ्रम विलास का अवतार है मा! मा तुझे क्या कष्ट हो गया है कि पुत्र के पास दौडती चली आयी? जरा ललाट तो दिखा।' बाबा ने मेरे मस्तक को दाहिने हाथ के अँगूठे और तजनी से पकडकर उठाया और बच्चे की तरह खिलखिलाकर हँस पडे—मा, तरे तो बस एक ही बुड्ढा बच्चा है जिसे सामने देख रही है। और कोई बच्चा तो विधाता ने सिरजा ही नही। मैं ही अकेला तेरा पुत्र हूँ, जगदम्बिके!' सिर छोड कर बाबा ताली बजाकर किलक उठे—मेरे दुलार म कोई हिस्सा बँटानवाला नही है। तू एकपुत्रा है, माँ!' मेरा चेहरा फक् पड गया। बाबा ने फिर सिर उठा लिया। आश्चय म फिर विह्वल हो गय—'क्या लीला है तुम्हारी महामाया! एक है तो वही छिपा हुआ! नही माँ, तेरा औरस भी नही है और तेरा पूरा अपना भी है। बाँटनवाला है माँ बुड्ढे बच्चे का एक प्रतिद्वन्द्वी भी यही छिपा है। बडा प्रतापी दिखता है माँ, बुड्ढे का स्नेह बाँट लेगा।' फिर रुआँसे से होकर बोले, बडा प्यारा लगता है रे बुड्ढे भाई को भी मोह लेगा। पर यह सब महामाया का पडयन्त्र ही है। मौज म आती है तो विधाता को भी मूख बना देती है। बात माँ अब तो प्रसन्न हुई न?'

मैं अवाक् होकर बाबा का मुह ताकती रही। वे बच्चा की तरह प्रसन्न थ।

हँसते हुए बोले, 'सौभाग्य तो तेरा अद्भुत है त्रिलोक सुभगे, तुझे कष्ट क्या है बनाती क्या नहीं ? अकारण इस वृद्ध पुत्र को व्याकुल बना रही है। तेरी-जैसी अनोखी माता तो कभी इस आश्रम में नहीं आयी। आहा, तेरे तो शरीर और मन अलग अलग दिशा में दौड़ लगा रहे हैं। शरीर तेरा सौभाग्य की खोज में भाग रहा है, मन वात्सल्य की ओर। तेरा मन अपने प्रियजनों को वात्सल्य में डुबा देना चाहता है। तेरा प्रियजन भी तुझे बच्चा सा मोहित करता है। मा, तू भीतर से मा है बाहर से शृंगारमयी प्रिया। आहा, ऐसा मिलना तो विरल है! विधाता तेरी कुक्षि में वात्सल्य का आश्रय आने नहीं देगा और महामाया तुझमें वात्सल्य रस भरती जा रही है। यह तो विषम संकट है जगतारिणी!'

"मेरी वाणी रुकी सो मानो सूख ही गयी। किसी तरह साहस बटोरकर बोली, 'बाबा जो कहना चाहिए वह कह नहीं पा रही हूँ। हृदय पर जैसे किसी ने भारी पत्थर रख दिया है। लोक दृष्टि में मैं उन्मार्ग गामिनी कुलटा हूँ, अपनी दृष्टि में पतिव्रता। पर इस पतिव्रता ने मेरी प्राण प्यारी सखी को विपत्ति में डाल दिया है और जिसे पति मानती हूँ उसे भी घोर कष्ट में डाल दिया है।

"बाबा किलकारी मारकर हँसे—'हाथ तो दिखा दे त्रिनयने! दुनिया के दो ही आँखें होती हैं तेरी तीसरी आँख भी खुली लगती है। ठीक कहता हूँ न, माँ?' मैंने अपना हाथ बाबा के सामने फैला दिया। बाबा चौंक पड़े। बड़ा भरमना पड़ा है तुझे मा! मेरी मूर्ख माँ, तुझे अपनी बुद्धि पर भरोसा है। ना रे ना, सब उसकी रचना है। तू अपने को निमित्त क्या नहीं मानती मेरी अबोध माता! पर कैसे मानती? उस मायाविनी ने तुझे भटकाये रखने का जाल रच दिया है। कोई चिन्ता नहीं, अपने इस बेटे पर भरोसा रख सब ठीक हो जायेगा। जरा पैर तो दिखा, मा! हाँ, ठीक है। तो तू जिसे पति मानती है वह संकट में पड़ गया है। और तेरी सखी उसकी पत्नी होगी—तेरी स्वयवता सौत। है न यही बात?'

"मैंने थके हुए स्वर में कहा, 'हाँ बाबा, मगर वह सौत नहीं, मेरी प्यारी बहिन है।' बाबा ठठाकर हँसे— सौत बहिन नहीं तो और क्या होती है मेरी भोली मा?' मैं क्या उत्तर देती! चुपचाप बाबा की ओर ताकती रही। बाबा ने मेरे मुख से आँखें हटायी नहीं। बच्चा की सी प्रसन्नता उनके चेहरे पर खेलती रही। थोड़ी देर तक उसी तरह देखते हुए बोले, तेरे केश घन कुंचित हैं। ये तो अखण्ड सौभाग्य की सूचना देते हैं पर तू इतना भटकी कैसे? भगवती ने जिसे इतने शुभ लक्षण दिये हैं, वह इतना चक्कर में कैसे पड़ गयी? ऐसा लगता है सर्वेश्वरी, कि तेरी स्वयवता सौत तुझसे भी अधिक शक्तिसम्पन्न लक्षणों की रानी है। दो माताओं के भाग्य आपस में लड़ें तो बूढ़ा बच्चा क्या कर सकता है, मा! तू अपने को उससे पराजित मानती है? मुझे बाबा की बात अच्छी नहीं लगी। शायद वे सौतों की लड़ाई का अनुमान करने लगे हैं। मैंने थोड़ा कठोर होकर कहा, कहाँ न बाबा, कि वह हमारी प्यारी बहिन है। प्यार में जय पराजय की बात कहाँ उठती है?' बाबा ठठाकर हँसे—'तू हार मान गयी है माँ, हार

जरा तेरी नाडी देखूं।' मैंने हाथ दे दिया। बाबा ने नाडी टटोली— जल रही है रे, तुझे तो ज्वर हो गया है, गन्दगी जलेगी तो तापमान तो बढ़ेगा ही जल जाने दे, सब जल जाने दे! मेरी ओर देख पद्मासने पीडा हो रही है न? तेरा बुड्ढा बच्चा बडा पाजी है मा को कष्ट दे रहा है! अरे तू तो बेहोश होती जा रही है। ना मा, घबरा मत। दुष्ट बच्चे के पास आ गयी है। यह जलाने का खेल खेलता है।'

"मैं सचमुच संज्ञा शून्य होकर बाबा के चरणों पर लुढ़क गयी। थोडी देर तक मेरी चेतना मुझसे एकदम अलग हो गयी पर मैं मरी नहीं मना, साफ देखती रही। सारे पाप साकार होकर सामने आने लगे। ऐसा जान पडा कि सब जल रहे हैं उछल रहे हैं, तडप रहे हैं भहरा रहे हैं। मैं उन्हें देख रही हूँ। उद्दाम यौवन के निकृष्ट पाप—काले भयावने, जहरीले सापों के भयंकर झुण्ड विवश भाव से जल उठते हैं महाभयानक नागमेध यज्ञ चल रहा है। जिन बातों को मैंने कभी पाप नहीं समझा वे भी सुनहरे सापों के रूप में आ-आकर गिर रहे हैं। ताप और बढ़ता गया, दुर्गन्ध और भभकती गयी, बेचैनी और बढ़ती गयी। उस भयंकर ज्वाला से मेरा शरीर तप्त तवे की भांति लहक उठा था। बाबा की आवाज सुनायी पडी—'उठ रे ज्वालामुखी सब जला देगी? कैसी मा है तू रे ज्वालमालिनी! ऐसी उमासें भर रही है कि बूढ़े बच्चे को भी जला देगी! उठ जा।'

"क्षण भर में मुझे लगा कि शरीर का ताप कम हो गया है और मेरी चेतना लौट आयी है पर मैं अवश भाव से बाबा के चरणों में पडी रही। कुछ आशंकित होकर सुमेर काका लौट आये थे। बाबा उनसे ही कुछ कह रहे थे— जाओ भोलानाथ, माँ की सेवा करने आये हो न? देखो कैसी हो गयी है? उठा दूँ?' सुमेर काका अभिभूत-से कह रहे थे—'बाबा बचा लो इसको, मुझसे कोई अपराध हुआ हो तो मुझे दण्ड दो यह बेचारी दुखियारी बालिका है। इस पर दया करो। बाबा ने कहा, 'तुम्हारी बिटिया है मेरी मा?' सुमेर काका ने कहा ऐसा ही समझो बाबा, औरस पुत्री तो नहीं है पर उससे भी बढ़कर है। बाबा ने हँसते हुए कहा, 'नानाजी अभी जाओ, माँ-बेटे को रहने दो यहीं। तुम्हारी बिटिया स्वस्थ हो रही है। जाओ, मैं मा के दुलार में तुम्हें हिस्सा नहीं लेने दूँगा। जाओ!' सुमेर काका शिथिल गति से लौटते जान पडे। मैं उसी तरह अवसन्न।

'अवसन्न चेतना को मैंने प्रत्यक्ष देखा। मुझसे बाहर खडी हुई थी। उसकी देह धुएँ से काली पड गयी थी। फिर देखा विचित्र दृश्य! मना कहूँ तो विश्वास करेगी? शायद कर लेगी। तेरी दीदी अब विश्वास-योग्य हो गयी जान पडती है। सुन मना, बडा ही अद्भुत दृश्य, बडा ही विचित्र!' फिर मृणालमंजरी की ओर देखकर बोली, 'हाय रे तू तो अभी से घबरा गयी है। घबरायेगी तो नहीं कहूँगी।" मृणालमंजरी का चेहरा फक पड गया था। बाष्परुद्ध कण्ठ से बोली सुनाओ दीदी मैं उत्सुक हूँ।"

चन्द्रा ने प्यार के आवेश में मृणाल का सिर चूम लिया। फिर साश्चर्य

उल्लसित वाणी मे बोली, "हाय रे, यही सुरभि तो थी।" मृणाल ने चकित होकर देखा, चन्द्रा की आखें डबडबा आयी है। उसने दुलरावने स्वर मे कहा, 'कोई दुखद प्रसग हो तो आज रहने दो दीदी!"

"नही मेरी प्यारी मैना, तुझे सुनना चाहिए।"

"देखा, एक सरोवर है। देख रही हूँ, लेकिन बाहर नही है, मेरे भीतर ही है। उसम तीन कमल खिले है—दो बडे और एक अविकसित, छोटा सा। उनकी सुगध से मन और प्राण तृप्त हो उठे। चारा ओर प्रसन्न आकाश, शीतल वायु और भीनी भीनी गध।

"बाबा ने फिर कहा, 'उठ महामाया, अभी तृप्ति नही हुई क्या?'

'अतरतर से आवाज आयी—नही, तृप्ति नही हुई। पर मुह से कुछ बोल न सकी। बाबा ने प्यार से सिर पर एक हल्की चपत लगा दी। हाय मैना, कैसे कहूँ, क्या देखा। कह नही पा रही हूँ, पर कहूँगी अवश्य। देखा, आयक गहन अरण्य मे शिला-पट्ट पर लेटा है। केश लटिया गये है, वस्त्र अस्त-व्यस्त हैं। आँखें लाल है। जान पडता था, उसे कई दिनो से नीद नही आयी थी। हाय, क्या देख रही हूँ! वह मृणालमजरी को देखना चाहता है और चन्द्रा ने दोनो के बीच अवरोध खडा कर रखा है। मृणाल को चन्द्रा ने एक गुफा मे धकेल दिया है। वह पाशबद्ध मगी की भाति करुणा कातर नयना से आयक को खोज रही है। आयक चन्द्रा के पैरा पर गिरकर विनय कर रहा है— उसे आने दो चन्द्रा, बहुत-बहुत कष्ट म है!' और निलज्ज क्रूर चन्द्रा हँस रही है। कैसी कातर मुद्रा थी आयक की! ओह!

"फिर क्या देखती हूँ—तीन आदमी बैठे हैं। एक आयक है, दो उसके साथी। उसका एक साथी बडा ही कोमल, बडा ही सुघड दिखायी दे रहा है और दूसरा उतना ही कुरूप उतना ही अनघड। आयक अपने तरुण मित्र से घुल घुलकर बातें कर रहा है, दोनो ही उदास है।

"अचानक देखती हूँ भयकर मार काट, हो हल्ला। नगर आग की लपटा म जल रहा है और आयक अकेला शत्रु व्यूह म कूद पडा है। उसकी भुजाएँ विद्युत गति से सक्रिय ह। वह जिधर जाता है उधर ही भगदड मच जाती है। शत्रु सना मे घिरा आर्यक ऐसा लग रहा है जैस मदमत्त गजराजा के यूथ म सिह किशोर पहुँच गया हो। दर तक मार-काट चलती रहती है। मरी छाती लोहार की भाथी के समान धौंक रही है। एक बार एसा लगा कि दुर्दान्त शत्रुओ न उसे दबोच लिया है। मैं एकदम नीद से उठकर शत्रु व्यूह म कूद पडी। [illegible] बोली, कोई चिन्ता नही प्यार, चन्द्रा आ गयी है।' [illegible] मे [illegible] म आवाज [illegible] निकली— चन्द्रा आ गयी आयक [illegible] । क [illegible] दिया। क्या देखती हूँ कि फिर वही मर [illegible] म [illegible] मक

उसम प्रवश कर रहा है वहाँ आते [illegible]

दूसरी ओर तू आती है, साथ मे [illegible]

चन्द्रा के हृदय-सरोवर में तीन कमल लहरा रहे हैं। मैं तृप्ति के साथ देखती रही। एक एक लहर पर कमल लहरा उठते हैं।

"बाबा ने फिर कहा, 'उठ पद्मासन, उठ जा!'

"मैं उठकर बैठ गयी, बिल्कुल सहज भाव से, कहीं भी अवसाद या थकान का नाम नहीं। बाबा ने छेड़ा—'यह आयक आर्यक क्या कह रही थी मां! तू गोपाल आर्यक को स्मरण कर रही थी क्या? तू उसकी कौन है? क्या छिपाया था, मां!'

"मैं लजा गयी। बोली, 'कह नहीं सकी थी, आर्य! कैसे कहूँ?'

"बाबा ने प्रसन्नता से कहा 'तू अपने बच्चे की परीक्षा ले रही थी, छलना मयी! तेरा प्यारा विजयी होकर आ रहा है। जा मां तू पतिव्रताओं की मुकुट-मणि है। अपने लिए कुछ बटोरना नहीं, सब कुछ निःशेष भाव से निचोड़कर देती रहना। और वह जो तेरी ललिता सखी है न, उससे कह देना कि वह मनिया का आदर्श बनेगी। जब सुख के दिन आवें तो मुझे भूले नहीं। इस बटे का भी याद रखना, मां। देख मां, तेरी सखी पार्वती के समान पूजनीय है, उसमें शील धर्म और शोभा की त्रिवेणी लहरा रही है। उसके समान पार्वती कल्पा सती का पति कहीं संकट में पड़ सकता है? देख सुदर्शने तेरी भी दो माताएँ तेरी सखी की भी दो माताएँ हैं, तो फिर यह पुत्र क्या वंचित रहे! तू भी मेरी मां वह भी मेरी मां! ललिता मां से कह देना कि जब वह या तू याद करेगी तो तुम दोनों का यह बूढ़ा बच्चा स्वयं आ जायगा।'"

मृणालमंजरी की आंखों से दर विगलित अश्रुधार वह चली। वह चन्द्रा से लिपट गयी।

उन्नीस

आर्यक, माढव्य और चन्द्रमौलि को छोड़कर चुपचाप खिसक आया। उसे अपने पहचान लिये जाने से कष्ट हुआ। उज्जयिनी में उसकी कीर्ति और अपकीर्ति दोनों पहले ही पहुँच चुकी थी। दो तीन दिनों तक वह निरुद्देश्य भटकता रहा। उसके आजानुबाहु मोहन रूप को देखकर लोग ठगे से खड़े रह जाते थे। उत्सुकतावश वे उसके पास आकर पूछते भी थे कि वह कौन है। उसका उत्तर स्पष्ट नहीं होता था। लोगों में कानाफूसी चलने लगती थी। उन समय वहां किंवदन्तियों की बाढ़ आयी हुई थी। लोग उसके भव्य रूप को देखकर कहने लगे कि हो-न-हो यह

गोपाल आर्यक ही है। आर्यक समझने लगा कि लोग क्या समझ रहे हैं। वह पछता रहा था कि यहाँ आया ही क्या। उसे अब उज्जयिनी से हट जाना चाहिए। वह नगर के सबसे अन्त में स्थित उजाड़ बगीचा में छिपने का प्रयत्न करता। एक दिन तो वह निराहार ही रह गया। दूसरे दिन एक अन्न सत्र में प्रसाद पाया। पर उससे उसके बारे में चर्चा बढ़ती ही गयी। उसे लगा कि देर तक वह छिपकर रह नहीं सकेगा। वह इधर आया था मित्रों की रक्षा करने, पर स्वयं अरक्षित हो गया। मन ही मन उसने निश्चय कर लिया कि महाकाल के दर्शन करने के बाद वह खिसक जायगा। उज्जयिनी आये हो तो महाकाल के दर्शन तो कर ही लेने चाहिए।

वह क्षिप्रा में स्नान करके महाकाल के मन्दिर में गया। प्रणिपात करके प्रदक्षिणा की और बाहर आकर वहाँ थोड़ी देर रुक गया। उसका मन फिर ज्योतिर्लिंग की ओर गया। पुनः दर्शन और प्रणिपात तथा प्रदक्षिणा करके बाहर आया। मगर आगे नहीं बढ़ सका। ऐसा लगा कि रस्सी से बाँधकर उसके मन को मन्दिर के भीतर कोई खींच रहा है। विवश सा वह फिर भीतर गया, फिर बाहर आया, फिर गया फिर बाहर आया। इस प्रकार वह लगातार सात बार भीतर गया और बाहर आया। कुछ खींच रहा है, कोई अदृश्य आकर्षण रज्जु। हर बार वह यह सोचकर निकलता था कि अबकी बार वह बाहर चला जायगा, उज्जयिनी छोड़ देगा, पर हर बार बाहर आने पर वह खिंचाव का अनुभव करता था। वह कुछ समझ नहीं पा रहा था कि उसे हो क्या गया है। यह क्या कोई अभिचार है जो उसे बार बार अपने मन का नहीं करने दे रहा है? वह थोड़ी देर के लिए स्थिर खड़ा हो गया। उसने दृढ़ संकल्प किया कि वह अब नहीं रुकेगा। सारे अभिचार का अस्वीकार करने का दृढ़ संकल्प लेकर वह मन्दिर के द्वार से घाट की ओर रवाना हुआ। उसे लगा कि कोई पीछे पीछे आ रहा है। पीछे मुड़कर देखा, कहीं कोई नहीं है। यह क्या रहस्य है? वह क्षण भर के लिए चकराया। फिर तलवार की मूठ कसकर पकड़ी और सावधान होकर आगे बढ़ा। संकल्प की दृढ़ता का अच्छा फल मिला। जान पड़ा कि उसके मन पर से एक भारी बोझ हट गया है। उसने बिना पीछे मुड़े महाकाल को प्रणाम किया—खींच रहे हो देवाधिदेव, पर मैं रुक नहीं सकता। मैं उज्जयिनी छोड़ देने का संकल्प कर चुका हूँ। मेरा चित्त उत्क्षिप्त है। तुम्हारी सेवा में मन और प्राण नहीं ढाल सकूँगा। तुम्हीं ने यह दुर्बलता दी है, जैसी भी है जो भी है तुम्हारी दी हुई है, आर्यक विवश है! मेरा मन एक ओर भाग रहा है, प्राण दूसरी ओर खींच रहा है, मैं अपने आप द्विधा विभक्त हो गया हूँ। मुझे कहीं शान्ति नहीं मिल रही है। तुम्हारे चरणों में अपने आपको निचोड़कर निःशेष रूप से ढरका सकूँ, ऐसा साहस नहीं बटोर पा रहा हूँ। क्षमा करो अन्तर्यामिन, इस तामस काया से कुछ भी सधनेवाला नहीं है! जी रहा हूँ, क्योंकि तुम मृत्यु को भेज नहीं रहे हो, चल रहा हूँ, क्योंकि तुमने वासनाओं के भँवर को गतिशील बना दिया है। क्षमा करना देवाधिदेव, आर्यक वशी नहीं बन पाया है, वह विवश है, परवश है, अवश है!

परन्तु उसे फिर लौटना पडा। तलवार की मूठ पर कसी हुई मुटठी और भी कस गयी, पर शरीर विवश-भाव से फिर से मन्दिर की ओर खिंच गया जैसे किसी ने मुहज़ोर घोडे को लगाम खींचकर लौटा लिया हो। वह मन्दिर द्वार पर फिर आकर खडा हो गया। सकल्प शक्ति की दढता का अभिमान टूक टूक हो गया। देवाधिदेव के प्रति किया गया मानसिक विनिवेदन भोडा उपहास बनकर रह गया। कैसी माया है प्रभो! क्या कराना चाहते हो इस अभाजन स? यह कैसा मोहमय आकपण है? भागना भी अपने हाथ म नही है? नही वह अब मन्दिर मे नही जायगा। वह देर तक द्वार पर खडा रहा। उसकी दष्टि दूर चबूतरे पर बठी एक दिव्य द्युतिवाली सन्यासिनी की ओर गयी। वह एकटक उसी ओर देख रही थी, मानो दर स इस प्रतीक्षा मे हो कि वह उसकी ओर देखे। प्रथम दष्टि मे आयक ने केवल उसकी एक ऊपरी छाया ही देखी। फिर उसका रूप निखरने लगा। आयक न दखा, वह ज्योतिष्मती है जैसे किसी निपुण कलाकार ने सुवण प्रभा से ही उसे बनाया हो। आयक उसकी ओर बढा अनिच्छापूवक। निकट पहुँचकर उसके आश्चर्य का ठिकाना नही रहा। उसकी ज्योति निरन्तर बढती ही जा रही थी। सारे मुख मण्डल को घेरकर एक अपूव प्रभा मण्डल स्पष्ट झलक रहा था। ललाट इतना उज्ज्वल था कि सोने के दपण का भ्रम होता था। उसके परिधान म एक हल्के लाल रग का कौशेय वस्त्र था—शरत्कालीन प्रभात की प्रथम किरणो के समान चमकीला। उसके मुह से अचानक अपन मित्र चन्द्रमौलि की कविता की एक पक्ति बरबस निकल गयी—'वास वसाना तरुणाकरागम!' तरुण सूय की लालिमावाला वस्त्र! पर वह हिल डुल नही रही थी, एकटक उसी की ओर निर्निमेष नयना से देखे जा रही थी। मूर्त्ति है क्या? ध्यान स देखने पर आयक को लगा कि देह तो पतली कनक-छरी सी थी, पर कान्ति स भरी भरी लग रही थी। कान्ति का भराव ऐसा था कि अष्टमी के चन्द्रमा के समान प्रशस्त ललाट पर पडे हुए चेचक के दाग दूर से एकदम नही दिखायी दे रह थे।

आयक ने निकट आकर उस दिव्य नारी मूर्त्ति को देखा। प्रौढवय म भी उस रूप म एक विचित्र प्रकार की कसावट थी। आखो म करुण मातत्व लहरा रहा था। केश भ्रमरावली के समान घुघराले थे मगर बीच बीच म एकाध रजत शलाका की भाँति श्वेत भी हो गये थे। अधर पुट मुरझाय पाटल के समान सूखकर भी चमक रहे थे। युवावस्था म निश्चय ही वह सुन्दरियो की मुकुट मणि रही होगी। आयक न निकट आकर श्रद्धा सहित प्रणाम किया। देवी का दाहिना करतल ऊपर की ओर उठा, प्रफुल्ल कमल की एक वलयित लहरदार रेखा-सी खिच गयी। आयक ने इस आशीर्वाद म कृतकृत्य भाव का अनुभव किया। सन्यासिनी क अधरो पर मन्द मुस्कान खेल गयी "रोक रहे हैं तो क्या नही रुक जात बेटा! इनकी माया काटकर कहाँ भागोग? दर से देख रही हूँ भागना चाहत हो भाग नही पा रह हो। देखो ना पाँच बरस स भागकर जाना चाहती हूँ। जाने दें तब तो। जो य चाहत हैं वही होना चाहिए। दूसरा क्या चाहता है, इमस इन्ह कोईमतलब नही। अपनी दोनों

कि उसे लहुरा वीर के धाम म जाना चाहिए था। यहाँ आकर उसने क्या कोई दोष किया है ? सन्यासिनी ने आयक के मन की बात मानो ताड ली। बोली, "दोष नही है बेटा, दोष क्या है ? वासुदेव और महादेव कोई भिन्न देवता थोडे ही है ? एक ही हैं। नाम रूप तो उपासक के भाव है। उपासक के भाव ही तो उपास्य का नाम और रूप देते है। मैं यह रही थी कि तुम अपना 'स्व भाव' नही जानते। स्व-भाव को न जानने का नाम ही भटकना है। तुम्हे मैं पहचान गयी हूँ। और कई लोग भी पहचान गये हैं। यह दिव्य तेज, यह आजानुलम्बित बाहु यह कपाट सा वक्ष ये वृषभतुल्य स्कन्ध और यह मत्त गजराज की गति तुम्हे लाखो मे एक बना देती है। विधाता ने महाभूत समाधि धारण करके यह मोहक रूप बनाया था। कैसे छिप सकोगे मेरे लाल ! कहो तो नाम बता दूँ ! पर बताऊँगी नही। सुनो बेटा, मैं भी बहुत भटकी हूँ। अब भी क्या कम भटक रही हूँ ? मथुरा गयी, श्रीकृष्ण के दरबार मे। बाप-रे-बाप, केवल लेना जानता है। राग विराग, मान-अभिमान शरीर मन सबको खीच लेता है। पूर्ण समर्पण मागता है, ज़रा भी रियायत नही। कृष्ण है न !—खीचनेवाला ! प्रिया बनो, सखी बनो मनावन करती रहो। बीस बरस रही बेटा। सब दे दिया, पर उसका अभी सन्देह नही गया। कहता है, अभी बहुत छिपाके रखा है, उलीच दो। झगडा कर बाप के घर चली आयी हूँ। अवढरदानी बाप—महादेव। केवल देता है, देता है दिये ही जाता है ! मा नाराज़ होती हैं तो यह बेटी ही तो मनाती है। मगर कैसा दातत्व है ! उधर वह लुटेरा चैन से नही रहने देता। चली आओ, जल्दी आओ। मेरा मन भी व्याकुल हो जाता है। इधर पिता है कि कहते है, थोडा रुक जा बिटिया अभी और कुछ दूगा। बताओ बेटा, कहाँ अपना स्व भाव जान पायी हूँ। दाता हूँ कि ग्रहीता ? प्रिया हूँ कि पुत्री ? नही बेटा, यहाँ आने मे कोई दोष थोडे ही है। क्या आये हो पता है ? मेरे लिए। अवढरदानी भोलानाथ मन की वासना जानते भी है, निर्बाध भाव स दे भी देते है। मेरी आखें जुडा गयी।"

आयक हैरान ! क्या सुन रहा है ? उसे कुछ ठीक समझ मे नही आ रहा है पर लग अच्छा रहा है। वह एकटक माता सन्यासिनी को देख रहा है—निर्निमेष, अवाक !

अपने को सम्हालने का प्रयत्न करते हुए उसने कहा, "धृष्टता क्षमा हो मात ! दो नही, तीन भाव आप मे स्पष्ट देख रहा हूँ। दो को तो आपने स्वय बता दिया है। तीसरा मात भाव है। मुझे आपकी वाणी मे इस अभाजन के प्रति वात्सल्य-गदगद भाव दिखायी देता है। पर माता, ये तीनो भाव तो हर नारी म स्वभावत विद्यमान होते है। इनम परस्पर कोई विरोध तो होता नही। क्यो माता, पुत्री भाव प्रिया भाव और मातभाव क्या हर नारी मे सदा विद्यमान नही रहते—एक ही साथ ? सब मिलकर क्या 'स्व भाव नही कहला सकते ?"

"नही मेरे लाल, ये तीनो भाव नारी की विवशता हैं। जो विग्रह (शरीर) विधाता की ओर से उसे मिला है, उसकी विवशता है कि वह तीनो म रमे।

उस पर रीझ गया। बेचारा इन दिनों विपन्न है, पर पुराना रईस है। कला के धनी में एक कमजोरी युग युग से चली आयी है। जो उसकी कला का सहृदय मर्मज्ञ होता है उस पर वह अपने को निछावर कर देता है। और यदि संयोग से गुणी और गुणज्ञ में एक पक्ष पुरुष और दूसरा नारी हो तो यह बात सीमा तोड देती है। यदि दोनों युवा हों तो यह रीझ उत्कट प्रेम का रूप ग्रहण करती है। यही हुआ। चारुदत्त और वसन्तसेना एक-दूसरे की ओर बुरी तरह आकृष्ट हुए। वसन्तसेना का काल्पनिक स्वामिनी भाव अब यथार्थ हो उठा। उसे मन के अनुकूल ऐसा साथी मिला, जिस पर वह पूरा अधिकार पा सकती थी। वह अधिकार पाने के लिए उन्मादिनी हो उठी। कठिनाई यह थी कि चारुदत्त के समान शीलवान् सत्पुरुष के लिए यह उन्मादक प्रेम धर्मसंकट बन गया। उसकी सती साध्वी पत्नी है धूता। आहा! कैसा दिव्य रूप है, कैसा शील और व्रत! जो देखेगा वही उसके चरणों पर सिर रख देने को ललक उठेगा। ऐसी साध्वी पत्नी को वह कैसे दुखी कर सकता था? पर मनोभव देवता है कि समय-असमय का विचार किये बिना दमादम फूलों के बाणों से बेधते रहते हैं। चारुदत्त और वसन्तसेना दोनों बिंध बिंधकर जर्जर हो गये।

"चारुदत्त से नहीं मिले बेटा? मिलने योग्य है। यही तुम्हारी ही तरह का है, अवस्था में शायद तुमसे महीना दो महीना बड़ा हो। अद्भुत सहृदय है! क्या शील है, कैसी शालीनता है, और रूप की तो पूछो मत! तुम्हें देखती हूँ तो उसकी याद आती है। अन्तर केवल इतना ही है कि तुम स्वभावतः उदात्त हो, वह ललित है—पुराने लोग ऐसों को, जो 'धी' या अन्तःकरण से ही उदात्त होते हैं, 'धीरोदात्त' कहते थे और जो अन्तःकरण से ही ललित हों उन्हें 'धीरललित' कहते थे। इतना अन्तर छोड दो तो तुमको देखा या चारुदत्त को देखा, एक ही बात है! चारुदत्त भी तुम्हारी ही तरह मुझे 'माताजी' कहता है। तुम उससे मिले बिना उज्जयिनी न छोडना, यह माता का आदेश समझना। मिले तो कह देना कि माताजी ने भेजा है।

'वसन्तसेना एक बार मुझे मिल गयी थी, विचित्र संयोग से। यहाँ ऐसा विश्वास है कि महादेव की एक पुत्री थी—मंजुलोमा। कुछ लोग बताते हैं कि उसका रोम रोम सुन्दर होने के कारण उसे यह नाम दिया गया था। दूसरे लोग कहते हैं कि महादेव पार्वती को चिढाने के लिए उसे उनसे भी सुन्दर कहा करते थे इसलिए उसे 'मंजुला उमा' कहते थे। जो भी हो, पार्वती और महादेव ने उसे बडे प्यार से पाला था। पर मानव कन्या थी। विवाह के उपरान्त उसकी विदाई के समय महादेव को बडी दारुण मनोव्यथा हुई। कन्या एक तरफ अपने स्वयंवृत पति के घर जाने को व्याकुल थी तो दूसरी ओर पिता की ममता भी नहीं छोड पाती थी। कहते है, उस मानवी कन्या की मृत्यु हो गयी। होनी ही थी। महादेव ममाहत हुए। रह रहकर उसके वियोग से वे सन्तप्त हो उठते है। उन्होंने एक दिन मन्दिर के अर्चक को स्वप्न दिया कि पुत्री की विदाई का नृत्य देखना चाहते हैं। वसन्तसेना

बुलायी गयी। उस वेचारी ने सदा अपने को स्वामिनी समझकर नृत्य किया था, न पुत्री-भाव का ज्ञान था, न पिता भाव की पहचान। महादेव ने मुझे इंगित किया कि सिखा दो। मैं पहुंची। तुमको शायद पता न हो बेटा, वे जो मथुरावाले हैं मुझे सदा घर में रखना चाहते हैं 'असूर्यम्पश्या' बनाकर। नहीं चाहते कि मुझे कोई देख ले। सदा भीतर रहो, कोई देखने न पावे। बाप रे बाप, क्या विषम ईर्ष्यालु मन है उनका! फिर भी पिता के यहाँ आती हूँ तो चुप हो जाते हैं। मगर पिताजी जिस पर प्रसन्न होते हैं वही मुझे देख सकता है। तुम देख सकते हो, बसन्तसेना ने देख लिया था। उस दिन बम भोलानाथ कुछ मौज में थे। बोले, आज सब देखेंगे। मुझे क्या अभिनय करना था? रोज़ जो करती हूँ वही तो करना था। एक ओर अवढरदानी पिता का मोह, दूसरी ओर सारे अस्तित्व को खींच लेनेवाले निर्मोही प्रेमी का खिंचाव। नाच अच्छा बन गया। नाच समाप्त होते ही मैं एक ओर छिप गयी। बसन्तसेना ने उसे दुहराया। हाय हाय, उसने तो उस नाच को चौगुना चमका दिया। क्या पद-संचार, क्या चारिका, क्या अंगहार, क्या अनुभाव प्रदर्शन—सबमें उसने पंख लगा दिये, विपुल व्योम में उड़ने में समर्थ बनानेवाले पंख। लोग धरती के जड़ आकर्षण से स्वतन्त्र होकर भाव लोक के विस्तीर्ण आकाश में उठ गये। सात्त्विक भावों के अभिनय में तो उसने कमाल कर दिया। उसी दिन पहली बार उसे लगा कि उसके समस्त बाह्य आवरणों के नीचे पुत्री-भाव का अविराम स्रोत बह रहा है। वही उसकी सार्थकता है। मुझे उसने देखा। अपनी रामकहानी सुनायी। मैं समझ नहीं पायी कि उसकी क्या सहायता करूँ, कैसे करूँ! फिर चारुदत्त से मिली, धूता से भी मिली। सोचती रही कि क्या इस समस्या का कोई समाधान है? क्या समाधान हो सकता था इसका? स्त्री को भगवान् ने जो काया दी है, वह मोह और आसक्तियों का अड्डा है, ईर्ष्या और अभिमान का घर है। साधारणतः लोग यही समझते हैं कि एक म्यान में दो तलवारें भले ही रह लें, एक प्रेमिक की दो प्रेमिकाएं नहीं रह सकतीं। ऐसी विषम अवस्था में क्या किया जाता! मैंने धूता को निकट से देखा। नख से शिख तक वह माँ है। पति को भी उसी जतन और स्नेह से प्रसन्न रखती है। एक दिन डरते डरते मैंने बताया कि चारुदत्त बसन्तसेना को चाहता है। विश्वास करोगे बेटा, उस ममतामयी महीयसी बाला ने पति को प्रसन्न रखने के लिए क्या किया? स्वयं बसन्तसेना को बुलवाया और लाड़ प्यार से उसे वश में कर लिया। उधर बसन्तसेना को पुत्री भाव रस मिल चुका था। और चाहिए क्या? पुत्री भाव से व्याकुला को मात भावमयी मिल गयी—दोउ बानक बने!

"तुम आय चारुदत्त के घर जाओगे तो देखोगे, दोनों कैसी घुल मिल गयी हैं। चारुदत्त अब परम सुखी है। जाओ बेटा, वे भी तुम्हारी राह देख रहे होंगे। जाओ। उनकी समस्या सुलझ गयी है। तुम्हारी भी सुलझ जायेगी। सुलझ गयी है मेरे लाल! जाओ, इस माँ को भूलना मत। मैं देर तक नहीं रह सकती यहाँ। मेरे प्यारे लाल, जाओ!" कहकर माताजी एक झटके में उठ गयीं। आर्यक ने चिल्ला कर कहा, "मां, रुको, रुको! एक बात बताती जाओ!"

पर माताजी गयी सो गयी। आयक चारा ओर खोजता फिरा। पर वे तो चली ही गयी।

बोस

माता सयासिनी ! गोपाल आयक विस्मित है, हतबुद्धि है। वह किसी तपोनिष्ठा मानवी की बातें सुन रहा था या अपार्थिव दिव्यात्मा की ! कैसी वेधक दृष्टि थी कैसी अदभुत दीप्ति ! शिव की पुत्री श्रीकृष्ण की प्रिया, स्वय स्व भाव ज्ञान म सशयशील, पर स्व-भाव ज्ञान को सब समस्याआ के समाधान की कुजी मानने वाली। शिव की पुत्री मानवी मजुलोमा के अभिनयपरक नृत्य की एकमात्र जान कार ! कहीं तो ऐसी कथा नही सुनी ! अचानक मृणालमजरी की माता हलद्वीप की नगरश्री अपनी सास मजुलादेवी का उसे ध्यान आया। बहुत छुटपन म उन्हें देखा था, भरोसे योग्य कुछ याद नही आया, पर दीप्ति, कान्ति पूण अनुभाव लहरी याद है। वही तो नही है ? आयक के सोचने विचारने की शक्ति शिथिल होती जा रही है। सारा शरीर रोमाच-कटकित है। किसने उसे इतने प्यार से माता का आदेश दिया ? आदेश तो आदेश है। वह चारुदत्त के निवास स्थान की ओर चल पडा। तुम साक्षी हो महाकाल, तुम्हारी पुत्री के आदेश का पालन कर रहा हूँ।

चारुदत्त द्वार पर ही मिल गये। उनके पीछे उनकी पत्नी धूता खडी थी। यद्यपि उनका मुख मण्डल अवगुण्ठन से अधिकाश ढका हुआ था, तो भी उन महीन वस्त्रा के अवगुण्ठन को भेदकर शामक प्रकाश की किरणें सी निकल रही थी— माना शरत्पूर्णिमा के चन्द्रमा से मेघा के झीने पटल को विदीर्ण करके कोमल मरीचि माला निकल रही हो। बिना किसी के परिचय कराये ही आयक ने दोना को पहचान लिया। उसने अपना नाम बताकर दोना को आदरपूर्वक प्रणाम निवेदन किया। चारुदत्त सचमुच सुपुरुष थे। उनम विशेष प्रकार की स्निग्ध आभा दिखायी देती थी। वाणी मे अनायास सिद्ध सहज वचन रचना की सुगन्ध थी। सारा शरीर सुनिपुण कलाकार द्वारा गठित मनोहर प्रतिमा-सा कमनीय लग रहा था। जिस तत्परता से उन्हाने गोपाल आयक का स्वागत किया, वह विस्मयकारक थी। ऐसा जान पडा जैसे वे उस दीर्घ काल से अपने परम प्रिय सम्बन्धी के रूप म जानते हैं। अत्यन्त मदु विनीत वाणी म बोले प्रिय बन्धु हम लोग कब स आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। य मेरी सहधर्मिणी धूतादेवी है। आपका स्नान के लिए कर

से व्याकुल है।" आयक का मस्तक श्रद्धा से झुक गया। जी मे आया, उनके चरणो की धूल सिर पर धारण कर ले। चित्त के अत्यन्त गम्भीर तल स कोई कह रहा था—गिर जा आयक, इन पवित्र चरणो म। मृणाल के प्रति किय गये तेरे अयथाचार का प्रायश्चित्त यही है। यही तेरे मन और प्राण पवित्र होग।' पर वह चरण स्पश नही कर सका। अपने ही भीतर विद्यमान कलुष उसके इस प्रायश्चित्त मे भी बाधक हो गया। वह जडवत स्थिर रह गया। दोनो हाथ जोडकर केवल मौन प्रणाम निवेदन कर सका। धूतादेवी ने भी मौन आशीवाद दिया। उनकी स्निग्ध आखो की शामक मरीचिया अवगुण्ठन भेद करके उसके माथे पर बरस पडी। आयक मानो कृतकृत्य हो गया। पर उसके अन्तर्यामी ने यह बात उससे छिपा नही रखी कि दोनो ओर अवगुण्ठन है—उसकी ओर से आन्तरिक, देवी की ओर से बाह्य। थोडी देर तीनो चुपचाप खडे रहे, जैसे अन्तरतर की अज्ञात ऊर्मियो से जझती हुई बाह्य चेष्टाएँ निष्क्रिय हो गयी हो।

आय चारुदत्त ने ही स्निग्ध मधुर वाणी मे कहा, "बन्धु, बडे सकट-काल म उपस्थित हुए हो। माताजी ने कहा था कि तुम ठीक समय पर आ जाओगे। उन्ही की आज्ञा से हम तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। उन्ही की आज्ञा से यह बहली भी बिल्कुल तैयार है। हम लोगो को एक अज्ञात स्थान मे जाना है। मैं, धूतादेवी और तुम, साथ म तुम्हारा बालक रोहसेन। कुल चार आदमियो को वहा जाना है। देर हो रही है। आओ बैठें।"

चारुदत्त और धूता चल पडे। यन्त्र-चालित की भाति आयक भी पीछे पीछे चला। कुछ पूछना आवश्यक नही था। गाडी म पहले से ही रोहसेन बैठा था। तीनो बैठ गये। पर्दा गिरा दिया गया। गाडी चल पडी। बालक रोहसेन अँधेरे म पहले पिता की गोद मे गया, फिर माता की। वह भी जोर से नही बोल रहा था। माता से धीरे धीरे पूछा, "ये कौन है माँ ?" इशारा आयक की ओर था। माँ न फुसफुसाकर कहा, "तेरे काकाजी!" बच्चा उठकर आयक की गोद मे बैठ गया। आयक ने प्यार किया और उसके मन म एकाएक क्षोभ आ गया। हाय, वह भी इतना ही बडा हुआ होगा। आय चारुदत्त शान्त स्थिर बैठे रहे जैसे किसी समस्या को मन-ही मन सुलझा रहे हो। गाडी चुपचाप चलती जा रही थी। आयक के मन मे विचारो के तूफान चल रहे थे। धूता ने बहुत धीरे-से फुसफुसाकर आयक से कहा 'देवर तुम्हारे लिए कुछ कर नही सकी। बडा सकट आ गया है। इनसे कहो कि गाडी घुमाकर वहिन वसन्तसेना को भी ले लें। न जान क्या विपत्ति आये। बेचारी असहाय है। मेरी दाहिनी आँख फडक रही है।"

चारुदत्त ने सुन लिया। धीरे-से कहा, 'नही, कुछ और व्यवस्था की गयी है।" पर धूता का मुख एकदम मलिन हो गया। आयक को उस म्लान मुख म एक असहाय करुण भाव दिखायी दिया। उसने आग्रह किया कि भाभीजी की बात मान ली जाये। चारुदत्त कुछ असमजस म पड गये। आयक ने अपनी तलवार की ओर इशारा करत हुए कहा, 'चिन्ता क्या है आय, साथ मे तुम्हारा मित्र है। एक बार

पाल मे भी जूझ सकता है।" चारदत्त ने फुसफुसाकर कहा, "उधर संकट की आशंका है मित्र मैं तुम्हे संकट मे नही डालूगा। अभी तो तुमसे कोई बात भी नही हुई। हम लोग इस समय राजभवन के सामने से जा रहे है। मुझे और तुम्हे तुरंत मार डालने का आदेश दिया गया है। माताजी ने कहा था कि तुम लोग जीर्णोद्यान के पास पहले मन्दिर म पहुँच जाना। फिर वसन्तसेना के लिए गाडी भेज दना। माताजी बहुत सोच समझकर कहती है।" आयक भूल गया था कि वह छिपकर कहीं जा रहा है। जरा उत्तेजित स्वर म बोला, 'पालक का राज भवन यही है ? उसे मैं यमलोक भेजूगा। वह क्या मुझे मरवा डालेगा ?' बाहर किसी दण्डधर को सन्देह हो गया। उसने गाडी रोकने का आदेश दिया। चारदत्त और धूता के मुख पर विषाद और भय की काली छाया घनी हो गयी। बाहर दो सैनिक गाडी के सामन खडे हो गये। वे पदा उठाने का प्रयत्न करने लगे। गाडी वान ने भय विजडित वाणी म कहा, 'आय चारदत्त की पत्नी धूतादवी जा रही है मालिक, पर्दा न हटाइये !" एक सैनिक ने उसे अपशब्द कहकर डाँटा, दूसरे ने आगे बढकर चारदत्त को ही गालियाँ दे डाली। आयक के लिए यह सब असह्य हो रहा था, किन्तु चारदत्त के इगित पर वह चुप हो बठा रहा। फिर भी, हाथ तलवार की मूठ पर अपने आप जम गय थे। गाडीवान ने फिर पर्दा छूने का निषेध किया। पर एक सैनिक पदा उठाने पर अड गया। सैनिको मे भी मतभेद दखा गया। कुछ और सनिक आ गये। एक ने कहा, 'दख रे, आय चारुदत्त के परिवार की प्रतिष्ठा और मर्यादा पर आँच नही आनी चाहिए। पर्दा उठायेगा तो तेरा सिर धड पर नही रहगा।' पर्दा उठाने पर तुला हुआ सनिक ताव खा गया। उसने पर्दा उठाने का प्रयत्न करते हुए कहा, 'सिर गिरेगा तेरे बाप का !" दूसरा सैनिक और भी उत्तेजित हा गया। उसने उसकी शिखा पकडकर झटके से खींचा वह राजमाग पर लुढक गया। आयक फिर कसमसाया। चारुदत्त ने फिर रोक दिया। अब सडक पर सैनिको की भीड इकट्ठा हो गयी। तरह तरह की बातें सुनायी देने लगी।

भीतर चारुदत्त हाथ जोडकर किसी अदृश्य देवता से सहायता की प्राथना करते रहे और आयक क्रोध और अमष की अपनी आग से आप ही जलता रहा।

इसी समय कुछ और हलचल हुई। जान पडा जैसे एक साथ कई शख और पटह बजने लगे हा। चारदत्त और भी शकित हो गये। धीरे से बोले, 'जान पडता है, राजा की सवारी आ रही है। हे भगवान, अब क्या हागा !" आयक ने फिर उन्हे अपनी तलवार की ओर देखने का इगित किया, पर चारदत्त व्याकुल ही बने रहे। गोपाल आयक ने धूता की ओर देखा ही नही था। रोहसेन भय के मारे माँ की गोदी मे चिपका हुआ था और धूता का मुह रक्तहीन सफेद हो गया था। उससे अब सहन करना असम्भव हो गया, पर चारुदत्त का हाथ उसी प्रकार उसे मना करने की मुद्रा म जहा का तहा स्थिर हा रहा था। मन्त्र-बल से रुद्धवीय कालसप की तरह वह केवल निष्फल फुफकार मारता रहा—उद्धत फुफकार !

से व्याकुल है।" आयक का मस्तक श्रद्धा से भुक गया। जी मे आया, उनके चरणा की धूल सिर पर धारण कर ले। चित्त के अत्यन्त गम्भीर तल मे कोई कह रहा था—गिर जा आयक, इन पवित्र चरणा मे। मणाल के प्रति किय गय तर अन्यथाचार का प्रायश्चित्त यही है। यही तेरे मन और प्राण पवित्र होग।' पर वह चरण स्पश नही कर सका। अपने ही भीतर विद्यमान कलुप उसके इस प्रायश्चित मे भी बाधक हो गया। वह जडवत् स्थिर रह गया। दोना हाथ जोडकर केवल मौन प्रणाम निवेदन कर सका। धूतादेवी ने भी मौन आशीर्वाद दिया। उनकी स्निग्ध आखो की शामक मरीचियाँ अवगुण्ठन भेद करके उसके माथे पर बरस पडी। आयक मानो कृतकृत्य हो गया। पर उसके अन्तर्यामी ने यह बात उससे छिपा नही रखी कि दोनो ओर अवगुण्ठन है—उसकी ओर से आन्तरिक, देवी की ओर से बाह्य। थाडी देर तीना चुपचाप खडे रह, जैसे अन्तरतर की अज्ञात ऊर्मिया से जझती हुई बाह्य चेष्टाएँ निष्क्रिय हो गयी हो।

आय चारुदत्त ने ही स्निग्ध-मधुर वाणी मे कहा, "बन्धु बडे सकट-काल मे उपस्थित हुए हो। माताजी ने कहा था कि तुम ठीक समय पर आ जाओगे। उन्ही की आज्ञा से हम तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। उन्ही की आज्ञा से यह बहली भी बिल्कुल तैयार है। हम लोगो को एक अज्ञात स्थान मे जाना है। मैं, धूतादेवी और तुम, साथ म तुम्हारा बालक रोहसेन। कुल चार आदमिया को वहा जाना है। देर हो रही है। आओ बैठें।"

चारुदत्त और धूता चल पडे। यन्त्र-चालित की भाँति आयक भी पीछे पीछे चला। कुछ पूछना आवश्यक नही था। गाडी मे पहले से ही रोहसेन बठा था। तीनो बैठ गये। पर्दा गिरा दिया गया। गाडी चल पडी। बालक रोहसेन अँधेरे म पहले पिता की गोद मे गया, फिर माता की। वह भी जोर मे नही बोल रहा था। माता से धीरे धीरे पूछा, "ये कौन है मा?" इशारा आयक की ओर था। मा ने फुसफुसाकर कहा, "तेरे काकाजी!" बच्चा उठकर आयक की गोद म बठ गया। आयक ने प्यार किया और उसके मन मे एकाएक शोभन आ गया। हाय, वह भी इतना ही बडा हुआ होगा। आय चारुदत्त शान्त स्थिर बैठे रहे जैसे किसी समस्या को मन ही मन सुलझा रहे हा। गाडी चुपचाप चलती जा रही थी। आयक के मन मे विचारो के तूफान चल रहे थे। धूता ने बहुत धीरे-मे फुसफुसाकर आयक स कहा, "देवर, तुम्हारे लिए कुछ कर नही सकी। बडा सकट आ गया है। इनसे कहो कि गाडी घुमाकर बहिन वसन्तसेना को भी ले लें। न जाने क्या विपत्ति आये। बेचारी असहाय है। मेरी दाहिनी आँख फडक रही है।'

चारुदत्त ने सुन लिया। धीरे-से कहा, "नही, कुछ और व्यवस्था की गयी है।" पर धूता का मुख एकदम मलिन हो गया। आयक को उस म्लान मुख मे एक असहाय करुण भाव दिखायी दिया। उसने आग्रह किया कि भाभीजी की बात मान ली जाय। चारुदत्त कुछ असमजस म पड गये। आयक ने अपनी तलवार की ओर इशारा करते हुए कहा, चिन्ता क्या है आय, साथ म तुम्हारा मित्र है। एक

काल से भी जूझ सकता है।" चारुदत्त ने फुसफुसाकर कहा, "उधर सकट की आशका है मित्र, मैं तुम्हे सकट मे नही टालूगा। अभी तो तुमसे कोई बात भी नही हुई। हम लोग इस समय राजभवन के सामने से जा रहे है। मुझे और तुम्ह तुरत मार डालने का आदेश दिया गया है। माताजी ने कहा था कि तुम लोग जीर्णोद्यान के पास पहले मदिर म पहुँच जाना। फिर वसतसेना के लिए गाडी भेज दना। माताजी बहुत सोच समझकर कहती ह।" आयक भूल गया था कि वह छिपकर कही जा रहा है। जरा उत्तेजित स्वर मे बोला "पालक का राजभवन यही है ? उसे मैं यमलोक भेजूगा। वह क्या मुझे मरवा डालेगा ?" बाहर किसी दण्डधर को सदेह हो गया। उसने गाडी रोकने का आदेश दिया। चारुदत्त और धूता के मुख पर विषाद और भय की काली छाया घनी हो गयी। बाहर दो सैनिक गाडी के सामन खडे हो गये। वे पदा उठाने का प्रयत्न करने लगे। गाडीवान ने भय विजडित वाणी मे कहा, "आय चारुदत्त की पत्नी धूतादेवी जा रही है मालिक, पर्दा न हटाइये!" एक सैनिक ने उसे अपशब्द कहकर डाँटा, दूसरे न आगे बढकर चारुदत्त को ही गालिया दे डाली। आयक के लिए यह सब असह्य हो रहा था, किन्तु चारुदत्त के इगित पर वह चुप हो बैठा रहा। फिर भी, हाथ तलवार की मूठ पर अपने-आप जम गये थे। गाडीवान ने फिर पर्दा छूने का निषेध किया। पर एक सैनिक पर्दा उठाने पर अड गया। सैनिको मे भी मतभेद देखा गया। कुछ और सैनिक आ गये। एक ने कहा, 'देख रे, आय चारुदत्त के परिवार की प्रतिष्ठा और मयादा पर आँच नही आनी चाहिए। पर्दा उठायेगा तो तेरा सिर धड पर नही रहगा।" पर्दा उठान पर तुला हुआ सैनिक ताव खा गया। उसने पर्दा उठाने का प्रयत्न करते हुए कहा, "सिर गिरेगा तेरे बाप का!" दूसरा सैनिक और भी उत्तेजित हो गया। उसने उसकी शिखा पकडकर झटके से खीचा, वह राजमाग पर लुढक गया। आयक फिर कसमसाया। चारुदत्त ने फिर रोक दिया। अब सडक पर सैनिको की भीड इकट्ठा हो गयी। तरह-तरह की बातें सुनायी देने लगी।

भीतर चारुदत्त हाथ जोडकर किसी अदृश्य देवता से सहायता की प्राथना करते रहे और आयक क्रोध और अमष की अपनी आग से आप ही जलता रहा।

इसी समय कुछ और हलचल हुई। जान पडा जैसे एक साथ कई शख और पटह बजने लगे हो। चारुदत्त और भी शकित हो गय। धीरे-से बोले, "जान पडता है, राजा की सवारी आ रही है। हे भगवान् अब क्या होगा!" आयक ने फिर उन्हे अपनी तलवार की ओर देखने का इगित किया, पर चारुदत्त व्याकुल ही बने रहे। गोपाल आयक ने धूता की ओर देखा ही नही था। रोहसेन भय के मारे माँ की गोदी मे चिपका हुआ था और धूता का मुह रक्तहीन सफेद हो गया था। उससे अब सहन करना असम्भव हो गया, पर चारुदत्त का हाथ उसी प्रकार उसे मना करने की मुद्रा म जहा-का-तहाँ स्थिर हो रहा था। मत्र-बल मे रुद्धवीय कालसप की तरह वह केवल निष्फल फुफकार मारता रहा—उद्धत फुफकार!

बाहर राजाधिराज पालक की जय जयकार हुई। सैनिक सयत होकर खडे हो गय। आठ घोडा से सजे हुए रथ की घण्टिया टन टन करती हुई बहली के पास आकर एकाएक रुक गयी। रथ के भीतर से खरखराहट भरे गम्भीर स्वर मे पूछा गया क्या बात है ?" एक सैनिक न आगे बढकर जुहार किया और बोला, 'धमावतार, सैनिका को सन्देह है कि इस बहली मे पुरुष बैठे है। गाडीवान कह रहा है कि इसमे चारुदत्त की सहधर्मिणी धूतादेवी हैं। वे पदा उठाकर तलाशा लेना चाहते है।" गुरु गम्भीर स्वर मे आदेश हुआ, 'तलाशी ले लो। शत्रु की गाडी है। अगर धूता भी बैठी हो तो कारागार मे डाल दो।" एक क्षण का समय मिला। धूता का चेहरा और भी सफेद हो गया। सनिको ने पदा उठा दिया। बिना किसी झिझक के आयक नगी तलवार लेकर बाहर कूद पडा। एक क्षण म जैसे बिजली चमककर समूच अधकार को चीर डालती है उसी प्रकार उस नगी तलवार की लपलपाती दीप्ति से सैनिका की भीड चिर गयी। "सावधान ! धूता देवी की छाया छूनेवाले यमलोक जायेंगे।" बाहर आते ही उसने पहला वार पदा उठानेवाले सैनिक पर किया। वह धरती पर लोट गया। पास खडे सनिक भर भराकर पीछे हट गये। आयक ने देखा, सामने आठ घोडावाला सोने का रथ है। उसम राजा बैठा है। उसके इद गिद सैनिका के झुण्ड हैं। जब तक आवाज आयी — पकड लो इसे,' तब तक वह रथ म कूद गया। एक ही वार मे राजा पालक का सिर धड से अलग हो गया। कुछ सैनिक उस पर टूट पडे, परन्तु उसने मूली की तरह उन्ह काट दिया और नगी तलवार हाथ मे लिये रथ के ऊपर चढ गया। चिल्लाकर बोला, "मैं गोपाल आयक हूँ। मेरी सेना मथुरा विजय करके उज्जयिनी की ओर सत्वर आ रही है। पहुँची ही समझो। किसी न इधर आने की धृष्टता की तो अपन राजा के रास्ते जायेगा। जो मेरे साथ रहेगा उसकी पद वद्धि होगी उसे पुरस्कार मिलेगा।" इस घापणा का विचित्र प्रभाव पडा। पालक की अधिकाश सेना भृतक थी—भाडे पर सग्रह की हुई। सैनिका के सामने पुराना राजा मरा पडा था नया पद-वद्धि और पुरस्कार की घोपणा कर रहा था। उधर विशाल वाहिनी जिसके सामने कोई टिक नही पाया था बढी आ रही थी। भृतक सेना पुरस्कार चाहती है, राजा कोई हो, अधिकाश सैनिक जय जयकार करते हुए आयक के पीछे खडे हो गये।

चारुदत्त अब तक गुमसुम बठे थे। अब वह भी गाडी से निकल आये। आवेश जडित कण्ठ मे उन्होने कहा "बोलो महावीर गोपाल आयक की जय !" सैनिको म बहुत ऐसे थे जो चारुदत्त को पहचानत थे। कई सैनिका न आय चारुदत्त का साथ दिया— महावीर गोपाल आयक की जय !' फिर सैनिका के दो दल हो गय। वे आपस मे गुँथ गय। गोपाल आयक रथ से उतरकर अपने पक्ष के सैनिका के आगे आ गया। देखते देखते सैनिको म यह समाचार फैल गया। बिना बुलाय ही आयक की जय जयकार करत हुए सहस्रा नागरिक भी एकत्र हो गये। सूर्य अस्त हो रहा था। गोपाल आयक ने अपने पक्ष के सैनिका को आदेश दिया कि

राजभवन पर अधिकार कर लो और स्वय नगी तलवार लेकर धूतादेवी के पास खडा हो गया—"भाभी, भाभी, अपने देवर पर विश्वास करो । अत्याचारी राजा यमलोक भेज दिया गया ।" धूता और रोहसेन अध मूर्च्छित-से गाडी म पडे थे । नागरिको की विशाल भीड बार बार धूतादेवी की जय जयकार करने लगी । थोडी ही देर म कुछ राज विरोधी सैनिको ने भवन पर अधिकार कर लिया । नागरिको का एक दल भी उनके साथ राजभवन मे घुस गया । चारो ओर से निश्चिन्त होकर पहर रात गये वे आयक, चारुदत्त और भय-व्याकुल रोहसेन के साथ धूतादेवी को राजभवन मे ले गये । बिना विलम्ब उन्होने राजसिंहासन पर आयक को बठा दिया । आय चारुदत्त ने उसे राज-टीका दी । अभी तक सब कुछ अव्यवस्थित रूप मे हुआ था । अब गोपाल आयक ने आदेश दिया कि नगर म घोषणा करा दो कि 'पालक मारा गया है और गोपाल आयक ने तब तक व्यवस्था सम्हालने के लिए राजपद ग्रहण किया है जब तक पाटलिपुत्र के महान सम्राट का कोई आदेश नही आ जाता । गोपाल आयक उस सम्राट का सैनिक अधिकारी मात्र है । उसने और भी आदेश दिया कि राजभवन की किसी महिला का कोई असम्मान न होने पाय और नगर मे जो भी दुखी और सताया हुआ हो, वह अब से अपने को आयक के शस्त्र द्वारा रक्षित समझे । कही कोई कष्ट न पाये, भूखा न रहे, अत्याचारित न हो ।'

आदेश तो निकल गया पर उसे नगर मे घोषित करना सम्भव नही हुआ । कानो कान यह बात तो फैल गयी कि पालक मारा गया है और आयक ने राज गद्दी पर अधिकार कर लिया है, पर सौ मुह सौ बातें फलने लगी । किसी ने कहा, 'चारुदत्त और वसन्तसेना को मार डाला गया है । किसी न कहा, 'धूतादेवी को केश खीचकर अपमानित किया गया है ।' पक्की प्रामाणिक बात अस्पष्ट ही बनी रही ।

गोपाल आयक ने अब एक एक सैनिक स पूछताछ की । सब विश्वस्त सनिको की पदमर्यादा वद्धि का आदेश दिया । सबको यथायोग्य पुरस्कार देने का वचन दिया । आय चारुदत्त उसके परम सहायक सिद्ध हुए । नायक कोटि के प्राय सभी सैनिक उनके परिचित थे । उन्हे राजभवन की सुरक्षा के लिए यथास्थान नियुक्त किया गया । नागरिको की भी छानबीन हुई । कई चारुदत्त के अनुगत और भक्त निकले, सैनिको के साथ नागरिको को भी स्थान स्थान पर नियुक्त किया गया । आयक की सुरक्षा की भी व्यवस्था की गयी, पर आयक ने अपनी तलवार खुली रखी । आय चारुदत्त इतने से निश्चिन्त नही थे । उन्होने आयक से कहा, 'बन्धु, उज्जयिनी अन्य स्थानो से कुछ भिन्न है । यहाँ के शक राजाओ ने मौल सेना बनायी ही नही । भूमि देकर सामन्तो की जो मौल सेना यहाँ सदा से चली आयी है उसे नष्ट कर दिया । सेठो की श्रेणी सेना पर उन्हे विश्वास नही । उसे भी नष्ट कर दिया । केवल भाडे की भृतक सेना ही रखते हैं । उन पर मेरी आस्था नही है ।' कहकर वे उठ गये । वे घूम घूमकर सुरक्षा की व्यवस्था देखने लगे । आयक अपनी

भाभी और रोहसेन के साथ नगी तलवार लिये जागता रहा। भाभी बगलवाल कमरे म थी। आयक को लग रहा था कि वे सो गयी है।

आधी रात बीत गयी। बाहर से सैनिको ने चारदत्त को सूचना दी कि नगर मे आग लगा दी गयी है और श्रेष्ठिचत्वर के पास विकराल लपटें उठती दिखायी दे रही ह। उन्होने शान्त रहकर राजभवन की रक्षा करने की सलाह दी। यह भी कहा कि महाराज गोपाल आयक को इसकी सूचना न दी जाय, उन्ह विश्राम करने दिया जाये और राजभवन की रक्षा तत्परता से की जाय। वे स्वय बाहर भीतर घूमते रह। नगर मे फैली हुई आग राजभवन तक लाल प्रकाश बिखेर रही थी। चारुदत्त को एक ही चिन्ता थी—राजभवन बच जाय। धूता बच्चे को गोद म लिये चुपचाप बैठी थी। वे देवताओ और पितरो का नाम लेकर सबसे मन-ही मन कल्याण प्राथना कर रही थी—क्या हो रहा है प्रभो, रक्षा करो, रक्षा करो! उन्ह इस बात का बडा कष्ट था कि घर-आये अतिथि का सत्कार करना तो अलग, उसे एकदम सकट मे डाल दिया। उन्ह आयक के साहस और दुधष वीर भाव स आश्चय हो रहा था। ऐसा देवोपम रूप और ऐसा अपार साहस उन्होने देखा नही था। आहा, कैसा मीठा बोलता है! उनका हृदय वात्सल्य भाव स आप्लावित हो गया। बेचारा दिन भर का थका मादा आया और ऐसा उलझा कि किसी को यह भी सुध न रही कि कुछ खाया पिया है या नही। वे भी इन्ही प्रपचो मे पड गये। आयक को राजा बना दिया तो क्या उसे अन्न पानी की भी आवश्यकता नही है? कहा चले गये? कुछ देर इस प्रकार सोचते सोचते वे व्याकुल हो उठी। घर स चली थी तो साथ में कुछ पक्वान ले लिया था। वे इधर आये ही नही। स्वय नही आये सो तो नही आये, इस बेचारे को भी भूखा प्यासा छोड गये। वे व्याकुल होकर उठी। इस बेचारे का तो ध्यान रखना ही चाहिए। आज तक हमारा कोई अतिथि इतनी देर तक भूखा प्यासा नही रहा। स्वग मे पितृगण क्या सोचते होंगे! दोष तो कुल वधू को ही देंगे। धूता स्थिर न रह सकी। वे उठी, बगल के घर मे झांक-कर देखा कि आयक सो गया है या जगा है। आयक को आहट मिल गयी। तलवार सावधानी से पकडते हुए पूछा, "कौन है?" "मैं हूँ देवर तुम्हारी भाभी!" आयक ससम्भ्रम उठ पडा, 'कहो भाभी कोई कष्ट है? क्या सेवा करूँ?" भाभी न कहा "कष्ट है देवर, तुम्ह भूखा-प्यासा छोडकर वे न जाने कहाँ चले गये। तुम थोडा कुछ खा लो।'

गोपाल आयक को भाभी की वाणी मे माता का वात्सल्य भाव दिखायी पडा। ऐसा लगा कि बहुत दिना बाद किसी को उसकी भूख प्यास की चिन्ता हुई है। वह अभी तक केवल भटकता ही फिरा है। जहाँ कही पानी मिल गया है पी लिया है, फल फूल-पत्ता जो कुछ अनायास मिल गया है उसी से पेट भर लिया है केवल चलता ही रहा है। दीघ काल के बाद आज पहली बार किसी को चिन्ता हुई है कि उसने कुछ खाया पिया नही है। चन्द्रा की याद आयी। कितनी उपेक्षा की उसकी! पर चन्द्रा थी कि न जाने कहाँ स कुछ-न-कुछ अवश्य उसके लिए जुटा

म ऐसा अनुभव हुआ, जैसे किसी ने जलती शलाका छुआ दी हो। चेहरे पर भाभी को यह भाव पढने मे देर नही लगी। थाली मे अनावश्यक रूप से कुछ डालने का भान करते हुए उन्होने कहा, "बुरा न माना देवर, तो कहूँ कि तुम बडे कठकरेजी हो। फूल सी वहू को छोडकर बेकार इधर उधर घम रहे हो। मैं तो उसे बुलाऊगी। देखूगी, तुम कैसे भागते हो।"

हाय हाय, भाभी को क्या पता है कि आयक पर क्या बीत रही है! कस जानती है भाभी कि उनकी वहू फूल सी है और मैं बकार इधर उधर भागने वाला कठकरेजी हूँ! भाभी को कुछ भी पता नही कि आयक क्या भागा भागा फिर रहा है। बाला, "कठकरेजी हूँ नही भाभी, बनना पडा है!" उसकी आखें डबडबा आयी। भाभी घबरा गयी—"बुरा मान गय देवर, तुम्हारी भाभी मूर्खा है। चाहा था तुम्हारा मनोविनोद करना कर गयी मम पर आघात। नही लल्ला मैं परिहास कर रही थी। मैं क्या जानती नही कि तुम्हारा मन मक्खन सा मुलायम है!"

"जानती हो भाभी, कैसे जानती हो? मुझे तुमने जैसा अभी तक देखा है उसस तो मेरे जैसे क्रूरकमा, कठोर मनुष्य की कल्पना भी नही की जा सकती। नही भाभी तुमने पहले जो कहा था, वही ठीक लगता है। म बहुत दिग्भ्रान्त हूँ भाभी, अपने को आप ही निरस्त करनेवाला पामर—मैं हूँ स्वय निज प्रतिवाद!"

भाभी कुछ हतप्रभ हुई। क्यो लगनेवाली बात कह दी! उन्हे कुछ सूझ ही नही रहा था कि कैसे देवर के मन के परिताप को शान्त करें। वे डर गयी। क्या कर दिया तूने मूख नारी!

आयक समझ रहा था कि उसने सरल हृदया भाभी को धोखा दिया है। कितना सहज है इस महीयसी देवी का मन और कैसा कुटिल है आयक का चरित्र। वह भावावेग मे खडा हो गया। भाभी के चरणो मे सिर रखकर रो पडा, "तुम नही जानती, भाभी, इस भण्ड देवर को! नही जानती नही जानती! जान भी नही सकती! तुम्हारे पवित्र हृदय मे ऐसे भण्डो की कल्पना भी नही प्रवश कर सकती! नही भाभी, तुम नही जानती!"

भाभी हतबुद्धि! आयक चरणा पर गिरा पडा रहा। भाभी के मुह मे शब्द नही। क्या हो गया!

थोडी देर म सम्हलकर उन्होन आयक के सिर पर हाथ फेरा। प्यार से पुचकारकर कहा, उठा लल्ला, ऐसी क्या बात हुई यह? मैं सब जानती हूँ। तुम उठो तो खाना खा लो। मैं सब सब जानती हूँ, मगर खाना नही खाओगे तो तुमसे बोलूगी भी नही। अबोध भाभी की बात पर इतना व्याकुल हुआ जाता है?"

आयक फिर उठकर आसन पर बैठ गया। थका हुआ सा, हारा हुआ सा! भाभी ने दुलार करते हुए कहा, 'सब जानती हूँ लल्ला! मैं जन्म जन्मान्तर की

तुम्हारी भाभी हूँ, तुम जन्म जन्मान्तर के मेरे देवर हो। एक दिन का रिश्ता है? नहीं जानती तो उनके साथ द्वार पर किसी का स्वागत करने के लिए खड़ी हो सकती थी? आज तक किसी ने धूता का लिलार भी देखा है? सब जानती हूँ।"

आर्यक अवाक! आश्चर्य से फैली हुई आँखों से भाभी की ओर ताकता हुआ बोला, "सब जानती हो भाभी, मेरे सारे दुष्कर्म, मेरे सारे अनुचित आचरण—सब जानती हो? कैसे जान गयी भाभी?" भाभी ने हँसते हुए कहा, "सब जानती हूँ लल्ला, सब जानती हूँ। यह भी जानती हूँ कि तुमने कोई दोष नहीं किया। धूता का जन्म-जन्मान्तर का देवर कोई अनुचित काम कर सकता है? खाना खा लो। सब बता दूँगी। खाते हो कि भाभी के हाथ से खाने की लालसा है?" "खाता हूँ भाभी! लेकिन मुझे क्या बताओगी?" "यही कि भाभी सब जानती है। देवरजी की नस नस पहचानती है।"

भाभी हँसने लगी। आर्यक हतबुद्धि! "अच्छा देवर, भाभी के लिए कहे हुए एक अपशब्द के लिए तुमने अपना प्राण संकट में क्यों डाल दिया, कितनी देर का परिचय था? कोई बात भी तो नहीं कर सकी थी! कैसे तुमने घड़ी भर की जान पहचान से इतना बड़ा दुःसाहसिक कार्य कर डाला?" आर्यक कुछ उत्तर नहीं सोच सका। भाभी ने ही अपने ढंग से समाधान कर दिया। "यह क्षण भर के काल्पनिक सम्बन्ध से नहीं हुआ भोलेराम! जन्म जन्मान्तर का सम्बन्ध है। एक क्षण में फफकता है तो असाध्य साधन करा देता है। कोई भी सम्बन्ध क्षण भर का नहीं होता। अब खा लो। हे भगवान्, कैसा भोला देवर दिया है!"

आर्यक खाने लगा और रह रहकर चन्द्रा और मृणाल उसके मानस पटल पर बारी बारी आयीं। सब जन्म-जन्मान्तर के सम्बन्ध हैं! भाभी कितने सहज भाव से विश्वास करती हैं!

भोजन समाप्त करके भाभी की ओर देखा—"जन्म जन्मान्तर के सम्बन्ध होते हैं भाभी? क्या सारे के सारे?"

"सब लल्ला, सब! आज आराम से सो जाओ। कल फिर अपनी इस जन्म-जन्मान्तर की भाभी से बात करना। आज अच्छे भले बच्चे की तरह चुपचाप सो जाओ।"

श्यामरूप जब उज्जयिनी की ओर लौट पड़ा। उसे ऐसा लगता था कि मानो सैकड़ों हजारों हाथियों का बल उसके भीतर आ गया है। उसे पहली बार अनुभव हुआ

कि उसके जीवित रहने का कुछ उद्देश्य भी है। अब तक जीता चला आ रहा था, परन्तु जीने का कुछ लक्ष्य नहीं था। अब उसके सामने उद्देश्य है। वह मादी का उद्धार करेगा और उसे पत्नी रूप में वरण करेगा। वह लौटकर फिर स्नेहमयी माता के चरणों में सपत्नीक आकर प्रणाम करेगा। जिन वृद्ध पिता ने भुलावे में आकर उसे पुत्र-रूप में स्वीकार किया है उसकी सेवा करेगा। उसके मस्तिष्क का सन्तुलन लौटा लायेगा और यदि सम्भव हुआ तो इन्हें लेकर फिर हलद्वीप लौट जायगा। वह रात-भर चलता रहा। क्लान्ति का रंचमात्र भी उसे अनुभव नहीं हुआ। जीवन में जब कोई उद्देश्य निश्चित हो जाता है तो शायद क्लान्ति भी पास नहीं फटकती। श्यामरूप को अपनी तलवार पर गर्व है, परन्तु रह-रहकर उसके मन में पाँच सौ सुवर्ण-मुद्राएँ काय की भयंकर बाधा के रूप में आ जाती हैं। लेकिन वह चिंतित नहीं होता। कहीं से उसके चित्त में विश्वास का ऐसा कल्पतरु निकल आया है जो आश्वस्त करता है कि चिन्ता मत करो। तुम्हें सब कुछ सुलभ है।

वह छोटी छोटी पहाड़ियों और खेतों के बीच बनी हुई पगडण्डियों से चलता जा रहा था। सूर्योदय के कुछ पहले ही वह दस कोस मार्ग तय करके उज्जयिनी के निकटवर्ती ग्राम तक पहुँच गया। वहाँ आकर उसने जो दृश्य देखा, वह बिलकुल अप्रत्याशित था। लोग चारों ओर भाग रहे थे। बैलगाडी, घोड़ा ऊँट और खच्चर जिसे जो मिला था, उसी पर सामान लादकर स्त्रियों और बच्चों के साथ भाग रहा था। कोई किसी से बोलता नहीं था। यह दृश्य देखकर श्यामरूप थोड़ा चिंतित हुआ। क्या बात है, यह जानने के लिए लोगों के निकट पहुँचा, परन्तु कोई कुछ बोलने की अवस्था में नहीं था। लोग केवल इतना ही कहते थे कि नगर में हंगामा हो गया है, लूट पाट चल रही है, इसीलिए लोग भाग रहे हैं। कुछ और अधिक संवाद जानने के लिए वह तेजी से उज्जयिनी के राजमार्ग की ओर निकल पड़ा। एक ग्राम-वृद्ध चल नहीं पा रहे थे, मगर भागने का प्रयत्न वे भी कर रहे थे। श्याम-रूप ने उनको रोककर पूछा, "बाबा, कहाँ जा रहे हो, क्या बात है? लोग इतने व्याकुल क्यों हैं?" वृद्ध थक गये थे। सुस्ताने के लिए बैठ गये। फिर बोले, "कुछ ठीक पता नहीं है बेटा, तरह तरह की खबरें आ रही हैं। सुना है कि मथुरा पर किसी गोपाल आर्यक की सेना का अधिकार हो गया है। उज्जयिनी और मथुरा दोनों के शासकों के चाचा चण्डसेन उज्जयिनी की ओर आ रहे थे, परन्तु राजा के साले भानुदत्त ने उन्हें बीच में कैद कर लिया है। कुछ लोग तो कहते हैं कि उनकी हत्या कर दी गयी है। कुछ दूसरे लोग कहते हैं कि उन्हें बन्दी बनाकर कहीं भेज दिया गया है। सुना है उनका विश्वास-भाजन मल्ल कोई शार्विलक है उसने भानुदत्त के दण्डधरों का कहीं अपमान किया था। भानुदत्त ने उस पर चारुदत्त के घर चोरी करने का आरोप लगाया है। इससे प्रजा में बड़ी खलबली मच गयी है। सुना गया है कि आर्य चारुदत्त का घर लूट लिया गया है और यह भी कहा गया है कि लूटनेवाला और कोई नहीं, चण्डसेन का प्रिय मल्ल शार्विलक ही है। कल दिन से ही नगर में बड़ी उत्तेजना है। उधर से आनेवाले लोगों ने बताया है कि चारुदत्त

की थी। इधर शार्विलक के नाम मात्र से वे काप उठे। नागरिको को अनायास एक नेता मिल गया। उनके जय जयकार की ध्वनि उज्जयिनी के गवाक्षा को भेदकर घर घर पहुँच गयी। ऐसा जान पडा कि सारा नगर उमडकर शार्विलक के पीछे आ खडा हुआ है। दण्डधरा मे से अनेक मारे गये, अनेको ने मैदान छोड दिया। शार्विलक के साथ नागरिक वसन्तसेना के घर के बाहरी आगन मे उपस्थित हो गय। शार्विलक ने सबको शान्त रहने का आदेश दिया और कहा, 'आप लोग वही स्थिर रहे। मैं घर के भीतर जाकर आर्या वसन्तसेना को देखकर लौटता हूँ।" नागरिको ने चिल्लाकर कहा, "अगर आर्या वसन्तसेना जीवित हो तो हम उन्हे देखना चाहते है। आप उनको साथ लेकर आइए।" शार्विलक ने कहा, 'ऐसा ही होगा। आप लोग शान्त रहे।" शार्विलक घर के भीतर घुस गया। उसने एक एक खण्ड ढूढ डाला। उसमे न तो वसन्तसेना मिली, न मदनिका। वह निराश होकर बाहर आ ही रहा था कि एक बन्द कमरे मे उसे कराहने की हल्की आवाज सुनायी पडी। बाहरी छज्जे पर आकर उसने नागरिका को पुकारा "आर्यो, अभी तक म वसन्तसेना को ढूढ नही पाया हूँ, मगर मुझे आशका है कि उन्ह पास के ही एक छोटे कक्ष मे बन्द कर दिया गया है। आप लोगो मे से तीन चार आदमी आ जायें। सबको आने की जरूरत नही। हमे दरवाजा तोडना पडेगा।" सुनने ही कई जवान घर के भीतर घुसने के लिए दौड पडे। शार्विलक वही खडे खडे चिल्लाकर बोला, "अधिक लोग आयेग तो अनर्थ हो जायेगा। आप लोग वही खडे रह।" सबसे पीछे आनेवाले आदमी से शार्विलक बोला, "भद्र, दरवाजा बन्द कर दो।' कोई दस जवान वहा आ गये जहा शार्विलक ने आने की याचना की थी। शार्विलक के इशारे स कक्ष का द्वार तोडा जाने लगा। कपाट बहुत मजबूत थे, उनको तोडने मे नागरिको को कठिन परिश्रम करना पडा, परन्तु वे टूट ही गये। भीतर खालकर देखा गया। दो स्त्रिया कसकर खम्भे मे बाध दी गयी है। दोना ही प्राय बहोश है। केवल रह रहकर उनके सुबकने की हल्की आवाज कभी कभी आ रही थी। देखकर सभी लोग क्रोध मे विक्षिप्त-से हो उठे। शार्विलक ने आदेश के स्वर मे कहा, 'बन्धन मैं काटता हूँ, आप लाग बाहर चले जायें।"

सब लोग बाहर चले गये। शार्विलक की तलवार को बन्धन काटने मे देर नही हुई। कमरे मे खूब अँधेरा था। सावधानी से दोनो स्त्रिया के बन्धन काटकर जब शार्विलक ने उन्ह बाहर रखा, तो देखा गया कि उनमे एक वसन्तसेना है और दूसरी मदनिका। लगता था, मदनिका ने सारी शक्ति लगातार प्रतिरोध किया था। दुष्टो ने उसे मारा भी बहुत था। परन्तु इन निघृण दुष्टा मे भी इतनी कोमलता अवश्य थी कि किसी शस्त्र से नही मारा था। वसन्तसेना के शरीर पर कोई चोट नही थी। शार्विलक की आखो से अश्रु धारा बह चली— हाय देवी तुम्हारे दर्शन भी हुए तो इस अवस्था मे।" शार्विलक ने आदेश दिया कि दाना महिलाओ के मुह पर पानी के छीटे दिये जायें और हवा की जाय। सभी नागरिक क्रोध और करुणा के भाव से उग्र थे। शार्विलक ने छज्जे पर जाकर पुन घोषणा की, 'मित्रा,

पहुँचा दू !" मादी प्रफुल्ल हो गयी, "तो आर्या जीवित है ?" 'अवश्य जीवित है। हा, आया जीवित है।" मदनिका उठकर खडी हो गयी और शार्विलक का सहारा लेकर धीरे धीरे आर्या वसन्तसेना के कक्ष मे पहुँची।

इसी समय शार्विलक ने सुना कि बाहर खडी भीड मे फिर कुछ कोलाहल हो रहा है। कारण जानने के लिए वह फिर छज्जे पर आ गया। उस देखकर बडा आश्चय हुआ कि भीड दूसरी ओर भाग रही है। पहले तो उसे सन्देह हुआ कि कदाचित भानुदत्त के सिपाही फिर लौट आय। उसने श्रुतिधर से आकर कहा, "आय, आपसे कुछ बात करने का अवसर भी नही मिला। जान पडता है कि धुव त्तो ने फिर नागरिका पर हमला कर दिया है। मैं फिर युद्ध भूमि मे जा रहा हूँ। लेकिन एक बात पूछ लेना चाहता हूँ। चण्डसेन के परिवार का क्या हाल है, वे लोग सुरक्षित तो है ?" श्रुतिधर ने कहा बातें ता तुमसे बहुत कहनी है परन्तु अभी इतना जान लो कि चण्डसेन का परिवार तो सुरक्षित है, परन्तु स्वय चण्डसेन का कुछ पता नही चल रहा है। मैं तो वसन्तसेना के पास एक सन्देशा लेकर आया था बीच मे इस हगामे मे फँस गया। तुम्ह देखकर मेरा साहस बढा और भीड के साथ इस मकान म आ गया। मुझे लगता है कि अभी जो कोलाहल सुन रहे हो, उसका कारण है राज्य क्रान्ति। वहा तुम्हारी आवश्यकता अवश्य होगी। तुम जाओ। मै आर्या वसन्तसेना को सँभाल लूगा। मुझे लगता ह कि तुम्हारा भाई गोपाल आयक, पालक को मारने मे सफल हो गया है। यह भीड इसी समाचार से उल्लसित होकर उधर भाग रही है, परन्तु खतरा अब बढ गया है। पहले केवल भानुदत्त के गुण्डे ही उत्पात कर रहे थे, अब राजकीय सेना भी कुछ अनर्थ करेगी।" शार्विलक एकदम चौंक उठा "क्या कहा ? गोपाल आयक, मेरा प्यारा भाई गोपाल आयक आ गया ? तब तो, मित्र, मुझे अवश्य जाना है और तुम्हारे ऊपर आया वसन्तसेना को और मदनिका को छोडे जा रहा हूँ दोनो की रक्षा करना तुम्हारा काम है।"

श्रुतिधर ने मदनिका की ओर देखा, बोले, "यह तो स्वस्थ लग रही है। यह आर्या वसन्तसेना की सखी है ?" शार्विलक न थोडा सकुचित होते हुए कहा, "मित्र, यह आया वसन्तसेना की सखी भी है और तुम्हारी भावी अनुज वधू भी !" अब, श्रुतिधर के चौंकने की बारी आयी। "क्या कहते हो, समझाकर कहो ?" शार्विलक ने सक्षेप मे कहा, यही मादी है।" श्रुतिधर चकित हो गय, "यही मादी है ! मित्र आज मुझे अपना भाग्य प्रसन्न जान पडता है। विचित्र सयोग है ! अब तुम रुको मत। आयक के पास जाओ। अपने बहादुर साथियो को लेते जाओ। यहाँ की देखभाल मैं कर लूगा।'

मादी अर्थात मदनिका वैसे ही शिथिल थी। अब लज्जा के मारे और भी निढाल हो गयी। शार्विलक ने उसे सम्बोधित करते हुए कहा, "प्रणाम करो मादी, मेरे बडे भया है।' अत्यन्त आयास के साथ आँखें नीची करते हुए मादी ने श्रुतिधर का चरण स्पर्श किया और शार्विलक की तरफ देखकर स्फुट शब्दो म कहा,

"फिर जा रहे हो, यहाँ आर्या वसन्तसेना को कौन बचायेगा ?" शार्विलक शिथिल हो गया, बोला, "जल्दी ही लौट आता हूँ। मेरे अग्रज आचार्य श्रुतिधर दोनों की रक्षा करने में समर्थ हैं। ये शस्त्र चलाना नहीं जानते, लेकिन बहुत प्रत्युत्पन्न-मति हैं। इन पर पूर्ण रूप से विश्वास करो।" आचार्य श्रुतिधर ने और जोड़ा, "आयुष्मती मदनिका, मुझे दुर्बल समझकर अविश्वास मत करो। यहाँ आर्या वसन्तसेना को कष्ट देने के लिए कोई नहीं आयेगा। यदि आयेगा तो श्रुतिधर उसका उपाय जानता है। चिन्ता न करो। बेटी, शार्विलक को अभी जाने दो। वहाँ इसकी जरूरत है।" मदनिका ने कोई उत्तर नहीं दिया। उसकी खुली आँखों से अश्रु धारा बह चली। श्रुतिधर ने फिर आश्वासन दिया, 'देखो बेटी, महावीर गोपाल आर्यक आ गये हैं, उन्होंने निस्सन्देह अब तक पालक को परलोक पहुँचा दिया होगा। आर्य चारुदत्त उनके साथ हैं और सुरक्षित हैं। मैं यही सन्देश आर्या वसन्तसेना के पास लेकर आया हूँ। ज्यों ही चेतना लौट आयेगी, मैं उनको यह सन्देशा सुना दूँगा।" इस वाक्य के बाद ही वसन्तसेना की आँखें खुल गयीं। वे अस्फुट स्वर में बोलीं, "आर्य चारुदत्त जीवित हैं ?" श्रुतिधर ने उल्लास के साथ कहा, 'जीवित हैं, देवी! देखो, गोपाल आर्यक के बड़े भाई महामल्ल शार्विलक भी आ गये हैं। उन्होंने ही तुम दोनों को बचाया है। अब वे गोपाल आर्यक की सहायता करने के लिए जाना चाहते हैं।" वसन्तसेना की आँखें पूरी खुल गयीं। उन्होंने अपरिचित पुरुषों को देखकर थोड़ी लज्जा अनुभव की, फिर बोलीं, "आर्य महामल्ल शार्विलक को देखकर आज मेरी आँखें जुड़ा गयीं।" शार्विलक ने अधिक देर करना उचित नहीं समझा। बोला, "कल्याण हो आर्ये, मैं अभी लौट रहा हूँ।" और वह फुर्ती से निकल पड़ा। भवन के भीतर जवानों को सम्बोधित करके उसने कहा, "मित्रो, मैं गोपाल आर्यक की रक्षा के लिए थोड़ी देर को जा रहा हूँ। आप लोग आचार्य श्रुतिधर और इन दोनों महिलाओं की रक्षा का भार ग्रहण करें। मैं अभी लौटकर आता हूँ।" और किसी उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही शार्विलक तेजी से बाहर निकल गया।

बाहर अब भी भीड़ खड़ी थी। शार्विलक को देखकर भीड़ ने उल्लसित होकर जय निनाद किया। शार्विलक ने उनसे पूछा, "कोई नया समाचार है क्या ?" एक प्रौढ़ सज्जन ने सामने आकर कहा, "आर्य शार्विलक, अभी समाचार आया है कि गोपाल आर्यक ने नपुंसक राजा को यमलोक भेज दिया है और भानुदत्त को बन्दी बना लिया है। सुना गया है कि पालक की सेना कुछ उत्पात करने के लिए व्यूहबद्ध हो रही है। यहाँ जो लोग खड़े थे, उनमें से अधिकांश सेना का प्रतिरोध करने के लिए चले गये हैं। जो लोग वृद्ध या निःशस्त्र थे वे ही यहाँ खड़े हैं।" शार्विलक की आँखों से आनन्द के अश्रु झरने लगे। उसने कहा, "आर्य, मुझे रास्ता दिखा दो तो मैं भी नागरिकों की सहायता करने के लिए वहाँ पहुँचना चाहता हूँ।' उपस्थित जनता सहस्र-कण्ठ से शार्विलक की जय जयकार करने लगी और प्रौढ़ सज्जन उसे लेकर राजभवन की ओर चल पड़े। बाकी लोगों को शार्विलक ने

अनुरोधपूर्वक इस भवन को घेरकर रखने का आदेश दिया और यह भी कहा कि यदि यहा कोई सकट आये तो यथाशीघ्र उसे सूचना दे दे।

राजभवन के बाहर ही शार्विलक ने देखा कि पालक के सैनिक व्यूहबद्ध होकर आक्रमण की तैयारी कर रहे है, और नागरिक उसका प्रतिरोध करने का प्रयत्न कर रहे हैं। ज्यो ही शार्विलक नागरिको के मध्य पहुँचा त्यो ही उसकी जय जय-कार के नाद मे आकाश फटने लगा। नागरिको मे अभूतपूर्व उत्साह आ गया। इस नये युद्ध क्षेत्र मे फिर से उन्ह शार्विलक का नेतृत्व प्राप्त हो गया। परन्तु परिणाम यहा भी वही हुआ। नागरिको का उत्साह जितना ही बढ गया था, उतना ही सैनिको का साहस छिन्न हो गया था। इसी समय कोई डुग्गी पीटता हुआ घोषणा करने लगा, 'पालक मार दिया गया, गोपाल आयक राजसिंहासन पर अभिषिक्त हो रहे हैं।" घोषणा सुनते ही शार्विलक अपनी तलवार उछालते हुए बोला, "बोलो गोपाल आयक की जय!" सहस्र सहस्र कण्ठो ने दोहराया "गोपाल आयक की जय! गोपाल आयक की जय!" आश्चर्य के साथ देखा गया कि अनेक सैनिक भी गोपाल आयक का जय निनाद करने लगे। अधिकाश नागरिको की ओर आ गये और जो बचे थे वे भाग खडे हुए। लेकिन नागरिको का क्रोध उभर पडा था। भागनेवाले सैनिको को पकड पकडकर वे क्रूरतापूर्वक मारने लगे। चारो ओर कुह-राम मच गया, केवल बीच बीच मे शार्विलक और गोपाल आयक के जय निनाद की आवाज आती रही। कौन किससे लड रहा है, यह समझना कठिन हो गया। शार्विलक ने कूदकर एक ऊँचे स्थान पर आकर गरजकर आदेश दिया 'शान्त हो जाइए!" आसपास के लोगो ने उसी आदेश को दुहराया, "शान्त हो जाइए।" क्षण भर मे नागरिक अपने अपने स्थान पर स्थिर खडे हो गये। शार्विलक ने उत्तेजनापूर्ण स्वर मे चिल्लाकर कहा, "गोपाल आयक की जय!" सहस्र-सहस्र कण्ठो ने उसी प्रकार दुहराया, "गोपाल आयक की जय!" थोडी देर मे कोलाहल कुछ शान्त हुआ। जो सैनिक नागरिको की ओर आ गये थे उन्ह सम्बोधित करते हुए शार्विलक ने कहा, 'सैनिको, आप क्या गोपाल आयक का नेतृत्व स्वीकार करते है?" सैनिको ने प्रत्युत्तर मे एक स्वर मे गोपाल आयक की जय का निनाद किया। शार्विलक ने आदेश दिया, "देखिए, नगर मे बडी अरक्षित अवस्था है। मुझे अभी अपने नये राजा गोपाल आयक से मिलने का अवसर नही मिला है, परन्तु मुझे पूर्ण विश्वास है कि मैं उनकी ओर से आपको जो आदेश दे रहा हूँ यह उन्ह मान्य होगा। आप लोग नगर की रक्षा के लिए हर चौराहे पर खडे हो जायें। जो कोई भी लूट पाट, मार काट या धर-पकड करता है, उसे तुरन्त दण्ड दीजिए। सूर्यास्त होने मे केवल दो दण्ड का समय है। आप लोगो को दो दण्ड का समय दिया जाता है आप नगर मे शान्ति स्थापन करें। यही इस बात का प्रमाण होगा कि आप लोगो ने सचमुच गोपाल आयक का नेतृत्व स्वीकार किया है। इस बीच यदि कोई उपद्रव हुआ तो उसका उत्तरदायित्व आप लोगो पर होगा।" फिर नागरिको को सम्बोधित करते हुए कहा, "आर्यो, मैं इस नगर मे परिचित नही

हूँ। आप लोगों में से यदि कोई जानकार हो तो यहाँ आ जाय और सैनिकों को भिन्न-भिन्न स्थानों पर नियुक्त करने में सहायता करे।" तत्काल दो-तीन प्रौढ़ व्यक्ति शार्विलक के पास आ गये। उन्होंने कहा, "इसकी व्यवस्था हम कर लेते हैं। आप भवन के भीतर कुछ सैनिकों के साथ जायें और वहाँ जाकर देखें कि कोई गड़बड़ तो नहीं हो रही है।' शार्विलक को यह परामर्श अच्छा जँचा। उसने सैनिकों को सम्बोधित करते हुए कहा, 'राजभवन की रक्षा के लिए कौन-कौन मेरे साथ चलेगा?" "सभी सैनिक चलने को तैयार हैं!"—एक साथ उत्तर मिला, 'आप जिसे भी आज्ञा देंगे वही साथ चलने को तैयार होगा।" शार्विलक ने आठ सैनिकों को चुन लिया और जो प्रौढ़ नागरिक उनकी सहायता करने के लिए आये हुए थे, उनसे कहा 'आप लोग इन्हें यथास्थान नियुक्त कर दें। कुछ सैनिकों को आर्या वसन्तसेना के निवास स्थान पर भी नियुक्त करें।' फिर वह अपने चुने हुए सैनिकों को लेकर राजभवन में प्रविष्ट हुआ।

बाईस

देवरात चन्द्रमौलि और माढव्य शर्मा से उसी स्थान पर फिर मिले। चलते समय श्रुतिधर ने उन्हें सावधान कर दिया कि नगर की स्थिति विस्फोटक है। जब से चण्डसेन को बन्दी बना लेने का समाचार आया है, तब से जनता बहुत विक्षुब्ध है। पालक अपने साले भानुदत्त की मुट्ठी में है। भानुदत्त के आततायी सैनिक गुण्डे हैं। मारपीट, लूटपाट, धर्षण और आगजनी नित्य की घटनाएँ हैं। जनमत कभी भी भयंकर रूप धारण कर सकता है। आततायी किसी की मान प्रतिष्ठा कहीं भी भंग कर सकते हैं। सावधान रहना चाहिए।

देवरात हलद्वीप में भी राजकीय सैनिकों का अत्याचार देख चुके थे, पर यहाँ के अत्याचार के सामने तो वह कुछ भी नहीं था। श्रुतिधर ने बताया था कि भानुदत्त आर्य चारुदत्त को अपमानित करने पर तुला हुआ है। उड़ती खबरें तो ये हैं कि उनको और वसन्तसेना को बन्दी बना लिया गया है। कुछ लोग तो यहाँ तक कहते सुने गये हैं कि उन्हें मरवा दिया गया है और चारुदत्त के घर को जला देने की धमकी दी गयी है। हलद्वीप में इतना कुछ नहीं हुआ था। गोपाल आर्यक के लहुरा वीर दल के आतंक से राजा भी डर गया था। जान पड़ता है, यहाँ कोई वैसा लोक रक्षक नेता नहीं है। देवरात को गोपाल आर्यक की याद कल से कई बार आयी। सच्चा शूर है। पर यह लोकापवाद कैसे चल पड़ा? सम्राट तक ने

उसे परस्त्री लम्पट कह दिया है। कुछ-न कुछ बात तो होगी ही। जनश्रुति अमूलक नहीं होती। आर्यक से ऐसे आचरण की सम्भावना तो नहीं थी पर कौन जाने यौवन मद क्या नहीं करा सकता। यह मदमत्त गजराज की भाँति कमलिनी वन को रौंद देता है। तामस प्रकृति के लोग जब इस मद से मत्त होते हैं तो मत्त मांस-लोलुप मुक्खड गिद्धों की तरह स्त्रियों की मान प्रतिष्ठा लूटने लगते हैं। आर्यक तमोगुणी तो नहीं था। क्या हो गया उसे।

बेचारी मृणालमंजरी पर क्या बीतती होगी? देवरात को क्रोध आया। बहुत दिनों से सोया हुआ यौधेय रक्त एक बार उफन पड़ा। क्या यह अपदार्थ आर्यक, यौधेय कुल की पालिता कन्या का अपमान करने की स्पर्धा कर सकता है? एक बार उनका मन आर्यक के प्रति घृणा से भर आया। फिर विचारों का दूसरा दौर आया। बिना सत्य बात जाने कुछ पाप भावना मन में नहीं लानी चाहिए। लोग परमार्थ कम देखते हैं ऊपरी धरातल को अधिक खरोंचते हैं। पूरा जानना चाहिए। आज देवरात का यौधेय रक्त रह रहकर धक्का मार रहा है। वे उन्मथित की भाँति चल रहे थे। मिलते ही उन्होंने चन्द्रमौलि से प्रस्ताव किया कि नगर की अशान्त स्थिति में हम बाहर चला जाना उचित होगा। यहाँ परदेशियों के लिए कठिनाई है। पर चन्द्रमौलि ने दृढ़ता के साथ अस्वीकार कर दिया। उसने कहा कि जब तक उसके मित्र यहाँ हैं तब तक वह यहीं रहेगा। चन्द्रमौलि के सरल स्वच्छ मुख पर आत्म विश्वास के दृढ भाव देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ। बोले, "वत्स चन्द्रमौलि तुम्हारा अनुमान ठीक हो तो मुझे भी यहीं रहना चाहिए। तुम गोपाल के मित्र हो निश्चय ही तुम मित्र मिलन के लिए व्याकुल होने के अधिकारी हो, पर मैं भी उससे मिलने के लिए कुछ कम व्याकुल नहीं हूँ। तुम्हें अभी तक मैंने बताया नहीं आयुष्मान् मैं गोपाल आर्यक का गुरु हूँ और कदाचित गुरु से भी कुछ अधिक हूँ। इसलिए तुम मेरी उत्सुकता भी समझ सकते हो।"

चन्द्रमौलि एकदम आश्चर्य चकित हो चौंक उठा, "क्या कहा आर्य, आप मेरे मित्र गोपाल आर्यक के गुरु हैं? आहा, यह भव्य रूप देखकर मैंने प्रथम बार ही अनुभव किया था कि किसी महान तेजस्वी पुरुष का सान्निध्य पा रहा हूँ। आर्य, मैं धन्य हूँ जो ऐसे महान गुरु का स्नेह पा सका हूँ। किन्तु एक बात मैं नहीं समझ सका। आप कहते हैं कि गुरु से भी कुछ अधिक हैं। भला गुरु से अधिक और क्या हो सकता है आर्य?"

देवरात ने कहा, "बता दूँगा आयुष्मान्! अभी तो मैं अपने मन की शंका तुम्हें बताना चाहता हूँ। ऐसा लगता है वत्स, कि गोपाल आर्यक उज्जयिनी आया भी हो तो अब कहीं अन्यत्र चला गया है। तुम्हारी बातों से और अन्य लोगों की बातों से मैंने ऐसा समझा है कि गोपाल आर्यक किसी विषम लोकापवाद से दुखी है। लोकापवाद क्या है यह मैं ठीक से जान नहीं पाया हूँ, पर लोगों की बातों से स्पष्ट है कि वह कुछ अनैतिक आचरण का अपवाद अवश्य है। कदाचित परस्त्री-सम्पर्क जैसा कुछ है। मेरा मन बहुत व्यथित है। तुम मेरी प्राण विदारिणी कथा

समझ सकते हो कि नहीं, कैसे बताऊँ। हाय, वत्स, कहीं तुम जानते कि गोपाल की पत्नी मृणालमजरी मेरी पुत्री है। मेरा चित्त बहुत व्यथित है वत्स, मैं स्वप्न में भी नहीं सोच सकता कि गोपाल आयक ऐसा काम कर सकता है जिसमे मृणाल को रच मात्र भी मानसिक कष्ट हो। पर साथ ही यह भी नही अस्वीकार कर पाता कि जनश्रुति के मूल मे कुछ न कुछ तथ्य भी होता ही है।"

चन्द्रमौलि का हृदय सनाका सा गया। उसे याद आया कि गोपाल आयक ने उससे कहा था कि वे सदा यही सोचते रहते हैं कि लोग क्या कहेंगे, एक बार भी यह नहीं सोचा कि मृणालमजरी क्या सोचेगी। आर्य देवरात को कुछ और भी मालूम हुआ होगा। सब मिलाकर यह लोकापवाद ही लगता है। पर गोपाल आयक जैसे शील सम्पन्न पुरुष पर परस्त्री लम्पट होने का अपवाद कुछ समझ में आने लायक बात नहीं लगती। उसका चेहरा म्लान हो आया। नम्रतापूर्वक कहा, "आर्य, आप हमारे सब प्रकार से पूज्य हैं। आपका नया परिचय पाकर तो अपने आपको कृतकृत्य ही मान गया हूँ। पर आपके मन में विषाद का जो यह शल्य घुसा है उसने मुझे भी बुरी तरह आहत और व्यथित कर दिया है। फिर भी मेरा मन कहता है कि आपको जो बताया गया है उसमें कहीं कुछ भ्रम या स्खलन है। गोपाल शील के साक्षात् विग्रह हैं। उन पर परस्त्री लम्पट होने का अपवाद निश्चित रूप से अमूलक होना चाहिए। गोपाल और परस्त्री लम्पटता एक साथ नहीं रह सकते। यह कुछ ऐसा ही है जैसे कहा जाय कि सूर्य की तमिस्रा पर आसक्ति है। पूरी बात जाने बिना ऐसी बातों को ग्रहण नहीं करना चाहिए।'

चन्द्रमौलि को लगा कि देवरात जैसे वृद्ध सुपुरुष के सामने एक सास में इतनी बातें कहकर उसने स्वयं मर्यादा का उल्लंघन किया है। कुछ सहारा पाने की आशा से वह माढव्य की ओर मुड़ा, पर उधर देखकर वह एकदम सन्न हो गया। माढव्य अपने में खो गये थे। उनके सदा प्रफुल्ल चेहरे पर कालिमा सी पुती हुई थी। इन्द्रियों के सारे व्यापार बाहर की ओर से रुद्ध होकर भीतर प्रविष्ट हो गये थे। न तो देवरात ने ही उनकी ओर ध्यान दिया था, न चन्द्रमौलि ने। वह एक विचित्र समाधि थी। ऊपर से शान्त और निस्तब्ध, पर भीतर कोई भयकर झंझा उन्हें झकझोर रही थी। कभी कभी उनका स्थिर शरीर दण्ड इस प्रकार हिल उठता था जैसे निर्वात निष्कम्प दीप शिखा को हल्की वायु लहरियाँ हिला गयी हों। वे बेहोश नहीं थे, पर होश मे भी नहीं जान पड़ते थे। चन्द्रमौलि ने उन्हें झकझोरा, "दादा, दादा, क्या हो गया तुम्हें।" माढव्य शर्मा ने आँखें खोलीं—शून्य दृष्टिवाली आँखें, किन्तु बोले कुछ नहीं। आनन्द की सतत [illegible] निर्झरिणी एकाएक सूख गयी-सी जान पड़ी। व [illegible] अवस्था [illegible] लगता था, वे बहुत डर हुए है। देवरात ने [illegible] पर [illegible] हे देवता, डरने की क्या बात है।" [illegible] हुए, [illegible]
फिर उनके पुराने संस्कार [illegible]
उनकी कुल रीति है। दीर्घ [illegible]

"वृद्ध हो गया हूँ पर अभी भी इन नाडियो मे यौधेय रक्त बह रहा है। भय की क्या बात है देवता! उठो दादा, अवसर आने पर देवरात काल से भी जूझ सकता है।" देवरात आवेश मे कह तो गये, पर उन्हे स्वय इस प्रकार अपना परिचय देने से थोडी ग्लानि भी हुई। यहा स्थान काल पात्र का विचार किये बिना अपने पूर्व जीवन का परिचय देना क्या अच्छा हुआ? पर अब तो तीर छूट चुका था। यथासम्भव अपनी बात को दूसरा मोड देने के लिए उन्होने फिर कहा, "दादा, तुमने बताया था न, कि गोपाल ने तुम्हारी रक्षा करने का वचन दिया था? वह नही है तो मै तो हूँ। आश्वस्त हो जाओ दादा, कोई भी तुम्हारा बाल बाका नही कर सकेगा।"

माढव्य मे कुछ चेतना आयी। लगा, वे सचमुच आश्वस्त हुए है। बोले "आर्य, अपने लिए चिन्तित नही हूँ! ब्राह्मणी की बात सोचकर परेशान हूँ। मैं मर जाऊँगा तो उस बेचारी का क्या होगा! आर्य, मेरे भीतर जो प्रसन्न होने और दूसरो को प्रसन्न करने की क्षमता है वह उसी के प्रेम और सेवा का फल है। नही तो इस अटट मूर्ख की जाने क्या गति हुई होती। उस बेचारी को सम्हालने वाला कोई तो नही है। यदि माढव्य मर जाता है तो बेचारी को कौन देखेगा? अच्छा आर्य, मेरी मृत्यु के बाद तुम लोग उसे कुछ आश्वासन दे सकोगे? लेकिन कौन किसे देखता है! हाय रे, मेरी सब कुछ तो वही है!"

देवरात माढव्य शर्मा के विकल भाव से मर्माहत हुए। बोले, "कौन कहता है दादा, कि तुम मर जाओगे! तुम भी रहोगे और तुम्हारी ब्राह्मणी भी अखण्ड सौभाग्य लेकर रहेगी। अकारण चिन्ता छोडो।"

माढव्य शर्मा कुछ आश्वस्त हुए। देवरात ने चन्द्रमौलि की ओर देखा। उसका सारा शरीर उदभिन्न केसर कदम्ब पुष्प की भाति रोमाचित हो गया था। आखो से अश्रुधारा बह रही थी। देवरात उसमे ऐसा परिवर्तन देखकर आश्चर्य से चौक उठे। चन्द्रमौलि ने हाथ जोडकर प्रश्न किया, "आर्य, मैं क्या यौधेय वश के मुकुट-मणि कुलूत राजकुमार महावीर देवरात को इस रूप मे देख रहा हूँ?"

"हा वत्स, मैं ही अभागा कुलूत राजकुमार देवरात हूँ। पर तुम्हे इस भाग्य-हीन को जानने का अवसर कैसे मिला?"

एक क्षण का विलम्ब किये बिना चन्द्रमौलि उठा और देवरात के चरणो मे इस प्रकार गिर पडा, जैसे किसी ने खडे डण्डे को एकाएक लुढका दिया हो। देवरात 'हा हां' करते रहे। चन्द्रमौलि चरणो मे लिपट गया। देवरात आश्चर्य से स्तब्ध रह गये, 'क्या कर रहे हो आयुष्मान, इस अभाजन को इतना मान दे रहे हो! उठो वत्स, मुझे नरक मे जाने से बचाओ। यह शरीर क्षत्रिय का है। तुम ब्राह्मण कुमार होकर अयथाचरण कर रहे हो। तुम्हारे सम्मान के भार से मैं यो ही भाराक्रान्त हूँ। चरणो पर गिरोगे तो मुझे किसी नरक मे भी स्थान नहीं मिलेगा। उठो मेरे प्यारे चन्द्रमौलि, अकारण अभिभूत दिख रहे हो। उठो भी प्यारे!"

बड़े कठोर बन्धन में बँध गये थे उनके चरण। छुड़ाये नहीं छूटते। बगल के माथे पर पसीने की बूँदें उभर आयीं। चन्द्रमौलि को उन्होंने शिशु की भाँति उठाकर गोद में बैठा लिया। दोनों की आँखें सजल थीं। दोनों की वाणी रुद्ध थी। अघनाथ में माढव्य फटी फटी आँखों से देखते रहे। उनकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। देवरात हैरान थे, चन्द्रमौलि जैसे किसी अननुभूत आनन्द धारा में बह चला था। देर तक सारा वातावरण स्तब्ध बना रहा।

अपने को सम्हालते हुए चन्द्रमौलि उठा। देवरात की ओर देखकर कुछ कहना चाहा, पर वाणी फिर वाष्प विजडित हो गयी। अश्रु धारा से उसके कपोल भीगते रहे। देवरात ने ही मौन भंग किया—"वत्स चन्द्रमौलि, समझ नहीं पा रहा हूँ कि तुम एकाएक इतना अभिभूत क्यों हो गये? क्या कुलूत के यौधेयों से तुम्हारा कोई सम्बन्ध है? बोलो वत्स, मैं व्याकुल हूँ।"

चन्द्रमौलि ने वाष्प-गदगद कण्ठ से कहा, "तात, मैं रघुवंश में पैदा हुआ हूँ। विष्वक्सेन और सुनीता का पुत्र हूँ! मातृ पितृहीन इस अभाजन सन्तान को किस रूप में दर्शन दिया प्रभो!'

देवरात आवेग से उछल पड़े, 'क्या कहा बेटा, तू सुनीता का पुत्र है?" और एक बार फिर चन्द्रमौलि को खींचकर गोद में ले लिया। बार-बार माथा सूँघते और प्यार के साथ चूमते हुए वे अभिभूत हो उठे—"हे भगवान, कैसी विचित्र है तुम्हारी माया!"

माढव्य अवाक्! वे एक बार देवरात की ओर देखते, एक बार चन्द्रमौलि की ओर। दोनों की दशा विचित्र थी। माढव्य ने निस्तब्धता भंग की, "बन्धु चन्द्रमौलि, क्या रहस्य है भाई, जरा इस अबोध दादा की ओर देखो! आर्य देवरात, आप ही कुछ बतायें ना! इस अद्भुत मिलन का आनन्द अपने तक ही सीमित न रखो आर्य, इस अभाजन को भी कुछ अंश दो!"

देर तक चन्द्रमौलि शिशु की भाँति वृद्ध देवरात का स्नेह रस पा पाकर परितृप्त होता रहा। आँसू रुकने का नाम नहीं लेते, वाणी क्रियाशील होने को एकदम तैयार नहीं। क्या रहस्य है!

देवरात एकदम खो गये। सुनीता! शर्मिष्ठा की गुड़िया सी बहिन। उसका विवाह वे नहीं देख सके थे। उसे वे भूल ही गये थे। शर्मिष्ठा के दारुण वियोग में वे ऐसे मर्माहत हुए थे कि किसी अन्य सम्बन्धी की बात उनके मन में आ ही नहीं पायी। वे सब कुछ को भूलने का व्रत लेकर निकल पड़े। भूल नहीं सके तो प्राणवल्लभा शर्मिष्ठा को। सुनीता कुछ दिनों के लिए अपनी दीदी के पास रही थी। फिर चली गयी। उसका विवाह यक्षभूमि के रघुवंशियों में होने की बात चलने लगी थी, पर देवरात को यह सब जानने की सुधि ही नहीं रही। वे निकले सो निकले। आज सुनीता का पुत्र मिल गया, कहता है मातृ पितृहीन है। हे भगवान! वे कुछ पराभूत से लगे। जिसने सब कुछ छोड़ने का संकल्प किया था, उसे इस प्रकार बार बार बाँधने का क्या अर्थ है दयानिधान? तुम्हारी माया क्या सचमुच

ऐसी दुरत्यया है कि उससे पिण्ड छुड़ाया ही नहीं जा सकता ? यह सुनीता का पुत्र है। सुनीता, कोमल नवनीत की पुतली ! देवरात नहीं जानते कि किशोरी सुनीता कैसी थी। निश्चय ही बहुत सुंदर रही होगी, शर्मिष्ठा के समान ही। वैसे भी वह शर्मिष्ठा जैसी ही दिखती थी। उन्होंने फिर से किशोर कवि को देखा। अहा, शर्मिष्ठा के मुख की थोड़ी छाया इसमें है अवश्य। शर्मिष्ठा का पुत्र होता तो ऐसा ही हुआ होता। बहुत कुछ ऐसा ही। धन्य हो लीलाधर !

चन्द्रमौलि ने देवरात के मन को थाहने का प्रयास किया। उसे लगा कि इस विलक्षण सत्पुरुष को एक साथ कई मोह अपने पाश में बाँधने की तैयारी कर रहे हैं। स्वयं भी उसने उनके चित्त में विक्षोभ पैदा कर दिया है। सम्हलकर कहा, 'क्षमा करें तात, आपके चित्त में विक्षोभ पैदा करने का अपराधी हूँ पर जाने क्या मेरा मन आज कुछ अघटित घटना की आशंका कर रहा है। तात के समुद्र के समान गम्भीर हृदय में एक साथ ही कई विक्षोभ पैदा हुए हैं लेकिन मैं जानता हूँ कि यह समुद्र विक्षुब्ध नहीं होगा। तात, मैं धन्य हूँ कि इतने दिनों बाद अपने किसी स्वजन को देख सका हूँ। स्वजन भी कैसा ! समुद्र के समान गम्भीर, आकाश के समान विमल विराट ! मैं आज छिन्नमूल तूलखण्ड के समान निराधार भटकनेवाला नहीं हूँ परन्तु आपके चित्त में मोह का अंकुर उत्पन्न नहीं करूँगा। मैं चरितार्थ हूँ। मुझे स्नेह मिल गया, इतना बहुत है तात।"

चन्द्रमौलि ने माढव्य की ओर देखकर कहा, दादा, तुम्हारा भय कातर होना मेरे लिए वरदान सिद्ध हुआ। आज मैंने अपने परम स्नेही महावीर मौसाजी को पा लिया है। मेरी माता सुनीता और आर्य देवरात की पत्नी शर्मिष्ठा देवी सगी बहिनें थीं। दोनों अब इस संसार में नहीं हैं। मेरे पिता भी नहीं हैं। ऐसे भाग्यहीन बालक को परम स्नेही पूज्य तात मिल गये। यह असाधारण भाग्य ही है दादा ! तुम्हारे सत्संग ने मुझे वृन्त छिन्न तूलखण्ड से उठाकर धरती में बद्धमूल किशोर तरु के समान सौभाग्यशाली बना दिया है। तुम्हारे समान दादा मिला आर्यक के समान सखा मिला और आर्य देवरात के समान पूज्य तात मिल गये। मेरा मन कहता है कि मुझे मेरी बहिन मृणालमंजरी भी मिल जायेगी। आर्य, आज मैं कृतकृत्य हूँ। तुम्हारा सत्संग मेरे लिए कल्पतरु सिद्ध हुआ है। मेरा कृतज्ञ प्रणाम स्वीकार करो दादा। कहकर चन्द्रमौलि ने माढव्य के चरणों पर सिर रख दिया। माढव्य उत्फुल्ल हुए, उनमें कुछ सहज भाव आया। हँसते हुए बोले 'स्वार्थी बन्धु, एक बार यह भी तो कह देता कि मेरी ब्राह्मणी भी कहीं मिल जायगी।" आर्य देवरात भी सहज हो आये। बोले तुम्हारी चिन्ता अभी गयी नहीं दादा ? तुम अपनी ब्राह्मणी को मिल जाओगे ऐसा आश्वासन तो पहले ही दे चुका हूँ। उतने से सन्तोष न हो तो यह भी आश्वासन देता हूँ कि तुम्हारी सती साध्वी ब्राह्मणी भी तुम्हें मिल जायगी।" सबके चेहरों पर सहज स्मित आ गया। जान पड़ा, वातावरण भी सहज हो गया है। मनुष्य के सहज चित्त का ही परिणाम सहज वातावरण होता है। परन्तु विधाता इतनी आसानी से वातावरण को सहज नहीं बनाना चाहते थे। उनकी कुछ

और ही योजना थी। सहज स्मित के साथ देवरात पूछनेवाले थे कि वत्स चन्द्रमौलि, अपनी कथा जरा विस्तार से समझाओ कि एकाएक न जाने कहाँ से दस बारह दैत्याकार सशस्त्र सैनिकों ने तीनों को धर दबोचा—"पकड लो आर्यक के इन सहायकों को ! ये किसी भयंकर षड्यन्त्र में लगे जान पडते हैं।"

किसी प्रकार के प्रतिरोध या प्रतिवाद का अवसर ही नहीं मिला। दुर्दान्त यौधेय रक्त खौलता ही रह गया, आश्वासन की वाणियाँ विकट परिहास के रूप में वायुमण्डल में गूँज उठीं, रघुवंशी मर्यादा अनायास जमकर बर्फ हो गयी और ब्राह्मणी के मिलन के काल्पनिक आनन्द का विस्फार खपुष्प से सिकुड गया। दुष्टों ने किसी को कुछ बोलने का भी अवसर नहीं दिया। मुँह कपडे से कसकर बाँध दिये गये। भुजाएँ पीठ की ओर कस दी गयीं। तीनों को बोरे की तरह उठाकर बैलगाडी में पटक दिया गया और कठोर पहरे में ले जाया जाने लगा। कहाँ ? कुछ पता नहीं।

सन्ध्याकालीन आकाश लाल हो आया था। कोई अज्ञात आशंका दिङ्मण्डल में व्याप्त हो गयी। क्या होनेवाला है !

बँधे हुए, अर्धमूर्च्छित तीन मानव एक घर में ठूँस दिये गये। बाहर से द्वार बन्द कर दिया गया। फिर सब शान्त। माढव्य तो मूर्च्छित ही हो गये। किशोर कवि में भी कहीं कोई स्पन्दन का चिह्न नहीं, पर देवरात की संज्ञा बनी हुई थी। उन्हें अपनी दर्पोक्तियाँ बचकानी मालूम हुईं। जो अपनी भी रक्षा नहीं कर सकता, उसे ऐसा दर्पोद्धत आश्वासन देना क्या शोभता है ? मन्त्र और औषधि से रुद्ध-वीर्य सर्प की भाँति वे अपनी आग से आप ही जलते रहे। विधाता ने उनका कैसा मान भंग किया है ! वे कसमसाते रहे। हाथ इतने कसकर बँधे थे कि बहुत जोर मारने पर भी वे उन्हें हिला नहीं सके। धरती पर सिर रगडकर आँखों के ऊपर बँधे कपडे को हटाने में सफल तो हो गये, पर उस सूची भेद्य अन्धकार में आँखों के खुलने पर भी कुछ देख नहीं सके। वे इधर-उधर लुढकते रहे। एकाध बार किसी अन्य बँधे व्यक्ति से भी टकराये, पर सब बेकार। फिर भी प्रयत्न उन्होंने नहीं छोडा। लुढकते हुए वे दरवाजे तक पहुँचे। सिर से ही टो टोकर अन्दाजा लगाया, कपाट काफी मजबूत जान पडे। सिर से ही यथासम्भव नीचे से ऊपर तक टटोलते रहे। उन्हें ऐसा लगा कि किवाडों में कुछ पीतल के नागदन्त बने थे। बँधे हाथों को साधकर उनसे टिकाया। खूँटियाँ नुकीली थीं। बन्धन में आसानी से घुस गयीं। फिर बार-बार फँसाकर नीचे ऊपर करने लगे। कठिन परिश्रम के बाद हाथ खुल गये। फिर तो मुँह के बन्धन बहुत आसानी से खोले जा सके। धीरे धीरे उनकी पूरी देह खुल गयी। वे हाँफने लगे थे। सारा शरीर पसीने से तर हो गया था। धीरे धीरे वे टो टोकर अपने दोनों साथियों तक पहुँचे। हाथ और दाँत की सहायता से उनके बन्धन खोले। नाक पर हाथ रखकर अनुमान किया कि दोनों की साँस चल रही है, पर दोनों बेहोश हैं। वे बारी-बारी दोनों को सहलाते रहे, शायद किसी की नींद खोले। रुद्ध-कक्ष में हवा आने का कोई मार्ग नहीं था। लगता था वे भी मूर्च्छित हो जायेंगे, पर मन में अदम्य संकल्प जाग्रत थी। किसी प्रकार कपाट

भाव था। प्रयत्न करना चाहिए। कर्तव्य का अभिमान छोड़कर भी प्रयत्न करना चाहिए। हाथ-पर-हाथ धरकर बैठ जाना ठीक नहीं है। कुछ करने की प्रेरणा भी कहीं अत्यन्त गहराई से निकल रही है। 'कम-गुरो, क्या करूँ, तुम्हीं बता दो!'' उन्होंने दोनों साथियों को टटोला। चन्द्रमौलि की चेतना लौट आयी थी। बोला, "कौन है ?" देवरात को हृदय की उठी विशाल तरंग अभिभूत कर गयी। फुसफुसा कर बोले, "कैसा लग रहा है बेटा, मैं हूँ देवरात!" चन्द्रमौलि को साहस आया। उठकर बैठ गया। फिर देवरात ने माढव्य शर्मा को सहलाया। वे उसी तरह अचेत पड़े रहे। देवरात ने चन्द्रमौलि के कान के पास मुँह लगाकर कहा, "हम लोग घर में बन्द कर दिये गये हैं बेटा, धीरे-धीरे बोलना। पता नहीं, कौन कहाँ बैठा सुन रहा हो।" चन्द्रमौलि सावधान हुआ। अचानक आँगन में लाल-लाल प्रकाश छा गया। पास ही कहीं आग लगी जान पड़ी। फिर भयंकर चटचटाहट और चीत्कार ध्वनि। जान पड़ा किसी बड़े प्रासाद में आग लग गयी थी और उसके भीतर स्त्रियाँ, पुरुषों और बालकों की करुणा भरी चीखें सुनायी दे रही थीं। चन्द्रमौलि ने आश्चर्य से देखा, यह सब क्या हो रहा है! देवरात ने फुसफुसाकर कहा, 'जान पड़ता है आततायियों ने आग लगा दी है। आग अगर इस घर तक आयी तो हम लोग जीते ही जल जायेंगे। हे दीनबन्धु क्या होनेवाला है!" चन्द्रमौलि ने कुछ कहना चाहा, लेकिन चारों ओर भयंकर कोलाहल सुनायी दिया। चारों ओर चलते हुए अग्नि पिण्ड छिटकते हुए दिखायी दिये। वे उड़-उड़कर इधर-उधर गिर रहे थे और चटचट की ध्वनि विकराल रूप धारण करती जा रही थी। जो घर बचे थे उनमें भी ये ज्वलन्त उल्का-खण्ड गिर-गिरकर आग लगा देते थे। लोहा, पत्थर और लकड़ी का मिला हुआ एक भयंकर जलता खण्ड इस घर के आँगन में भी आ गिरा। देवरात चिल्ला उठे 'त्राहि देव!' माढव्य उस भयंकर चीत्कार और उल्का पात से एकदम सचेत होकर चिल्ला पड़े, 'त्राहि भगवान्!' वे उठकर बैठ गये। अब निश्चित हो गया कि यह घर भी जल उठेगा। उतने ही माढव्य विचित्र प्रकार से चीख उठे मानो कुछ भयजनक देख लिया हो। उनकी आँखें फैली की फैली ही रह गयीं—"क्या है यह क्या है ?" देवरात ने उन्हें आश्वस्त करते हुए कहा, 'कुछ नहीं दादा, नगर में आग लग गयी है। उसी के परिणामस्वरूप जलते हुए उल्का-खण्ड इधर-उधर छिटक रहे हैं। डरो मत, डरने से काम नहीं चलेगा। मैं बाहर का द्वार तोड़ने जा रहा हूँ। पीछे-पीछे आ जाओ थोड़ा साहस करो। अभी सब ठीक हुआ जाता है।" माढव्य ने विस्मय विमूढ़ होकर चारों ओर देखा। फिर बोले, 'आग है ? आग को जलाता है ?' फिर चुपचाप उठ खड़े हुए। पैर आगे नहीं बढ़ रहे थे। फिर 'जय महाकालेश्वर' कहकर आगे बढ़ने का प्रयत्न किया, किन्तु उनके पैर उठ नहीं रहे थे। देवरात को क्या सूझी उन्हें स्वयं नहीं पता। मगर उन्होंने जलते हुए उल्का [illegible] को बाहरी द्वार के [illegible] पास [illegible] और चिल्लाकर बोले 'जलते हुए द्वार से आना पड़ेगा। सावधान हो जाओ।' माढव्य भय से चिल्ला उठे। [illegible] अभी थोड़ा ही चला था कि [illegible] धक्का मारा। यह [illegible]

गिर पड़ा। देवरात घसीटकर माढव्य को खींच ले आये। पहले चन्द्रमौलि ने कहा, 'कूद जा बेटा! रघुवंशी डरता नहीं। कूद जा!' चन्द्रमौलि कूद गया। फिर माढव्य को लिये दिये देवरात भी कूदकर बाहर आ गये। घर धाय धाय जलने लगा। माढव्य को घसीटते हुए देवरात और चन्द्रमौलि उस ओर भाग जिधर अभी आग नहीं पहुँची थी। वे लोग राजमार्ग पर आ गये। आधा नगर ही जल रहा था। देवरात माढव्य को घसीटते हुए और चन्द्रमौलि को उत्साहित करते हुए दूर निकल आये।

भागते भागते वे महाकाल के मन्दिर के पास आये। फिर उन्होंने चन्द्रमौलि से कहा, "वत्स, अब तुम दादा को सम्हालो। मैं आग बुझाने में लोगों की सहायता करने जा रहा हूँ। तुम लोग किसी प्रकार क्षिप्रा के उस पार चले जाओ। नगर में शान्ति होने पर मैं यहीं महाकाल के मन्दिर में तुमसे मिलूँगा। कब मिलूँगा, कहना कठिन है। पर मिलूँगा अवश्य। तुम प्रातःकाल एक बार देख लिया करना। मैं तुम्हें भी साथ ले चलता, विपत्ति के समय विपद्‌ग्रस्त लोगों की सेवा करना मनुष्य का परम धर्म है। परन्तु अभी मैं माढव्य शर्मा की रक्षा का उत्तरदायित्व तुम्हें सौंपता हूँ। मैं चल रहा हूँ।" माढव्य ने उच्च स्वर से प्रतिवाद किया, "थोड़ा ठहरो आर्य, माढव्य को मिट्टी का लादा न बनने दो। तुमने ही प्राण दिये हैं। ये प्राण तुम्हारे हैं। आजीवन भँडैती से पेट पालनेवाला माढव्य अब जीवन का रहस्य समझने लगा है। मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगा। यह कवि भी चलेगा। तुम अधिक थके हो, आर्य! माढव्य को थोड़ा पानी पी लेने दो। बस, वह प्राणों को हथेली पर लेकर तुम्हारे पीछे चलेगा।" देवरात प्रसन्न हुए। वे स्वयं भूल ही गये थे कि प्यास उन्हें भी लगी है। तीनों ने क्षिप्रा का स्वच्छ जल पिया और नगर में जिधर आग लगी थी, उधर चल पड़े।

पौ फटने जा रही थी। पूर्वी आकाश और नगर दोनों जल रहे थे। नागरिक जहाँ-तहाँ खड़े चिन्ता कातर हो त्राहि त्राहि कर रहे थे। देवरात ने ललकारा, "खड़े-खड़े देखते क्या हो! पानी ले आओ और आग बुझाओ।" नागरिकों में थोड़ा साहस आया। जिसके पास जो पात्र था, वही लेकर पानी लाने दौड़ा। देवरात ने रोककर कहा, "ऐसे नहीं। थोड़ी थोड़ी दूर पंक्ति बाँधकर खड़े हो जाओ। खाली बर्तन देते जाओ और भरे बर्तन लेते जाओ। सबको दौड़ने की आवश्यकता नहीं।" नागरिकों को उत्साह आया। क्षिप्रा-तट से अग्नि स्थान तक नागरिकों की कई पंक्तियाँ खड़ी हो गयीं। पानी व्यवस्थित रूप से जलते घरों तक पहुँचने लगा। देखते-देखते पंक्तिबद्ध नागरिकों की सैकड़ों टोलियाँ खड़ी हो गयीं। माढव्य भावावेग में उन्मत्त होकर चिल्ला पड़े, "आर्य देवरात की जय!" सहस्रों कण्ठों में प्रतिध्वनि निकली, "आर्य देवरात की जय!" नागरिकों में उत्साह का ज्वार आ गया। सूर्योदय होते-होते आग पर काबू पा लिया गया। यद्यपि अब भी कहीं-कहीं आग जलती दिखायी दे जाती थी, पर उसका दारुण प्रकोप शान्त हो गया था। उसी समय देखा गया कि कुछ ऐसे भी लोग थे जिन्हें आग बुझाने का यह ढंग

अट्टालिका देख रहे हो न वही नगर श्री वसन्तसेना का आवास है। मैंने उसका ललित नृत्य देखा है, सखे! अद्भुत है! समझ नहीं पाया था, पर आनन्द से विह्वल हो गया था। सुना है मित्र, भानुदत्त के गुण्डों ने उसे भी मार डाला है। अब क्या लास्य नृत्य होगा?" माढव्य ने लम्बी सांस खींची।

देवरात को धक्का लगा, "क्या कहा दादा, आर्या वसन्तसेना को मार डाला! हाय रे, मैं तो उसका मोहन नृत्य देखने की साध मन में ही सँजोये रह गया! हे भगवान्!"

माढव्य ने उचककर देखने का प्रयत्न किया, 'लगता है इस भवन के चारों ओर प्रहरी बैठाये गये हैं। पता नहीं, क्या ठीक है आर्य, पर कल कोई बता रहा था कि वसन्तसेना को मार डाला है।" देवरात ने बेचैनी के साथ कहा, पता लगाना चाहिए, परन्तु अभी नहीं! दिन में निकलने पर कुछ करने का अवसर भी खो देंगे।"

चन्द्रमौलि का मुख मण्डल मुरझाया सा लगा। बोला कोई नहीं।

देवरात बहुत क्लान्त थे। रात किस प्रकार उन्होंने अपना बन्धन काटा, यही सुनाते-सुनाते वे सो गये। माढव्य सुनते सुनते सो गये। चन्द्रमौलि ही जागता रहा। कल की सारी घटना पर वह विचार करता रहा। क्या ऐसा हो रहा है? मनुष्य एक दूसरे को मारने के लिए इतना व्याकुल क्यों है? यह लूट पाट, मारा मारी, अग्निकाण्ड क्या उसकी स्वाभाविक वृत्ति है या किसी प्रकार के आगन्तुक विकार-मात्र है? ऐसा किये बिना क्या मनुष्य रह नहीं सकता? क्यों? दिन चढ़ने लगा था। चन्द्रमौलि चुपचाप शून्य की ओर दृष्टि टिकाये खोया खोया सा बैठा रहा। एकाएक भयंकर कोलाहल से फिर दिङ्मण्डल विद्ध हो उठा। वसन्तसेना के आवास के निकट भारी जन सम्मर्द दिखायी पड़ा। देवरात और माढव्य दोनों झटके से उठकर बैठ गये। माढव्य ने कान लगाकर सुना। बोले, 'लड़ाई हो रही है आर्य!" तुमुल हर्ष निनाद का झोंका आया और दोनों को कँपा गया— महामल्ल शार्विलक की जय!" देवरात खड़े हो गये, "शार्विलक! यह तो श्यामरूप का नया नाम है। श्रुतिधर ने बताया था। उठो दादा, शार्विलक आ गया है!"

तेईस

सम्राट को मथुरा-विजय का समाचार तो मिल गया था, पर उज्जयिनी की ओर भटार्क के नेतृत्व में जो सेना बढ़ी थी, उसका कोई समाचार नहीं मिल रहा था।

मथुरा से नदी के रास्ते आसानी से समाचार मिल जाता था, क्योंकि नावें बहाव की ओर तेजी से जाती थीं। प्रयाग तक यमुना की धारा का और बाद में गंगा की धारा का बहाव पाटलिपुत्र की ओर जाता था, पर पाटलिपुत्र से उजान (जलधारा के बहाव की दिशा के विरुद्ध) यात्रा में देर लगती थी। इसके लिए घोड़ा से काम लिया जाता था। उत्तरी भारत के राजपुरुषों को अपने घोड़ों पर गर्व था। वे 'अश्वक्षुरमुद्राङ्कितभूमि' अर्थात घोड़ों की टाप से मुहरबन्द की हुई भूमि के अधीश्वर होते थे। इन घोड़ों की दो प्रसिद्ध जातियाँ थीं—शालि और होत्र। 'शालि' शब्द ही प्राकृत में साल, साड आदि बन गया था और प्राकृत से पुनः संस्कृत में आकर सात बन गया था। शुरू शुरू में 'शालिवाहन' और 'सातवाहन' का अर्थ घुड़सवार ही था, पर दक्षिणापथ के पठारों में इस श्रेणी के घोड़े इतने उपयोगी और दुर्द्धर्ष सिद्ध हुए कि दक्षिणापथ के प्रसिद्ध राजवंश को 'सातवाहन' ही कहा जाने लगा। दक्षिणापथ में ये घोड़े जितने उपयोगी सिद्ध हुए, उतने उत्तरापथ के मैदानों में नहीं। वहाँ 'होत्र' अधिक उपयोगी सिद्ध हुए। होत्र ही प्राकृत में घोट बन गया और आगे चलकर 'घोड़ा' कहलाया। इन दोनों श्रेणी के घोड़ों की देख रेख और संवर्द्धन के लिए उन दिनों 'शालि-होत्र' नामक शास्त्र विशेष सम्मानित था। युद्ध के समय उत्तरापथ में होत्र जातीय घोड़े युद्ध भूमि में लगाये जाते थे और शालि जातीय घोड़े दूर दूर तक समाचार पहुँचाने के काम आते थे। सम्राट समुद्रगुप्त संवाद की संचार व्यवस्था के लिए इन घोड़ों की उपयोगिता पर भरोसा रखते थे। पर मथुरा के आगे जो मरुभूमि थी, उसमें इन घोड़ों की उपयोगिता उन्हें सन्देहास्पद जान पड़ी। वे समाचार पाने के लिए व्याकुल थे। आर्यक के छोड़कर चले जाने से वे चिन्तित भी थे। कहीं भटाक आर्यक जैसा साहसी और विवेकी न निकला तो क्या होगा! वे अपनी उस चिट्ठी को लिखकर आर्यक को रुष्ट करने का प्रमाद कर चुके थे। अब मन ही मन पछता रहे थे। उन्हें कभी कभी झल्लाहट भी होती थी कि आर्यक को बन्धुभाव से जो पत्र लिखा गया उसमें वह इतना रुष्ट क्यों हो गया। क्या सम्राट का यह कर्त्तव्य नहीं था कि अपने पथभ्रान्त मित्र को उसके प्रमादों से सावधान कर दें? वे स्वयं सोच नहीं पा रहे थे कि किस प्रकार अपनी बात को लौटा लें। लौटा भी लें तो आर्यक कहाँ मिलेगा? पता नहीं, कहाँ गया है यह भावुक युवक!

सम्राट ने स्वयं मथुरा जाने का निश्चय किया। उनका प्रथम पड़ाव चरणाद्रि दुर्ग में पड़ा। उन्होंने वहीं प्रतिज्ञा की कि भारतवर्ष को एक अखण्ड शासन-सूत्र में बाँधेंगे और विन्दियों को ध्वस्त कर देंगे या निकाल बाहर करेंगे। अपनी विजय के बाद प्रयाग में ही अपनी विजय प्रशस्ति का उद्घोष करेंगे। यह विजय-स्तम्भ प्रयाग में स्थापित होगा। यद्यपि इस समय उनकी राजधानी पाटलिपुत्र में है, पर उनके पितृ पितामह प्रयाग के निकटवर्ती एक छोटे राज्य के अधिपति थे। इसलिए प्रयाग से उनका विशेष मोह था।

उन्हें पता लगा कि कुषाण और शक नरपतियों ने रेगिस्तानी भूमि में सवार

सचार व्यवस्था के लिए ऊँटो का प्रयोग शुरू किया था। ये शालि घोटको से अधिक तेज़ी से सवाद ढोते हैं और मरुभूमि म बिल्कुल थकते नही। 'शालि' घाडा की अनीकिनी के स्थान पर उन्होने कम्मेलका (ऊँटा) की अनीकिनी तैयार करने की आज्ञा दी। यद्यपि यह कम्मेलको की अनीकिनी थी पर पुरान अभ्यास के अनुसार लोग इसे भी 'शाल्यनीक' कहते रहे। लोक म घिसकर यह शब्द साडनी ही बन गया। सो उज्जयिनी स सीधे मथुरा तक सवाद का आदान प्रदान करन के लिए ये नये 'साँडनी-सवार' दौड लगाने लगे। चरणाद्रि दुग से यह व्यवस्था पूरी करके सम्राट् अब मथुरा की ओर बढने की तैयारी करने लग। अपने राजकवि हरिषेण को आदेश दिया कि सारी विजय-गाथाआ का यथायथ सग्रह करके प्रशस्ति तयार रखें ताकि आवश्यकता पडने पर यथाशीघ्र प्रयाग म विजय स्तम्भ खडा किया जा सके।

समुद्रगुप्त स्वय वीर पुरुष थ और वीर पुरुषा का सम्मान भी करना जानते थे। वे दढ चरित्र व्यक्ति थे और सम्पूण देश म दढ चरित्र व्यक्तिया का प्राधा य स्थापित करना चाहते थे। वे परम्परागत भारतीय जीवन के नतिक मूल्या के पोषक भी थे और उन्नायक भी। उन्ह युग विशेष मे नतिक मान्यताआ के पुनर्वीक्षण पर विश्वास तो था, पर बिना सामूहिक स्वीकृति के किसी भी आचरण को घातक मानन का आग्रह भी था। उन्होंन शास्त्रीय मान्यताआ के पुनर्वीक्ष को प्रोत्साहन भी दिया, परन्तु सम्मर्शी और अलूक्ष विद्वानो की स्वीकृति पाये बिना कोई भी आचार उनकी दष्टि म उच्छृखल स्वैराचार-मान था। वे क्रमबद्ध सुविचारित आचार सहिता से शासित समाज को ही उत्तम मानत थे। विदेशी विधर्मी स्वैराचार को वे घातक समझते थे। उनका विश्वास था कि देश म जो भयकर कठिनाइया और पराभवो का ताँता बँध गया है उसका कारण अविचारित स्वैराचार है। वे स्वय स्वस्थ गहस्थ जीवन बिताते थे और दूसरो से भी उसी प्रकार के जीवन-यापन की आशा रखते थे। आयक के चरित्र म इन आदर्शो का शथिल्य देखकर वे क्षुब्ध हुए थे। अब भी वे उस क्षोभ से मुक्त नही हो सके। यदि देश के मूर्धन्य लोग भी स्वराचार म लिप्त हो जायेंगे तो साधारण प्रजा को कैसे उस प्रकार के अविचारपूण आचरण से विरत किया जा सकता है? आयक को उन्होने डाट के पत्र लिखा था। पर उसकी जो प्रतिक्रिया उस पर हुई वह उन्हे विचलित कर गयी। उनके मन मे प्रश्न उठा था, क्या ऐसा मानी पुरुष स्वराचारी हो सकता है? कही आयक को समझने म उनस प्रमाद तो नही हुआ है? क्या धम के विषय म उन्होने जिस कठोर आस्था का पोषण कर रखा है उसम कही कोई दोष है? क्या नितान्त अल्प ज्ञात तथ्यो के आधार पर उन्होने जो निणय किया था वह सदोष था? इस प्रकार की उधेड-बुन मे जब वे पडे हुए थे उसी समय हलद्वीप से पुरन्दर का राजमुद्रांकित पत्र लेकर दूत उपस्थित हुआ। उन्होंने पत्र ले लिया और दूत को यह कहकर विदा किया कि उसे बाद म बुला लिया जायगा।

यथोचित विनयपूवक अभिवादन के बाद पुरन्दर ने हलद्वीप म चन्द्रा के विरुद्ध अभियाग और आचाय पुरगोभिल की स्पष्टोक्तियाँ लिख दी थी। यह भी स्पष्ट

विश्वस्त सैनिक भी बैठा लिये। बड़ी-सी नाव म आठ मल्लाहा क साथ चार यात्री —सुमर बाबा, चन्द्रा, शोभन और मृणालमंजरी—मथुरा क लिए रवाना हुए। चरणाद्रि दुर्ग स सम्राट और उनकी विशाल वाहिनी यथासम्भव किनारे किनारे सावधानी स निकट रहकर चलने लगी। मृणाल को या किसी अन्य नौका यात्री को यह बात अज्ञात ही रही। अमात्य पुरन्दर न इतनी सावधानी और बरती कि आयक क अनुचरा की एक छोटी सी टुकडी अलग स एक नाव म चुपचाप पीछे लगा दी।

नाव विन्ध्याटवी को दरेरा देती हुई आग बढी। विन्ध्याचल क पास पहुँचने पर चन्द्रा न बताया कि यही कही बाबा का आश्रम है। मृणालमंजरी न उत्सुक भाव स कहा कि दीदी नाव रोककर एक बार बाबा क आश्रम म हो आया जाय।" सुमर बाबा अन्दाज़ा लगान लग कि आश्रम का ठीक स्थान कहा है। एकाएक नाव रुक गयी। मल्लाह हैरान थ कि नाव आग क्यों नहीं बढ रही है। उन्ह लगा कि नाव के नीचे कुछ रुकावट पैदा हो गयी है। कई मल्लाह पानी म कूद गय और नीचे के अवरोध का अन्दाज़ा लगाने लग। नदी एक ऊँची पहाडी स सटकर जा रही थी। नीचे कोई चट्टान जैसी चीज़ थी। मल्लाहो की सलाह स सब लोग एक अपेक्षाकृत समतल स्थान पर उतर गय। सोचा गया कि रस्सी स खींचकर नाव को किसी निरापद स्थान पर ले जाया जाय। आग खींचने पर यात्रियों को चढाना कठिन था इसलिए पीछे खींचने का निश्चय किया गया। दो मल्लाहो न पानी म डुबकी मारकर इस बात का पता लगाने का प्रयत्न किया कि अवरोधक चट्टान कहाँ तक है और किस रास्त जाने स नाव बिना कठिनाई के आग बढ सकेगी।

इसम थोडा समय लग गया। मृणाल न जीवन म कभी पार्वत्य शोभा नहीं देखी थी। वह थोडा और ऊपर उठकर देखने का प्रयत्न करने लगी। शोभन चन्द्रा की गोद म सो रहा था और सुमर काका मल्लाहो का कौशल देख रह थ। थोडी ऊँचाई पर उठते ही मृणाल मुग्ध हो गयी। प्रकृति न कितनी कारीगरी दिखायी है। दूर तक जंगली पेडो की मनोहर पंक्तियाँ दिखायी द रही थीं। वन्य कुसुमो की मदिर गन्ध से प्राण अभिभूत हो रह थे। पर जिस चीज को देखकर मृणाल आश्चर्यचकित रह गयी वह था एक वृद्ध तपस्वी का प्रसन्न मुखमण्डल। मृणाल को याद आया कि चन्द्रा न जैसा सिद्ध बाबा का रूप बताया था यह वैसा ही था। निस्सन्देह य सिद्ध बाबा ही थे। हँस रहे थे। फिर मृणाल को देखकर बोले 'ललिता माता बूढ़े बच्चे को क्यों याद किया ? सब ठीक है न अम्ब ?' मृणाल एकदम अवाक हो रही। क्या उत्तर दे समझ म नहीं आया। उधर बाबा हैं कि हँसते जा रह हैं। वे ही फिर बोले, "बोलती क्यों नहीं वागीश्वरी याद भी करती है भूल भी जाती है ? ललिता माता को ऐसा ही होना चाहिए। बता क्या सेवा करूँ।" मृणाल की चेतना लौटी। पैरों पर सिर रख दिया। दर्शन ही चाहती थी बाबा, आपको नाहक कष्ट दिया।" बाबा न मृणाल के सिर पर हाथ रखा,

"उठ त्रैलोक्य सुभग, तू तो बेटे को कुछ सेवा का अवसर ही नही देती। अपने को समझ, जगद्धात्री गोपाल आयक को खोजने जा रही है न ? वही क्या नही कहती? मिलेगा रे ! पर उज्जयिनी तक क्या जायेगी मेरी भोली माता ? मथुरा मे ही गोवर्धनधारी मिलते है—समझी ! मथुरा से आगे न बढना। वही कही मिलेगा।" मृणाल ने फिर बाबा के चरणो पर सिर रख दिया। बाबा ने प्यार स उसके सिर पर हाथ फेरा, "जा, धर्मशीले, वह नाना आ रहे हैं, तुझे बेटे के पास नही रहने देंगे। जा, सुखी होगी !" बाबा जरा रुके, "अच्छा, मेरी भुवनेश्वरी माँ गोपाल आयक मिलेगा, तो तू तो उसे अपना सर्वस्व उलीचकर दे देगी, दोगी न मेरी अच्छी माँ ? हाँ, तुझमे यह शक्ति है। पर इस बूढे बच्चे की ओर से क्या दोगी भक्तवल्लभे?" मृणाल क्या कहे ? बाबा हँसते रहे, "नही बता सकती मेरी अबोध माता, तू नही बता सकेगी। देख, बूढे बच्चे को न भूलना। मेरी चन्द्रा माता है न ? उसका हाथ दे देना। कहना, बाबा का प्रसाद है।"

पीछे से सुमेर काका मृणाल का नाम ले-लेकर पुकार रहे थे। बाबा उठकर चल दिये। मृणाल ने देखा ही नही कि वे किधर चले गये।

सुमेर काका परेशान दिखते थे, "बिना कहे-सुने तू इधर कैसे आ गयी मना, चल, नाव ठीक हो गयी।"

मृणाल ने वाष्प जडित कण्ठ से कहा, "काका, सिद्ध बाबा के दर्शन हो गये। बडा शुभ दिन है आज। चले भी गये।"

काका चकित हो रहे, "कुछ कहा उन्होने बिटिया ?"

मृणाल ने कहा, 'कह रहे थे मथुरा से आगे न जाना।" काका सोच मे पड गये। नाव फिर चली। मृणाल चन्द्रा से सटकर बैठ गयी और सिद्ध से जो बातें हुई थी धीरे-धीरे कह गयी। दोनो को रोमाच हो गया। चन्द्रा के मन मे प्रश्न उठा, 'सो क्यो', और मृणाल के मन मे उठा, 'कैसे' !

चन्द्रा के मन मे दूसरी ही बात थी। वह बाबा से भी कह आयी थी और मृणाल से भी कह चुकी थी कि आयक को मृणाल के हाथो सौंपकर वह छुट्टी लेगी। बाबा कहते है, मैना ही उसका हाथ आयक को देगी, सो भी बाबा का प्रसाद कहकर !

मृणाल ने कभी देने लेने की बात ही नही सोची थी। बाबा को ऐसा कहने की क्या आवश्यकता थी ? ऐसा नाटक वह कैसे रच सकती है ? उसके लिए आयक को पा लेना ही सब-कुछ था, पर बाबा एक विचित्र नाटक रचने को कहते है ! मृणाल भला चन्द्रा का हाथ आयक को कैसे दे सकती है ? चन्द्रा ही चाहे तो ऐसा कर सकती है। उसी मे मातृत्व के सारे गुण है। बाबा ने ऐसी विचित्र सलाह क्या दे दी !

दोनो गगा की निर्मल धारा से बही जा रही थी—उल्टी दिशा मे। दोनो के मन मे विचारो की धारा भी बहती जा रही थी—शायद उल्टी दिशा मे ही। दोनो अपने-आपसे पूछ रही थी—क्या, कैसे ?

बाबा की इस उक्ति ने दोनो के हृदय मे अभिमान का अकुर उत्पन्न कर दिया। चन्द्रा ने सोचा, इस प्रकार के अभिनय के पहले ही भगवान उसे उठा ले तो अच्छा हो। मणाल ने सोचा, उससे ऐसा अभिनय नही हो सकेगा।

चन्द्रा ने ही मौन भग किया— ऐसा तू क्या करेगी मैना ?'

'ऐसा मैं कैसे कर सकती हूँ दीदी।"

"पर बाबा ऐसा ही तो कह रहे है।"

'जान पडता है दीदी, मैंने अपने मन के विकारो को ही इस रूप मे देखा है। बाबा केवल विकृत मन की माया है।"

"नही रे भोली, बाबा सत्य है। उन्होने कुछ सोच के ही कहा होगा।'

"बाबा सत्य भी हो तो वे वीतराग पुरुष है उनका सोचना हमारे बारे म प्रमाण नही हो सकता।"

"तुझमे साहस देखती हूँ मना! मै इतना साहस नही बटोर पाती। मुझे तो कुछ आशका हो रही है। बाबा कोई बात बिना भविष्य देखे नही कह सकते।

मणाल को अब आशका हुई— क्या कह रही हो दीदी तुम्हे कैसी आशका दिखायी दे रही है ?"

मणाल का मुह काला पड गया। चन्द्रा ने उसे पास खीच लिया। बोली, "आशका का रूप मालूम हो जाये तो तेरी दीदी उसके प्रतिकार की बात भी सोच सकती है। नही मालूम है यही तो चिन्ता है। पर घबराने की क्या बात है! जैसी आयगी वैसा उपाय किया जायगा। तू अपनी दीदी पर विश्वास तो करती है न ?'

मृणाल ने कहा, 'यह भी कोई पूछने की बात है, दीदी! चन्द्रा ने कहा देख प्यारी मना, तू इतना विश्वास कर कि अब कोई भी अभिमान चन्द्रा अपने मन म जमने न देगी। बाबा ने एक ही साथ हम दोनो की परीक्षा ली है। मेरे मन म सचमुच अभिमान का अकुर उत्पन्न हो गया था। तेरे हृदय म भी उत्पन्न हो रहा होगा। उखाड दे, नष्ट कर दे, उगते ही कुचल दे उसे। मुझे इस अभिमान ने बहुत भरमाया है। मै इसे उखाडकर गगा की धारा म फेकती हूँ। हाय मना, स्त्री के चित्त म विधाता ने अभिमान का अक्षय बीज क्या बो दिया है! लुटा देने की सारी उमग इस अभिमान के पौधे से उलझकर बरबाद हो जाती है।

मैना विस्मय विस्फारित नयनो से चन्द्रा को देखती रही।

अभिमान का पौधा! दीदी बता रही है कि उनके चित्त म अभिमान का पौधा अकुरित हो गया था। कैसा होगा यह अभिमान का पौधा? मणाल के चित्त म क्या यह अकुरित नही हुआ है? चन्द्रा का हाथ यदि वह आयक के हाथो म दे दे तो क्या यह काय सचमुच नाटक होगा? इस प्रकार सोचने म कही उसके अपने हृदय का कोई प्रच्छन्न अभिमान नही काम कर रहा है? बाबा की सलाह से वह इतनी विचलित क्या हो गयी है? यही कही अभिमान का पौधा होना चाहिए। जो बात सदा सोचती आयी है वही बाबा के मुह से सुनकर वह विचलित हो गयी! कही-न-कही अभिमान का कटवी वृक्ष उसके मन मे अकुरित अवश्य हुआ है। बाबा के

"उठ त्रैलोक्य सुभगे, तू तो बेटे को कुछ सेवा का अवसर ही नहीं देती। अपने को समझ, जगद्धात्री, गोपाल आयक को खोजने जा रही है न ? यही क्या नही कहती? मिलेगा रे ! पर उज्जयिनी तक क्या जायगी मेरी भोली माता ? मथुरा म ही गोवधनधारी मिलते है—समझी ! मथुरा से आगे न बढना। वही कहीं मिलेगा।" मृणाल ने फिर बाबा के चरणा पर सिर रख दिया। बाबा ने प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरा, "जा, धमशीले, वह नाना आ रहे हैं, तुझे बेटे के पास नही रहने देंगे। जा, सुखी होगी !" बाबा ज़रा रुके, "अच्छा, मेरी भुवनेश्वरी माँ, गोपाल आयक मिलेगा, तो तू तो उसे अपना सवस्व उलीचकर दे देगी, दगी न मेरी अच्छी माँ ? हाँ, तुझम यह शक्ति है। पर इस बूढे बच्चे की ओर से क्या दगी भववल्लभे?" मृणाल क्या कहे ? बाबा हँसते रहे, "नही बता सकती मेरी अबोध माता, तू नहीं बता सकेगी। देख, बूढे बच्चे को न भूलना। मेरी च द्रा माता है न ? उसका हाथ दे देना। कहना, बाबा का प्रसाद है।"

पीछे से सुमेर काका मृणाल का नाम ले-लेकर पुकार रह थे। बाबा उ चल दिये। मृणाल ने देखा ही नही कि वे किधर चले गये।

सुमेर काका परेशान दिखते थे, "बिना कहे-सुने तू इधर कैस आ ग चल, नाव ठीक हो गयी।"

मृणाल ने बाष्प जडित कण्ठ से कहा, "काका, सिद्ध बाबा के द बडा शुभ दिन है आज। चले भी गये।"

काका चकित हो रहे, 'कुछ कहा उ होने बिटिया ?"

मृणाल ने कहा, "कह रहे थे, मथुरा से आगे न जाना।"

गये। नाव फिर चली। मणाल च द्रा से सटकर बैठ गयी और ि यी धीरे धीरे कह गयी। दोना को रोमाच हो गया। च द्रा 'सो क्या', और मृणाल के मन मे उठा, 'कसे' !

च द्रा के मन मे दूसरी ही बात थी। वह बाबा से मणाल से भी कह चुकी थी कि आयक को मृणाल के हा बाबा कहते हैं, मैना ही उसका हाथ आयक को देगी कहकर !

मृणाल ने कभी देने लेने की बात ही नही सोर्च क्या आवश्यकता थी ? ऐसा नाटक वह कैसे र को पा लेना ही सब-कुछ था, पर बाबा एव ि मृणाल भला च द्रा का हाथ आयक को कसे द कर सकती है। उसी मे मातत्व के सारे गुण दे दी !

दोना गगा की निमल धारा से वही मन मे विचारो की धारा भी वहती जा रही अपने आपसे पूछ रही थी—क्या, कैसे ?

को इधर उधर देखने की फुरसत नहीं थी। अभ्यासवश चिल्लाते रहे 'गुरु देवरात की जय!" विकट घोष चलता रहा। दूसरी ओर से एक और स्वर आया। अप्रतिहत धावमान जन-सम्मर्द! गोपाल आर्यक की जय! इस धावमान भीड़ के धक्के से देवरात कुछ पीछे छिटक गये। डुग्गी पर करारी चोट के साथ घोषणा हुई— गोपाल आर्यक की जय हो! राजा पालक मार डाला गया! गोपाल को नागरिकों ने राजटीका दी है। जो लोग गोपाल आर्यक की प्रभुता स्वीकार कर लेंगे, उन्हें पुरस्कृत किया जायगा। जो विरोध करेंगे उनका समूल नाश कर दिया जायगा। महाराज गोपाल आर्यक की जय! फिर एक बार डुग्गी पर चोट पड़ी—'नागरिक शान्त भाव से अपने घरों को लौट जायें। जो लोग धर्माचरण के साथ शान्तिपूर्वक रहेंगे उनकी रक्षा का वचन दिया जाता है। जो लोग विद्रोह करेंगे वे कुचल दिये जायेंगे। डुग्गी पर तीसरी बार जोर की चोट पड़ी। उद्घोषक ने पूरी शक्ति के साथ चिल्लाकर कहा 'बोलो महाराज गोपाल आर्यक की जय!" शार्विलक ने और भी जोर लगाकर कहा 'बोलो गोपाल आर्यक की जय!' देखते-देखते सारा वातावरण बदल गया। भीड़ का बड़ा हिस्सा उधर आ गया था। एक साथ सबने चिल्लाकर कहा, 'गोपाल आर्यक की जय!' नागरिकों के जय निनाद से दिङ्मण्डल फटने लगा। सभी उल्लास से पागल हो उठे। देवरात एकदम पीछे छिटक गये थे। इस उन्मत्त कोलाहल को वे कुतूहल के साथ देख रहे थे। जय ध्वनि आकाश को कम्पित कर रही थी। देवरात आनन्दोल्लास के आवेग से निश्चेष्ट रह गये। प्रभो, क्या सुन रहा हूँ! क्या देख रहा हूँ! यह तो अपूर्व है अकल्पित है अतर्क्य है! एक ही साथ इतने शिष्यों के अद्भुत शौर्य और पराक्रम का साक्षी बनाकर तुम क्या कराना चाहते हो! उनके रोम रोम से आशीर्वाद बरस रहे थे। पर वे आगे न बढ़ सके। जन सम्मर्द की उल्लासमयी रेलपेल में उनकी ओर देखनेवाला भी कोई नहीं था। वे जड़वत् स्थिर होकर सब कुछ देखते रहे।

भीड़ को यह देखने की फुरसत नहीं थी कि कौन कहाँ खड़ा है। सामूहिक चित्त व्यक्ति की परवा नहीं करता। देवरात के पीछे से भी भागते हुए लोग आये और भीड़ में शामिल हो गये। कुछ तो बदहवास जान पड़ते थे। देवरात को कई बार धक्का लगा। सब उत्सुक थे, क्या हुआ? कैसे हुआ? न जाने विधाता ने मनुष्य के चित्त में 'क्या हुआ, कैसे हुआ' जानने की कितनी अपार उत्सुकता भर दी है! देवरात निष्क्रिय साक्षी के रूप में यह सब देखते रहे। डुग्गी चारों ओर पिटने लगी थी। एक ही घोषणा कई ओर से कई स्वरों में सुनायी देने लगी। महामल्ल शार्विलक ने आदेश के स्वर में सबको सावधान करते हुए कुछ कहा। भीड़ तेजी से राजभवन की ओर भागी। कुछ लोगों ने आवेग में आकर शार्विलक को कंधे पर उठा लिया। भीड़ और तेजी से भागी। देखते-देखते घटना स्थल जनशून्य हो गया। दूर से दूरतर बढ़ती हुई जय ध्वनि तब भी सुनायी देती रही। देर तक वे वहीं खड़े रहे—निस्पन्द की भाँति!

घटना स्थल जब एकदम शून्य हो गया तो देवरात की चेतना में थोड़ी हलचल

एक वाक्य ने ही उसे उजागर कर दिया है। दीदी कहती हैं, विधाता ने स्त्री के हृदय में इसका अक्षय बीज बो दिया है। यह रहेगा। इस नारी-काया में से वह जा नहीं सकता। तो फिर विचलित क्या हुआ जाय ?

मृणाल खो गयी है—अपने में आप ही !

नाव चलती जा रही है !

सुमेर काका गुमसुम बैठे हैं।

चौबीस

देवरात ने शार्विलक का असम साहस में उलझा देखा। वह फुर्ती से शत्रुओं का व्यूह भेद कर रहा था पीछे सहस्रों नागरिक उसका नाम ले-लेकर तुमुल जय निनाद कर रहे थे। वे आश्चर्य से देख रहे थे कि शार्विलक की तलवार अवसर पाकर भी नर हत्या नहीं कर रही है। यह एक प्रकार का आतंक युद्ध है। महामल्ल का जय निनाद ही शत्रु सेना को इस प्रकार फाड़ रहा है जैसे अदृश्य प्रभंजन के झोंकों से मेघ पटल छिन्न भिन्न हो रहे हों। रक्त नहीं बह रहा है विजय की आंधी अवश्य बह रही है। इस अद्भुत युद्ध में शार्विलक की तलवार बिजली सी चमक रही है—शून्य में। कोई दैवी शक्ति आ गयी-सी जान पड़ती है। देवरात ने और भी आश्चर्य से देखा कि शत्रु सेना या तो भाग रही है या हाथ उठाकर प्रार्थना कर रही है कि वह शार्विलक के पक्ष में आना चाहती है। नागरिकों का उत्साह बांध तोड़ देना चाहता है। देवरात का शरीर रोमांचित है। आंखों से आनन्दाश्रु झर रहे हैं। वे अपने आपको ही सम्हालने का प्रयत्न कर रहे हैं। एकाएक उनमें भी उत्साह का ज्वार आया। नागरिकों की भीड़ के आगे जाकर चिल्ला पड़े, 'जय हो श्यामरूप, देवरात का आशीर्वाद ग्रहण करो !' श्यामरूप (शार्विलक) युद्ध में उलझा हुआ था। देवरात की वाणी सुनकर उसका उत्साह चौगुना हो गया। एक क्षण के लिए पीछे मुड़कर देखा—गुरु देवरात ही तो हैं। आनन्दोल्लसित वाणी में बार बार आशीर्वाद दे रहे हैं और नागरिकों को ललकार रहे हैं। युद्ध में उसके हाथ उलझे हुए थे, पर मन में आनन्द की आंधी बह रही थी। वाणी द्वारा अभिवादन ही सम्भव था। 'कृतकृत्य हूँ आर्य असमय का मूक प्रणाम स्वीकार हो !" नागरिकों को सम्बोधन करके बोला 'बोलो, गुरु देवरात की जय !" नागरिकों के उल्लास में तीव्रता आ गयी बोलो गुरु देवरात की जय ! जो लोग नितान्त निकट थे, उनके अतिरिक्त किसी ने देखा भी नहीं कि गुरु देवरात कौन हैं। किसी

को इधर-उधर देखने की फुरसत कहाँ थी। अप्रभाव से चिल्लाते रहे 'गुरु देवरात की जय!" [illegible]। दूसरी ओर से एक और रेला आया। अप्रत्याशित घोषणा का स्वर! 'गोपाल आर्यक की जय!' इस घोषणा के धक्के से देवरात बहुत पीछे छिटक गये। इसी पर दूसरी बार के साथ घोषणा हुई— 'गोपाल आर्यक की जय हो! राजा पालक मारा गया! गोपाल को आर्य चारुदत्त ने राजगद्दी दी है। जो लोग गोपाल आर्यक की प्रभुता स्वीकार कर लेंगे, उन्हें पुरस्कृत किया जायगा। जो विरोध करेंगे उनको समूल नष्ट कर दिया जायगा। महाराज गोपाल आर्यक की जय!' फिर एक बार इसी पर मार पड़ी—'नागरिक शान्त भाव से अपने घरों को लौट जायँ। जो लोग धर्माचरण में साथ शान्तिपूर्वक रहेंगे उनकी रक्षा का वचन दिया जाता है। जो लोग विद्रोह करेंगे वे तुरन्त [illegible] जायेंगे। इसी पर तीसरी बार जोर की मार पड़ी। उद्घोषक ने पूरी शक्ति के साथ चिल्लाकर कहा — 'बोलो महाराज गोपाल आर्यक की जय!" शर्विलक ने और भी जोर लगाकर कहा — 'बोलो गोपाल आर्यक की जय!" देखते-देखते सारा वातावरण बदल गया। भीड़ का बड़ा हिस्सा इधर आ गया था। एक साथ सबने चिल्लाकर कहा — 'गोपाल आर्यक की जय!' नागरिकों के जय निनाद से दिङ्मण्डल फटने लगा। सभी उन्माद से पागल हो उठे। देवरात एकदम पीछे छिटक गये थे। [illegible] कुतूहल के साथ देख रहे थे। जय ध्वनि आकाश को कम्पित कर रही थी। देवरात आनन्दातिरेक के क्षोभ से निश्चेष्ट रह गये। प्रभो, क्या सुन रहा हूँ! क्या देख रहा हूँ! यह तो अपूर्व है अकल्पित है आश्चर्य है! एक ही साथ दोनों शिष्यों के अद्भुत शौर्य और पराक्रम का साक्षी बनाकर तुम क्या करना चाहते हो! उनके रोम रोम से आशीर्वाद बरस रहे थे। पर वे आगे न बढ़ सके। जन सम्मर्द की उन्मादमयी रेलपेल में उनकी ओर देखनेवाला भी कोई न था। वे जड़वत स्थिर होकर सब कुछ देखते रहे।

भीड़ को यह देखने की फुरसत नहीं थी कि कौन कहाँ खड़ा है। सामूहिक चित्त व्यक्ति की परवा नहीं करता। देवरात के पीछे से भी भागते हुए लोग आये और भीड़ में शामिल हो गये। कुछ तो बदहवास जान पड़ते थे। देवरात को कई बार धक्का लगा। सब उत्सुक थे, क्या हुआ? कैसे हुआ? न जाने विधाता ने मनुष्य के चित्त में 'क्या हुआ, कैसे हुआ' जानने की कितनी अपार उत्सुकता भर दी है! देवरात निष्क्रिय साक्षी के रूप में यह सब देखते रहे। डुग्गी चारों ओर पिटने लगी थी। एक ही घोषणा कई ओर से कई स्वरों में सुनायी देने लगी। महामल्ल शर्विलक ने आदेश के स्वर में सबको सावधान करते हुए कुछ कहा। भीड़ तेजी से राजभवन की ओर भागी। कुछ लोगों ने आवेश में आकर शर्विलक को कन्धे पर उठा लिया। भीड़ और तेज़ी से भागी। देखते देखते घटना स्थल जनशून्य हो गया। दूर से दूरतर बढ़ती हुई जय ध्वनि तब भी सुनायी देती रही। देर तक वे वहीं खड़े रहे—निःसंज्ञ की भाँति!

घटना स्थल जब एकदम शून्य हो गया तो देवरात की चेतना में थोड़ी हलचल

हुई। दाना शिप्या का पराक्रम देख लिया। अब ?

उधर जाने से मोह बढ़ेगा। कल से ही चित्त मे आर्यक के सम्बन्ध मे जो धिक्कार भाव घुमड़ रहा है, वह उसे प्रत्यक्ष देखकर क्षोभ, घृणा और क्रोध पैदा कर सकता है। नहीं, वे उधर नहीं जायेंगे।

मृणाल का अदनार मुग्ध हृदय म उदित हुआ। हाय, इस बालिका के साथ कैसा अन्याय हुआ है! पिता को स्मरण करती होगी—इस अपदार्थ पिता का, जो उसके कष्ट म कुछ भी काम नही आया। मजुला की याद आयी—'हाय देवि, तुम्हारी थाती को यह भण्ड देवरात सुरक्षित नही रख सका!'

मन मे क्षोभ की तरगें चचल हुइ। फिर एक बार यौधेय रक्त खौल उठा। धिक्कार है आर्यक के इस शौर्य को! धिक्कार है यौधेय वीर की इस नपुसक शान्ति को! धिक्कार है इस दिखावटी वैराग्य को! उन्हे मजुला की छाया स्पष्ट दिखायी दी—'क्षमा करना देवि, देवरात व्याकुल है, कर्तव्य मूढ है, तुम्हारी थाती को सावधानी से सुरक्षित न रख सकने का अपराधी है!'

वे स्थिर खडे न रह सके। ऐसा जान पड़ा, अनेक प्रकार की विक्षोभ-लहरिया के झाके उन्हे उखाडकर फेंक देंगे। वे एक स्थान पर बैठ गये। कुछ सूझ नही रहा था। प्रतिशोध? आर्यक से प्रतिशोध? कैसे हो सकता है? क्षमा? इतने भयकर अपराध के लिए क्षमा? क्षमा करने का अधिकार भी उन्हे है या नहीं? वे देर तक सशय और अनिश्चय के हिंडोले मे झूलते रहे। 'हाय देवि, तुम्हारा इतना-सा भी काम ठीक से नही कर सका! और फिर भी देवरात जीवित है!' वे अर्द्धमूर्च्छित से बैठे रहे—समस्त इन्द्रिय व्यापार शिथिल हो गये! दूर दिगन्त मे उन्हे एक ज्योति रेखा दिखायी पड़ी। बिजली की कौंध नही थी, इन्द्रधनुष भी नही था। बिल्कुल शरच्चन्द्र की कोमल मरीचियों की कटी कमनीय रश्मि। ज्योति रेखा उतर रही है, एकदम सामने उतर रही है—विचित्र शोभा है। देवरात देख रहे हैं देख रहे है। ऐसा भी प्रकाश होता है! ज्योति रेखा स्पष्ट दिखायी दे रही है। वह सिमट रही है—स्पष्ट ही सिमट रही है!

देवरात ने देखा—दिव्य नारी!

वे देखकर हैरान है। क्या कल्पलोक की कोई अभिराम कल्पना है? क्या युग युग से लालित मनुष्य की मनोभवा शोभा है? क्या अनुभाव-तरगो से खिची भावरागिनी है? देवरात मुग्ध चकित भाव से देख रहे है।

फिर वे एकाएक ससम्भ्रम उठकर खड़े हो गये—तुम हो देवि, तुम हो—छन्दो की रानी, तालो की नमसखी, बासी को ताजा करनेवाली पुनर्नवा! तुम हो देवि, क्या देख रहा हूँ शुभे, यह दिव्य शोभा यह भाव-मूर्ति, यह अपूर्व शालीन चारुता! क्या सपना देख रहा हूँ? भाव लोक म उन्नमित हुआ हूँ? हँस रही हो? शुचिस्मिते, अपराधी को देखकर हँस रही हो मजुलावयवे! हाय दिव्य रूपे, देवरात पथभ्रान्त हो गया है। अपने म आप ही उलझ गया है! हँसो रानी, खूब हँसो, देवरात हँसते हँसते सह लेगा!'

'सहना ही पड़ेगा ! देवरात अशक्त है, पगु है, कर्त्तव्य मूढ़ है। पुनर्नवे देवि, तुम नित्य-नवीन होकर मानस पटल पर उदित होती हो। जानती नही, किस मर्म वेदना को जगा जाती हो, किस बासी घाव को नया कर जाती हो। देवरात स्वयं मुरझा गया है, उसमे पुनर्नवा के स्वागत करने की क्षमता नही है। हँसो मंजुला रानी, खब हँसा, देवरात हँसने के योग्य ही है !'

भाव विह्वल अवस्था मे वे एकटक दिव्य तेजोमयी मूर्ति को देखते रहे—'धन्य हो पुनर्नवे ! धन्य हो महिमामयी ! आहा, कुछ कह रही हो ? कहो देवि, देवरात का रोम-रोम कान बन गया है। कहो देवि, कुछ कहो, बोलो वागीश्वरी, कुछ तो बोलो !'

'हँस रही हूँ, आर्य देवरात ? ध्यान से देखो हँस रही हूँ ? अपने चित्त के कलुष को तुम मेरी हँसी समझ रहे हो। ध्यान से देखो आर्य ! तुम्हारे जैसा विवेकी द्रष्टा मैंने नहीं देखा। आज तुम्हें हो क्या गया है ? तुम्हारे मन मे कही कोई अनुचित चिन्ता शल्य बनकर चुभ गयी है। निकाल दो उसे, फेंक दो उसे, प्यार करो उसे जो प्यार का अधिकारी है। लोगो से सुनी बातो से विचलित न होओ। तुमने बहुत पाया है आर्य, यहा आकर देने की क्रिया बन्द न करो। तुम पाना चाहते हो ? कैसे पाओगे प्रभो ! भगवान् ने तुम्हें ग्रहीता भाव दिया ही नही है। तुम्हारा स्वभाव देना है, लुटाना है, अपने-आपको दलित द्राक्षा की भांति निचोड़ कर महा-अज्ञात के चरणो मे उँडेल देना है। छोटे मुह बड़ी बात कह रही हूँ प्रभो, क्षमा कर देना ! तुम्हारी ही सिखावन तुम्हे लौटा रही हूं।

'भूल गये आर्य, महाभाव का चस्का इस अभाजन को लगाकर स्वयं भूल गये। उठो आर्य, इस अनुचरी ने यदि कुछ अनुचित कहा हो तो क्षमा करना। जाते-जी तुम्हारी भाव साधना की सगिनी नही बन सकी। महाभाव साधना की सगिनी तो बना लो, आर्य ! इस लालसा ने मुझे बहुत भरमाया है, प्रभो ! तुम्हारे अभिलाष के बन्धन मे बँधी हुई हूँ। बार-बार लौटकर आती हूँ। मुक्ति नही पा रही हूँ। जिन पर तुम्हारा ध्यान केन्द्रित होता है उनकी कल्याण-कामना के लिए भरमती फिरती हूँ। महाभाव अपने सामने आ-आकर खिसक जाता है। संसार जोर से खींचता है। बुरी तरह खींचता है। पुनर्नवा बनना पड़ता है। पर आर्य, यह तो मेरा सहज धर्म नही है !'

'सहज धर्म नही है देवि ? अभाजन को क्षमा करना, वह धर्म जो सहज न हो, कष्टदायक होता है। तुम्हे कष्ट हो रहा है। इस अभाजन के लिए यह कष्ट स्वीकार करो, देवि ! पुनर्नवा बनकर नित्य आती रहो ! तुम्हारा थोड़ा कष्ट किसी को हरा कर जाय तो क्या हर्ज है, देवि ! नही, तुम नित्य-नवीन होकर हृदय मे उतरा करो। नित्य-नवीन होकर, पुन-पुनः नवीन होकर, मेरी पुनर्नवा रानी ! तुम आती हो दिव्य वेश मे, तुम्हारे प्रत्येक पद सचार से प्राणो का उद्बोधन होता है, मुरझाये अकुर खिल उठते है, कलियाँ चटकने लगती हैं सारे विश्व-ब्रह्माण्ड मे जीवन रस उमड़ पड़ता है। मेरी शर्मिष्ठा जीवन्त हो उठती है, उसके सूखे अधरो

पर अनुराग की लाली दौड जाती है, मुरझाये कपाल कदम्ब-केसर के समान उद्भिन्न हो जाते है तुम शर्मिष्ठा म मिलकर एकमेव हो जाती हो—पुन नवीन, पुन जाग्रत पुन प्राणवन्त ! रानी तुम दूसरों को भी पुनर्नवता प्रदान करती हो। यह कष्ट तो तुम्हे उठाना ही पडेगा, प्राणवल्लभे !'

क्या कह रहे हो आय तुम्हारी बातें समझ म नही आ रही हैं। कही कुछ कसर रह गयी है तुम्हारे भीतर। आओ मेरे साथ मथुरा चलो। महाभाव म रमो ! यहा तुमसे अधिक कुछ नही कह सकती। पीहर है यह। मथुरा चलो ! महाभाव के आश्रय के चरणो म सब कुछ वार दो—मजुला को भी और शर्मिष्ठा को भी। उठो आय !

'चलूगा देवि, जहाँ कहो, वही चलूगा। पर इस पुनर्नवा रूप म वचित न करना।

'जा रही हो देवि, आखें अतृप्त ही रह गयी, प्राण प्यासे ही रह गये। जा रही हो, सचमुच जा रही हो ? मथुरा जा रही हो, वृन्दावन की ओर ? धन्य हो नावरूप !'

ज्योति ऊपर उठती गयी, पूर्व की ओर। और दूर और दूर। देवरात पर-कट पक्षी की भाति वही गिर पडे। पीछे से किसी ने उन्हे पकड लिया और उनका सिर गोद म ले लिया।

माढव्य देर से खडे थे। उन्हे देवरात की ये बातें प्रलाप जैसी सुनायी दे रही थी। वे भौचक्के खडे थे। उन्हे गिरते देख उन्होने सम्हाल लिया। फिर अपने आपसे ही बोले, 'सब पागल हो गये है। उधर वह किशोर कवि बडबडा रहा है इधर यह प्रवीण पण्डित बकबका रहा है। आयक राजा हुआ है तो कहाँ प्रसन्न होगे, दोनो पर दुष्ट ग्रह का आवेश आ गया है। यह पुनर्नवा पुनर्नवा चिल्ला रहा है, यह महाकाल की गुहार लगा रहा है। माढव्य को यही तो अवसर था राज दरबार म जाकर कुछ बना लेने का, पर इन विक्षिप्त मित्रो ने सब गुड गोबर कर दिया। क्या हो गया इन्हे ?'

देवरात कुछ सजग हुए। उन्होने माढव्य शर्मा की गोद म अपना सिर पाया। अकचकाकर उठ बैठे। थोडे लज्जित से लगे। 'कब आये आय माढव्य ?' माढव्य शर्मा ने रुआसा होकर कहा "देर से आया हूँ आय ! आप जाने क्या-क्या प्रलाप कर रहे थे। उधर चन्द्रमौलि ने जो प्रलाप शुरू किया है उससे घबराकर आपको खोजने आया तो देखा, यहा भी वही काण्ड चल रहा है। मन ठीक है न आय !'

देवरात इससे और लज्जित हुए, 'प्रलाप कर रहा था दादा ? प्रलाप था वह ? तुमने कुछ देखा नही ? क्या लगा, दादा ?" अब माढव्य शर्मा को लगा कि यह सचमुच पागल हो गया है—अटट पागल ! झुझलाकर बोले, 'उठो आय, तुम्हारे मस्तिष्क म कुछ विकार आ गया है। मैं क्या देखता भला ! देखा कि आप बक जा रहे है। शुद्ध प्रलाप ! कैसी पुनर्नवा और कैसी प्राणवल्लभा किसी ने कोई अभिचार कर दिया है आय ! यह घोर कापालिकों की भूमि है। जल्दी उठो।

हटा भी यहाँ से।"

देवरात न नीग स्वर म कहा, 'अभिचार नही है आय माढव्य।"

'अभिचार नही तो क्या है आय! तुम उज्जयिनी को नही जानते। महाकाल के ग्द गिद न जाने कितने कापालिक, कितने औघड कितने भैरव और कितनी भैरवियाँ घूमती रहती ह। प्रियजन के उत्कर्ष से प्रसन्न होनेवाला पर अभिचार करना उनका क्रूर परिहास होता ह। माढव्य तो मूख ह। न कभी बहुत प्रसन्न होता ह न बहुत उदास। उस पर उनकी माया नही चलती। मूर्खो पर उनका लोभ भी नही होता। मरे दो मित्र ह। दोना परम मधावी। उनकी प्रसन्नता पर व अपन अभिचार का प्रयोग तो करेंगे ही। उज्जयिनी म मूख ही सुखी रहत है, आय!"

'ऐसा न कहो आय माढव्य, उज्जयिनी विद्या की राजधानी है। सिद्धा की तपोभूमि हे। तुम जिस नही देख सक वह है ही नही, ऐसा क्या समझ लत हो?"

'कसे न कहूँ तात, सौ बार अनुभव किया ह उसे न कहूँ? जिस समय मैं कारागृह मे बेहोश पडा था और आग के जलते उल्का खण्ड आगन मे गिर रह थे, उस समय अचानक होश मे आकर मैं चिल्ला पडा था न? उस समय तुम्ह बताया नही, मगर मैंन प्रत्यक्ष दखा, तुम्हारे चारा ओर एक अपूव सुन्दरी चक्कर लगा रही है और ऐसा लगता था तुम्ह बचाने की कोशिश कर रही है। मैं इन डाकिनिया की माया जानता हूँ आय! यह सब नाटक बचाने का नही था, तुम्हारा मस्तिष्क के कोमल मास के खान का था। वह तो कहो, मैं भय मे जोर स चिल्ला उठा। वह एक ओर सटक गयी। लगता है, तभी से वह तुम्हारे पीछे पडी है।

'सच आय, तुमन किसी अपूव सुन्दरी को देखा था! कैसी थी वह, बताओ दादा!"

"एक क्षण म तो सब खेल खतम हो गया आय यही कह सकता हूँ कि वैसा सुन्दर रूप मैंन कही नही देखा कभी नही देखा। सुना है आय, कि डाकिनियाँ श्वेत वस्त्र पहनती ह पर वह लाल कौशेय पहन थी। बिल्कुल आग की लपट के समान लाल कौशय!'

देवरात ने उत्सुकता के साथ ही पूछा, 'तुम्ह आग की लाल लाल लपटा को देखकर ऐसा भ्रम तो नही हुआ, दादा?' माढव्य ने दृढता से कहा 'नही आय, मैंने प्रत्यक्ष दखा।' देवरात सोच मे पड गय। हल्का लाल कौशेय हो उन्होन भी देखा था। वे कुछ बोले नही। केवल 'हुँ' कहकर रह गय।

माढव्य ने कहा, 'देखो आय, यहा कालिकाजी का मन्दिर है। वही चलो। उनके दशन स ही इस विपत्ति स उद्धार हो सकता है।'

देवरात थोडी दर खोये-खोये खडे रह। फिर एकाएक बोल 'अच्छा दादा, प्रणाम ग्रहण करो। मैं उज्जयिनी छोड रहा हूँ। मथुरा जा रहा हूँ। गोपाल आयक मिले तो उसे मेरा आशीर्वाद कह दना।"

उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना वे एकदम चल पड़े। माढव्य आश्चर्य से देखते रह गये। सचमुच मस्तिष्क विकृत हो गया है क्या!

पच्चीस

साँडनी सवारों की व्यवस्था उपयोगी सिद्ध हुई। सम्राट् को मथुरा पहुँचने के पहले ही समाचार मिल गया कि गाँववालों के प्रतिरोध के कारण उज्जयिनी के कोई दस योजन पहले ही भटार्क को रुक जाना पड़ा है। सम्राट का कड़ा आदेश था कि चाहे कुछ भी हो जाय, प्रजा का उत्पीडन न हो। प्रजा के मन में यह भाव कभी नहीं आना चाहिए कि सम्राट् समुद्रगुप्त भी शक शासकों के समान ही प्रजा का उत्पीडन करनेवाला है। उधर भानुदत्त के दुर्वृत्त सेवकों ने गाँव गाँव जाकर यह प्रचार किया कि भटार्क ने चण्डसेन को बन्दी बनाकर पाटलिपुत्र भेज दिया है। इस सेना ने गाँव-के गाँव जला दिये हैं और स्त्रियों और बच्चों पर अमानुषिक अत्याचार किये हैं। भटार्क कर्त्तव्य परायण स्वामिभक्त सैनिक था। उसे न तो इस प्रकार की किसी कूटनीति का ज्ञान ही था, न उसकी इस प्रकार की नीतियों में कोई रुचि ही थी। मथुरा से आगे बढ़ता हुआ वह चमण्वती के दूहों में पहुँचा। रास्ता विकट था। उसकी सेना का एक हाथी किसी किसान के खेत में पहुँच गया। खेत नष्ट हो गया। गाँववालों ने ढेला मार मारकर हाथी और उसके महावत की दुर्गति कर दी। हाथी टीलों की ऊँचाई पर चढ़े लोगों का कुछ बिगाड नहीं पाता था जबकि निरंतर ढेला-क्षेपण से वह अधमरा हो गया। किसी प्रकार महावत उसे भगाकर सेना के पड़ाव पर ले आया। सैनिकों में इस घटना से उत्तेजना फैली। उनकी गाँववालों से रार हो गयी। वहाँ तो उन्होंने उन्हें दबा दिया, पर बाद में सेना को भयंकर प्रतिरोध का सामना करना पड़ा। सैनिक भी उन्मत्त हो उठे।

भटार्क को जब यह मालूम हुआ तो अभियान रोक दिया। ग्राम वृद्धों को बुलाकर उनके अभियोग सुने और आश्वासन दिया कि सेना उनकी जीवन चर्या में कोई व्याक्षेप नहीं होने देगी। उन्होंने सम्राट् की इस इच्छा की भी घोषणा की कि उनकी सेना प्रजा का विश्वास अर्जन करना चाहती है, समाज में शास्त्र-सम्मत आचरण की प्रतिष्ठा और स्वाधीनता देती है, धर्म विरुद्ध काम करनेवाले को दण्ड देना चाहती है। सम्राट् प्रजा के सुख को ही अपना सुख मानते हैं। इस बात से ग्राम-वृद्ध सन्तुष्ट हुए पर जब उन्होंने बताया कि विदेशी शासन के एकमात्र धर्मप्राण प्रजावत्सल महानुभाव चण्डसेन को सम्राट् की सेना ने बन्दी बनाया है,

प्रजा उनकी मुक्ति चाहती है, तो भटार्क भौचक्के रह गये। वे किसी प्रकार यह विश्वास नही दिला सके कि यह समाचार झूठा है। ग्राम वृद्धो को आश्वासन दिया कि वे शीघ्र ही इसके वास्तविक रहस्य का पता लगायेगे। भटार्क इस प्रकार के अप प्रचार का रहस्य नही समझ सके। उन्होने अभियान कुछ समय के लिए स्थगित करके इस समाचार का रहस्य जान लेने का प्रयास किया। उज्जयिनी-विजय का निश्चित कार्यक्रम पालित नही हो सका। जैसे ही उन्हे समाचार मिला कि सम्राट् मथुरा आ रहे हैं उनकी इच्छा है कि वे स्वय उज्जयिनी अभियान का नेतृत्व सम्हालेंगे—तो भटार्क को कुछ चिन्ता हुई। यह एक प्रकार से उनके नेतृत्व म सम्राट् का अविश्वास प्रकट करता था।

जिस समय वे इस प्रकार चिन्तित थे, उन्ही दिनो समाचार मिला कि उज्जयिनी मे विद्रोह हो गया है और गोपाल आयक ने राजा को मारकर शासन-सूत्र सम्हाल लिया है। इस समाचार ने जनपद मे भारी उत्साह फैला दिया। ग्राम-वृद्धो ने स्वय आकर निवेदन किया कि वे गोपाल आयक की सहायता करने मे कुछ उठा न रखेगे। उस समय तक जनपद मे गोपाल आयक को अवतारी पुरुष मान लिया गया था। गावो म इस प्रकार के लोक गीत गढ लिये गये थे कि जिस प्रकार जल मग्न धरित्री का उद्धार महावराह ने किया था, उसी प्रकार कुशासन मे डूबे हुए देश का उद्धार गोपाल आर्यक करेगा। समाचारा मे इस प्रकार की जनश्रुतिया भी थी कि शार्विलक मल्ल ने राजश्यालक भानुदत्त को पकड लिया है। यह समाचार भी तेजी से फैला था कि भानुदत्त ने चण्डसेन को बन्दी बनाया था। शार्विलक उन्हे छुडाने का प्रयत्न कर रहा है। भटाक को नया उत्साह आया और सेना को आदेश दिया कि सम्राट के मथुरा पहुँचने के पहले ही उज्जयिनी पहुँचकर गोपाल आयक की सहायता की जाय। सेना दुगुने उत्साह से आगे बढी। प्रतिरोध समाप्त हो गया था। उज्जयिनी पहुँचने मे कोई विलम्ब नही हुआ।

भटाक की सेना वज्र वेग से बढी जा रही थी। हाथिया की प्रचण्ड वाहिनी घनघुम्मर घटा के समान फैलती दिखायी दे रही थी। घोडो की टापो के आघातो से धरती काप रही थी और पदातिक सैन्यो के द्रुत सचार से उडी हुई धूल से दिङ्मण्डल धूसरित हो उठा था। सेना उज्जयिनी के उपवण्ठ तक प्राय पहुँच चुकी थी। उसी समय शार्विलक चण्डसेन को कारागार से मुक्त कर उज्जयिनी की ओर ले जाने की तैयारी कर रहा था। शार्विलक के साथियो ने भानुदत्त को पकड लिया था। प्राण भय से उसने शरणागति का अनुरोध किया था। उसी के बताये अनुसार नगरोपकण्ठ के एक जीण गह से चण्डसेन को मुक्त किया गया था। शार्विलक को ज्या ही पता लगा कि चण्डसेन को अमुक स्थान पर हाथ पैर बाँधकर डाल दिया गया है, वह एक क्षण का विलम्ब किय बिना वहाँ पहुँचा था। चण्डसेन को उसने बुरी हालत म देखा। उनके दोना हाथ पीठ की ओर ले जाकर बाँध दिये गये थे और पैरो म भी कठोर बेडियाँ डाल दी गयी थी। व औंधे मुह अद्धमृत-अवस्था मे पडे थे। एक मुहूत्त का विलम्ब हुआ होता तो व जीवित न

मिलते। शार्विलक न उनके बन्धन खोल थे और दर तक उपचार करके उनकी चेतना लौटाने का प्रयत्न किया था। जब वे कुछ स्वस्थ हुए तो उन्ह लेकर उज्जयिनी की ओर धीरे धीरे ले चलने का निश्चय किया गया। अभी वह चण्डसेन को लेकर प्रस्थान के लिए तैयार ही हुआ था कि विशाल सेना के कोलाहल और जय निनाद को देखकर घबरा गया। वह समझ नही पा रहा था कि यह विशाल सेना किसकी है और एकाएक उज्जयिनी की ओर जाने का उसका उद्देश्य क्या है। एक बार उसके मन म आशका हुई कि कही यह सेना पालक के किसी मित्र की तो नही है। वह विचित्र सकट म फँसा सा जान पडा। किसी ओर भाग निकलने का माग भी नही था और चण्डसेन की हालत इतनी खराब थी कि उनका दौडाना असम्भव था। शार्विलक बडी चिन्ता म पड गया। उसके साथ जो दो चार सैनिक आये हुए थे वे और भी घबरा गये। क्या किया जाय, कैसे इस अप्रत्याशित विपत्ति से बचा जाय! कुछ सूझ नही रहा था।

सोच विचार के लिए अधिक समय नही था। शार्विलक ने अपने साथी से कहा कि तुम पता लगाओ कि सेना किसकी है। इस समय मेरा प्रधान कत्तव्य है, मुमूर्षु अन्नदाता को सुरक्षित स्थान पर ले जाना। सीधे नदी की ओर भागने से ही रक्षा की कुछ क्षीण सम्भावना है। उसने चण्डसेन को अपनी पीठ पर बाँधा। उसके साथियो न इस काय म उसकी सहायता की। फिर उसन तलवार की मूठ कसकर हाथ म पकड ली और वायु वेग से नदी-तट की ओर दौडा। उसके साथी भी उसके पीछे पीछे दौडे। दो तो थककर बीच मे ही रुक गये, पर एक अधिक बलवान सिद्ध हुआ। वह शार्विलक के पीछे पीछे चलता गया। नदी-तट उतना निकट नही था जितना शार्विलक न सोचा था। पर लगातार दौड लगाने से उस लम्बी दूरी को भी वह शीघ्र ही पार कर गया। नदी-तट पर पहुँचकर उसने पीछे की ओर देखा। विशाल सना बहुत निकट आ गयी थी। लोग भय स व्याकुल थ। सबके मन मे आशका थी कि न जाने क्या होनेवाला है। इधर उधर भाग दौड और चीख चिल्लाहट मची हुई थी। स्त्रियो और बालको की चिल्लाहट म वाता वरण फट रहा था। नदी म कूदने स पहले शार्विलक ने इस असहाय क्रन्दन को सुना, उसके पैर रुक गये। इतने असहाय लोगो को छोडकर भाग जाना क्या उचित है? एक ओर अन्नदाता की प्राण रक्षा और दूसरी ओर असख्य भय व्याकुल लोगो को ढाढस बँधाना। दोनो मे कौन सा कत्तव्य उसे चुनना चाहिए? तर्क की ओर झुकनेवाली बुद्धि ने कहा—क्या कर लोगे अकेले इतनी विशाल सेना के सामने? भावना की ओर झुकनेवाली मानस प्रतीति ने कहा—असहाय स्त्री पुरुषो और बच्चो को ढाढस देते समय मर जाना भी श्रेयस्कर है! क्षण भर उसे निणय करने म दुविधा हुई पर दूसरी भावना-मुखी वृत्ति ही विजयी हुई। चण्डसेन को पीठ पर से खोलकर एक वृक्ष-तले लिटाया। साथी से पानी माँगा। उनके मुख पर ठण्डे पानी के छींटे दिये और फिर अपने साथी को उनकी देखरेख के लिए छोडकर वह लौट पडा। बच्चो, बूढो, स्त्रियो को आश्वासन दिया, "घबराने की

जायें।" इस समाचार से शार्विलक को रोमांच हो आया। आगे बढ़कर उसने कहा "सेनापति भटार्क, गोपाल आर्यक के बड़े भाई श्यामरूप शार्विलक का प्रेमाभिवादन स्वीकार करें।" भटार्क घोड़े से कूद पड़ा—"आर्य शार्विलक, महामल्ल शार्विलक, हमारे सेनापति के अग्रज शार्विलक, मैं धन्य हूँ! मैंने आपकी कीर्ति-गाथा सुनी है।" कहकर वे शार्विलक से लिपट गये। उनका शरीर रोमांच-कण्टकित था, आँखें अश्रुपूर्ण। शार्विलक की भी यही दशा थी। दोनों दीर्घकाल से बिछुड़े सहोदर भाइयों के समान मिले।

शार्विलक से उज्जयिनी के समाचार पाकर भटार्क आश्वस्त हुए, पर जब उन्होंने सुना कि राजश्यालक भानुदत्त ने चण्डसेन को यहीं कहीं बाँध के बिना अन्न-पानी के छोड़ दिया था और उन्हीं का उद्धार करने के उद्देश्य से शार्विलक यहाँ आये थे तो म्लान हो गये। शार्विलक ने उन्हें बताया कि किस प्रकार राजभवन में पास आर्यक ने पालक को मारा और स्वयं आर्य चारुदत्त के साथ राजभवन में प्रवेश किया। उधर भानुदत्त के गुण्डों ने आर्य चारुदत्त के घर में आग लगा दी और सारा नगर जल उठा था। फिर किस प्रकार प्रातःकाल वह नगर में पहुँचा, नागरिकों की सहायता से नगर श्री वसन्तसेना को मूर्च्छित अवस्था में छुड़ाया और किस प्रकार नागरिकों के मुख से गोपाल आर्यक की विजय-कथा सुनकर और शत्रुओं के नये सिरे से व्यूहबद्ध होकर राजभवन जाते समय नागरिकों ने उसके साथ मिलकर प्रतिरोध किया और शत्रु-सेना को परास्त किया। भटार्क उत्सुकतापूर्वक यह कहानी सुनते रहे। उपसंहार में शार्विलक ने बड़े दुख के साथ बताया कि अभी तक इतने दिनों के बिछुड़े भाई से वह मिल नहीं सका है। बीच में कुछ ऐसी घटना हो गयी कि राजभवन में प्रवेश करते ही उसे लौट आना पड़ा। जिस समय वह राजभवन में प्रविष्ट हुआ उसी समय उसने दो व्यक्तियों को सन्दिग्धावस्था में बातचीत करते पाया। उन्हें तुरन्त बन्दी बनाया गया और कुछ नागरिकों ने उन्हें पहचान भी लिया। उज्जयिनी में ये दोनों व्यक्ति—जय और विजय—भानुदत्त के दाहिने और बायें हाथ समझे जाते थे। इन्हें अनेक प्रकार के भय दिखाये जाने पर इस रहस्य का पता लगा कि भानुदत्त वहीं अन्तःपुर के एक गुप्त कक्ष में छिपा हुआ है। संयोग से वहीं आर्य चारुदत्त से भेंट हो गयी। वे रात भर राजभवन की रक्षा में लगे रहे। उन्हीं से पता लगा कि आर्यक और आर्य चारुदत्त की पत्नी धूतादेवी राजभवन के एक साधारण से कक्ष में पड़े हुए हैं और चारुदत्त के विश्वस्त नागरिकों के पहरे में सुरक्षित हैं। नगर के उपद्रव की बात उन तक पहुँची भी नहीं है। उन्हीं के परामर्श से विश्वस्त नागरिकों की पत्नियों की सहायता से भानुदत्त पकड़ लिया गया। उसे बाँधकर आर्य चारुदत्त की देखरेख में छोड़ दिया गया है। उसी से चण्डसेन का पता पाकर वह सीधे यहाँ आ गया है। घटना-चक्र के इस तीव्र गति से घूमने में सारी रात बीत गयी और दूसरा दिन भी समाप्त हो गया। कल सन्ध्या समय वह चण्डसेन का पता लगा सका। वे मर ही गये होते, यदि वह चार विश्वासी नागरिकों के साथ वहाँ पहुँच नहीं गया होता। पूरे दस दण्डों के उपचार के बाद उनको थोड़ी

चेतना आयी है। रात भर उनका सवाहन हुआ है। बडी कठिनाई स उनके मुह म
थाडा पानी पहुँचाया जा सका। एक स्थानीय वद्य स थोडा सा रसायन प्राप्त हुआ
ह उसी स उनकी चेतना लौटी है। पर व एकदम दुबल हो गय ह। उ ह उज्जयिनी
ले जान की कोई अच्छी व्यवस्था नही हो पायी थी। इसी बीच इस सना को देख
कर वह और उसके साथी डर गय और शार्विलक न उ ह पीठ पर बाधकर नदी
पार करना चाहा पर स्त्रिया बच्चा और वद्धा की भयार्त्त वाणी सुनकर उ ह
नदी तट पर छोडकर उनकी रक्षा करन का आश्वासन देना पडा। शार्विलक ने
प्रस नता क साथ उपसहार करत हुए कहा जब यह जानकर बडा आनं दित हूँ
कि यह सेना अपनी ही सना ह। तात भटाक, मुझे आयक के विषय म चि ता
बनी हुई है। आया वसन्तसेना का भी प्राय मरणास न अवस्था म छोड आया हू।
तुम शीघ्र नगर म प्रवेश करक दोना की सुरक्षा की व्यवस्था करो। मुझ आय
चण्डसन को सम्हालन जाने दो। पता नही इस बीच उनकी क्या स्थिति है।

भटाक भी थोडा चिंतित हुए पर तु उ हान शार्विलक को राकना चाहा।
'आय आप जैसा कहते है वैसा ही होगा। पर तु आय चण्डसेन को सुरक्षित
उज्जयिनी पहुँचान क लिए गोपाल आयक का यह अनुचर सब व्यवस्था कर देगा।
मुझे आपक सांनिध्य की आवश्यकता होगी। मैं अभी राजभवन की और नगर
श्री वस तसना की सुरक्षा की उचित व्यवस्था करता हूँ। आपकी कहानी स स्पष्ट
है कि आप कई दिना स कवल लडत ही आ रह है। अब अपने सवक पर विश्वास
कीजिय। मेरे साथ चलिए और थोडा विश्राम कीजिय।' शार्विलक भटाक की
इस विनम्रता और मदुभाषिता स बहुत प्रीत हुआ पर उसन दढता के साथ कहा
कि चण्डसन की मानसिक स्थिति बहुत चि ताजनक है। सम्राट के सनापति को
दखकर पता नही उनके मन म क्या भाव आय। इसलिए उनके निकट शार्विलक
का रहना परम आवश्यक है। बातचीत म अधिक समय नष्ट करना उचित न
समझकर भटाक न एक हाथी की व्यवस्था चण्डसेन के लिए की और सना की एक
टुकडी उज्जयिनी रवाना कर दी और आज्ञा दी कि तुर त नगर म घोषणा कर
दी जाय कि 'सम्राट की विशाल वाहिनी, जिसक नेता गोपाल आयक ह नगर
म प्रवश कर गयी है। किसी को भय पान की आवश्यकता नही है। बालक युवक
महिलाएँ वद्ध जन अनाथ और असहाय आश्वस्त हो जायें। जो लोग अशान्ति
पैदा करगे उ ह कठोर दण्ड दिया जायगा। जो लाग गोपाल आयक क पक्ष म
होगे उनकी रक्षा की जायगी और पुरस्कृत किया जायगा। मत राजा के जा भत्य
गोपाल आयक की ओर लड रह ह या लडगे उ ह सम्राट उचित पुरस्कार देंग।
जा विरोध करगे उ ह समूल ध्वस कर दिया जायगा। फिर वह शार्विलक के
साथ वहा पहुच जहा चण्डसन मुमूर्षु अवस्था म पडे थ। उ हे यह दखकर प्रस नता
हुई कि व अब स्वस्थ हो आय थ। यद्यपि अब भी व सना शू य-स ही थ।

शार्विलक न चण्डसन का हाल चाल पूछा। उनकी शारीरिक अवस्था म
पर्याप्त सुधार देखकर भटाक का परिचय दिया और बताया कि सनापति ने उन

जायें।" इस समाचार से शार्विलक को रोमाच हो आया। आगे बढ़कर उसने कहा, "सेनापति भटाक, गोपाल आयक के बड़े भाई श्यामरूप शार्विलक का प्रेमाभिवादन स्वीकार करें।" भटाक घोड़े से कूद पड़ा—"आय शार्विलक, महामल्ल शार्विलक, हमारे सेनापति के अग्रज शार्विलक, मैं धन्य हूँ! मैंने आपकी कीर्ति-गाथा सुनी है।" कहकर वे शार्विलक से लिपट गये। उनका शरीर रोमाच-कण्टकित था, आखें अश्रुपूर्ण। शार्विलक की भी यही दशा थी। दोनो दीघकाल से बिछुड़े सहोदर भाइयो के समान मिले।

शार्विलक से उज्जयिनी के समाचार पाकर भटाक आश्वस्त हुए, पर जब उन्होने सुना कि राजश्यालक भानुदत्त ने चण्डसेन को यही कही बाँध के बिना अन्न-पानी के छोड़ दिया था और उन्ही का उद्धार करने के उद्देश्य से शार्विलक यहाँ आये थे, तो म्लान हो गये। शार्विलक ने उन्हे बताया कि किस प्रकार राजभवन के पास आयक ने पालक को मारा और स्वयं आर्य चारुदत्त के साथ राजभवन मे प्रवेश किया। उधर भानुदत्त के गुण्डो ने आर्य चारुदत्त के घर मे आग लगा दी और सारा नगर जल उठा था। फिर किस प्रकार प्रात काल वह नगर मे पहुँचा, नागरिको की सहायता से नगर श्री वसन्तसेना को मूर्च्छित अवस्था मे छुड़ाया और किस प्रकार नागरिको के मुख से गोपाल आयक की विजय-कथा सुनकर और शत्रुओ के नये सिरे से व्यूहबद्ध होकर राजभवन जाते समय नागरिको ने उसके साथ मिलकर प्रतिरोध किया और शत्रु सेना को परास्त किया। भटाक उत्सुकतापूर्वक यह कहानी सुनते रहे। उपसंहार मे शार्विलक ने बड़े दुख के साथ बताया कि अभी तक इतने दिनो के बिछुड़े भाई से वह मिल नही सका है। *बीच मे कुछ ऐसी घटना हो गयी कि राजभवन मे* प्रवेश करते ही उसे लौट आना पड़ा। जिस समय वह राजभवन मे प्रविष्ट हुआ उसी समय उसने दो व्यक्तियो को सन्दिग्धावस्था मे बातचीत करते पाया। उन्हे तुरन्त बन्दी बनाया गया और कुछ नागरिको ने उन्हे पहचान भी लिया। उज्जयिनी मे ये दोनो *व्यक्ति—जय और विजय—भानुदत्त के दाहिने और बायें हाथ समझे* जाते थे। इन्हे अनेक प्रकार के भय दिखाये जाने पर इस रहस्य का पता लगा कि भानुदत्त वही अन्त पुर के एक गुप्त कक्ष मे छिपा हुआ है। सयोग से वही आर्य चारुदत्त से भेंट हो गयी। वे रात भर राजभवन की रक्षा मे लगे रहे। उन्ही से पता लगा कि आयक और आर्य चारुदत्त की पत्नी धूतादेवी राजभवन के एक साधारण से कक्ष मे पड़े हुए है और चारुदत्त के विश्वस्त नागरिको के पहरे मे सुरक्षित हैं। नगर के उपद्रव की बात उन तक पहुँची भी नही है। उन्ही के परामर्श से विश्वस्त नागरिको की पत्नियो की सहायता से भानुदत्त पकड़ लिया गया। उसे बाधकर आर्य चारुदत्त की देखरेख मे छोड़ दिया गया है। उसी से चण्डसेन का पता पाकर वह सीधे यहा आ गया है। घटना चक्र के इस तीव्र गति से घूमने मे सारी रात *बीत गयी और दूसरा दिन भी समाप्त हो गया। कल सन्ध्या समय वह चण्डसेन का पता लगा सका। वे मर ही गये होते यदि वह चार विश्वासी नागरिको के* साथ वहाँ पहुँच नही गया होता। पूरे दस दण्डो के उपचार के बाद उनको थोड़ी

चेतना आयी है। रात भर उनका संवाहन हुआ है। बड़ी कठिनाई से उनके मुँह में थोड़ा पानी पहुँचाया जा सका। एक स्थानीय वैद्य से थोड़ा सा रसायन प्राप्त हुआ है, उसी से उनकी चेतना लौटी है। पर वे एकदम दुर्बल हो गये हैं। उन्हें उज्जयिनी ले जाने की कोई अच्छी व्यवस्था नहीं हो पायी थी। इसी बीच इस सेना को देख कर वह और उसके साथी डर गये और शर्विलक ने उन्हें पाठ पर बाँधकर नदी पार करना चाहा पर स्त्रियों, बच्चों और वृद्धों की भयार्त वाणी सुनकर उन्हें नदी-तट पर छोड़कर उनकी रक्षा करने का आश्वासन देना पड़ा। शर्विलक ने प्रसन्नता के साथ उपसंहार करते हुए कहा, अब यह जानकर बड़ा आनन्दित हूँ कि यह सेना अपनी ही सेना है। तात भटार्क, मुझे आर्यक के विषय में चिन्ता बनी हुई है। आर्या वसन्तसेना को भी प्रायः मरणासन्न अवस्था में छोड़ आया हूँ। तुम शीघ्र नगर में प्रवेश करके दोनों की सुरक्षा की व्यवस्था करो। मुझे आर्य चण्डसेन को सम्हालने जाने दो। पता नहीं इस बीच उनकी क्या स्थिति है।

भटार्क भी थोड़ा चिन्तित हुए परन्तु उन्होंने शर्विलक को रोकना चाहा। आर्य, आप जैसा कहते हैं वैसा ही होगा। परन्तु आर्य चण्डसेन को सुरक्षित उज्जयिनी पहुँचाने के लिए गोपाल आर्यक का यह अनुचर सब व्यवस्था कर देगा। मुझे आपके सान्निध्य की आवश्यकता होगी। मैं अभी राजभवन की ओर नगरश्री वसन्तसेना की सुरक्षा की उचित व्यवस्था करता हूँ। आपकी कहानी से स्पष्ट है कि आप कई दिनों से केवल लड़ते ही आ रहे हैं। अब अपने सेवक पर विश्वास कीजिये। मेरे साथ चलिए और थोड़ा विश्राम कीजिये। शर्विलक भटार्क की इस विनम्रता और मृदुभाषिता से बहुत प्रीत हुआ पर उसने दृढ़ता के साथ कहा कि चण्डसेन की मानसिक स्थिति बहुत चिन्ताजनक है। सम्राट के सेनापति को देखकर पता नहीं उनके मन में क्या भाव आयें। इसलिए उनके निकट शर्विलक का रहना परम आवश्यक है। बातचीत में अधिक समय नष्ट करना उचित न समझकर भटार्क ने एक हाथी की व्यवस्था चण्डसेन के लिए की और सेना की एक टुकड़ी उज्जयिनी रवाना कर दी और आज्ञा दी कि तुरन्त नगर में घोषणा कर दी जाय कि 'सम्राट की विशाल वाहिनी, जिसके नेता गोपाल आर्यक हैं, नगर में प्रवेश कर गयी है। किसी को भय पाने की आवश्यकता नहीं है। बालक, युवक, महिलाएँ, वृद्ध जन, अनाथ और असहाय आश्वस्त हो जायें। जो लोग अशान्ति पैदा करेंगे उन्हें कठोर दण्ड दिया जायगा। जो लोग गोपाल आर्यक के पक्ष में होंगे उनकी रक्षा की जायगी और पुरस्कृत किया जायगा। मृत राजा के जो भृत्य गोपाल आर्यक की ओर लड़ रहे हैं या लड़ेंगे, उन्हें सम्राट उचित पुरस्कार देंगे। जो विरोध करेंगे उन्हें समूल ध्वस्त कर दिया जायगा। फिर वह शर्विलक के साथ वहाँ पहुँचे जहाँ चण्डसेन मुमूर्षु अवस्था में पड़े थे। उन्हें यह देखकर प्रसन्नता हुई कि वे अब स्वस्थ हो आये हैं। यद्यपि अब भी वे संज्ञा शून्य से ही थे।

शर्विलक ने चण्डसेन का हाल चाल पूछा। उनकी शारीरिक अवस्था में पर्याप्त सुधार देखकर भटार्क का परिचय दिया और बताया कि सेनापति ने उन्हें

उज्जयिनी पहुँचाने के लिए हाथी की व्यवस्था कर दी है। क्षण भर वे कभी कभी आँगा न दगते रह फिर रााप उसाा मुग मण्डल क्रोध और क्षोभ स लाल हो उठा। बोल सम्राट समुद्रगुप्त क सनापति भटार तुम मथुरा विजय के मद से अन्धे होकर क्या मथुरा के शासक का उपहास करना चाहते हो? भली भाँति समझ लो कि मैं तुम्हारा शत्रु हूँ। मथुरा और उज्जयिनी के शासकों न मेरी बात नहीं मानी, मुझे अपमानित किया और मुझे मार डालने म कुछ भी नहीं उठा रखा यह सब सत्य है फिर भी चण्डसेन का यह झगडा घरेलू झगडा है। बाहर के शत्रुओं के लिए चण्डसेन सदा प्रचण्ड शत्रु ही बना रहेगा। मुझे असहाय और विपन्न देखकर मेरे ऊपर दया मत करो। चण्डसेन शत्रु स दया की भीख नही मागेगा। तुम यहाँ से चले जाओ। अच्छा हो कि जाने के पहले विपदावस्था म पडे हुए अपने प्रबल शत्रु को समाप्त करते जाओ।"

इस उत्तर से नाविलक स्तब्ध रह गया। उसे अपने धमपरायण उदार स्वामी स एसी आशा नहीं थी। वह समझता रहा कि चण्डसेन के साथ दुर्व्यवहार करने-वाला के विरुद्ध सघर्ष करके उसने स्वामी की वास्तविक सेवा की है। अब वह सोचने लगा कि उज्जयिनी मे किये गय उसके कार्यों के बारे मे स्वामी क्या सोचेंगे! कदाचित कृपा के स्थान पर उसे कोप मिलेगा।

भटार्क उतना विचलित नहीं हुआ। पिछले अभियान के बीच उसने कितने ही प्रभावशाली राजवंशियों से ऐसे और इसमे भी अधिक कठोर वाक्य सुने थे और दृढतापूर्वक उनको भय दिखाकर वश म किया था। आज भी उसकी शक्ति वैसी ही है। मृदु विनीत भाषा म छन्दानुरोध उसका पहला अस्त्र होता था प्रलोभन दूसरा और कठोर दण्ड की धमकी तीसरा। पहले उसने प्रथम अस्त्र का प्रयोग करना उचित समझा। चण्डसेन के बारे म उसने जो कुछ सुन रखा था उससे वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा था कि चण्डसेन पर अन्तिम दो अस्त्रों का प्रयोग कार्य सिद्ध नहीं कर सकता। पहला अस्त्र अर्थात मृदु विनीत भाषा से उसका मन जीतना ही एकमात्र उचित अस्त्र था। आरम्भ मे जैसी उनकी प्रतिक्रिया होगी, उसे देखकर ही आगे की बात सोची जा सकती है। वस्तुत उसके मन मे चण्डसेन के प्रति श्रद्धा का भाव भी था।

भटार्क न मृदु विनीत स्वर मे कहा, 'आर्य चण्डसेन के उपयुक्त वचन है। मथुरा मे प्रवेश करने के पूर्व से ही प्रजावत्सल, धर्मपरायण गुणियों के कल्पतरु आर्यपाद का नाम सुनता आया हूँ। यह जाँच करके मैंने अच्छी तरह देख लिया था कि अधर्म परायण शासन आर्यपाद का अपमान करता रहा है पूज्य पूजा का व्यतिक्रम करता रहा है और आर्यपाद को मार डालने का षडयन्त्र करता रहा है। सम्राट समुद्रगुप्त ऐसे महानुभावों से मित्रता स्थापित करना चाहते है। वे पूरी कुमारिका भूमि मे धर्म का राज्य स्थापित करना चाहते है। व किसी राज्य पर अपना प्रभुत्व नहीं स्थापित करना चाहते। वे अधर्माचरण करनेवालों का उच्छेद और धर्म के अनुकूल आचरण करनेवालों की मैत्री चाहते हैं। आर्यपाद यह कभी

न समझे कि वे किसी राजकुल विशेष के विरुद्ध प्रतिशोध चाहते हैं उनकी इच्छा केवल इतनी है कि इस पुण्यभूमि म धम सम्मत विधि व्यवस्था का प्रभुत्व हो। सोच आय, यह कुमारिका द्वीप (भारतवष) है। तपोनिरता कुमारी पावती ने धम की रक्षा के लिए ही कैलास से कुमारिका अन्तरीप तक जाने का कष्ट उठाया था। उनके पवित्र चरणा से लाछित होन के कारण ही न यह आसमुद्र विस्तीण देश इतना पवित्र हो सका है। उस दश म यदि कोई राजवशीय पुरुष अनाचार मे रत हो जाय आप जैसे महान धम परायण साधु पुरुष के विरुद्ध षड्यन्त्र करे, तो क्या धम की रक्षा हो सकेगी ? कौन दण्ड देगा ऐस मन्गर्वित मदा ध लोगा को ? सम्राट का विजय-अभियान ऐसे ही दुमद लोगा का नशा उतारने के लिए है। आप जैस महानुभाव तो सम्राट के परम मित्र है। शत्रु कैसे हो सकते है आय ? आपम शत्रुता का भाव रखना तो धम के प्रति ही शत्रुता रखना है। नही आय, आप हमारे शत्रु नही है परम मित्र ह।"

भटाक की मदु विनीत वाणी का कुछ शामक प्रभाव पडा। चण्डसेन की कुचित भकुटिया का तनाव कम हुआ। उन्होंने पूछा, 'तुम्हारी बातें तो विनय-मधुर ह। पर इसका क्या यह अथ नही होता कि सम्राट स य बल से विभिन्न राजवशो का उन्मूलन करके उनको एक शासन के अतगत लाना चाहते ह ? मित्रता तो समानो मे हो सकती है न ? मेरे-जैसा नि सबल मनुष्य परम शक्तिशाली सम्राट का कैसे मित्र हो सकता है ?" चतुर भटाक ने बीच म बात रोक ली, "हो सकता है, आय चण्डसेन, हो सकता है। आप असहाय और नि सम्बल कसे ह ? सम्राट के सोचन का ढग वही नही है जा इस समय आपके मन मे है। सम्राट उन लोगो को अपना समानधर्मा मानते है जिनकी धम के प्रति धम सम्मत आचरण के प्रति, इस महान देश की जनता और भूमि की पवित्रता के प्रति उसी प्रकार की भावना है जिस प्रकार की उनक मन म है। मन आपका यश सुना है और सम्राट को निकट से जानने का अवसर पाया है। मेरा विश्वास है आय, कि आप जैस धमप्राण महानुभाव से उनकी मैत्री बहुत उपादय सिद्ध होगी।"

चण्डसन ने भटाक की ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देखा, 'तुम्हारा कहना ठीक हो सकता है सेनापति पर मथुरा और उज्जयिनी पर अधिकार कर लेन के बाद इस कथन म क्या सार रह जाता है ? एक विजित राजवश को उच्छिन्न करके उसके किसी सदस्य से मैत्री का अथ क्या उसकी स्वाधीनता ले लेना नही है ! और परतन्त्र मित्र और दास म अतर ही क्या रह जाता है ?' भटाक ने कहा 'आय, सम्राट समुद्रगुप्त स मिलन पर ही आपको यह बात स्पष्ट हो जायगी। सम्राट अपने को भी धम परतन्त्र मानत ह और अपन मित्रा को भी। धम की प्रभुता के सदभ म ही व मैत्री को कल्याणप्रद मानत है। व प्रत्येक धम परायण राजकुल का उतना ही स्वाधीन मानते है जितना अपन को। सभी धम के बधन म हैं। पूण अतन्त्र कोई नही है। इस नवीन धमनीति का प्रवतन करन क कारण ही हम उन्ह अपना नता मानत है। इसी अथ म वे सम्राट ह। उनका व्यक्तिगत कुछ भी नही

है। अब तक जहाँ जहाँ उनकी सेना गयी है, वहाँ वहाँ यथासम्भव किसी राजवंश का उच्छेद नहीं किया गया। केवल एक बात पर सबकी स्वाधीनता जाग सी गयी है। वह बात है धर्म सम्मत आचरण। आज उत्तरापथ के सभी राजवंश इस पवित्र भूमि में धर्म सम्मत आचरण के आधार पर उनके मित्र बन गये हैं। इसी को हम धर्म परतन्त्रता कहते है। धर्म की प्रभुता ही सब प्रभु है।

चण्डसेन ने कुछ सोचकर शार्विलक से कहा, 'शार्विलक पण्डित, तुम्हारी क्या राय है ? तुमसे बड़ा मेरा हितैषी यहाँ कोई नहीं है तुम्हीं कुछ कहो।" शार्विलक ने विनीत भाव से कहा, 'देवपुत्र, आपसे अभी पूरा समाचार नहीं कह पाया हूँ। उज्जयिनी में भण्ड भानुदत्त ने आग लगा दी थी, मुझे, आपके परिवार को और वसन्तसेना, चारुदत्त और गोपाल आर्यक को बन्दी बनाकर मार डालने का षड्यन्त्र किया था। उज्जयिनी के निरीह नागरिकों की हत्या की गयी। कुल-वधुओं का घर में घुसकर शील भंग किया गया सारी प्रजा भय से त्राहि त्राहि कर उठी। आपके प्रमाद से अत्याचार और अन्याय को हम दाग न लगने नहीं दिया और यद्यपि सबको कष्ट सहन करना पड़ा, पर वह किसी का कुछ बिगाड़ नहीं सका। मथुरा में आपके भय से वह खुलकर खेल नहीं पाता था, यहाँ आकर पूर्ण निरंकुश हो गया था। आर्य, पतित राजा पालक उसी के इशारे पर नाचता रहा। आपके सेवक को प्रजा की सहायता के लिए जो कुछ बन पड़ा, बिना अनुमति के ही करना पड़ा। इस आज्ञा वंचित कार्य के लिए क्षमा मांगने का भी अवसर नहीं मिला।"

चण्डसेन ने दांत पीस लिये, "इस पातकी का ऐसा साहस! तुमने क्या किया पण्डित ?" शार्विलक ने रुक रुककर प्रत्येक वाक्य के बाद उनकी प्रतिक्रिया भांपते हुए कहा, "क्षमा हो देवपुत्र, आर्या वसन्तसेना को मुमूर्षु अवस्था में छुड़ा लिया गया, आपका परिवार श्रुतिधरजी की देखरेख में सुरक्षित है, भानुदत्त और उसके गुण्डे पकड़ लिये गये हैं। जलती हुई उज्जयिनी को अधिकांश बचा लिया गया है और "

"कहते जाओ। रुक क्यों गये ?"

'और धर्मावतार, धूतादेवी का अपमान करने पर गोपाल आर्यक ने पालक का वध कर दिया। इस समय गोपाल आर्यक, चारुदत्त और धूतादेवी राजभवन में है।'

"साधु शार्विलक, तुमने चण्डसेन के सेवक के उपयुक्त ही कार्य किया है। पर यह गोपाल आर्यक तो समुद्रगुप्त का बलाधिकृत है न ? यह यहाँ कैसे गया ?"

"क्षमा हो देवपुत्र, आपका कहना सही है पर वे इस समय तीर्थ यात्रा के लिए इधर आये थे—ऐसा जान पड़ता है। चण्डसेन ने दीर्घ निःश्वास लिया— तो यह भी गया। अब क्या कहते हो ?' बीच में भट्टार्क बोल उठे, 'दक्षिए आर्य चण्डसेन, यह गोपाल आर्यक भी समुद्रगुप्त के मित्र और हलद्वीप के राजा हैं। हलद्वीप का अत्याचारी शासन समाप्त हो गया है और अब वे निश्चिन्त होकर सारे देश में धर्म-राज्य की स्थापना के लिए सम्राट की विशाल वाहिनी का नेतृत्व

कर रहे हैं। बन्धन कुछ भी नहीं है—स्वेच्छा से धर्म-राज्य की स्थापना में संलग्न हैं। मन उद्विग्न हुआ तो तीर्थयात्रा को निकल पड़े। तब भी वे सम्राट के सखा थे, अब भी वे सम्राट के सखा हैं। व्यक्तिगत कुछ भी नहीं है। यह बड़ा ही उत्तम सुयोग है आर्य, आप भी धर्म राज्य की स्थापना में सम्राट के सहायक सिद्ध होंगे।

चण्डसेन ने इंगित समझा। हँसकर बोले—अच्छा, तुम्हारे सम्राट से तो बाद में मिलूँगा, पर पहले उनके इस मित्र से मिल लूँ। फिर कर्तव्य निश्चित करूँगा।

भट्टार्क और शार्विलक ने आदरपूर्वक सहारा देकर चण्डसेन को हाथी पर बैठाया।

छब्बीस

यह भी मालूम नही। उन्होंने पहले स्वयं देख लेने का निश्चय किया। टीले की दूसरी ओर उन्हें एक पुराना खँडहर दिखायी दिया। वहाँ जल पक्षियों को उडते देख उन्होंने अनुमान किया कि कोई ताल या सरोवर वहाँ अवश्य होना चाहिए। खँडहर के पास सचमुच ही एक बड़ा सा पुराना सरोवर था। सीढियाँ टूट गयी थी, पर ऐसी अवश्य थी कि पानी तक पहुँचा जा सके। जान पड़ता था, इधर कोई आता नही। मकान किसी समय निस्सन्देह बड़ा विशाल और भव्य रहा होगा। किसी समृद्धिशाली सेठ ने बनवाया होगा पर अब तो उसकी रग रग में तृण गुल्म निकल आये थे। आँगन में कई अयत्नवर्धित वृक्ष अपनी दुर्दम्य जीवनी शक्ति की घोषणा कर रहे थे। तालाब में जल बहुत स्वच्छ था। उस पर जल पक्षियों के दल के दल उड और तैर रहे थे। माढव्य ने इधर उधर दृष्टि दौडायी। थोडी दूर पर गायों के झुण्ड दिखे। उन्हें चरानेवाले कुछ लडके भी दिख गये। माढव्य उनके निकट गये। लडके दौडकर उनके पास आये। उनके तन पर कोई वस्त्र नही था, केवल कमर में कुछ पत्ते बँधे थे। उन्होंने पूछा कि वे लोग कौन हैं। अपने मित्र की थकान और अचेतावस्था की बात भी बतायी और पूछा कि क्या वे कुछ सहायता कर सकते हैं। लडकों ने बताया कि वे भिल्ल जाति के हैं। उनका छोटा सा गाँव बहुत दूर नही है और यदि उनकी सेवा वे ले सकें तो सहर्ष तैयार हैं। छोटे छोटे अशिक्षित बालकों की इस सेवा वृत्ति को देखकर माढव्य को आश्चर्य हुआ। उन्होंने पहली बार अनुभव किया कि अशिक्षा के कारण कोई सुसंस्कृत होने से वंचित नही रह जाता। शिक्षा से जानकारियाँ बढती हैं अवश्य, पर चित्त का संस्कार तो घर और परिवेश के संस्कारों से ही होता है।

माढव्य के अनुरोध पर बच्चे अपनी गायों के साथ टीले के पास पहुँचे। उन्होंने पत्तो के सुन्दर दोने बनाये और उनमे गायों से दुहकर दूध भरा और कहा कि पण्डित, अपने साथी को पिला दो और तुम भी पी लो। माढव्य ने चन्द्रमौलि को जगाया, दूध पीने का कहा और स्वयं भी पी लिया। चन्द्रमौलि में अब चेतना आयी। माढव्य ने बालकों को कुछ कार्षापण देना चाहा, पर उन्होंने अस्वीकार कर दिया। चन्द्रमौलि को स्वस्थ देखकर बालक बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने और भी सेवा करने की इच्छा प्रकट की, परन्तु माढव्य ने उनके प्रति कृतज्ञता का भाव दिखाकर क्षमा मांगी। लडके वहाँ से हटे नही। माढव्य ने आश्चर्य के साथ देखा कि कुछ लडके दोनों मे पानी भरकर सरोवर से ले जा रहे हैं। कैसा अद्भुत सेवा भाव है! माढव्य और चन्द्रमौलि की आँखों मे आँसू आ गये। लडकों से चलने को कहकर चन्द्रमौलि और माढव्य सरोवर तट पर गये। बालक उनके साथ ही बने रहे। शीतल जल में अवगाहन करके वे पूर्ण स्वस्थ हो गये।

अब दिन काफी ढल आया था। चन्द्रमौलि ने पुराने खँडहर के एक स्थान पर विचित्र दृश्य देखा। गौएँ एक एक करके वहाँ एक शिलाखण्ड के पास आती, उनके थनों से दो चार बूँद दूध वहाँ अवश्य गिर जाता। चन्द्रमौलि को लडकों से यह जानकर बडा ही आश्चर्य हुआ कि नित्य यही होता है। लडकों ने यह भी

बताया कि यही महाकालनाथ का पुराना स्थान है। यहीं से ये उज्जयिनी मन्दिर में ले जाये गये। उन्होंने यह भी कहा कि देवाधिदेव मूल रूप में उन्हीं के देवता हैं लेकिन जो लोग शक्तिशाली हैं वे अब उन्हें उन्हीं के देवता के मन्दिर में जाने नहीं देते। देवाधिदेव उनकी व्यथा समझते हैं सो वे स्वयं एक दण्ड के लिए यहां आकर भक्तों की सेवा ग्रहण करते हैं। तीसरे पहर वे यहां आ जाते हैं और भिल्ल लोगों की सेवा इसी रूप में ग्रहण करते हैं। और किसी समय कोई गाय यहां पहुँचती है तो दूध नहीं झरता। आश्चर्य से चन्द्रमौलि को रोमांच हो आया। चिल्लाकर माढव्य को बुलाया, 'दादा, यह देखो महाकाल की लीला!'

जब तक माढव्य वहां पहुँचे, तब तक चन्द्रमौलि भाव विह्वल हो गया था। उसकी आंखों से अश्रु धारा झरने लगी। मुंह से निबाध भाव से नये श्लोकों की धारा फूट पड़ी। ललित छन्दों की निबाध वर्षा से फक्कड़ माढव्य भी निश्चेष्ट होने लगे।

उस अद्भुत मोहन स्तव का जब तार टूटा, तो माढव्य का शरीर भी बहुत रोमांच कंटकित हो उठा। उन्होंने स्नेहपूर्वक चन्द्रमौलि के सिर पर हाथ फेरा। थोड़ी स्तुति करते हुए बोले, "धन्य हो किशोर कवि! ऐसी वाणी का वरदान तो मैंने कभी नहीं देखा। तुम महाकाल के सच्चे भक्त हो।'

चन्द्रमौलि उसी प्रकार भाव विजड़ित वाणी में बोला, "भक्त हूँ दादा भक्त हूँ? मैं महाकाल के अनुचर के रूप में ही अब तक अपने को धन्य मानता हूँ दादा, उन्मत्त भाव से वर्तमान नटराज के प्रत्येक पद संचार में मैंने छन्द देखा है, उस छन्द के ताल से ताल मिलाने का प्रयास करता रहा हूँ। उनके ललाट देश में द्युतिमान् चन्द्रमा के आलोक में देवलोक के नन्दन वन में सपना भरी आंखों का अलस विलसन देखकर मुग्ध होता आया हूँ। मैंने उनके अंग-अंग से विस्फुरित होनेवाली विराट छन्दोधारा का प्रत्यक्ष देखा है। देखा है दादा, इस विराम विहीन छन्दोधारा के स्पन्दन से महाशून्य सिहर उठा है और उसके वस्तुहीन प्रवाह के प्रचण्ड आघात से वस्तु रूपी फेन के शत शत पुंज रूप ग्रहण करते हैं। देखा है दादा, घनमसृण तिमिर व्यूह में उज्ज्वल आलोक की तीव्र छटा को विच्छुरित होते देखा है! इस तीव्र प्रकाश में मैंने नये-नये रंगों, वर्णों की विचित्र शोभा को प्रस्फुटित होते देखा है? इसी प्रचण्ड गति से उठे हुए घण नत्र में फेन-बुद्बुद की भांति नक्षत्र मण्डलों, ग्रह उपग्रहों को उठते मरते, विलीन होते देखा है! दिन रात यह प्रचण्ड छन्दोधारा मृत्यु के स्नान से विश्व को निरन्तर नवीन जीवन देती रहती है। वहीं से सीखा है दादा, छन्द की महिमा, अबाध गति की सुन्दरता, मृत्यु के भीतर से जीवनी धारा की निरन्तर धावमान विजय-यात्रा! सुना है दादा, महाकाल की प्रचण्ड गति में जीवन का संगीत, सुन्दर का उन्नाम, मधुर का कलगान! मैं शिव का अनुरागी हूँ दादा, गंगा अनुरक्त अनुचर! मैं कवि हूँ! परन्तु यह कैसा नियम है दादा कि जिनके लिए उठाकर ले जाये गये वे ही उनके दर्शनों से वंचित रहें! कुलीनता के अभिमानी श्रीमान हैं कि वे महादेव की

पवित्रता की रक्षा कर रहे हैं और जिनकी पवित्रता की रक्षा का दम्भ किया जा रहा है, वे चुपचाप यहाँ आकर निर्विकार भाव से उनकी सेवा स्वीकार कर रहे हैं। विधाता के विधान में इस प्रकार के आवरण द्वारा क्या हस्तक्षेप नहीं हो रहा है? विधाता ने मनुष्य मात्र को समान भाव से श्रद्धालु बनाया है, समान भाव से सहानुभूति और सौजन्य का आश्रय बनाया है, पर मनुष्य ने उसे जटिल बनाकर विकृत कर दिया है। कल जो अकाण्ड ताण्डव आपने देखा, वह क्या विधाता की इच्छा से घटित हुआ था? निरीह मनुष्य की हत्या, आग लगाकर! विधाता के दिए हुए सौन्दर्य का इस प्रकार विखण्डन, क्या मनुष्य की बनायी गलत व्यवस्था का परिणाम नहीं है? नहीं आर्य, आज मेरी अनेक मान्यताएँ ध्वस्त हो गयी हैं। आज मैं सचमुच उन्मत्त हूँ। महाकाल के विराट सिंहासन के अधीश्वर से मैं आज पूछना चाहता हूँ—देवता, यह सब क्या तुम्हारे इशारे पर हो रहा है? तुमने क्या उन लोगों को क्षमा कर दिया है जो विनाश लीला के लिए उत्तरदायी हैं?

इधर इन बालकों को देखो दादा, कितने पवित्र, कितने भोले, कितने निरीह हैं! इनके हृदय में यदि देवाधिदेव नहीं हैं तो विश्वास करो दादा, वे कहीं भी नहीं हैं। मुझे बताओ दादा, इस क्रूर बीभत्सता पर कैसे आघात करूँ? कैसे छिन्न कर दूँ उस विकट नाग-पाश को जो मनुष्यता को अपनी दुरतिक्रम्य जकड़ में जकड़ता ही चला जा रहा है?

देवता कहाँ हैं दादा? देवता क्या ईंट पत्थरों के जड़ आवरण में बन्दी हैं? क्या मनुष्य का भाव ही देवता को महान नहीं बनाता? क्या इन भोले लोगों की भक्ति इस प्रकार उपेक्षणीय है?

"बोलो दादा, कुछ बोलो! आज तुम्हारे चन्द्रमौलि के हृदय में जो क्षत हुआ है वह क्या कभी ठीक भी होगा?"

माढव्य मुग्ध भाव से किशोर कवि की बात सुन रहे थे। क्या कह रहा है यह भोला कवि! कौन कहता है बाबा कि तू कवि नहीं है। कवि तो है पर यह कहाँ लिखा है कि कवि को उन्मत्त होकर सामने खड़े निरीह व्यक्तियों को छन्द के आघात से जर्जर कर देना चाहिए? तू कवि है पर कवि को दया माया हीन होने का विधान तो कहीं नहीं है। सामने तेरा निरीह दादा खड़ा है और तू निर्दय की भाँति उसे छन्दों की मार से अधमरा करता रहा है।'

चन्द्रमौलि उसी प्रकार आविष्ट था। उसके अधरोष्ठों में थोड़ा कुंचन हुआ। ललाट देश में रेखाएँ उभरीं। उसके कण्ठ में अकारण उत्तेजना के भाव आये। ऐसा जान पड़ा, जैसे सामने महाकाल ही दिख गये हों। हे महाकाल, अब तक मैंने तुम्हारे चरण स्पर्श से पुलकित होते पुष्पों का मोहन रूप ही देखा था। रात को जब मेरा चैतन्य किसी अन्ध तिमिर समुद्र में डूब गया था, मैंने देखा कि तुम्हारा विकट अमंगल ताण्डव विवेकहीन होकर सब कुछ को रौंद रहा है। मैंने नरक की आग बरसानेवाले क्रूर ज्वालामुखी को देखा है। मैंने एक ही साथ दो बातें देखीं।

मेरा मन क्षाभ और कलुष भाव म भर गया—एक तरफ दया, स्पर्द्धित क्रूरता और उन्मत्तता का निलज्ज हुकार जो मब कुछ को उजाडकर रौंदकर ध्वस्त करन पर तुला है दूसरी ओर देखा, भीरुता और निष्क्रियता का दुविधा भरा भीर पद सचार जा चुपचाप आत्म समपण कर रहा है। उस आर लज्जा नही है तो उस ओर दप्त जिजीविषा का कोई चिह्न नही है। महाकाल के चक्रनत्य के चालक देवता, मैं आज क्षुब्ध हूँ। मैं तुमसे न्याय की भीख नही मागता। मागता हूँ वह वज्र वाणी वह दृप्त विचार, वह अकुतोभय वीय जा दोनो पर एकसाथ आघात कर सके। मैं एक ओर इस नारीघाती शिशुघाती वीभत्सता का ध्वस चाहता हूँ, दूसरी ओर उस भीरुता और कायरता का नाश चाहता हूँ जिसने तनकर खडा होने की भावना ही समाप्त कर दी है। महाकाल के सिंहासन पर बैठे हुए विचारो धीर, तुम मुझम शक्ति दो कि इन दाना प्रकार की कुत्सित वत्तियो को धिक्कार द सकू। महाकाल के अधिदेवता आज देवता के माथ छाया की तरह लगे अप देवता को मैं देख सका हूँ। प्रौढ प्रतापशाली नरपतियो की अधिकार लालसा न और सवग्रासी लोभ ने ससार का इतिहास इन्हे केन्द्र बना लिया है। म शक्ति चाहता हूँ इस विकट वीभत्सता को समाप्त कर दनेवाली दप्त वाणी की। सवत्र, हे महाकाल, नाश की आधी बह रही है। विकट घूण चक्र म पडा हुआ जगत 'त्राहि त्राहि' कर उठा है। शक्ति दो मैं तुम्हारे पद सचार की अमत लेपिनी शक्ति चाहता हूँ।'

माढव्य सोचन लगे कि इस लडके का दिमाग ता खराब नही हो गया। भिल्ल बालक खडे खडे तमाशा देख रहे थे। उन्हाने माढव्य को बताया कि कुछ चिन्ता न करें। एक दण्ड बीत जाया है। अब उनके साथी शान्त हो जायेंगे। भावुक लोग अवसर यहा आने पर प्राय इसी प्रकार का आचरण करते हैं। चन्द्रमौलि सचमुच शान्त हुआ। माढव्य ने उसके सिर पर हाथ फेरा। प्यार से बोले मित्र चन्द्रमौलि उठो। आय देवरात का भी तो पता लगाना है।' चन्द्रमौलि ने हाथ जोडकर कहा, 'दादा, थाडी देर और यहा रह लेने दो।"

माढव्य न उस थोडी देर और रहने का अवसर दिया। वे अकेले देवरात का पता लगाने चल पडे। चन्द्रमौलि उसी प्रकार आविष्ट अवस्था मे बैठा रहा भिल्ल बालक कुतूहलपूवक उसे ताकते रहे।

माढव्य लौटकर आय तो चन्द्रमौलि को स्वस्थ और प्रसन्न पाया। वे स्वय म्लान लौट थे। उन्होंने बताया कि आय देवरात का चित्त भी कुछ विकृत जसा लगा था। वे न जाने किस अदृश्य मायाविनी से बात कर रहे थे और एकाएक मथुरा को चल पडे। माढव्य की ओर उन्होंने फिरकर ताका भी नही, मानो उनके साथ उनका कभी का परिचय ही न हो। चन्द्रमौलि न सुना तो एकदम खडा हो गया। बोला, 'दादा, मुझे भी क्षमा करो। मेरा मन अब यहा से भर गया है। इतने दिन तुम्हारे साथ रहकर न जाने किस जन्मान्तर के पुण्य का सुख अनुभव किया। तुम्हारे जैसे उदार सहृदय का स्नेह या ही नही मिल जाता। अवश्य ही हम दाना

बहुत फैलने नहीं दिया। श्रेष्ठि चत्वर के आस पास के मकान ही जले हैं।"

'ये परदेशी लोग कौन थे ?"

'कुछ ठीक पता नहीं चला है। पर उनके नेता का नाम सभी नागरिकों की जिह्वा पर है। वे लोग रात भर आर्य देवरात की जय' बोलते रहे। देखा तो बहुत कम लोगों ने उन्हें पर जय जयकार सबने किया। कहते हैं वह कोई देवता ही रहा होगा।

पास के घर में गोपाल आर्यक विश्राम कर रहे थे। उन्हें चारुदत्त के अंतिम वाक्य सुनायी पड़े। वे धड़फड़ाकर उठ बैठे—'क्या नाम बताया, भैया ? आर्य देवरात ?"

हां मित्र, यही नाम बता रहे हैं।' आर्यक उठकर खड़े हो गये, "आर्य देवरात !"

हां आर्य देवरात !'

'कहां है आर्य देवरात ? किसने देखा उन्हें, मित्र !"

चारुदत्त को आश्चर्य हुआ कि गोपाल आर्यक कैसे आर्य देवरात को जानते हैं। बोले जानते हो, आर्य देवरात को जानते हो ? रुको, अभी उनका पता लगाता हूँ। पर वे हैं कौन ?"

"आर्य देवरात मेरे कौन हैं ? मेरे गुरु हैं भैया, जहां कहीं मिलें, उन्हें यहां ले आओ। कहां दिखे ? किसने देखा ? पूरा बताओ भैया, पूरा बताओ !"

अभी खोजवाता हूँ। पूरा बताता हूँ। जितना जानता हूँ उतना बता दिया है। अपनी भाभी से पूछ लो। मैं अभी आया।'

चारुदत्त आर्यक की उत्सुकता बढ़ाकर चले गये। आर्यक ने अनुनय जड़ित वाणी में पूछा, "भाभी, भैया ने आर्य देवरात के बारे में क्या कहा है ? जल्दी बताओ भाभी।'

भाभी ने स्नेह सिक्त वाणी में कहा, 'विशेष कुछ तो नहीं बताया। इतना ही बताया कि वे कोई परदेशी महात्मा हैं। लोग समझ रहे हैं कि कोई देवता ही रहे होंगे। सब लोग उनकी जय जयकार कर रहे हैं। रात उन्होंने नागरिकों की बड़ी सहायता की है। मुझे भी लगता है लल्ला, कि कोई देवता ही होंगे। ऐसी विपत्ति के समय देवता ही मनुष्य की सहायता करने आ जाते हैं। देवता ही होंगे।"

देवता तो वे हैं ही भाभी मनुष्य रूप में देवता।"

"तुम्हारे गुरु का भी यही नाम है लल्ला ?"

'बिल्कुल यही नाम है। पर वह विपत्ति क्या थी, भाभी ?'

धूता भाभी एकदम सकपका गयी। यह बात आर्यक को अभी नहीं बतानी है ऐसा उनके पति कह गये थे। कुछ सम्हलकर बोली, "सब बातों का ठीक ठीक पता नहीं चला है। वे अब आते होंगे। तब तक तुम भी स्नान कर लो। वे आते ही होंगे। कह गये हैं कि आर्य देवरात का पता लगाकर तुरत ही लौटेंगे। वे अवश्य पता लगायेंगे, देवर ! उनकी बात अन्यथा नहीं होती। वे जितना कहते हैं

उससे अधिक करते है। पता लगाने गये है तो पता तो लगा ही लेंगे हो सकता है कि साथ सत भी आयें। तब तक तुम तैयार हो जाओ।'

गोपाल आर्यक अब तक गुरु देवरात की ही बात सोच रहा था। भाभी की बातो से जब लगा कि देवरात अभी आ सकते है, तो याद आया कि देवरात केवल गुरु ही नही, उसके श्वसुर भी है। आते ही मृणाल के बारे म पूछेंगे। और आयक की अपकीर्ति से वे पहले से ही परिचित होग तो उस अभाजन का मुह भी नही देखना चाहेंगे। चाहे भी तो अभागा आर्यक अपना मुह कैसे दिखा सकेगा ? विषम सकट सिर पर मँडरा रहा है। सबके सामने उसका मुह काला होगा। फटो धरित्री लील जाओ इस अभाजन को ! क्षण भर बाद ही आयक के जीवन का सबसे काला पक्ष सारी दुनिया म उजागर हो जायगा।

भाभी ने आयक के चेहरे पर अचानक छा गयी मलिनता को देख लिया। स्नेह के साथ बोली, 'तुम उदास क्यो हो गये लल्ला ?"

उदास ! भाभी को क्या बताये ! कैसे समझाये कि गुरु के आगमन से शिष्य का हृदय फटकर क्यो टुकडे टुकडे हो जायेगा ? आयक के मुख की विषाद रेखा और भी गहरी होती गयी।

भाभी उसकी यह अवस्था देखकर बहुत बुरी तरह डर गयी— भाभी से कुछ चूक हो गयी क्या लल्ला ? नही मेरे लहुरे देवर, भाभी की बात का बुरा माना जाता है ? हाय राम, यह क्या हो गया तुम्हे ? अभी उनसे अभिमानपूर्वक कहा है कि देवर को प्रसन्न रखने म कुछ उठा नही रखूगी और अभी तुम्हे चोट पहुँचा दी ? पैरा पडू लल्ला, खुश हो जाओ। कुछ भूल चूक हुई हो तो क्षमा करो। हाय हाय तुम्हारा चेहरा कैसा देख रही हूँ !'

गोपाल आयक अपने मे ही खो गया था। भाभी की बात से उसकी चेतना लौटी। यत्न और आयास के साथ हँसने का प्रयास करते हुए कहा, 'क्या कह रही हो भाभी, तुम्हारी बातो का कौन पापी बुरा मानेगा ? नही भाभी मैं दूसरी बात सोचने लगा था।'

'क्या सोचने लगे थे। कल भी सोचने लगे थे आज भी सोचने लगे। अपना कष्ट तुम भाभी को नही बता सकते, देवर ? बोलो, तुम्हे जो कष्ट है वह मुझे बताओ। मेरे सिर की शपथ मुझसे कुछ छिपाओ मत। जो बात माँ से भी नही कही जा सकती, वह भाभी से कही जाती है। तुम अपना कष्ट बताओ। भाभी की छाती टूक-टूक हो जा रही है, लल्ला ! कह दो ना !"

भाभी ने ऐसे दुलार से आयक के सिर पर हाथ फेरा, जैसे कोई माँ अपराध से भीत बालक के सिर पर हाथ फेर रही हो। उस करतल म अमृत की सजीवनी का लेप था। उसका रोम रोम कृतार्थ हो गया। मातृत्व का ऐसा सुधा-लेप उसने बरसो बाद अनुभव किया। उसे ऐसा लगा कि भाभी से कुछ भी छिपाना महापाप होगा। पर कहे तो कैसे कहे क्या कहे ! लज्जा का दुर्भेद्य आवरण तो एक क्षण से गलकर बह गया, पर वाणी की जडिमा नही गयी। आयक

पावनी का स्पर्श पा रहा है, गंगा का पावन स्पर्श पा रहा है, अरुन्धती का वरदान पा रहा है। पर बात की स्पष्ट हो गयी है: चन्द्रा रानी की चातुरी जवाब दे गयी है। वह निर्वाक् निःस्पन्द होकर इस अपूर्व माधुर्य से आप्लावित होता रहा। चन्द्रा ने भी एक बार उसे उदास देखकर इसी प्रकार दुलारा था, पर उस समय वासना चंचल हो उठी थी। आज वह निश्चेष्ट है। आर्यक की आँखों में अश्रुधारा बहने लगी। भाभी के चरणों में उसने अपना सिर रखा। फिर गद्गद वाणी में बोला, "सच कहता हूँ भाभी, पर एक काम करो। कुछ ऐसा उपाय करो कि आर्य देवरात एकदम यहाँ न आ जायें। वे मेरे परम पूज्य गुरु ही नहीं हैं, श्वशुर भी हैं। मेरी कहानी सुन लो। यदि उन्हें समझा सको तो समझा दो। मैं कुछ कह नहीं सकूँगा भाभी! पर उन्हें सामने देखकर मेरी हृदय-गति अवश्य बन्द हो जायगी, मेरे मस्तिष्क की नसें अवश्य फट जायेंगी, मेरा सारा अस्तित्व कच्चे मिट्टी के घड़े की तरह टुकड़े टुकड़े हो जायगा। भाभी, मैं उनको मुँह दिखाने योग्य नहीं हूँ।" आर्यक ने एक बार फिर अपना ललाट भाभी के कोमल कमनीय चरणों पर पटक दिया।

भाभी ने फिर प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरा—"उठो लल्ला, यह मैं कर लूँगी। थोड़ा शान्त हो जाओ। भाभी तुम्हारा उपचार जानती है!"

"मेरा उपचार कुछ नहीं है भाभी।"

"है, है! उठो भी तो!"

भाभी ने और भी सहानुभूति भरे स्वर में रहस्य भरी मुस्कान के साथ कहा, "उठो लल्ला, पहले मुँह हाथ धोकर तैयार हो जाओ। भोले देवरों के सारे मानसिक कष्टों का उपचार भाभियाँ ही जानती हैं। भाभियाँ जादू भी तो जानती हैं, लल्ला!"

आर्यक अवाक्। जादू ही तो देख रहा हूँ। ऐसी शामक हँसी जादू नहीं तो क्या है? भाभियाँ मोहन मन्त्र जानती होंगी।

आर्यक ने भाभी से कुछ भी नहीं छिपाया। सब ज्यों-का-त्यों कह गया। भाभी इस प्रकार सुनती रहीं जैसे पुरानी सुनी हुई कहानी नये सिरे से सुन रही हों। बीच बीच में वे परिहास करने में भी नहीं चूकीं। जब आर्यक ने कहा कि विवाह के बाद भी चन्द्रा उन्हें अटपटे पत्र लिखती रही और आर्यक ने उन पत्रों को मृणाल को दे दिया तो भाभी ने गम्भीर भाव से पूछा कि वे पत्र मृणाल तक पहुँचने के पहले हथेली के पसीनों से भीग तो नहीं गये थे? आर्यक को इस प्रश्न से आश्चर्य हुआ। भोलेपन से कह गया, 'ऐसा तो नहीं हुआ।' भाभी ठठाकर हँस पड़ीं। बोलीं, "हुआ होगा भोलानाथ! जरा ठीक से याद करके कहो।' भाभी की हँसी से आर्यक की समझ में आया कि भाभी परिहास कर रही हैं। पाथियों में लिखे हुए सात्विक स्वेद की बात कह रही हैं। लज्जित होकर कहा, "भाभी, क्रूर परिहास कर रही हो।" भाभी ने गम्भीर होकर कहा, 'देवर से किया हुआ परिहास क्रूर नहीं होता, लल्ला! भाभी को उपचार की बात भी तो सोचनी पड़ती है। और

भी प्रसगो पर भाभी ने परिहास किया जिससे आयक की पपनिया ऐसी गिरी, जैसे गाद म चिपका दी गयी हो। जब उन्होने सरस स्मित के साथ पूछा कि 'च द्रा को तुमने कभी प्यार किया ही नही लल्ला ?' ता ऐसी ही अवस्था हो गयी थी।

उपसहार करते हुए आयक ने कहा, 'तुम्ही बताओ भाभी, म मृणाल को कसे मुह दिखाऊँ, आय देवरात को मुह कैसे दिखाऊँ, भैया जानेंगे तो क्या मुझे क्षमा करेंगे ?"

भाभी ने हँसते हुए कहा 'देवर, अब तुमसे कैसे झगडा करूँ ! अगर तुम मेरे देवर न होकर ननद होते, तो झगड भी लेती। विधाता ने गुण तो सब ननद के दिय ह, बना दिया है देवर !"

ननद के गुण ? आयक का सिर चकरा गया। क्या अभी तक उसन जो कुछ कहा ह उससे भाभी ने यही समझा कि उसमे पुरुषोचित गुण है ही नही ? जो कुछ है वह केवल स्त्री जनोचित है ? भाभी कहना क्या चाहती है ?

भाभी के अधरो पर म द स्मित ज्या का त्या सटा रह गया था। आयक की समझ में नही आता था कि भाभी के मन मे क्या है। क्या वे उसे दयनीय जीव समझ रही है ?

भाभी ने कहा, "सुनो देवर, मेरी बात पर तुम विश्वास करोग या नही नही जानती, पर ये बातें अस्पष्ट रूप मे मुझे मालूम थी। कमे मालूम थी ? बताती हूँ।

'तुम स्वप्न मे विश्वास करते हो ? नही करते ? सब स्वप्न विश्वास करने योग्य होत भी नही। अधिकतर स्वप्ना मे मनुष्य अपनी ही दबायी वासनाओ की काल्पनिक तप्ति पाता रहता है। वे मायालोक म हमारी अतृप्त आकाक्षाओ को साकार रुप देते है। पर सच पूछो ता वे ही क्षणिक माया-लोक नही है। यह सारा ससार ही क्षणिक माया लोक है। है यह भी स्वप्न ही। इस पर विश्वास करना और स्वप्न पर विश्वास न करना, दोना निरथक है। विश्वास करो तो दोना पर करो, नही तो किसी पर न करो। जैस इस दुनिया मे बहुत कुछ झूठा भ्रम है और बहुत-कुछ सत्य प्रतीति है, वैस ही स्वप्न म भी हाता ह। पिछली शिव रात्रि को तुम्हार भैया बहुत उदास होकर लौटे। मैंने दुख का कारण जानना चाहा, नही जान सकी। फिर मैंने भवानी की आराधना की। इनको उदास देखती तो छाती फटने को आती। मन्दिर पास ही है। नित्य भवानी से प्राथना करती कि इन्ह प्रसन्न बनाओ। इनका सब दुख मेरे ऊपर डाल दो। तीन दिन बाद एक विचित्र बात हई। इन्ह और बच्चे को खिला-पिलाकर मैं शयन-कक्ष म आयी। य बच्चे को गोद मे लेकर सो गये थे। देखा, स्वप्न मे भी वैसी ही उदासी थी। क्या करूँ कुछ समझ म नही आता था। मैं मन ही मन भवानी का ध्यान करते-करते सो गयी। दीया बुझाया या नही मुझे याद नही है। मैं सोयी भी कहाँ थी ? पर एकाएक दिव्य प्रकाश से घर जगमग जगमग हो गया। ऐसा लगा कोई दिव्य ज्योति उतर रही है। धीरे धीरे उस ज्योति ने मनुष्य का आकार ग्रहण किया।

दिव्य नारी मूर्त्ति। गोरी छरहरी काया, मानो ज्योति रेखाओं से ही बनी थी। ज्योतिर्मय ललाट से चन्द्रमा के समान स्निग्ध ज्योति झर रही थी और मुख मण्डल का तो क्या कहना! वैसा ललित मोहन रूप तो मैंने कभी देखा नहीं। मैंने समझा, साक्षात भवानी आ गयी है। मैं धड़फड़ाकर उठी और उनके चरणों पर गिर पड़ी। यह स्वप्न नहीं था। अब भी उस ज्योतिर्मय स्पर्श की स्मृति से मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। स्वप्न तो इसलिए समझना पड़ा कि वहीं सोये हुए इनको और बच्चे को कुछ भी आभास नहीं मिला। पर मेरा रोम रोम कहता है कि मैंने प्रत्यक्ष देखा है। देखा है अतुलित ज्योति राशि, उमड़ते सौन्दर्य का पारावार, थिरकते छन्दों का चिदघन वपु अमृतोपम वाणी का सतत प्रवहमान निर्झर! अंग अंग पर शोभा निछावर हो रही थी। क्या रूप था देवर, आहा! उस पर तरुण अरुण किरणों से होड़ करनेवाला कौशेय वस्त्र—काम वासना तरणाक रागम। तपोनिरता पार्वती ही तो ऐसी थी।

'मैं ससम्भ्रम उठ पड़ी। मेरे मुख से केवल इतना ही निकला— माता भवानी के चरणों में धूर्ता का अशेष प्रणाम। आज मेरा जन्म जन्म कृतार्थ है माता!' उन्होंने मुझे रोका—'नहीं बेटी, तू भूल कर रही है। भवानी तो मेरी माता हैं। मैं उनकी पुत्री मंजुलोमा हूँ।' क्या बताऊँ लल्ला, वह वाणी थी या अमृत की धारा थी। मेरा सारा अस्तित्व ही उस सुधा धारा में बह गया। मैं प्रत्यक्ष अनुभव कर रही थी कि मेरी सारी सत्ता बही जा रही है।"

आर्यक कुछ अभिभूत की भाँति सुन रहा था। एकाएक चौंका "क्या नाम कहा भाभी मंजुलोमा? आश्चर्य है!"

"हाँ देवर मंजुलोमा। क्या संगीत है इस नाम में! चकित मृगी जैसे वंशीनाद में विवश हो जाती है, उसी प्रकार विवश हो गयी थी मैं इस नाम के श्रवण मात्र से।

आर्यक को लगा कि भाभी रूप महिमा के बाद अब उस नाम महिमा का बखान आरम्भ करेंगी। अधीर-भाव से कहा 'आगे क्या हुआ भाभी जल्दी बताओ। ऐसा न हो कि बात समाप्त भी न हो और आर्य देवरात आ जायें।"

"हाँ बताती हूँ। मैं उन्हें माताजी कहने लगी। वे मुझे प्यार से बच्ची कहने लगीं। देर तक बात हुई। सब तुम्हारे मतलब की नहीं हैं। जितने से तुम्हारा सम्बन्ध है उतना ही बताती हूँ।'

आर्यक ने चुहल की भयावाली बात नहीं बताओगी? मैं जानता हूँ। तुम जितने का अधिकारी मुझे समझती हो उससे अधिक का अधिकारी माताजी मानती हैं।'

भाभी के मुख पर हल्की लालिमा आ गयी— ऊपर से ही भोला स्मित हो पड़ा। भ तुम्हारी छिपा रखी है! भयावाली बात क्या जानते हो?"

आर्यक ने हँसकर कहा 'भाभी, कुछ तुम जानती हो, कुछ तुम्हारा देवर भी जानता है।

"तो पहले तुम्ही बताओ।"

'अथात देवरात के क्रोध म जल मरो।"

'नही नही कोई क्रोध नही करेगा। तुम कुछ नही जानते सुना ता।"

सुनाओ भी।'

माताजी न विचित्र विचित्र बातें बतायी। उस समय मैं उनकी बात ठीक ठीक समझ नही सकी। तुम्हारी कहानी सुनन के बाद अब कुछ समझ पायी हूँ। पूरी पूरी तरह तो अब भी नही समझ पायी। जानत हो देवर तुम्ह देखते ही क्या पहचान गयी? माताजी न तुम्हार बारे म जसा कुछ बताया था वैसा ही तुम्ह पाया। कह रही थी उन्होने तुमसे कई बार बात करन का प्रयत्न किया पर तुम उन्ह देख ही नही सके। वे बहुत व्याकुल थी। कहती थी उन्ह सब नही देख सकते। व केवल भाव रूप हैं—भाव सत्ता मात्र। मन म कुछ वासनाएँ रह गयी थी उन्ही के कारण सम्पूर्ण रूप स मुक्त नही हो पाती। य वासनाएँ सूक्ष्म लिंग शरीर म चिपकी है। जो उन्ह कभी याद नही करता उसके सामन लिंग शरीर प्रत्यक्ष नही हो पाता। व मणाल के सामने भी गयी थी पर वह उन्ह बिल्कुल नही देख पायी। बडे आयास क बाद वे तुम्हे दिख पायी थी। उन्ह उज्जयिनी म कुछ आभास मिल गया था कि तुम्हारे और इनक बार म कुछ षडयन्त्र चल रहा है। वे तुम्ह तो किसी प्रकार दिख गयी, हालाँकि अपनी पूरी दृष्टि शक्ति का तुम्हारे भीतर प्रत्यारोप करना पडा। जब वह प्रत्यारोप खिच गया तो तुम उन्ह देख नही पाय। मुझसे वह कई बार मिली। कहती थी कि एक तू ही मुझे दख पाती है। इनसे भी एक बार मिली पर अधिक देर तक य उनकी ओर देख नही पाय। जान क्या बात है लल्ला कि मैं उन्हे प्राय देख लती हूँ पर तुम लाग नही देख पात। हा तो उस दिन माताजी न कहा कि देख बेटी आयक आया है। उस पर कुछ सकट आने की आशका है। कल जैसे भी होगा उस तेर पास भेजूगी। इन दोना को लकर तुम तुरन्त घर छोड दना और किसी अन्य सुरक्षित स्थान पर जाना। मैंन कहा कि मेरी बात पर य कसे विश्वास करेंगे तो बोली मै कह दूगी। कल प्रात काल इन्ह भी दिख गयी। कह भी दिया पर बहुत थोडी देर ही इनस बात हुई। कहती थी इनम भी दृष्टि प्रत्यारोप करना पडा। य जब बता रह थ कि माताजी की पलकें स्थिर थी तो मैं उसका रहस्य समझ गयी। उस दिन माताजी न बहुत सारी बातें कही पर सब समझ नही सकी। आज थोडा थोडा समझ पा रही हूँ।

आयक क भी बहुत कुछ समझ म आ रहा था। पर वह भाभी के मुह स अधिक सुनना चाहता था। भाभी माताजी क बारे म अधिक बता रही थी उनके सन्देशा के बारे म एकदम मौन थी। आयक को यही आवश्यक जान पडता था। अनुनय क साथ भाभी स सन्देशा कहने की प्रार्थना करन पर भाभी न चुहल की सुना रही हूँ लल्ला, भाभी का मुह मीठा करना पडता है तब मीठी बात की आशा लगायी जाती है।' आयक ने कहा, भाभी तुम पहल सन्देशा

दिव्य नारी मूर्ति। गोरी छरहरी काया मानो ज्योति रेखाओं से ही बनी थी। ज्योतिर्मय ललाट से चन्द्रमा के समान स्निग्ध ज्योति झर रही थी और मुख मण्डल का तो क्या कहना! वैसा ललित मोहन रूप तो मैंने कभी देखा नहीं। मैंने समझा, साक्षात भवानी आ गयी है। मैं धड़फड़ाकर उठी और उनके चरणों पर गिर पड़ी। यह स्वप्न नहीं था। अब भी उस ज्योतिर्मय स्पर्श की स्मृति से मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। स्वप्न तो इसलिए समझना पड़ा कि वहीं सोये हुए इनको और बच्चे को कुछ भी आभास नहीं मिला। पर मेरा रोम रोम कहता है कि मैंने प्रत्यक्ष देखा है। देखा है, अतुलित ज्योति राशि, उमड़ते सौन्दर्य का पारावार थिरकते छन्दों का चिद्घन वपु अमृतोपम वाणी का सतत प्रवहमान निर्झर! अंग अंग पर शोभा निछावर हो रही थी। क्या रूप था देवर आहा! उस पर तरुण अरुण किरणों से होड़ करनेवाला कौशेय वस्त्र—वास वासना तरुणार्करागम। तपोनिरता पार्वती ही तो ऐसी थी।

मैं ससम्भ्रम उठ पड़ी। मेरे मुख से केवल इतना ही निकला— माता भवानी के चरणों में धूर्ता का अशेष प्रणाम। आज मेरा जन्म जन्म कृतार्थ है माता!' उन्होंने मुझे रोका— नहीं बेटी तू भूल कर रही है। भवानी तो मेरी माता हैं। मैं उनकी पुत्री मंजुलोमा हूँ।' क्या बताऊँ लल्ला वह वाणी थी या अमृत की धारा थी। मेरा सारा अस्तित्व ही उस सुधा धारा में बह गया। मैं प्रत्यक्ष अनुभव कर रही थी कि मेरी सारी सत्ता बही जा रही है!'

आर्यक कुछ अभिभूत की भांति सुन रहा था। एकाएक चौंका, "क्या नाम कहा भाभी मंजुलोमा? आश्चर्य है!"

"हाँ देवर मंजुलोमा। क्या संगीत है इस नाम में! चकित मृगी जैसे वंशीनाद से विवश हो जाती है उसी प्रकार विवश हो गयी थी मैं इस नाम के श्रवण मात्र से।"

आर्यक को लगा कि भाभी रूप महिमा के बाद अब इस नाम महिमा का बखान आरम्भ करेंगी। अधीर भाव से कहा "आगे क्या हुआ भाभी जल्दी बताओ। ऐसा न हो कि बात समाप्त भी न हो और आर्य देवरात आ जायें।"

"हाँ बताती हूँ। मैं उन्हें माताजी' कहने लगी। वे मुझे प्यार से बेटी कहने लगीं। देर तक बात हुई। सब तुम्हारे मतलब की नहीं है। जितने से तुम्हारा सम्बन्ध है उतना ही बताती हूँ।'

आर्यक ने चुहल की भयावाली बात नहीं बताओगी? मैं जानता हूँ। तुम जितने का अधिकारी मुझे समझती हो उससे अधिक का अधिकारी माताजी मानती हैं!"

भाभी के मुख पर हल्की लालिमा आ गयी— ऊपर से ही भोले बनते हो पेट में लम्बी दाढ़ी छिपा रखी है! भयावाली बात क्या जानते हो?

आर्यक ने हँसकर कहा भाभी, कुछ तुम जानती हो, कुछ तुम्हारा देवर भी जानता है।'

"तो पहले तुम्ही बताओ।"
"अथात देवरात के क्रोध मे जल मरो।"
'नही नही कोई क्रोध नही करेगा। तुम कुछ नही जानत सुनो ता।"
'सुनाओ भी।'

माताजी ने विचित्र विचित्र बातें बतायी। उस समय मैं उनकी बात ठीक ठीक समझ नही सकी। तुम्हारी कहानी सुनन के बाद अब कुछ समझ पायी हूँ। पूरी पूरी तरह तो अब भी नही समझ पायी। जानते हो देवर तुम्हे देखते ही क्यो पहचान गयी? माताजी न तुम्हार बार म जसा कुछ बताया था, वसा ही तुम्हे पाया। वह रही थी उन्होने तुमसे कई बार बात करने का प्रयत्न किया पर तुम उन्हे देख ही नही सके। वे बहुत व्याकुल थी। कहती थी उन्हे सब नही देख सकते। व केवल भाव रूप है—भाव सत्ता मात्र। मन म कुछ वासनाएँ रह गयी थी, उन्ही के कारण सम्पूर्ण रूप स मुक्त नही हो पाती। य वासनाएँ सूक्ष्म लिंग शरीर म चिपकी है। जो उन्हे कभी याद नही करता उसके सामन लिंग शरीर प्रत्यक्ष नही हो पाता। व मणाल क सामने भी गयी थी पर वह उन्हे बिल्कुल नही देख पायी। बडे आयास के बाद वे तुम्हे दिख पायी थी। उन्हे उज्जयिनी म कुछ आभास मिल गया था कि तुम्हार और इनके बारे म कुछ षडयन्त्र चल रहा है। वे तुम्हे तो किसी प्रकार दिख गयी हालांकि अपनी पूरी दृष्टि शक्ति का तुम्हारे भीतर प्रत्यारोप करना पडा। जब वह प्रत्यारोप खिंच गया तो तुम उन्हे देख नही पाय। मुझस वह कई बार मिली। इनसे भी एक बार मिली पर अधिक दर तक य उनकी ओर देख नही पाये। जाने क्या बात है लल्ला कि मैं उन्हे प्राय देख लेती हूँ पर तुम लोग नही देख पात। हा तो उस दिन माताजी न कहा कि देग वटी आयक आया है। उस पर कुछ सकट आने की आशका है। कल जैस भी होगा उस तेरे पास भेजूगी। इन दोना को लकर तुम तुरन्त घर छाड देना और किसी अन्य सुरक्षित स्थान पर जाना। मैंन कहा कि मेरी बात पर ये कस विश्वास करेंगे, तो बोली मैं कह दूगी। कल प्रात काल इन्हे भी दिख गयी। वह भी न्निया पर बहुत थोडी देर ही इनस बात हुई। कहती थी इनम भी दृष्टि प्रत्यारोप करना पडा। य जब बता रह थे कि माताजी की पलकें स्थिर थी तो मैं उसका रहस्य समझ गयी। उस दिन माताजी न बहुत सारी बातें कही, पर सब समझ नही सकी। आज थाडा थाडा समझ पा रही हूँ।'

आयक क भी बहुत कुछ समझ म आ रहा था। पर वह भाभी के मुह स अधिक सुनना चाहता था। भाभी माताजी के बार म अधिक बता रही थी उनके सन्देशो के बारे म एकदम मौन थी। आयक को वही आवश्यक जान पडता था। अनुनय के साथ भाभी स सन्देश कहने की प्राथना करन पर भाभी न चुहल की, सुना रही हूँ लल्ला, भाभी का मुह मीठा करना पडता है तब मीठी बात सुनने की आशा लगायी जाती है।' आयक ने कहा, 'भाभी तुम पहले सन्देशा कहो।

मथुरा नगरी निकट आ गयी थी। मल्लाहों ने बताया था कि एक दिन की यात्रा ही शेष है। बटेश्वर तीर्थ आ गया था। मृणाल के अनुरोध पर काका ने नाव रोकवा दी। उद्देश्य था बटेश्वर महादेव का दर्शन और पूजन। वैशाख की प्रचण्ड धूप और लू के कारण रात में ही यात्रा सुगम होती थी। मध्याह्न का समय यथा सम्भव छायादार वृक्षों के नीचे बिताया जाता था, परन्तु मृणाल प्रायः नाव में ही रहती थी। सुमेर काका और चन्द्रा बाहर निकलकर आवश्यक कार्य कर लिया करते थे। परन्तु बटेश्वर तीर्थ की महिमा दूर दूर तक फैली हुई थी। दूर दूर से यात्री आते थे और उस सिद्धिदाता महादेव के दर्शन से अपनी-अपनी मनोकामनाओं की पूर्ति की आशा रखते थे। मृणाल ने भी बटेश्वर महादेव की महिमा सुन रखी थी। इस महिमामय देवता के चरणों में अपनी मनोव्यथा वह निवेदन करना चाहती थी। काका ने सोत्साह उसके निश्चय का समर्थन किया। नाव रोक दी गयी। सूर्योदय होने ही वाला था।

दूसरी नाव भी रुक गयी। इसमें साधारण नागरिक वेश में पुरन्दर के ऐसे विश्वस्त सैनिक थे जो किसी समय आर्यक के अनुचर रह चुके थे और लहुरा वीर की सेना में काम कर चुके थे। अब तक काका ने समझ लिया था कि अपनी नाव के साथ इस दूसरी नाव में कौन लोग हैं। परन्तु ऊपर ऊपर से वे अनजान ही बने रहे। मृणाल और चन्द्रा को भी उन्होंने कुछ बताया नहीं। मृणालमंजरी स्नानादि से निवृत्त होकर चन्द्रा के साथ महादेव के मन्दिर की ओर चली तो सैनिक भी चुपचाप उतरकर मन्दिर के चारों ओर बिखर गये। काका मृणाल और चन्द्रा के पीछे मन्दिर की ओर चले।

एक विशाल वट वृक्ष की छाया में यह मन्दिर था। मन्दिर आकार में बहुत बड़ा नहीं था, पर उसकी सुन्दरता मन मोह लेती थी। वृक्ष काफी पुराना होगा। उसके प्ररोह दूर दूर तक फैले हुए थे और स्वतन्त्र वृक्षों के रूप धारण कर चुके थे। मन्दिर जब बना होगा, उस समय यह वृक्ष इतना फैला हुआ नहीं रहा होगा क्योंकि शिखर के समानान्तर प्ररोह ऊपर लटक आये थे जिन्हें भक्तों ने बीच में ही काट दिया था। उन पर नये हरे पत्ते भी लटक आये थे। ऐसा जान पड़ता था, वृक्ष बार बार अपने पत्र-स्तबक को महादेव के चरणों में उत्सर्ग करने का प्रयत्न करता था और हर बार उसे नीचे तक हाथ बढ़ाने से रोक दिया जाता था, पर न वृक्ष ने हार मानी थी, न रोकनेवाले उपासकों ने। पत्र गुच्छ एक निश्चित ऊँचाई तक ही पहुँच पाते थे। वृक्ष को महादेव के चरणों तक पहुँचने में बाधा पहुँचायी अवश्य गयी थी। परन्तु फिर भी वह अपने आपको विशाल आतपत्र (छाता) के रूप में फैलाकर महादेव की सेवा किये ही जा रहा था। उसकी इस दुर्दम्य लालसा की स्वीकृति के रूप में ही उसका नाम 'वटेश्वर' पड़ा जान पड़ता

विश्वास करो तात, मुझे य पावनी की प्रतिमूर्त्ति लगती है। ऐसा लगता है कि विधाता ने भक्ति को गलाकर, सतीत्व का मिश्रण करके गंगा की धारा स तरल करके, ललिता देवी के साचे म ही इन्हें सिरजा है। मेरा प्रणाम इसी दिव्य रूप को निवेदित हुआ है। मुझसे कोई दोष हुआ हो तो क्षमा करो तात साक्षात पार्वती का प्रणाम किय बिना कैसे रहा जा सकता था। परन्तु आप क्या इन्हे जानते है य कौन है ? किस पवित्र कुल मे इनका जन्म हुआ है ? हिमालय और मैंना क समान किन बडभागी पिता माता का वात्सल्य इन्हे प्राप्त हुआ है ? आप क्या कुछ जानते हैं तात ?

सुमेर काका इस सरल सुदर युवक के प्रश्नो का उत्तर द या न दें कुछ निश्चय नही कर सक। उन्होने केवल इतना ही कहा 'सुनो आयुष्मान म इन्हे जानता हूँ पर तुम्हारी मनोभावना का आदर करते हुए भी तुम्हे सावधान करना चाहता हूँ कि तुम्हार जसे शिष्ट कुलीन युवक को पर-स्त्रियो के बारे म एसे प्रश्न नही करने चाहिए। यह सब प्रकार स अनुचित ह। युवक का चेहरा बुझ गया—'क्षमा करे तात दोष हो गया। पर मैं कोई लम्पट युवक नही हूँ। आपका अनुमान ठीक है। मैं कुलीन वश म ही उत्पन्न हुआ हूँ। आज तक मैंने किसी कुल ललना की ओर कुदृष्टि स नही देखा ह। मैंने इस महीयसी बाला को कुलवधू स बहुत ऊपर की देवी समझकर ही प्रणाम किया है। सुनो तात, मैं नितान्त अकर्मण्य नही हूँ। सहस्रा कुलवधुओ की मान रक्षा क लिए मैं व्याकुल हूँ। इन भुजाओ की ओर दखो तात य अगर कुलवधुओ की मान रक्षा नही कर सकी तो मैं इन्हे वृथा उच्छून मासखण्ड ही समझूगा। मैंने श्रद्धा जनित कुतूहल के कारण पूछा है किसी प्रकार की पाप भावना स चालित होकर एसा नही किया। अच्छा तात, मैं चलता हूँ, मेरे अविनय को क्षमा करें।' कहकर युवक उदास भाव से चल पडा। उसने पीछे फिरकर देखा भी नही।

सुमेर काका इस युवक के श्रद्धापूर्ण वचनो स ऐसे प्रभावित हुए कि प्यार म उस सम्बोधन करत हुए बोले, रुको आयुष्मान तुम्हे बुरा लग गया। कौन नही जानता कि सुमेर काका गँवार ह उन्हे बोलन का ढग नही मालूम। तुम सचमुच बहुत कुलीन लगत हो। हलद्वीप म सुमेर काका की बात का कोई बुरा नही मानता। बच्चा बच्चा उनक गँवारपन का जानकार है। बुरा न मानो चिरजीव, र लोग हलद्वीप स आय है यह मेरी बेटी है, मुझे लोग सुमेर काका कहते हैं, का भी काका बाप का भी काका, बहू का भी काका, सास का भी काका, भी मुझे 'काका' कह सकते हो। मुझे तुम्हारी सच्चाई और विनयशीलता अच्छी लगी है।"

सरल प्रकृति के सुमेर काका सब-कुछ कह गय। युवक प्रसन्न हुआ— तो काका आप लोग हलद्वीप क निवासी हैं। वही हलद्वीप जहाँ क राजा गोपाल आयक है ? आप गोपाल आयक को तो जानत होंगे।' सुमेर काका प्रसन्न भाव से बोले, "गोपाल आयक को तो मैंने गोद म सुलाया है, आयुष्मान। तुम उसे कै

जानते हो ?"

"वाह काका, आपने भी खूब पूछा ! इस भरतभूमि में ऐसा कौन है जो गोपाल आयक को नहीं जानता ! उसी महावीर के प्रचण्ड भुज दण्डों का प्रताप है कि सम्राट समुद्रगुप्त आज आसमुद्र पृथ्वी की विजय का स्वप्न देखता है। आपने ऐसे महावीर को गोद में खिलाया है। आप नमस्य हैं।"

काका प्रसन्न हुए। पर उदास स्वर में बोले, 'सम्राट् कुछ अविमृश्यकारी जान पडता है बेटा बिना सोचे विचारे कर बैठनेवाला ! उसने गोपाल आयक को जाने क्या लिख दिया कि वह न जाने कहा मुह छिपाता फिरता है। हमारी फूल-सी बिटिया को उसने आग में पटक दिया है। देख ही तो रहे हो। हर देवी देवता के सामने ऐसे ही खो जाती है। मैं क्या कर सकता हूँ बेटा, हृदय फटा जाता है, पर विवश हूँ।" कहकर वृद्ध काका ने दीर्घ नि श्वास लिया।

युवक सम्भ्रम के साथ उठ खडा हुआ—"तो तात, ये क्या महावीर गोपाल आयक की पत्नी मृणालमंजरी है ?"

"हा आयुष्मान तुमने ठीक ही पहचाना है।"

"क्षमा करें तात, मैंने सती शिरोमणि मृणालमंजरी का यश बहुत सुना है। उधर गावो मे स्त्रियाँ इन्हे ही 'मैना माजर देई' कहकर पूजती है। मुझसे श्रद्धेय को श्रद्धा निवेदन करने मे कोई चूक नही हुई तात, मैं धन्य हूँ ! मैंने सतीत्व की साक्षात विग्रह रूपा अरुन्धती कल्पा देवी को पहचानने मे भूल नही की। अच्छा काका आप तो सम्राट को दोषी बता रहे है, पर यह क्या सत्य नही है कि गोपाल आयक ही इस सती पत्नी के दुख का कारण बना ? क्या वह किसी परस्त्री को लेकर भाग नही गया था ? क्या इस प्रकार की देवी को छोड देने का अपराधी वह नही है ? लोग क्या इस आचरण की कुत्सा नही कर रहे ?"

नही आयुष्मान, तुम भी समुद्रगुप्त-जैसी बातें करते हो ! जब तक मैं नही जानता था, तब तक मैं चन्द्रा को महापापिनी मानता था। अब जान गया हूँ तो उसे दृढव्रता सती मानने लगा हूँ। आयक बहुत शीलवान् युवक है। वह अपने से आप ही डरता है। चन्द्रा सामाजिक रूढियो का शिकार है। उसकी इच्छा के विरुद्ध उसका विवाह एक नपुसक व्यक्ति से कर दिया गया। वह मन ही मन आयक को अपना पति मान चुकी थी, और जहाँ तक मैं समझ सका हूँ, आयक की मौन स्वीकृति भी उसे प्राप्त हो चुकी थी। पर घटना चक्र कुछ ऐसा घूमा कि आयक का विवाह मृणालमंजरी से हो गया। चन्द्रा अद्भुत साहसी लडकी है, आयुष्मान् ! उसने सारे समाज को, लोक निन्दा को तलवा से रौंदकर अपने अन्तर्यामी का इंगित स्वीकार किया। वह अपने मनोवांछित पति की सेवा चाहती थी, इस मृणाल की तो उसने ऐसी सेवा की है कि मैं विस्मित हो गया। आज भी जो यह जी रही है उसका कारण चन्द्रा की निश्छल सेवा और प्रेम ही है। दोनो को बस 'एक प्राण, दो शरीर' समझो। इतना प्रेम, इतनी सेवा, मैंने तो कभी देखी नहीं। और वह शील-दुर्बल आयक है कि भागा भागा फिर रहा है ! चन्द्रा जैसी खरी तेजस्विनी

सती नारी ससार म दुलभ है। सम्राट न निणय लेन म जल्दी की थी इसलिए मैंने उसे अविमृश्यकारी—विना सोच विचार काम करनेवाला—कहा है। अपराधी कैसे कहूँ। मरे जसा गँवार ऊपर ऊपर स देखकर जैसा सोचा करता था, वसा ही इतना वडा प्रतापी सम्राट् भी सोचे, यह जरा नतुका सा लगता है। सम्राट ता सम्राट मामूली राजा भी धम का अवतार माना जाता है। इस विटिया क पिता आय देवरात वडे पण्डित और ज्ञानी थ। उन्होंने एक बार मुझे बताया था कि धम का तत्त्व बहुत गहराई म रहता है ऊपर ऊपर स देखनेवाले उस समझ नही पात। राजा धर्मावतार होता है। उस गहराई म देखना चाहिए। सम्राट का दोष यह है कि वह ऊपर ऊपर स देखता है और अपने नम सखा गोपाल आयक स भी ऐसी ही आशा रखता है, मै इससे अधिक कुछ नही कह सकता।'

युवक के मुख पर कुछ खिचाव का भाव आया, पर वह उसे पी गया। वह कुछ दर चुपचाप बैठा रहा फिर उसके विशाल ललाट पर पसीने की बूंदें झलक आयी।

जरा रुककर बोला, 'क्षमा करें तात म थोडी और धष्टता कर रहा आपने चन्द्रा को ठीक ठीक पहचानने का अवसर पाया है कभी? कही ऐसा नही कि सारे वद्ध जन अपनी बहू बेटियो को जिस प्रकार पवित्रता की मूर्ति मान लेते है वैसे ही आप भी मान बैठे है?'

सुमेर काका को क्रोध आया, पर युवक के चहरे पर ऐसी गम्भीरता थी कि उनके जैसा फक्कड भी गुस्सा पी जाने को बाध्य हुआ। गला साफ करके बोले, "धष्टता तो तुम सचमुच ही कर रहे हो, आयुष्मान! पर तुम्हारे मुख पर शुचिता के भाव है। उसमे मैं तुम्हारी सच्चाई के बारे म आश्वस्त हूँ। हा, मैं कवल इतना कहना चाहता हूँ कि मैं जो कह रहा हूँ वह पूर्णरूप से परीक्षित सत्य है। सुमेर काका जान-बूझकर झूठ नही बोलता। तुम अब जा सकते हो। अपरिचित परदेशी साथी हो, हमारा तुम्हारा सम्बन्ध उतने ही तक सीमित रहना चाहिए। जाओ।

युवक ने धरती पर सिर रखकर प्रणाम किया और उठकर चलने को प्रस्तुत हुआ। जरा रुककर कहा, 'केवल एक बात और पूछना चाहता हूँ काका। केवल एक बात।'

पूछ लो।"

'मान लीजिए यदि मरे स्थान पर सम्राट समुद्रगुप्त आपस यह बात पूछते तो भी क्या आप ऐसा ही उत्तर देते?"

'सम्राट समुद्रगुप्त ही क्या यदि सम्राटो के सम्राट भगवान् भी पूछें ता यही उत्तर दूँगा। जाओ।"

युवक जाने लगा। इसी समय बच्चे का हाथ पकडे चन्द्रा भी नाव स निकलकर ऊपर आती दिखायी दी। युवक ने उसका आना देख लिया। वह तजी से दूसरी ओर चला गया। चन्द्रा न भी उस देख लिया पर केवल एक क्षण के लिए।

चन्द्रा न आकर काका स पूछा, 'किसस बातें कर रहे थे, काका? यह आदमी

तुमसे क्या पूछ रहा था ?"

काका के मन में अब भी क्षोभ बना हुआ था। बोले, "पता नहीं, कौन है। देखने में तो कुलीन लगता है पर लड़कियों के बारे में बेकार सवाल पूछता है। मुझे क्रोध भी आया, पर क्या जाने क्या बात हुई कि मैं कसकर डाँट भी नहीं सका।"

चन्द्रा ने कहा, "काका, मुझे एक क्षण के लिए जो झलक मिली उससे मुझे लगा कि ये सम्राट् समुद्रगुप्त ही थे। वेश बदलकर प्रजा से बात करना उनका स्वभाव है। वे इसी प्रकार सच्ची बातों का पता लगाते हैं। तुमसे उनकी क्या बातें हुईं ।" काका आश्चर्य से ठक् रह गये, "तू पहचानती है उन्हें ?" चन्द्रा ने कहा, पहचानती हूँ, पर देखा तो सिर्फ एक क्षण के लिए ही। वही होंगे।"

काका ने लापरवाही से कहा, 'होंगे तो होंगे।" और सारी बातें ज्यों की त्यों चन्द्रा से कह दीं। चन्द्रा ने प्रसन्न भाव से कहा "ठीक कहा। ऐसी खरी बात कहनेवाला सम्राट् को अब तक नहीं मिला होगा।" वह प्रसन्नता से खिल गयी, "काका तुम्हारी सारी बातें सुनकर मैं निश्चित रूप से कह सकती हूँ कि वे सम्राट ही थे। कहकर चन्द्रा किसी पुरानी स्मृति में थोड़ी देर के लिए खो गयी। कुछ स्मरण करके हँसती हुई बोली, 'जानते हो काका, सम्राट मुझसे क्यों अप्रसन्न हैं ? भेद जानने की अपनी इसी आदत के कारण।" फिर अपने में आप ही डूबती उतराती सी कहने लगी, 'जब गोपाल आर्यक सम्राट के आदेश पर सेनापति बन कर दिग्विजय के लिए चला गया तो सम्राट ने एक दिन मुझे बुलाया और अत्यन्त सहानुभूति दिखाते हुए कहा, देखो चन्द्रा रानी मैं तुमसे एक बात जानना चाहता हूँ। जब आर्यक जाने लगे तो मैंने उनसे कहा कि बन्धु तुम्हारी सुन्दरी पत्नी को वियोग का दुख दे रहा हूँ परन्तु मुझे आशा है कि तुम शीघ्र ही दिग्विजयी होकर लौट आओगे और उस समय उन्हें जो सुख मिलेगा, उससे सारी वियोग वेदना बहुत सुखद लगने लगेगी। मित्रों में इस प्रकार का परिहास होता ही रहता है, पर आर्यक का चेहरा उतर गया, आँखों में आँसू छलक आये। भरे गले से केवल इतना ही कहा कि मेरा जन्म पत्नी को वियोग की ज्वाला में जलाने के लिए ही हुआ है। मैं ठीक समझ नहीं सका कि वे क्या कहना चाहते थे ? वे क्या तुम्हारे साथ रहकर भी तुम्हें वियोग का दुख देते हैं ? मैंने सम्राट् से साफ कह दिया कि आर्यक की शास्त्र विधि से विवाहिता पत्नी हलद्वीप में सचमुच वियोग ज्वाला से जल रही है। मैं आर्यक को उसके पास ले जाना चाहती हूँ। मैं भी उसकी पत्नी हूँ, पर जिसे आप शास्त्र विधि समझते हैं उस विधि से मैं विवाहिता नहीं हूँ। आर्यक मेरा मनोवृत पति है। सम्राट ने आँखें चढ़ा लीं। उन्होंने क्रुद्ध भाव से कहा, तुम्हारी जैसी निलज्ज महिला मैंने आज तक नहीं देखी। तुम मेरे सामने से हट जाओ।' मैंने भी छोड़ा नहीं। कहा, मैं पतिव्रता हूँ, तुम्हारे जैसे सम्राट भी मुझे उस व्रत से हटा नहीं सकते। मैं कुंचित भृकुटियों की उपेक्षा करना जानती हूँ। और सम्राट् की उपेक्षा की दृष्टि से देखकर चली आयी। सम्राट क्रुद्ध दृष्टि से ताकते रह गये। पर काका, उस समय मैंने अनावश्यक औद्धत्य दिखाया था।

"उस दिन मैंन एरा औद्धत्य न दिखाया हाता तो आज वचार आयक वो भटकना नही पडता और मरी इस वहिन को इतना कष्ट न होता। दुमुख हाना भी पाप ही है।'

जब मणालमजरी का ध्यान टटा तो दिन बहुत चढ आया था। वह अलस मन्थर गति स प्रदक्षिणा करके मन्दिर स बाहर आयी। उसकी आँखा म विचित्र कुतूहल का भाव था। जैस किसी अपरिचित जगत म लौट आयी हो। शोभन दौड कर उसस लिपट गया। चन्द्रा न उस सहारा दिया। नाव म बठत ही प्रसन्न भाव स उसने कहा 'मना आज तेरी तपस्या सफल हुई। सम्राट स्वय आकर सिरदा द गया है।" मृणाल कुछ समझ नही सकी। अभी भी वह किसी दिव्य लोक की चकाचौध स अभिभूत लग रही थी। बोली दीदी आज मचमुच मुझे बहुत मिला है। जानती हो दीदी मुझे भगवान शकर के दशन हुए। एक साथ सहस्रा बिजलिया के कौधने स जैसा प्रकाश होता है वैसा प्रकाश मैंन देखा है। उसी दिव्य ज्योति म मैंन कर्पूर गौर शिव को समाधिस्थ देखा। अपूव शोभा थी दीदी अपूव! कसे बताऊँ कि क्या देखा—बरसने स पहल घनघुम्मर घटा म जो आशा सचारिणी श्यामक शाभा दिखायी देती है निस्तरग विशाल अम्बुराशि म जो भीषण मनोहर अचचल निस्पन्दता दिखायी देती है और ऊध्वगामिनी शान्त अकम्पित दीप शिखा म अन्धकार विमर्दिनी साहस दायिनी जो स्थिरता होती है इन सबको एक साथ मिला दन पर जो अक्षोभ्य शान्ति बनेगी, कुछ कुछ वसा ही। ऐसा जान पडा कि शान्ति सहस्रधार होकर मरे ऊपर बरस रही है। तुम विश्वास करो दीदी मैंन आज अक्षाभ्य मूर्ति देखी है। मन्दिर के सम्पूण गभगह म शामक प्रकाश जगर मगर कर रहा था। इतना प्रकाश था मगर आखें जरा भी चौधियायी नही। क्या वह चन्द्रमौलि महादव के शिर स्थित चन्द्रमा की ज्योत्स्ना थी या वही अन्तराल-विहारिणी पावती की मन्दस्मित का आलोक था? और इसी अदभुत शोभा मे धीरे-धीरे प्रकाश को सिमटत देखा। किस प्रकार वह प्रकाश सिमटत सिमटत एक आलोक विग्रह क रूप म प्रकट हुआ वह म तुम्हे नही बता सकती। सच मानो दीदी, वे ही थ। बिल्कुल व ही। क्लान्त नही थ पर बुरी तरह चिन्तित थ। उनका तज वसा ही था, पर शरीर सूखकर ऐसा दिखायी दे रहा था जसे पत्ता के झड जाने पर कोई महावनस्पति हो। दुखी तो नही लग पर चिन्ता-कातर अवश्य लगते थ। जानती हो दीदी मैंने क्या सुना? कह रह थ 'चिन्ता न करो मना मैं आ रहा हूँ। तुम्हारी चन्द्रा दीदी के पैरा पडकर क्षमा मागूँगा। तुम उनस कहना कि वे क्षमा कर दें।' '

चन्द्रा की आँखें आकण विस्फारित हो गयी सच मना तूने एसा सुना? भोली बहना, तू जसा सोचा करती है वसा ही सपने म भी देखती है और ध्यान म भी अनुभव करती है। मरी प्यारी मना तू साक्षात अरुन्धती है। द तेरा मुह चूम लूँ।' आवेश म चन्द्रा ने मना का मुह चूम लिया। मैना मानो सोत स जागी, 'तुम तो दीदी पागल हो जाती हो।"

"फिर से कह बहिन, फिर से कह ! इस प्रेम परवशा पगली को कोई प्यार से पागल कहनेवाला भी नहीं है। तू ही इस पगली की व्यथा समझती है। अब मैं कृतार्थ हूँ मैना परम कृतार्थ हूँ। तेरे पवित्र हृदय में बैठा हुआ आयक ही सही आयक है। उस निष्कलंक आयक ने जो कुछ कहा है उसे सत्य मानकर अपने को कृतार्थ मानती हूँ। बहिन, इससे अधिक का लोभ तेरी पगली दीदी में नहीं है। बहुत पा गयी रे, बहुत पा गयी ! और क्या सुना बहिन ?"

"दीदी, यह स्वप्न बिल्कुल नहीं था। यह महादेव की कृपा का प्रसाद था। मैंने प्रत्यक्ष देखा है दीदी वे आ रहे हैं, चले आ रहे हैं, भागे आ रहे हैं। बार बार कह रहे थे, 'मैंने चन्द्रा के साथ अन्याय किया है, तुमने उसे प्यार देकर मेरी लाज बचा ली। मैंने तुम्हें भी कष्ट दिया है, चन्द्रा को भी कष्ट दिया है। मैंने अपने पहले के प्रेम को तुमसे छिपाकर तुम्हें भी धोखा दिया है, दुनिया को भी धोखा दिया है, चन्द्रा को भी धोखा दिया है। मैना, मेरी प्यारी मैना, तुम दोनों मुझे क्षमा कर दो। मैं पैरों पड़ता हूँ, क्षमा कर दो।'"

चन्द्रा स्तब्ध !

मृणाल ने ही फिर कहा, "बताओ दीदी, ऐसा कभी मैंने सोचा है ? क्या धोखा दिया है मुझे ? तुम कहती हो, जो सोचती है वही देखती है। मैंने कभी ऐसा सोचा ही नहीं। सच दीदी, कभी नहीं।"

"अपनी सारी सोची बातों को आदमी कहाँ जानता है, मैना ?"

"जानता है, जानता है। मेरे मन में कभी कहीं ऐसी विचित्र बात नहीं आयी, नहीं आ सकती।"

"अरी भोली, चन्द्रा का सत्संग भी तो तुझे मिला है !"

"मिला है, प्राण ढालकर उसे ग्रहण किया है, पर ऐसा विचार मेरे मन में कभी नहीं आया।"

"तो तू इसे सत्य मानती है ?"

"सोलह आना सत्य। यह महादेव का प्रसाद है—सत्य प्रसाद। वे आ रहे हैं। तैयारी करो दीदी, अभ्यागत के स्वागत की तैयारी करो ! चूकना नहीं, दीदी ! यह देखो, मेरे सारे शरीर में रोमांच हो रहा है।'

"मेरे में भी वैसा ही हो रहा है। मगर मैं तेरी जैसी भोली नहीं हूँ। जब तेरी अँगिया दरक जायेगी, तब मेरी आँख फड़केगी। तुझमें अपार ग्राहिका शक्ति है। मेरा संवेदन थोथा हो गया है।"

"तुमने अपना संवेदन मुझे जो दे दिया है। नहीं दीदी, रुको मत, चूको मत। वे आ रहे हैं।"

चन्द्रा ध्यानस्थ !

ऐसे ही समय काका आ गये। शोभन भी उनके साथ ही आ गया। मृणाल और चन्द्रा दोनों खड़ी हो गयीं। काका आसन पर बैठकर बोले, "ले, इस बार नाती से उलझना पड़ रहा है। कहता है, मैं भी पूजा करूँगा। अरे बाबा, तू क्या

पूजा करेगा ! तू तो स्वय देवता है। कहता है, मन्त्र सिखा दो। इसका नाना तो भाग गया। मैं इसे क्या मन्त्र सिखाऊँ ? कहता है नाना को बुलाओ। कहाँ से बुलाऊँ ?"

चन्द्रा ने झपटकर बच्चे को गोद में ले लिया। 'मैं सिखा दूँगी रे, ऐसा मन्तर सिखाऊँगी कि तेरा नाना भी दौडा आयेगा, तेरा बाप भी आ जायेगा।' चन्द्रा आवेश में थी। उसने बच्चे को प्यार से चूम लिया। बाबा हँसने लगे।

मृणाल ने बाबा के पैर छू लिये। बाबा ने आश्चर्य से देखा—मनो का चेहरा उत्फुल्ल कमल की भाँति प्रफुल्ल दिखायी दिया। बाबा ने सन्तोष का अनुभव किया। मृणाल ने कहा, 'बाबा, अभी मैं दीदी को बता रही थी, पूरी बात कह नहीं पायी कि तुम आ गये। वे आ रहे हैं बाबा। दो दिन और यहीं रुक जाओ तो कैसा हो ! और हाँ दीदी, मैंने पिताजी को भी देखा है। वे भी आ रहे हैं। शायद वे एक दिन बाद आयेंगे। लेकिन वे भी आ रहे हैं।'

चन्द्रा ने हँसते हुए कहा, 'आज शिवजी प्रसन्न हैं बाबा, मेरी भोली बहिन ने जो जो सोचा है, सब होनेवाला है।'

मृणाल ने प्रतिवाद किया 'बार बार ऐसा न कहो दीदी, देवता को साक्षी रखके जो देखा है सब घटित होगा—सब।'

चन्द्रा सकुचा गयी। बाबा ठहाका मारकर हँस पड़े।

बाबा ने पुरानी बात याद करते हुए कहा, 'आर्य देवरात एक बार मुझे बता रहे थे कि जो कुछ घट रहा है, वह भाव-जगत में पहले से ही घटा रहता है। निर्मल-निष्पाप चित्त के दर्पण में सब दिखायी दे जाता है। जिसके चित्त में आवरण पड़ा रहता है—त्रिविध मलों का आवरण—वह नहीं देख पाता। बताया था कि कृष्ण भगवान् ने अर्जुन को होनेवाली सारी घटनाओं को अपने भीतर दिखा दिया था। मेरे चित्त पर बहुत आवरण पड़े हुए हैं। दर्पण ही मलिन हो तो दिखेगा क्या। लेकिन तू दो दिन यहाँ क्यों रुकना चाहती है बिटिया ?"

'आदेश हुआ है बाबा, दो दिन और पूजा करने का आदेश।'

'तो रुक जाते हैं। तब तक शोभन पण्डित भी मन्त्र सीख लेंगे। गुरु रूप में चन्द्रा तो है ही।'

बाबा फिर फक्कड़ाना हँसी हँस पड़े।

उनतीस

सुमेर काका की दो बातें समुद्रगुप्त को चीर गयी। सम्राट् अविमृश्यकारी है—बिना सोचे समझे काम कर बैठता है। उसके जल्दबाजी म किय गये निर्णय न फूल सी कोमल बिटिया को आग म पटक दिया है। यदि ये दोनों बातें सत्य हैं तो सम्राट के लिए कलंक है। अविमृश्यकारिता सबके लिए चरित्रगत दोष है, पर सम्राट के लिए तो वह अक्षम्य अपराध भी है। उसके बिना सोचे विचारे निर्णय से सहस्रों को कष्ट हो सकता है, सैकडों की मान मर्यादा ध्वस्त हो सकती है, साम्राज्य ही लडखडा सकता है। उसका प्रत्येक निर्णय 'बहुजन सुखाय, बहुजन हिताय' होना चाहिए। गोपाल आर्यक और चन्द्रा के सम्बन्ध मे क्या सोच विचार कर काम किया गया? क्या इतने बडे विश्वसनीय सखा और सेनापति को खो देना साम्राज्य के हित मे हुआ? समुद्रगुप्त का वह निर्णय तत्क्षण उत्पन्न किसी व्यक्तिगत प्रतिक्रिया का परिणाम नही था? आचार्य पुरगोभिल कहते है कि राजा का एकान्त म किया गया निर्णय धर्म सम्मत नही होता, उसमे राजा के राग-द्वेष से प्रभावित होने की आशंका रहती है। समुद्रगुप्त ने एकान्त मे जो निर्णय लिया, उसम राग द्वेष का स्पर्श था? समुद्रगुप्त के अन्तर्यामी कहते हैं—था।

फिर मृणाल जैसी सती साध्वी देवी यदि कष्ट पाती है तो समुद्रगुप्त की उस थोथी प्रतिज्ञा का क्या मूल्य है कि वह देश की बहू-बेटियों के मान और मर्यादा की रक्षा करेगा और उन्हे किसी प्रकार की परिशोचना म नही पडने देगा। समुद्रगुप्त के रोम-रोम म यह विश्वास भरा था कि किसी देश की सभ्यता और धर्माचार की कसौटी उस देश की स्त्रियों का सम्मान और निश्चिन्तता है। मनु की यह व्यवस्था कि जहां स्त्रियों का सम्मान होता है वहाँ देवता निवास करते हैं, उन्हे बहुत सम्मान योग्य मालूम होती थी। सतीत्व, शील विनय, पवित्रता और सरलता का अनाविल रूप उन्हे स्त्रियों से ही मिलता था। वे मानते थे कि स्त्रियों का सम्मान इन्ही गुणों के कारण विहित है। परन्तु उनके उस निर्णय से क्या इस सम्मान म कोई त्रुटि आयी है? उनके अन्तर्यामी कहते है—नही।

किन्तु समुद्रगुप्त का चित्त उत्क्षिप्त ही बना रहा। मृणालमंजरी को कष्ट हो ता रहा है। सतियों म शिरोमणि, रूप शील और पवित्रता की साक्षात् मूर्ति, परम प्रिय नर्म सखा की सहधर्मिणी मृणालमंजरी यदि उनके किसी निर्णय से दुखी हो गयी है तो कही-न-कही अपराध तो हुआ ही है। मृणालमंजरी सारे देश की शुचिता और पवित्र संस्कारों का ही रूप है। कही-न-कही गलती हुई अवश्य है, कहाँ हुई है, यह स्पष्ट नही हो रहा है।

और चन्द्रा? उसे समझने म भी वही चूक हुई है। सच्चाई, सरलता और तेजस्विता को निर्लज्जता मान लेना ही कदाचित् यह चूक है। सम्राट समुद्रगुप्त मृणालमंजरी की एक झलक पाने के लिए कई दिनों से नाव का पीछा करते आ रहे

थे। उसके रूप, शील, सतीत्व की कहानिया सुन चुके थे। लेकिन अवसर मिला आज वटेश्वर मन्दिर मे। अहा ! कैसा दिव्य रूप है कैसी कमनीय कान्ति है कसी अनुभाव तरगा से घिरी शरीर-यष्टि है ! श्रद्धा और भक्ति की वह मिलित विग्रह है, शील, शोभा और पवित्रता की मोहन त्रिवेणी है। परन्तु चन्द्रा उसे नित्य दिख जाती थी। सेवा ही मानो प्रत्यक्ष रूप धारण करके उपस्थित हुई थी, तितिक्षा ही मानो गगा यमुना की शामक शोभा देखने आ गयी है। निरन्तर सेवा मे निरत दिखती थी, क्या रूप दिया है विधाता ने ! अग-अग से सुषमा सब ओर से मन्तुलित सौन्दय। तेज से प्रदीप्त, जैसे ज्वलन्त दीप शिखा हो जिसे छूने से जल जाने की आशका होती है। स्वच्छ वस्त्र से आगुल्फ आच्छादित उसकी तेजोमयी देह यष्टि को देखकर आश्चय हुआ था उन्हे— *जलचादर के दीप ज्यों झलमलाति तन जोति !* ' सहज भाव से कम निरता तपस्विनी चन्द्रा तरगा पर थिरकती पद्मिनी की तरह लगती थी। वह रात को शायद सोती भी नही थी। हाय हाय, इसी सेवा परायण महिला को अपशब्द कह दिये थे ! भाग्यवान् हो आयक जो तुम्हे स्वेच्छा से अपने को तिल तिल उत्सग करनेवाली प्रेयसी मिली है। और मन्द भाग्य हो समुद्रगुप्त, जो तुमने इस चक्रवाक मिथुन को अधतिमिर की भाति अलग अलग कर देने का असाधु निणय लिया !

परन्तु यह आयक भाग्यवान् है कि हतभाग्य ह ? समुद्रगुप्त को मुह नही दिखायेगा ! क्या हुआ है तेरे मुह मे कि मुह नही दिखायगा ? समुद्रगुप्त दूसरा के लिए राजाधिराज हो चक्रवर्ती सम्राट हो, तेरे लिए तो वह केलि सखा ही ह। बहुत बार झगड चुका है, एक बार और झगड लेगा तो क्या अन्तर आ जाता है। *मित्र के निणय मे त्रुटि रह गयी हो तो मित्र नही समझायगा ता कौन समझायगा ?* गँवार कही का ! अपने से आप ही छिपता फिरता है। इस बार नही रुकेगा समुद्रगुप्त। जब नही समझता था तब नही समझता था। वह जानता है और मानता भी है कि निश्छल सेवा के पसीने से अधिक पावनकारी वस्तु विधाता की सृष्टि मे है ही नही। सेवा का पसीना शरीर और मन के सारे कलुष को धो देता है। हो सकता है कि पहले चन्द्रा मे कोई दोष रहा भी हो पर अब ? निश्छल सेवा के पसीने ने सब धो दिया है। केवल धो ही नही दिया है पवित्रता का पानी चढा दिया है। क्या कुन्दन सी दमकती देह द्युति है ! यह क्या अन्तरतर की पवित्रता के बिना आ सकती है ! नही आयक, समुद्रगुप्त तुम्हे भागने नही देगा। जहा कही होग, अवश्य पकडे जाओगे। समुद्रगुप्त मित्रघात नही होने देगा। नही होने देगा !

समुद्रगुप्त अत्यन्त साधारण नागरिक वेश म थे। वे एक शालि जातीय घोडे पर सवार थे। जान बूझकर उन्होने 'होत्र'-जातीय घोडा नही लिया था। उसम सैनिक होने का सन्देह हो सकता था। उन्हाने किसी अग रक्षक को भी साथ नही लिया था। उनकी सेना नदी के दूसरे किनारे मे जा रही थी—एक दूरी बनाये रखकर। वे विचारा म उलझे हुए थे। सामने से ऊँट पर सवार दो साधारण

नागरिक आ रहे थे। समुद्रगुप्त ने उन्हें देखा ही नहीं। ऊँट पर भटार्क का दूत था। नियमानुसार उसे जय बोलकर अभिवादन करना चाहिए था, पर रास्ते में ऐसा करने की कड़ी मनाही थी। दूत ने अनेक कौशल से उनका ध्यान आकृष्ट करना चाहा, पर वे खोये ही बने रहे। ऊँट पर से कूदकर दूत ने घोड़े की रास पकड़ ली। अब समुद्रगुप्त का ध्यान उधर गया। चुपचाप प्रणाम निवेदन करके भटार्क का मुद्रांकित पत्र उसने सम्राट के हाथों में रख दिया। भटार्क ने लिखा था, 'महाराजाधिराज के प्रताप से विजय हुई है। महावीर गोपाल आर्यक ने राजकीय सेना के पहुँचने के पहले ही अत्याचारी प्रजा पीडक पालक को मारकर उज्जयिनी पर अधिकार कर लिया है। उनके अग्रज महामल्ल श्यामरूप शार्विलक ने नागरिकों की सहायता से शत्रु-सेना को उसी प्रकार बिखरा दिया था जिस प्रकार प्रबल प्रभंजन मेघ घटा को छिन्न भिन्न कर देता है। नगरश्रेष्ठी ब्राह्मण चारुदत्त के प्रभाव से नगर में शांति लौट आयी है। विशिष्ट समाचार भेजे जा रहे हैं। शेषमपोऽभिधास्यति।"

पत्र पढ़कर समुद्रगुप्त घोड़े से कूद पड़े और दूत को कठिन आलिंगन पाश में बाँध लिया—' कहाँ से आ रहे हो भद्र ?"

' उज्जयिनी से धर्मावतार !"

गोपाल आर्यक को तुमने अपनी आँखों से देखा भद्र ?"

' नहीं धर्मावतार, परन्तु उनके अग्रज महामल्ल शार्विलक के दर्शन करने का सौभाग्य मिला है। यह शार्विलक का ही बाहु-बल था जिसने हमें उज्जयिनी पर अधिकार दिलाया है। वे आर्य चण्डसेन को छुड़ाने नगर के बाहरी उपकण्ठ में आये हुए थे। अभी तक वे भी अपने अनुज महावीर गोपाल आर्यक से नहीं मिल पाये थे। सेनापति ने मुझे वहीं से भेजा है।"

'साधु भद्र, ये चण्डसेन कौन हैं ? '

"धर्मावतार मथुरा और उज्जयिनी दोनों राज्यों के राजाओं के पितृव्य हैं ये आर्य चण्डसेन। बहुत धर्मपरायण और प्रजा[illegible] पर रा[illegible]पाल भानुदत्त ने इन्हें बन्दी बना लिया था।"

"साधु भद्र एसे शुभ समाचार देनेवाले को मैं क्या दूँ, पर कुछ दूँगा अवश्य—यह लो मणिस[illegible]

दूत ने सम्राट के बाहु मूल में [illegible] किया। फिर आदेश की प्रतीक्षा में [illegible] कुछ सोचकर कहा, ' भद्र, मैं यहीं प्रतीक्षा कर[illegible] जाओ। [illegible] मना जा रही है। तुम आओ।"

"ज[illegible] दूत गया। [illegible] सेन [illegible] नहीं हुई।

थे। नदी के दूसरे किनारे मे वे सम्राट पर दृष्टि रखते चल रहे थे। ज्यो ही सम्राट रुके, वे नदी पार करने लगे और दूत से इसी किनारे पर आ खड़े हो गये। आकर हाथ जोड़, मौनभाव से अभिवादन करके, व आज्ञा की प्रतीक्षा म खड़े हो गये। सम्राट ने मन्दस्मित के साथ कहा, "धनजय उज्जयिनी से ये बहुत शुभ समाचार ले आये हैं। हमारी सेना के पहुँचने से पहले ही हमारे महाबलाधिकृत गोपाल आर्यक ने उज्जयिनी पर विजय ध्वजा फहरा दी है।" सेनापति धनजय ने उल्लसित होकर वर्धापनिका दी। फिर सम्राट् धनजय को एक ओर खींचकर ले गये, 'मन की शका बताता हूँ, धनजय! जब आर्यक सुनेगा कि मैं निकट आ गया हूँ तो भागने की कोशिश करेगा। उसे भागने न देने का उत्तरदायित्व तुम्हारा है। अभी विश्वस्त अनुचरों को दौड़ा दो। उज्जयिनी के बाहर जानेवाले सभी रास्ते घेर लो। मिले तो कहना कि समुद्रगुप्त उससे मिलने के लिए व्याकुल है। निस्सकोच मिले—मित्र के नाते मिले। जाओ!"

यह व्यवस्था करके समुद्रगुप्त घोड़े पर सवार हुए और तीव्र गति से आगे बढ़ गये। उनका मन अब बहुत प्रफुल्ल था। नम सखा आर्यक से शीघ्र ही मिलने की आशा से वे उल्लसित थे।

उस पार उज्जयिनी विजय का समाचार पहुँच चुका था। सेना एक कोस तक लम्बी पक्ति मे फैली हुई थी। इस उल्लासजनक समाचार म उसम भी उत्साह की लहर दौड़ गयी। देखते देखते यह समाचार सेना के एक सिरे से दूसर सिरे तक फैल गया। सैनिकों में उन्माद-सा छा गया। महाराजाधिराज समुद्रगुप्त के जय निनाद से आकाश गूज उठा। रह रहकर समुद्रगुप्त के साथ ही साथ गोपाल आर्यक का जय निनाद भी सुनायी देने लगा। सेना का पिछला हिस्सा बटेश्वर तीर्थ के उस पार तक फैला हुआ था। एकाएक जय निनाद की तुमुल ध्वनि सुनकर काका चौंक पड़े। हुआ क्या! उस पार से आनेवाले शब्द स्पष्ट सुनायी नही पड रहे थे, पर काका के मन म सन्देह नही रहा कि कुछ बहुत महत्त्वपूर्ण घटना हुई है। कहीं किसी शत्रु सेना से मुठभेड तो नहीं हो गयी? काका जानते नहीं थे कि उस पार समुद्रगुप्त की विशाल वाहिनी प्राय उनके साथ ही साथ चल रही है। वे चिंतित हुए। साथ की नाव भी उस दिन बटेश्वर तीर्थ म ही रह गयी थी। काका जान गये थे कि उसमे हलद्वीप के ही सैनिक हैं पर अभी तक वे उनसे दूर-दूर ही रह रहे थे। अब किसी सकट की आशका से उनके मन मे आया कि इनम मेल जोल बढ़ाया जाय। सैनिक भी ऐसा सोचने लगे थे। काका नदी-तट पर मन्दिर के सामने के एक वट प्ररोह के नीचे बैठे थे। मृणाल और चन्द्रा ने आज बड़ी देर तक बटेश्वर मन्दिर म पूजा की थी। शोभन भी आज यथाविधि स्नान करके मन्दिर मे उनके साथ गया था। अब तीनों नाव म आराम कर रहे थे। दिन ढलने लगा था। यद्यपि अब भी सूर्य की प्रचण्ड किरणें म आग बरस रही थी, फिर भी वट-वृक्ष के नीचे बहुत ठण्डक थी। दूर-दूर तक फैले हुए घने प्ररोह-जालों ने इस तिजहरी म भी अधकार कर रखा था। प्ररोहो की बाढ म मन्दिर के पास के क्षेत्र को ढाककर

कही भी मनुष्य का हस्तक्षेप नही हुआ था। वे यथेच्छ फैले हुए थे। कई जगह उनके घने जमाव ने वट निकुज ही बना दिये थे। काका चिंतित भी थे और इस अद्भुत शोभा से मुग्ध भी थे। वट वक्ष की सघन छाया ने सचमुच ऐसा दृश्य उत्पन्न कर दिया था कि अलकार रचना मे प्रवीण कवि कह सके कि यहा सूर्य की तीक्ष्ण किरणो से भागकर अशेष जगत का अधकार छिप गया है।

एक गठीले शरीर का युवक आया और काका को प्रणाम करके खडा हो गया। काका ने उसे नीचे से ऊपर तक देखा। बोले, 'क्या कुछ कहना चाहते हो, आयुष्मान।"

"हा काका, आपने मुझे पहचाना नही। मैं योगेश्वर का पुत्र सोमेश्वर हूँ। आप लोगो के साथ ही दूसरी नाव मे मैं और मेरे सात साथी चल रहे हैं। हमे आदेश था कि किसी सकट की जब तक सम्भावना न रहे, तब तक हम गोपनीय रहकर आप लोगो की देख रेख करें। अभी तक हमारी यात्रा शान्ति के साथ होती आयी है। पर उस पार जो विकट कोलाहल सुनायी दे रहा है, उससे हम आशका हुई है कि कुछ सकट आ सकता है।"

'उस पार कोलाहल करनेवाले लोग कौन हो सकते हैं?'

"पता लगा रहा हूँ काका, अभी तक कुछ ठीक ज्ञात नही हो सका है।"

'बेटा, तुम योगेश्वर के पुत्र हो और हलद्वीप के ही निवासी हो, यह जानकर बडी प्रसन्नता हुई। आशका मेरे मन मे भी थी पर तुम लोगो के रहते चिन्तित होने की कोई बात नही है। वैसे भी तुम्हारा काका अकेले एक सहस्र के बराबर है पर तुम लोगो के रहते तो कोई शका की बात ही नही है।"

युवक ने हाथ जोडकर फिर कहा, 'काका हमारा पूरा परिचय जान लें। हम आर्यक भैया के साथी रहे है। हलद्वीप मे जब अशान्ति थी और भैया उसका प्रतिरोध कर रहे थे, तो हम उनके साथ थे। उन्ही की आज्ञा से हम हलद्वीप की सेना मे आये है। अमात्य पुरन्दर ने बहुत सोच समझकर हमे भाभी के साथ लगाया है। हमारी नाव के छह मल्लाह भी शस्त्र विद्या मे निपुण है। हम अपनी दोनो भाभियो के सम्मान पर रत्तीमात्र आच नही आने देंगे। आपकी अतुलनीय वीरता से हलद्वीप का कौन निवासी अपरिचित है? पर जब बच्चे साथ मे है तो आप क्या चिन्तित होगे। आपके सामने कुछ बोलना छोटे मुह बडी बात होगी, पर आप विशुद्ध सूचना के रूप मे कहना चाहता हूँ कि हमारी चौदह तलवारें काल सर्प की चौदह जिह्वाओ के समान हैं जो सत्रुओ को चाट जाने का सामर्थ्य रखती हैं। हम महावीर गोपाल आर्यक के सिखाये नौजवान हैं काका! बालकपन मे भी हमने राजा के सैकडो गुण्डो का मान मर्दन किया है। चन्द्रा भाभी मुझे पहचान लेंगी आप। मैं उनके आर्यक के प्रति प्रबल अनुराग का भी साक्षी हूँ और घोर सकट मे उन्होने भैया का प्राण जिस साहस के साथ बचाया था उसका भी।"

चन्द्रा को तुम कैसे जानते हो, बेटा?'

चन्द्रा भाभी को मैं उस समय से जानता हूँ, जब आर्यक भैया के लहुरा वीर

दल मे रहा करता था। चन्द्रा भाभी का साहस सुनकर आप आश्चर्य करेंगे काका। दुष्टों ने आग लगा दी थी और आयक भैया एक बच्चे और उसकी मा को बचाने के लिए जलते घर मे कूद पडे थे। हम लोग 'रुको रुको' कहते तब तक तो वे मा और बच्चे को बाहर लेकर आ ही गये। दोनो बेहोश थे। इसी समय दुवृत्तो ने उन पर प्रहार किया। हम लोग कई लोगो से लड रहे थे। हम पता ही नही चला कि क्या हुआ। भैया के सिर मे चोट पहुचाकर दुवृत्त भाग गये। वे जलते घर के द्वार पर गिर पडे। इसी समय चन्द्रा भाभी न जाने कहा से आधी की तरह आयी और उन्हे उठाकर आग से दूर लायी। इत्ते बडे गबरू जवान को उसने ऐसे उठा लिया जैसे माता किसी अबोध शिशु को उठा लेती है। हम लोग भी दौडे, पर ऐसे कर्तव्यमूढ हुए कि कुछ किसी को सूझा ही नही। भैया के सिर से रक्त की धारा बह रही थी। किसी की ओर देखे बिना चन्द्रा भाभी ने अपनी पूरी साडी फाड दी और क्षत स्थान को फुर्ती से बाधकर रक्त बन्द किया। वह लगभग निवस्त्र हो गयी, पर रक्त तो रोक ही दिया। इसके बाद उसने जो सेवा की, वह कोई देवी ही कर सकती है। लेकिन आयक भैया लजा गये। लजाने की क्या बात थी काका, मगर स्त्रियो के सामने वे सदा इसी प्रकार लजा जाते थे। अब भी उनकी आदत वैसी ही है।" काका ने दीर्घ नि श्वास लिया।

सोमेश्वर आविष्ट सा कहता ही गया, "कोई एक समय ऐसा हुआ है, काका! कई बार भैया की रक्षा के लिए चन्द्रा भाभी ने अपने प्राण सकट मे डाले हैं। मगर उसका प्रेम बडा उत्कट था। आयक भैया उसे प्यार करने मे भी लजाते थे। आज भी उनकी यही आदत है। हम लोग तो उसी समय से चन्द्रा भाभी कहने लगे थे। पर उसका भाग्य कुछ गडबड था। देवी है आर्य पूरी देवी!" मृणाल और चन्द्रा कोलाहल से आशकित होकर नाव से बाहर आ गयी थी। काका को खोजती आयी तो उन्हे किसी से बात करते देख ठिठक गयी। मृणाल ने चन्द्रा के इस साहस और सेवा की बात सुनी तो उसकी आखो मे आसू आ गये। चन्द्रा आगे बढ गयी, मृणाल दर विगलित अश्रु धारा के साथ नाव मे लौट गयी। चन्द्रा ने आगे बढकर कहा "सोमेश्वर, तू कहा से आ गया? काका से क्या अनाप शनाप कहे जा रहा है?"

सोमेश्वर अकचका के खडा हो गया। बडी श्रद्धा के साथ भूमि पर सिर रखकर उसने चन्द्रा को अपना प्रणाम निवेदन किया। उसकी आखो म आंसू आ गये—'साथ ही तो चल रहा हूँ, भाभी!"

"साथ ही चल रहा है और अब तक बताया नही! धन्य है तू।'

"आज्ञा नही थी, भाभी!"

आज कैसे आज्ञा हो गयी?"

"उस पार के कोलाहल के कारण, भाभी!"

"यह कैसा कोलाहल हो रहा है, सोमेश्वर?'

'पता लगा रहा हूँ भाभी! तुम अभी नाव म जाओ। अभी बताता हूँ।"

काका ने भी चन्द्रा को नाव मे जाने को कहा। वह लौट गयी।

सोमेश्वर ने काका से कहा, "काका, अनुमति दें तो इन पेडो के अन्तराल म पटवास लगा दें। अमात्य ने कहा था कि पटवास साथ लेते जाओ। हमारे पास तीन ह। कोई सकट आया तो नाव मे भाभियो का रहना ठीक नही होगा। इन पेडो म सुरक्षा भी रहेगी। पटवास के द्वार पर खडा एक जवान भी सहस्रो को रोक सकेगा। अन्धकार मे वे दिखायी भी नही देंगे। वैसे तो हम नाव की रक्षा के लिए भी तैयार है पर यह स्थान अधिक सुरक्षित होगा। तो आज्ञा है न, काका ?"

काका को यह बात जँच गयी। दोनो ने स्थान का चुनाव किया। सोमेश्वर के इशारे पर पटवास के लिए दस-बारह जवान बाहर आ गये। इनमे कई मल्लाह भी थे। पटवास फुर्ती से खडे कर दिये गये। सघन प्ररोहो के अन्तराल मे ये पटवास छोटे-छोटे दुर्ग से बन गये। तीनो थोडी थोडी दूरी पर खडे कर दिये गये। काका के आदेश से मृणाल, चन्द्रा और शोभन ने एक मे प्रवेश किया। दूसरे म काका के रहने की व्यवस्था की गयी। तीसरा सैनिको ने अपने लिए रखा। पर ये दोनो खाली ही पडे रहे। काका के साथ सैनिक मन्दिर के सामने ही डट गये।

उस पार का कोलाहल और भी तेज़ हुआ। सोमेश्वर ने एक मल्लाह को पता लगाने को नदी पार कर उधर जाने का आदेश दिया था। वह लौट आया। उसने आकर समाचार दिया कि यह सम्राट समुद्रगुप्त की सेना है, मथुरा जा रही है। बीच मे ही किसी प्रकार इन्हे समाचार मिला है कि अकेले ही महावीर गोपाल आर्यक ने उज्जयिनी पर अधिकार कर लिया है। ये लोग महाराजाधिराज समुद्रगुप्त और महावीर गोपाल आर्यक की जय जयकार कर रहे हैं। कई तरह की कहानियाँ सुना रहे हैं। किस प्रकार अकेले महावीर आर्यक ने प्रचण्ड शत्रुवाहिनी को ध्वस्त करके प्रजा पीडक राजा पालक को मारा है किस प्रकार उसकी तलवार ने चक्र की भाति घूम-घूमकर शत्रुओ के शवो से रण स्थल को पाट दिया है। और भी समाचार मिला है कि गोपाल आर्यक के बडे भाई श्यामरूप शार्विलक ने अकेले ही पालक की दूसरी और बडी सेना को मार भगाया है। समाचार भेजे जाने के समय तक दोनो भाई मिल भी नही पाये हैं। लोग कह रहे हैं कि श्यामरूप म एक सहस्र हाथियो का बल है।

काका ने सुना तो उन्मत्त भाव से चिल्ला उठे, "सुन रे बिटिया सुन ले! बोलो, महावीर गोपाल आर्यक की जय!'

पन्द्रह कण्ठो ने एक साथ जय घोष किया। उस समय चन्द्रा की गोद म सिर रखकर मृणाल रो रही थी, दीदी तुमने उनकी कितनी सेवा की है! मैं अभागिन तो उनके किसी काम नही आयी। दीदी, तुम साक्षात जगदम्बा हो।' चन्द्रा दुलार से डाट रही थी 'बेकार बात न कर। मैं तो उस गँवार की दासी ही रही हूँ और रहूँगी। ऐसी बात न किया कर। मुझे अच्छा नहीं लगता। उठ मना, तू उदास होगी तो वह भी उदास हो जायगा!" इसी समय काका का उन्मत्त कण्ठ सुनायी दिया, 'सुन रे बिटिया, सुन ले, बोलो, महावीर गोपाल आर्यक की जय!" चन्द्रा

धड़फड़ाकर उठी। क्या हुआ ? क्या कोई सर्प छिड़ गया ? काका इतने उत्तेजित क्या हैं ? वह बाहर निकल आयी। ज्यों ही चन्द्रा बाहर आयी सोमेश्वर दीप्त कण्ठ से गरज उठा, "बोलो, चन्द्रा भाभी की जय ! सभी मल्लाह आ जुटे थे—सबने उत्तेजित कण्ठ से चन्द्रा भाभी का जय निनाद किया। चन्द्रा चकित थी—"अरे मेरे सोमेश्वर भैया, पागल हो गये हो क्या ! क्या बात है ?" सोमेश्वर सचमुच उन्मत्त था, कोई उत्तर दिये बिना फिर चिल्ला उठा "बोलो, चन्द्रा भाभी की जय !" चन्द्रा विस्मय विमूढ़ !

अब मृणाल भी बाहर निकल आयी। वह भी विस्मित थी। उसे बाहर देखते ही सोमेश्वर ने उन्मत्त भाव से चिल्लाकर कहा 'बोलो, मैना देई की जय !" जय जयकार से दिङ्मण्डल काँप उठा। सब उन्मत्त थे काका उत्तेजना के चरम शिखर पर थे। वे नाच रहे थे। बीच बीच में चिल्ला उठते थे "मेरे बेटे सिंह हैं, स्यार क्या खाकर उनसे जूझेंगे !" फिर झपटकर शोभन को कन्धे पर लेकर चिल्ला उठे "बोलो शोभन युवराज की जय ! शोभन किलकारी मारकर हँस रहा था और काका उसे कन्धे पर लेकर नाच रहे थे। अद्भुत दृश्य था।

चन्द्रा ने गरजकर कहा "भाई सोमा तू ही बता क्या बात है ? काका का तो दिमाग खराब हो गया है।"

सोमा ने कहा, "जय हो भाभी, आर्यक भैया ने अकेले उज्जयिनी पर अधिकार कर लिया है और भगवान् की माया देखो कि श्यामरूप भैया भी वहाँ पहुँच गये हैं। दोनों ने बड़ी वीरता दिखायी है।"

काका फिर उन्मत्त भाव से नाच उठे, "मेरे बेटे सिंह हैं स्यार क्या खाकर उनसे जूझेंगे !"

चन्द्रा को बात समझ में आ गयी। अब उसके उन्मत्त होने की बारी थी। उसने मृणाल का हाथ पकड़कर घसीटा और उसे उन्मत्त [illegible] उठा लिया, "तेरा पातिव्रत धर्म विजयी हुआ, मैना ! मेरा आर्यक [illegible]। मैंने अपनी आँखों उसका पराक्रम देखा है। लिच्छवियों [illegible] टूटा था जैसे बाज बटेरों पर टूटता है। उसकी तलवार [illegible] थी। पर तेरा पातिव्रत ही उसकी शक्ति है। तेरा पातिव्रत [illegible] उसे विजयी बनाता है।'

मैना ने कहा 'छोड़ो दीदी, तुम भी [illegible], तुम्हारा पातिव्रत विजयी हुआ है।

कैसा अनुग्रह है। जब देते है तो छप्पर फाडकर दते हैं। उठो दीदी, पहले मदिर मे चलो। और बातें बाद मे होगी।" चन्द्रा को घसीटती हुई मृणाल वटश्वर महादेव के मदिर म गयी और एकदम लकुट की भाति पृथ्वी पर गिरकर महादव को अपना कृतज्ञ प्रणाम निवेदन किया। चन्द्रा ने भी वैसा ही किया।

प्रणाम निवेदन करके मृणाल आसन मारकर बैठी और ध्यान म डूब गया। चन्द्रा धीरे धीरे मदिर से बाहर आयी। बाहर अब भी सोमेश्वर के साथी खडे थे। उन पर भी भक्ति की मादकता छा गयी थी। वे ऐसे शान्त निस्तब्ध खडे थे जस प्रस्तर की मूर्त्तिया हो। बाहर निकलकर चन्द्रा ने सोमेश्वर को बुलाया। सोमेश्वर विनीत भाव से सामने आकर खडा हो गया। चन्द्रा की वाणी रुद्ध थी। वह केवल आखे फाडकर सोमेश्वर को ताकती रही। उसकी आखो से अश्रु धारा झरने लगी। चन्द्रा की आँखो म क्वचित्-कदाचित ही आसू दिखायी देते थे। सोमेश्वर उसके अन्तरतर को समझने का प्रयास करता हुआ चुपचाप खडा रहा। चन्द्रा की आखो से अश्रु धारा उसी प्रकार बहती रही। सोमेश्वर ने उसका मन फेरने के लिए देवर जनोचित परिहास करना चाहा, पर क्या कहे, उसकी समझ मे नहीं आया। यो ही बोला, "मिठाई नही खिलाओगी भाभी ? कितना बढिया समाचार सुनाया है!" चन्द्रा का मन सचमुच दूसरी ओर फिरा—"किस बात की मिठाई खायेगा भाई सोमा ? समाचार देने की ? उसकी नही खिलाऊँगी। वह तो मेरा जाना हुआ-सा था। पर एक दूसरी बात की मिठाई अवश्य खिलाऊँगी।"

"और किस बात की मिठाई खिलाओगी भला ?"

"यही कि तुम पहले आदमी हो जिसने मुझे भाभी कहा है। तुमने मेरे कानो म अमृत डाल दिया है देवर, इस अभागी को आज तक किसी ने भाभी नहा कहा।" चन्द्रा के करुण आनन्द से सोमेश्वर भीग गया—'इन सबको पहचानती हो भाभी! सब बालक थे, परन्तु तुम्हारा स्नेह सबने पाया था। ये बडे पाजी भाई है भाभी। मुझसे भी पहले तुम्हे भाभी कहते रहे है। ये मेरी मिठाई म हिस्सा मागेंगे।"

चन्द्रा खिल गयी, 'सबको बुलाओ तो देखू।' सब बुलाये गये। चन्द्रा न देखा कई अस्पष्ट परिचित चेहरे लगे। सोमेश्वर न कहा, "क्या मेरे भाइयो, पहचानते हो, ये कौन हैं ?"

सबने उल्लसित स्वर म एक साथ उत्तर दिया, चन्द्रा भाभी, चन्द्रा भाभी!"

सोमेश्वर ने कहा, "देखा भाभी, एक-से एक दुष्ट है तुम्हारे देवर। वे क्या सोमेश्वर को अकेले प्रसाद लेने देंगे ?"

चन्द्रा प्रफुल्ल हुई "सबको मिठाई खिलाऊँगी। सब मेरे प्यारे देवर हैं।"

सबने एक साथ जय निनाद किया, 'चन्द्रा भाभी की जय!'

मदिर म मृणाल के काना तक ध्वनि गयी। उसका ध्यान भग हुआ। बाहर आयी तो चन्द्रा ने कहा, 'देखा मैना, कित्ते देवर जुट गये! सब मिठाई खाना चाहते हैं। खिला सकेगी ?"

मृणाल का चेहरा खिल गया। मन्दस्मित के साथ बोली "अहोभाग्य!"

सुनते ही फिर भाभियों के जय निनाद से आकाश प्रकम्पित हो उठा। सैनिक देवर कुछ और निकट आ गये। एक ढीठ देवर बोल उठा, "बाद वाली मिठाई तो मिलेगी न, भाभी! कहीं यही सब समाप्त न कर देना।"

मृणाल और चन्द्रा एक साथ बोल उठीं, "मिलेगी, और मिलेगी!"

तीन

भटाक और शार्विलक (श्यामरूप) साथ ही-साथ आयक के पास गये। आर्य चारुदत्त ने उन्हें मार्ग दिखाया। आयक बहुत दिनों के बिछुड़े भाई के पैरों में लोट गया। देर काल तक दोनों भाई एक दूसरे से लिपटे रहे। दोनों की वाणी रुद्ध थी। शार्विलक प्यार से आयक का सिर सूंघता रहा। दोनों की आंखों से अविरल अश्रु-धारा बहती रही। भटाक और चारुदत्त इस अपूर्व भ्रातृ मिलन का दृश्य देखते रहे। फिर दोनों शान्त हुए। आयक ने आग्रह के साथ कहा, 'भैया, हलद्वीप लौट चलो!" शार्विलक ने स्वीकृति दी। दोनों भाई एक दूसरे से हलद्वीप लौट चलने का अनुरोध करते रहे। शार्विलक ने बताया कि उसे एक नये पिता और नयी माता के स्नेह पाने का सौभाग्य मिला है। उनका दर्शन करने के बाद ही वह हलद्वीप जा सकेगा। परन्तु आयक को स्पष्ट आदेश के स्वर में उसने कहा कि वह बिना देरी किये हलद्वीप चला जाये। इसी समय वसन्तसेना का सन्देशवाहक शार्विलक को उनके आवास पर जाने का निमन्त्रण लेकर आया। शार्विलक को जाना पड़ा, पर फिर से आयक को प्यार करके यह आदेश देता गया कि वह जल्दी से जल्दी हलद्वीप पहुँच जाये। जब शार्विलक वहाँ पहुँचेगा, तो उसके स्वागत के लिए आयक वहां अवश्य रहे। चारुदत्त ने मुस्कराते हुए आयक से कहा 'भैया के साथ भाभी का भी स्वागत करना होगा।" आयक ने उल्लसित होकर कहा, 'भाभी कहां है भैया, तुमने कुछ बताया नहीं।' पर शार्विलक ने आर्य चारुदत्त से ही कहा, "क्या लड़के को बेकार बातों में उलझाते हो, आर्य!" चारुदत्त ने संकेत समझकर कहा, "अभी भाभी कहां है मित्र, जब होंगी तो तुम्हें और मुझे अवश्य कृतार्थ करेंगी। अभी थोड़ा धीरज रखो।"

चारुदत्त और श्यामरूप शार्विलक विदा हुए। शार्विलक के चले जाने के बाद भटाक को अवसर मिला। दोनों मित्रों में देर तक वार्तालाप होता रहा। मथुरा के अभियान का विस्तृत विवरण पाकर आर्यक को प्रसन्नता हुई। चण्डसेन का विस्तृत

परिचय पाने के बाद और भटार्क से उनकी बातचीत के विश्लेषण के बाद आर्यक ने कहा, 'मित्र भटार्क, चण्डसेन को मथुरा उज्जयिनी के राज्य संचालन का भार देना सम्राट की नीति के अनुरूप होगा। तुम शीघ्र ही इस प्रकार की सलाह सम्राट को भेज दो।'

भटार्क ने हँसते हुए कहा, "तुम्हारे रहते मैं अब संदेश भेजनेवाला कौन होता हूँ। कहो तो संदेश तुम्हारे नाम से ही भिजवा दूँ। मैं अब इस राजनीतिक प्रपंच में नहीं पड़ूँगा। सैनिक हूँ, जहाँ मार-काट करानी हो, वहाँ भेज दो, बाकी सब तुम्हारा। मैं सदा तुम्हारा विनीत सेवक रहा हूँ। आज भी हूँ, कल भी रहूँगा।"

आर्यक इस प्रस्ताव से सहम गया—'मित्र, मैं सम्राट के सामने किसी प्रकार नहीं जा सकता—पत्रलेख के रूप में भी नहीं। तुम्हीं उनके पास जो चाहो लिख कर भेज दो।"

भटार्क ने दृढ़ता के साथ कहा, 'क्या नहीं जा सकोगे? तुमने कोई अपराध किया है? क्या दोष तुमसे हुआ है? कौन नहीं जानता कि आज समूचे उत्तरापथ में जो महाराजाधिराज समुद्रगुप्त का डंका बज रहा है, वह गोपाल आर्यक के प्रचण्ड बाहु-बल और तीक्ष्ण बुद्धि के बल पर ही। मित्र, मैंने उज्जयिनी के सारे समाचार सम्राट् को भेज दिये हैं। वे आज मथुरा आ गये होंगे। तुम्हें तो अब राजनीतिक सुझाव ही भेजना शेष रह गया है।"

आर्यक एकाएक सनाका खा गया—"क्या कहा? सम्राट मथुरा पहुँच गये हैं?"

"हाँ मित्र, वे मथुरा पहुँच गये होंगे और यदि उज्जयिनी भी आ जायें तो आश्चर्य न करना। उन्होंने उज्जयिनी के अभियान का स्वयं नेतृत्व करने का निश्चय किया था, पर मैंने उन्हें लिखकर सूचित कर दिया है कि इस अभियान की आवश्यकता नहीं। गोपाल आर्यक ने अकेले ही इस लक्ष्य की पूर्ति कर दी है।"

"यह तो तुमने अच्छा नहीं किया, भटार्क! मैं तो इस समय उज्जयिनी का दायित्व तुम्हें सौंपने जा रहा हूँ।"

'तो सौंप दो ना! तुम्हारा दिया हुआ सब आदेश सदा मेरे सिर माथे! पर जैसे सेना का संचालन सदा गोपाल आर्यक करते रहे हैं वैसे ही उज्जयिनी का संचालन भी वही करते रहेंगे। उनका सेवक भटार्क इस राज्यभार को उसी प्रकार वहन करेगा, जिस प्रकार भरत ने राम के राज्य का संचालन किया—न कम, न अधिक।' कहकर भटार्क हँस पड़ा— फिर कहा, तुम्हें हलद्वीप भी तो जाना है। अभी तो तुमने शार्विलक को वचन दिया है। पर मेरी एक बात मानो समुद्रगुप्त केवल राजाधिराज नहीं हैं, तुम्हारे सगे भी तो हैं। उनसे मिल अवश्य लेना। अरे भाई, सौ बात बड़े भाई की मानी जाती हैं तो एक बात छोटे भाई की भी मान ली जाती है। बोलो, मानोगे न?"

आर्यक ने कोई स्पष्ट उत्तर नहीं दिया। इतना ही कहा कि अवसर आने पर वह भटार्क की बातों पर अवश्य विचार करेगा। उसने बात को आगे बढ़ने से रोकने

के लिए कहा, "अभी तुम थोड़ा विश्राम करो। फिर बातें होंगी।"

भटार्क के जाने के बाद आर्यक अकेला रह गया। सम्राट मथुरा पहुँच गये हैं। उनसे मैं कैसे मिलूँगा। चन्द्रा के बारे में पूछेंगे तो क्या उत्तर दूँगा। बेचारी चन्द्रा इस समय न जाने कहाँ होगी। केवल लोक लाज के भय से उसने चन्द्रा के उद्दाम प्रेम की उपेक्षा की है। क्या चन्द्रा के प्रति उसने आकर्षण नहीं दिखाया था? क्या सचमुच उसके प्रति उसके मन में परस्त्री भावना थी? क्या मृणालमंजरी से अपनी भावना छिपाने का अपराध उसने नहीं किया? कभी उसने इस सम्बन्ध में मृणालमंजरी से सलाह क्या नहीं ली? उसके अन्तर्यामी कहते हैं कि इस सम्बन्ध में वह झूठ की ओर अधिक झुका है सत्य की ओर कम। भाभी कहती हैं, तुम्हारी सब समस्याएँ हल हो जायेंगी। कैसे होंगी! भाभी न चन्द्रा को जानती हैं न मृणाल को। भाव लोक विहारिणी कोई माताजी न मन न जाने क्या-क्या कह गयी हैं। भोली भाभी ने सबको ब्रह्मवाक्य मान लिया है। कहती हैं तुम अपने को ही अपने से छिपाते रहे हो। ठीक ही कहती हैं। आर्यक ने यह पाप अवश्य किया है। उसमें सत्य का सामना करने का साहस नहीं है। वह असत्य को प्रश्रय देता रहा है और मानता आया है कि दुनिया इस असत्य को सत्य मान लेगी। दुनिया के सामने बहुत समस्याएँ हैं। उसे इतनी फुरसत नहीं है कि हर व्यक्ति के अन्तर में पावकर सच झूठ का निर्णय करती फिरे। व्यक्ति को अपने प्रति आप ही ईमानदार बनना होगा। हर बड़ी वस्तु के लिए कर चुकाना पड़ता है। सत्य से बड़ा धन क्या हो सकता है! उसे पाने में दाम करना पड़ता है। जो सोचता है कि बिना कुछ दिये इतनी बड़ी सम्पत्ति पा जायगा और रख सकेगा, वह मूढ़ है। सत्य को पाना कठिन है, पाकर सुरक्षित रखना और भी कठिन। सम्राट से बातचीत करते समय उसने सत्य को छिपाया था। यह पाप था।

फिर चन्द्रा के बारे में वह सत्य क्या था जिसे स्वीकार करने में वह गड़बड़ [illegible] होता रहा है। भाभी ने पूछा था कि देवर, सच बताओ, तुम्हारे मन में [illegible] के प्रति आकर्षण था या नहीं? क्या तुम दुनिया को यह नहीं दिखाना चाहते थे कि वह गले पड़ गयी है पर मन ही मन प्रसन्न नहीं थे कि [illegible] मिल गयी है? भाभी कैसा छेद देनेवाला प्रश्न करती है। आर्यक क्या [illegible]। चन्द्रा वही उद्दाम प्रेम की मूर्ति है, वही और उससे भी अधिक [illegible] है। संसार में आज तक किस स्त्री ने [illegible] निश्छल सेवा की है। कितनी बार उसने आर्यक के [illegible] दिया है, कितनी बार उसने प्राण [illegible] है, कितनी बार उसने सामाजिक विधि विधानों का [illegible] है। आर्यक ने उसके शारीरिक [illegible] और [illegible] त्याग भावना की ओर ध्यान [illegible]। क्या [illegible] का अधिकाधिक उग्र नहीं बना [illegible] कह दी? आर्यक को चन्द्रा ने [illegible]

नितान्त असत्य थी ? चन्द्रा जब उसे गँवार कहती है, कायर कहती है, निर्बुद्धि कहती है तो वह घबरा जाता है, पर इसमें कितनी आत्मीयता होती है। प्रेम रस में सराबोर इन कुवाच्यों की मिठास अपूर्व ही होती है। परन्तु आयक ने इस आत्मीयता की सदा अवहेलना की है। उसके अन्तर्यामी जानते हैं कि उसकी अवहेलना दिखावा है, संसार की दृष्टि में अपने-आपको निर्दोष दिखाते रहने का नाटक है। हाय, आयक ने अपने को कैसी क्रूर नियति के हाथों बेच दिया है। चन्द्रा कहाँ होगी, किस अवस्था में होगी, जिसने अपने-आपको सारी विधि-व्यवस्थाओं और लोक मर्यादाओं के विरुद्ध झोंककर अन्तरतर के सत्य का अनुपालन किया, उस देवी को कैसा धोखा दिया आयक ने ! चन्द्रा समर्पण की मूर्ति है, आयक वंचना का अवतार। आयक की वंचना को भाभी ने कैसा पकड़ लिया। पूछती हैं, 'देवर, जब तुम चन्द्रा की चिट्ठियाँ मृणाल को देते थे तो वे हथेली के पसीने से भीग गयी होती थीं न, ठीक स्मरण करके बताओ !' करारी चोट करती हो, भाभी। पहले तो उसका गँवारपन उभर आया। फिर उसकी वंचना उजागर हो गया। हृदय पर किसी ने कसके हथौड़े से चोट की थी। भाभी ने कैसा चीर दिया हृदय को ! भाभी, तुम भोली दिखती हो पर समझती सब हो। आयक की लज्जा से भी रस खींच लेती हो ! हाय, यह कैसी विडम्बना है कि आयक जिस बात को सारी दुनिया से छिपाता आया है, वह इस भोली भाभी के लिए करतल पर रखे हुए आँवले के फल के समान स्पष्ट है।

आयक डूब रहा है, उतरा रहा है, बह रहा है। भाभी मिल जाती तो उनसे पूछता कि मेरा कर्त्तव्य क्या है ? क्या सम्राट् से मिल लेना चाहिए या उनकी भी उपेक्षा करनी चाहिए ? उपेक्षा के बाद ? और सम्राट् का सामना करने से भी अधिक भयंकर है मृणाल का सामना करना। क्या सोचेगी वह सुकुमार हृदया प्राणवल्लभा ! आयक उसे कैसे अपना मुँह दिखा सकेगा ? फटो धरित्री, निगल जाओ इस भण्ड को। आयक डूब रहा है।

चन्द्रा को ही क्या मुँह दिखायेगा ? मगर वह क्षमा कर देगी। चन्द्रा क्षमा की मूर्त्ति है। थोड़ा मान तो करेगी, पर तुरन्त प्रसन्न हो जायेगी। प्रेम परवशा चन्द्रा जानती ही नहीं कि अभिमान क्या होता है। कायर कहेगी, गँवार कहेगी और सेवा में जुट जायगी। सेवा में ही वह अपने को पाती है, अपने प्यार को पाती है, अपनी चरितार्थता अनुभव करती है। चन्द्रा सेवामयी है। आयक उतरा रहा है।

और मृणाल ? उस भोली ने तो जाना ही नहीं कि मान क्या होता है, ईर्ष्या किसे कहते हैं, असूया किस खेत में पैदा होती है। उसे, अपना सुख क्या है इसका पता ही नहीं, वह तो एक बात जानती है, सुख वह है जिसमें आयक सुखी रहे। चन्द्रा ने कई बार कहा कि मृणाल के पास चलो। वह दोनों को प्यार कर सकती है। पर पवित्र चेता चन्द्रा ने जिस बात को अनायास समझ लिया, उसे कुटिल आयक नहीं समझ सका। दोनों साथ रह सकती हैं, आयक की दोनों आँखों में

समान। आयक कल्पना की धारा मे बह रहा है। इसी समय अमृतवर्षी मधुर स्वर मे भाभी ने पूछा, "किस उधेड-बुन मे पडे हो देवर ? कहो तो बता दू ? जैसे रंगीन रेशमी धागे से किसी ने आयक के मन को खीच लिया हो। वह अकचकाकर उठ के खडा हो गया। भाभी कब से खडी है ? अत्यन्त विनीत भाव से प्रणाम निवेदन करके मन्दस्मित के साथ आयक न कहा, "क्षमा करो भाभी, एक समस्या का समाधान आपको करना होगा।'

'मैं जानती हूँ लल्ला, तुम दूसरो को भुलावा दे सकते हो, भाभी तुम्हारे अन्तरतर मे झाककर देख चुकी है, उसे भुलावा नही दे सकते। और कौन-सी समस्या हो सकती है तुम्हारी ? तुम्हारी भाभी सब जानती ह। समस्या यही है न कि चन्द्रा और मृणाल दोनो तुम्हारी दो आखें हैं इनम कौन दाहिनी ह कौन बायी है ? यही है न समस्या ?'

"भाभी तुम बडा वेधक परिहास करती हो !"

"वेधक है ? मैं तुम लोगा की रग रग पहचानती हूँ। तुम्हार भया की भी यही समस्या थी। अच्छा देवर, आख दाहिनी हो या बायी, क्या फक पडता है !'

'तुम्हारा ही प्रश्न है, भाभी, तुम्ही उत्तर दो। पर भैया की दो आखा की क्या बात है भाभी ?"

'फिर तुमने मान लिया कि समस्या दो आँखा की ही है। भैयावाली जानना चाहते हो, अपनीवाली छिपाना चाहते हो।'

आयक हँसकर चुप हो गया। भाभी न ही आग कहा, 'देखो लल्ला, तुम भैया से अधिक भाग्यवान् हो। उनकी दो आँखो का फैसला दोना आँखा को ही करना पडता है पर मेरे भोलानाथ, तुम्हारे तो एक तीसरी आँख भी है उसे क्या भूल जाते हो !"

"देखो भाभी, पहेली न बुझाया करो। तुम्हारा देवर पहले ही हार मान चुका है। वह तुम्ह भोली समझता है तो तुम उसे बमभोला समझती हो। तुम्ही ठीक समझती हो, अब गँवार पर नागरी का कृपा-कटाक्ष निक्षेप करो और पहली को ऐसी भाषा म समझाओ जिससे वह ठीक से समझ सके।"

'तो भोलानाथजी, अपनी तीसरी आँख को ठीक से जान लीजिए। रोज रोज नागरी का कृपा कटाक्ष नही मिलेगा।'

'बताओ भाभी मेरे गँवारपन की शपथ है ठीक-ठीक समझा दो।'

'बलि बलि जाऊँ इस गँवारपन पर ! तो गिनो उँगली पर।"

"गिन रहा हूँ।"

"एक आँख चन्द्रा रानी। ठीक ?"

'ठीक, एक !"

दूसरी आँख मैना रानी, ठीक ?"

"ठीक, दो !'

"और तीसरी आँख तुम्ही बताओ भोलानाथ !"

"बता दू ?"

"बनते हो जान-बूझकर बनते हो !"

'नही भाभी, पहले बता देता हूँ, फिर तुम बताना कि ठीक हुआ या नही।"

"बताओ।"

'तीसरी आख है मेरी नागरी भाभी। ठीक ?"

पेट मे दाढी है तुम्हारे ! है न ?"

"तीसरी आख स देखन का प्रयत्न कर रहा हूँ। हाँ, है !"

कितनी बडी है ?"

"बहुत बडी। यही भाभी के बराबर !"

'ठीक देखा ह, शाबाश ! अब जब दो आँखो को देखना हो तो तीसरी आँख से पूछ लिया करो !"

आयक आनन्द लहरी मे बह रहा है—"पूछ रहा हूँ भाभी ! ऐ मेरी तीसरी आख बता तो मेरी दो आखे क्हा है, कसे है ?"

भाभी आयक के अभिनय से हँसते हँसते दोहरी हो गयी—"वाह लल्ला, नाटक करो तो नाम कमाओगे।"

आयक न गम्भीर होकर कहा, "हँसी नही कर रहा हूँ, भाभी, सचमुच मैं उलझन मे हूँ। तुम्ह बार बार याद कर रहा था कि तुम ठीक जान लो कि मरे सिर पर विचिकित्सा के बादल मँडरा रहे ह। राजाधिराज समुद्रगुप्त मथुरा आ गय हैं दो तीन दिना मे उज्जयिनी भी आ सकते है। मैं उनके सामने जाऊँ या न जाऊँ ?"

भाभी भी गम्भीर हो गयी। "क्या नही जाओगे ? तुमने उनका क्या बिगाडा है ? नासमझी उन्ही न की है, तुम क्या लज्जित होगे ?"

'ठीक है भाभी पर अभी तो उससे भी कठिन समस्या है। मृणाल के सामने कौन सा मुह लेकर जाऊँगा ?"

"यही सोने सा चमकता मुह। इसमे मुझे तो कोई खाद दिखायी नही देता। मृणाल को दिखायी द ता भाभी को बुला लेना। मैं उसे समझा दूगी। बस, आवश्यकता नही पडेगी। तुम पतिव्रताओ को जानते नही। समझे मेरे देवरजी !'

'जिसे जानता ही नही, उसे समझूगा क्या ?"

'नही समझत हो तो भाभी की बात मानो। पहने समुद्रगुप्त से मिलो। राजा हो या राजाधिराज मनुष्य तो होगा ही। एकदम मित्र की भाँति मिलो। हर बात का खुलकर जवाब दो। दोष हो या गुण, छिपाओ कुछ भी नही। वे प्रिय कह या अप्रिय, वाणी का और शिष्टाचार का सयम न छोडना। मीठा तो तुम बोलते ही हो, साफ भी बोलो। अपने अन्तर्यामी पर अधिक विश्वास करो, लोक जल्पना पर कम। सत्य सबस बडा है यह मत भूलो।

'मृणाल के पास अवश्य जाओ—गहराई के साथ, विश्वास के साथ विनय के साथ, शील के साथ। उसकी महिमा का सम्मान करो। सती की आँख म वरदान

रहता है। कभी कोई ऐसा काम न करो जिससे उस आँख म क्षोभ का सचार हो। उसकी तपस्या से तुम विजयी हुए हो, यह बात कभी न भूलना। देखो लल्ला, पुरुष का अहम् और उसकी भीरुता, दोनों ही स्त्री को कष्ट देते हैं। भूलना मत।

"चन्द्रा को मैं जितना समझ पायी हूँ वह निर्भीकता स्पष्टता और साहस में अद्वितीय नारी है। उसका मूल भाव माता का भाव है। वह तुम्हारी और मृणाल की सेवा के लिए लालायित है। उसके इस सेवाभाव की उपेक्षा करोगे तो अच्छा नही होगा। उपेक्षा करके तुमने उसे चण्ड बना दिया है। सेवा की उपेक्षा से ही ससार की आधी समस्याएँ हैं। इस विषय म तुम अपने भैया को गुरु मानो।'

आयक तृप्ति अनुभव करता रहा। भाभी देवबाला की तरह लग रही थी। ऐसा लग रहा था स्वय सरस्वती आकर आयक को मार्ग बता रही है। वह कृत-कृत्य हो गया। इतना स्पष्ट तो उसे कभी सूझा नही। वातावरण बहुत गम्भीर हो गया था। भाभी माता की भूमिका म पहुँच गयी थी। आयक का मन भार-मुक्त हो गया था। देवर भाभी के धरातल पर लौट आने के उद्देश्य स उसने चुहल की।

"सब मानूगा, एक बात का छोडकर। भैया को नही भाभी को गुरु मानूगा।'

"उससे अच्छा होगा कि मृणाल को गुरु मान लेना।"

'अच्छा भाभी, तुम इतना स्पष्ट कैसे देख लेती हो?"

'देवर की आख से! समझे?'

इसी समय आय चारुदत्त आये और धूतादेवी के हाथ म एक पत्र देकर दूसरी ओर आसन फिराकर बैठ गये।

पत्र से सुगन्ध निकल रही थी। आयक को इस सुगन्ध ने आकृष्ट किया। सुन्दर सँवारे हुए भोजपत्र पर कुसुम राग से लिखे हुए पत्र म कस्तूरी और अगर के उपलेपन की सुगन्ध थी। धूतादेवी ने आदर के साथ पत्र खोला। पढते पढते उनकी आँखें चमकने लगी और अधरों पर मन्द मुस्कान बिखर गयी। बोली 'लो देवरजी, उज्जयिनी म तुम्हारी भाभियो की सेना तयार हो गयी है। एक तो मेरी नटखट बहिन वसन्तसेना है। अकेली ही एक सेना है। दूसरी अभी वधू वेश म ही है—तुम्हारे भया श्यामरूप की नयी बहू—मदनिका। चलो वसन्तसेना का निमन्त्रण बहुत मुखर है—कहती है 'दीदी सुना है तुम्हारे पास एक गँवार देवर आया है। जल्दी उसे भेज दो। मेरे यहाँ वन्दरो का नाच होनेवाला है, एक कम पड रहा है।' दूसरी बेचारी क्या कहे! चुपचाप प्यार निवेदन किया है। अब तुम्हारी यह भोली भाभी कहाँ तक तुम्हारी रक्षा करे?"

गोपाल आयक और चारुदत्त हँसने लगे।

आयक बहुत प्रसन्न है। मन म कोई भार नही है। छिप के नही जा रहा है।

उज्जयिनी मे उसे निर्मलीकरण का रसायन मिला है। तीना भाभिया के निर्मल सरस परिहास न उसमे नया जीवन भर दिया है। वह अब तक भाभी के प्यार स वचित रहा है। भगवान ने एक ही साथ तीन भाभियो का वरदान दिया। जीवन उस जीन योग्य जान पडता है। उज्जयिनी का मोह अब उसे छोड नही रहा है। वह भागगा नही, भाभी का उपदेश उसके हृदय म सीधे पैठ गया है—'अब लौं नसानी, अब ना नसैहा।'

भटार्क को उज्जयिनी का भार सौपकर वह मथुरा की ओर चला। भटार्क न पहले ही दूत भेज दिया। इस बार आयक यथा नियम शालि वाहन (घुडसवार) होकर निकला। भटार्क न उसकी इच्छा के विरुद्ध गुप्त रूप मे कुछ अग रक्षक आगे पीछे कर दिय। आयक तीव्र गति से आगे बढा। वह आज सारी मानसिक कुण्ठा को घाडे की टाप स कुचल देना चाहता है। वह सरपट भागा जा रहा है, उस अपना इच्छित अथ मिल गया है। चन्द्रमौलि न कहा था, 'जिसका मन ईप्सितार्थ पर स्थिर भाव से जमा हो उसे, और नीचे की ओर ढरकती वारिधारा को, कौन रोक सकता है ? कोई नही रोक सकता।' आयक अब मृणाल के सामन जायगा, चन्द्रा की खोज करेगा, सम्राट् को स्पष्ट और सच्चा उत्तर दगा। भाभी की बाता से अधिक स्पष्ट और खरा उपदेश उसे नही मिल सकता। कैसी अद्भुत है भाभी की अन्तर्दृष्टि ! गहराई तक वेध देती है। कहती है, 'तुम पतिव्रताओ को नही जानते। आयक सचमुच नही जानता। भाभी को ही देखो, कही कोई गाठ नही है, जहा ईर्ष्या होनी चाहिए वहा स्नह है, जहा असूया होनी चाहिए वहा आदर है, सब कुछ को दबाकर, सब-कुछ से रस खीचकर प्रफुल्ल शतदल की तरह विराज मान है। कैसा अद्भुत सहज भाव ह ! मन्दस्मित के सामने शरत्कालीन चन्द्रमा की कोमल मरीचिया भी फीकी पड जाती है चलती है ता चरणो से अनुभाव की तरगें बिखरती रहती है। आयक धन्य है जो उसे ऐसी भाभी मिल गयी। आय चारदत्त सचमुच भाग्यवान है। आयक भाग्यहीन है अब नही रहगा। बहुत नाच चुका गोपाल, अब अभिनय बन्द कर, जहा तेरा सच्चा विश्राम है वहाँ चल। लोकापवाद के भय से अन्तरतर का निरादर न कर। पतिव्रता की महिमा की अवहेलना न कर।

किसी ने जय ध्वनि की, 'महावीर गोपाल आयक की जय हो !" आयक का ध्यान भग हुआ।

धनजय हूँ आय, प्रणाम स्वीकार हो !"

"धनजय ? हलद्वीप के अमात्य पुरन्दर के भाई धनजय ?" आयक न कुछ विस्मित होकर पूछा।

हाँ आय, मैं पुरन्दर का भाई धनजय ही हूँ।"

'यहा कैसे आय हो भाई धनजय ? तुम क्या सम्राट् की रक्षावाहिनी के बलाधिकृत नही रह ? यहा इस तरह क्या घूम रह हो ? '

"अब भी हूँ, आय। महाराजाधिराज के साथ मथुरा आया हूँ। महाराजा

धिराज का सन्देश लेकर ही सेवा में उपस्थित हुआ हूँ।"

"महाराज ने क्या आज्ञा दी है, भद्र ?"

"महाराजाधिराज ने सन्देश भिजवाया है कि वे अपने नमसखा गोपाल आर्यक से मिलने को व्याकुल हैं। वे अपने महाबलाधिकृत से नहीं, अपने नमसखा से मिलने को आतुर हैं।"

"सम्राट महाबलाधिकृत से तो रुष्ट होंगे, भाई धनंजय ?

"किसने आपके मन में ऐसी पाप आशंका पैदा कर दी आर्य ? सम्राट् को तो हमने इतना प्रसन्न कभी देखा ही नहीं। आप तो जानते ही हैं कि वे समुद्र के समान गम्भीर रहते हैं उनका समुद्रगुप्त नाम कितना सार्थक है, पर मथुरा आते ही उन्होंने मुझे बुलाकर कहा, 'आयुष्मान धनंजय, गोपाल आर्यक नरशार्दूल है। उसने जो पराक्रम दिखाया है उसकी कोई तुलना नहीं हो सकती। मैंने उसके हृदय पर वृथा चोट पहुँचायी थी। अब मैं वास्तविक स्थिति से परिचित हो गया हूँ। तुम उज्जयिनी जाओ और जैसे भी हो मेरे मित्र को यहाँ ले आओ। उसका राजकीय सम्मान तो उचित अवसर पर किया जायेगा पर व्यक्तिगत रूप से मैं उसका स्वयं सम्मान करूँगा।' सम्राट की आँखें डबडबा आयी थीं। आज तक मैंने कभी उनके मुख-मण्डल पर विकार के चिह्न नहीं देखे थे। पहली बार चन्द्रमा के आने की आशा मात्र से समुद्र में ऐसा चांचल्य देखा है आर्य !'

'साधु, भाई धनंजय, चलो, मैं आ रहा हूँ।"

धनंजय चला गया—मथुरा की ओर। आर्यक का मन और भी हल्का हुआ। उसने धीरे-धीरे *मथुरा की ओर घोड़ा बढ़ाया।*

सम्राट मिलनेवाले हैं। बीच का इतिहास न चाहते हुए भी आर्यक के मन में दीवार खड़ी कर रहा है। कैसा मिलना होगा ! आर्यक अब वही आर्यक नहीं बीच में कालदेवता ने उसे बदल दिया है, सम्राट वही सम्राट नहीं है बीच में इतिहास विधाता ने उनके आगे भी काँटा खड़ा कर दिया है— सखि वै तुम वै, हम वै ही रहे, पै कछू के कछू मन ह्वै गये हैं !'

आर्यक की गति धीमी हो गयी।

कहाँ सारे देश को अत्याचार और शोषण से मुक्त करने का संकल्प और कहाँ व्यक्तिगत पचड़ों का व्यवधान। अगर सम्राट हर आदमी के व्यक्तिगत जीवन को अपने मन के अनुकूल बनाने का प्रयत्न न करते तो क्या हानि होती ? वृहत्तर मानवीय समस्याओं के सुलझाने के प्रयास में छोटी मोटी घरेलू बातों को ले आने का क्या औचित्य है ? आर्यक विक्षुब्ध भाव से सोचता चला जा रहा है।

परन्तु सम्राट् को धर्म का रक्षक होना चाहिए। क्या अधिकतर सामाजिक उलझनों का कारण यही नहीं है कि शासन का जो सर्वोपरि संरक्षक है वह धर्म के बारे में उदासीन है। पालक का व्यक्तिगत जीवन क्या धर्माचार के विपरीत होने से ही अनर्थ का कारण नहीं बना ? *सुरा और सुन्दरी उसके व्यक्तिगत जीवन के ही तो लक्ष्य थे। प्रजा उसके विरुद्ध क्या हो गयी ? क्या अच्छा है—राजा का प्रजा*

के व्यक्तिगत जीवन मे हस्तक्षेप या प्रजा की राजा के व्यक्तिगत जीवन के प्रति सतर्क दृष्टि ? पहले आर्यक को उखाड फेंका और दूसरे को उखाड फेंकने म आर्यक ही निमित्त बन गया। धर्म क्या व्यक्ति को आश्रय करके चलता है या वह अन्त वैयक्तिक सम्बन्धों का आश्रय बनाता है ? दूसरा पक्ष ही ठीक जान पडता है। एक से अधिक व्यक्तियों का ससर्ग हो तो कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य का प्रश्न उठाता है। एक का दूसरे के साथ सम्बन्ध न हो तो धर्म की आवश्यकता ही क्या है। सम्राट धर्म का सरक्षक होता है इस कथन का अर्थ है कि सम्राट अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धों का नियामक होता है। पर क्या सम्राट स्वय एक व्यक्ति नहीं है ? वह भी क्या अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धों की विशुद्धता का विषय नहीं है ? अनुराग विराग, ईर्ष्या असूया क्या उसके अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धों की विशुद्धता के निर्णय को धर्म-सम्मत रहने देंगी ? आर्यक अनुभव कर रहा है कि सम्राट के निर्णय म कहीं कोई त्रुटि अवश्य है पर कहा ? *आर्यक समझ नहीं पा रहा है कि यह त्रुटि कहा है।* भाभी ने कहा था बहुत सहज भाव से कहा था, 'सत्य अविभाज्य है। क्या सारे अनर्थों मे सत्य को विभक्त करके देखने की दृष्टि तो नहीं है ? आर्यक व्याकुल भाव से सोच रहा है। वह सम्राट की कठोर धर्म परायणता को जानता है, पर यह भी जानता है कि उसके सारे धर्म सम्बन्धी विचार एक ही आधार पर टिके हुए हैं— सयम। ठीक भी है। यदि धर्म अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धों का आश्रय करके रहता है तो सयम—शरीर मन वाणी पर अकुश—रहना ही चाहिए। दो या अधिक व्यक्तियों के सम्बन्ध के साधन तो ये तीन ही है—शरीर, मन और वाणी। शरीर का कर्म मन का चिन्तन और वाणी का सम्प्रेषण ये ही तो अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धों के आधार हैं—मन, वचन, कर्म। सम्राट शरीर के कर्म पर अधिक बल देते हैं। आर्यक जानता है और मानता भी है। पर शरीर-सम्बन्धों को इतना महत्त्व देना क्या ठीक है ? पुराण ऋषियों ने क्या कहा है ? वे तीनों का सन्तुलन चाहते है। तीनों के सन्तुलन से सत्य अविभाज्य रह सकता है। सम्राट सन्तुलन की बात नही सोचते। तो क्या सम्राट पुराण ऋषियों की अवहेलना के दोषी हैं ? अभी यह प्रश्न सामने आयेगा। सम्राट मिलेंगे।

आर्यक की गति और भी शिथिल होती जा रही है। घोडा भी समझ रहा । वह धीरे धीरे आगे बढ रहा है।

कुछ लोग इकट्ठे होकर किसी से कुछ सुन रहे थे। सुनानेवाला बहुत मीठे स्वर से कुछ सुना रहा था। सुननेवाले तन्मय होकर सुन रहे थे। आर्यक ने सोचा, इनकी तन्मयता भग नहीं होनी चाहिए। धीरे से घोडे से उतर गया। घोडे को एक जगह बाधकर वह भी सुनने की इच्छा से चुपचाप उधर ही बढ गया—अवश की भाति। सुरीले कण्ठ से गानेवाले ने पहले समझाया, शायद ले भी बहुत-कुछ समझा चुका था। आर्यक बीच म प्रसग का था। शिव ब्रह्मचारी वेश मे परीक्षा लेने पूछ रहे थे, हे सुकुमारि, बडी कठोर त

न कोई पतिव्रताओं की मुकुट मणि, किसी-न किसी मित्र की सहधर्मचारिणी, कोई न कोई अरुन्धती-स्वरूपा भाभी मुझे भी गुरु रूप में मिल ही जायगी।"

आर्यक इंगित समझकर ठठाकर हँस पड़ा, "लगता है मित्र, कि माढव्य शर्मा का सत्संग व्यर्थ नहीं गया है!"

चन्द्रमौलि का चेहरा खिल गया।

उधर सम्राट ने बीच रास्ते में ही आर्यक की अगवानी की। दोनों सखा देर तक एक दूसरे से लिपटे रहे। अविरल प्रेमाश्रुओं ने बिना कुछ कहे ही सब-कुछ कह दिया। चन्द्रमौलि मुग्ध गदगद भाव से यह मिलन देखता रहा। दोनों ही मौन, दोनों ही प्रेम निर्भर! सम्राट ने ही मौन भंग किया—"कल तुमसे बात करूँगा मित्र आज अधिक आवश्यक कार्य है, तुमसे विदाई ले रहा हूँ। वह नाव है जाकर बैठ जाओ। सामने वटेश्वर तीर्थ है। वहां तुम्हारी प्रतीक्षा हो रही है। देर न करो। कल मिलेंगे।"

'कौन प्रतीक्षा कर रहा है, सखे?" आर्यक ने पूछा।

सम्राट ने कहा, "समय नष्ट न करो। प्रतीक्षा करा-कराके जान ले ली, अब पूछते हैं कौन प्रतीक्षा कर रहा है!"

आर्यक सनाका खा गया। सम्राट की रहस्यपूर्ण हँसी से कुछ-कुछ अनुमान लगाने लगा।

चन्द्रमौलि की ओर देखकर सम्राट् से बोला, "महाकवि चन्द्रमौलि हैं। मेरे परम मित्र हैं।'

सम्राट ने कहा, 'मेरे साथ जायेंगे। आओ बन्धु!" आर्यक की ओर देखे बिना ही चन्द्रमौलि को खींचकर सम्राट अपने साथ ले चले। आर्यक नाव में जा बैठा। कौन प्रतीक्षा कर रहा है? क्या मृणाल है? यह समुद्रगुप्त पूरा बताता ही नहीं। बता देता तो क्या बिगड़ जाता? हँसना ही जानता है—हँसा बाबा, आर्यक भी हँसता हँसता सब सहेगा।

सम्राट के इस प्रकार के बन्धुजनोचित व्यवहार से चन्द्रमौलि प्रभावित हुए। वे सम्राट् से एक बात कहने की अनुमति लेकर आर्यक से बोले, "सखे, एक बात कहना भूल गया था। आर्य देवरात मथुरा आये हुए हैं। उनके मन में कुछ भ्रामक समाचारों से थोड़ा कष्ट है। मैं उनसे मिलूंगा और उनके चित्त में भ्रमवश जो अन्यथा-भाव आ गया है उसे दूर करने का प्रयास करूँगा। यदि सम्भव हुआ तो उन्हें लेकर तुम्हारे पास आ जाऊँगा। जानते हो मित्र, वे सम्बन्ध में मेरे मौसा हैं।

'मौसा!' आर्यक ने आश्चर्य से पूछा। सम्राट ने अधिक अवसर नहीं दिया। बोले, "बस मित्र आज इतना ही। तुम दोनों मौसेरे भाई बन गये आज इतना ही पर्याप्त है। दुनिया जानती है कि मौसेरे भाई कौन होते हैं! बस जाओ!" सम्राट के संकेतपूर्ण नर्म वाक्य से चन्द्रमौलि और आर्यक दोनों ही खिलखिलाकर हँस पड़े। नाव चल पड़ी।

सम्राट् ने चन्द्रमौलि को प्यार से निकट खींच लिया। बोले, 'बन्धु, तुम मेरे प्रिय सखा आर्यक के मित्र हो। मुझे भी अपना वैसा ही मित्र मानना। तुम आर्य देवरात से मिलना चाहते हो। मैं तुम्हें मिला दूंगा। तुम्हीं शायद उनको शान्ति दे सकोगे। मैंने कल ही उन्हें देखा था, कुछ अशान्त दिखते थे। मगर बन्धु, तुम्हारा पूरा परिचय पा सकता हूँ? आर्य देवरात तुम्हारे मौसा कैसे हैं?"

चन्द्रमौलि इस प्रश्न के लिए एकदम प्रस्तुत नहीं था। हाथ जोड़कर बोला, "सब बता दूंगा मित्र, सब बता दूंगा, पर थोड़ा रुकने की अनुमति दें।"

सम्राट ने कहा, "तो सखे, मैंने ठीक ही समझा था कि चोर चोर मौसेरे भाई होते हैं। तुम भी आर्यक की तरह अपने से अपने को चुराते रहने का कारबार करते हो!"

चन्द्रमौलि थोड़े लज्जित हुए। "हाँ महाराज, आर्यक से भी बड़ा चोर हूँ। मेरी कहानी उलझी हुई नहीं है पर बहुत सुलझी भी नहीं है। लेकिन थोड़ा रुककर नहीं?"

सम्राट ने हँसते हुए कहा, 'थोड़ा बाद में सही।

चन्द्रमौलि सम्राट् की इस सहानुभूति से गदगद हो उठा। फिर सम्राट ने आदरपूर्वक कहा, "आर्यक से कैसे मैत्री हुई, यह तो बताओगे ना?" चन्द्रमौलि ने सोल्लास सारी कथा सुना दी। आर्य देवरात माढव्य शर्मा के बारे में भी बताया और उज्जयिनी में सुनी हुई शार्विलक की कहानी भी सुनायी। सम्राट ने हर बात की ब्योरेवार जानकारी पाने का प्रयत्न किया। चन्द्रमौलि ने यथाज्ञान उन्हें समझाया। सम्राट चन्द्रमौलि से बहुत प्रभावित जान पड़े। सम्राट ने फिर अनुनय-भरा आग्रह किया, "कह ही दो न मित्र, अपनी भी।"

चन्द्रमौलि इस आग्रह-भरे अनुनय की उपेक्षा नहीं कर सका। उसके चेहरे पर लज्जा के भाव दिखायी पड़े। बोला, "कैसे कहूँ धर्ममूर्ते, कुछ कहने-योग्य तो है नहीं। मैं बहुत छुटपन में ही मातृ-पितृहीन अनाथ हो गया था। ऐसे अनाथ अभाजन को भी कोई प्यार कर सकता है, यह एक विचित्र विधि-विधान है। परन्तु ऐसा सचमुच ही हुआ। एक परम रूपवती राजदुहिता ने इस अभाजन को पाने के लिए क्या-क्या कष्ट नहीं सहे? दारुण तपस्या की ज्वाला में उसका स्वर्ण-कमल सा कमनीय मुख झुलसकर काला हो गया। उसके अभिभावक मुझ-जैसे अनाथ को कन्या नहीं दे सकते थे और उसने ऐसी ठान ली थी कि दूसरे को किसी प्रकार वरण नहीं कर सकी। केवल एक बार मुझे छिपकर उसे देखने का सौभाग्य मिला। मैंने उसे हठ छोड़ देने को कहा, पर उस समर्पित प्राणा को अपने निश्चय से डिगा नहीं सका। उसके मन में यह आशंका थी कि उसके घरवाले मेरा अनिष्ट करेंगे। वह बार-बार मुझे देश छोड़कर अन्यत्र चले जाने को कहती रही। कैसे छोड़ता महाराज! पर छोड़ना पड़ा। सच-झूठ तो नहीं जानता, पर उसके घरवालों ने ही बताया कि वह मर गयी! यही तो कहानी है, धर्ममूर्ते!"

राजाधिराज समुद्रगुप्त ने टोका, "झूठा समाचार भी तो हो सकता है

यदि ?"

मैंने कहूँ अकारण-बन्धु ! यक्ष भूमि म धम सकट म उद्धार पाने के लिए अपनी प्राणप्यारी कन्या या वधू को मार डालने की घटना तो हानी ही रहती है। मेरा समाचार सूना हो गया है। कौन बतायगा कि समाचार ठीक था या नहीं। मेरा तो वहाँ प्रवेश ही निषिद्ध है।"

"अपने मित्र पर विश्वास रखो। मैं पता लगाऊँगा।"

अपने मानसिक सन्ताप की ज्वाला म जलता रहा हूँ। ससार म कहीं भी तो उस रूप को नहीं देख पाता ! मैंने अपने को भुलाने के लिए समष्टि चेतना म अपनी क्षुद्र सीमा का निमज्जित कर देने का प्रयास किया है। चन्द्रमौलि महादेव ने तपोनिरता पार्वती को सम्बोधित करके कहा था, 'हे अवनतांगि, आज स मैं तुम्हारी तपस्या से खरीदा हुआ दास बना—अवनतांगिदास।' मैं क्या कहता ?

'मुझे वह दृश्य कभी नहीं भूलता, जब मैंने दीर्घ उपवास स काली पडी हुई प्रिया को देखा था। क्या करूँ धर्ममूर्ते ! मैंने अपने व्यक्ति चन्द्रमौलि को समष्टि-चेतना के पजीभूत विग्रह महादेव चन्द्रमौलि का सौंप दिया है। जहाँ कहीं भी दुख, परिताप और क्षणभगुरता रही है, उसे आनन्द, कल्याण और शाश्वत रूप के साथ एकमेक करके आनन्द अनुभव किया है। भगवान चन्द्रमौलि को तपोनिरता पार्वती के सम्मुख उपस्थित कराकर एक काव्य म मैंने अपने सीमित अस्तित्व को असीम सत्ता मे विलीन करने का प्रयत्न किया है। छन्द उसमें अपने-आप ढलते गये हैं कलुष और सीमा की क्षुद्रता अपने-आप झडती गयी है। मैं नहीं जानता कि भगवान शिव उससे कितने प्रीत हुए हैं, किन्तु मैं अपनी ओर से बहुत-कुछ आश्वस्त हो गया हूँ। मैंने तो अपनी प्रिया की कान्ति को काली पडते देखा था, परन्तु समष्टि चेतना के नारी पक्ष की विग्रहवती पार्वती को मैं काली कैसे कह सकता था ! मेरे सारे कलुष और मेरी अशेष क्षुद्रता उस महिमामयी के सामने बह गये।

"मैंने 'अवनतांगि' सम्बोधन करवाया। तपस्या से वे भी निश्चय ही झुलस गयी होंगी। परन्तु समष्टि-चेतना कभी विवर्ण नहीं होती। तेज कभी कृश नहीं होता। सो मैं पल्लविनी लता के हेमन्त के झकोरों स निष्पत्र होकर झुक जाने के सिवाय अधिक कुछ नहीं कह सका। धर्मावतार, समष्टि चेतना का नारी रूप अधिक से अधिक दु सह आतप के झकोरों से झुका हुआ सा ही लग सकता है, काला नहीं पड सकता। सो, समष्टि चेतना का पुरुष-पक्ष अपने को तपस्या से अभिभूत मानकर उसे 'अवनतांगि' ही कह सकता है। समष्टि चेतना के पुरुष विग्रह शिव से मैंने उनको अवनतांगिदास' ही कहलवाया है। मैंने दारुण वियोग व्यथा को झेला है लेकिन उसे महाअज्ञात देवता के चरणों मे निछावर कर देने के बाद अपने को अमृत रूप म ही पाया है। मेरी प्रिया भी अब समष्टि चेतना म घुल मिलकर अमृत स्वरूपा बन गयी है। और मैं क्या कहूँ, धर्ममूर्ते ! '

सम्राट् समुद्रगुप्त चकित होकर सब सुन रहे थे। इस करुण कथा का उप हार सुनकर उनकी आँखें विस्मय से कानों तक फैल गयीं। चन्द्रमौलि के कन्धे

पर हाथ रखकर उन्होंने सहानुभूति गदगद स्वर में कहा, "मैं धन्य हूँ वयस्य जो व्यक्ति चेतना को समष्टि चेतना में विलीन करनेवाले महाप्रेमी को देख रहा हूँ। तुम्हें समष्टि-चेतना के 'अवनतागिदास' चन्द्रमौलि प्रिय हैं। मैं इतना विस्फार नहीं सह सकता। मैं तो कालिदास चन्द्रमौलि में ही अपने सीमित चित्त का विश्राम देख रहा हूँ। विश्वास करो मित्र, मैं तुम्हारी पीड़ा कम करने का प्रयत्न अवश्य करूँगा।"

इसी समय धनंजय ने आकर अभिवादन किया। सम्राट ने पूछा कि उनके आदेश का कैसा अनुपालन हुआ। धनंजय ने बताया कि सेनापति भटार्क को आदेश दे दिया गया है कि वे आर्य चण्डसेन को उज्जयिनी का नरेश बनाने की व्यवस्था करें। सम्राट स्वयं तिलक देने उज्जयिनी पहुँचेंगे। आर्य चारुदत्त और महामल्ल शार्विलक के राजकीय सम्मान के आयोजन का भी आदेश भेज दिया गया है। यह भी व्यवस्था की गयी है कि राजकीय सम्मान के बाद आर्य शार्विलक के हलद्वीप जाने की पूरी व्यवस्था कर दी जाये। सम्राट् ने सन्तोष के साथ कहा, 'बहुत ठीक।"

इकत्तीस

सुमेर काका ने उल्लसित होकर कहा, "समाचार मिला है बिटिया, आर्यक उज्जयिनी से मथुरा के लिए चल पड़ा है।" चन्द्रा ने सुना, मृणाल ने भी सुना। काका ने प्रस्ताव किया कि मथुरा चलना चाहिए। प्रस्ताव न चन्द्रा को पसन्द आया, न मृणाल को। चन्द्रा के हृदय में अननुभूत कोई वेदना सन्न से टीस गयी। मृणाल को लगा, जिस देवता के आशीर्वाद से यह समाचार मिला है, उसी की शरण में रहकर फलोदय की प्रतीक्षा करनी चाहिए। उसने काका से कुछ न कहकर चन्द्रा से ही कहा कि वे काका से दो-तीन दिन और यहीं रुककर पूजा-आराधना करने की अनुमति लें। पटवास लग गये हैं, इसलिए कुछ दिन और रुक जाने में असुविधा नहीं होगी। चन्द्रा के मन में भी रुकने की बात थी, पर कारण कुछ और था। काका ने बात मान ली।

मृणाल और चन्द्रा दोनों ने स्नान किया और साथ-साथ मन्दिर में गयीं। चन्द्रा उदास थी, मृणाल उत्फुल्ल।

प्रतिदिन की भाँति मृणाल ध्यानमग्न हो गयी। चन्द्रा ध्यान नहीं कर सकी। किसी अस्पष्ट पीड़ा से वह व्याकुल थी। चुपचाप खिसक आयी और दूर जाकर एकान्त में बैठ गयी। उसका चित्त पहली बार इस प्रकार उत्क्षिप्त हुआ था। वह

पर हाथ रखकर उन्होंने सहानुभूति गद्गद स्वर में कहा, "मैं धन्य हूँ वयस्य जो व्यक्ति चेतना को समष्टि-चेतना में विलीन करनेवाले महाप्रेमी को देख रहा हूँ। तुम्हें समष्टि चेतना के 'अवनतागिदाम चन्द्रमौलि' प्रिय हैं। मैं इतना विस्तार नहीं सह सकता। मैं तो कालिदास चन्द्रमौलि में ही अपने सीमित चित्त का विश्व में देख रहा हूँ। विश्वास करो मित्र, मैं तुम्हारी पीड़ा कम करने का प्रयत्न अवश्य करूँगा।"

इसी समय धनंजय ने आकर अभिवादन किया। सम्राट ने पूछा कि उनके आदेश का कैसा अनुपालन हुआ। धनंजय ने बताया कि सेनापति भटार्क को आदेश दे दिया गया है कि वे आर्य चण्डसेन को उज्जयिनी का नरेश बनाने की व्यवस्था करें। सम्राट स्वयं तिलक देने उज्जयिनी पहुँचेंगे। आर्य चारुदत्त और महामल्ल शार्विलक के राजकीय सम्मान के आयोजन का भी आदेश भेज दिया गया है। यह भी व्यवस्था की गयी है कि राजकीय सम्मान के बाद आर्य शार्विलक के हलद्वीप जाने की पूरी व्यवस्था कर दी जाये। सम्राट् ने सन्तोष के साथ कहा, "बहुत ठीक।"

इकत्तीस

सुमेर काका ने उल्लसित होकर कहा, "समाचार मिला है बिटिया, आर्यक उज्जयिनी से मथुरा के लिए चल पड़ा है।" चन्द्रा ने सुना, मृणाल ने भी सुना। काका ने प्रस्ताव किया कि मथुरा चलना चाहिए। प्रस्ताव न चन्द्रा को पसन्द आया, न मृणाल को। चन्द्रा के हृदय में अननुभूत कोई वेदना सनसना के टीस गयी। मृणाल को लगा, जिस देवता के आशीर्वाद से यह समाचार मिला है, उसी की शरण में रहकर फलोदय की प्रतीक्षा करनी चाहिए। उसने काका से कुछ न कहकर चन्द्रा से ही कहा कि वे काका से दो तीन दिन और यहीं रुककर पूजा आराधना करने की अनुमति लें। पटवास लग गये हैं, इसलिए कुछ दिन और रुक जाने में असुविधा नहीं होगी। चन्द्रा के मन में भी रुकने की बात थी, पर कारण कुछ और था। काका ने बात मान ली।

मृणाल और चन्द्रा दोनों ने स्नान किया और साथ साथ मन्दिर में गयीं। चन्द्रा उदास थी, मृणाल उत्फुल्ल।

प्रतिदिन की भाँति मृणाल ध्यानमग्न हो गयी। चन्द्रा ध्यान नहीं कर सकी। किसी अस्पष्ट पीड़ा से वह व्याकुल थी। चुपचाप खिसक आयी और दूर जाकर एकान्त में बैठ गयी। उसका चित्त पहली बार इस प्रकार उत्क्षिप्त हुआ था। वह

कवि ?

'क्या कहूँ अकारण-बन्धु ! यक्ष भूमि में धर्म संकट से उद्धार पाने के लिए अपनी प्राणप्यारी कन्या या वधू को मार डालने की घटना तो होती ही रहती है। मेरा संसार सूना हो गया है। कौन बतायेगा कि समाचार ठीक था या नहीं। मेरा तो वहाँ प्रवेश ही निषिद्ध है।"

अपने मित्र पर विश्वास रखो। मैं पता लगाऊँगा।"

"अपने मानसिक सन्ताप की ज्वाला में जलता रहा हूँ। संसार में कहीं भी तो उस रूप को नहीं देख पाता। मैंने अपने को भुलाने के लिए समष्टि चेतना में अपनी क्षुद्र सीमा को निमज्जित कर देने का प्रयास किया है। चन्द्रमौलि महादेव ने तपोनिरता पार्वती को सम्बोधित करके कहा था, हे अवनतांगि, आज से मैं तुम्हारी तपस्या से खरीदा हुआ दास बना—अवनतांगिदास। मैं क्या कहता?

"मुझे वह दृश्य कभी नहीं भूलता, जब मैंने दीर्घ उपवास से काली पड़ी हुई प्रिया को देखा था। क्या करूँ धर्ममूर्ते! मैंने अपने व्यक्ति चन्द्रमौलि को समष्टि-चेतना के पुंजीभूत विग्रह महादेव चन्द्रमौलि को सौंप दिया है। जहाँ कहीं भी दुख, परिताप और क्षणभंगुरता रही है उसे आनन्द, कल्याण और शाश्वत रूप के साथ एकमेक करके आनन्द अनुभव किया है। भगवान चन्द्रमौलि को तपोनिरता पार्वती के सम्मुख उपस्थित कराकर एक काव्य में मैंने अपने सीमित अस्तित्व को असीम सत्ता में विलीन करने का प्रयत्न किया है। छन्द उसमें अपने आप ढलते गये हैं, कलुष और सीमा की क्षुद्रता अपने-आप झड़ती गयी है। मैं नहीं जानता कि भगवान शिव उससे कितने प्रीत हुए हैं, किन्तु मैं अपनी ओर से बहुत-कुछ आश्वस्त हो गया हूँ। मैंने तो अपनी प्रिया की कान्ति को काली पड़ते देखा था, परन्तु समष्टि चेतना के नारी पक्ष की विग्रहवती पार्वती को मैं काली कैसे कह सकता था! मेरे सारे कलुष और मेरी अशेष क्षुद्रता उस महिमामयी के सामने बह गये।

"मैंने 'अवनतांगि' सम्बोधन करवाया। तपस्या से वे भी निश्चय ही झुलस गयी होंगी। परन्तु समष्टि-चेतना कभी विवर्ण नहीं होती। तेज कभी कृश नहीं होता। सो मैं पल्लविनी लता के हेमन्त के झकोरों से निष्पत्र होकर झुक जाने के सिवाय अधिक कुछ नहीं कह सका। धर्मावतार, समष्टि चेतना का नारी रूप अधिक से अधिक दुःसह आतप के झकोरों से झुका हुआ सा ही लग सकता है काला नहीं पड़ सकता। सो समष्टि चेतना का पुरुष पक्ष अपने को तपस्या से अभिभूत मानकर उसे 'अवनतांगि' ही कह सकता है। समष्टि चेतना के पुरुष विग्रह शिव से मैंने उनको 'अवनतांगिदास' ही कहलवाया है। मैंने दारुण वियोग व्यथा को झेला है लेकिन उस महाअज्ञात देवता के चरणों में निछावर कर देने के बाद अपने को अमृत रूप में ही पाया है। मेरी प्रिया भी अब समष्टि चेतना में घुल मिलकर अमृत स्वरूपा बन गयी है। और मैं क्या कहूँ धर्ममूर्ते!'

सम्राट समुद्रगुप्त चकित होकर सब सुन रहे थे। इस करुण कथा का उपसंहार सुनकर उनकी आँखें विस्मय से नाना तरह फैल गयीं। चन्द्रमौलि के कन्धे

पर हाथ रखकर उन्होंने सहानुभूति गदगद स्वर में कहा, 'मैं धन्य हूँ वयस्य, जो व्यष्टि चेतना को समष्टि चेतना में विलीन करनेवाले महाप्रेमी को देख रहा हूँ। तुम्हें समष्टि चेतना के 'अवनतांगिदास' चन्द्रमौलि प्रिय है। मैं इतना विस्तार नहीं सह सकता। मैं तो कालिदास चन्द्रमौलि में ही अपने सीमित चित्त का विश्व में देख रहा हूँ। विश्वास करो मित्र, मैं तुम्हारी पीड़ा कम करने का प्रयत्न अवश्य करूँगा।"

इसी समय धनंजय ने आकर अभिवादन किया। सम्राट ने पूछा कि उनके आदेशों का कैसा अनुपालन हुआ। धनंजय ने बताया कि सेनापति भटार्क को आदेश दे दिया गया है कि वे आर्य चण्डसेन को उज्जयिनी का नरेश बनाने की व्यवस्था करें। सम्राट स्वयं तिलक देने उज्जयिनी पहुँचेंगे। आर्य चारुदत्त और महामल्ल शार्विलक के राजकीय सम्मान के आयोजन का भी आदेश भेज दिया गया है। यह भी व्यवस्था की गयी है कि राजकीय सम्मान के बाद आर्य शार्विलक के हलद्वीप जाने की पूरी व्यवस्था कर दी जाये। सम्राट ने सन्तोष के साथ कहा, 'बहुत ठीक।'

इकत्तीस

सुमेर काका ने उल्लसित होकर कहा, "समाचार मिला है बिटिया, आर्यक उज्जयिनी से मथुरा के लिए चल पड़ा है।' चन्द्रा ने सुना, मृणाल ने भी सुना। काका ने प्रस्ताव किया कि मथुरा चलना चाहिए। प्रस्ताव न चन्द्रा को पसन्द आया न मृणाल को। चन्द्रा के हृदय में अननुभूत कोई वेदना सन्न से टीस गयी। मृणाल को लगा, जिस देवता के आशीर्वाद से यह समाचार मिला है उसी की शरण में रहकर फलोदय की प्रतीक्षा करनी चाहिए। उसने काका से कुछ न कहकर चन्द्रा से ही कहा कि वे काका से दो तीन दिन और यहीं रुककर पूजा आराधना करने की अनुमति लें। पटवास लग गये हैं, इसलिए कुछ दिन और रुक जाने में असुविधा नहीं होगी। चन्द्रा के मन में भी रुकने की बात थी, पर कारण कुछ और था। काका ने बात मान ली।

मृणाल और चन्द्रा दोनों ने स्नान किया और साथ साथ मन्दिर में गयीं। चन्द्रा उदास थी, मृणाल उत्फुल्ल।

प्रतिदिन की भाँति मृणाल ध्यानमग्न हो गयी। चन्द्रा ध्यान नहीं कर सकी। किसी अस्पष्ट पीड़ा से वह व्याकुल थी। चुपचाप खिसक आयी और दूर जाकर एकान्त में बैठ गयी। उसका चित्त पहली बार इस प्रकार उत्क्षिप्त हुआ था। वह

स्वयं को नहीं समझ पा रही थी। चली थी तो उत्साह था—आर्यक को ढूँढ़ निकालेगी। आर्यक बिना प्रयास के ही मिल गया। अगर वह स्वयं आज निकालती, तो मन इतना भारी नहीं होता। वह आर्यक को पकड़कर मृणाल के पास ले आती। उस समय बात कुछ और होती। अब आर्यक स्वयं आ रहा है। उसे देखकर कहीं आर्यक फिर तो नहीं भाग खड़ा होगा। अपने किये का अनुताप उसे कभी नहीं हुआ था। आज हो रहा है। अगर आर्यक उसे देखकर बिदक गया, तो बड़ा अनर्थ हो जायगा। कैसे बचा जाय!

चन्द्रा के हृदय पर कोई आरी चल रही है। आज वह सोचने लगी है कि मेरे कारण सब अनर्थ हुआ है—'मैं सठ सब अनरथ कर हेतू!'

चन्द्रा अपने में डूब रही है। किससे पूछे? कौन उसकी वेदना समझ सकता है? मृणाल समझ सकती है, पर उससे इस समय ऐसी बात कैसे पूछी जा सकती है! हाँ, एक आदमी और है—बाबा। बाबा मिल जाते तो रास्ता पूछती। बाबा सब जान जाते हैं। बिना कहे ही सब समझ लेते हैं। पर बाबा बहुत दूर हैं। उनके पास कैसे पहुँचा जा सकता है। उसे विन्ध्याचल की वह गुफा याद आयी। बाबा इसी गुफा में रहते हैं। वह मन ही मन उस गुफा में उतरने लगी। पता नहीं, बाबा मिलें या न मिलें। बाबा अपने को बूढ़ा बेटा कहते हैं, चन्द्रा को माँ कहते हैं। क्या न उन्हें माँ के रूप में पुकारा जाय। "कहाँ हो चन्द्रा के बूढ़े बेटे, माँ व्याकुल है। दिखते क्यों नहीं।" चन्द्रा बाबा को देख रही है। ठीक वैसे ही एक किनारे चुपचाप बैठे हैं जैसे उस दिन बैठे थे—ठीक उसी तरह मुस्करा रहे हैं—ठीक उसी तरह।

"अरी मेरी त्रिनयनी माँ, तू देख क्या नहीं रही है! बूढ़ा बेटा तो तेरे सामने है। तेरी आँखों को क्या हो गया माँ, तू तो सामने पड़े बूढ़े बेटे को भी नहीं देख रही है! क्या बुलाया माँ, क्या कष्ट हो गया तुझे!"

तुम्हीं बताओ बाबा, तुम्हारी त्रिलोचना माँ क्या नहीं देख पा रही है।"

बाबा ठठाकर हँसे, 'तेरी आँखों में विकार आ गया है माँ।"

'हाँ बाबा, कुछ सूझ नहीं रहा है, रास्ता दिखाओ!'

मेरी मनोजमानमर्दिनी माँ, तू तो बच्चों की सी बात कर रही है। तू तो अपने बूढ़े बेटे को रास्ता दिखायेगी। तू क्यों रास्ता पूछ रही है? तू बहुत भोली है, माँ! तेरे तो सारे मनोविकार जल गये थे, फिर पलुहा गये क्या, माँ? तेरी ललिता बहिन भी तो मेरी माँ है। मैंने उस दिन उससे कहा था कि जब आर्यक आ जाय तो अपनी चन्द्रा दीदी का हाथ उसके हाथ में दे देना। तू सुनके बुरा मान गयी थी न माँ? मैंने तो तेरी परीक्षा लेनी चाही थी। तू एक ही परीक्षा में भहरा गयी। तेरे मन में अभिमान पैदा हो गया था। तूने सोचा, यह अधिकार तेरा है! भहरा गयी न माँ! अरे यह अभिमान भी मनोज ही है—मन में पैदा होता है। साथ में पैदा कर देता है ईर्ष्या को, असूया को, क्षोभ को मोह को, अहंकार को। ये सब मनोज हैं माँ, मन ही में पैदा होनेवाले। कवियों ने केवल काम को मनोज कहा है—जानती है क्यों? क्योंकि वह बिना किसी कारण के अकेले में भी पैदा हो जाता है।

ये दूसरे जो हैं वे किसी दूसरे से सम्पर्क होने से पैदा होते हैं। जिसमें ये दूसरे मनो विकार पैदा नहीं होते, वह व्यक्ति निष्ठ होता है ऐकान्तिक होता है और मेरी भोली मां, वह असामाजिक हो जाता है। तू पहले ऐसी ही थी। अब तुझे ऐकान्तिकता से अलग होने का अवसर मिला है। अब ये दूसरे प्रकार के मनोज विकार तेरे मन पर धावा बोलेंगे, बोल चुके हैं। ठीक कह रहा हूँ न जगत्तारिणी मां?

"जानती है मां, पुरुष एकान्तिक प्रेम का स्तव गान करे तो कर भी सकता है। पर जिस जगत माता ने नारी विग्रह दिया है उसके लिए यह प्रेम कठिन है। नारी, त्रलोक्य-जननी का पार्थिव विग्रह है उस ऐकान्तिक प्रेम महँगा पड़ता है।'

'समझ नहीं पा रही हूँ भरमानेवाली बात न बताओ। मेरे मन में विकार पैदा हुए हैं उन पर मेरा वश नहीं है क्या करूँ। क्या जगत माता ने नारी विग्रह देकर मुझे इस भवसागर में भटकने के लिए ही भेजा है?

'ना रे ना! तुझे नारी विग्रह न देती तो मेरे जैसे कोटि-कोटि बालक अनाथ न हो जाते। विकार बुरी बात थोड़े ही है! इन्हें उलीचकर महाप्रेमिक को दे दे मां। जानती है मां, सेवा को क्या इतना महत्त्व दिया जाता है? सचराचर विश्व रूप भगवत को पाने का यही एक साधन है। और साधनाएँ व्यक्तिपरक हैं या निर्वैयक्तिक। सेवा ही ऐसी साधना है जो व्यक्ति के माध्यम से अग जग व्यापी विश्वात्मा की प्राप्ति कराती है। नारी माता होकर इस साधना का अनायास अवसर पा जाती है। एकान्तिक प्रेम उसका सोपान मात्र है। तू उसे पार कर चुकी है। अब तुझे प्रेमी को माध्यम बनाकर विश्वात्मा को प्राप्त करने का अवसर मिला है।

'भोली मां, ईर्ष्या तो तब होगी जब तू स्वयं सब कुछ पाना चाहेगी। औरों को वंचित करना चाहेगी, मां। नहीं मेरी भोली मां तू भाव रूप में मां बन अकुण्ठ अकातर चित्त से सेवा में लग जा। अपने प्रेमी को माध्यम बनाकर सारे मनोभव विकारों को अज्ञात महाप्रेमिक के चरणों में उँडेल दे। ईर्ष्या मान, अभिमान सब उसी के चरणों में डाल दे। तेरा क्या है रे? कैसा मान और कैसा अभिमान! मन में उठते हैं तो उसे ही दे दे जिसके लिए उठते हैं।

बड़ी दुर्बल हूँ बाबा, न दे पायी तो क्या टूटकर बिखर जाऊँगी?"

'टूटे तेरा अहंकार! तू क्या टूटेगी मां! वही टूटता है जिसमें देने की इच्छा नहीं रहती। मन दृढ़ कर मां तू दे सकेगी। सब उलीचकर दे सकेगी। तेरी इच्छा-शक्ति प्रबल है उतनी ही प्रबल है तेरी क्रिया शक्ति। दोनों को तूने दो काठों में डालकर बन्द कर दिया है। ऐसा कर कि दोनों साथ साथ ताल मिलाकर चल सकें। और बूढ़ा बटा किस दिन काम आयगा रे जगदम्बिके। तेरी इच्छा शक्ति और क्रिया शक्ति ताल मिलाकर चलने लगेंगी उस दिन नयी गरिमा पायगी। और तेरा बूढ़ा बच्चा नाच नाचकर तेरे पीछे भागेगा। जब कठिनाई हो तो बुला लेना मां।'

चन्द्रा उद्विग्न हो गयी। क्या सुना उसने? अब तक वह एकान्तिक प्रेम में थी। अब सामाजिक परिवेश में आने का अवसर मिला है। सबकी सेवा करने से

ही उसे सचराचर विश्वरूप भगवन्त का साक्षात्कार होगा। सारे मनोज विकार महाप्रेमिक के चरणों में उँडेल देने होंगे—मान भी, अभिमान भी, ईर्ष्या भी, असूया भी! ये सब सामाजिक परिवेश की देन है। अपना क्या है? कुछ नहीं।

चन्द्रा उसी प्रकार तन्द्रिल अवस्था में देर तक पड़ी रही। आयक यदि उसे देखकर बिदक गया तो सारा खेल बिगड़ जायेगा। अभिमान अगर मन में पैदा हुआ तो वह उसे उखाड़कर फेंक देगी। आयक सुखी रहे, मृणाल सुखी रहे—उसे कोई क्षोभ नहीं है।

अभिमान को कैसे किसी को दिया जा सकता है? बाबा कहते हैं, सारे मनोभव विकारों को महाप्रेमिक के चरणों में उँडेल दे। कैसे उँडेल दे भला? बाबा पहेली बुझाते हैं! कैसे दिया जा सकता है? इच्छा शक्ति के साथ क्रिया शक्ति भी होनी चाहिए। देने की इच्छा और देने की क्रिया—क्या मतलब हुआ? हाय मूर्ख, अपने आपको बचा लेने की इच्छा और तदनुकूल क्रिया, इसी का नाम तो अभिमान है। उसे देना तो अपने आपको ही दे देना है—रत्तमात्र भी बचा रखने की लालसा और प्रयास के बिना परिपूर्ण आत्मदान! चन्द्रा कुछ कुछ समझ रही है।

बोली, 'नहीं हो सकेगा बाबा, नहीं हो सकेगा! जानते हो बाबा, मैंने कभी भी आयक को आदरार्थक सर्वनाम 'आप' से सम्बोधित नहीं किया। मृणाल जब आदरार्थक सर्वनामों से उसकी चर्चा करती है तो बड़ा मीठा लगता है। वह आयक का नाम कभी नहीं लेती। सभी स्त्रियों की यही परम्परा है। जब वह कहती है 'वे' और 'उनका' तो उसके मुँह से निकले ये शब्द छोटे बच्चों की तोतली बोली के समान बड़े प्यारे लगते हैं। छोटे बच्चे व्याकरण और वाक्यरचना की बारीकियाँ नहीं जानते हैं केवल अनुकरण करने का प्रयत्न करते हैं, परन्तु कितने मीठे लगते हैं वे अनबूझे शब्द! मृणाल बच्ची है उसके ये शब्द तोतली बोली के समान प्रिय लगते हैं। बेचारी जानती ही नहीं कि इनका अर्थ क्या है। मैं उससे बड़ी हूँ, इन शब्दों का अर्थ जानती हूँ मैं इन निरर्थक शब्दों का उच्चारण भी नहीं कर सकती। सामान्य रूप से कहा जाता है और माना जाता है कि पति देवता होता है उसकी पूजा करनी होती है। यह बात आज तक मेरी समझ में न आयी कि प्रेम में पूजा का स्थान कहाँ है और क्या है? बाबा, मुझे ये विचार भाड़े लगते हैं। कहोगे बाबा, तो मैं उसके लिए आग में कूद जाऊँगी, पर चरणों में अपने को नहीं उड़ेल सकती। कुछ और बताओ बाबा, जो मेरे 'स्वभाव' के अनुकूल हो।'

'धन्य है माँ ऋतम्भरा माँ! तू अगर सच बोल रही है तो तेरी यह बात अद्भुत है। इतनी बड़ी बात तो त्रिपुर सुन्दरी भी नहीं कह सकी थी। कहते हैं कि केवल त्रिपुर भैरवी ही नाम लेकर शिव को सम्बोधित कर सकती थी। तुझमें त्रिपुर भैरवी का निवास लग रहा है माता! त्रिपुर-सुन्दरी ने शिव के कर्पूर गौर वक्षस्थल में अपनी ही छाया देखकर उसे भैरवी नाम दिया था। [illegible] सौभाग्य जानती माँ, तूने इसे समझ लिया कि [illegible] तुझे तेरे सगा के चरणों में [illegible] जाने को कहा है? आयक तो बचन तेरा मध्यम होगा माँ, तूने अपने सारे विकारों [illegible]

उस मौन को तो मैंने कहा नहीं माँ। मेरा मकसद था कि तू अपने सारे विकारों को निखिल संसार विश्वात्मा को सौंप दे। तू अगर अपने सारा प्रेमिल के चरणों में अपने-आपको नहीं डाल सकती तो न डाल। इसमें कोई पाप नहीं है। त्रुटि निवृत्ति तब होगी माँ, जब विश्वात्मा के चरणों में अपने को उत्सर्ग नहीं दे सकेगी। यह देखो मेरी निर्बोध माँ, तू तो अहंकार से जकड़ गयी है। अहंकार क्या है जानती है? अपने आपको सबसे अलग विशिष्ट समझने की बुद्धि। हे जगद्धात्री माँ, तू इसी बुद्धि के चक्कर में है। इसी बुद्धि से बचने के लिए माध्यमों का विधान है। ये माध्यम अनेक हो सकते हैं—श्रद्धा का पात्र गुरु, प्रेम का पात्र प्रेमी या प्रेमिका, स्नेह का पात्र सन्तान, विश्वास का पात्र देवता—कोई-न-कोई माध्यम खोजना ही पड़ता है। तुझे अनायास मिल गया है आपके साथ में मिली है मणाल। पर माँ, श्रद्धा हो, प्रेम हो, स्नेह हो, आत्म दान करना ही होता है। चरणों में लगना ही आत्म दान नहीं होता। अपने अहंकार को, अलगाव की बुद्धि को मान को, अभिमान को सम्पूर्ण आपा को तो उलीचकर फेंक ही देना पड़ता है। चरणों में देने का मतलब है अपने को अपने अहंकार को नीचे की ओर झुकाना। सिर पर पटकने से तो अहंकार ऊर्ध्वगामी होगा माँ! आराध्य को समझने का प्रयत्न कर अपराध में मत उलझ।"

चन्द्रा भावार्थ में जाने का प्रयास करती है। बाबा हँस रहे हैं— त्रिपुर भैरवी की विकट साधना में जब जगज्जननी सन्तुष्ट होती है तो नारी विग्रह देती है। वे स्वयं निषेध-व्यापार रूपा हैं अपने-आपको मिटा देने की भावना का मूर्त विग्रह। वे नारी-काया को ही अपना प्रतिरूप बनाती हैं पर यह त्रिपुर भैरवी है कि सर्वत्र उपस्थित हो जाती है—अहंकार के रूप में वे नारी को ऐकान्तिक प्रेम के मार्ग पर चलने को प्रोत्साहित करती हैं सेवा के वास्तविक धर्म से वंचित रहने को उत्साहित करती है उद्दाम वासना को उकसाती है पर निखिल जगत की माता त्रिपुर सुन्दरी सदा रक्षा करती रहती है—तू बिना सेवा के किसी प्रकार के प्रेम की कल्पना कर सकती है मेरी भोली माँ? नहीं कर सकती। यही त्रिपुर-सुन्दरी के अस्तित्व का प्रमाण है। है न?"

"हाँ बाबा।"

"तो विभिन्न भाव धाराओं में बहने उतराने की क्या आवश्यकता आ पड़ी? सहज बन जा! एकदम सहज! अहंकार को उखाड़कर फेंक दे! मेरी माँ अहंकार को तो तू इस बूढ़े बेटे को भी दे सकती है। दे दे माँ! दे तो अपनी ग्रीवा, तनिक दे दे।"

चन्द्रा ने अपनी गर्दन झुका दी। बाबा ने अपने अँगूठे से उसकी ग्रीवा को दबाया। चन्द्रा वेदना से चिल्ला उठी। बाबा ने आश्चर्य से कहा 'मैया और अलबत्ता दोनों बहुत सूज गयी हैं। है न माँ जगद्धात्री!" उन्होंने थोड़ा सहलाकर और दबाया। चन्द्रा को बड़ी पीड़ा हुई, लेकिन पीड़ा में एक प्रकार का सुख भी

था। लगता था, हृदय द्वार से अनेक जटिल ग्रन्थियां खुलती जा रही हैं। वह चीखती जाती थी और शान्ति भी अनुभव करती जा रही थी। बाबा का अंगूठा देर तक उसकी ग्रीवा पर बना रहा। वे हर चीख पर हँसते जा रहे थ, 'ठीक हो रही है रे, सब नाड़ियां ठीक होती जा रही हैं। घबरा मत मां, सब सहज अवस्था में आती जा रही हैं—एकदम सहज ! हाय मां, ये बनी रहती तो तेरा सिर पर नहीं सकता था। बहुत दिनों से सूजी हुई लगती हैं।" बाबा ने एक बार हथेली से पूरी ग्रीवा दबायी, "सो जा मां, सो जा। कैसा मालूम हो रहा है रे मेरी अभिमानिनी मां कैसा लग रहा है ?" चन्द्रा लुढ़ककर बाबा के चरणों पर गिर पड़ी। अपूर्व शान्ति उसके मुख पर दमक उठी। बाबा ने उसे बैठा दिया। "सो जा मां, भगवती त्रिपुर सुन्दरी की गोदी में सो जा। जब उचित समझेगी, तब तुझे उठा देंगी।"

बाबा उठे, पता नहीं किससे बात करते रहे। अन्त में बोले, "भगवती, बहुत भोली है मेरी यह मां, तुम्हीं सम्हालो। अब मेरा यहां क्या काम है !"

बाबा चले गये। चन्द्रा ऐसे सो गयी जैसे कोई नन्हीं बालिका मां की गोद में सो गयी हो।

मृणाल ध्यान मग्न है— 'महादेव, तुम्हारी कृपा अपरम्पार है। तुम्हीं ने दिया है नाथ, तुम्हीं उन्हें अपना बनाओ। वे आयेंगे, यहीं आयेंगे। तुम्हारे चरणों में ही उन्हें पा सकूंगी। देवाधिदेव तुम्हारा आशीर्वाद अमोघ है।"

आयेंगे अवश्य आयेंगे। मृणाल का हृदय उछल रहा है।

मृणाल मन ही मन आर्यक के शुभागमन की कल्पना कर रही है। आते ही उसके पास पहुँचेंगे। छाती से लगा लेंगे। मैं उनकी आदत जानती हूँ। छाती से लगाकर चिबुक ऊपर उठा लेंगे। पर नहीं, यह उचित नहीं होगा। पहले उन्हें दीदी से मिलना चाहिए। दीदी का अधिकार पहला है। हाय हाय, दीदी ने आग में कूदकर उनका जीवन बचाया है। दुर्धर्ष शत्रुओं के व्यूह में घुसकर उनकी सहायता की है —दीदी को अपने प्राणों की, मान की, चिन्ता नहीं है। दीदी का अधिकार उनके प्राणों पर है, शरीर पर है, मन पर है ! कहीं ऐसा न हो कि वे दीदी को भूल जायें। बुरा होगा। जो सचमुच आदरणीय है उसका आदर उपेक्षित न हो जाय। वे आ रहे हैं देवाधिदेव, कोई उपाय करो कि वे पहले दीदी से मिल लें। औचित्य दोष में रक्षा करना, देवता ! मैं दीदी के चरणों में सदा नत रही हूँ। इस सौभाग्योदय के दिन कोई लोप न हो जाय, जगद्गुरो !

मृणाल चिन्तित है। इतने दिनों तक न जाने कहां कहां भटकते फिरे हैं। कैसी हो गयी होगी उनकी बलिष्ठ काया ! बहुत दुख भोगा है—सिर्फ एक मानसिक भ्रम के कारण। देवाधिदेव सारे मानसिक विकारों को ध्वस्त करते रहते हो। उनके मानसिक भ्रम को भी दूर कर देना।

दीदी के मन में आज चाञ्चल्य देखा है, महादेव, उनके चित्त की निर्मलता और प्रेम की पवित्रता के तुम साक्षी हो ! सब कुछ ठीक कर देना नाथ, मृणाल

अबोध है।

सुमर काका एक बार घाट की ओर जाते है, एक बार ऊपरवाले रास्ते को देखते है। मथुरा जाना चाहिए था। वह क्या जानता है कि हम लोग कहा है। मथुरा पहुँच गया होगा। सुना है सम्राट उसस मिलन को व्याकुल है। कुछ तो बतायगा ही। कही नाव स ही न चल पडे। विचारा कैसे पहचानेगा अपनी नाव। वे दूर दूर तक की नावो को देख रहे है।

भोले सुमर काका को पता नही कि सम्राट को उन लोगो की घडी घडी की स्थिति मालूम है।

शोभन भी समझ रहा है, चुप है।

सोमेश्वर के साथियो म मन्त्रणा चल रही है। भैया हम लोगो को पहचान लेंगे कि नही ? मथुरा तक तो आ गय होग ? भाभी न नाव रोक क्यो दी ? भैया यही आ जायें, यह सम्भव है या नही ? कैसे उनका स्वागत किया जाय ! शोभन ऊब गया है। वह बडी अम्मा को खोज रहा है। कहा गयी बडी अम्मा ? वह काका से पूछता है। काका ने मन्दिर म दखा पटवासो म देखा नाव म देखा कही नही है। कहाँ चली गयी ?

काका का हृदय धडकने लगा। कहा चली गयी ? अभी तो यही थी—"चन्द्रा चन्द्रा !"

काका ने फिर दखा, फिर देखा। कही नही है। कहा चली गयी ? हे भगवान !

जितने भी साथी थ, सब विभिन्न स्थानो की ओर दौडे। दोनो नावें दोनो दिशाओ म भागी—"चन्द्रा भाभी, चन्द्रा भाभी !"

जिस समय आयक की नाव घाट पर लगी मन्दिर के चारो ओर भाग दौड मची थी। सोमेश्वर के साथी विशाल बरगद के कोने-कोने छान रहे थे और चिल्लात जा रहे थे—'चन्द्रा भाभी चन्द्रा भाभी !' काका के होश हवास गुम थे। व नदी की ओर दौड पडे थे—'चन्द्रा, चन्द्रा !' सोमेश्वर के दो साथी सामनेवाल रास्त पर दौड रह थे—"चन्द्रा भाभी !" मन्दिर म मणाल का ध्यान टूट चुका था। वह भी भागी —'दीदी दीदी !'

विचित्र दश्य था। आयक मन्दिर के सामन आया। भारी गोलमाल दखकर वह स्तब्ध रह गया। इसी समय सोमश्वर ने दूर के एक सघन प्ररोह-कुज म चन्द्रा को संज्ञाशून्य अवस्था मे पडी देखा। वही स चिल्लाकर बोला भाभी दौडो। काका, दौडो। देखो चन्द्रा भाभी को क्या हो गया है। अर जल्दी दौडो। हे भगवान क्या हो गया है इन्ह ! चन्द्रा भाभी, चन्द्रा भाभी उठो ! दौडो भाभी।

मृणाल उन्मादिनी की तरह दौडी— दीदी दीदी ह भगवान ! काका दूर थे। शोभन को लिय दिय हाफ्ते हाफ्त दौडे।

आयक भी दौडा। अप्रत्याशित आशका स उसका हृदय धडकन लगा।

मृणाल ने चन्द्रा को गोद में उठा लिया था—"भाई सोम, दौड़ के पानी लाओ।" सोमेश्वर पानी लाने भागा।

आर्यक पहुँच गया—"क्या हुआ मैना ?"

"हाय देवाधिदेव, वे आ गये! कैसा विचित्र संयोग खड़ा कर दिया, नाथ! उनके चरणों में सिर रख देने से भी वंचित रह गयी। दीदी को बचा लो प्रभो, सब लिया इतना और दे दो नाथ!"

मैना की आँखों से अश्रुधारा बाँध तोड़कर बहने लगी। उसने इशारे से आर्यक को पास बुलाया। अश्रुभरित आँखों से देखा, सिर आयासपूर्वक झुकाया। फिर चन्द्रा को उसकी गोद में डाल दिया। आर्यक की आँखों से आँसू बहने लगे। उसने चन्द्रा की नाड़ी देखी। पानी माँगा। सोमेश्वर पानी ले आया था, आर्यक को देखकर सहम गया—'भैया!'

मृणाल ने होठों पर उँगली रखकर कहा, "चुप!" इशारे से कहा, "तनिक उधर जाओ।"

आर्यक ने चन्द्रा के मुँह में पानी दिया। मृणाल हवा करने लगी। ताता आये —हतवाक्!

वे एक ओर हो गये।

शोभन की आँखें पथरा गयीं—'बड़ी अम्मा!"

मृणाल ने प्यार से कहा, 'चुप बेटा।" वह चुप हो गया।

आर्यक की आँखों के सामने अँधेरा छा गया। शोभन रो पड़ा—'बड़ी अम्मा!' वह चाचा के पास घुस गया, 'बड़ी अम्मा!"

इसका प्रभाव मन्त्र जैसा पड़ा। चन्द्रा धड़फड़ाकर उठ गयी। शोभन को गोद में लेकर चूम लिया। धीरे-धीरे उसकी तन्द्रा टूटी। वह कुछ समझ नहीं पा रही थी। संज्ञा पूरी तरह लौट आने पर उसे परिस्थिति का ज्ञान हुआ। यह क्या, वह आर्यक की गोदी में पड़ी हुई है! मृणाल उसके पैर दबा रही है। वह एकदम झटके से उठी और बड़े स्नेह की तरह आर्यक के चरणों में गिर पड़ी। आर्यक ने उसे उठाने का प्रयत्न किया। मृणाल ने इशारे से रोक दिया। स्नेह-विगलित अश्रुधार से आर्यक के पैर धुल गये। उन आँसुओं में सारे मान-अभिमान बह गये। सारे मनुष्य प्रभावित हो गये। सब विधिविडम्बनाएँ डूब गयीं। आर्यक अभिभूत, मृणाल गद्गद!

थोड़ी देर बाद मृणाल ने ही मौन भंग किया, "दीदी, चलो मन्दिर में।" चन्द्रा उठी जैसे सहज पारिजात खिल उठी हो। मृणाल के कन्धे पर सिर रखकर आर्यक का हाथ पकड़कर वह धीरे-धीरे मन्दिर में आयी।

गायक उपाध्यायों ने दुन्दुभि-निनाद किया। [illegible] पर मंगलदीप [illegible] आर्यी और [illegible] भार्या के जय-निनाद से वायुमण्डल गूँज उठा—'जय, जय, जय!'

•••

अनामदास का पोथा

अथ रैक्व-आख्यान

भूमिका

अब मै नाच्यो बहुत गुपाल ।

कुछ दिन पहले एक अपरिचित मित्र आये थ। वे कुछ लिखने की योजना बना चुके थे। मुझसे कुछ परामश चाहते थ। मैं थोडी देर की बातचीत म ही समझ गया कि व परामश कम और स्वीकृति अधिक चाहते थ। उन्होने कहा था कि विधाता ने मनुष्यमात्र को सौ साल की आयु दी है, कुछ लोग पूनजन्म के पापो के कारण पहले ही मर जाते है और कुछ दूसरे लोग इस जन्म के पुण्यो के कारण अधिक जी जाते है। जो लोग 66 67 साल तक जी जात है उनके पूवजन्म के पाप बहुत प्रचण्ड नही होत। शास्त्र के अनुसार वे मध्यम आयु भोगकर दीर्घायु म प्रवेश करत हैं। उस दिन मेरे यह मित्र बता गये थे कि व दीर्घायु म प्रवेश करने की तैयारी म है। मैंने जब उनसे पूछा कि व दीर्घायु म प्रवश कर चुके ह या प्रवेश करने की तैयारी म है। मैंने जब उनसे पूछा कि व निश्चित रूप म क्यो नही कहते तो उन्होने बताया कि निश्चित रूप स दस दिन क बाद ही बता सकत ह। कारण यह था कि अभी चान्द्र गणना के अनुसार ही दीर्घायु के कोटे म पहुँच ह सौर गणना के हिसाब स अभी दस दिन शप है। उन्होन गम्भीर मुद्रा म बताया था कि यमराज के कार्यालय म चान्द्र गणना प्रचलित है पर विधाता क दफ्तर म सौर गणना क हिसाब स काम होता है। यमराज पितयान परम्परा पर चलत है, ब्रह्माजी दवयान परम्परा पर। कभी-कभी दोना दफ्तरो की गणनाएँ परस्पर टकरा जाती है। अन्तिम निणय विधाता (ब्रह्मा) के इगित पर होना ह। पर दोना म जितने दिना का अन्तर होता है उतन दिना तक मरनवाला को बडी साँसत सहनी पडती है। यमराज के दूत उन्ह घसीटकर ले जाना चाहत है। उधर ब्रह्मा का आदेश न मिलन स मरण शय्या पर पडे रोगी का जीव निकल नहीं पाता। बुरी खींच-तान म बिचारे की दुगति हो जाती है। इस जानकारी क कारण मर यह मित्र सन्दिग्ध भाषा म बोल रह थ। पर दस दिन का अन्तर कोई खास अन्तर नही है। व आश्वस्त थ कि अगल दस दिन भी निर्विघ्न बीत जायेंग क्योकि उनके पुरान पापो की कमजोरी तो सिद्ध हो ही चुकी है। यह और बात है कि हर दिखावा परायण हिन्दू के समान वे भी हिसाबी थ। अपनी बात का उपसंहार करत हुए

उन्होंने हाथ घुमाकर, मुँह बिचकाकर, इतना जोड़ दिया था कि "पर कौन जानता है ? क्षणमूर्ध्वं न जानामि विधाता किं करिष्यति !"

इस अपरिचित मित्र की बात मुझे आकर्षक लगी थी। मुझे विश्वास हुआ था या या कहिए कि मैंने मन ही-मन शुभकामना की थी कि वे केवल दीर्घायु में प्रवेश ही नहीं करेंगे, उसे पूर्णतः भोगेंगे।

आज प्रमाण मिल गया है कि वे सचमुच दीर्घायु के कोठे में प्रवेश कर गये हैं।

यह उस दिन की बात है जब वे कुछ लिखने का संकल्प कर चुके थे और मुझे समर्पित करने की अनुमति माँग गये थे। अब तो वे सौर गणना के अनुसार भी दीर्घायु में प्रवेश कर चुके हैं। उनका पोथा भी आ गया है।

कभी-कभी जीवन में ऐसी बातें घट जाती हैं जिन्हें साहित्यिक समालोचक 'नाटकीय' समझकर उपेक्षा करते हैं। मतलब यह होता है कि जीवन में तो वह घटता नहीं, लेखक जबर्दस्ती घटा लेता है, अर्थात् नाटककार जिस प्रकार कथा को अपनी वांछित दिशा में मोड़ लिया करता है, उसी प्रकार ऐसी बातें भी बना ली जाती हैं। समालोचकों से न डरना कोई बुद्धिमानी नहीं है, पर डर के सही बात न कहना भी कोई अच्छी बात नहीं कही जा सकती। जीवन में कभी कभी ऐसी बातें अवश्य ही घट जाती हैं और उन्हें 'नाटकीय' कहने का एक ही अर्थ हो सकता है कि जीवन भी एक नाटक ही है। ईमानदारी की बात तो यही है कि जीवन सचमुच ही एक नाटक है। मेरे मित्र भी ऐसा ही मानते हैं। यहाँ मुद्दे की बात सिर्फ इतनी है कि जब यह मित्र अपनी बात कह रहे थे तो मैं भी मन ही मन हिसाब करने लगा था और यह विचित्र संयोग है कि मैं भी 66½ वर्ष पार कर रहा था! पर मेरे मित्र मुझे इससे अधिक आयु का समझ रहे थे क्योंकि श्रद्धापूर्वक वे कह गये थे कि आप तो अब देवता-कोटि में पहुँच चुके हैं। उनकी बात का अर्थ मैं समझता था। पर मैंने प्रतिवाद करने की आवश्यकता नहीं समझी। महाभारत में कहीं लिखा है कि जो आदमी सतहत्तर वर्ष, सात महीने, सात दिन जी जाता है वह देवता बन जाता है, सो उनके विचार से मैं इतनी उमर पार कर गया था। प्रतिवाद करने से व्यर्थ ही बात बढ़ती। और अंतर भी कितना है ? सिर्फ ग्यारह साल का! ग्यारह साल के लिए एक घण्टे की माथापच्ची कोई अक्लमंदी नहीं जान पड़ी! सो, वे कहते गये, मैं सुनता गया।

मेरे इस मित्र के समान कल्पनाशील आदमी कम ही होते हैं। वे अपनी कल्पनाओं को प्रामाणिक इतिहास मान लेते थे, उसमें रम जाते थे और प्रतिवाद या रोकाटोकी से ममाहत-से हो उठते थे। आँसूभरी आँखों से ताकने लगते थे, जिसका अर्थ होता था— आप भी ऐसा ही कहते हैं!'

मुझे ऐसे अवसरों पर उन्हें यह समझाने में काफी समय लग जाता था कि उनकी प्रामाणिकता पर सन्देह करना मेरा उद्देश्य नहीं था। हालाँकि उद्देश्य यही होना था। इस प्रकार के झूठ में कोई दोष नहीं माना जाता, क्योंकि इसे अभिजात

जनोचित शिष्टता ही समझा जाता है। फिर भी झूठ तो झूठ ही होता है। इससे बचने का शिष्ट तरीका 'मौन' है— ऐसा मौन जिससे सुनानेवाले को पता ही न चले कि सुननेवाले के मन में क्या प्रतिक्रिया हो रही है। यह बात भी नाटकीय जैसी ही है। ऐसा नाटक मैं बहुत कर चुका हूँ। इसलिए मुझे इसमें कोई खास परेशानी नहीं हुई।

मेरे मित्र ने बताया था कि जब सूरदास ने यही अवस्था पार की थी तभी उन्होंने वह प्रसिद्ध पद लिखा था जिसमें कहा गया है कि 'अब मैं नाच्यो बहुत गुपाल!' प्रमाण? प्रमाण यही था कि ठीक आज ही, जब वे चान्द्र गणना के अनुसार 66 साल पूरे कर चुके हैं इसी प्रकार के भाव उनके मन में आये हैं! मेरा मन सनाका खा गया था। मैं भी आज प्रातःकाल से यह पद रटे जा रहा था! तो क्या यह मान लिया जाय कि सूरदास जब 66$\frac{2}{3}$ साल के हुए तो उनके मन में इस प्रकार का पश्चात्ताप हुआ था? सूरदास बहुत महान संत थे। उनके बारे में तो यह दैन्योक्ति ही कही जायेगी। पर मेरे मन में और मेरे सामने बैठे अपरिचित मित्र के मन में यह भाव आज ही कैसे आ गया? दो के मन में उठा है तो तीसरे चौथे के मन में भी उठता होगा! 66$\frac{2}{3}$ महत्त्वपूर्ण लगता है!

मेरे मित्र उस दिन आश्वस्त होकर गये थे, पर मेरे मन में एक विचित्र हलचल पैदा कर गये थे।

उनकी बातों में भोलेपन के आवरण में अजीब लुभावनापन भी था। मैंने उनका नाम और पता जान लेना चाहा था पर वे विचित्र असमंजस में पड़ गये थे। 'नाम में क्या रखा है? कुछ भी समझ लीजिए। आप ही बताइए, आपका क्या नाम है? जिस नाम से सारी दुनिया आपको जानती है वह नाम क्या आपके गुरुजनों के मन में कहीं भी था जब आप इस संसार में आये थे? और अब आप जिस नाम से जाने जाते हैं उसी का कोई वास्तविकता के साथ तालमेल है? असल में नाम धोखा है।' और कोई अवसर होता तो उनकी बात को हँसकर उड़ा देता। कई लोग दूसरों पर रहस्यवादिता का रोब जमाने के लिए इस प्रकार के मिथ्या ज्ञान का घटाटोप फैलाया करते हैं पर 66$\frac{2}{3}$ की महिमा है कि मैं उस दिन अभिभूत हो गया। यह सही है कि अपने प्रचलित नाम के कारण मुझे कई बार कठिनाइयों में पड़ना पड़ा है। एक अहिन्दी भाषी नेता ने जब मुझसे इसका अर्थ पूछा तो मैं केवल यही उत्तर दे सका कि यह नाम शब्द के रूप में बिल्कुल अर्थहीन है। एक दूसरे विद्वान ने इसका अर्थ स्वयं बना दिया जो मेरी दृष्टि में बेमानी था। उनके अनुसार यह एक देवी के नाम से सम्बद्ध है। एक बार संस्कृत का पक्ष लेकर कुछ बोल रहा था कि किसी मित्र ने मज़ाक किया कि 'नाम तो आपका हिन्दुस्तानी है और समर्थन कर रहे हैं संस्कृतनिष्ठ हिन्दी का।' उस दिन मैंने भी कहा था— 'नाम में क्या रखा है!' भगवान् साक्षी है कि मैं न संस्कृतनिष्ठ हिन्दी का समर्थन कर रहा था, न तथाकथित हिन्दुस्तानी का विरोध। कर रहा था संस्कृत की समृद्धि की स्थापना, पर मेरा नाम अकारण घसीट लाया गया।

इस नाम को लेकर मुझे अपने एक परम श्रद्धेय गुरु से भी उलझना पड़ा। अगर उस समय उलझनों में हठ न पकड़ लेता तो शायद यह नाम बदल ही गया होता। मेरे श्रद्धेय गुरु संस्कृत के महान् विद्वान् थे। उन्होंने कहा था कि तेरे नाम में मुसलमानियत की बू है। पितामह का दिया हुआ 'वैद्यनाथ' नाम ही ठीक है। बदल दे। मुझे 'बू' शब्द खटक गया। मैंने प्रतिवाद किया, 'गुरुजी, सुगंधि कहिए। अगर इसमें ऐसी सुगन्धि है तो मैं इसे नहीं बदलने दूंगा।' गुरुजी द्रवित हो गये। बोले 'तो रहने दे।' और पितामह का दिया नाम छूट गया, लोक दत्त नाम रह गया! एक बार मेरे परम श्रद्धेय अग्रज-तुल्य महान कवि 'नवीन' जी ने मुझे एक पुस्तक भेंट की। उन्होंने उसमें मेरा नाम 'सहस्रार प्रसाद' कर दिया और कहा कि मैंने तुम्हारा नाम संस्कृत बना दिया। मैंने उन्हें बताया कि हज़ार' वस्तुतः 'सहस्र' शब्द में विद्यमान 'हस्र' का ही फारसी उच्चारण है और इस शब्द द्वारा आर्य भाषा के विस्तृत परिवेश की सूचना मिलती है तो वे मुग्ध हो गये। पर मैंने उनके हाथ का लिखा संस्कृतीकृत नाम बड़े जतन से अपने पास रख छोड़ा है। यह बात जब मैंने एक बड़े तान्त्रिक विद्वान् को बतायी तो खिन्न और विस्मित भी हुए। दोनों का कारण हम लोगों का अज्ञान था। उनके मत से सहजावस्था देने वाली शक्ति का नाम ही हजारी है। 'सहज' शब्द गुणपरक है—'ह' (हठयोग) और 'ज' (जययोग) का समन्वित रूप और 'हजारी' क्रियापरक है—ह और ज का समन्वय करनेवाली देवी—'हजमाराति या देवी महामायास्वरूपिणी, सा हजारीति सम्प्रोक्ता राधेति त्रिपुरेति वा।' मुझे याद आया कि एक महाराष्ट्रीय विद्वान ने भी कभी बताया था कि 'हजारी' एक देवी का नाम है। होगा, पर मेरा यह नाम इसलिए नहीं पड़ा कि यह किसी तन्त्रशास्त्रोक्त देवी के साथ सम्बद्ध था, बल्कि इसलिए कि गांव घर के लोग प्रसन्न थे कि मेरे जन्म से एक विषम संकट ही नहीं टला था, कुछ हजार रुपये की आमदनी भी हो गयी थी। मुझे यह नाम विरुद के रूप में मिला और अब तो गले पड़ गया है। पण्डितों से तो सिर्फ इतना मालूम हुआ कि इसका अर्थ भी है—काफी अच्छा अर्थ, जो शाक्त मत की त्रिपुरा है वैष्णव मत की राधा है और योगियों की भाषा में हजारी हैं, मैं उन्हीं का प्रसाद हूँ। अर्थ अच्छा है, परमार्थ भी हो जाय तो क्या कहना, पर नाम में क्या रखा है, काम होना चाहिए। मेरे ये नये मित्र नाम नहीं बताना चाहते, काम दिखाना चाहते हैं। वे अपनी भावी रचना मुझे समर्पित करने की अनुमति लेकर चले गये। छोड़ गये सूरदास की व्याकुल वन्ना जो उन्होंने मेरे इस नये मित्र के अनुसार, 66½ वर्ष की अवस्था में अनुभव की थी—अब मैं नाच्यो बहुत गुपाल!

क्या तुलसीदास ने जब कातर भाव से गाया था कि 'नाचत ही निसि दिवस मर्‌यो', तब उनकी भी अवस्था 66½ साल की ही थी? कौन बतायेगा? मित्र तो गये सो गये!

पर उनकी अनुपस्थिति का एक लाभ भी हुआ है। मैं उनकी भाषा में सोचने लगा था, उनके विचार को अपना मत्य मानने लगा था। नाम में क्या रखा है, यह

एक विदेशी मुहावरा ही है। नाम इतना हल्का पदार्थ नहीं है। देखियत रूप नाम आधीना।' नाम को सामाजिक स्वीकृति मिली होती है। नामी नाम से ही पहचाना जाता है। जिस नाम को सामाजिक स्वीकृति नहीं प्राप्त हुई वह निरर्थक शब्दमात्र है। अर्थ, नामी है। नाम उसका संकेत देनेवाला पद है। नाम को जब सामाजिक स्वीकृति मिल जाती है तो वह 'पद' बनता है। तभी नामी पदार्थ—पद का अर्थ—बनता है। मेरे अपरिचित मित्र तब तक अपदार्थ हैं जब तक उनका कोई नाम नहीं है। एक नाम 'अनाम' भी है। भाई जैनेन्द्रकुमारजी ने एक उपन्यास लिखा है—'अनाम स्वामी'। इस अपरिचित मित्र को भी 'अनाम' कहा जा सकता है। स्वामी वे नहीं थे। मैं उन्हें आवश्यकतानुसार अनामदास कह सकता हूँ।

महात्माओं की बात और है। वे लोग अपने बहाने साधारण मनुष्यों के मन को कुछ अच्छी बात सिखाना चाहते होंगे। किन्तु मैं साधारण मनुष्य के रूप में ही सोच सकता हूँ। किसी को सिखाना इसका उद्देश्य नहीं है। पीछे की ओर देखता हूँ, विराट रिक्तता! जो कुछ करता रहा हूँ वह क्या सचमुच किसी काम का था? अपनी सीमाओं, त्रुटियों, ओछाइयों को छिपाकर अपने को कुछ इस ढंग से दिखाना कि मैं सचमुच कुछ हूँ, यही तो किया है। छोटी-छोटी बातों के लिए संघर्ष को बहादुरी समझा है, पेट पालने के लिए छीना-झपटी को कम माना है, झूठी प्रशंसा पाने के लिए स्वांग रचे हैं—इसी को सफलता मान लिया है। किसी बड़े लक्ष्य को समर्पित नहीं हो सका, किसी का दुःख दूर करने के लिए अपने को उलीचकर दे नहीं सका। सारा जीवन केवल दिखावा, केवल भोंडा अभिनय करने में बीत गया। तुलसीदास ने मेरे जैसे ही किसी को देखकर कहा होगा—'कोउ भल कहउ देउ कछु असि बासना न मन ते जाई।'

मगर यह रोना भी व्यर्थ ही है। क्या लाभ है इससे? किस दुनिया के आँसू पुछने की सम्भावना है इससे? किसी का भला न होता हो तो उसका पवारा पसारना सामाजिक अपराध ही है। फलितार्थ सिर्फ इतना ही है कि अनामदासजी ने एक पोथा भेज दिया है। मुझे समर्पित है यह। पर समर्पण उस अर्थ में नहीं है जिस अर्थ में साधारणतः हुआ करता है। उन्होंने लिखा है कि 'मैं जैसा चाहें वैसा करने का अधिकार मुझे है'। इसी अर्थ में यह समर्पित है।

क्या किया जाय? न्यास का उत्तरदायित्व आ पड़ा है। छपा देना ही ठीक जान पड़ता है।

मगर छपे कैसे? कागज़ की ऐसी किल्लत है कि बड़े-बड़े नामी लेखकों की रचनाएँ नहीं छप पा रही हैं। हर प्रकाशक नाम खोजता है। ऐसा नाम जो कमाऊ बनाया गया हो। नाम भी कमाया जाता है। कोई भी नाम लेकर लेन में काम नहीं चलता। मगर नाम को भी कमाई देनी पड़ती है और यह अनामदास कहता है कि नाम में क्या रखा है। गोसाईं तुलसीदास—जिनका असली नाम क्या था यह विवाद का विषय

बना हुआ है—कह गये ह कि नाम जाने बिना ता करतलगत वस्तु भी नहीं पहचानी जाती। कुछ-न-कुछ नाम तो होना चाहिए। नाम से ही नामी की पहचान होती है। मैं एक बार एक विकट ज्योतिषी के पास गया था। नाम से ही सब बता देता था। मैंने पूछा कि राशि-नाम बताऊं या लोक नाम। बोले, लोक-नाम। मैं हैरान था, क्योंकि इसके पहले एक ज्योतिषी से पाला पड़ा था, वे राशि-नाम से फल भाखते थे। एक प्रसिद्ध दैनिक पत्र मे हर सप्ताह राशिफल निकलता है। यह राशि नाम के अनुसार देखा जा सकता है। जिस सप्ताह अनामदास मिले थे, उस सप्ताह उस दैनिक पत्र ने मेरी राशि का फल बहुत अच्छा नहीं बताया था। लिखा था, इस सप्ताह तुम्हारी प्रतिभा लुप्त हो जायेगी। प्रतिभा कितनी लुप्त हुई, यह मैं नहीं समझ सका, क्योंकि लुप्त होने के पहले वह होनी चाहिए। जिसके प्रतिभा ही नहीं उसकी प्रतिभा लोप ही होकर कौन सा नया करिश्मा कर लेगी! मगर अब सोचता हूँ कि अनामदास का मिलना और प्रतिभा का लोप होना क्या एक ही बात है? सुना है कि प्रतिभा नवनवोन्मेषशालिनी बुद्धि होती है, अनामदास शायद ऐसा पत्थर था जो उन्मेष की सम्भावना को भी दबा देता है। सारी दुनिया नाम कमाने के चक्कर मे है और अनामदास ने उस दिन मुझे समझा दिया कि नाम मे क्या रखा है। मैं भी मान गया, बुद्धि तो मारी ही गयी थी। राशि-नाम ठीक ही होता होगा!

मगर अनामदास ने बताया था कि राशि नाम भी धोखा ही है। कहते थे, भारतीय वर्णमाला की विन्यास परम्परा से भिन्न यावनी वर्णमाला से राशि-नाम की पद्धति विकसित हुई है। किसी समय यहां कृत्तिका नक्षत्र से सत्ताईस नक्षत्रों की गणना होती थी, अब अश्विनी से होती है। पर बहुत सी ज्योतिषिक गणनाएं अब भी कृत्तिका से ही होती है! सत्ताईस नक्षत्रों के 108 चरण होते हैं। यावनी वर्णमाला मे इतने अक्षर नहीं थे। जो थे, उनके पांच स्वरों समेत 108 बनाना सम्भव नहीं था। क्रम उनका अ, ब, क जैसा था, बहुत कुछ अंग्रेजी के ए, बी, सी की भांति। यवन भाषा के पांच स्वरों के साथ आ, ई ऊ, ए ओ, बा, बी, बू, बे, बो होते थे। इन्हीं को नक्षत्रों के चरण का प्रतीक माना जाता था। मजेदार बात तो यह है कि इन्हें कहते भी अवकहड़ा चक्र ही है—यावनी वर्णमाला के चार अक्षरों का भारतीय रूप! संस्कृत वर्णमाला के घ, ङ छ आदि कुछ अक्षर जोड़कर 108 की संख्या पूरी की गयी। यह एकदम कल्पित विधान है। कभी-कभी पण्डित को इन अक्षरों से नाम बनाने मे कठिनाई हो जाती है। मेरी ओर इशारा करके उन्होंने कहा था, क्या आपके नाम अथात राशि नाम रखने मे कठिनाई नहीं पड़ी होगी? मैं हैरान था। मेरा जन्म तुलसीदास की भांति मूल नक्षत्र के प्रथम चरण मे हुआ था। उसका सांकेतिक अक्षर 'य' है। संस्कृत मे 'य' से बननेवाले शब्द कम ही है। मेरी पत्री बनानेवाले पण्डित अवश्य चक्कर मे पड़े थे। बहुत बुद्धिबल लगाकर उन्होंने नाम रखा 'यन नाथ'! क्या मतलब हुआ? मतलब यही हुआ कि नाम मे क्या रखा है, कुछ भी रख दो, काम चल जायगा। अनामदास

का कहना है कि यह भी थोथा है। होगा ! फल भाखनेवाले तो काम चला ही लेते हैं। इस विचित्र विधान से ही ब्याह शादी होती है। इससे जाति तय होती है योनि का निश्चय होता है गण का निर्णय होता है, कुण्डली मिलायी जाती है—एक समानान्तर व्यवस्था खड़ी हो जाती है। मेरे एक मित्र थे, प्रख्यात ब्राह्मण वंश के कुल भूषण। परन्तु उनका लड़का इस अक्खड़ गणना-पद्धति के हिसाब से शूद्र वर्ण का निकला। वह केवल उसी ब्राह्मण कन्या से विवाह कर सकता था जो इस ज्योतिषिक गणना से शूद्र वर्ण की हो। अनेक लड़कियों के पिता उनसे विवाह का प्रस्ताव लेकर आये, पर उनमें से एक भी ज्योतिष के हिसाब से शूद्र नहीं निकली। जो लड़की उन्हें ठीक जँचती वही या तो ब्राह्मण निकलती या फिर क्षत्रिय या वैश्य। विवाह तय नहीं हो पाता था। बहुत परेशान थे। अन्त में एक ज्योतिषी ने 'विवाह वृन्दावन' का श्लोक पढ़कर उनकी परेशानी दूर की कि 'मैत्री यत्र स्यात् शुभदो विवाह'। ग्रहमैत्री बनती हो तो और बातों का विचार नहीं किया जाता। 'मैत्री' मिल गयी थी। किसी प्रकार बला टली। अनाम की बातें वज़नदार लगती हैं।

बहुत-सी आदिम जातियों में नाम छिपाने का प्रयत्न होता है। आदिम मनुष्य नाम और नामी की एकता में विश्वास रखता था। यदि नाम मालूम हो जाये तो कोई भी दुश्मनी में कोई अभिचार कर सकता है। 'देवदत्त मर जाये' कहने से देवदत्त मर नहीं जाता, यह बात तो अब लोग कहने लगे हैं ! बहुत आदिम-काल में सोचते थे कि अगर ध्यानपूर्वक जप किया जाये तो 'देवदत्त' पद नहीं, इस पद का अर्थ—पदार्थ—देवदत्त मर जायगा। कोई चित्र बनाकर उसकी छाती में छुरा भोंक दो तो छुरा उस चित्र के अर्थ से—जीवन्त मनुष्य से—लग जायेगा ! अब लोग कहेंगे कि ये सब बेकार बातें हैं, पर अब भी गालियों में, अभिशाप में उसका अवशेष बचा है ! और ज्योतिषी भी उसी पुरानी प्रथा से चल रहा है। दुनिया में कोई भी विश्वास एकदम गायब नहीं हुआ है। रूप बदलकर वह जी ही रहा है। नहीं जीता होता तो अपने को 'प्रोग्रेसिव' या प्रगतिशील कहने और माननेवाले लोग विरोधी के पुतले क्या जलाते, मुर्दाबाद के नारे क्या लगाते ? आदिम मनोवृत्ति जी ही रही है ! जियेगी !

अनामदास नहीं जानते कि दुनिया यह नहीं पूछती कि क्या कहा जा रहा है वह पूछती है, कौन कह रहा है ! कौन अर्थात् नाम। बड़े-बड़े समालोचक नाम देखकर आलोचना लिखते हैं, परीक्षक निर्देशक का नाम तौलकर उपाधिकारी की वैतरणी पार करा देते हैं ! नाम अनेक कामों को अपने में बाँधे रहता है। अब इस पोथे को पढ़ना होगा, फिर अगर अच्छा हुआ यानी मेरे मन-माफिक हुआ तो कहना होगा कि अनामजी को कोई जानता तो नहीं, पर लिखते अच्छा हैं। फिर प्रकाशक नखरे करेगा। राजी भी होगा तो कहेगा कि किसी नामी आदमी से प्रस्तावना लिखा लीजिए। बड़ा झंझट है। सारी दुनिया नाम खोजती है। धर्म-ग्रन्थ तो नाम की महिमा से भरे पड़े हैं। सब झूठे हैं, सच्चे हैं महात्मा अनामदास !

मगर इस भले आदमी ने मुझे ही इस झखमारी के लिए क्या चुना ? बडे-बडे विद्वान है, नेता है, राजपुरुष है, सेठ साहूकार है, चाहे तो तिल का ताड बना दें, ताड का तिल बना दें। वहा जाओ। उनसे कहो, मुझ गरीब का क्या फाँसते हो ? विश्वास देखिए कि आये ये समर्पण करने की अनुमति मांगने, लिख दिया, 'आपको समर्पित है, जो चाहे कीजिए।' अजब समर्पण है ! ऐसा समर्पण भी नही सुना। पढना पडेगा। पता नही, क्या क्या लिखा है ? बात तो पते की थी। सिर खपाना बुरा नही होगा।

मुश्किल यह है कि हिन्दी मे लिखना जितना आसान है, उतना पढना नही। लोग फटाफट लिख देते है, पढनेवाला मगज़ मारता रहता है। व्यक्तिगत अनुभव के बल पर कह सकता हूँ कि कुछ ऐसे लेखक है जिनकी एक पुस्तक पढकर समाप्त नही कर पाया तब तक उनकी चार पुस्तकें छप गयी। अनाम भी कही वैसा ही लिक्खाड न निकले ! मगर अब डरने से भी क्या होगा ! संस्कृत के एक अनुभवी कवि सलाह दे गये है कि डर से तभी तक डरना चाहिए जब तक डर सचमुच सामने आकर खडा न हो जाये—'तावद् भयस्य भेतव्य यावद् भयमनागतम्'। और यहाँ तो भय सिर पर सवार है ! पोथे से छुटकारा नही है।

पोथा पढ गया। अजब गप्पी है यह अनाम। अनुभव का क्षेत्र तो इसका बहुत सीमित लगता है, पर उस सीमा के भीतर उछल कूद कर सकता है। कभी-कभी तो ऐसा उछलता है कि लगता है अगद कूद करके ही मानेगा। कहते हैं, जब रामचन्द्रजी लकाविजय करके लौटे तो ससुराल गये थे और साथ मे वानरी सेना भी गयी थी। लक्ष्मणजी सदा चिन्तित रहते थे कि कही लोक-व्यवहार से अनभिज्ञ बन्दर कुछ ऐसा न कर बैठें कि ससुराल मे भद्द हो। सो, सब समय सिखाते रहते थे—मुझे देखते रहो मै जैसा इशारा करूँगा वैसा ही करना। बन्दर बिचारे भी काफी सावधान थे। सब समय देखते रहते थे कि लक्ष्मणजी क्या इशारा करते हैं। भोजन करने सब लोग बैठे थे। लक्ष्मणजी ने बहुत सावधान कर दिया था। अन्न देखकर ही न टूट पडना, मेरी ओर देखते रहना जैसा इशारा करूँ वैसा करना। ससुराल का मामला है गडबड न होने पाये। राम के एक ओर सुग्रीव बैठे, एक ओर युवराज अगद। लक्ष्मणजी कोने मे सुग्रीव के बगल मे थे। दायें, बायें, सामने वानर यूथाधिपति लोग। भोजन परसा गया। लक्ष्मण ने इशारा किया, चुप शान्त। सब वानर उनकी ओर दृष्टि बाँधे अधीर-भाव से प्रतीक्षा करते रहे। लक्ष्मणजी ने नीबू का टुकडा उठाया उसे दबाया। एक बीया छटककर ऊपर उठा। बन्दरो ने समझा, इशारा हो गया। पासवाला उचककर थोडा कूदा। धीरे धीरे क्रम से एक एक वानर उचकने लगा। थोडा और अधिक उचकने की होड लग गयी। अगद की बारी आयी तो ऐसा उचके कि छत ही ले उडे। राम-लक्ष्मण हैरान ! यह क्या हो रहा है, मगर अगद तो छत ले ही उडे थे। इसी का अगद-कूद कहते हैं। अनाम

भी कभी ऐसी ही कुलाँचें भरता है। पर वह अंगद की भांति छत लेकर नहीं उड़ पाता। छत से टकराकर नीचे ही आ जाता है। सीमा उसे अधिक बहकने नहीं देता। अनाम के भीतर सोया हुआ कोई कवि भी है। रह रहकर वह जाग पड़ता है, पर न तो यह कवि उसके पूरे व्यक्तित्व को अभिभूत कर पाता है, न अनाम वैसा करने की उसे अनुमति ही देता है। बिचारा सोया कवि जागता है फिर किसी अदृश्य चाबुक की चोट खाकर बेहोश हो जाता है। न मरता है न मोटाता है। अनाम के भीतर का आलोचक सब समय गर्जन तर्जन द्वारा उसका होश हवास गुम करता रहता है। पर ऐसा लगता है कि यह आलोचक जितना गर्जन करता है उतना शक्तिशाली नहीं है। कालिदास ने अपने एक विदूषक से कहलवाया है कि जैसा साँपों में डुण्डुभ होता है वैसा ही ब्राह्मणों में मैं हूँ। डुण्डुभ बिल्कुल निर्विष सर्प है। अनाम का आलोचक भी आलोचकों में डुण्डुभ ही है। कहने का मतलब यह है कि अनामदास के पोथे में लगता है कि उसके लेखक के भीतर का कवि सुप्त है, आलोचक अशक्त। फिर भी कोई बात है जो आकृष्ट करती है।

शायद यह और कुछ नहीं, उसका मात्रा ज्ञान है। कहाँ रुक जाना चाहिए, कहाँ मुड़ जाना चाहिए, कहाँ तेज चलना चाहिए, यह अनाम को मालूम है। पर कितना नहीं लिखना चाहिए, यह नहीं मालूम। मालूम होता तो इतना न लिखता। अभी तो भलेमानस ने एक अच्छा खासा महाभारत लिख मारा है। महाभारत' इसलिए नहीं कह रहा हूँ कि जो इसमें है वही अन्यत्र मिल सकता है और जो इसमें नहीं है वह कहीं नहीं मिल सकता (यदिहास्ति तदन्यत्र, यन्नेहास्ति न तत्क्वचित), बल्कि इसलिए कि यह बहुत भारी है—वजनी। महाभारत में ही कहा गया है कि तराजू के एक पलड़े पर वेद रखे गये, दूसरे पर यह पाँचवाँ वेद रखा गया, यही वजनी साबित हुआ। सो, 'महत्त्वाद, भारवत्त्वाद् च महाभारतमुच्यते' महान् और भारवान होने के कारण इस ग्रन्थ को 'महाभारत' कहा गया। मेरा अनुमान है कि हिन्दी की थीसिसों में जो सबसे भारी है—एक तो चौदह किलो का था।—उससे भी यह भारी सिद्ध होगा। इसलिए इसे भी 'महाभारत' ही कहना चाहिए—महान भारवाला पोथा। ऐसे भारवान पोथे को किसी पाठक के सिर पर पटकने का अपराध मैं नहीं कर सकता। इसलिए मैंने इस ग्रन्थ के कुछ अंश चुने हैं। उन्हीं को प्रकाशित कराके अपने कर्तव्य का पालन कर रहा हूँ।

हिन्दी में एक प्रथा है हर त्रुटि के लिए सहृदय पाठक से क्षमा माँग ली जाती है। किसी पाठक को, लिखकर क्षमा देने की बात नहीं सुनी गयी पर इसके विपरीत भी कहीं कुछ नहीं सुना गया। अनुमान है कि हिन्दी का हर पाठक क्षमाभिक्षु है। क्षमा माँगते ही वह उदार भाव से मौन क्षमा प्रदान कर देता है। अनाम यह जानते हैं। क्षमा माँगने की उन्हें जरूरत नहीं महसूस हुई। जो बात अनायास मिल जाती है वह बिन माँगे भी मिल ही जायगी। परन्तु मैं पाठकों से सहानुभूति की याचना अवश्य करना चाहता हूँ। कितना कठिन कर्तव्य निभा रहा हूँ, यह सब नहीं समझ सकेंगे। कुछ भुक्तभोगी ही इस बात को समझ सकते हैं। मेरा समान

मगर इस भले आदमी ने मुझे ही इस झखमारी के लिए क्या चुना ? बड़े-बड़े विद्वान हैं, नेता हैं, राजपुरुष हैं, मठ साहूकार हैं, नाहक तो तिल का ताड़ बना दें ताड का तिल बना दें। वहीं जाओ। उनसे कहो, मुझ गरीब का क्या कसूर है ? विश्वास दलिए कि आप के समर्पण करने की अनुमति माँगने, लिख दिया, 'आपको समर्पित है जो चाहे कीजिए।' अजब समर्पण है ! ऐसा समर्पण भी नहीं सुना। पढ़ना पड़ेगा। पता नहीं, क्या-क्या लिखा है ? बात तो मन की थी। सिर खपाना बुरा नहीं होगा।

मुश्किल यह है कि हिन्दी में लिखना जितना आसान है, उतना पढ़ना नहीं। लोग फटाफट लिख देते हैं, पढ़नेवाला मगज़ मारता रहता है। व्यक्तिगत अनुभव के बल पर कह सकता हूँ कि कुछ ऐसे लेखक हैं जिनकी एक पुस्तक पढ़कर समाप्त नहीं कर पाया तब तक उनकी चार पुस्तकें छप गयीं। अनाम भी कहीं वैसा ही लिक्खाड़ न निकले ! मगर अब डरने से भी क्या होगा ! संस्कृत के एक अनुभवी कवि सलाह दे गये हैं कि डर से तभी तक डरना चाहिए जब तक डर सचमुच सामने आकर खड़ा न हो जाय—'तावद भयस्य भेतव्य यावद् भयमनागतम'। और यहाँ तो भय सिर पर सवार है ! पोथे से छुटकारा नहीं है।

पोथा पढ़ गया। अजब गप्पी है यह अनाम। अनुभव का क्षेत्र तो इसका बहुत सीमित लगता है पर उस सीमा के भीतर उछल कूद कर सकता है। कभी-कभी तो ऐसा उछलता है कि लगता है अगद कूद करके ही मानेगा। कहते हैं जब रामचन्द्रजी लंकाविजय करके लौटे तो ससुराल गये थे और साथ में वानरी सेना भी गयी थी। लक्ष्मणजी सदा चिन्तित रहते थे कि कहीं लोक-व्यवहार से अनभिज्ञ बन्दर कुछ ऐसा न कर बैठें कि ससुराल में भद्द हो। सो सब समय सिखाते रहते थे—मुझे देखते रहो, मैं जैसा इशारा करूँगा वैसा ही करना। बन्दर बिचारे भी काफी सावधान थे। सब समय देखते रहते थे कि लक्ष्मणजी क्या इशारा करते हैं। भोजन करने सब लोग बैठे थे। लक्ष्मणजी ने बहुत सावधान कर दिया था। अन्न देखकर ही न टूट पड़ना, मेरी ओर देखते रहना जैसा इशारा करूँ वैसा करना। ससुराल का मामला है गड़बड़ न होने पाय। राम के एक ओर सुग्रीव बैठे, एक ओर युवराज अगद। लक्ष्मणजी कोने में सुग्रीव के बगल में थे। दायें, बायें, सामने वानर यूथाधिपति लोग। भोजन परसा गया। लक्ष्मण ने इशारा किया, चुप शान्त। सब वानर उनकी ओर दृष्टि बाँधे अधीर भाव से प्रतीक्षा करते रहे। लक्ष्मणजी ने नीबू का टुकड़ा उठाया, उसे दबाया। एक बीज छटककर ऊपर उठा। बन्दरों ने समझा, इशारा हो गया। पासवाला उचककर थोड़ा कूदा। धीरे धीरे क्रम से एक एक वानर उचकने लगा। थोड़ा और अधिक उचकने की होड़ लग गयी। अगद की बारी आयी तो ऐसा उचके कि छत ही ले उड़े। राम लक्ष्मण हैरान ! यह क्या हो रहा है, मगर अगद तो छत ले ही उड़े थे। इसी को अगद कूद कहते हैं। अनाम

भी कभी ऐसी ही कुलाँच भरता है। पर वह अंगद की भाँति छत लेकर नहीं उड़ पाता। छत में टकराकर नीचे ही आ जाता है। सीमा उसे अधिक बहकने नहीं देती। अनाम के भीतर सोया हुआ कोई कवि भी है। रह रहकर वह जाग पड़ता है, पर न तो यह कवि उनके पूरे व्यक्तित्व को अभिभूत कर पाता है न अनाम वैसा करने की उसे अनुमति ही देता है। बिचारा सोया कवि जागता है फिर किसी अदृश्य चाबुक की चोट खाकर बेहोश हो जाता है। न मरता है, न सटाता है। अनाम के भीतर का आलोचक सब समय सर्जन तर्जन द्वारा उसका होश हवास गुम करता रहता है। पर ऐसा लगता है कि यह आलोचक जितना गर्जन करता है उतना शक्तिशाली नहीं है। कालिदास ने अपने एक विदूषक से कहलवाया है कि जैसे साँपों में डुण्डुभ होता है वैसा ही ब्राह्मणों में मैं हूँ। डुण्डुभ बिल्कुल निर्विष सर्प है। अनाम का आलोचक भी आलोचकों में डुण्डुभ ही है। कहने का मतलब यह है कि अनामदास के पोथे में लगता है कि उसके लेखक के भीतर का कवि सुप्त है, आलोचक अशक्त। फिर भी कोई बात है जो आकृष्ट करती है।

शायद यह और कुछ नहीं, उसका मात्रा ज्ञान है। कहाँ रुक जाना चाहिए, कहाँ मुड़ जाना चाहिए, कहाँ तेज़ चलना चाहिए यह अनाम को मालूम है। पर कितना नहीं लिखना चाहिए, यह नहीं मालूम। मालूम होता तो इतना न लिखता। अभी तो भलेमानस ने एक अच्छा खासा महाभारत लिख मारा है। महाभारत इसलिए नहीं कह रहा हूँ कि जो इसमें है वही अन्यत्र मिल सकता है और जो इसमें नहीं है वह कहीं नहीं मिल सकता (यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्), बल्कि इसलिए कि यह बहुत भारी है—वजनी। महाभारत में ही कहा गया है कि तराजू के एक पलड़े पर वेद रखे गये दूसरे पर यह पाँचवाँ वेद रखा गया, यही वजनी साबित हुआ। सो, 'महत्त्वाद्, भारवत्त्वाद् च महाभारतमुच्यते' महान और भारवान् होने के कारण इस ग्रन्थ को महाभारत कहा गया। मेरा अनुमान है कि हिन्दी की थीसिसों में जो सबसे भारी है—एक तो चौदह किलो का था।—उससे भी यह भारी सिद्ध होगा। इसलिए इसे भी 'महाभारत' ही कहना चाहिए—महान भारवाला पोथा। ऐसे भारवान् पोथे को किसी पाठक के सिर पर पटकने का अपराध मैं नहीं कर सकता। इसलिए मैंने इस ग्रन्थ के कुछ अंश चुने हैं। उन्हीं को प्रकाशित कराके अपने कर्तव्य का पालन कर रहा हूँ।

हिन्दी में एक प्रथा है, हर त्रुटि के लिए सहृदय पाठक से क्षमा माँग ली जाती है। किसी पाठक को, लिखकर क्षमा देने की बात नहीं सुनी गयी पर इसके विपरीत भी कहीं कुछ नहीं सुना गया। अनुमान है कि हिन्दी का हर पाठक क्षमासिन्धु है। क्षमा माँगते ही वह उदार भाव से मौन क्षमा प्रदान कर देता है। अनाम यह जानते हैं। क्षमा माँगने की उन्हें जरूरत नहीं महसूस हुई। जो बात अनायास मिल जाती है वह बिन माँगे भी मिल ही जायेगी। परन्तु मैं पाठकों से सहानुभूति की याचना अवश्य करना चाहता हूँ। कितना कठिन कर्तव्य निभा रहा हूँ, यह सब नहीं समझ सकेंगे। कुछ भुक्तभोगी ही इस बात को समझ सकते हैं। मेरा समान

मगर इस भले आदमी ने मुझे ही इस झखमारी के लिए क्या चुना ? बड़े-बड़े विद्वान हैं नेता हैं, राजपुरुष हैं, सेठ साहूकार है, चाहें तो तिल का ताड बना दें, ताड का तिल बना दें। वहा जाओ। उनसे कहो, मुझ गरीब को क्या परेशान करते हो ? विश्वास देखिए कि आये थे समर्पण करने की अनुमति मांगने, लिख दिया, 'आपको समर्पित है जो चाहे कीजिए।' अजब समर्पण है ! ऐसा समर्पण भी नहीं सुना। पढना पडेगा। पता नहीं, क्या क्या लिखा है ? बात तो पते की थी। सिर खपाना बुरा नहीं होगा।

मुश्किल यह है कि हिन्दी मे लिखना जितना आसान है, उतना पढना नहीं। लोग फटाफट लिख देते है, पढनेवाला मगज मारता रहता है। व्यक्तिगत अनुभव के बल पर कह सकता हूँ कि कुछ ऐसे लेखक है जिनकी एक पुस्तक पढकर समाप्त नहीं कर पाया तब तक उनकी चार पुस्तकें छप गयी। अनाम भी कही वसा ही लिक्खाड न निकले ! मगर अब डरने से भी क्या होगा ! सस्कृत के एक अनुभवी कवि सलाह दे गये है कि डर से तभी तक डरना चाहिए जब तक डर सचमुच सामने आकर खडा न हो जाये—'तावद् भयस्य भेतव्य यावद् भयमनागतम्'। और यहा तो भय सिर पर सवार है ! पोथे से छुटकारा नही है।

पोथा पढ गया। अजब गप्पी है यह अनाम। अनुभव का क्षेत्र तो इसका बहुत सीमित लगता है, पर उस सीमा के भीतर उछल कूद कर सकता है। कभी-कभी तो ऐसा उछलता है कि लगता है अगद कूद करके ही मानेगा। कहते हैं, जब रामचन्द्रजी लकाविजय करके लौटे तो ससुराल गये थे और साथ मे वानरी सेना भी गयी थी। लक्ष्मणजी सदा चिन्तित रहते थे कि कहीं लोक-व्यवहार से अनभिज्ञ बन्दर कुछ ऐसा न कर बैठें कि ससुराल में भद्द हो। सो, सब समय सिखाते रहते थे—मुझे देखते रहो, मै जैसा इशारा करूँगा वैसा ही करना। बन्दर बिचारे भी काफी सावधान थे। सब समय देखते रहते थे कि लक्ष्मणजी क्या इशारा करते है। भोजन करने सब लोग बैठे थे। लक्ष्मणजी ने बहुत सावधान कर दिया था। अन्न क्षेत्रकर ही न टूट पडना मेरी ओर देखते रहना, जैसा इशारा करूँ वैसा करना। ससुराल का मामला है गडबड न होने पाय। राम के एक ओर सुग्रीव बठे, एक ओर युवराज अगद। लक्ष्मणजी काने मे सुग्रीव के बगल मे थे। दायें, बायें, सामने वानर यूथाधिपति लोग। भोजन परसा गया। लक्ष्मण ने इशारा किया, चुप शान्त। सब वानर उनकी ओर दृष्टि बाँधे अधीर भाव से प्रतीक्षा करते रहे। लक्ष्मणजी ने नीबू का टुकडा उठाया, उसे दबाया। एक बीज छटककर ऊपर उठा। बन्दरो ने समझा इशारा हो गया। पासवाला उचककर थोडा कूदा। धीरे धीरे क्रम से एक एक वानर उचकने लगा। थोडा और अधिक उचकने की होड लग गयी। अगद की बारी आयी तो ऐसा उचके कि छत ही ले उडे। राम-लक्ष्मण हैरान ! यह क्या हो रहा है, मगर अगद तो छत ले ही उडे थे। इसी को अगद कूद कहते हैं। अनाम

भी कभी एगी ही कुलाँच भरता है। पर वह जगद की भाँति छन केकर नहीं उड पाता। छन ाट्कराकर नीचे ही आ जाता है। सीमा उसे अधिक बढ़कन नहीं देती। अनाम के भीतर सोया हुआ कोई कवि भी है। रह रहकर वह जाग पड़ता है पर न तो यह कवि उसके पूरे व्यक्तित्व को अभिभूत कर पाता है न अनाम वैसा करने की उसे अनुमति ही देता है। बिचारा सोया कवि जागता है फिर किसी अदृश्य चाबुक की चोट खाकर बेहोश हो जाता है। न मरता है, न मोनाता है। अनाम के भीतर का आलोचक सब समय गजन-तर्जन द्वारा उसका होश हवास गुम करता रहता है। पर ऐसा लगता है कि यह आलोचक जितना गजन करता है उतना शक्तिशाली नहीं है। कालिदास न अपन एक विदूषक से कहलवाया है कि जैसे साँपों म डुण्डुभ होता है वैसा ही ब्राह्मणो म मैं हूँ। डुण्डुभ बिल्कुल निर्विष साँप है। अनाम का आलोचक भी आलोचको म डुण्डुभ ही है। कहने का मतलब यह है कि अनामदास क पोथे स लगता है कि उसके लेखक के भीतर का कवि सुप्त है आलोचक असक्त। फिर भी कोई बात है जो आकृष्ट करती है।

शायद यह और कुछ नहीं, उसका मात्रा ज्ञान है। कहाँ रुक जाना चाहिए, कहाँ मुड जाना चाहिए, कहाँ तेज चलना चाहिए, यह अनाम को मालूम है। पर कितना नहीं लिखना चाहिए यह नहीं मालूम। मालूम होता तो इतना न लिखता। अभी तो भलेमानस ने एक अच्छा खासा महाभारत लिख मारा है। 'महाभारत' इसलिए नहीं कह रहा हूँ कि जो इसम है वही अन्यत्र मिल सकता है और जो इसम नहीं है वह कहीं नहीं मिल सकता (यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्), बल्कि इसलिए कि यह बहुत भारी है—वजनी! महाभारत म ही कहा गया है कि तराजू के एक पलड़े पर वेद रखे गये दूसरे पर यह पाँचवाँ वेद रखा गया, यही वजनी साबित हुआ। सो, 'महत्त्वात्, भारवत्त्वाद् च महाभारतमुच्यते' महान और भारवान् होने के कारण इस ग्रन्थ को 'महाभारत' कहा गया! मेरा अनुमान है कि हिन्दी की थीसिसो म जो सबसे भारी है—एक तो चौदह किलो का था!—उससे भी यह भारी सिद्ध होगा। इसलिए इसे भी 'महाभारत' ही कहना चाहिए—महान भारवाला पोथा! ऐसे भारवान पोथे को किसी पाठक के सिर पर पटकने का अपराध मैं नहीं कर सकता! इसलिए मैंने इस ग्रन्थ के कुछ अश चुने हैं। उन्हीं को प्रकाशित कराके अपने कर्त्तव्य का पालन कर रहा हूँ।

हिन्दी म एक प्रथा है, हर त्रुटि के लिए सहृदय पाठक से क्षमा माँग ली जाती है। किसी पाठक की, लिखकर क्षमा देन की बात नहीं सुनी गयी पर इसके विपरीत भी कहीं कुछ नहीं सुना गया। अनुमान है कि हिन्दी का हर पाठक क्षमासिन्धु है। क्षमा मागते ही वह उदार भाव से मौन क्षमा प्रदान कर देता है। अनाम यह जानता है। क्षमा मागने की उन्हें जरूरत नहीं महसूस हुई। जो बात अनायास मिल जाती है वह बिन मागे भी मिल ही जायेगी। परन्तु मैं पाठको स सहानुभूति की याचना अवश्य करना चाहता हूँ। कितना कठिन कर्त्तव्य निभा रहा हूँ यह सब नहीं समझ सकेंगे। कुछ भुक्तभोगी ही इस बात को समझ सकते हैं। मेरा ममान

धर्मा भुक्तभोगी शायद होगा ही नही कही। तब भी मैं याचना कर ही देता हूँ। दोष क्या है ? बहुत होगा, नही मिलेगी। मिल भी जाय तो कौन-सा भाण्डार मिलता है, न भी मिले तो क्या नुकसान हुआ जाता है !

अनामदास बहुत पहले से ही लिखते आ रहे है। उनके पास का एक मनोरंजक अंश है रैक्व आख्यान। काई चालीस वर्ष पहले उन्होंने छान्दोग्य उपनिषद के रैक्व-आख्यान पर एक कहानी लिखी थी। कहानी का शीर्षक था—'सब हवा है।' वह कही प्रकाशित नही हुई। उन्होंने कहानी बडे हल्के मनोभाव में लिखी थी। अब उसका दूसरा रूप उन्हें मिल गया है और उन्हें खेद हुआ है कि उन्होंने हल्का पन दिखाया था। जान पडता है उनके अन्त में उन्होंने कुछ नयी पंक्तियाँ भी जोड दी है। आरम्भ में लाल स्याही से यह भी लिख दिया है कि 'तब अति रहउँ अचेत'। जो हो, इस भूमिका में वह पुरानी कहानी दे रहा हूँ। इससे पाठको को अनाम के व्यक्तित्व के एक विनोदी पक्ष का कुछ आभास मिलेगा। बाद में लिखा 'रैक्व आख्यान' भी अलग से दिया जा रहा है।

सब हवा है !

"इस देश मे अनेक बडे बडे ऋषि मुनि हुए है। उनकी तपस्या और मनन चिंतन से हम आज भी प्रभावित है। ऐसे ही एक ऋषि थे रैक्व। उपनिषद में इनकी चर्चा आती है। जितना कुछ मालूम है उससे यही लगता है कि वे एक रथ के नीचे बैठकर अपना शरीर (शायद पीठ) खुजला रहे थे। उसी समय राजा जानश्रुति तत्त्व ज्ञान की भिक्षा मांगने पहुँचे थे। कोई नही जानता कि रैक्व और सारी चीजो को छोडकर रथ की छाया में ही क्यो बैठे थे। अनुमान किया गया है कि शायद वे स्वयं रथ बनाने या चलाने का कारोबार करते हो या ऐसा भी हो सकता है कि जिस प्रसंग की चर्चा उपनिषद मे मिलती है उस अवसर पर संयोग ही कुछ ऐसा था कि वे रथ की छाया मे आ बैठे थे। पर दोनो अनुमान असंगत लगते है क्योकि वे रथ चालक नही थे शुद्ध तत्त्व चिंतक ऋषि थे। संयोग वाली बात भी ठीक नही लगती। पहली बार जब राजा का दूत उनका पता लगाने गया तब भी वे रथ की छाया मे ही बैठे बैठे पीठ खुजला रहे थे और दूसरी बार जब स्वयं राजा उपस्थित हुआ तब भी वही हाल था। तीसरी बार भी राजा पहुँचा तो तथैव च। कितनी तो छाया मिलती होगी बेचारे को। कुछ अनुमान से यही कहा जा सकता है कि छाया की अपेक्षा उन्हे रथ से ही प्रेम था और यथासम्भव अपने रथ से दूर नही रहना चाहते थे। लेकिन इससे भी कठिन सवाल यह है कि वे अपनी पीठ क्यो खुजला रहे थे ? एक कारण तो यह भी हो सकता है कि उन्हें नहाने की आदत न हो और शरीर मे मल बैठ गयी हो। परन्तु ऋषि मुनियो के बारे मे यह बात कैसे कही जा सकती है। भारतवर्ष के पुराने साहित्य से इतना तो

पता चल ही जाता है कि ऋषि मुनि और चाहे कुछ न करते हों, सुबह सुबह स्नान तो जरूर कर लेते थे। सभी ऋषि स्नान करते थे तो रैक्व मुनि भी स्नान करते ही होंगे, इसलिए शरीर पर मैल जम जाना तो उनकी खुजली का कारण नहीं है। ऋषि मुनि स्नान तो जरूर थे मगर इतने पाछन थे कि नहीं इसमें सन्देह है। बेचारा के पास कपड़ा ही क्या होता था वल्कल मात्र! उससे दूर पाछन का काम जरा कठिन ही जान पड़ता है। हो सकता है और इसी का छान्दोग्य में भी ठीक समझा गया है कि बराबर शरीर के भीग रहने पर रैक्व मुनि का दाद-खाज दाद की बीमारी हो गयी हो। हालांकि ऋषियों के बीमार होने की खबर भी बहुत कम ही मिलती है, पर दाद जैसा रोग तो उन्हें हो ही नहीं सकता। कहते हैं, दाद की बीमारी सभ्यता की देन है। लोग ज्यादा कपड़ा पहनने लगे और दाद की बीमारी आ धमकी। रैक्व मुनि के दाद नहीं होगा। हो सकता है कि शरीर खुजलाने की उनकी आदत हो। ऋषि लोग अपने आप पर नियन्त्रण कर लेते थे। खुजली होती भी थी तो उसे खुजलाने की जरूरत नहीं होती थी। कहते हैं कि भगवान महावीर ने जब 13 साल तक घोर तप किया था तो उन्होंने शरीर को खुजलाया तक भी नहीं था। इससे इतना तो मिल जाता ही है कि ऋषि मुनियों को खुजली होती तो अवश्य थी पर अत्यधिक संयम के कारण वे उसे खुजलाते नहीं थे। पर रैक्व मुनि खुजला रहे थे। कुछ हरकतें मनुष्य जान बूझकर नहीं करता, किसी प्रयोजन से भी नहीं करता वे उसकी लत होती है। हो सकता है कि रैक्व मुनि भी किसी प्रयोजन से नहीं, बल्कि आदतन ऐसा किया करते थे। जो भी हो, उनकी खुजली का उल्लेख उपनिषदों में मिल जाता है। वे गाड़ी की छाया में बैठकर शरीर खुजला रहे थे।

'ऐसी ही अवस्था में राजा जानश्रुति उनकी सेवा में उपस्थित हुए थे। लगता है ऊँची जाति के आदमी नहीं थे। राजा कहने से आजकल हम लोग जैसा धन-धान्य और शान शौकत का अनुभव करते हैं वैसा तो उस समय क्या रहा होगा। किसी छोटे-मोटे गाँव के खाते-पीते मुखिया रहे होंगे। लोग उन्हें राजा कहते थे और उपनिषद् में भी उन्हें राजा ही कहा गया है। इनके बारे में कोई विशेष सूचना नहीं दी गयी है। केवल उन्हें राजा कहकर ही यह बता दिया गया है कि वे और दस आदमियों से अधिक सम्पन्न थे और उनके पास कुछ दास दासी, सोना चाँदी, गाय बैल भी अवश्य थे। ज्ञान के पिपासु थे। उन्हें ज्ञान मिल नहीं रहा था। ज्ञान की खोज में उन्होंने न जाने किन किन लोगों से बात की होगी, उसका कोई विवरण हमें नहीं प्राप्त है। हम इतना ही जानते हैं कि वे ज्ञान प्राप्ति के लिए रैक्व मुनि के पास अवश्य पहुँचे और रैक्व मुनि थे कि शरीर खुजला रहे थे, गाड़ी की छाया में बैठकर। वे कुछ फक्कड़ जरूर थे। राजा के आने पर कुछ न कुछ सम्मान किया ही जाता है और करना भी चाहिए। पर लगता है कि रैक्व मुनि पर उनके आगमन का कोई असर नहीं हुआ। न वे उठे और न और किसी प्रकार का सम्मान ही किया। बैठे रहे तो बैठे ही रहे।'

हसा का जोडा मिल गया। राजा लाग शिकार के शौकीन होते है। वे चाहते ता इन हसा को मारकर घर ले जा सकते थे। उस दिन रात्रिकालीन भोजन मे सुस्वादु मास पाकर तृप्ति अनुभव कर सकते थे, पर तु व और लोगा स कुछ भिन्न थे। उन्हान हसा का शिकार नहीं किया। चुपचाप खडे होकर उनकी बातचीत सुनते रहे। भाषा ता वे जानते ही थे, समझ गये कि व क्या बाते कर रहे ह। व आपस मे बात कर रहे थे कि जिस प्रकार पासे के सब निचले दाव ऊँचे दावा के अन्तगत आ जाते हैं उसी प्रकार मनुष्य जितने भी पुण्यकम करते ह वे सब सवरथी तत्त्व ज्ञानी रैक्व मुनि के पास पहुँचते ह। उन दिना पासे का खेल कैसे हुआ करता था, यह पण्डितो के अनुमान की बात ह। लेकिन हसा के कहने का तात्पय इतना अवश्य था कि छोटे मोटे आदमिया के जितने भी धम कम, ज्ञान और पुण्य ह वे सवरथी रैक्व के पास पहुँच जाते है। राजा की आखें आश्चय स फल गयी। कौन है यह रैक्व ? जो इतना प्रतापी है कि सब लोगा के तप, स्वाध्याय, मनन चिन्तन आदि उसके पास पहुँच जाते ह। वह निश्चय ही कोइ महान तत्त्वदर्शी होगा, पता लगाना चाहिए। जिसकी प्रशसा हस भी करे वह जरूर बडा तत्त्वज्ञ नी होगा। यह बात बहुत कुछ ऐसी ही थी जैसी आजकल घटित हो रही है। जिसकी प्रशसा स्वत-*त्राय अग्रेज कर दें, उसे आज भी महान तत्त्वज्ञानी मान लिया जाता है।* उसकी खोज तो की ही जाती है।

"राजा जानश्रुति ने अपने चरा का चारा ओर भिजवा दिया। खोजो उस महान तत्त्वज्ञानी को, जिसकी प्रशसा हस भी करते है। वह कहा रहता है क्या करता है, कसे उसके पास पहुँचा जा सकता है।" चरो ने दौड लगायी। उन दिना जहा जहा खोजा जा सकता था वहा वहा वे गये। अन्त म एक ने आकर खबर दी कि रैक्व कोई बहुत दूर नही रहते, पास ही किसी रथ की छाया म बैठकर शरीर खुजलाते रहते ह। सन्धान पाते ही राजा बहुत सा उपहार लेकर उस रथ के पास पहुँचे जिसकी छाया मे बठे परम तत्त्वज्ञानी रैक्व मुनि शरीर खुजला रहे थे। उन्हे देखकर राजा को आश्चय हुआ।

"उपनिषद की गवाही से इतना ही पता चलता ह कि रैक्व मुनि ने शूद्र राजा का उपदेश देना अस्वीकार कर दिया। अन्न और सोने का उपहार भी लौटा दिया। गायें, सोने के हार, घोडे जुते हुए रथ सब लौटा दिये। राजा ने जानना चाहा था कि वे किस देवता की उपासना करते ह। परन्तु रैक्व तो फक्कड आदमी थे। उन्हाने कहा कि उन्हे राजा के गोवश, हार और रथ म कोई मतलब नही ह। बचारे जानश्रुति लौट आये।

'उपनिषद म कुछ विशेष रूप से यह नही बताया गया है कि इसके बाद क्या हुआ। केवल कहानी का अन्तिम अश इस प्रकार बताया गया है कि व दूसरी बार ऋषि के पास गोवश, हार और रथ तो ले ही गये, अपनी सुन्दर कन्या को भी ले गये। फक्कड ऋषि अब जाकर प्रसन्न हुए और जानश्रुति की सुन्दरी कन्या का मुख अपनी ओर उठाकर बोले कि 'हे शूद्र, इस सुन्दर मुख के कारण तुम मुझे

सुनता और स्वय सोचने का प्रयत्न करता। जगल म जो कुछ मिल जाय उसस वह पेट भर लेता था। किसी के द्वार भिक्षा मागन नही गया। उसका अधिकाश समय चिन्तन मनन म ही व्यतीत होता था।

उसन किसी पुराने ऋषि का मन्तव्य सुना था कि सृष्टि के आदि म केवल जल की ही सत्ता थी। जल से ही सत्य का उदय हुआ। सत्य ही ब्रह्म है। ब्रह्म स प्रजापति की उत्पत्ति हुई और प्रजापति से दवताओ की सृष्टि हुई। य दवता गण कवल सत्य की ही उपासना करत ह। यह सिद्धान्त उसे बडा विचित्र मालूम हुआ। क्या ससार का मूल जल है? क्या सत्य जल से आया है? इस वचन का तात्पय क्या हो सकता है? जल से उत्पन्न हुए सत्य की क्या कोई मौलिक सत्ता है? ऋषि न बताया था कि सत्य मे तीन अक्षर है। एक 'स' है, एक 'ति' है और एक 'अ' है। पहला और तीसरा अक्षर सत्य है और बीचवाला मिथ्या है। इसका मतलब बालक की समझ म नही आया, लेकिन उसन अपने मन मे यह निष्कप निकाला कि आदि सत्य है और अन्त सत्य है, बीच का प्रपच सब मिथ्या है। इसका मतलब यह हुआ कि जो कुछ दिखलायी द रहा है वह बीच का है और सब असत्य है। उसके पिता ने बताया था कि सभी वस्तुएँ एक ही तत्त्व से निकली ह और उसी तत्त्व म विलीन हो जायगी। अब ऋषि के वाक्य म उसने इतना और जोड लिया कि वह मूल तत्त्व जिसमे सब निकला ह वह सही है और जिसमे सब विलीन हो जायेगा, वह भी सही है—केवल बीच का प्रपच मिथ्या है। परन्तु उसका मन यह मानन को किसी प्रकार तैयार नही था कि वह मूल तत्त्व जल ही है।

लडका चिन्तन मनन मे इतना खो गया कि उसे ससार की किसी और बात का ध्यान ही नही रहा। केवल ध्यान करता था और समझन का प्रयत्न करता था कि वह मूल तत्त्व क्या हे जिससे सब कुछ उत्पन्न होता है और जिसमे सब विलीन हो जाता है। अपनी इस सोचन की आदत के कारण वह लोक सम्पक म बहुत कम आता था। अनाथ तो था ही, वह पूण रूप से अनिकेत भी हो गया, अथात उसके पास अपना कहा जाने लायक कोई घर भी नही था। वह एकान्त सेवी हो गया था। प्रात काल नदी मे स्नान करने के बाद वह ध्यान मे बैठ जाता और सोचन लगता। तन मन की सुधि न रहती, भूख लगती ता आस पास का कन्द मूल लकर पेट भर लेता। उसे पता ही नही था कि दुनिया म और क्या होता है, अन्न कस उत्पन्न होता है, सामाजिक जीवन क्या चीज है, पुरुप और स्त्री का क्या भेद है, इन सब बाता से वह एकदम अपरिचित ही बना रहा, लेकिन उसकी सोचन की प्रक्रिया निरन्तर बढती ही जाती थी।

दखत दखत बालक किशोरावस्था म आ गया। कभी कोई परिचित ऋषि या जिज्ञासु उससे मिल जाता तो उस रिक्व का बटा कहकर पुकारता। रिक्व का बेटा अथात रक्व। किशोरावस्था मे प्रवेश करने पर उस सिफ इतना ही मालूम था कि उसका नाम रक्व ह अथात किसी रिक्व ऋषि का बटा। इसम अधिक न उसने जाना और न किसी न बताया। लेकिन जिज्ञासु जना म उसक प्रति आदर का भाव

अवश्य बढ़ गया था। उसमे चिन्तन-मनन की प्रवत्ति, निरन्तर ध्यान करने की शक्ति और हर बात म मूल तक पहुँचने का प्रयास प्रशसा की दृष्टि से देखा जाता था। धीरे-धीरे लोग उसके दर्शन के लिए भी आने लगे। ऐसा विश्वास किया जाने जाने लगा कि यह निष्क्रिय, निष्काम तरुण तापस समस्त सिद्धियों को प्राप्त कर रहा है, क्योंकि उसकी प्रवृत्तियाँ बहिर्मुख नहीं है, अन्तरतर म लीन हो गयी है। लोगो के आते जाते रहने पर भी वह उनकी ओर विशेष ध्यान नहीं देता था, अपनी समाधि म उसी प्रकार बैठा रहता था। लेकिन उसका यश जैसे जैसे फैलता गया वैसे वैसे उसके पास खाने-पीने की चीजें आने लगी। लोग कुछ-न कुछ उसके पास रख जाया करते थे। इससे जगल मे जाकर कन्द मूल खोजने की कठिनाई से वह बच गया। उसकी ध्यान धारणा और भी निर्विघ्न भाव से चलने लगी। इस बीच एक घटना और हुई।

तरुण तापस रैक्व जब अपने आसन से उठा तो तीसरा पहर हो गया था। उस दिन उसने अपनी समाधि मे इस बात का अनुभव किया था कि समस्त चैतन्य जगत को जो चीज सचमुच प्राणवन्त बनाये हुए है, वह *वायु है। वस्तुत प्राण भी वायु* ही है। तो इस प्राण को ही क्या मूल तत्त्व माना जा सकता है? कुछ दिन पहले उसने किसी ऋषि से सुना था कि समस्त पदार्थों का परम तत्त्व प्राण ही है। प्राण मे ही समस्त तत्त्व विलीन हो जाते है। प्राण ही सबको जीवन्त बनाये हुए है। यह प्राण ही वायु के रूप मे बाह्य जगत मे व्याप्त है। परन्तु वायु क्या चरम और परम है या इससे भी परे कोई चीज़ है? तरुण तपस्वी ने देर तक इस विषय पर मनन किया। उन्हे पता ही नही चला कि कब सूर्योदय हुआ, कब मध्याह्न हुआ और कब सूर्य पश्चिम की ओर ढरक पड़ा। जब वे उठे तो उनका मन बहुत प्रसन्न था। वे अब प्राण तत्त्व का रहस्य समझना चाहते थे। उन्हे ऐसा लग रहा था कि उन्होने कोई बहुत बडी उपलब्धि पा ली है। उठकर वे नदी मे स्नान करने के लिए चले गये। आज उनका चित्त बहुत ही उत्फुल्ल था, लेकिन जब वे नदी मे उतरे तभी *उन्होने देखा कि आसमान के पश्चिमी किनारे पर काले मेघ-खण्ड दिखायी दे रहे* है। सरल तपस्वी को यह समझ मे नही आया कि आधी आनेवाली है। जिस वायु की महिमा को उन्होने अपनी समाधि म अनुभव किया था, वही प्रचण्ड वेग धारण करके सिर पर आनेवाला है, इसका उन्हे लेश मात्र भी ध्यान नही था। अचानक बडे जोर की आधी आयी। नदी उस प्रचण्ड वेग से उफन उठी। विचार-मग्न ऋषि कुछ तरगो के एक ही आघात मे उलट गये और आधी के साथ भयकर वर्षा भी शुरू हो गयी। जब तक वे सँभलें तब तक नदी की गरजती हुई धारा ने उन्हे बहा लिया। यद्यपि वे बुरी तरह से आधी पानी मे फँस गये थे फिर भी उनका मन प्रसन्न था, क्योंकि वे वायु की प्रचण्ड शक्ति का प्रत्यक्ष अनुभव कर रहे थे। ऋषि कुमार नदी की गरजती हुई तरगो से काफी दूर तक बकेले जाते रहे और अन्त म एक ऊँचे शिला खण्ड से टकरा गये। किसी प्रकार से शिला-खण्ड के ऊपर जा बैठे। आधी तब भी तेज़ चल रही थी और नदी की धारा तब भी तेज गरज रही थी।

ऋषिकुमार भी बहुत थक गये थे और शिला-खण्ड पर बैठते ही वे मूर्च्छित हो गये। कितनी देर तक वे बेहोशी की हालत में रहे यह उन्हें भी नहीं मालूम, लेकिन स्वप्न में भी वे यही सोचते रहे कि वायु सबसे प्रचण्ड शक्ति है, जल से भी और धरती से भी। यह वायु का ही वेग था जो जल को खींच लाया, पानी बरसने लगा। नदी के जल को उछाल दिया वह फुफकारने लगी और उन जैसे उत्तम प्राणी को उसने ऐसा धक्का मारा कि वे न जाने कितनी दूर इस अनात जगह पर आ बैठे। वायु की महिमा सचमुच प्रचण्ड है। वे अब भी जो सपना देख रहे हैं या सोच रहे हैं वह सिर्फ इसलिए है कि उनकी सांस चल रही है यह सांस भी वायु ही है। अचेतावस्था में भी उन्हें बार बार अपनी इस नयी उपलब्धि का आभास मिलता रहा। वे आनन्दित और उल्लसित होते रहे।

धीरे धीरे आंधी का वेग कम हुआ। नदी का भयंकर फूत्कार शान्त हुआ, आसमान में तारे दिखायी देने लगे। ऋषि की मूर्च्छा भंग हुई। वे चकित भाव से आकाश की ओर देखने लगे। इतने असंख्य तारे अब तक दिखायी क्यों नहीं देते थे! वायु के प्रचण्ड वेग से सारा आसमान मेघों से भर गया और तारे तक उसमें लुप्त हो गये! वायु की महिमा सचमुच विस्मयकारी है!

रैक्व के पिता सामवेद के प्रख्यात विद्वान थे। नाना देशों से आये हुए धुरन्धर विद्वान उनसे साम गान के बारे में चर्चा करते थे। बालक रैक्व को सब समझ में नहीं आता था। कभी कभी ऋषियों के साथ उनके पुत्र भी आ जाया करते थे। खुले और चमकते हुए तारों से भरे हुए आकाश को देखकर रैक्व को पुरानी बात याद आ गयी। उस समय रैक्व की अवस्था बहुत थोड़ी थी, सब चीजें उसकी समझ में नहीं आती थीं। वृद्धों के पास जाने में तो उसे संकोच भी होता था लेकिन नौजवान ऋषि पुत्रों की चर्चा में वह खुलकर हिस्सा लेता था। तारा भरे आकाश को देखकर उसे याद आया कि तीन तरुण ऋषिकुमार उसके आश्रम में साम गान की चर्चा में लगे हुए थे। उनमें दो तो ब्राह्मण थे और तीसरे क्षत्रिय थे। ब्राह्मण ऋषियों में प्रथम थे शालवान के पुत्र शिलक और दूसरे थे चिकितायन के पुत्र दाल्भ्य। क्षत्रिय ऋषि जीवल के पुत्र प्रवाहण थे। तीनों उद्गीथ विद्या के मर्मज्ञ थे। एक बार इन लोगों में इस तत्त्व के आश्रय के सम्बन्ध में विचार हुआ। शिलक के प्रश्नों का उत्तर देते हुए दाल्भ्य ने बताया था कि साम का आश्रय स्वर है, स्वर का आश्रय प्राण है प्राण का आश्रय जल है और जल का आश्रय स्वर्ग लोक है। इसके आगे प्रश्न नहीं करना चाहिए, क्योंकि साम को स्वर्ग लोक कहकर ही स्तुति की गयी है—'स्वर्गो वै लोकः सामवेदः।'

किन्तु शालवान के पुत्र शिलक, चिकितायन के पुत्र दाल्भ्य के इस कथन से सहमत नहीं हो सके। यह कैसे हो सकता है कि स्वर्ग लोक ही अन्तिम सत्य है? उन्होंने शिलक के प्रश्न के उत्तर में कहा था—स्वर्ग लोक का आश्रय मनुष्य लोक है—यह मिट्टी की धरित्री है। शिलक ने बाद में दाल्भ्य के ढंग पर ही स्वीकार किया कि इसके आगे प्रश्न अनुचित है। सबकी प्रतिष्ठारूप इस मनुष्य लोक की

प्रतिष्ठा और क्या हो सकती है ? साम को पृथ्वी कहकर ही स्तुति की गयी है—'इयं वै रथन्तरम् ।' सो साम का चरम आश्रय यह मनुष्य लोक ही है।

जीवल के पुत्र प्रवाहण को यह भी चरम आश्रय नहीं जान पड़ा। बोले, 'मनुष्य-लोक ही अंतिम सत्य नहीं है। मनुष्य लोक की भी कोई गति होनी चाहिए। यह कैसे मान लिया जाये कि इसके आगे कुछ है ही नहीं ? वस्तुतः इसका भी आश्रय आकाश है। भूतमात्र आकाश में ही उत्पन्न होते हैं और आकाश में ही विलीन होते हैं। आकाश सबसे बड़ा है। आकाश ही परम आश्रय है।'

आज रैक्व शुभ्र आकाश को देख रहे हैं। तो क्या यह आकाश ही सब कुछ है ? इसी में सब कुछ विलीन हो जाता है, इसी से सब उत्पन्न होता है, इसी में सब कुछ चक्कर मार रहा है ? किन्तु इसमें प्राण कहाँ है ? प्राण के बिना तो कुछ भी चंचल नहीं होता। जीवधारियों में जो प्राण है, वही आकाशमण्डल में व्याप्त वायु है ? वायु ही पृथ्वी और स्वर्ग के अंतराल को भरता है ? आकाश पर इसका प्रभुत्व नहीं है ? पृथ्वी उसकी क्षमता से परे है ? रैक्व मुग्ध भाव से आकाश की ओर देखते रहे। उन्हें ठीक उत्तर नहीं सूझ पड़ा। सोचते हुए वे अपने स्थान से उठे और जिधर पानी का प्रवाह नहीं फैला था उस ओर धीरे धीरे बढ़ने लगे। उनके मन में तीन तत्त्व मुख्य रूप से चक्कर काट रहे थे—वायु, जल और आकाश। अन्धकार चारों ओर व्याप्त हो गया था। रास्ता पाना कठिन मालूम हो रहा था। वे ठीक नहीं समझ पा रहे थे कि आखिर वे हैं कहाँ। अपनी कुटिया से कितनी दूर हैं। जब जब वे कुटिया की बात सोचते थे तब तब उनके मन में वायु की शक्तिशालिता उजागर हो उठती थी। यह वायु ही है जिसने उन्हें अचानक यहाँ तक ठेल दिया। यह वायु ही है जिसने जल को ऐसा प्रलयंकर बना दिया। यह वायु ही है जिसने आकाश को काली मसृण स्याही से पोत दिया था और अब निर्मल तारे-खचित शुभ्र रूप में प्रकट करा रहा है। लेकिन वायु क्या चरम है ? वायु का भी कुछ कारण होना चाहिए। वायु क्या स्वयं शक्तिशाली है या किसी और से शक्ति पाता है ?

मगर तरुण तापस अँधेरे में रास्ता टटोलते हुए आगे बढ़ रहे थे। रास्ता तो कहीं था नहीं। दूर तक कँटीली झाड़ियों का विस्तार था। थोड़ी ही देर में चन्द्रमा का उदय हुआ। सारी वनस्थली में किसी ने दूध की चादर बिछा दी। तरुण तापस और आगे बढ़ा। उसे कुछ खेत दिखायी पड़े। निश्चय ही वे किसी गाँव के निकट पहुँच गये थे। उन्होंने सावधानी से चारों ओर देखा, एक पगडण्डी सी दिखायी पड़ी। गाड़ियों के चलने से चिह्न बन गये थे। एक गाड़ी तो लगता है तूफान में फँस गयी थी, क्योंकि उसके पहिये दूर दूर तक धँसे हुए दिखायी देते थे। उन निशानों पर आगे बढ़ते हुए एक जगह आकर रैक्व एकदम रुक गये। यह क्या ? सामने एक बैलगाड़ी, जिसे उन दिनों 'रथ' कहा करते थे, बुरी तरह कीचड़ में धँसी पड़ी है। बैल उसमें अवश्य जुते हुए थे, लेकिन जान पड़ता है कि आँधी के भयंकर वेग से भाग खड़े हुए थे और गाड़ी धँसी पड़ी हुई थी। गाड़ीवान पास ही

म मरा पड़ा था। रैक्व के मन में करुणा का उदय हुआ। हाय! बेचारा आँधी-तूफान म मर ही गया, लेकिन गाडी से कोई दस पन्द्रह हाथ पर एक और जीव उसी तरह आँधी पानी से जूझता हुआ शिथिल मूर्च्छित पड़ा हुआ था। रैक्व ने पहले तो उसे भी मरा समझा, परन्तु एकाएक अपने चिंतन से प्राप्त उपलब्धि की याद आ गयी—वायु के बिना कोई जीवित नहीं रहता। देखना चाहिए कि यह जीवित है कि मर गया है। अगर जीवित होगा तो नाक से साँस निकल रही होगी। गाड़ीवान की नाक पर हाथ रखकर देखा, कोई हलचल नहीं थी। दूसरे प्राणी की नाक पर हाथ रखकर देखा तो साँस चल रही थी।

ऋषिकुमार ने सोचा कि अगर इसकी कुछ सहायता की जाये तो शायद जी जाये। कठिनाई यह थी कि यह दूसरा प्राणी इतने कपड़ों से और मणि-मोतियों से जड़ा हुआ था कि उनकी समझ में नहीं आया कि ये सब कपड़े क्या हैं। ये मोती मानिक जैसी चीजें इस प्राणी ने पहले से ही धारण की थीं या बाद में उसके शरीर पर डाली गयी हैं। यह प्राणी निस्सन्देह मनुष्य ही था। हाथ, पैर, नाक, मुह, देह सब कुछ मनुष्य जैसे थे, परन्तु था कुछ विचित्र। इस प्रकार की मानवमूर्ति उन्होंने अपने जीवन में नहीं देखी थी। उनकी समझ में नहीं आया कि आँधी और तूफान से जो कपड़े इधर उधर बिखर गये हैं, उनका क्या उपयोग किया जाय। फिर भी कुछ तो करना ही चाहिए।

उन्होंने अपने सिद्धान्त की परीक्षा की। अगर वायु सब-कुछ का कारण है और समस्त वायु में ही विलीन हो जाता है तो वायु के उपचार से इस प्राणी को कुछ राहत मिल सकती है। उन्होंने उसके शरीर पर उलझे हुए कपड़ों का एक सिरा उठाया और हवा करने लगे। थोड़ी देर में उन्होंने देखा कि उस प्राणी में कुछ हलचल हुई। ऐसा लगा कि उसकी मूर्च्छा दूर हो रही है और वह धीरे धीरे स्वस्थ हो रहा है। एक और आश्चर्य मुनि को यह हुआ कि जिस कपड़े से वे हवा कर रहे थे वह सूख गया। रैक्व के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। उन्होंने धीरे धीरे उसके सब कपड़े उतारकर सुखाने का निश्चय किया। उन्होंने उसका सिर उठाकर कपड़ा हटाना चाहा। एकाएक उनका ध्यान उसकी आँखों की ओर गया। ऋषिकुमार विस्मित होकर देखने लगे। ऐसी आँखें तो मनुष्य की नहीं होतीं। ये तो बिलकुल मृग की आँखें हैं। अवश्य ही इस प्राणी ने कहीं से मृग की आँखें लेकर अपने चेहरे पर बैठा ली हैं। वे धीरे धीरे आँखों के चारों ओर उँगली फिराकर देखने लगे कि कहीं जोड़ के चिह्न हैं या नहीं। नहीं थे। ऋषिकुमार एकदम उसके चेहरे पर झुक गये। अवश्य ही कोई रहस्य है! उसी समय उस प्राणी की आँखें खुल गयीं। वह अचकचा कर उठ बैठा। क्रोध भरे स्वर में उसने कहा, 'कौन है तू? क्या कर रहा है?" रैक्व ने इतनी मधुर वाणी कभी नहीं सुनी थी। उन्होंने समझा, निश्चय ही यह कोई देवलोक का मनुष्य है। हाथ जोड़कर बोले "मैं बहुत प्रसन्न हूँ देवलोक के मनुष्य! तुम्हारी संज्ञा लौट आयी, तुम उठकर बैठ गये, मैं तुम्हारे कपड़े सुखाने का प्रयत्न कर रहा था।' देवलोक के प्राणी को रैक्व की यह

वाणी सुनकर कुछ कुतूहल हुआ। बोला, "तुम कौन हो ?"

रैक्व ने गद्गद भाव से प्रणति की और कहा, "धन्य हो देवता ! मुझे लोग रिक्व ऋषि का पुत्र रैक्व कहते है। मैं भी आधी तूफान म फँस गया था और इधर आते समय देखा कि यह रथ भी फँस गया है। इसका चलानेवाला मर गया है, इसका एक प्राणी जीवित है। तुम धन्य हो। अब बताओ, तुम कौन हो ?"

रैक्व की सरल निष्कपट स्तुति से देवता को प्रसन्नता हुई। उसने उठकर अपने कपडे ठीक किये और चुपचाप एक ओर जरा ऊँची जमीन देखकर आसन ग्रहण किया। रैक्व उसके पीछे पीछे उसी तरह खिंचते चले गये जैसे चुम्बक के पीछे लोहा खिंचता है। ऐसा लगता था कि रैक्व जिसे देवलोक का मनुष्य समझ रहे थे, उसे थोडी-बहुत चोट भी आयी थी। उसकी पीठ मे, हाथ म कुछ चोट के निशान भी थे। रैक्व को लगा कि अकारण ही उसके अन्तरतर मे एक भयकर आधी चल रही है। ऐसा दिव्य रूप उन्होंने कभी नही देखा था इतनी मीठी बोली उन्होंने कभी नही सुनी थी। यह कौन है ? क्या स्वर्ग के देवता ऐसे ही होते है ? कातर भाव से बोले, "अगर मैं कुछ सेवा करने योग्य माना जाऊँ तो आज्ञा पाकर कृतार्थ होऊँगा।" देवलोक का मनुष्य उनकी ओर एकदम देखता ही रहा। उसके मुख पर सीधे चन्द्रमा की शुभ्र किरणें बरस रही थी। रैक्व ने कातर विनीत वाणी मे कहा, 'हे देवलोक के मनुष्य ! तुम्हे देखकर मेरा सारा अस्तित्व तुम्हारी सेवा के लिए ढरक जाना चाहता है। मैंने बचपन मे मधुर साम वाणी सुनी है, परन्तु ऐसी मीठी वाणी आज तक नही सुनी। मुझे आज ऐसा जान पडता है कि मेरा जन्म कृतार्थ है, मेरा जप-तप सफल है, मेरा सारा अस्तित्व परिपूर्ण हो गया है। अहा हा, कैसा सुन्दर रूप है ! सत्य कहता हूँ देवता, मैंने ऐसी सुन्दर आखें पहले कभी नही देखी। तुम जब हँसते हो तो मुझे लगता है कि फूल बरस रहा है, तुम जब बोलते हो तो मुझे लगता है कि अमृत की वर्षा हो रही है। कैसा अद्भुत है ! अब तक मैंने तुम्हारी अवस्था के जितने ऋषि पुत्र देखे है सबके केश रूक्ष और जटिल होते है परन्तु तुम्हारे केश कितने मुलायम और मनोहर हैं। तुम्हारे अधरो म कैसी दिव्य प्रभा है। मुझे ठीक ठीक बताओ, तुम किस स्वर्गलोक के निवासी हो और यहा कैसे आ गये ?' आनन्द गद्गद होकर रैक्व ने उसके मुलायम बालो को हाथो से अनुभव करने का प्रयत्न किया। फिर अत्यन्त सरल सहज भाव से उन्होने देवता के गालो पर भी हाथ फेर दिया और आनन्द कातर भाव मे बोले, 'अहा हा, तुम्हारी अवस्था के ऋषि पुत्रो के तो रूखे रूखे बाल जम आते है कैसा दिव्य तुम्हारा मुख मण्डल है कितने लाल लाल अधर है।' स्वर्गीय प्राणी ने जरा झिडककर कहा, 'ऋषिकुमार जरा दूर हटकर रहो। तुम क्या पहली बार किसी स्त्री को देख रहे हो ?" ऋषिकुमार कुछ समझ नही सका, केवल आखें फाडकर उसकी ओर देखता ही रहा। अब उस स्वर्गीय प्राणी ने ही कहा, 'देखो ऋषि-कुमार ! मैं महाराज जानश्रुति की कन्या हूँ तुम्हे इतनी तो जानकारी होनी ही चाहिए कि इस तरह से स्त्रियो का स्पर्श करना अनुचित है, पाप है, परन्तु मैं

मे मरा पडा था। रक्व के मन म करुणा का उदय हुआ। हाय ! बचारा आँधी तूफान म मर ही गया, लेकिन गाडी स कोई दस पन्द्रह हाथ पर एक और जीव उसी तरह आँधी पानी स जूझता हुआ शिथिल मूर्च्छित पडा हुआ था। रक्व न पहले तो उस भी मरा समझा, परन्तु एकाएक अपन चिन्तन से प्राप्त उपलब्धि की याद आ गयी—वायु के बिना कोई जीवित नही रहता। देखना चाहिए कि यह जीवित है कि मर गया है। अगर जीवित होगा तो नाक से साँस निकल रही होगा। गाडीवान की नाक पर हाथ रखकर देखा, कोई हलचल नही थी। दूसर प्राणी की नाक पर हाथ रखकर देखा तो साम चल रही थी।

ऋषिकुमार ने सोचा कि अगर इसकी कुछ सहायता की जाय ता शायद जी जाय। कठिनाई यह थी कि यह दूसरा प्राणी इतने कपडा से और मणि मोतिया से जडा हुआ था कि उनकी समझ मे नही आया कि य सब कपडे क्या हैं। य मोती मानिक जैसी चीजें इस प्राणी न पहले मे ही धारण की थी या बाद मे उसके शरीर पर डाली गयी ह। यह प्राणी निस्सन्देह मनुष्य ही था। हाथ, पैर, नाक, मुह, देह सब कुछ मनुष्य जैस थे परन्तु था कुछ विचित्र। इस प्रकार की मानवमूर्ति उन्होने अपने जीवन मे कही देखी नही थी। उनके समझ म नही आया कि आँधी और तूफान से जो कपडे इधर-उधर बिखर गये है, उनका क्या उपयोग किया जाय। फिर भी कुछ तो करना ही चाहिए।

उन्होंने अपन सिद्धान्त की परीक्षा की। अगर वायु सब कुछ का कारण है और समस्त वायु म ही विलीन हो जाता है तो वायु के उपचार स इस प्राणी को कुछ राहत मिल सकती है। उन्होने उसके शरीर पर उलझे हुए कपडा का एक सिरा उठाया और हवा करने लगे। थोडी देर म उन्होन देखा कि उस प्राणी म कुछ हलचल हुई। ऐसा लगा कि उसकी मूर्च्छा दूर हो रही है और वह धीरे धीरे स्वस्थ हो रहा है। एक और आश्चय मुनि को यह हुआ कि जिस कपडे से वे हवा कर रहे थे वह सूख गया। रैक्व के आश्चय का ठिकाना नही रहा। उन्होन धीरे धीरे उसके सब कपडे उतारकर सुखान का निश्चय किया। उन्होन उसका सिर उठाकर कपडा हटाना चाहा। एकाएक उनका ध्यान उसकी आखो की ओर गया। ऋषिकुमार विस्मित होकर देखने लगे। ऐसी आखें तो मनुष्य की नही होती। ये तो बिल्कुल मृग की आखें है। अवश्य ही इस प्राणी ने कही से मृग की आखें लेकर अपने चेहरे पर बैठा ली है। वे धीरे धीरे आखो के चारा ओर उँगली फिराकर देखने लगे कि कही जोड के चिह्न है या नही। नही थे। ऋषिकुमार एकदम उसके चेहरे पर झुक गये। अवश्य ही कोई रहस्य है ! उसी समय उस प्राणी की आखें खुल गयीं। वह अकचका कर उठ बैठा। क्रोध भरे स्वर मे उसने कहा, "कौन है तू ? क्या कर रहा है ?" रक्व ने इतनी मधुर वाणी कभी नही सुनी थी। उन्होने समझा निश्चय ही यह कोई देवलोक का मनुष्य है। हाथ जोडकर बोले, "मैं बहुत प्रसन्न हूँ देवलोक के मनुष्य ! तुम्हारी चेतना लौट आयी, तुम उठकर बैठ गये, मैं तुम्हारे कपडे सुखान का प्रयत्न कर रहा था।" देवलोक के प्राणी को रैक्व की यह

वाणी सुनकर कुछ कुतूहल हुआ। बोला, "तुम कौन हो?"

रैक्व ने गद्गद भाव से प्रणति की और कहा "धन्य हो देवता! मुझे लोग रिक्व ऋषि का पुत्र रैक्व कहते है। मैं भी आधी तूफान म फँस गया था और इधर आते समय देखा कि यह रथ भी फँस गया है। इसका चलानेवाला मर गया है, इसका एक प्राणी जीवित है। तुम धन्य हो। अब बताओ, तुम कौन हो?"

रैक्व की सरल निष्कपट स्तुति से देवता को प्रसन्नता हुई। उसने उठकर अपने कपडे ठीक किये और चुपचाप एक ओर जरा ऊँची जमीन देखकर आसन ग्रहण किया। रैक्व उसके पीछे पीछे उसी तरह खिचते चले गये जैसे चुम्बक के पीछे लोहा खिंचता है। ऐसा लगता था कि रैक्व जिसे देवलोक का मनुष्य समझ रहे थे, उसे थोडी-बहुत चोट भी आयी थी। उसकी पीठ म, हाथ मे कुछ चोट के निशान भी थे। रैक्व को लगा कि अकारण ही उसके अन्तरतर म एक भयकर आँधी चल रही है। ऐसा दिव्य रूप उन्होंने कभी नही देखा था, इतनी मीठी बोली उन्होंने कभी नही सुनी थी। यह कौन है? क्या स्वर्ग के देवता ऐसे ही होते है? कातर-भाव से बोले, "अगर मैं कुछ सेवा करने योग्य माना जाऊँ तो आज्ञा पाकर कृतार्थ होऊँगा।" देवलोक का मनुष्य उनकी ओर एकदम देखता ही रहा। उसके मुख पर सीधे चन्द्रमा की शुभ्र किरणे बरस रही थी। रैक्व ने कातर विनीत वाणी मे कहा, 'हे देवलोक के मनुष्य! तुम्हे देखकर मेरा सारा अस्तित्व तुम्हारी सेवा के लिए ढरक जाना चाहता है। मैंने बचपन मे मधुर साम वाणी सुनी है परन्तु ऐसी मीठी वाणी आज तक नही सुनी। मुझे आज ऐसा जान पडता है कि मेरा जन्म कृतार्थ है, मेरा जप तप सफल है, मेरा सारा अस्तित्व परिपूर्ण हो गया है। अहा हा, कैसा सुन्दर रूप है! सत्य कहता हूँ देवता, मैंने ऐसी सुन्दर आखे पहले कभी नही देखी। तुम जब हँसते हो तो मुझे लगता है कि फूल बरस रहा है, तुम जब बोलते हो तो मुझे लगता है कि अमृत की वर्षा हो रही है। कैसा अद्भुत है! अब तक मैंने तुम्हारी अवस्था के जितने ऋषि पुत्र देखे हैं, सबके केश रूक्ष और जटिल होते है, परन्तु तुम्हारे केश कितने मुलायम और मनोहर है। तुम्हारे अधरो म कैसी दिव्य प्रभा है। मुझे ठीक ठीक बताओ तुम किस स्वर्गलोक के निवासी हो और यहा कैसे आ गये?' आनन्द गद्गद होकर रैक्व ने उसके मुलायम बालो को हाथो से अनुभव करने का प्रयत्न किया। फिर अत्यन्त सरल सहज भाव से उन्होंने देवता के गालो पर भी हाथ फेर दिया और आनन्द कातर भाव से बोले, "अहा हा, तुम्हारी अवस्था के ऋषि-पुत्रो के तो रूखे रूखे बाल जम जाते हैं, कैसा दिव्य तुम्हारा मुख मण्डल है, कितने लाल लाल अधर हैं।" स्वर्गीय प्राणी ने जरा झिडककर कहा, 'ऋषिकुमार, जरा दूर हटकर रहो। तुम क्या पहली बार किसी स्त्री को देख रहे हो?" ऋषिकुमार कुछ समझ नही सका, केवल आखें फाडकर उसकी ओर देखता ही रहा। जब उस स्वर्गीय प्राणी ने ही कहा 'देखो ऋषिकुमार! मैं महाराज जानश्रुति की कन्या हूँ, तुम्हे इतनी तो जानकारी होनी ही चाहिए कि इस तरह से स्त्रियो का स्पर्श करना अनुचित है, पाप है, परन्तु मैं

तुम्हारी सरलता पर मुग्ध हूँ। मुझे ऐसा लगता है कि तुमने जीवन में मेरी ऐसी कोई लड़की देखी ही नहीं। तभी तुम्हें आश्चर्य हो रहा है। मैं राजा की कन्या हूँ, कुछ समझ रहे हो?"

ऋषिकुमार भौचक्के रह गये थे। असमंजस में पड़े हुए बोले, "'कन्या' शब्द से मैं परिचित हूँ, लेकिन यह होता क्या है, यह मैं नहीं जानता।" अब राजकुमारी को कुतूहल हुआ—"अच्छा ऋषिकुमार, तुमने व्याकरण पढ़ा है?" ऋषिकुमार ने गर्व से कहा "अवश्य पढ़ा है।"

"तो फिर जानते हो, व्याकरण में पुंलिंग और स्त्रीलिंग होता है?"

"जानता हूँ।"

"तुम पुंलिंग हो मैं स्त्रीलिंग हूँ। आगे मुझे सम्बोधित करना तो वह व्याकरण सम्मत स्त्रीलिंग के अनुसार होना चाहिए। मुझे क्या सम्बोधन करोगे, बोलो तो?"

ऋषिकुमार अभिभूत हतप्रभ की भांति उसकी ओर देखते रहे। बोले, "मैं नहीं जानता। इतना अवश्य जानता हूँ कि स्त्रीलिंग शब्द भाषा में व्यवहार किये जाते हैं। पद का मुझे ज्ञान है पदार्थ का मुझे ठीक ज्ञान नहीं है। मैं जानता हूँ कि कन्या शब्द स्त्रीलिंग है, इसलिए मैं आपको कन्या शब्द से सम्बोधित कर सकता हूँ। मुझे यह भी मालूम है कि आर्ये, भवति, शुभे, इत्यादि शब्द स्त्रीलिंग के सम्बोधन हैं। परन्तु मुझे ठीक नहीं मालूम कि इन पदों के अर्थ—पदार्थ—क्या है।"

जाबाला ने हँसकर कहा, "अच्छी बात है। तुम मुझे 'शुभे' कहकर पुकारा करो। मैं देवलोक से नहीं आयी हूँ, इसी पृथ्वीलोक पर महाराज जानश्रुति की कन्या हूँ। मैं तुम्हारे प्रति कृतज्ञ हूँ। तुमने मेरे प्राण बचाये। मैं इस रथ पर बैठकर अपने एक सम्बन्धी के यहाँ जा रही थी, बीच में ज़ोर की आंधी आयी और पानी बरसने लगा। आंधी का वेग इतना तेज़ था कि बैल रास्ता छोड़कर इधर भाग पड़े। फिर वे किसी तरह जुआ उतारकर न जाने किधर चले गये। जान पड़ता है कि भागते हुए बैलों ने गाड़ीवान को अपने खुरों से रौंद डाला वह बेचारा समाप्त हो गया है। मुझे भी बचने की आशा नहीं थी। तुम एक काम कर सकते हो? मुझे मेरे पिता के घर पहुँचा दो।"

ऋषिकुमार अत्यन्त विनीत भाव से बोले, "शुभे, तुम जैसा भी आदेश करोगी, उसका पालन करना मेरे लिए हर्ष और गौरव की बात होगी। परन्तु तुम्हारे पिता के घर का रास्ता मुझे मालूम नहीं है। तुम्हें अपनी पीठ पर बैठाकर जिधर कहो, उधर पहुँचा दूं।"

राजकुमारी हँसने लगी। बोली, 'देखो ऋषिकुमार, तुम्हारा यह प्रस्ताव अनुचित है। इससे लोक-निन्दा होगी। कोई भी युवक किसी कुमारी को पीठ पर ले जाने की बात नहीं करता। सोचता भी नहीं। मुझे सिर्फ उस रास्ते तक पहुँचा दो जहाँ से बैलगाड़ी इधर आयी है। मेरे पिता के आदमी अवश्य ही उधर

खोजने के लिए आये होंगे। मेरे पैरों म यदि कष्ट न होता तो उतनी दूर जा सकती थी।"

ऋषिकुमार हैरान थे। उनकी समझ मे नही आया कि इसम लोक निन्दा की क्या बात है। कुछ हारे हुए-से बोले, "शुभे, मैने वृद्ध लोगो से सुना है कि आर्त और विपन्न लोगो की सेवा करना धर्म है मै तो धर्म की ही बात कर रहा हूँ। क्या मैं कुछ अनुचित कह रहा हूँ?"

राजकुमारी मुग्ध दृष्टि स ऋषिकुमार की ओर देखती रही। कैसा सरल भाव है! कैसा सहज-कमनीय मुख! हँसकर बोली हा कुमार तुम जानते ही नही कि कितनी अनुचित बात कह रहे हो।"

ऋषिकुमार सोच मे पड गये— मैं जानता कसे नही! यह धर्म सगत प्रस्ताव है। इसम अनुचित क्या हो सकता है! नही शुभे इसमे कुछ भी अनुचित नही है। आ जाओ मेरी पीठ पर। अनुचित क्या है भला!' और अपनी पीठ राजकुमारी के सामने कर दी। उन्हे आशा थी कि वह उनकी पीठ पर आ जायगी। पीठ मे एक अजीब सी सनसनाहट हो रही थी। वह शान्त नही हुइ। राजकुमारी दो पग पीछे खिसक गयी। बोली, 'तुम बहुत भोले हो ऋषिकुमार उठो मेरी ओर देखो।"

पीठ की सनसनाहट ज्यो की त्यो बनी रही। बाध्य होकर उन्ह उठना पडा। हताश होकर चकित दृष्टि से उन्होने राजकुमारी को देखा। राजकुमारी हँस रही थी। निराश ऋषिकुमार उस मोहक हँसी स अभिभूत हो गये— 'हसती हो शुभे, मैंने कोई हास्यास्पद आचरण किया है?'

राजकुमारी का मुख म्लान हो गया। बोली 'नही ऋषिकुमार तुम स्वर्गीय ज्योति हो। मेरी हँसी तो अधम जन के कलुषित चित्त का विनोद है। हाय तुम्हारे जैसा पवित्र मन कहा मिलता है? अच्छा कुमार, मुझे देखकर तुम्ह कैसा अनुभव होता है?"

--अनुभव? जानती हो शुभे, सब कुछ वायु से उत्पन्न होता है, वायु म विलीन हो जाता है। मेरे भीतर तुम्हारे भीतर और समस्त विश्व ब्रह्माण्ड म वायु ही सब-कुछ करा रहा है। मेरे भीतर जो प्राणवायु है वह तुम्ह देखकर बहुत चचल हो गया है। तुम्हे दिखायी नही देता पर मेरे भीतर भयकर आधी बह रही है। मै नही जानता कि वह मुझे उडाकर कहा ले जायगी। पर वह उडा रही है। मै उड रहा हूँ। वह मेरे अन्तवर्ती प्राणवायु को तुम्हारे भीतर ठेलकर घुसा देना चाहती है। मेरा प्राण चचल हो उठा है। वायु की इस अद्भुत शक्ति का परिचय मुझे पहले नही था। तुम्ह देखकर मुझे नया प्रकाश मिल रहा है। प्रकाश का कारण वायु ही है।"

"थोडा रुको ऋषिकुमार! तुमने बहुत बडी बात कही है। पर तुम जिसे वायु कहते हो वह क्या सचमुच वायु है? वह वस्तुत एक प्रत्यय है प्रतीति है। जानते हो ऋषिकुमार, प्रत्यय आत्मा का धर्म है। पद और पदार्थ को यह प्रत्यय ही

जोडता है ।"

'नही शुभे, यह बात मेरी समझ मे नही आ रही है। वायु तो सबका कारण है, उसका कोई कारण कैसे हो सकता है ? तुम जिसे प्रत्यय कहती हो, उस पर मैंने विचार नही किया है। क्या ही अच्छा होता कि तुम्हारे साथ बैठकर इस पर विचार करता !"

"ऋषिकुमार, मैं तुम्हारे साथ बैठकर विचार कर सकती तो कितना अच्छा होता ! पर तुम नही जानते कि ऐसा सम्भव नही है।"

"क्या, इसमे क्या दोष है ?"

राजकुमारी न हँस दिया। ऋषिकुमार फिर सोचने लगे। राजकुमारी ने ही मौन तोडा।

"जानते हो ऋषिकुमार, मेरे पिता के पास एक बडे विद्वान आये थे। वे बता रहे थे कि कोई राजा जनक थे जिनके पास याज्ञवल्क्य ज्ञानचर्चा के लिए गये थे। याज्ञवल्क्य से राजा जनक ने पूछा कि मनुष्य की ज्योति क्या है। याज्ञवल्क्य न पहले उत्तर दिया कि 'मनुष्य की ज्योति सूर्य है। यह सूर्य के ही कारण है कि मनुष्य बैठने विचारने, काय करने और लौटने की शक्ति रखता है।' राजा जनक ने कहा 'जब सूर्य छिप जाता है, तब मनुष्य की ज्योति क्या है ?' याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया कि 'तब मनुष्य की ज्योति चन्द्रमा है, क्योकि चन्द्रमा की ज्योति के कारण ही मनुष्य बैठ सकता है, विचार कर सकता है तथा लौट सकता है।' राजा जनक ने कहा कि 'जब सूर्य और चन्द्रमा दोनो अस्त हो जाते हैं, तब मनुष्य की ज्योति क्या है ?' याज्ञवल्क्य ने कहा कि 'निश्चय ही तब मनुष्य की ज्योति अग्नि है क्योकि अग्नि के प्रकाश के कारण ही मनुष्य बैठ सकता है विचार कर सकता है और लौट सकता है।' जनक न कहा कि 'जब सूर्य अस्त हो जाता है चन्द्रमा अस्त हो जाता है और अग्नि बुझ जाती है तब मनुष्य की ज्योति क्या है ?' याज्ञवल्क्य ने कहा कि 'अब आप मुझे गहनतम प्रश्न की ओर ले जा रहे है। जब सूर्य अस्त हो जाता है, चन्द्रमा अस्त हो जाता है जब अग्नि बुझ जाती है, तब आत्मा ही एकमात्र ज्योति है !' "

"विचित्र है। इस चर्चा मे वायु का कोई स्थान ही नही है !"

"हाँ इसीलिए मैं सोचती हूँ कि जिसे तुम वायु कहते हो वह वही चीज तो नही है जिसे जनक 'आत्मा' कहते है ! सोचो, सोचने मे दोष क्या है !"

"सोचूगा शुभे, तुम्हारे इस सुन्दर मुख से निकली वाणी साम गान की तरह पवित्र लगती है। इस सुन्दर मुख न मुझे सोचने का वाध्य कर दिया है।"

राजकुमारी हँसती रही, ऋषिकुमार मुग्धभाव से उसकी ओर देखते रहे। इसी समय कुछ लोग उधर आते दिखायी पडे। राजकुमारी ने ऋषिकुमार से कहा, "जान पडता है, मेरे आदमी आ रहे है। तुम कही दूर जाकर छिप जाओ। ये लोग जानने न पायें कि हम लोग यहा एकान्त मे बात कर रहे थे।' ऋषिकुमार हैरान ! 'क्या, क्या इसमे भी दोष है ?" राजकुमारी न बल देकर कहा, "हाँ, है,

जल्दी करो।"

ऋषिकुमार ने अनमने भाव से आज्ञापालन किया। राजकुमारी को लेकर सब लोग चले गये। ऋषिकुमार का मन उदास हो गया। रथ के पास जाकर देखा तो गाडीवान का शव भी नही था। शायद उसे भी उठा ले गये। रथ को जरूर खींचकर कीचड से निकाल दिया गया था पर शायद वह बेकार हो गया था। किसी ने उसे ले जाने की आवश्यकता नही समझी। तीन दिन तीन रात ऋषिकुमार उस रथ के पास बैठे रहे। उन्हें आशा थी कि कोई न-कोई उसे लेने आयेगा। राजकुमारी के कुछ समाचार मिलेंगे। कोई नही आया। उन्होंने रथ को खींचकर उस स्थान पर रखा जहां राजकुमारी बैठी थी। उसी की छाया में बैठकर चिंतन करने लगे। पर पीठ की सनसनाहट बनी रही। वे प्राय उसे खुजला लेते।

जाबाला राजा जानश्रुति की इकलौती दुलारी कन्या थी। बडे लाड प्यार में उसका लालन पालन हुआ था। लडकी बहुत बुद्धिमती थी। राजा जानश्रुति ने उपयुक्त अध्यापकों को लगाकर उसे पढने लिखने में चतुर बनाया था। यद्यपि राजा का वैभव बहुत अधिक था, वह सौ बैलों की खेती करता था अनेक दास दासी उसके यहां नियुक्त थे, जाबाला को कुछ करने की आवश्यकता नही थी परन्तु फिर भी वह खेतों में जाती, कमकरों के साथ खेती बारी का काम देखती और अपने हाथों से गाय बैलों की सेवा भी करती थी। राजा जानश्रुति आस पास के गांवों में सबसे सम्पन्न व्यक्ति थे। उनकी रूपवती और गुणवती कन्या को प्राप्त करने के लिए अडोस पडोस के अनेक राजकुमार प्रयत्नशील थे परन्तु जाबाला कुछ विचित्र स्वभाव की लडकी थी। उसे अपनी विद्या और ज्ञान पर गर्व था। वह ऐसे किसी से विवाह नही करना चाहती थी, जो ज्ञान और विद्या में उसके समकक्ष न हो। राजा जानश्रुति लाड प्यार में पली अपनी बेटी के योग्य वर नही खोज पा रहे थे, क्योंकि उनकी जाति के लोगों में पढने लिखने का विशेष चलन नही था। अच्छे पढे लिखे युवक ब्राह्मण और क्षत्रियों में ही प्राप्त हो सकते थे। जाबाला की प्रखर बुद्धि की समकक्षता उनमें भी बहुत थोडे ही कर सकते थे। इस प्रकार माँ-बाप की लाडली जाबाला का विवाह काय रुका हुआ था। उसे उसकी बहुत चिन्ता भी नहीं थी। वह पठन पाठन और शास्त्र चिंतन में ही आनन्द अनुभव करती थी।

उस दिन जाबाला अपनी मौसी के घर जा रही थी। मौसी के यहाँ कोइ

उत्सव था। वह गाव बहुत दूर नही था इसलिए पिता माता की अनुमति लेकर दिन रहते ही जाबाला केवल गाडीवान को साथ लेकर अपनी मौसी के घर जा रही थी। अचानक आसमान धूल से भर गया। गाडीवान को आधी और वर्षा का आभास मिल गया। उसने जाबाला को सावधान किया। अपना घर अभी बहुत दूर नही छूटा था। मौसी का घर अधिक दूर था। गाडीवान ने जाबाला की अनुमति स गाडी को घर की ओर लौटाया भी, लेकिन आधी का वेग इतना प्रचण्ड था कि वे बीच म ही फँस गय। आधी के साथ साथ पानी भी बडी तेजी से बरसन लगा। चारो ओर अँधेरा ही अँधेरा हो गया। बैल गाडीवान के नियन्त्रण से बाहर हो गये। वे रास्ता छोडकर झाडियो के भीतर घुस गये और बुरी तरह विद्रोह कर बैठे। इधर गाडी का चक्का भी धँस गया। गाडीवान ने उतरकर उसे ठीक करने का प्रयत्न किया और इसी बीच बैल अपने कन्धे से जुआ उतारकर रथ को लिय ऊधम मचान लगे। कुछ भी दिखायी नही देता था। ऐसा लगा कि गाडीवान नीचे गिर गया है और बैल उसे बुरी तरह से रौद रहे हैं। जाबाला सास रोक यह दृश्य देखती रही। एकाएक वह गाडी से कूद पडी, लेकिन आधी के वेग से वह कुछ थोडी दूर तक ठेली जाती रही। उसके बाल अस्त-व्यस्त हो गये थे। उसन चिल्ला चिल्लाकर गाडीवान को बुलाया, लेकिन कही कोई नही आया। बैल भाग चुके थे। वह स्वय एक झाडी से उलझकर गिर गयी। आंधी की तीव्र गति बढती ही जाती थी, देर तक वह बेहोश पडी रही।

जाबाला को चोट उतनी नही लगी थी, जितना उसके मन म भय समा गया था। बेहोश वह भय के आघात से हुई थी। वह कितनी देर बेहोश रही, उसे पता ही नही चला। उसी अवस्था मे उसे जान पडा कि कोई उसकी आँखो के चारो ओर उँगलियो से दबा रहा है। उसकी आँखें खुली। सामने उसके चेहरे पर आँखें गडाये कोई ताक रहा था। उसे भय हुआ। वह एक झटके म बैठ गयी। देखा, रूक्ष जटिल चेहरेवाला कोई तापस आश्चर्य से उसे देख जा रहा है। क्रोध स उसने डाँटा। तापस डरकर पीछे हट गया। जाबाला के वस्त्र अस्त व्यस्त थे। आंधी और वर्षा स वे बुरी तरह बिखर गये थे। तापस का भयभ्रात मुख उसे अच्छा लगा। वह हाथ जोडकर गिडगिडा रहा था। पहले तो उसने उसे मूर्ख ही समझा। पर उसकी बातो से उसे लगा कि यह ऋषिकुमार बुद्धिमान भी है और भोला भी। जीवन म उसने शायद कभी किसी स्त्री को नही देखा। जाबाला को वह स्वर्गलोक का प्राणी समझ रहा है। उसे कुतूहल हुआ। भोले ऋषिकुमार की बातें उसे मीठी लगीं। थोडी देर तक की बातचीत से ही उसे ऐसा लगने लगा कि ऋषिकुमार प्यार प्यार भोले शिशु के समान है। उसे लोक व्यवहार का कुछ भी ज्ञान नहीं है। अगर वह देर तक उससे बात कर सकती तो अच्छा होता, पर विघ्न आ गया। ऋषिकुमार तो निरा भोला है पर वह तो लोक-व्यवहार जानती है। उसे कहीं छिपा कर रखकर वह घर लौट आयी। पर लौट आने पर भी मन चंचल ही बना रहा। कहाँ गया होगा वह ? क्या सोचता होगा ? दिव्य लोक के प्राणी के बिछुडन

पर क्या मानसिक अवस्था उसकी हुई होगी? कचट जाती नहीं, हृदय ममास उठता है। हाय, बिचारा बड़ा ही भोला है! कहता है, सब कुछ वायु से ही निकला है, उसी में विलीन हो जायगा। हृदय में न जाने कैसी उथल पुथल महसूस करता है, पर मानता है कि यह भी वायु से ही उत्पन्न हुआ है! भोलेराम को और कुछ का पता ही नहीं है। हृदय में उसके आंधी बह रही है, वायु ही तो है!

मगर जाबाला स्वयं कुछ हलचल महसूस कर रही है। छाती में बुरी तरह हलचल है। यह भी क्या वायु का ही प्रताप है! पहले उसे कुतूहल हुआ था, अब उसमें अनंग कोई भाव है। भोलेराम कहते हैं कि उनके बाल रूक्ष हैं, जटिल हैं और स्वर्गीय प्राणी के मुलायम हैं! हाय रे भोला, तू तो जानता ही नहीं कि केशों को मुलायम बनाने के लिए कितनी दासियां लगी रहती हैं, कितना तेल-उबटन खर्च होता है, कहीं तेरे बालों की भी ऐसी ही सेवा हुई होती तो क्या कम सुन्दर या कमनीय होते! जाबाला के मन में एक विचित्र प्रकार की गुदगुदी अनुभूत हुई। अगर उसे अवसर मिलता तो वह उसकी ऐसी सेवा करती कि तीन दिनों में ही उसका रूप निखर आता। एक सप्ताह भी अगर वह उसे धौरी गाय का दूध पिला सकती तो उसका शरीर तप्त कांचन की भांति लहक उठता। नाई बुलाकर उसके सुन्दर मुख को चांद की तरह चमका देती। तीन दिन के तेल उबटन से वह दिव्य पुरुष की भांति खिल उठता। मगर है हठी। नाई से ही झगड़ पड़ेगा। तेल उबटन लगानेवालों से तो लड़ ही पड़ेगा। सब तो वायु का खेल है, तुम कौन होते हो दखल देनेवाले! मगर जब वह गुस्सा होगा तो उसका भोला मुंह और भी कमनीय हो जायेगा। जाबाला उसे आंखों से ही डांट देगी—'नहीं, ऊधम मत करो, चुपचाप जो कहती हूँ करा लो।' मान जायगा या नहीं? मान जायेगा। कहेगा, 'इस सुन्दर मुख की वाणी के कारण मैं बाध्य हो रहा हूँ।' मजा आ जायगा। भोलेराम को पता ही नहीं कि सुन्दर मुख की वाणी कितनी गहराई में चोट करती है!

मगर जाबाला यह सब क्या सोच रही है। असम्भव दिवास्वप्न है यह सब! जंगल का जानवर पगहा तुड़ाकर भागा सो भागा। अब क्या वह पकड़ाई देगा! अगर पकड़ में आ भी गया तो जाबाला को उसकी सेवा के लिए कौन अवसर देगा! छि, वह राजकुमारी है, उसे ऐसा सोचना क्या शोभा देता है! जाबाला कुछ बेचैनी महसूस कर रही है। वह भागा कहां, मैंने ही तो भगा दिया! यही तो उसके हृदय को कुरेद रहा है। वह बिचारा तो पीठ सामने करके उस पर जाबाला को बैठाकर उसके घर तक पहुँचाने को गिड़गिड़ा रहा था। वह कह रहा था, इसमें दोष ही क्या है। एक बार जाबाला के जी में आया था कि उसकी पीठ पर सवार हो ही जाय। पर रुक गयी थी। दोष तो था ही। ऐसा भी कहीं होता है। उस जंगली मनछौने को इसमें दोष नहीं दिखता तो क्या राजकुमारी जाबाला भी अंधी हो जाय? नहीं, उस समय उसने अपने मन पर काबू पा लिया, यह अच्छा ही हुआ। उसने अपने पिता से सुना था कि पुराने काल में भी कोई जबाला थी। उसका बड़ा सुन्द-

नाम बडा ज्ञानी हुआ था। परमज्ञानी होने के बाद वे अपने को सत्यकाम जाबाल कहते थे। एक बार उन्होंने याज्ञवल्क्य को बताया था कि मन ही सत्य है। पर राजा जनक ने कहा था कि यह आंशिक सत्य है। आंशिक सत्य क्या पूर्ण सत्य का विरोधी होता है? मन ने उसे चंचल बनाया था, उसने उस पर काबू पा लिया था पर आंशिक रूप में ही सही, सत्य की एक झलक तो मिल ही गयी थी। भोलेराम बता रहे थे, उनके प्राणों में वायु आन्दोलित हो रही थी। उदंक ऋषि ने याज्ञवल्क्य को कहा था कि प्राण ही परम सत्य है। जनक ने इसे भी आंशिक सत्य ही बताया था। तो उधर भी आंशिक सत्य का ही साक्षात्कार हो रहा था! पूर्ण सत्य क्या होता होगा? न भोले ऋषिकुमार को उसका साक्षात्कार हुआ, न सुशिक्षिता राजकुमारी को ही।

जाबाला के पिता ने बताया था कि महाराज जनक ने कहा था कि 'जिसे वाणी व्यक्त नहीं कर सकती, किन्तु जो वाणी को अभिव्यक्ति प्रदान करती है, उसी को परम सत्य समझो, उसे नहीं जिसकी लोग व्यर्थ उपासना करते हैं। जिसकी कल्पना करने में मन असमर्थ है, किन्तु जो मन की कल्पना करती है, उसी को परम सत्य समझो। जिसे देखने में नेत्र असमर्थ हैं किन्तु जिसके द्वारा हम नेत्रों से देखते हैं, वही परम सत्य है। जिसे श्रवण सुन नहीं सकते, किन्तु जो श्रवण ज्ञान की शक्ति प्रदान करती है, वही परम सत्य है। जिसे प्राण श्वसित अथवा उच्छ्वसित करने की शक्ति नहीं रखते किन्तु जो प्राणों को श्वासोच्छ्वास की शक्ति प्रदान करती है, उसी को परम सत्य समझो!'

भोलेराम को यह बताया जाता तो उसकी क्या प्रतिक्रिया होती उन पर? वे तो वायु को ही परम और चरम माने बैठे हैं। जाबाला ने जब उनसे पूछा कि क्या वायु वही चीज तो नहीं है जिसे जनक आत्मा कहते हैं तो सोचने पर राजी हो गये थे। क्या सोचा होगा? सोचता वह जरूर होगा। पर कैसे सोचेगा? दुधमुहे बच्चे का सा तो स्वभाव है। किसी से मिलता-जुलता भी नहीं। बहुत सी बातें तो सत्संग से ही जानी जाती है। आँखें मूदकर चुपचाप ध्यान करने से ही सब बातों का पता कहा लग पाता है! उस भोले के समान सूक्ष्म विचारों की दृढता तो नहीं है, पर जानती मैं उससे अधिक हूँ। *जाबाला के मन में आया कि अवसर मिलता तो वह* उसे अधिक सोचने को बाध्य कर सकती थी। इस सुन्दर मुख' की वाणी की वह उपेक्षा नहीं कर सकेगा। पर अवसर क्या मिल सकेगा? जाबाला उद्विग्न हो उठी।

इसी समय उसका ध्यान भंग हुआ। वृद्ध आचार्य औदुम्बरायण उसके भी गुरु थे और उसके पिता के भी। जाबाला को तो उन्होंने गोद में खिलाया था। लड़की के प्रति उनका स्नेह और ममत्व बहुत अधिक था। जाबाला की मा जब नहीं रही तो उसकी माता के समान ही उसे स्नेह और दुलार दिया। जाबाला उनसे पढ़ती भी थी और अनेक प्रकार के बालहठ भी पूरा कराती थी। उनके स्नेह के कारण वह ढीठ भी हो गयी थी। पढ़ते समय वह उनसे खुलकर बहस करती। आचार्य

पर इतने में दल चिल्लाते रहे। इधर से एक दल चिल्लाता था, 'रयि कव।' उधर से दूसरा दल उतने ही जोर से चिल्लाता, 'रयि कव।' जब आँधी का वेग बढ़ता वह चिल्लाहट भी बढ़ती जाती। सत्यकाम मन में आया, ये तो शुद्ध संस्कृत में जवाब सवाल चला रहे हैं। तू समझती है बेटा, इसका क्या अर्थ है?"

अर्थ? अर्थ क्या? यह तो उनकी वाणी है। आपसे जैसा सुनायी पड़ा, वही ध्वनि यह है।'

नहीं रे, रयि सम्पत्ति को कहते हैं। तुझे बताया तो था, याद नहीं है? वेदों की ऋचाओं में भी यह शब्द आता है। मुझे लगा कि एक दल पूछ रहा है कि सम्पत्ति कहाँ जाती है? दूसरा दल जवाब दे रहा था, रुद्र के पास।"

तात, आप भी क्या बात करते हैं। हंस संस्कृत जानते थे?"

'नहीं-नहीं, वे तो अपनी वाणी में ही कुछ पूछ रहे होंगे। मैंने जो सुना उसका संस्कृत में यही अर्थ होता है। मैं क्या यों ही मान लेता! दूसरे दिन मुझे तरुण आश्वलायन ने भी यही बात बतायी और मजेदार बात तो यह है बिटिया, कि सचमुच ही रैक्व मुनि का एक पुत्र महातपस्वी रैक्व है। लोग तो उसकी अलौकिक शक्तियों को देखकर उसे दिव्य पुरुष ही मानने लग हैं। तरुण आश्वलायन तो उस महान तापस के दर्शन भी कर आये हैं। कहते थे कि यह किशोर किसी से कुछ भी नहीं बोलता। वह किसी को भी ज्ञानी नहीं मानता। कभी बोलता भी है तो बहुत कम। उसे अपने ऊपर जितना विश्वास है, उतनी ही दूसरों पर अनास्था। बेकार की बात करनेवालों को वह तिरस्कारयोग्य समझता है। प्रायः 'शूद्र' कहकर लोगों का तिरस्कार करता है। लोग बुरा नहीं मानते क्योंकि उसकी सिद्धियाँ सत्य हैं। मटा फक्कड़ है। पण्डित और सिद्ध अवश्य है। वह वायु को सब वस्तुओं का कारण मानता है। मनुष्य शरीर में प्राण रूप से जो वायु निबद्ध है उसे वश में करके सब कुछ पाया जा सकता है। आश्वलायन से उसकी थोड़ी बातचीत हुई थी। वह अपने प्राणों को इस प्रकार निरुद्ध कर सकता है कि हवा में उड़ सकता है, उनका ऐसा संक्रमण दूसरों में कर सकता है कि लोग रोग मुक्त हो सकते हैं। हजारों की संख्या में लोग उसकी सिद्धियों से लाभान्वित हुए हैं। पर वह ऐसा भोला है कि कुछ जानता ही नहीं। आश्वलायन से उसने कहा था कि यदि किसी दिन बाहरी वायु पर नियन्त्रण पाने की सिद्धि उसे मिल जाये तो वह काल की गति को भी रोक सकता है। आश्वलायन ने उससे थोड़ी देर बात करके ही उसकी विद्वत्ता और तपश्चर्या की गहराई जान ली है। पर वह भोला अपनी ही शक्ति को भी नहीं जानता। बातें करता है तो ऐसा लगता है कि दुधमुहा बच्चा बोल रहा है। दृढ़ता इतनी है कि अपने अनुभव के सामने श्रुति वाक्यों को भी प्रमाण नहीं मानता। आश्वलायन का दृढ़ विश्वास है कि हंसों में उसी के गुण का बखान हो रहा है।

जाबाला को कैसी जाने टीस अनुभव हुई। आश्चर्य से उसकी आँखें टँग गयीं—

'विचित्र है, तात!"

"विचित्र तो है ही। तेरे पिताजी से जाकर मैंने [illegible] तो तुरन्त

नाल के पास जाकर उन्होंने भी इस की कहानी सुनी। आश्वलायन से भी मिल आये। अब तो उन्होंने आश्वलायन से अनुरोध किया है कि उन्हें उस किशोर तापस के पास ले चलें। लेकिन आश्वलायन ने आकर समाचार दिया कि तरुण तापस कुटिया में नहीं है, शायद आंधी तूफान में कहीं उड़ ही गया! राजा ने और भी चर भेजे हैं। मुझे भी खोजने का काम मिला है। कैसे खोज कहां खोजूं? कौन जाने, जीवित है भी या नहीं!"

जाबाला के प्राण उत्कण्ठ हो गये। वह जानती है उस सिद्ध तापस को। उसने देखा ही नहीं, पाया है। भोला तो वह अवश्य है, पर क्या प्राणों के संक्रमण द्वारा वह सचमुच रोग शोक, चिन्ता से मुक्त कर सकता है! तातपाद तो उच्छ्वसित हैं, बिना देखे ही। देखते तो उनकी क्या दशा होती। उसके मन में कई बार आया कि वह तातपाद को बता दे कि उसकी भेंट उससे हो चुकी है पर हर बार कोई लज्जा उसकी वाणी रुद्ध कर गयी। हाय हाय, उसने कैसी निधि पायी थी! पर किसी दुर्भाग्य ने उसे पायी हुई निधि से दूर कर दिया। हृदय विदीर्ण होकर टुकड़े टुकड़े हो जाना चाहता है। वाणी रुद्ध हो गयी है। चेतना गहराई में विलीन हो गयी है। आचार्य बहुत कुछ कहते रहे, जाबाला ने कुछ नहीं सुना। फिर वे चले गये।

देर तक जाबाला सोचती रही। तरुण तापस वायु को जानता है, उसके कहने का अर्थ शायद कुछ और है। वह क्रियामार्गी है, जाबाला अब तक उसे ज्ञानमार्गी समझती रही।

जाबाला कह नहीं पा रही है मगर उसके हृदय में भारी उथल पुथल है। उस ऋषिकुमार ने अपना नाम रैक्व ही तो बताया था। वह जीवित तो अवश्य है पर कहां है? हाय, उसने उसे दूर जाकर छिप जाने को कह दिया और स्वयं चली आयी। आकर क्या उसने उसे खोजा नहीं होगा! क्या वह विक्षिप्त की भांति 'शुभे-शुभे' कहकर चिल्लाया नहीं होगा! क्या बीती होगी उस भोले तापसकुमार पर! वह अपनी व्यथा किसी से कह नहीं रही थी। भीतर-ही भीतर वह अपने ताप से आप ही जलने लगी।

राजा ने पुत्री की अवस्था देखी तो व्याकुल हो गये। वैद्य बुलाये गये, पर रोग का कुछ पता नहीं चला। आचार्य की चिन्ता और चिन्तनीय थी। क्या हो गया उनकी प्यारी बिट्टो रानी को! वह सूखती जा रही है, गिरती चली जा रही है। आश्वलायन ने बताया था कि रैक्व ने सैंकड़ों को अपने अन्तर्निहित वायु को संक्रमित करके नीरोग बना दिया था। उन्होंने राजा से प्रस्ताव किया कि रैक्व को खोजने के लिए और अधिक प्रयत्न किया जाय। वही जाबाला को रोग मुक्त कर सकता है। पता लगाने का अभियान और तेज कर दिया गया। चरों ने आकर सूचना दी कि कोई तापसकुमार उस टूटे रथ की छाया में समाधि लगाता है जिससे बिटिया मौसी के घर जा रही थी और जो तूफान में फंस जाने के कारण बुरी तरह टूट गया था। वह समाधि लगाता है तो एक हाथ धरती से ऊपर उठ जाता है।

जब समाधि टूटती है तो फिर धरती पर आ जाता है। बोलना बहुत कम है। रथ को थोडी देर के लिए ही छोड़ता है। प्रात काल नित्य क्रिया और स्नानादि के लिए जाता है। वहीं कन्दमूल खोजकर खा लेता है, फिर समाधि पर बैठ जाता है। कुछ रोगी दिन भर बैठे रहते हैं। सन्ध्या समय उनसे थोडी बात कर लेता है। खोया खोया-सा ही रहता है। किसी की ओर ताकता भी नहीं। पीठ अवश्य खुजलाता रहता है। कभी कभी तो समाधि की अवस्था में भी खुजला लेता है। राजा ने आचार्य से कहा कि वे स्वयं जाकर पता लगायें कि यही व्यक्ति रैक्व है या नहीं। जाबाला को जब यह समाचार मिला तो उससे नहीं रहा गया। आचार्य को बुलाकर उसने ज़ोर देकर कहा कि 'तात, निस्सन्देह यही व्यक्ति रैक्व है।" आचार्य ने जब पूछा कि 'तू कैसे कह सकती है कि यही तापस रैक्व है?" तो उसने बिना किसी झिझक के कहा, 'मैं जानती हूँ।" और उठकर अन्यत्र चली गयी। आचार्य को कुछ अप्रत्याशित लगा। वे देर तक उसकी प्रतीक्षा में खड़े रहे, पर वह लौटी नहीं।

तीन

आचार्य औदुम्बरायण रैक्व का पता लगाकर सीधे राजा के पास पहुँचे। राजा उस समय जाबाला के पास बैठे थे। बेटी के अज्ञात रोग से वे बहुत व्याकुल थे। लेकिन बेटी बहुत ठीक थी। यद्यपि उसका शरीर अब भी दुर्बल था, पर रैक्व के मिल जाने के समाचार से वह बहुत आश्वस्त हो गयी थी। पिता को बता रही थी, वे व्यर्थ ही दुःखी हैं वह बिल्कुल स्वस्थ है। पर पिता की चिन्ता बनी हुई थी। आचार्य एकदम वहीं पहुँच गये। उन्हें देखकर राजा और जाबाला दोनों ही आश्वस्त हुए। राजा ने आतुर भाव से पूछा कि क्या वे रैक्व से मिल सके हैं? आचार्य प्रसन्न थे। बोले, "बैठिए महाराज, बताता हूँ। बड़े बेढब जीव से मिलकर आ रहा हूँ।"

राजा की उत्सुकता और बढ़ गयी—"तो क्या यह मनुष्य कोई और है? आपने जिस तापस को देखा, वह रैक्व से भिन्न है?"

जाबाला की आँखें कान तक फैल गयीं। वह मानो आँख और कान दोनों को मिलाकर सुनना चाहती थी।

आचार्य ने हँसते हुए कहा, 'है तो वे रिक्व ऋषि के पुत्र महाभाग रैक्व ही—पर विचित्र जीव हैं। गया तो समाधि लगाये हुए थे। समाधि भंग हुई तो थोडी

देर तक खोये-खोये-से रहे। फिर मुझे देखकर विस्मय से बोले, 'आप कौन है ? यहा क्या करने आये है ?'

"मैंने विनीत भाव से कहा, 'उदुम्बर गोत्रीय औदुम्बरायण हूँ, तापसकुमार! महाराज जानश्रुति ने मुझे भेजा है। मैं जानना चाहता हूँ कि आप क्या महान ऋषि रिक्व के सुपुत्र रैक्व है ?'

" 'हूँ तो रिक्व ऋषि का पुत्र रैक्व ही। पर यह जानश्रुति कौन है ? क्या ये महाभागा शुभा के पिता है ?' मुझे आश्चर्य हुआ। मैंने विनीत भाव से कहा, 'नही, उनकी कन्या का नाम कुछ और है, शुभा नही।'

" तो कोई और होंगे। उन्हें मुझसे क्या काम है ?' "

जाबाला की छाती को बिजली चीर गयी। उसकी वाणी रुद्ध थी, पर उसका रोम रोम चिल्लाकर कह रहा था—'नही, नही, शुभा जाबाला ही है! महाराज जानश्रुति ही शुभा के पिता है।' किसी को यह चीत्कार नही सुनायी दिया। महाराज तो कुछ आश्वस्त से ही लगे कि जिसकी लडकी को यह तापसकुमार जानता है वह जानश्रुति कोई और है।

आचार्य औदुम्बरायण ने बताया कि उन्होंने तापसकुमार से कहा कि राजा जानश्रुति उनसे तत्त्व ज्ञान की चर्चा करना चाहते हैं। तापसकुमार ने अवज्ञा की हँसी के साथ कहा, 'ज्ञान की चर्चा करना चाहते है ? आप उनके कौन होते है ?'

" 'मैं उनका अध्यापक हूँ।

" 'तो ज्ञान की चर्चा आपसे ही क्यों नहीं कर लेते ? यहाँ मुझे विव्रत करने क्यो आना चाहते है ?'

" 'मैं उनकी सब जिज्ञासा शान्त नही कर सकता। वे बहुत जिज्ञासु है मैं अल्पज्ञ हूँ।'

" 'अच्छा, आप अल्पज्ञ है ? अल्पज्ञ-जैसी बातें तो आप कर ही रहे है!' "

आचार्य ने कहा, "मैंने ऐसे अशिष्ट उत्तर की अपेक्षा नही की थी। थोडा अप्रतिभ हो गया। तापस को मानो प्रसन्नता हुई। बोला, 'मैं भी अल्पज्ञ हूँ, परन्तु पहले मैं यह जानना चाहता हूँ कि आप मुझसे अधिक अल्पज्ञ है या कम। बताइए, आपने व्याकरण पढा है ?'

"मैं इस आदमी से अधिक बात नही करना चाहता था। मेरे अभिमान को चोट पहुँची थी। पता नहीं, फिर यह कैसा अशिष्ट वाक्य बोले, इसलिए चुप ही रहा। मगर उसके चेहरे पर भोलापन देखकर थोडा कुतूहल हुआ। कहा, 'इतना ही समझिए कि कभी व्याकरण पढा अवश्य था, पर आपसे कम ही जानता हूँ।' तरुण तापस हँस पडा, 'वही तो जानना चाहता हूँ कि मुझसे कितना कम जानते हैं। बताइए, स्त्रीलिंग और पुल्लिंग पद आप जानते होंगे, पर पदार्थ का भी ज्ञान है ? स्त्री-पदार्थ और पुरुष-पदार्थ का भेद आपको मालूम है ?'

" मैंने सिर हिलाकर ही बताया कि मुझे मालूम है।

"तरुण तापस ने आश्चर्य मे पूछा, 'यह तो बडा आश्चर्य है! आपने कभी स्त्री-

पदार्थ देगा है ?'

"मैं हैरान था। केवल उसके भोले मुँह को आदरपूर्वक ताकता रह गया।

" 'तब तो आप निश्चय ही मुझसे अधिक जानते हैं। मुझे नहीं मालूम था। मुझे तो कुछ ही दिन पहले एक महान दिव्य गुरु मिल गया। उसी गुरु ने मुझे पद और पदार्थ का भेद बताया। तब तक मुझे ज्ञान नहीं था कि पद और पदार्थ को जोड़नेवाला एक पदार्थ है प्रत्यय। यह आत्मा का धर्म है। मैं तो जान गया, पर अभी मैं उसे उपलब्ध नहीं कर पाया। मैं सोच रहा हूँ। प्रत्यय का कुछ रूप मुझे उपलब्ध हो गया है। इसलिए मेरे गुरु का नाम 'शुभा' है। यह पद मात्र है। शुभा पदार्थ बिलकुल भिन्न है। उस पदार्थ जैसी सुन्दर चीज़ मैंने आज तक नहीं देखी। इस समय वह पदार्थ मेरे सामने नहीं है पर पद आज भी मेरे साथ है। जब मैं कहता हूँ 'शुभा' तो वह पदार्थ अनायास मेरे मन में आ जाता है। आपके मन में नहीं आयेगा क्योंकि आप उसे नहीं जानते। जानते हैं, वह पदार्थ मेरे मन में क्या आ जाता है? प्रत्यय के बल से। अगर किसी दिन मैं उसे फिर देखूँ तो पहचान लूँगा कि यह शुभा है। आप नहीं पहचानेंगे, क्योंकि पद और पदार्थ को जोड़नेवाला पदार्थ प्रत्यय है। मेरे पास है आपके पास नहीं है। यह वायु से निश्चय ही भिन्न है। वायु होता तो आपको भी पहचान देता। मगर आप इस बात को कैसे समझेंगे? आपको शुभा जैसा गुरु तो मिला नहीं! आप मुझसे ज्ञान में अधिक हैं। भाग्य में हीन! ठीक कह रहा हूँ न!'

" 'ठीक तो कह रहे हैं पर यह शुभा कौन है, आप मुझे कुछ पहचान बता सकते हैं? आप एक बात भूल रहे हैं। मैंने स्त्री और पुरुष पदार्थ के भेद जानने की बात कही थी। पुरुष और स्त्री जातिवाचक शब्द है शुभा व्यक्तिवाचक। शुभा जैसी और भी स्त्रियाँ होंगी। पर उनमें कुछ विशेषता होगी। जाति सामान्य होती है व्यक्ति विशेष।'

'ऋषिकुमार चकित। बोले, 'आप मुझसे निश्चय ही अधिक जानते हैं। मगर इतना और जान लीजिए कि शुभा जैसी कोई नहीं हो सकती। वह अद्वितीय है, अनुपमेय है। जाकर आप अपने राजा से कहिए कि मैं कुछ नहीं जानता। मेरा समय नष्ट न करें। शुभा जैसी कोई स्त्री आपको मिल जाय तो उसी से ज्ञानचर्चा करें। जाइए, मुझे और काम है।'

"इतना कहकर वे उठ गये। मैं सोच नहीं सका कि अब क्या करूँ। एक ओर वहीं बैठ गया। वे स्नान करके फिर समाधि पर बैठ गये। बात करते करते कई बार उन्होंने पीठ खुजलायी।

'मैं दूर से ही उन्हें समाधि की अवस्था में देखता रहा। वहाँ और भी कई लोग बैठे थे। उन्होंने बड़ी श्रद्धा के साथ बताया कि तापस से अपने रोग के बारे में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं होती। समाधि भंग के समय जिस पर उनकी दृष्टि पड़ जाती है वह रोग, शोक, चिन्ता, ग्लानि से अवश्य मुक्त हो जाता है। आप पर उनकी दृष्टि पड़ गयी है। अब आपकी सारी चिन्ता दूर हो जाएगी।

"अधरात्रि को तापस धरती पर आ गये और रथ के नीचे ही पैर फैला कर सो गये। मैंने समाधि और निद्रा का भेद स्पष्ट देखा। निद्रा की स्थिति में भी वे पीठ खुजला लेते थे। परन्तु थी वह गाढ़ निद्रा। ब्राह्म मुहूर्त में वे उठे, नदी तट पर जाकर नित्य कृत्य किया। फिर स्नान करके रथ के नीचे आ गये। उस समय कई लोग चुपचाप प्रणाम करके खड़े हो गये। बड़ी प्रसन्नता के साथ उन्होंने उनकी ओर देखा। किसी किसी से दो एक बातें भी कर लीं। उनकी प्रसन्न मुद्रा देखकर मैंने भी उनके सामने उपस्थित होने का साहस किया। मुझे भय था कि कहीं कुछ अन्यथा न बोल दें। पर मुझे यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि उनके भोले मुँह पर कुछ कातरता दिखायी पड़ी। बोले, 'कल बुरा मान गये आचार्य! मैं अल्पज्ञ हूँ आप बहुत जानते हैं। अल्पज्ञ की बात का बुरा नहीं माना जाता। कल मैंने स्वप्न में अपने गुरु को देखा। गुरु, महाभागा शुभा! वे तो दिव्यलोक निवासिनी हैं। स्वप्न में आ गयीं। आचार्य, क्या बताऊँ कि उनका रूप कैसा सुन्दर है! उनके मुख पर हमारे-जैसे रूखे बाल नहीं हैं एकदम चिकना, फूल के समान खिला हुआ। आँखें एकदम मृग की आँखों जैसी हैं— बड़ी-बड़ी, काली-काली अत्यन्त मोहन। केश हमारे-तुम्हारे जैसे नहीं हैं, एकदम मुलायम, काले लहरदार! समझे!'

"मैं कुछ जवाब दूँ उसके पहले ही मानो अपने आपसे ही कह उठे— कैसे समझोगे? देखा भी हो!'

'कहीं फिर न बिगड़ उठें इस आशंका से मैंने बात आगे बढ़ाने का प्रयत्न किया। कहा, 'आश्चर्य है ऋषिकुमार, महाभागा शुभा आपको स्वप्न में दिख गयीं। यह तो अद्भुत है!'

"ऋषिकुमार प्रसन्न हुए। उल्लसित भाव से कहने लगे—'केवल दिख नहीं गयीं, बातें कीं। उन्होंने ही तो कहा कि तुम आचार्य से बात करना नहीं जानते। वे दुःखी हो गये हैं। समझे आचार्य?'

"क्या उत्तर दूँ, यह सोच ही रहा था कि वही बोल पड़े—'कैसे समझोगे? आपने देखा भी हो!'

"मौन रहना ही उचित था। सो, मैं केवल उत्सुकता से उनकी ओर ताकता रहा—एकटक!

"'शुभा ने मुझसे कहा कि तुम्हें आचार्य का सम्मान करना चाहिए। नहीं तो पाप होगा। अच्छा आचार्य, मुझे बता दें कि मैं आपका सम्मान कैसे करूँ? न जाने इस पाप का दण्ड कितना भोगना पड़ेगा।'

"ऋषिकुमार का मुख म्लान हो गया। पहले दिन जो फक्कड़ाना लापरवाही थी वह एकदम लुप्त हो गयी। वे ज़ोर ज़ोर से अपनी पीठ खुजलाने लगे। मैंने उन्हें आश्वस्त करने के लिए कहा, 'नहीं ऋषिकुमार तुमसे कोई पाप नहीं हुआ है कोई दण्ड भी नहीं भोगना पड़ेगा। तुम्हारे प्रश्न का उत्तर देना मेरे लिए तो कठिन ही है, पर वृद्धों से सुना है कि आसन देकर और प्रणिपात करके वृद्धों का सम्मान किया जाता है।'

"बीच ही मे तापसकुमार भुझलाकर बोल उठे—'आप कैसे जानते हैं? शुभा जानती है। आपको पता है कि जिसे धर्म कहा जाता है, वह कभी-कभी भयंकर पाप भी हो जाता है? पर कैसे जानेंगे? शुभा जानती है।'

'मैं हैरान था! मनु नहीं, वशिष्ठ नहीं, आपस्तम्ब नहीं, अत्रि नहीं, याज्ञवल्क्य नहीं धर्म के बारे मे जानती है तो केवल शुभा! पागल है क्या!

"परन्तु ऋषिकुमार की वाग्धारा आज रुकना नहीं चाहती थी। उसकी बातें उसकी सच्चाई और भोलेपन से ऐसी मीठी लगती थी कि मैं उत्सुकतापूर्वक सुनता ही रहा।

''अच्छा आचार्य, विपन्न व्यक्ति की सेवा धर्म है न? कैसे जानेंगे आप? कल स्वप्न में मैंने शुभा से पूछा था कि ये लोग जो मेरे पास रोगमुक्त होने की आशा से आते हैं उनकी सेवा धर्म है या नहीं? उन्होंने हँसकर कहा—हूँ! शुभा जब हँसती है तो लगता है फूल झर रहे हैं!'

मैंने कुतूहल के साथ कहा, 'इतना तो मैं भी बता सकता था।' तापसकुमार ठठाकर हँसे और बोले, 'इतना मैं भी जानता था। लेकिन बस, इतना ही। उस रात को ऐसा हुआ कि शुभा को चोट आ गयी थी। मैंने कहा कि वे मेरी पीठ पर बैठ जायें। यह तो धर्म ही था। लेकिन शुभा ने कहा कि नहीं, यह ठीक नहीं होगा। ऐसा किसी युवक का सोचना भी पाप है। मैं नहीं माना मैंने अपनी पीठ उनके सामने कर दी। वे हट गयी। मेरी पीठ मे सनसनाहट अनुभव हुई। थोड़ी देर वैसा ही बैठा रहा। पर शुभा हट गयी। उन्होंने कहा कि यह अनुचित है, पाप है। सचमुच पाप था। मेरी पीठ की सनसनाहट वैसी ही बनी रह गयी। पाप का फल तो मिलता ही है। मैंने वायु निरोध कर इसे दूर करना चाहा। नहीं दूर हुआ। ऐसा लगता है कि गहराई मे कोई शल्य धँस गया है और वहाँ वायु की शक्ति काम नहीं कर पाती। अच्छा आचार्य, वायु से भी कोई प्रबल चीज होती होगी? मगर आप कैसे जानेंगे? शुभा बता सकती है। शुभा महाभागा शुभा!'"

राजा और आचार्य औदुम्बरायण इस मनोरंजक बातचीत मे इतने तल्लीन थे कि वे देख ही नहीं सके कि जाबाला के चेहरे पर कैसी सफेदी आ गयी। उसे जान पड़ा कि उसके अन्तरतर को कोई आरी से चीर रहा है। उसकी आँखों से आँसू की धारा उमड़ पड़ी थी, पर उसने प्रयत्नपूर्वक अपने को सँभाल लिया। उसके भीतर अजीब तरह की हलचल थी। कैसे बताये कि उस भोले तापसकुमार की शुभा वही है। हाय, यह वयस्क शिशु कितना भोला है, कितना सरल! उसने लोकगीता में किसी भोले प्रेमी की कहानी सुनी थी। वह थका मांदा अपनी अज्ञातनामा प्रिया के द्वार पर पहुँचकर गिड़गिड़ाकर पूछने लगा, 'वह है कहाँ कोई बता दे मुझे।' प्रिया कटकर रह गयी। शर्म से बोल ही नहीं पायी कि 'अरे भोले बटोही, वह मैं ही तो हूँ वह मैं ही तो हूँ।' जाबाला को कुछ वैसा ही अनुभव हो रहा था।

आचार्य कहने लगे—'मैं कुछ कहूँ यह तापस को स्वीकार नहीं था।

इसलिए मै चुपचाप सुनता रहा। भोलेराम का यह बताना व्यथ था कि शुभा के अतिरिक्त कोई और भी कुछ जानता है। पर महाराज यह शुभा कौन है ? उसके पिता का भी वही नाम है जो आपका है।' फिर जावाला की ओर देखकर बोले, "जानश्रुति-कन्या तो तुम भी हो बिट्टो रानी ! इतने म तो तू उसकी गुरु शुभा के समान ही है। पता नही उसने इस भोले तापस को कितनी गहराई मे प्रभावित किया है।

जावाला रुद्धवाक हतचेष्ट।

आचाय ने आगे कहा, 'अभी इस सत्सग का सबसे मनोरजक अश आपको नही बता पाया। मैंने विनोद करने की इच्छा से ही पूछा, अच्छा ऋषिकुमार, प्राणवायु से भी अधिक गहराई मे जो चीज है उसके बारे म शुभा ने कुछ नही बताया ? सुना है कि तत्त्वज्ञानी लोग उसे 'मन' कहते है। आपको इसका पता नही है ?'

"ऋषिकुमार ने कहा, है। मैंने बाल्यावस्था मे अपने पिता से सुना था कि आरुणि उद्दालक ने अपन पुत्र श्वेतकेतु से कहा था कि जिस प्रकार एक सूत्र मे बँधा हुआ पक्षी पहले प्रत्यक दिशा मे उडने की चेष्टा करता है और कही शान्ति न पा कर उसी स्थान पर बैठ जाता है जहा पर कि वह बँधा हुआ है, ठीक उसी प्रकार सौम्य मन प्रत्येक दिशा मे उडने के बाद कही शान्ति न पाकर श्वास पर ठहर जाता है, क्योकि मन श्वास से ही बँधा हुआ है। तभी से मैंने मन के बारे म सुन रखा है। पर मन तो श्वास से बँधा है। श्वास वायु है। इसलिए मन, वायु के बस मे रहता है। शुभा ने उसके बारे मे कुछ नही बताया। समय ही कहा मिला ! शूद्रो का मेला था उन्हे पकडकर न जाने कहा ले गये। अच्छा आचाय, आप क्या अनुभव करते है, मन प्रबल है या वायु ?

"मैंने किसी भूमिका के बिना दृढता के साथ कहा, मन।

"ऋषिकुमार सोचने लगे। अपने आप से ही कहा, 'शुभा ने कहा था, मैं जिसे वायु कहता हूँ वह वही चीज है जिसे तत्त्वदर्शी लोग आत्मा कहते हैं। मन बीच मे कहा से आ गया ?' फिर मेरी ओर देखकर बोले, 'मुझे ऐसा लगा है आचाय, कि वायु भी शक्तिशाली है पर अलग स्तर पर। मन भी हो सकता है, दूसरे स्तर पर। इनमे विरोध नही है। महाभागा शुभा ने बताया था कि पद और पदाथ को जोडने-वाला तत्त्व प्रत्यय है वह आत्मा का धम है। यह प्रत्यय रहता तो मन मे ही है। श्वास मे तो निश्चय ही नही रहता। पर नही आचाय, मैं भटक गया हूँ, मुझे ठीक सूझ नही रहा है मैं गुरु की खोज मे जा रहा हूँ। आप नही जानते मैं बहुत व्याकुल हूँ।'

'मैं चुपचाप बैठा रहा। हटने का कोई प्रयत्न नही किया। ऋषिकुमार चिन्तित दिखायी पडे। फिर एकाएक बोले, 'वायु के बल पर मैं निर्जीव वस्तुओ मे गति पैदा कर सकता हूँ पर सजीव वस्तुओ पर यह बल नही चलता। आपके हाथ म जो डण्डा है, उसे छोडिए तो जरा।

'मैंने छोड दिया। वह धरती पर गिर गया। ऋषिकुमार ने श्वास निरोध किया। थोडी देर मे डण्डा सीधा खडा हो गया और धीरे धीरे उनकी ओर सरकने लगा। उन्होने रेचक की प्रक्रिया शुरू की। डण्डा धीरे धीरे मेरे पास आ गया और लुढककर धरती पर गिर गया। ऋषिकुमार ने मेरी ओर देखकर कहा, 'अब आप इस पर मन की शक्ति लगाकर देखिए तो, इसमे हलचल होती है या नही।'

'मैंने हाथ जोडकर कहा, 'ऋषिकुमार, मुझे मन की शक्ति लगाने का अभ्यास नही है। मैंने सुनी सुनायी बात आपसे कही है।'

"ऋषिकुमार ने आश्चर्य से मेरी ओर देखा —'आप बिना परीक्षा किये ही कोई बात मान लेते है ? विचित्र हैं। यह तो नेयता हुई। यही शूद्र धर्म है।'

"फिर एकाएक उठकर खडे हो गये। बोले, 'मैं ही परीक्षा करूँगा। कही गुरु के दर्शन हो जाते!' फिर कुछ असमजस म पडे दिखायी दिये—'आपने यह नहीं बताया कि मुझे किस प्रकार आपका सम्मान करना चाहिए। बताइए न!' मैं क्या बताता! उनके उद्विग्न भोले मुख की ओर ताकता रहा। फिर ऋषिकुमार ने नम्रता के साथ कहा, मैं आपको प्रणिपात निवेदन करता हूँ। मरा किया हुआ यह सम्मान ग्रहण करें।' फिर एकदम चल पडे, जान पडा जसे उडे जा रहे हैं। शायद गुरु की खोज मे चल पडे। मैं दूर तक उन्ह जाते देखता रहा। रह रहकर वे अपनी पीठ पर हाथ फेर लेते थे।"

कहानी समाप्त करने के बाद राजा और आचार्य दोनो ने आश्चर्य के साथ देखा कि जाबाला का चेहरा सफेद हो गया है। वह एकदम पाषाणमूर्त्ति के समान जडीभूत हो गयी है। दोनो उसकी दशा से चिन्तातुर हो उठे।

चार

ऋषिकुमार रैक्व व्याकुल-भाव से चलते गये। कहाँ जा रहे हैं यह उन्ह स्वय नही मालूम। विचित्र प्रकार की व्याकुलता उनके मन मे है पर वे समझ नही पा रहे हैं। प्राण वायु की शक्ति से वे थोडा बहुत जड पदार्थों को प्रभावित कर सकते हैं। आश्वलायन ने यह तो उन्ह बताया था कि हृमा की वाणी से स्पष्ट है कि 'रयि' पदार्थ रैक्व के पास पहुँच जाते है। पर उन्होने यह नही बताया कि रयि वस्तुत जड वस्तुओ का वाचक है। पर स्वप्न मे शुभा कस खिच आयी, वह तो जड पदार्थ नही है! स्वप्न कौन देखता है? आचार्य कहते हैं कि मन नामक कोई पदार्थ है वह वायु से अधिक शक्तिशाली है। यह उनकी सुनी-सुनायी बात है परीक्षित सत्य

नही है, पर जिससे सुना होगा, वह कदाचित् परीक्षा कर चुका हो। स्वप्न मे क्या मन कायरत रहता है ? स्वप्न क्या है ? सुषुप्ति क्या है ? प्राण वायु और मन का क्या सम्बन्ध है ? किससे पूछा जाये, कौन बतायेगा ? शुभा बता सकती थी पर वह मिलेगी कहा ? क्या मन की शक्ति स उसे प्रत्यक्ष खीचा जा सकता है ? स्वप्न मे जो बिना बुलाये ही आ गयी, वह क्या प्रयत्न करने पर भी जाग्रत अवस्था मे नही मिल सकती ? ऋषिकुमार चलते गये। कुश कण्टको से पैर बिंध जाते थे, पर वे अपनी धुन म मस्त थे। कब रात हुई, कब थककर बैठ गय इसका ध्यान ही नही रहा। पीठ की जो सनसनाहट भूल गयी थी वह अवसर पाते ही फिर अनुभूत हुई। उन्हाने पीठ पर हाथ फेरा। व्यथा कुछ गहराई म उतरती जान पडी। छाती तक उसने हमला किया। एक हाथ स छाती पकडी। सनसनाहट जा नही रही है। प्राणायाम करना चाहिए, पर प्राणायाम सिद्ध नही हो रहा है। व्याकुलता बढ गयी जान पडी। क्लान्ति से शरीर चूर चूर हो गया। उन्हे झपकी आ गयी। थोडी देर म वे सो गये। स्वप्न म शुभा दिखायी पडी। चिन्ता कातर मुख की शोभा कुछ और ही थी। उन्ह शुभा के अमल बचन सुनायी दिय 'ऋषिकुमार, तुम्हारी पीठ मे बडी वेदना है। आओ तुम्हारी पीठ सहला दू।' और सचमुच ही शुभा ने उनकी पीठ पर हाथ फेर दिया। कितना शीतल स्पश था ! सारी व्यथा जाती रही। ऋषिकुमार को अपूव तप्ति मिल रही थी। पर अचानक उनकी निद्रा भग हुई। बैठे-बैठे जहा लेट गय थे वहा एक सुन्दर-सी लता थी। उसी के पल्लव हवा के झोके से उनकी पीठ पर झूम रह थे। क्या रहस्य है ? इस लता म कुछ दैवी शक्ति थी क्या ? पर हिल तो रही है वायु से ही। यह तो वायु की शक्ति का ही उदघोष है। ऋषिकुमार को अपना परीक्षित सत्य फिर अभिभूत करने लगा— वायु ही परम शक्तिशाली तत्त्व है ! पर स्वप्न क्या वायु का उपजाया था ? वे फिर विचारमग्न हो गय।

प्रात कालीन हवा ने उनमे ताजगी भरी। उन्हे लगा कि पीठ की सनसनाहट कुछ कम हुई है। वे खडे हो गय और फिर चलने लगे। वायु म ऐसा कुछ अवश्य है जो शरीर मे स्फूर्त्ति भरता है।

कल दिन भर न कुछ खाया, न पिया। आज उन्हे भूख और प्यास दोना का अनुभव हुआ। सामने नदी थी। पहले स्नान कर लिया जाय, फिर कुछ कन्दमूल फल खोजा जाये। वे सीधे नदी की ओर बढे। किनारा बुरी तरह ऊबड-खाबड था। किनारे-किनारे कुछ आगे बढे। एक जगह उतरन का अच्छा घाट सा बना हुआ था। वे उतर गये। पर स्नान नही कर सके। वहा एक वद्धा स्नानादि मे निवृत्त होकर सूय को अर्घ्य द रही थी। वे एकटक उन्ही की ओर देखन लगे। आश्चय और कुतूहल स उनकी आखे कान तक फल गयी। शुभा के मुख की तरह यह मुख भी चिकना था। कही दाढी मूछ के जटिल बाल नही थ। कही-कही झुरिया थी, पर सब मिलाकर वह शुभा के मुख के समान ही सौम्य मनोहर था। केश कुछ सफेद थे, पर यह सफेदी तो बूढे ऋषियो के केशो म भी दिख जाती है।

ये बडे ऋषियो के सफेद बालो से अधिक स्वच्छ और मुलायम थे। क्या ये भी स्त्री पदार्थ है ? पूछना चाहिए।

पर उन्हे पूछना नही पडा। वृद्धा महिला ने ही उनकी ओर देखकर पूछा "इस तरह क्या ताक रहे हो सौम्य ? तुम कौन हो ?"

ऋषिकुमार के आश्चर्य मे मानो बाढ आ गयी। यह वाणी भी वैसी ही मधुर है, कानो मे मानो अमृत घोलती हुई। वे क्या कहकर सम्बोधन करें, कुछ समझ मे नही आया। शुभे' कहे ? ना। शुभा तो बस एक ही है— अद्वितीय! तो फिर ? व्याकरण और कोश मे पढे हुए अनेक स्त्रीलिंग सम्बोधन उनके मन मे आये, पर निश्चय कुछ भी नही कर सके। कौन जाने, ठीक से समझ पायें या नही। बहुत छुटपन मे पिता से सुना था कि ब्रह्मचारी को यदि भिक्षा मागने जाना हो तो गृहस्वामिनी को 'भवति' कहकर सम्बोधन करना चाहिए। व्याकरण की दृष्टि से गृहस्वामिनी भी तो स्त्री पदार्थ है। भिक्षा मागने का कभी अवसर ही नही मिला और आज भी नही माग रहे हैं फिर भी भवति' सम्बोधन बुरा तो नही है। उनके गले से आवाज नही निकल पा रही थी। रुक-रुककर बोले, 'भवति, प्रणिपात स्वीकार करें। मैं रिक्व ऋषि का पुत्र हूँ, लोग मुझे रैक्व कहते है। पर पहले आप मुझे यह बतायें कि क्या कहकर मैं आपको सम्बोधित करूँ ?"

वृद्धा को कुछ कुतूहल हुआ। मृदु भाव से कहा, 'सौम्य, तेरे जैसे लडके मेरी जैसी वृद्धा को 'मा' कहकर पुकारते है। तुझे इतना भी नही मालूम ? तेरी माँ तो होगी!"

ऋषिकुमार की आँखें विकच पुण्डरीक की तरह खिल गयी। अपने-आपको ही समझाते हुए कहा, 'ठीक ही समझा था आप भी शुभा की भाति स्त्री-पदार्थ हैं ?"

वृद्धा को और भी विस्मय हुआ—'क्या तूने स्त्री नही देखी, तेरी माँ या बहिन नही है ? घर मे कोई महिला नही है ?"

'थोडा रुको माँ, थोडा रुको। मेरी माँ थी, मगर मेरे जन्म के समय ही चल बसी ऐसा पिताजी ने बताया था। पिताजी भी बचपन मे मुझे छोडकर वायुलीन हो गये मैं अकेला ही रहा। ध्यान और तप मे लग गया!'

"तो तूने सचमुच कोई स्त्री नही देखी ?'

"देखी है मा, शुभा को देखा है, बहुत सुन्दर है शुभा। बहुत मीठा बोलती है। बहुत बडी तत्त्वज्ञानी है। पिछली रात ही तो उसे स्वप्न मे देखा है।"

'शुभा कौन है बेटा ?"

'मेरी गुरु हैं। उन्होने ही तो मुझे बताया था कि स्त्री-पदार्थ और पुरुष पदार्थ मे भेद है। उन्होने ही बताया कि पद और पदार्थ का सम्बन्ध प्रत्यय जोडता है। प्रत्यय आत्मा का धर्म है। पर मैं बहुत थोडा ही सीख पाया। थोडी देर के लिए ही तो उन्हे देख पाया था।"

ऋषिकुमार अजीब सी व्याकुलता अनुभव करने लगे। उनके हाथ अनायास

के दोने मे उन्होंने थोडा सा मधु भी दिया। उन्होंने यह भी बताया कि उनके पास एक गाय भी है, पर अभी वह दूध नही दे रही है। जल्दी वह दूध देने लगेगी तो ऋषिकुमार को दूध दही भी थोडा बहुत मिल सकेगा।

मा ने प्यार से पूछा, 'बेटा, तुझे कभी दूध मिला है ?"

"हाँ मा, जब पिताजी जीवित थे तो मिलता था, पर अब कई वर्षो से नही मिला।"

वृद्धा माता की आखें डबडबा आयी—"हाय, तुझे न माता का सुख मिला, न पिता का। अच्छा बेटा, तू यहा रहकर जैसा चाहे वैसा चिन्तन मनन कर। माँ को छोडकर कही मत जा। कल तिल के पत्ते लाकर तेरे केश साफ कर दूगी। तेरे शरीर मे मल भी जम गयी है। इगुदी तेल मे थोडा सा जौ पीसकर उबटन बनाऊँगी और तुझे खुद नहवाऊँगी। हाय, सोने जैसा चेहरा कसा हो गया है ! यह तू बार बार पीठ क्यो खुजला रहा है बेटा, वहाँ भी मैल जम गयी होगी।"

"नही माँ, वह तो पाप का फल है। मैंने पाप किया था, उसी का दण्ड भोग रहा हूँ। यहा बडी सनसनाहट मालूम होती है।"

'पाप ? तू क्या पाप करेगा ? पाप तो मन मे होता है। तेरा मन तो शुद्ध निर्मल है। उसमे पाप कहाँ आ सकता है ?"

'पाप मन मे होता है मा ? आश्चर्य है ! मैंने तो कभी मन की बात ही नही सोची। अच्छा माँ, मन क्या प्राणवायु से अधिक शक्तिशाली होता है ?"

'*देख बेटा, इसी शरीर मे अन्न का बना अंश भी है, प्राण भी है,* मन भी है, विज्ञान भी है आत्मा भी है। इनमे सत्य सभी है पर उत्तरोत्तर बलवान हैं। मैंने सुना है कि भृगु ने अपने पिता वरुण से परम सत्य के स्वरूप के विषय मे प्रश्न किया। वरुण ने उन्हे तप साधना द्वारा स्वय ब्रह्म ज्ञान प्राप्त करने का उपदेश दिया। उन्होने केवल इतना निर्देश भर दिया कि परम सत्य अथवा ब्रह्म एक ही होना चाहिए 'जिसमे समस्त पदार्थ जगत का उदभव हो जिसमे समस्त पदार्थ जगत् की स्थिति हो।' तप साधन करने के बाद भृगु ने लौटकर पिता से कहा कि अन्न को परम सत्य माना जा सकता है। पिता को इससे सन्तोष न हुआ और पुन तप करने को कहा। भृगु ने फिर आकर कहा कि प्राण को परम सत्य माना जा सकता है।' और शेष कई बार उन्होने ऐसे ही उत्तर दिये। पिता को भृगु के इन उत्तरो से कि प्राण मन और बुद्धि परम सत्य माने जा सकते है सन्तोष न हुआ। अन्त मे, भृगु ने यह उत्तर दिया कि आनन्दमय आत्मानुभूति को समस्त जगत् का उदगम माना जा सकता है।' यह ज्ञान रहस्यरूप से सदा भार्गवी विद्या' के नाम से प्रसिद्ध है तथा यह परम स्वर्ग मे भी प्रतिष्ठित है।"

नया सुन रहा हूँ, माँ ! जरा और खोलके समझाओ ना !"

'अब यह सब तो तू मुझसे न पूछ। अभी तक पिताजी के पास न पहुँचूगी, उनसे जा पूछना हो पूछ लेना। मुझे यह बता कि किसने तुझे बताया कि तूने पाप किया है ?"

"शुभा ने।"

"क्यो, क्या बात हुई कि शुभा न तुझे बता दिया कि तू पाप कर रहा है?"

नहीं मा शुभा ने तो सिर्फ इतना कहा था कि तुम जो कह रहे हो वैसा सोचना भी पाप है। पर मुझसे गलती हो गयी और पाप लग गया।"

"मुझसे सब बता सकता है, बेटा? क्या सोचना पाप है?'

हाँ मा, सब बता देता हूँ।'

फिर ऋषिकुमार ने सारी कथा कह सुनायी। मा के बली कुंचित चेहरे पर प्रसन्नता की लहरें खेल गयी। सब सुन लेने के बाद बोली 'मेरे भोले लाल, शुभा ने भी ठीक कहा था, तूने भी ठीक कहा था। पर यह जो सनसनाहट है, वह पाप के कारण नही है, मन के कोने मे छिपी हुई किसी दुर्दम अभिलाष-भावना की देन है। इसे तो शुभा ही ठीक कर सकती है। पर तू यह बात कभी न सोच कि तूने पाप किया और उसका दण्ड भोग रहा है। नही, इसमे पाप की कोई बात नही है। तू समझ नही रहा है कि तेरे मन में कही बहुत गहराई में शुभा को पाने की अभिलाषा है। वही सनसनाहट के रूप मे अनुभूत हो रही है। यह ठीक हो जायेगा।"

"ठीक हो जायेगा, मा? कैसे?"

'बताऊँगी। पहले तो शुभा को खोजना पडेगा।"

वह कहा मिलेगी, माँ? वह तो दिव्यलोक निवासिनी है।"

"मिलेगी, चिन्ता न कर। चल, तुझे तेरे पिताजी के पास ले चलू।"

पाँच

"देख बेटा, तुझे महान तत्त्वज्ञानी औपस्ति ऋषि के पास ले जा रही हूँ। इन्होंने सृष्टि के रहस्य को समझा है, अपने पूर्वज महान् उपस्त के चिन्तन मनन का परिष्कार किया है और याज्ञवल्क्य के अध्यात्म ज्ञान को तप और स्वाध्याय के द्वारा और भी उज्ज्वल बना दिया है। तेरी शकाओ का वे ही समाधान करेंगे। अभी मैंने उन्ही को तेरा पिता कहा है। उनके पास विनम्र होकर जाना, भूमि पर सिर रखकर प्रणाम करना और जब तक वे बैठने को न कहे, तब तक हाथ जोड कर खडे रहना। मेरी बात समझ रहा है न?"

समझता हूँ, माँ! पर ऐसा क्या करना होगा? महाभागा शुभा ने भी मुझे स्वप्न में समझाया था कि वृद्ध जन का सम्मान करना चाहिए। पर सम्मान इसी

तरह क्यो किया जाय, यह बात मेरी समझ म नही आयी। बहुत छुटपन म मैंने देखा था कि मेरे पिता के पास दूर दूर स ब्रह्मचारी आते थ, वे हाथ म कुछ-न-कुछ समिधा लेकर आते थे और पिताजी को प्रणाम करके तब तक खडे रहते थ जब तक वे उन्ह बैठने को नही कहते थ। मेरी समझ म यह सब नही आता।"

समझ जायगा बेटा, यह शिष्ट जनो का आचार है। यदि तुम वृद्ध जन क पास जाओ तो प्रणिपात करो और उनकी आज्ञा पाये बिना मत बैठो। यदि कोई वृद्ध तुम्हारे पास आयें तो उठकर उन्ह प्रणाम करो और फिर आसन दो। मनु ने बताया है कि जब कोई वृद्ध जन तरुण के सामने आता है तो तरुण का प्राण ऊपर उठने लगता है। तरुण जब उठकर अभिवादन करता है तो फिर प्राण यथा स्थान लौट आता है। हर शिष्ट आचरण का कोई-न कोई कारण तो होता ही है। उनका पालन अवश्य करना चाहिए।"

"करूँगा, माँ।'

"और देख, उन्ह क्या कहकर सम्बोधित करेगा?"

" पिताजी' कहूँगा।"

"नही अभी तू ज्ञान की इच्छा स जा रहा है, 'भगवन' या भगव कहना। तत्त्वज्ञानी आचाय को जिज्ञासु जन एसा ही कहकर सम्बोधित करते है।'

"ऐसा ही करूँगा।

"और देख, तेरे पिताजी के पास जैस जिज्ञासु ब्रह्मचारी हाथ मे समिधा लकर आया करते थे वसे ही तू भी हाथ म समिधा ल ले। समिधा यज्ञ का उप करण है। उस हाथ म लेकर जाने का अथ है कि अभी यज्ञ पूरा नही हुआ। ब्रह्मचारी कुछ और ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा स आया है। वह जिज्ञासु है। समझ रहा है?"

' हाँ माँ, समिधा लेकर चलूगा।"

"मैं उनसे तेरे बारे म पहले स ही थोडा बता आती हूँ। उन्ह तुझे उपदेश दने मे आसानी होगी।"

माताजी थोडी देर म लौट आयी और रैक्व स चलने को कहा और वद्ध ऋषि क पास उन्ह पहुँचाकर लौट आया।

मृगचम पर आसीन शुभ्रकेश ऋषि औपस्ति न मन्द स्मित क साथ रक्व की ओर देखा। उनका अभिवादन स्वीकार करके पास ही पडे एक कुशासन पर बठ जाने का इगित किया। उन्हें देखकर रक्व के मन म सहज श्रद्धा का भाव आया। वे हाथ जोडकर खडे ही रह गय। दुबारा आसन ग्रहण करने का निर्देश पाकर वे कुछ अभिभूत से आसन पर बठ गये, पर उनकी वाणी रुद्ध ही रही।

औपस्ति न ही पहल की— अच्छा सौम्य, तू उदगीथ क विचक्षण व्याख्याता ऋषि रिक्व का पुत्र है न?'

'हाँ भगवन्!"

' तेरी माताजी न मुझे बताया है कि तूने कठोर तप किया है और अब कुछ

शकाओ के समाधान के लिए मरे पास आया हे। तो बता न सौम्य, क्या शकाएँ हैं तेरी ?"

रैक्व ने कहा, 'भगवन, मैंने बहुत विचार के बाद सत्य पाया हे कि वायु ही सबसे प्रबल तत्त्व है। वह ब्रह्माण्ड म वायु के रूप म और पिण्ड म प्राण के रूप म क्रियाशील है। ब्रह्माण्ड के चार दवता— अग्नि सूय, चन्द्र और जल—वायु के अधीन है और पिण्ड के चार इन्द्रिय -वाणी चक्षु श्रोत्र और मन—प्राण के अधीन है। मैंने प्राणायाम की साधना की हे। मैं अनुभव स जानता हूँ कि वायु सबसे प्रबल तत्त्व है। पर महाभागा शुभा ने पूछा था कि वायु क्या वही वस्तु है जिस महर्षि याज्ञवल्क्य और राजर्षि जनक आत्मा कहते हे, तो मै कुछ उत्तर नही दे सका। भगवन, यह आत्मा क्या चीज़ है ?

"फिर भगवन्, मे मन के बारे मे भी जानना चाहता हूँ। कुछ लोग कहते है कि मन, प्राण से भी अधिक सूक्ष्म है, स्वप्न मे वही देखनवाला होता है। मै समझ नही पा रहा हूँ कि मन का क्या स्वरूप हे और स्वप्न का क्या रहस्य हे !

"साधु वत्स, तूने अपना विश्वास और अपनी शका दोनो को बहुत स्पष्ट रूप से कह दिया है। तूने बहुत तपस्या की है पर तपस्या का एक बहुत आवश्यक अग है सत्सग। उसी की कमी तुझम जान पडती है। जो जिस बात को जानता है उससे पूछते रहन स अपनी एकान्त चिन्तन की त्रुटिया दूर होती रहती है। पूछते रहना चाहिए। तू जो सोच रहा है वह नयी बात नही है, गलत भी नही है। पर तूने अपनी जानकारी को अन्य जानकारा स पूछकर सशोधित नही किया।"

"पूछना क्या इतना आवश्यक है, भगवन ? '

'देख सौम्य ! जैसे कोई गन्धार देश के किसी व्यक्ति को आखे बाधकर निजन स्थान म लाकर छोड द, वह जस सब दिशाओ को शोर मचाकर गुजा दता है, और चिल्लाता है कि आखे बाधकर मुझे पकड लाये, आखें बाधे ही छोड दिया, और फिर जसे कोई बन्धन को खोलकर उस कह अमुक दिशा म गन्धार देश है, उधर चला जा, तो वह बुद्धिमान गाव गाव पूछता हुआ गन्धार दश को पहुँच जाता है, ठीक इसी तरह, आचाय को, गुरु को, पाकर यह भटकता हुआ पुरुष अपन 'सत' रूप को पान के लिए चल देता है। इस ससार म बँधे रहन की अवधि तो उतनी ही है जितनी देर तक कोई रास्त पर डालनेवाला जानकार आखो पर बँधी पटटी खोल नही देता। उसके बाद तो 'सत' की प्राप्ति हो ही जाती है।"

"समझ रहा हूँ भगवन।"

तो सौम्य तू सत्सग कर। कुछ दिन जानकार लोगो के बीच घूमकर अपने परखे हुए सत्य को फिर से जाच ले।"

जानकार लोगो की बात की भी जाच करनी होगी, भगवन ?"

'हाँ ! *तू आत्मा के बारे म जानना चाहता है न ?"*

'*हाँ भगवन्* !"

'बहुत पुरानी बात है। एक बार प्रजापति न घोषणा की थी कि हृदयाकाश

मे जिस 'आत्मा' का निवास है वह पापा से अलग है, जरा और मृत्यु म छूटा हुआ है, भूख और प्यास से पर है, सत्य काम और सत्य-सकल्प है—उसी की खोज करनी चाहिए, उसी को जानना चाहिए। जो उस 'आत्मा' को ढूढकर जान लेता है, वह सब लोका को और सब कामनाआ को पा लेता है।

प्रजापति की यह घोषणा दव तथा असुर दोना क काना म पडी। उन्होने मन ही मन कहा, चलो, उस आत्मा का पता चलायें, जिस पा जाने से सब लोका और सब कामनाओ की प्राप्ति हो जाती है। देवो म से इन्द्र' और असुरो म स विरोचन' इसी की खोज म निकल पडे। वे दोना हाथा म समिधा लेकर, एक दूसरे के बिना जाने प्रजापति के पास आ पहुँचे। उन्हाने प्रजापति के आश्रम म जाकर बत्तीस वप तक ब्रह्मचयपूवक निवास किया।"

"बत्तीस वप!"

'हा सौम्य, सबमे श्रेष्ठ ज्ञान पाने के लिए यह कोई बडी अवधि नही है।"

'फिर क्या हुआ ?"

'फिर प्रजापति न उनसे पूछा, किस इच्छा स तुम आश्रम म आये हो? उन्होन कहा, भगवन्! आपकी घोषणा चारो तरफ गूज रही थी कि 'आत्मा' पापा से अलग है, जरा और मृत्यु से छूटा हुआ है, भूख और प्यास से परे है, सत्य काम और सत्य-सकल्प है—उसी को खोजना चाहिए, उसी का जानना चाहिए, जो उस 'आत्मा' को ढूढकर जान लेना है वह सब लोका को और सब कामनाआ को पा लता है—हम उसी आत्मा' की खोज म आपके आश्रम म आय है।"

'यह तो अद्भुत है। प्रजापति ने उन्ह क्या समझाया, भगवन ?"

"प्रजापति ने उन दोनो स कहा, यह जो आख म पुरुष दीखता है, यह 'आत्मा' है। फिर कहा, यही अभय' है यही 'ब्रह्म है। उन दोना न पूछा, 'भगवन! यह *जो जल म दीखता है, जो दपण म दीखता है—यह कान सा आत्मा है?'* प्रजापति ने उत्तर दिया, 'इनम भी वही आत्मा दीख पडता है जो आख म दिखायी दता है।' फिर प्रजापति ने उन दोना स कहा पानी के बतन म तुम दोना अपने का देखो, और फिर आत्मा' क विषय म जो कुछ समझ न पडे, वह मुझस पूछो।' उन्होन पानी के बतन मे दखा। प्रजापति ने पूछा, क्या दीखता है?' उन्हाने कहा, 'भगवन्! हम अपना पूण रूप दीख रहा है लोम से नख तक अपना प्रतिरूप, अपनी छाया।' प्रजापति ने उन दानो स फिर कहा, सुन्दर अलकार और वस्त्र धारण करके, साफ-सुथरे होकर, पानी के बतन म दखो।' उन दोना न सुन्दर अलकार और सुन्दर वस्त्र धारण किय, अपने को साफ़-सुथरा किया, और पानी क बतन म दखन लगे। प्रजापति न उनसे पूछा, 'क्या दीखता है?' उन्हाने कहा, भगवन्! जस हम सुन्दर अलकार, सुन्दर वस्त्र धारण किय हुए हैं साफ सुथरे हैं, इसी प्रकार हम दोना के प्रतिबिम्ब अलकारवाल, सुन्दर वस्त्र धारण किये हुए और साफ-सुथर हैं।' प्रजापति न कहा 'जाग्रतावस्था' म जिस तुम [illegible] आत्मा है, यह अमृत' ह, अभय' है, यही ब्रह्म [illegible] यह

होकर चल दिये।"

'फिर क्या हुआ, भगवन् ?"

विरोचन तो सन्तुष्ट होकर चले गये। उन्होंने शरीर को ही आत्मा मान लिया। यह गलत नहीं था, पर अधूरा अवश्य था। पर इन्द्र ने सोचा कि शरीर तो नष्ट हो जाता है, पर आत्मा अविनश्वर है। वे फिर प्रजापति के पास लौट आये। कई बार उन्हें नयी-नयी बातें बतायी गयीं। उन्हें बताया गया कि स्वप्न में जो देखता है वह आत्मा है। फिर जो सुषुप्ति में विद्यमान रहता है वह आत्मा है। पर इन्द्र बार-बार यह मानकर लौट आते थे कि प्रजापति ने अभी पूरी बात नहीं बतायी। इसीलिए अन्त में वे सत्य को जान सके।"

'क्या जाना, भगवन् ?"

प्रजापति ने बताया था कि देखो इन्द्र! यह शरीर तो मरणधर्मा है, मृत्यु से ग्रसा हुआ है। यह मरणधर्मा शरीर उस अमृत रूप अशरीर आत्मा का अधिष्ठान है उसके रहने का स्थान है। आत्मा स्वभाव से अशरीर है, परन्तु जब तक इस शरीर के साथ अपने को एक समझकर रहता है, तब तक उसे भी सुख दुःख लगा ही रहता है, क्योंकि सुख दुःख तो शरीर का धर्म ही है। जब तक शरीर के साथ यह अपनी एकता बनाये रखेगा, सुख दुःख से नहीं छूट सकेगा। वायु अभ्र विद्युत, गर्जना—ये भी तो अशरीर ही हैं कहाँ है इनका शरीर? जिस प्रकार ये आकाश' में रहते हैं, पर शरीर न होने के कारण दीखते नहीं, हाँ, अपने दृश्य रूप में तब प्रकट होते हैं जब परम ज्योति सूर्य' से इनका सम्पर्क होता है, सूर्य की गर्मी पाकर वायु अपने असली रूप को धारण कर बहने लगता है, सूर्य की गर्मी से ही अभ्र प्रकट होते हैं विद्युत चमकती है, गर्जना प्रकट होती है, इसी प्रकार आत्मा भी अशरीर है, वह शरीर' में रहता है, परन्तु जब उसका भी परम ज्योति' ब्रह्म के साथ सम्पर्क हो जाता है तब वह भी अपने असली रूप को धारण कर लेता है।"

असली रूप का क्या तात्पर्य है, भगवन् ?'

जब मनुष्य इस अवस्था में पहुँच जाता है— शरीर में रहता हुआ भी अपने को अशरीरी अनुभव करने लगता है— तब वह खाता हुआ, खेलता हुआ, रमता हुआ, सैर करता हुआ, इस प्रकार विचरता है जैसे यह शरीर, ये बन्धु बान्धव, ये आस-पास के लोग उसे कुछ याद ही नहीं। वह संसार के जो काम करता है, ऐसे करता है जैसे शरीर के साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं। परम ज्योति के सम्पर्क में आने के कारण वह अपने को शरीर से अलग देखने लगता है। वह ऐसा स्पष्ट देख लेता है कि जैसे रथ के साथ घोड़ा जुता होता है वैसे ही उसका प्राण, उसका आत्मा इस शरीर रूपी रथ के साथ जुता हुआ है, वह स्वयं शरीर नहीं है, न शरीर तथा आत्मा का कोई मूल गत सम्बन्ध है। आकाश में जहाँ भी आँख जड़ी हुई है, वहीं 'चाक्षुष पुरुष', वह आत्मा, बैठा है और इस विशाल जगत को मानो झरोखों में बैठा झाँक रहा है। आँख क्या है? यह कोई स्वतन्त्र वस्तु नहीं है, उसी के देखने का साधन है—जो देख रहा है, वही आत्मा है। नासिका गन्ध ग्रहण करने के

लिए है—यह साधन है, जो गन्ध ग्रहण करता है, वही आत्मा है। कान सुनने के लिए है, यह साधन है, जो सुनता है, वही 'आत्मा' है।"

'और मन क्या है भगवन् ?'

'मन आत्मा का दैव-चक्षु है, दिव्य नेत्र है। इससे यह आगे पीछे, भूत-भविष्यत सब देखता है। इसी दिव्य चक्षु द्वारा मन में ही रमण करता है, परन्तु यह भी आत्मा का साधन है, जो मन के द्वारा मनन करता है वही 'आत्मा' है। जो देवगण इस संसार के साथ अधिक सम्पर्क न रखकर ब्रह्म लोक में विचरण करते हैं, ब्रह्म ध्यान में लीन रहते हैं, वे इसी 'आत्मा' की उपासना किया करते हैं, इसीलिए सब लोक और सब कामनाएँ उनके वश में रहती हैं। जो उस आत्मा को ढूँढकर जान लेता है वह सब लोकों और सब कामनाओं को प्राप्त कर लेता है।"

भगवन यह सब क्या सुन रहा हूँ! मैंने पहले तत्त्वज्ञानियों से न पूछकर बहुत बड़ी भूल की है।'

"हाँ वत्स, मैं चाहूँगा कि तू तत्त्वज्ञानियों से मिलकर अपनी जानकारी में संशोधन कर। देख वत्स सत्य एक और अखण्ड है। इसके एक भी पहलू को सही सही पकड़ लेने पर बाकी सब साफ हो जाते हैं। कुछ दिन सत्संग करके मेरे पास आ जाना।"

"कृतार्थ हुआ भगवन्! एक प्रश्न और "

परन्तु वृद्ध औपस्ति इतना ही कहकर फिर ध्यानस्थ हो गये। रैक्व इस बीच तीन बार पीठ खुजला चुके थे।

रैक्व थोड़ी देर तक प्रतीक्षा करते रहे कि ऋषि फिर उन्हें कुछ बतायेंगे पर ऋषि का ध्यान नहीं टूटा। देर तक प्रतीक्षा करके अधीर होकर वे उठने को हुए। इसी समय औपस्ति ने आँखें खोलीं और उन्हें सम्बोधित किया, "रैक्व!"

"हाँ, भगवन्!'

"तुमने वायु को परम शक्तिशाली तत्त्व समझा है न?'

"समझा था भगवन, अब कुछ और समझने का प्रयत्न करूँगा।'

"बहुत गलत नहीं समझा था, वत्स! वैदिक ऋचा के द्रष्टा ऋषि ने भी कभी ऐसा अनुभव किया था—'नमस्ते वायो। त्वमेव प्रत्यक्ष ब्रह्मासि' (हे वायु तुम्हें प्रणाम करता हूँ। तुम्हीं प्रत्यक्ष ब्रह्म हो।) परन्तु उनके समझने में और तुम्हारे समझने में थोड़ा अन्तर है। 'ब्रह्म' तो समझते हो न?"

'नहीं, भगवन्।'

'तुमने जैसे अपने सीमित चिन्तन से यह अनुभव किया है कि पिण्ड में जो प्राण है वही ब्रह्माण्ड में वायु है—दोनों वास्तव में एक ही तत्त्व हैं उसी प्रकार सौम्य, पुराने ऋषियों ने अनुभव किया था कि पिण्ड में जो आत्मा है वही ब्रह्माण्ड में ब्रह्म है—सदा विद्यमान अखण्ड चैतन्य-स्वरूप, अनाविल आनन्द रूप। एक शब्द में, वत्स, सच्चिदानन्द। इसीलिए ब्रह्म और आत्मा अभिन्न तत्त्व हैं। मन्त्र द्रष्टा ऋषि ने वायु को ही प्रत्यक्ष ब्रह्म कहा था। अर्थात् सत्ता की सदा विद्यमानता,

चतन्य की शाश्वत लीला आदि आनन्द की अनवरत अभिव्यक्ति का प्रत्यक्ष रूप वायु है। वैदिक विचारक एकैक तत्त्ववादी थे। वे जिस समय जिस देवता की स्तुति कर रहे होते थे उस समय उसी को एकमात्र परम शक्ति के रूप म प्रत्यक्ष अनुभव करते थे। कभी वे सूय को, कभी अग्नि को कभी अन्य देवता को परम शक्ति का प्रत्यक्ष विग्रह मानकर उसी परम शक्ति की बात कहते थे जिसका एक रूप वह ध्यानस्थ देवता होता था। वायु भी उसी का रूप है उसके माध्यम से वह परम-शक्ति को अनुभव करने का प्रयत्न करते थे। तुम शायद ऐसा नही करते। मेरा अनुमान ठीक है, सौम्य ?"

लगता है कि आपने ठीक ही अनुमान किया है। मै जब वायु को शक्तिशाली तत्त्व मानता हूँ तो वायु को ही सब-कुछ मानता हूँ। उसके माध्यम से और किसी शक्ति को पकडने का प्रयास नही करता।"

"यह दोष है, वत्स।"

"मुझे फिर क्या करना चाहिए, भगवन ?'

"तप और स्वाध्याय से, मनन और निदिध्यासन से ध्यान और समाधि से वह परम तत्त्व अनुभव का विषय बनता है। परन्तु यह अच्छी तरह जान लो वत्स, कि सत्सग और सदाचार स, स्वाध्याय और ब्रह्मचय से ही यह मनुष्य का शरीर, इसके भीतर देखनवाला अन्त करण वह पवित्र अधिष्ठान बनता है जिसम आत्मानुभूति स्थिर और अचचल होकर निवास करती है। सत्यवचन रथीतर सत्य को ही परम तप मानते थे, तपोनिष्ठ पौरुषष्ठि तपस्या और ब्रह्मचय को ही परम सदगुण मानते थे और नाक मौदगल्य स्वाध्याय को ही सवश्रेष्ठ साधन स्वीकार करते थे। वेदो के परम रहस्यज्ञ बादरायण व्यास पर दुख को दूर करन के सच्चे प्रयास को ही धम का मूल मानत थे। सत्य बडा गुण है, स्वाध्याय और सत्सग परम तप है, और पर-दुख-कातरता सबसे बडा मानवीय गुण है। सवत्र आत्मानुभूति का प्रत्यक्ष प्रमाण है दूसरो के सुख के लिए अपने आपको दलित द्राक्षा की तरह निचोडकर दे देना। इससे बडा तप मुझे मालूम नही है। मेरी बातें समझ रहे हो, सौम्य ?'

"समझ रहा हूँ भगवन् ?"

'तूने एकान्त वास करके बहुत तप किया है न वत्स ?"

"किया है, भगवन।"

"एकान्त का तप बडा तप नही है बेटा! देखो, ससार म कितना कष्ट है, रोग है, शोक है, दरिद्रता है, कुसस्कार है। लोग दुख म व्याकुल है। उनमे जाना चाहिए। उनके दुख का भागी बनकर उनका कष्ट दूर करने का प्रयत्न करो। यही वास्तविक तप है। जिसे यह सत्य प्रकट हो गया है कि सवत्र एक ही आत्मा विद्यमान है वह दुख-कष्ट म जजर मानवता की क्या उपेक्षा कर सकता है वत्स ? क्या समझते हो, कर सकता है ?"

"नही कर सकता, भगवन।'

'साधु वत्स, सज्जनो का सग, सदग्रन्थो का अध्ययन सत्य पर दृढ आस्था

और दु खी जनो की सवा ही परम धम है। समझ रहे हो ?'

समझ रहा हूँ भगवन्।

ऐसो पूर्ण मनुष्य बनो। चार पुरुषाथ है—धम अथ, काम, मोक्ष। इनमें पहले तीन साधन हैं अन्तिम साध्य है। पहले तीन में धम सबसे बड़ा है। उसके अनुकूल रहकर अथ का उपाजन करना चाहिए। अथ प्रधान नहीं है—धम का अविरोधी रहकर ही पुरुषाथ है। धम के विरुद्ध जान पर त्याज्य है। इसी प्रकार सौम्य काम धम और अथ का अविरोधी रहकर ही पुरुषाथ कहलाता है। धम और अथ के विरुद्ध जान पर वह आचरणीय नहीं रहता। समझ रहे हो वत्स ?'

पूरी तरह नहीं समझ रहा हूँ भगवन्।

अपनी माताजी से पूछना।

पूछूँगा भगवन्।

अच्छा सौम्य तूने [illegible] कर लिया है। विधिपूवक नहा हो गया, पर उसमें [illegible] है। अब गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने का समय आ गया है।

हाँ समझा भगवन्।

[illegible]

विवाह मनुष्य को पूर्ण बनाता है। क्या रहस्य है इन बातों का ? उनकी तपस्या अधूरी है, क्योंकि सत्संग नहीं किया। बात ठीक लगी। अगर महाभागा शुभा न मिल गयी होती तो उनका ज्ञान बढ़ नहीं पाता। महाभागा शुभा ! चम्पक पुष्प का सा रंग है, मृगछौने की सी आँखें, अमृत की सी वाणी है। यह सब भी क्या विनश्वर तत्त्व है ? जिन आँखों को देखकर उन्हें भ्रम हुआ था कि मृग की आँखें किसी प्रकार चिपका दी गयी हैं वह भी विनश्वर साधन मात्र है ? होगा पर उसे भुलाया जा सकता है ? विनश्वर वस्तुएँ इतनी मोहक कैसे होती हैं ? शुभा का सौंदर्य सत्य है, अविस्मरणीय है मोहन है। विनश्वर होने से कोई चीज़ असत्य क्या होगी ? ऋषि औषस्ति कहते हैं कि विरोचन ने शरीर को ही आत्मा मान लिया था, यह बात बिलकुल असत्य नहीं है अधूरा सत्य है। क्या दूसरा अर्थ यह है कि शरीर भी सत्य है ? माताजी से पूछना होगा। शरीर का ध्यान आते ही शुभा का मोहन दिव्य रूप ध्यान में आ जाता था। रूप अधूरा सत्य है। पूरा सत्य क्या है ? शायद आत्मा, मन और प्राण के साथ वह पूरा सत्य है। शुभा के दिव्य रूप में भी आत्मा है उसकी मृग जैसी आँखें उस आत्मा के साधन रूप में ही सत्य हैं। सत्संग करना चाहिए। सत्संग तो शुभा के साथ ही हो सकता है या फिर माताजी के साथ।

रैक्व सारी बातों को अच्छी तरह समझ लेना चाहते थे। माताजी के पास पहुँचने के पहले कहीं एकान्त में बैठकर सब बातों पर विचार कर लेना उन्हें ठीक जान पड़ा। वे नदी-तट की ओर बढ़ गये। अपने ही में खोये हुए वे आगे बढ़ते गये। रास्ते में उन्हें रुक जाना पड़ा।

एक स्त्री अपने छोटे से दुबले बच्चे को गोद में लिये बैठी हुई थी। उसके शरीर को ढकनेवाला गन्दा वस्त्र तार-तार हो गया था। आँखें गड्ढा जैसी हो गयी थीं। बाल बुरी तरह उलझे हुए थे। जान पड़ता था वह कई दिनों से भूखी थी। गोद में पड़ा हुआ नंगा बच्चा कंकालमात्र रह गया था। उसमें प्राणों का स्पन्दन समाप्त प्राय था। रैक्व उसे देखकर ठिठक गये। यह कौन है ? स्त्री उन्हें देखकर रास्ते से हटने का प्रयास करने लगी। जान पड़ा, उसे हटने में कठिनाई हो रही है। रैक्व ने उसे ध्यान से देखा। निश्चय ही वह स्त्री पदार्थ थी ! रैक्व ने उसके कष्ट का अनुभव करके कहा "रुको भवति मैं इधर से घूमकर चला जाऊँगा। पर तुम हो कौन ?"

स्त्री ने बड़ी ही करुण दृष्टि से उनकी ओर देखा। बोली, "ब्रह्मचारी मैं एक दुखिया स्त्री हूँ। यह मेरा बच्चा है। कई दिनों से मुझे भी आहार नहीं मिला है यह बच्चा भी निराहार है। अब तो यह दम भी तोड़ रहा है। मुझमें इतनी भी शक्ति नहीं रह गयी है कि नदी में से दो बूँद पानी लाकर इसके मुँह में दूँ। हे भगवान !" इस कातर करुण वाणी से रैक्व को कष्ट हुआ। बोले 'मैं अभी दौड़कर नदी से पानी लाता हूँ"—और बिना किसी उत्तर की प्रतीक्षा किये वह दौड़ पड़े। नदी से पत्तों के दोनों में पानी लाकर उन्होंने बच्चे के मुँह में डाला। बच्चा

कुछ सचेत हुआ। उसकी मा ने बड़े आयास से उसे खींचकर छाती से लगा लिया। उसकी गड्ढे जैसी आंखों से आंसू झरने लगे। रैक्व की समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करें।

थोड़ा सोचकर उन्होंने कहा 'मैं तुम्हारी सहायता करना चाहता हूँ। पर मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि कैसे तुम्हारी सहायता करूँ। तुम क्या मेरी माताजी के पास चल सकती हो ? वे बहुत दयालु हैं व तुम्हारा कष्ट दूर करने का उपाय भी बता सकती हैं। मैं तुम्हें सहारा देकर वहाँ तक ले चल सकता हूँ। बहुत दूर नहीं है।' स्त्री ने विश्वास के साथ कहा 'चलूंगी ब्रह्मचारी, तुम आगे आगे चलो, मैं पीछे पीछे आ जाऊंगी। पर मैं किसान की स्त्री हूँ, भीख नहीं माग सकती। कुछ काम काज करके मजदूरी कर सकती हूँ। तुम्हारी माताजी कोई काम देंगी तो भगवान उनका भला करेंगे।'

रैक्व धीरे धीरे आगे चले, वह स्त्री अपने बच्चे को लेकर बड़े कष्ट से उनके पीछे पीछे चली। माताजी की कुटिया पास ही थी। रैक्व ने थोड़ा आगे बढ़कर पुकारा— 'मा, इधर देखो, यह दुखिया बहुत कष्ट में है। मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि कैसे इसका कष्ट दूर करूँ।' माताजी बाहर आयीं। उस दुखिया स्त्री को देखकर उन्होंने सहानुभूति सने स्वर में कहा 'हे भगवान, यह तो बहुत कष्ट में है। क्या हुआ है बेटी ? इस बच्चे का पिता कहा है ? जल्दी बता, तुझे क्या कष्ट है ?'

स्त्री बहुत थक गयी थी। बोलने में भी उसे कष्ट हो रहा था। इशारे से ही उसने बताया कि वह भूख और प्यास से व्याकुल है। माताजी ने बड़ी तत्परता से घर से कुछ अन्न और जल लाकर उस स्त्री को दिया और दोने में थोड़ा शहद लेकर बच्चे को चटाने को कहा। रैक्व चुपचाप खड़े देखते रहे। अन्न और जल पाकर वह स्त्री कुछ स्वस्थ हुई। माताजी ने प्यार से पूछा, 'बता बेटी, तू कहाँ से आयी है ? इस बच्चे के पिता से क्या तेरी खटपट हो गयी है ? अकेली क्या घूम रही है ?'

रैक्व प्रत्येक प्रश्न को ध्यान से सुनते रहे। स्त्री ने दीर्घ निःश्वास लिया। बोली, 'भाग्यहीन हूं माताजी, मेरा विवाह एक गरीब किसान से हुआ था। विवाह के कई साल बीत जाने पर भी कोई बच्चा नहीं हुआ। जब अनेक पूजा मनौतियों के बाद यह बच्चा पैदा हुआ तो इसका बाप ही मर गया। मैं अनाथ हो गयी।'

रैक्व को एकाएक याद आया कि ऋषि औपस्ति ने कहा था कि विवाह से स्त्री और पुरुष पूर्ण मनुष्य बनते हैं। तो यह स्त्री पूर्ण मनुष्य बन चुकी है। पूर्ण बनने पर इसकी ऐसी दुर्दशा क्यों है ?

माताजी का चेहरा म्लान हो गया था—'कैसे मर गया बेटा ? हाय हाय तू सचमुच अनाथ हो गयी।'

स्त्री ने सहानुभूति की वाणी सुनी तो और भी बिफर पड़ी— 'क्या बताऊँ माताजी, दीन दुनिया का पूछनेवाला कोई नहीं है। इस बच्चे का पिता राजा

जानश्रुति के घर पर काम करता था। उनका हल भी जोतता था और उनकी गाडी भी चलाता था। एक दिन राजकुमारी कही जा रही थी। वही गाडी चला रहा था। उस दिन बडे जोर की आंधी आयी, पानी भी खूब बरसा। गाडी म जुते बैल भाग गय। उसी तूफान मे वह भी मर गया। राजा के आदमियो ने मुझे उसके मरने की सूचना भी नही दी। गांव के लोगो से मालूम हुआ कि राजकुमारी तो बच गयी, मगर इस बच्चे का बाप मर गया। पता नही उन लोगा न उसका शव कहां फेंक दिया। समाचार पाकर मैं वहां गयी तो उस शव का कही पता नही लगा। गाडी वहां पडी थी पर सुना कि उसके नीचे कोई साधु बठता था जो अब उसे छोडकर कही चला गया है। मैं तो दुर्भाग्य का शिकार हो ही गयी। राजकुमारी के जीवित लौट आने पर राज्य मे बहुत खुशियां मनायी गयी, पर इस दुखिया की याद भी किसी को नही आयी। बच्चे का दुख नही देखा गया। भीख माग नही सकती। इस छोटे बच्चे को देखकर कोई काम भी नही देता। क्या करूँ, यह तो अब शायद ही बचे। रास्ते मे यह ब्रह्मचारी मिले। इन्हाने ही दो बूद पानी देकर बच्चे को कुछ देर और बचा लिया है। माताजी मैं परो पडती हूँ, मुझे कुछ काम दे। मैं आपका ऋण कभी नही चुका सकूगी। सेवा करूँगी और जैसे भी हो इस बच्चे को पाल पोसकर बडा करूँगी, भगवान आपका भला करेगे।"

वह दुखिया स्त्री धरती पर सिर रखकर गिडगिडाने लगी। रैक्व का मन क्षोभ म भर गया। यह तो उन्हा की कहानी सुना रही है।

माताजी ने एक बार रक्व की ओर देखा। शायद उनके चेहरे पर पडी प्रतिक्रिया की रेखाओ को पढ लेना चाहती थी।

माताजी ने उस स्त्री को आश्वासन दिया। उससे कहा कि उनके यहा कोई काम तो नही है क्याकि यह स्वय दास तपस्विया का आश्रम है पर वह तब तक वही रहे जब तक उसके लिए कोई कामकाज की व्यवस्था नही हो जाती। माताजी ने उस स्त्री और उसके बच्चे के लिए व्यवस्था की और फिर जडवत स्तब्ध खडे रैक्व के पास आयी।

रैक्व को उस प्रकार खडा देख उनका हृदय स्नेह से भर आया। बोली, 'क्या सोच रहा है बेटा, इतना उदास क्यो है?" रैक्व क्षुब्ध जान पडे। बोल, "मा, लगता है यह वही रथ चालक है जो शुभा को लेकर उस दिन चला था। हाय, बिचारा मर ही गया। पर उसके मरने स किसी और पर विपत्ति पडेगी, यह तो मुझे उस समय सूझा ही नही। पर शुभा तो जानती होगी उस भी इसका कुछ ध्यान नही रहा। अच्छा मा, राजा जानश्रुति तो बडा जिज्ञासु माना जाता है, उस इस दुखिया की कोई परवा ही नही। तत्त्वज्ञान के पीछे जो व्यक्ति पागल है उस इतना ध्यान तो रखना ही चाहिए।"

माताजी ने दीर्घ नि श्वास लिया— बेटा, तू नही जानता, ससार मे कितना दुख दन्य है! पर छोड इन बातो को। यह बता कि तेरी पिताजी से क्या बात हुई?"

माँ पिताजी न मरी तपस्या की इस बडी त्रुटि समझा दी है। मैंने सत्सग नही किया। सोच रहा था सत्सग के लिए गुभा को खोजूं, पर शुभा भी जनानी ही जान पडती है। इस दुनिया की बात भी वह नही सोच सकी।

सा ता है।

पर सत्सग के लिए शुभा को लाना ही पडेगा। फिर तुम भी तो हो।"

माताजी के चेहरे पर हल्की मुस्कान आ गयी।

तो सत्सग के लिए माँ भी शुभा होगी दूसरा तुम्हारी माँ होगी। और कोई तीसरा भी सोच सकता है क्या?

मैं तो सोच नही पा रहा हूँ माँ। और किसी को मैं जानता ही नही।

लेकिन पिताजी ने बताया है कि तपस्या की कसौटी तो समाज है। इसका मतलब हुआ मा?

मान ले बेटा तू किसी जगल म अकेला तप कर रहा है तू सत्यवादी है अब इस बात की परीक्षा कैसे होगी कि तू सचमुच सत्यवादी है। जब दस मनुष्य के सम्पर्क म आयगा वहाँ तेरे स्वार्थ पर चोट पहुँचेगी उस समय अपना मतलब साधने के लिए झूठ नही बोलेगा किसी बात को छिपाने का प्रयत्न नही करेगा, तभी न मालूम हो सकेगा कि तू सत्य पर दृढ है? अकेले अकेले तो हर आदमी सत्यवादी और धर्मनिष्ठ होने का दावा कर सकता है। दस जनों के सम्पर्क म आने से ही न उसकी निष्ठा की परीक्षा होगी? समझ रहा है न बेटा?"

तो मा यह जो परम तत्त्व के बारे म तत्त्वजिज्ञासुओं म चर्चा होती है वह धर्म या सत्य नही है?

देख बेटा तू किस तत्त्व को सबसे बडा प्रबल या एकमात्र तत्त्व मान रहा है यह धर्म का निर्णायक नही है। धर्म कुछ कर्तव्यों और आचरणों से प्रकट होता है। सुना है बेटा आजकल कुछ तत्त्वज्ञानी यह भी कहने लगे है कि ईश्वर या ब्रह्म की सत्ता माने बिना भी धर्म का आचरण किया जा सकता है। जो अपने-आपकी सुख-सुविधा का ध्यान न रखकर दूसरो के दु ख को दूर करने का प्रयत्न करता है, सत्य से च्युत नही होता दूसरों का कष्ट दूर करने के लिए अपना प्राण तक त्याग सकता है वही धार्मिक है। वह परम या चरम तत्त्व के बारे मे क्या मानता है यह बडी बात नही। बडी बात है कि वह कैसा आचरण करता है औरो के साथ कैसा व्यवहार करता है उनके लिए कितना त्याग कर सकता है यही तय करेगा कि वह धर्म परायण है या नही।

'तो माँ यह परम तत्त्व की खोज बेकार है?

बेकार तो नही है बेटा कई बार यह निर्णय करना कठिन होता है कि क्या कर्तव्य है और क्या कर्तव्य नही है। उस समय यदि परम तत्त्व का स्वरूप स्पष्ट रहे तो उसी की अपेक्षा म निर्णय करना आसान होता है।

समझ म नही आ रहा है मा।"

'देख धर्म कुछ मूल्यों म बनता है और मूल्यो का निर्णय परम तत्त्व की

अपेक्षा म ही होता है।"

रैक्व चिन्ता म पड गय। उन्ह माँ की बाते पहली-जमी लगी। थोडी देर चिन्तित मुद्रा म खडे ही रह गय।

माताजी भी थोडी देर तक चुपचाप खडी रही। ऐसा जान पडा वे कुछ पुरानी स्मतिया म खो गयी ह। थाडा रुककर उन्हाने इस प्रकार कहा जस प्रत्यक वाक्य को ताल-तोलकर जाच कर रही हा 'बेटा आजकल लोग मूल तत्त्व की खोज मे पागल स हो रह है। वे इस निष्कष पर पहुँच जाम पडत है कि शरीर प्राण मन बुद्धि--सभी नष्ट हो जानेवाल तत्त्व ह। सच्चा तत्त्व, जिससे सारा जगत् उत्पन्न हुआ है, जिसके बल पर सब-कुछ जी रहा है और अन्त म सबको जिसम लीन हो जाना है वह ब्रह्म ह वही शरीर म आत्मा है। उस देखा नही जा सकता, पकडा नही जा सकता वह किसी इन्द्रिय का विषय नही है। इसी को एक शब्द म 'तज्जलान' कहा जाता है। मरी समझ म यह सब नहीं आता। आ भी नही सकता। मेरे लिए उनकी इतनी ही उपयोगिता है कि ऐसा करना चाहिए जिससे केवल नाशमान पदाथ ही जीवन का लक्ष्य नही बन जाये। पर मैं उन नाशमान कहे जानेवाले पदार्थों की उपेक्षा की बात नही साच पाती। आखिर मनुष्य के आचरण उसक सकल्प स ही स्थिर होत ह। सकल्प तो मन म ही होगा। मन की हम कैस उपेक्षा कर सकते है? पुराने ऋषिया ने कहा था कि यह मनुष्य काममय है कामनाआ मे भरा हुआ है। वह जैसी कामना करता है वसा ही उसका सकल्प होगा, जैस उसके सकल्प हागे वसा ही वह कम करेगा और जैस उसके कम हागे वैसा ही वह फल प्राप्त करेगा। यह कामना और सकल्प तो मन मे ही पैदा हागे। कम तो इन्द्रिया द्वारा ही निष्पन्न होगा। हा नाशमान पर य प्राण मन, इन्द्रिय, शरीर --य ही तो हमारे साधन है। इनकी उपेक्षा कसे की जा सकती है। पुराण-ऋषियो की यह बात मुझे बहुत पसन्द आती है कि कामना रूपी नदी पुण्य और पाप के दो किनारा के बीच प्रवाहित होती ह, अपने सकल्प या दढ निश्चय के द्वारा हम इस पुण्य के अनुकूल करना होता है। इसलिए मन की हम उपेक्षा नही कर सकते।"

'पाप और पुण्य कैस समझ म आयेगे मा!"

"हा बेटा तूने ठीक प्रश्न किया है। बादरायण व्यास ने कहा है कि जिस काम स किसी को शारीरिक या मानसिक कष्ट होता हे, वह पाप-काय है। पर जिसस किसी का दु ख दूर हो, उसका इहलोक और परलोक सुधर जाये, रोगी निरोग हो जाये, दुखिया सुखी हो जाय भूखा अन्न पाये प्यासा जल पाय कमजोर लोग आश्वासन पाये, वे सब पुण्य है, क्योंकि इनसे अन्त करण म विराजमान परम देवता प्रसन्न होते हैं।"

समझ रहा हूँ मा, इस दुखिया का दु ख दूर करना पुण्य है। यह कत्तव्य है। इसकी ओर ध्यान न दकर राजा जानश्रुति न पाप किया हे।'

"सो तो है।'

अच्छा मा इस स्त्री को मै क्या कहूँ ? '

दख वेटा अपन म छोटी स्त्रियो को बेटी कहा जाता है समान अवस्था री स्त्रियो को वहिन कहा जाता ह और वडी उमर की स्त्रिया को माँ कहा जाता है। इस तू दीदी कहा कर। मैन उस वटी कहा वह तेरी वहिन हुई, वडी वहिन क दीदी कहा जाता है। समझा ?

शुभा को क्या कहूँगा मा ?

मुझे तनिक समझ लने दे। बाद म बता दूगी कि तू उस क्या कहकर पुकारेगा।

अच्छा मा सभी स्त्रिया को पारिवारिक सम्बन्धो म ही क्यो पुकारा जाता है ?

अपन मन के लिए। पारिवारिक सम्बन्ध मनुष्य के अवचेतन को पवित्र और निर्मल बनाते है। चाहे वे वास्तविक हो या कल्पित, जिस दिन लोग इस बात को भूल जायग उस दिन समाज उच्छिन्न हो जायगा।

नही समझ सका मा।

समझेगा। शुभा शायद समझा सकगी।

नही समझा सकगी मा उसन इतना वडा पाप किया है।'

तो पहल उस समझाना पडेगा कि उसने पाप किया है और जब उसस वह मुक्त हो जायगी तो वह तुझे समझायगी कि पारिवारिक सम्बन्ध, भल ही व काल्पनिक हो कितने पवित्र होते है।

मैं शुभा को खोजने जाऊँ मा ?'

तू उसे कैसे खोजेगा ? वह राजकुमारी है उसके पास सभी थोडे ही पहुच सकते हैं ?

फिर मैं कैसे समझाऊँगा कि उसने पाप किया है ? '

सोचना पडेगा। अभी तो चल तुझे अच्छी तरह स्नान करा दू। मैंने नापित बुलवाया है वह तेरा चेहरा खिला देगा।

अच्छा माँ अगर तुम मेरी दाढी और केश की सफाई कर दो तो शुभा मुझ पहचान लगी ?

कैसे कहूँ ? शायद पहचान ले शायद न पहचाने।

तो फिर रहन दो माँ शुभा न अगर नही पहचाना तो न मैं उस इस दुखिया दीदी के बारे म कुछ बता पाऊगा न कोई सत्सग ही कर सकूगा।

माताजी के अधरो पर हल्की मुस्कान थी। वे बोली तो शुभा का पहचानना अधिक आवश्यक है। तू जैसा कहेगा वैसा ही होगा। लेकिन एक बार अच्छी तरह बालो को धो लेने म तो कोई हर्ज नही है। चल जरा तिल के पत्ते के झाग का गुण तो देख ले।

रैक्व छोटे बच्चे की तरह माँ के निर्देश पर तिल के पत्ते के झाग का गुण देखने चले।

सात

जाबाला दिन पर दिन सूखती गयी। आचार्य औदुम्बरायण की दुश्चिन्ताओं का अन्त नहीं था। राजा जानश्रुति कल्पना विहारी जीव थे। तत्त्वज्ञान के पीछे वे पागल थे। संसार का मूल तत्त्व क्या है अगर वह ब्रह्म है तो निमित्त कारण है या उपादान कारण है? वह कौन सी चीज है जिसमें समस्त चराचर जगत् उत्पन्न होता है, जीवित रहता है और फिर सबको अपने आपमें समेट लेता है? मृत्यु के बाद आत्मा नाम की कोई चीज बनी रहती है या सब कुछ खत्म हो जाता है, जागरण, स्वप्न और निद्रा से भिन्न कोई चतुर्थ अवस्था है या नहीं?-- इन्हीं बातों की उधेड़बुन में वे लगे रहते थे। जब कभी किसी तत्त्वज्ञानी से उनका साक्षात्कार हो जाता था तो घण्टों बैठकर इन बातों पर विचार करते थे और बाद में अपनी प्यारी बिटिया से उनकी चर्चा करते थे। जाबाला उनके विचारों को सदा उत्साहपूर्वक सुनती और अपनी शंकाएँ बताती। पर जब से वह अस्वस्थ रहने लगी थी उनके तत्त्वचिन्तन में भारी बाधा आ पड़ी। आचार्य औदुम्बरायण उनके पुरोहित भी थे और परिवार के संरक्षक भी। वे बार बार उनसे चिरौरी करते कि वे जाबाला का कोई उपचार सुझायें। आचार्य भी कम परेशान नहीं थे। जाबाला के लिए वे माता, पिता, गुरु, सब थे। वैद्यों और ओझाओं लोगों से उपचार पूछते जड़ी बूटियाँ ले आते, मन्त्र-जप करते और अनेक प्रकार के टोटकों का भी प्रयोग करते। कठिनाई यह थी कि जाबाला स्वयं इन बातों को अनावश्यक समझती थी। वह बराबर यही कहती कि वह बिल्कुल ठीक है। उसके लिए आचार्य को या पिताजी को परेशान होने की जरूरत नहीं है।

लेकिन परेशान वह स्वयं थी। जब तक वह जानती थी कि तरुण तापस आस-पास ही कहीं है वह उस टूटी गाड़ी की छाया में बैठा पीठ खुजलाया करता है और समाधि लगाये बैठा रहता है तब तक उसे आशा थी कि एक बार उससे मिलेगी। देखेगी कि महाभागा शुभा को देखकर उसके चेहरे पर क्या भाव आते हैं। पर उसे कोई युक्ति नहीं सूझती थी कि कैसे उससे मिले। वह आचार्य से अपनी आकांक्षा प्रकट करती तो यह बहुत कठिन नहीं होता, पर कैसे कहे? कोई अज्ञात भावना उसका कण्ठ रोध कर देती थी। हर बार वह मन मसोसकर रह जाती। सोचती, मिलना तो एकान्त में ही ठीक होगा। वह भोला मृग छौना न जाने उसे देखकर क्या कर बैठे? उसका मन कहता कि वह दुनिया की रीति नीति से अनभिज्ञ तापस शायद अपने गुरु को देखकर उसके चरणों पर सिर धर दे शायद अपनी प्रिया को देखकर लिपट ही जाये। शायद अपने सर्वज्ञ तत्त्वज्ञानी को पाकर अनगढ़ प्रश्नों की बौछार ही शुरू कर दे शायद साम-गान के समान पवित्र शुभा-स्तुति से उसे अभिभूत ही कर डाले। बिचारा बड़ा ही भोला है, उसे उचित-अनुचित का ज्ञान भी तो नहीं है। बुद्धिमान है। स्वयं परीक्षित सत्य में विश्वास रखनेवाला है,

अप्रसन्नता प्रकट करते हुए पूछा कि वे उसके लिए इतना क्या परेशान हो रहे हैं, उसे हुआ क्या है, ठीक ही तो है ! आचार्य जय शिला की भांति हँसकर उत्तर न दे सके। वे और भी गम्भीर हो गये। जाबाला को यह विचित्र लगा। वह उनकी ओर अभियोग भरी कातर दृष्टि से देखने लगी। आचार्य कुछ अधिक ही गम्भीर लगे। वे अत्यन्त क्लान्त-श्रान्त की भांति बिना कहे ही एक आसन पर बैठ गये। जाबाला कुछ समझ नहीं सकी कि आज आचार्य इतने उदास क्यों हैं ? इतने उदास तो वे कभी नहीं होते। देर तक दोनों चुप रहे। आचार्य ने ही मौन भंग किया। बोले, "बेटी तू ठीक समझ रही है मैं तेरे स्वास्थ्य के बारे में बहुत चिन्तित हूँ। पर आज की चिन्ता कुछ और के लिए है। जनपद में एक महात्मा के आने का समाचार मिला था। प्रजा की उनकी चमत्कारी शक्तियों पर बड़ी आस्था है। वे जब प्रसन्न चित्त से आशीर्वाद देते हैं तो लोगों के सभी प्रकार के कष्ट दूर हो जाते हैं, ऐसा मैंने सुना था। सोचा, तेरे लिए आशीर्वाद माँग लूँ। पर मेरा जाना बुरा हुआ। मैं भविष्य की चिन्ता से आतंकित होकर लौटा हूँ।

जाबाला का मन सनाका खा गया। कैसे अनिष्ट की चिन्ता से आचार्य व्याकुल हैं ? क्या तरुण तापस के किसी अनिष्ट की आशंका है ? वह प्रश्न-भरी आँखों से आचार्य को एकटक देखती रह गयी।

आचार्य औदुम्बरायण ने फिर थोड़ी देर चुप रहकर आकाश की ओर देखा। ऐसा लगा, जैसे ऊपर से किसी अदृश्य विपत्ति के अचानक आ गिरने की आशंका से द्युलोक को चीरकर उस पार देखने का प्रयत्न कर रहे हैं। शंकित जाबाला ने पूछा, 'क्या हुआ तात स्पष्ट बताइए न ! मैं बहुत आकुल हो रही हूँ।"

आचार्य ने उसे आश्वस्त करते हुए कहा "नहीं तुझे बहुत आकुल नहीं होना है। बता रहा हूँ।"

'हाँ तात, सब बताइए।'

'क्या बताऊँ बेटी, पहले तो उस महात्मा के प्रति अश्रद्धा हुई। मैंने सुना कि वे यज्ञ के विरोधी हैं, ब्राह्मणों के विरोधी हैं, देवताओं के विरोधी हैं, यहाँ तक कि एकान्त के तप और मनन के भी विरोधी हैं। ऐसे आदमी के पास जाकर क्या मिलेगा ? पर जब पहुँच ही गया तो एक बार मिल लेने से क्या हर्ज है, ऐसा सोचकर चला गया।"

'तो आप उनसे मिले ?"

"मिला न ! तभी तो चिन्तित हो गया हूँ।"

'क्या कहा उन्होंने ?"

'क्या कहा, वह तो बाद में बताऊँगा। पहले उन्हीं के बारे में सुन। महात्मा प्रायः निर्वस्त्र थे। वे बहुत वृद्ध तो नहीं थे केश उनके अभी काले थे, पर उनमें एक विचित्र प्रकार का तेज था। ऐसा लगता था किसी बिल के द्वार पर मणिधर सर्प ने अपनी मणि उतार कर रख दी है। शरीर उनका काला था, नाक चिपटी, कान बड़े-बड़े चौड़े और ललाट सपाट। उनके निकट जो स्त्री-पुरुष बैठे थे वे प्रायः

छोटी जाति के लोग थे, पर उनके चेहरा पर श्रद्धा की चमक थी। महात्मा सामने आग की धूनी जलाये बैठे थे, उनका सारा शरीर इसी धूनी की भस्म से पुता हुआ था। पास में एक तांबे का चिमटा था और एक मिट्टी का टोंटीदार पात्र भी, जिसमें वे जल रखते होंगे। मुझे देखते ही उन्होंने पूछा, 'ब्राह्मण हो? यज्ञ-याग का अनुष्ठान करते हो?' मैंने स्वीकारात्मक उत्तर दिया। फिर बोले, 'क्यों आये हो?' मैंने अनिच्छापूर्वक कहा कि मेरी बेटी का स्वास्थ्य ठीक नहीं है, आपके आशीर्वाद के लिए आया हूँ। वे ठठाकर हँसे— यज्ञ-याग से कुछ लाभ नहीं हुआ?' मुझे बुरा लगा। पर चुप रहा। गृहस्थ को साधु के विचारों की नहीं, उसके आशीर्वाद की आकांक्षा रहती है। सो, मैं चुप बैठा यही सोच रहा था कि अब उठ पड़ूंगा। मुझे आश्चर्य तब हुआ जब मैंने अचानक सुना कि वे कह रहे हैं—'उठना मत। मेरी बात तुम्हें अच्छी नहीं लगी, पर मैं बेटी का दुःख दूर करने का उपाय सोच रहा हूँ।' फिर उन्होंने बहुत-से प्रश्न किये। कब से कष्ट है? क्या कष्ट है? क्या क्या उपचार हुए हैं? आदि-आदि। मैंने भी वर्षावाले दिन की और उसके बाद की घटनाओं को सही सही बता दिया।"

फिर क्या हुआ?'

'वे आँखें मूंदकर सुनते रहे। सब सुनने के बाद उन्होंने मेरी ओर तीव्र दृष्टि से देखा। समझ नहीं सका कि उसमें क्रोध का भाव था या कुतूहल का। फिर एकाएक गरजकर बोले 'तुम क्या राजा जानश्रुति हो? उसी की कन्या तो उस दिन वर्षा और आंधी में फँसी थी!' मैंने विनीत भाव से कहा कि मैं राजा जानश्रुति का पुरोहित हूँ। जिस लड़की के स्वास्थ्य के बारे में आपका आशीर्वाद पाने आया हूँ उसके जनक तो राजा जानश्रुति है, पर वह मेरी भी बेटी है। आप यही समझें कि वह मेरी ही बेटी है। मैंने ठीक कहा न, बेटी?"

जाबाला ने साश्रु नयनों से आचार्य को देखा। बोली, 'आपने ठीक ही कहा, तात! बिल्कुल सही। मेरे लिए और कौन इतनी चिन्ता कर सकता है? पर फिर कहती हूँ, तात, आप व्यर्थ ही परेशान हो रहे हैं। मैं तो आप ही के आशीर्वाद से ठीक हो रही हूँ।'

आचार्य ने स्नेह से जाबाला के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा परेशान होने की क्या बात है, बेटी? महात्माओं के आशीर्वाद में तो मंगल ही होता है। अगर मैं वहाँ न गया होता तो इसका एक पक्ष प्रकट ही नहीं हो पाता।"

'सो क्या, तात?"

बताता हूँ। महात्मा ने पहले जो थोड़ा रोष प्रकट किया था, वह ठण्डा हुआ। बोले, 'आप ठीक कहते हैं परन्तु तब तक यह झूठ ही रहेगा जब तक आप केवल जानश्रुति की बेटी को ही बेटी समझें और प्रजा की बहू-बेटियों को भी उसी प्रकार बेटी न समझें। आप राजा जानश्रुति के पुरोहित हैं। प्रजा शब्द का अर्थ ही सन्तान है। राजा के लिए प्रजा की सारी बेटियाँ उसकी अपनी बेटी हैं। सबका समान ध्यान रखना चाहिए। मुझे दुःख है कि राजा जानश्रुति और

उनके पुरोहित इस ओर से बिल्कुल अनवहित है।' मैने विनीत-भाव से पूछा कि क्या व एसा कुछ जानते है जिससे राजा या उनक पुरोहित का प्रमाद प्रकट होता हो ? महात्मा न कहा, अभी बताता हूँ। पहले तुम्हारी बेटी का उपचार बता दू।' "

'विचित्र लग रहा है, तात ! क्या उपचार उ होने बताया ?"

"उन्होंने बताया कि तुम्हारी बेटी का कोई मानसिक कष्ट है। उसके मन की बात समझने का प्रयास करो।' फिर थोडा सोचकर बोले, 'उसके मनोविनोद के लिए और मनोदेवत की आराधना के लिए कोहलीया क नत्य-नाट्य की व्यवस्था करो। कोहलीया ने मन म देवता को पहचाना है वे नाना कौशल से मनोजन्मा विकारो का शमन करते है। पहले तुम्हार ऋषि लोग इन बातो को महत्त्व नही दत थ। अब तो वे भी नत्य को देवताओ का चाक्षुष यज्ञ और नाट्य को पाचवा वेद मानने लगे है। लेकिन एक बात का ध्यान रखना। नृत्य का और नाट्य का उद्देश्य चैतन्य का जाग्रत करना है। आजकल बहुत से वृत्ति-जीवी उनस जड मनो विकारो को जगाने का काम लेने लग है। कोहलीया म यह दोष नही है।''

'यह भी विचित्र है ! फिर क्या कहा ?"

"फिर बोले, 'एक आध्यात्मिक अपराध भी हुआ है। उसका परिणाम बुरा होगा।' "

"आध्यात्मिक अपराध ! आध्यात्मिक अपराध तो पाप होता है न, तात ?"

"पाप ही समझो। महात्मा ने आध्यात्मिक अपराध' ही कहा था।"

"क्या अपराध बताया, तात ?'

'वह गाडीवान मर गया। उसकी पत्नी और नन्हा सा बच्चा अनाथ हो गय। भूख-प्यास से व्याकुल, शोक से आर्त्त होकर वह न जाने कहा भटक रही है। महात्मा न बताया कि जिस राजा के राज्य मे बच्चे और स्त्रियाँ भूख-प्यास स व्याकुल होती है उसका सत्यानाश हो जाता है—और राजा नरक का अधिकारी होता है। राजा जानश्रुति के राज्य मे एक नही अनक स्त्री-पुरुष, वृद्ध-बालक, भूख स, प्यास स, रोग से व्याकुल है। जाकर जनपद मे प्रत्यक्ष देख आओ !' इतना कहकर महात्मा एकदम चुप हो गय।"

'भयकर बात है ! आपने क्या जनपद के लोगो को देखा, तात ?'

"देखा। महात्मा ठीक कह रहे ह। राजा जानश्रुति ब्रह्मतत्त्व को जानन के लिए व्याकुल है उधर प्रजा म त्राहि त्राहि मची हुई है। मैं तो कत्तव्य-मूढ हो गया हूँ, बेटी ! पाप तो हो ही रहा है !"

'नही तात, अपनी इस बेटी क रहत आपको कत्तव्यमूढ नही होना पडेगा। मैं जनपद म घूमूगी, आपको साथ लेकर। जब तक प्रजा भूखी है, जाबाला को शान्ति नही मिलगी। इसम बहुत सोचना नही है। पर उस स्त्री को और उसक बच्चे को कैसे खोजा जाय ? सार पाप के मूल म तो मैं ही हूँ। ह भगवान ! यह सीधी सी बात मुझे पहल क्यो नही सूझी ?'

"नही, अभी तुझे जनपद म घूमन को मैं नही कहूँगा। राजा स वात करके मैं अन्न वितरण का काय शुरू कर दता हू। लकिन केवल अन्न वितरण से तो काम नही चलगा। फिर सारी प्रजा को भिक्षा पर आश्रित भी तो नहा बनाया जा सकता। उन्ह काम देना होगा। यह राजा की सहायता के बिना कैसे होगा?"

'तो मैं अभी निष्क्रिय बठी रहूँ?'

"मै लौटकर फिर महात्मा के पास गया था। पर वे उस स्त्री को और उसक बच्चे को खोजन निकल पडे है। जात समय कह गय है कि दुखिया का दु ख दूर करना ही सच्ची आध्यात्मिक साधना है यही तप है, यही मोक्ष है।"

"यह बात जँच रही है। मेरा मनोविनोद अब कोहलीया के नत्य स नहा होगा इसी साधना से होगा। तातपाद बिल्कुल चिन्ता न करे। यदि कही कोई दुबलता मुझमे है तो इसी से दूर होगी। उठिए तात, अब अधिक विलम्ब करन स पाप का बोझ और बढ जायगा।"

"आवेश मे जो काय किया जाता है क्षण स्थायी होता है।"

'मैं आवेश मे नही कह रही हूँ तात, कत्तव्य बुद्धि से कह रही हूँ। आप स्वय देख आये है कि लोग कितन दु खी है, फिर मेरा घर म बठे रहना क्या उचित होगा? बहुत दिना स सुनती आ रही हूँ कि आत्मा अजर है अमर है उसका अधिष्ठान यह शरीर विनाशमान है। यह क्या बात की बात है? मेरा अन्तरतर आज चिल्लाकर कह रहा है कि शरीर मन, प्राण, सभी विनश्वर साधन तभी साथक होग जब उन्ह दुखिया का दु ख दूर करन मे लगा दिया जायगा। कुछ अन्यथा कह रही हूँ, तात?"

"नही बेटी तू बिल्कुल ठीक कह रही हे। पर विधाता न मनुष्य का शरीर, मन प्राण के अतिरिक्त बुद्धि भी दी है। देवकी पुत्र कृष्ण ने कहा है कि सवा भी समझ-बूझकर करनी चाहिए—बुद्धावनवेष्टव्या! थोडा समझना तो पडेगा ही। तात्कालिक उपाय तो कल म शुरू कर दिय जायेंग। तू तब तक स्वस्थ हो जा! स्वस्थ शरीर म ही स्वस्थ चित्त का निवास होता है। स्वस्थ चित्त म ही सात्त्विक सकल्प पुष्ट हाता है।

मुझे कुछ भी तो नही हुआ है, तात! आपन मुझे वीर-बाला बनन की शिक्षा दी है, वह कब काम आयगी!'

"समय नही हुआ है। तुझे कुछ मानसिक चिन्ता है। इसीलिए तरा खाना, पाना, सोना सब विघ्नित है। तू सूखती जा रही है। कितनी क्षीण हो गयी है! मैं जानता हूँ, तू वीर-बाला है। जानती है प्रातृद न अपन पिता म वीर शब्द की क्या व्याख्या की थी? उन्हाने बताया था कि 'वी' शब्द म 'वी' अक्षर का अथ है विष्ट अर्थात अन्न, और 'र' अक्षर का अथ है रमण—प्र ... ही सब प्राणी प्रविष्ट हैं और प्राण म ही र ... हैं। जा इन ... ता है इनका सामजस्य कर सकता ... रहते है, ... जाता है। तू इस रहस्य को ... अन्न का

पा रही है। यह तुझे सबका आश्रय बनाने में बाधक हो रहा है। इस बेटा अन्न और प्राण के सामंजस्य को तो मन ही भिन्न भिन्न कर सकता है। महात्मा ने भी बताया है कि तुझे मानसिक कष्ट है। बता न बेटा तुझे क्या मानसिक कष्ट है?"

जाबाला ने कुछ उत्तर नहीं दिया। उसके कपोल मण्डल पर लालिमा की तरंग खेल गयी। आँखें अनायास नीची हो गयी। क्या बताव? कुछ बताने योग्य भी तो हो। वृद्ध आचार्य की अनुभवी आखो से किशोरी के पाण्डुर कपोलो पर अचानक खेल जानेवाली यह लालिमा छिप नही सकी। वे असमंजस में पड गये।

आठ

रक्व ने अपनी नयी दीदी से जनपद के बारे में अनेकविध जानकारी प्राप्त की। पिछले दो वर्षो से वर्षा न होने से लोग भूख-प्यास, रोग शोक से त्राहि-त्राहि कर रहे हैं। राजा की ओर से कोई खोज-खबर नही ली गयी है। कितने ही लोग—स्त्री, पुरुष, बालक, वृद्ध—भूख से तडप-तडपकर मर गये है। उस दिन जो भारी वर्षा हुई, उससे आगे आनेवाले दिनो में कदाचित अच्छी खेती हो सकेगी और लोगो को कुछ-न-कुछ खाने को अन्न और पीने को पानी मिलेगा पर इस समय तो लोग व्याकुल है। जब आशा का कुछ वातावरण बना, उसी समय दीदी पर कुछ ऐसा आ पडा कि वह और भी सकट ग्रस्त हो गयी और गाव छोडने को बाध्य हुई। इस समय कौन किसकी सहायता कर सकता है? रक्व को गहरी व्यथा हुई। यह सब क्या है? क्या इस सकट से उबरने का कोई मार्ग है? कौन इस विषम परिस्थिति में मार्ग दर्शन कर सकता है? उसके मन मे रह रहकर शुभा की दिव्य मूर्त्ति आ जाती। वही ठीक उपाय बता सकती है। वह परम ज्ञानी है, धर्म का रहस्य समझती है, उचित अनुचित का विवेक रखती है। शुभा ही बता सकती है कि इस समय क्या करना चाहिए। उसकी वाणी में अमृत है। आखो में शामक तेज है, मुख पर दैवी कान्ति है। कितनी मनोज्ञ है शुभा, कितनी बुद्धिमती! इस समय वह मिल जाती तो कितना अच्छा होता! मगर यह पाप भी तो उसी से हुआ है। रक्व का मन थोडी देर के लिए क्षोभ मे व्याकुल हुआ। फिर समाधान भी मिल गया। जैसे मुझे इस घटना के पाप पक्ष का भान नही हुआ उसी प्रकार शुभा को भी भान न होने की सम्भावना भी तो है। बताना चाहिए। अवश्य शुभा को बताना ही होगा। वे व्याकुल भाव से माताजी के पास गये।

माताजी से अपनी व्याकुलता बताकर बोले, "मा, मैं जानना चाहता हूँ। शुभा स मिलकर यह सब बताऊँगा और पूछूगा कि क्या करना चाहिए। उस पाप स बचाना भी तो है। शायद मेरी तरह शुभा को भी इस घटना के इस दारुण पक्ष की जानकारी न हो। क्या कहती हो मा, इन दुखियो का दु ख दूर करन म मैं क्या कर सकता हूँ ?"

'कुछ करना तो अवश्य चाहिए, वटा ! पर तू तो दुनिया का कुछ भी नही जानता। शुभा राजा की वेटी है। वह अवश्य कुछ उपाय कर सकती है, पर तू उससे मिलेगा कहा ?"

'क्यो, गाडी के पास। दीदी कह रही है, वह गाडी वही पडी है।"

माताजी को हँसी आ गयी। बोली, 'तू समझता है कि शुभा गाडी के पास ही चक्कर काटती होगी ! नही रे, राजकुमारिया ऐसे जहाँ-तहाँ नही मिलती। उस दिन तो कुछ सयाग ऐसा था कि वहाँ मिल गयी। प्रतिदिन एसा सयोग थोडे ही आता है। तू तो उस गाडी के नीचे कई दिन रहा, कितनी बार तुझे वहाँ शुभा के दशन हुए ?"

रैक्व म्लान हो गय। माताजी की वात ठीक लगती है। पर गाडी को कस छोडा जा सकता है ? उनके हताश चेहरे को देखकर माताजी न कहा, "मान ले, शुभा नही मिलती, तो इन दुखिया के बारे मे कुछ नही करेगा ?"

'करूँगा मा, अवश्य करूँगा। तुम जैसा कहोगी वसा करूँगा। बताओ न, क्या करूँ ! प्राणायाम से कुछ सधनेवाला है ? सधे तो प्रयत्न करूँ। पिताजी तो कहते हैं, प्राण भी विनश्वर हैं।"

'मैं भी तेर साथ चलूगी। राजा जानश्रुति स भी मिलूगी। परन्तु तू अपनी गुरुभक्ति जरा मन मे ही रख। सबसे अपन गुरु, महाभागा शुभा का गुण-गान न करत फिरना। मैं जसा कहूँगी, वैसा ही करने का वचन दे। तरे साथ चलूगी। बोल, मैं जसा कहूँगी वैसा ही करगा न ?"

'हाँ मा, वसा ही करूँगा।'

'प्राणायाम भी अपनी जगह पर ठीक है। पर तू इस घटना को खण्डदृष्टि स न दख। यह विशाल मानवता का प्रश्न है। तेरे पिताजी इस वश्वानर की उपासना कहते है।"

'वश्वानर क्या है माताजी ?'

'वश्वानर ? सम्पूण विश्व का रूप ही नर रूप म आराध्य है। खण्डदृष्टि स नही, पूण दृष्टि स देखना ही वश्वानर की उपासना है। पर चल, उन्ही स पूछ ल। उनकी आज्ञा तो लनी ही पडेगी। उनकी आज्ञा के बिना मैं तरे साथ कैसे चल सकता हूँ।"

माताजी रैक्व को साथ लकर ऋषि क पास पहुँची। व उस समय प्रसन्न मुद्रा म थ। रक्व को दखकर अतीव प्रसन्न भाव स बोल, वसा लग रहा है, सौम्य ? माताजी के आश्रय म प्रसन्न ता है ? चिन्तन-मनन के काय म काई व्याघात तो

नही आया ?"

रैक्व न माताजी की ओर देखा। माताजी समझ गयी कि अभी स वचनपालन होन लगा है। मन्दस्मित के साथ उन्होन उत्तर दिया—"और क्या चाहिए इस वयस्क बच्चे को माँ चाहिए थी, और आपको पुत्र चाहिए था। सयोग से दोनो का मनोरथ पूरा हुआ। भगवान का अनुग्रह है।"

औपस्ति ऋषि प्रीत हुए। फिर माताजी न वे सब बातें बतायी जिनके कारण रैक्व ने जानपद जना की सेवा का सकल्प किया है और यह भी बताया कि आपकी अनुमति हो तो मैं भी इसके साथ जाना चाहती हूँ। फिर यह अनुरोध भी किया कि जाने क पूव वे दोना वश्वानर-साधना का रहस्य जानन की आकाक्षा से उनके पास आय हैं।

ऋषि और भी प्रीत जान पडे। बोल, "साधु वत्स, तुम्हारा सकल्प महान है। तुम अपनी माताजी क साथ अवश्य जाओ। सौम्य राग द्वेष और तष्णा लोभ म परे पहुँचे हुए द्वपायन व्यास न कहा है कि लोक ताप से तप्त होना सबसे बडा तप है, क्योकि वह अखिलात्मा पुरुष की परमाराधना ह। यही वश्वानर उपासना भी है। मैं स्वय तुम्ह वैश्वानर साधना के बारे म बतान की सोच रहा था। अब तुम्हारे मन म यदि जिज्ञासा उठी है तो उत्तम अवसर भी मिल गया। पुत्र, जिज्ञासु को ही रहस्य समझाना चाहिए। वही चरितार्थ होता है। तुम सुनन के लिए उत्सुक हो न वत्स ?"

रैक्व ने विनीत भाव से कहा, 'अवश्य सुनना चाहता हूँ।"

"तो सावधान होकर सुनो! पहले मैं वह प्राचीन कथा सुनाता हूँ जो गुरुमुख स मैने सुनी थी। फिर मैं तुम्ह अपने चिन्तन मनन से प्राप्त विचारो को भी सुनाऊँगा। सुनो

"*उपमन्यु का वशज प्राचीनशाल, पुलुष का वशज सत्ययज्ञ भल्लव का वशज* इन्द्रद्युम्न, शकराक्ष्य का वशज जन, अश्वतराश्व का वशज बुडिल—य पाचो बडी-बडी शालाओ के स्वामी थे, वेदो के महान् पण्डित भी थ। एक बार ये इकट्ठे हुए और विचार करने लगे कि 'आत्मा' क्या है, 'ब्रह्म क्या है ?

वे इस निश्चय पर पहुँचे कि अरुण का वशज उद्दालक आजकल 'वश्वानर आत्मा' की खोज म लगा हुआ है चलो, उसके पास चलें। वे उसके पास पहुँचे।

"उन्हें आया देखकर उद्दालक न सोचा, ये महाशाल महाश्रोत्रिय मुझसे ब्रह्म-ज्ञान विषयक प्रश्न करेंगे मैं इनकी सब बातो का उत्तर न दे सकूगा, किसी अन्य गुरु के पास उन्हे ब्रह्म ज्ञान के लिए भेज दू।

"फिर उसने कहा हे महानुभाव! केकय देश का राजा अश्वपति आजकल 'वैश्वानर आत्मा' की खोज मे लगा हुआ है। चलो हम सब मिलकर उसी के पास चलें।' फिर वे सब उसके पास गये।

"जब वे उसके पास पहुँचे, तो राजा ने उनका अलग अलग सम्मान करवाया और अगले दिन प्रात काल उठकर उनके पास पहुँचा और बोला महानुभावो

आपके शुभागमन से मैं धन्य हुआ। आप कैसे पधारे ? मेरे जनपद में कोई चोर नहीं है, कोई कृपण नहीं है, कोई मद्यप नहीं है, कोई अनाहिताग्नि नहीं है, कोई अविद्वान नहीं है, कोई व्यभिचारी नहीं है—फिर व्यभिचारिणी तो हो ही कैसे सकती है ? हे महानुभावो ! फिर भी हो सकता है कि मेरे अनजाने में कहीं कुछ दोष रह गया हो। आप कृपापूर्वक मुझे त्रुटियाँ तो बतावें। मैं हाल में ही एक यज्ञ करनेवाला हूँ जितना जितना एक एक ऋत्विक को धन दूँगा, उतना-उतना आपको भी दूँगा। आप मेरे यहाँ ही निवास करें।'

"उन्होंने कहा, राजन, हम त्रुटि बताने नहीं आये हैं। मनुष्य जिस प्रयोजन से घूम रहा हो जिस बात की खोज में हो, उसे वही कहना चाहिए। सुना है, आप आजकल 'वैश्वानर-आत्मा' पर विशेष मनन कर रहे हैं, आप हमें इसी का उपदेश दें।'

"राजा ने कहा 'प्रातःकाल मैं इस बात का उत्तर दूँगा।' अगले दिन प्रातःकाल हाथ में समिधा लेकर वे राजा के पास पहुँचे। वैसे तो, शिष्य का उपनयन करके उसे दीक्षा भी दी जाती है परन्तु राजा इन महात्माओं के विनय भाव को देखकर इतना प्रसन्न हुआ कि उनका बिना उपनयन किये ही उन्हें उपदेश देना स्वीकार किया।

"राजा ने पहले उपमन्यु के वंशज प्राचीनशाल से पूछा 'आप किसे आत्मा' समझकर उसकी उपासना करते हैं ?' उसने उत्तर दिया हे राजन ! मैं तो द्यु-लोक' को आत्मा मानकर उसकी उपासना करता हूँ।' राजा ने कहा, ठीक है, वैश्वानर आत्मा' का यह रूप तो है परन्तु पूर्ण रूप यह नहीं है। उसके विशाल रूपों में जो तेजोमय रूप है, आप उसकी उपासना करते हैं। आप वैश्वानर के सुतेजा रूप की आराधना करते हैं, इसलिए आपके घर में सुत' है, प्रसुत' है, आसुत' है, अर्थात घर में सोम-रस की धाराएँ सुत हो रही हैं, बह रही हैं। तभी परमेश्वर के आशीर्वाद से आपको भोजन मिलता है, प्रिय वस्तु दृष्टिगोचर होती है। जो इस प्रकार 'वैश्वानर आत्मा के तेजोमय रूप की उपासना करता है, उसे उनके आशीर्वाद से भर-पेट भोजन मिलता है, प्रिय वस्तुएँ देखने को मिलती हैं, उसके कुल में ब्रह्मतेज दीख पड़ता है। यह तेजोमय द्युलोक वैश्वानर आत्मा का, जिसे आप खोज रहे हैं 'मूर्धा' है, एक अंश है। आपका मूर्धा गिर जाता अगर ब्रह्म के पूर्ण रूप को जानने के लिए मेरे पास न आते।

फिर पुलुष के वंशज सत्ययज्ञ को सम्बोधित करके राजा ने पूछा, हे प्राचीनयोग्य ! आप किसे 'आत्मा' समझकर उसकी उपासना करते हैं ?' उसने उत्तर दिया, हे राजन् ! मैं तो आदित्य को—इस सूर्य को—आत्मा मानकर उसकी उपासना करता हूँ।' राजा ने कहा, ठीक है, वैश्वानर-आत्मा का यह रूप तो है ही परन्तु पूर्ण रूप यह नहीं है। उसके अनेक रूपों में जो विश्व रूप है, उसकी आप उपासना करते हैं। इसलिए आपके कुल में विश्व रूप दिखायी देते हैं। वैश्वानर के ही आशीर्वाद से आपके यहाँ रथ चलते हैं, दासियाँ हैं हार हैं भर पेट भोजन है,

सुहावन दृश्य है— यही सब तो विश्व रूप है। जो इस प्रकार 'वैश्वानर-आत्मा' के विश्व रूप की उपासना करता है उसे उसके आशीवाद से भर पेट भोजन मिलता है, प्रिय वस्तुएँ देखने को मिलती हैं उसके कुल में ब्रह्म-तेज दीख पड़ता है। यह विश्व रूप आदित्य 'वैश्वानर आत्मा' का जिसे आप खोज रहे हैं चक्षु है एक अंश है। आप अंधे हो जाते अगर ब्रह्म के पूर्ण रूप को जानने के लिए मेरे पास न आते।'

फिर भल्लव के वंशज इन्द्रद्युम्न को सम्बोधित करके राजा ने पूछा 'वैयाघ्रपद्य! आप किसे 'आत्मा' समझकर उसकी उपासना करते हैं?' उसने उत्तर दिया, 'राजन्! मैं तो वायु को आत्मा मानकर उसकी उपासना करता हूँ।' राजा ने कहा, 'ठीक है, वैश्वानर-आत्मा का यह रूप तो है ही परन्तु पूर्णरूप यह नहीं है। इसके अनेक रूपों में जो पृथक् वर्त्मा —भिन्न भिन्न भागों में बहने-वाला उसका रूप—है, उसकी उपासना करते हैं। वैश्वानर के अनुग्रह से आपके पास नाना भेंटें आती हैं, और नाना रथश्रेणियाँ पीछे-पीछे चलती हैं। उन्हीं के अनुग्रह से आप अन्न प्राप्त करते हैं, प्रिय जनों को देखते हैं। जो इस प्रकार 'वैश्वानर-आत्मा' के नाना मार्गों में जानेवाले रूपों की उपासना करता है, उसे उनके आशीर्वाद से भर पेट भोजन मिलता है, प्रिय वस्तुएँ देखने को मिलती हैं, उसके कुल में ब्रह्म-तेज दीख पड़ता है। यह पृथक पृथक भागों में बहनेवाला वायु वैश्वानर-आत्मा' का प्राण' है। आपका प्राण निकल जाता, अगर आप ब्रह्म के पूर्ण रूप को जानने के लिए मेरे पास न आते।'

'फिर शर्कराक्ष्य के वंशज जन को सम्बोधित करके राजा ने पूछा, 'आप किसे 'आत्मा' समझ उसकी उपासना करते हैं?' उसने उत्तर दिया, हे राजन! मैं तो 'आकाश' को आत्मा मानकर उसकी उपासना करता हूँ।' राजा ने कहा, वैश्वानर आत्मा' का यह रूप तो है ही, परन्तु पूर्ण रूप यह नहीं है। इसके अनेक रूपों में जो बहुल'—अनन्त—रूप है, उसकी आप उपासना करते हैं। इसी कारण आपके पास बहुल प्रजा तथा धन है। उन्हीं के अनुग्रह से आप अन्न प्राप्त करते हैं, प्रिय जनों को देखते हैं। जो इस प्रकार वैश्वानर आत्मा' के बहुल रूप की उपासना करता है, उसे उनके प्रसाद से भर पेट भोजन मिलता है, प्रिय वस्तुएँ देखने को मिलती हैं, उसके कुल में ब्रह्म तेज दीख पड़ता है। यह अनन्त आकाश वैश्वानर-आत्मा का मध्य भाग है धड़ है। आपका धड़ नष्ट हो जाता अगर आप ब्रह्म के पूर्ण रूप को जानने के लिए मेरे पास न आते।

'फिर अश्वतराश्व के वंशज बुडिल को सम्बोधित करके राजा ने पूछा 'वैयाघ्रपद्य! आप किसे आत्मा' समझकर उसकी उपासना करते हैं?' उसने उत्तर दिया, हे राजन, मैं तो जल' को आत्मा मानकर उसकी उपासना करता हूँ। राजा ने कहा, ठीक है 'वैश्वानर आत्मा' का यह रूप तो है ही, परन्तु पूर्ण रूप यह नहीं है। इसके अनेक रूपों में जो रयि' —सम्पत्ति, ऐश्वर्य —रूप है, उसकी आप उपासना करते हैं। इसी कारण आप रयिमान तथा पुष्टिवान है। भगवान वैश्वानर के अनुग्रह से मनुष्य अन्न खाता है, प्रिय देखता है। जो इस प्रकार

'वैश्वानर-आत्मा' के रयि-रूप की उपासना करता है, उस प्रभु के प्रसाद स अन्न मिलता है, वह प्रिय दशन होता है, उसके कुल म ब्रह्म वचम्व दीख पडता है। यह रयि रूप जल 'वैश्वानर-आत्मा' का बस्ति प्रदेश—मूत्राशय—है। आपका बस्ति प्रदेश नष्ट हो जाता, अगर आप ब्रह्म के पूण-रूप को जानन के लिए मेरे पास न आते।'

"फिर अरुण के वशज उद्दालक को सम्बोधित करके राजा ने पूछा, हे गौतम! आप किसे आत्मा' समझकर उसकी उपासना करत है?' उसने उत्तर दिया, 'राजन! मैं तो पृथिवी को आत्मा मानकर उसकी उपासना करता हूँ।' राजा ने कहा, ठीक है। 'वैश्वानर आत्मा का यह रूप तो है ही, परन्तु पूण रूप यह नही है। इसके अनेक रूपा म जो 'प्रतिष्ठा'—सबको सम्भालनेवाला—रूप है, उसकी आप उपासना करते है। इसी कारण आप प्रजा और पशुआ से प्रतिष्ठित हो रहे है। उन्ही के अनुग्रह से मनुष्य अन्न खाता है प्रिय देखता है। जो इस प्रकार वैश्वानर-आत्मा' के प्रतिष्ठा अर्थात् स्थिरता के रूप की उपासना करता है, उसे प्रभु प्रसाद से अन्न मिलता है वह प्रिय दशन होता है, उसके कुल म ब्रह्म वचस्व दीख पडता है। यह पृथिवी की प्रतिष्ठा वैश्वानर-आत्मा' के पाव है। आपके पाव सूख जाते, अगर आप ब्रह्म को जानने के लिए मेरे पास न आते।

'इतना कह चुकने के बाद अश्वपति कक्य ने उन सब उपासका को सम्बोधित करके कहा 'आप लोग वैश्वानर-आत्मा' को भिन्न भिन्न तौर स जानते रहे, उसके पथक्-पथक रूप की उपासना करत रहे, और अन्न खाकर जैसी तप्ति होती है वैसी तप्ति का जीवन व्यतीत करते रहे। आप लोग प्रादश मात्र 'वश्वानर आत्मा' की एक-एक अश म उपासना करते रह है। जो यह समझकर उपासना करता है कि वह एक प्रदेश म ही नही है, अपितु सवत्र विद्यमान है, वह सब लोको मे, सब भूता मे, सब आत्माओ मे विद्यमान है, वैसी तृप्ति का अनुभव करता है जैसी बुभुक्षित व्यक्ति अन्न खाकर अनुभव करता है।

'उस सवत्र विद्यमान 'वैश्वानर-आत्मा' का विराट रूप देखो। तेजोमय द्यु लोक उसका मूर्धा है, विश्वरूप-आदित्य उसका चक्षु है पथग्वत्मा वायु उसका प्राण है, अनन्त आकाश उसका धड है ऐश्वय रूप जल उसका बस्ति प्रदश है पथिवी उसके पाँव हैं, यज्ञ की वेदी उसकी छाती है, यज्ञ की कुशा उसके रोम है, गाह पत्याग्नि उसका हृदय है अन्वाहायपचनाग्नि उसका मन है। आहवनीयाग्नि उसका मुख है।' "

कथा समाप्त करके ऋषि ने रक्व की ओर देखा। बोल "इस कथा का अथ जो मेरी समझ म आया है वह यह है सौम्य, कि समूचा विश्व एक पुरुषोत्तम का रूप है। यह जड धरित्री सप्राण वनस्पति, जीवन्त जन्तु और बुद्धिमान् मनुष्य उस एक की ही विभिन्न अभिव्यक्ति हैं—तुम भी प्राण भी आकाश भी सूय भी, चन्द्र भी। जो एसा समझकर सेवा म प्रवत्त होता है उसम 'अहकार' नही होता। अहकार सेवा की महिमा को ही कम नही करता वह सेवा को सेवा ही नहा रहने

देता । अच्छा सौम्य, तुमने वायु के स्तर पर निखिलात्मा वैश्वानर को पकड़न का प्रयत्न किया था न ? तुमने बताया था न, कि वायु ही पिण्ड म प्राण है ? '

"हा भगवान, ऐसा ही सोचा था ।"

"कोई दोष नही है । सभी उस महासत्य के ही विभिन्न पक्ष है, किसी एक को कसकर पकडने से भी सत्य के द्वार तक पहुँचा जा सकता हे । मुझे लगता है कि हर आदमी के लिए सत्य का रास्ता अलग अलग होता है । आवश्यक नही कि सब एक ही माग मे चलकर परम तत्त्व तक पहुँचे । सच्चाई मे अगर अपने स्वभाव के अनुरूप चलो तो किसी पक्ष को पकडकर सत्य तक पहुँच सकते हो । वायु का चुनना तो केवल तुम्हारे विशिष्ट स्व-भाव का सूचक मात्र हे । समझ रहे हो वत्स ! "

"समझ रहा हूँ, भगवन् ! आपने मेरे स्व भाव को कैसा पहचाना है यह जानना चाहता हूँ ।"

"हाँ वत्स, वह भी पहचानने का प्रयत्न कर रहा हूँ । पर मेरा तो अनुमान मात्र ही होगा । तुम्ह स्वय अपने-आपको पहचानना होगा । स्व भाव को तो स्वय ही ढूढना पडता हे ।"

"आपका क्या अनुमान है, भगवन ?"

"मेरा अनुमान है कि तुम्हारा झुकाव प्राण तत्त्व की ओर है, और तुम ब्रह्म के प्रिय रूप को अपनाने मे समथ हो । महाज्ञानी याज्ञवल्क्य ने प्राण की उपासना करने-वाले को 'प्रिय ब्रह्म' का अधिकारी बताया था । '

'समझ नही पाया, भगवन !

"पुरानी बात है, सौम्य ! विदेहराज बडे जिज्ञासु थे, उन्ह भिन्न भिन्न आचार्यों ने ब्रह्म को भिन्न भिन्न रूपा म बताया था । किसी ने वाणी को किसी ने प्राण को, किसी न मन को, किसी न कान को किसी न हृदय को ब्रह्म रूप म पहचानने को कहा था । याज्ञवल्क्य न इनका अथ, इनकी सीमाएँ और इनका लक्ष्य बताया था । वे भिन्न भिन्न सुनायी देने पर भी वस्तुत ब्रह्म के किसी एक पक्ष की ओर इगित करते है ।"

' थोडा और स्पष्ट करे, भगवन ! "

'सबकी व्याख्या तो कभी और सुनना । 'प्रिय ब्रह्म' वाली बात तुम्हारे काम की है । उसे ही सुना देता हूँ । याज्ञवल्क्य ने राजा जनक से प्रत्येक के बारे म पूछा —प्राण के बारे मे भी । उन्होंने बताया

' राजन् ! किसी अन्य गुरु ने आपको कुछ सिखाया हो तो वह कहिए ।' राजा न कहा उदक शौल्वायन न मुझे यह उपदेश दिया है कि 'प्राण ही ब्रह्म' है ।' याज्ञवल्क्य न कहा जैसे कोई अच्छे माता पिता और गुरु से शिक्षा पाया हुआ उपदेश दे, वैसे ही शौल्वायन ने आपको प्राण व ब्रह्म होने का उपदेश दिया है । ठीक भी है जो प्राणवान नही है उसका ससार म क्या बन सकता है ? परन्तु क्या प्राण ब्रह्म के 'आयतन तथा प्रतिष्ठा' के विषय म उसने आपको कुछ बताया ?' राजा ने कहा, इनके विषय म तो कुछ नही बताया । याज्ञवल्क्य ने कहा तब तो

उसने एक पाद ब्रह्म का ही उपदेश दिया— ब्रह्म के चतुर्थांश का ही वर्णन किया— इस वर्णन के अतिरिक्त उसके 'आयतन', उसकी 'प्रतिष्ठा' और उसकी 'उपासना' का वर्णन तो रह ही गया।' राजा ने कहा, 'हे याज्ञवल्क्य ! फिर आप ही सर्वांश ब्रह्म का उपदेश दीजिए।' याज्ञवल्क्य ने कहा, 'पिण्ड में 'प्राण' मानो ब्रह्म का 'आयतन' है उसका शरीर है उसका ठिकाना है, ब्रह्माण्ड में 'आकाश' मानो उसकी 'प्रतिष्ठा' है इस विशाल आकाश में मानो वह प्रतिष्ठित हो रहा है, उसमें फैल रहा है उसमें स्थान किये बैठा है। पिण्ड के 'प्राण' में भी वही सिमटा बैठा है ब्रह्माण्ड के 'आकाश में भी वही फैला बैठा है। वह ब्रह्म 'प्रिय रूप' है— इसी रूप में उपासना करनी चाहिए। 'प्रिय रूप ब्रह्म' जो 'आकाश' की तरह सर्वत्र प्रतिष्ठित है 'प्राण में जाकर बैठा हुआ है।' राजा ने कहा, 'हे याज्ञवल्क्य ! 'प्रियता' प्राण से ही तो प्रकट होती है—तभी तो कहते हैं 'प्राण प्रिय' !— इसलिए प्राण ही प्रियता है। प्राण के प्रेम के कारण ही तो याज्ञिक, जो व्यक्ति यज्ञ के योग्य नहीं, उसे भी यज्ञ करा देते हैं, जो दान देने योग्य नहीं उससे भी दान ले लेते हैं। प्राण के प्रेम के कारण ही जहाँ जाते हैं वहीं यह भय भी बना ही रहता है कि कहीं कोई मार न डाले।' याज्ञवल्क्य ने कहा, 'हे सम्राट ! प्राण ही परम ब्रह्म है। जो इस रहस्य को जानता हुआ प्राण द्वारा 'प्रिय ब्रह्म' की उपासना करता है उसका साथ प्राण नहीं छोड़ता, सब प्राण उसकी रक्षा करते हैं, वह स्वयं देव होकर देवों में जा विराजता है।' यह सुनकर विदेह-राज जनक ने कहा, 'मैं आपके इस उपदेश के लिए एक सहस्र गायें और हाथी के समान बल भेंट करता हूँ।' याज्ञवल्क्य ने कहा 'नहीं, मेरे पिता का यह आदेश है कि जब तक शिष्य को पूरा उपदेश न दे लेना तब तक उससे कोई भेंट न लेना।

इससे समझ सकते हो, सौम्य, कि तुम्हारा झुकाव प्रिय ब्रह्म की ओर ही हो सकता है। प्राण के सूत्र को पकड़कर तुम परम सत्य का 'प्रिय रूप' में पा सकते हो और प्रिय रूप का किंचित साक्षात्कार भी तुम्हें ब्रह्म तक, महासत्य तक पहुँचा सकता है।

"अर्थात ?"

'अर्थात तुम्हारा स्वभाव प्रेम है। उसी के माध्यम से तुम सत्य का साक्षात्कार कर सकते हो।

रक्व विस्मय विमूढ़ !

माताजी ने प्रसंग समाप्त किया — तो मुझे आज्ञा है ?

'अवश्य। पर जाने से पहले अपनी शान्ति प्रार्थनावाला गान सुना जाओ।'

माताजी ने थोड़ा इतस्तत करने के बाद गान सुनाने की स्वीकृति दे दी। माताजी ने कोमल मृदु कण्ठ से जो गाया उसका भाव था — हे प्रेमामृत सिंधु दीनबन्धु जो तुम्हारे प्रेम में वंचित है उन पर कृपा करो। उन्हें प्रेम अमृत के सीकरों से सिंचित करो वंचित न रहने दो न रहने दो। हे हृदय बन्धु करुणामृत सिंधु पूषन जो जन मन, जो तन से स्वास्थ्य से वंचित हैं उन्हें अपनी करुणा रश्मि

के कणों में सिंचित करो, वंचित न रहने दो न रहने दो। हे प्रेम रूप वैश्वानर जो अहंकार से, मोह से, लोभ से जर्जर हैं, उन्हें अपने स्नेह सुधा समुद्र की वर्षा से उज्ज्वलित करो, वंचित न रहने दो, न रहने दो। हे अदभ्रज्योति बन्धु, जो संकोच से, ग्लानि से, लज्जा से दबे हुए हैं, उन पर अपनी प्रकाश राशि के कण बरसाकर तेजस्वी बनाओ, वंचित न रहने दो न रहने दो! प्रकाश दो पूषन मृत्यु से अमृत की ओर ले चलो, असत्य से सत्य की ओर ले चलो, वंचित न रहने दो न रहने दो!'

कोमल मधु कण्ठ से निकली हुई संगीत धारा से सारा दिङमण्डल विद्ध हो गया। रैक्व अननुभूत आनन्द से जडीभूत हो गये। औषस्ति की आंखों से अविरल अश्रुधारा बहने लगी।

संगीत की मादकता देर तक व्याप्त रही। रैक्व की संज्ञा जब लौटी तो वे मां के चरणों में लोट पड़े — मां, साक्षात वाग्देवता मां! मां!

नौ

रैक्व ने माताजी के साथ गांव-गांव घूमकर वहां की दशा देखी। वे एक एक चीज में रुचि दिखाते थे। हल क्यों चलाया जाता है अन्न कैसे उत्पन्न होता है सिंचाई कैसे की जाती है बैल क्या खाते हैं, गाय कैसे पाली जाती है—सभी बातों में वे जानकारी प्राप्त करने में उत्सुकता दिखाते। बीमार बच्चे, रोग ग्रस्त स्त्रियां, कंकाल शेष पुरुष उनकी जिज्ञासा-वृत्ति को उकसाते। क्यों ऐसा होता है कैसे उनकी सहायता की जा सकती है, अन्न कहां से मिल सकता है दवा कहां मिलती है आदि बातें वे माताजी से पूछते। माताजी उन्हें सब बातें समझातीं, जहां रैक्व उत्तेजित हो जाते वहां भी वे शान्त ही रहतीं। जनपद में माताजी को लोग आर्या की मूर्ति समझते और देवी की तरह पूजते थे। स्त्रियां अपनी विपत्ति की बातें रो रोकर सुनातीं, वे धैर्य के साथ सुनतीं, प्यार से बातें करतीं और दुःखी बच्चों के सिर पर हाथ फेरकर शीघ्र रोगमुक्त होने का आशीर्वाद देतीं। रैक्व चुपचाप यह दृश्य देखा करते। उन्हें अनुभव होता कि सहानुभूति भी एक बड़ा औषध है!

रैक्व माताजी के धैर्य और शान्त भाव से अभिभूत हो जाते। बिना किसी उपदेश के ही लोक-व्यवहार की सैकड़ों बातें वे रैक्व के मन में बैठा देतीं। रैक्व देख रहे थे समझ रहे थे सीख रहे थे। कई दिनों तक अज्ञात भाव से दोनों गांव गांव घूमते रहे। आध्यात्मिक तत्त्वों के बारे में माताजी ने कोई चर्चा नहीं की। केवल दुःख केवल अभाव केवल रोग, केवल अन्न इन्हीं बातों का विषय

बन रहे। रैक्व ने आश्चर्य से देखा कि माताजी सर्वत्र शान्त बनी हुई हैं। चेहरे पर वही शान्ति, वही करुणा, वही अनुद्वेग! रंच मात्र भी विकार नहीं। वे सोचने, कैसे यह सम्भव है? उन्हें याद आता कि ऋषि औपस्ति ने उन्हें बताया था कि जो आत्मा को पा लेता है उसे शोक नहीं होता, उद्वेग नहीं होता, मोह नहीं होता—वह सब पा लेता है। निस्सन्देह माताजी ने आत्मा को पा लिया है। इतने दारुण दुःख को देखकर भी इसीलिए अविचलित हैं। तीसरे दिन माताजी ने एक तालाब के किनारे विश्राम किया। स्नान करके उन्होंने प्रार्थना की और रैक्व से कहा कि बेटा, तू भी परमात्मा से प्रार्थना कर, कि इन दुर्गत जनों की वे रक्षा करें। रैक्व ने कहा कि वे प्रार्थना नहीं जानते। प्राणायाम और ध्यान जानते हैं। माताजी ने आज्ञा दी कि वैसा ही करे जिससे तेरा अन्तरतर शान्त होवे, केवल यह मत भुला देना कि इसका एक उद्देश्य है—दीन दुखिया को दुःखमुक्त करना। परमात्मा उसी से प्रसन्न होंगे। रैक्व ने आज्ञाकारी बालक के समान आज्ञा पाते ही समाधि की स्थिति प्राप्त करने का प्रयास किया।

समाधि ठीक से नहीं सधी। वे थोड़ी ही देर में उद्विग्न की भांति उठ गये। बोले, "मां, आज समाधि नहीं लग पा रही है। आंखों के सामने केवल भूखे-नंगे बच्चे और कातर दृष्टिवाली माताएँ ही दिख रही हैं। ऐसा क्या हो रहा है, मां?"

"अच्छा ही है, बेटा! इससे तेरी समाधि भले ही विघ्नित हो, इन बालकों और माताओं का कल्याण ही होगा।"

"होगा मां? कैसे?"

"अकेले में आत्माराम या प्राणाराम होना भी एक प्रकार का स्वार्थ ही है। इन दुखिया के प्रति तेरी दृष्टि गयी है तो अन्तरतर के देवता की भी दृष्टि जायगी। जो कुछ देखा जाता है वह वही तो देखता है, बेटा!"

"वही कौन, मां?"

"वही जग जग व्यापी परमात्मा, जो वैश्वानर है। पिताजी ने बताया था न, बेटा, भूल गया?"

"भूल ही गया था मां, ऐसी बातें याद नहीं रहतीं।"

"याद करने में थोड़े ही होता है, मन रमना चाहिए। तेरा मन इन बातों में अभी रम नहीं पा रहा है।"

रैक्व उदास हो गये। माताजी ने कुछ कहा नहीं, धीरे धीरे गुनगुनाकर गाने लगीं

> हे प्रभो, स्नेह दो, स्नेह दो!
> सारा संसार तुम्हारे स्नेह का भिखारी है।
> प्रभो, जो तुम्हें नहीं देख पा रहे हैं उन्हें दृष्टि दो!
> नहीं समझ पा रहे हैं उन्हें बुद्धि दो!
> नहीं पा रहे हैं उन्हें प्रेम दो!
> प्रभो! स्नेह दो स्नेह दो!

रैक्व मुग्ध होकर सुनते रहे। गाना समाप्त होते ही बोले, "यह भाषा मेरी समझ में आती है। मगर मा! मैं वंचित हूँ, दृष्टि नही है, बुद्धि नही है, प्रेम नही है! मेरा क्या होगा, मा?"

माताजी ने स्नेह से रैक्व के सिर को बार बार सहलाया— "पा तो रहा है, बेटा! ऐसी कातर वाणी तो उनके अनुग्रह के बिना नही निकलती। तू बडभागी है, तू पा रहा है। उनके राज्य मे निराश होने की कोई आवश्यकता नही बेटा, तुझे वे दख रहे हैं दे रहे हैं।"

रैक्व को जैसे दिव्य ज्योति दिख गयी। वे शान्त प्रसन्नभाव से बोले, "पा रहा हूँ मा, पा रहा हूँ।"

'देख बेटा, जहा दुख है, अभाव है वहा प्रभु प्रत्यक्ष दिखायी देते हैं। वह अन्धकार में प्रकाश बिखेरते हे, आंधी तूफान के भीतर शान्त प्रसन्नभाव से विराजमान रहते है, परम प्रेमिक हैं बेटा। तू उन्हे अवश्य पायेगा। चल, अब वही खोजें।"

मा और बेटा आगे बढे।

कुछ दूर जाने पर एक बडे पाकड के पेड के नीचे उन्होने एक विचित्र दृश्य देखा। बहुत से बच्चे एक प्रौढ व्यक्ति पर टूट पडे है। प्रौढ व्यक्ति गुस्से में डाँट रहा है, धमका रहा है, मारने को कह रहा है बच्चे और भी ज़ोर से हँसते हैं और भी तेज़ आक्रमण करते है। सब हँसी से लोट-पोट हो रहे है। प्रौढ व्यक्ति मारे क्रोध के चिल्ला रहा है—"गुस्सा कराओगे तो मुझसे बुरा कोई नही होगा। ऐसी मार मारूँगा कि जान भी नही पाओगे हा!" लेकिन लडके उसी तरह टूट रहे है, उठा हाथ देखते है तो भाग जाते है, फिर मौका पाते ही कोई पीठ पर, कोई कन्धे पर कोई बाह पर चढ जाता है। माताजी चुपचाप खडी हो गयी और देखने लगी। प्रौढ व्यक्ति बोला, 'अच्छा, अब ज़रा और मोटे हो जाओ तो चढाई करना। यह देखो, मेरे पास क्या है?"

बच्चे शान्त हो गये। सबके चेहरे हँसी से खिले हुए थे। एक ने बढकर पूछा, "क्या है मामा?"

"मधु है रे, बडी लडाई लडनी पडी है तब मिला है।"

"कैसी लडाई, मामा?"

'अब तुम लोगो को क्या बताऊँ बच्चो, ग्यारह भालू टूट पडे थे।"

बच्चो ने कहा, 'बताओ न क्या हुआ?'

"अरे ग्यारह नही, बारह थे। उनमे एक बडा था, सबका मामा। बाकी सब छोटे छोटे। बडावाला मधुमक्खी के छत्ते को चपट लेना चाहता था। मधुमक्खियाँ उस पर चपटी। उसने अपने बडे-बडे बालो को कम्बल की तरह उघारकर ओढ लिया। अब सारी मक्खियाँ उसके बालो मे जूं-जूं करती उलझ गया। छटपटाकर सबकी सब मर गया। फिर तो मौका देखते ही मैं छत्ता लेकर पेड से कूद गया। फिर ग्यारह भालू के पिल्ले मेरे ऊपर चपटे। मैं लाठा भांजने लगा। किसी का

दाँत टूटा, किसी की टाँग गयी, किसी की पसली बरामद हुई। सब भाग। जब मामा राम लपट। मैंने भी द मारा डण्डा। जबडा ही तोड दिया। फिर झपटे तो एक ही लाठी म चारा मान लि। मैं भी ऐसी फुर्ती म भागा कि यहीं आकर दम लिया।"

एक लडके ने हसत हुए कहा, गप्प मार रहे हो मामा, बारह भालू टूट पडते तो तुम बचत ?"

मामा ने कुछ दर सोचके कहा, 'अच्छा, पाँच थ। अब ज्यादा बोलगा तो पिट जायेगा।"

कई लडक चिल्लाय — पाँच भी नही होग।"

'अच्छा ले, चार थे!"

"चार होते तो तुम्ह चबा गय होते।"

"चार होत तो चबा जात ? ले तीन थ।"

क्या बात करते हो मामा, तीन स तुम लड लत ?"

'अच्छा एक। अब चुप रह नही मामा का गुस्सा तो जानता है न, ऐसी पिटाई करूँगा ऐसी पिटाई करूगा, कि न मै जानू, न तुम जानो।"

रहन भी दो, मामा! हम बारह बच्च चढ पड तो तुम भाग खडे होग और गप्प मारत हो बारह भालू स लडन का!"

चुप रह, नही तो मामा स बुरा कोई नही होगा। पहले यह शहद का शरबत पी लो। फिर झटके देखो, मामा एक एक की टाग तोड देता है कि नही। लत जाओ।"

बच्चे हँसने लगे।

मामाजी न एक मिट्टी के घडे म मधु का शरबत बना रखा था। मिट्टी के सकोरो म ढाल ढालकर सबको दन लग। कहत जात, पहले पीके तगडे बनो फिर मामा स लडना। अबकी बार वो मार मारूँगा वो मार मारूँगा कि बस!" लडके खिलखिलाकर हँसत और अपना-अपना हिस्सा लेकर अलग हो जात। एक बच्चा मुटठी म कुछ लिय ही शरबत लन पहुँचा। मामा ने डाटा— 'खाया नही रे!" लडका बोला, अच्छा नही लगता मामा बरगद के फल खाय नही जात।" मामा ने बडी मुलायम आवाज़ म कहा, 'नही अच्छे लगते ? अच्छा आज खा ल। कल गूलर ले आऊँगा। खा ले बेटा। मामा स लडेगा कैसे ?' उ होने आखें पोछ ली।

माताजी की ओर किसी का ध्यान नही था। वे ही आगे बढ़ी। रैक्व पीछे पीछे।

माताजी को देखकर सब लडके खडे हो गये। तब मामा ने उनकी ओर दृष्टि फिरायी। अपरिचित व्यक्ति यह लीला देख रहा था, यह जानकर उन्हे थोडी झेंप हुई फिर प्रणाम करके बच्चो को डाँटा— क्या देख रहे हो, प्रणाम करो!' सब बच्चो न प्रणाम किया। माताजी ने पूछा, 'आप क्या इसी गाँव के रहन

वाले है ?"

' गाव ता, माताजी, मरा कोई और था अव इसी गाव म रहता हूँ। मेरी बहिन इस गाव मे ब्याही थी। मा-बाप के मर जाने से अनाथ होकर बहिन के पास आ गया। अब तो वह भी नही है। मगर मैं गाव भर का मामा होकर यही बस गया हूँ। विधाता ने अपना कोई नही छोडा तो सारा गाव ही अपना हो गया। अब बच्चो का भी मामा हूँ, जवानो का भी, बहुओ का भी मामा हूँ, सासो का भी। मामा हो गया हूँ, पर कहा निभा पा रहा हूँ!'

' निभा तो रहे है। मैंने आपका प्रेमपूर्ण प्रयत्न देखा है। आप इनके मामा होने योग्य ही है।"

क्या करूँ, माताजी, देखा नही जाता। परसो छह कोस दूर के एक तालाब से करवक लता का एक बोझा ले आया था। कल वही उबालकर गाववालो ने पेट भरा है, पर बच्चो का काम तो नही चलता। बहुत खोज-खाज करके आज एक मधु का छत्ता ले आ सका हूँ। देखिए कितने खुश है! कुछ बरगद के गोदे (फल) भी ले आया था। बिचारे खा नही सकते पर और है ही क्या? गायो को घास भी तो नही मिल रही। अब पानी बरसा है तो सब लोग खेत जोतने गये है। पेट मे अन्न नही, बलो मे दम नही, क्या जोतेगे! वह तो कहिए कि एक महात्माजी आये थे, किसी दानी से कहकर उन्होने कुछ महुआ भिजवा दिया है। वही खाकर हल जोत रहे है।"

' महात्मा जी कहा रहते है?"

' पता नही माताजी, राजा पर इतना गुस्सा किया कि कहा कि इसके राज्य मे पैर ही नही रखूगा। अब यह तो अपने अपने कर्म का फल है माताजी राजा क्या कर सकता है!"

"राजा को कुछ करना तो चाहिए।'

'महात्माजी तो नाराज होकर चल गये है, पर कह गये है कि कई गाडी महुआ भिजवायेंगे। देखे, कब भेजते है।"

बच्चो को मामा के और अपने बीच इतना व्यवधान अच्छा नही लग रहा था। एक छोटे बच्चे ने मामा का हाथ पकडकर कहा, मामा चलो, अब भेडियावाली लडाई की बात बताओ।"

माताजी की ओर देखकर मामा ने हँसकर कहा, ' झूठी कहानियाँ गढ-गढ़कर इनको भुलाता रहा हूँ। ये भी जानते है कि झूठ है, मै भी जानता हूँ कि झूठ है। पर थोडे झूठ से इनके चेहरो पर थोडी देर के लिए चमक आ जाती है। पता नही, भगवान् माफ करेंगे या नही। पर मुझे कोई ग्लानि नही है। अच्छा माताजी, क्षमा करें। ये बडे शैतान है, मामा पर इन्ही का पूरा अधिकार होना चाहिए।"

माताजी ने कहा, आप पर इनका ही अधिकार रहे। जाइए। आप सच्ची तपस्या कर रहे हैं।"

वे प्रणाम करके अपनी बाल-सेना के साथ चले गये।

माताजी ने उदास रैक्व की ओर देखा।

"बेटा रैक्व !"

"मा !"

"क्या सोच रहे हो, बेटा ? यह आदमी कैसा लगा ?"

"मामा के बारे में पूछती हो, माँ ?"

हाँ, यही मामा, सबका मामा !"

अद्भुत है मा मैं भी कुछ ऐसा कर सकता तो धन्य होता, माँ !"

हो सकता है, करना पडे। हो सकता है, दूर से गाडी पर लादकर महुआ ले आना पडे, गूलर ले आना पडे, करवर साग का गट्ठर ले आना पडे—कर सकोगे ?"

'हा माँ, आज्ञा दो तो अभी कर सकता हूँ।"

"अभी और देखते चलो। शायद कुछ और प्रेरणा मिले।"

"मा, मैं तो यह सब देखकर क्लान्त अनुभव करता हूँ। कुछ बताओ माँ, क्या करूँ ?"

"यह मामा क्लान्त नही हुआ है। तुम क्या क्लान्त अनुभव करते हो ?"

'कुछ न कर सकने से, माँ !"

"साधु वत्स, तुम्हारे ऊपर परमात्मा का अनुग्रह बरसने लगा है।"

"बरसने लगा है मा ?"

'देखो बेटा, इस आदमी में मुझे परम पिता परमेश्वर की ज्योति दिखायी देती है।'

"मगर यह झूठ क्या बोलता है मा ?"

यह झूठ नही बोल रहा है। परम वैश्वानर का इंगित समझ रहा है। परमात्मा ने भी तो हमारी प्रसन्नता के लिए माया का यह झूठा ससार रच रखा है।

'हाँ, मा !

'परमात्मा की ज्योति इसी प्रकार दिखायी दे जाती है, बेटा !"

"मुझे एक बात सूझ रही है, मा !'

"क्या बेटा ?"

'मैं जो गाडी के नीचे बैठकर तप कर रहा था, वह झूठा तप था। सही तपस्या गाडी चलाकर की जा सकती है।"

साधु वत्स !'

मा, सोचता हूँ कि उस टूटी गाडी को ठीक करके स्वय खींचकर उसे चलाऊँ और जहाँ से जो कुछ भी पा सकूँ, इनके पास पहुँचा दूँ।'

'साधु वत्स ! यह विचार ठीक है पर अकेले तुम कितना ले आ सकते हो ? मैं सोचती हूँ कि कुछ और लोग भी तुम्हारे साथ हो तो अच्छा होगा।'

'और लोग कहाँ मिलेंगे, माँ ? तुम्हारा बेटा अकेला जितना कर सकेगा,

करेगा।"

"रुको, तुम्हारी मा भी तो कुछ कर सकती है।'

"मा को कुछ नही करना होगा। मा सिर्फ रास्ता सुझायेगी।"

'नही बेटा, मा को भगवान् बैठन नही देंगे। तुम मुझे थोडा साचन दो।'

"अच्छा मा, सोचकर बताओ।"

थोडी देर तक दोना चुपचाप चलते रहे। थोडी देर बाद माताजी ने कहा, रक्व बेटा!"

'हा मा।"

'देख रहे हो न, कि मत्यु सबको निगलने के लिए मुह बाये खडी है, और फिर भी लोग जीना चाहते ह? सब मर जा सकता ह पर जीने की इच्छा नही मरती।

"हा मा, लोग मरना नही चाहते, जीना चाहते हे। सब जीना चाहते हे।"

'यही क्या वह चीज़ नही है जो विनाशमान पदार्थो के बीच अविनश्वर है? —विनश्यत्स्वविनश्य तम? दुवार जिजीविषा! जीते रहने की इच्छा!'

"हा मा।"

"मुझे लगता ह बेटा, जिसे लोग 'आत्मा' कहते ह वह इसी जिजीविषा के भीतर कुछ होना चाहिए। वे जो बच्चे ह किसी की टाग सूख गयी है, किसी का पेट फूल गया है, किसी की आख सूज गयी है—ये जी जाये तो इनमे बडे बडे ज्ञानी और उद्यमी बनने की सम्भावना है। सम्भावना की बात कर रही हूँ। अगर यह सम्भावना नही होती तो शायद जिजीविषा भी नही होती। आत्मा उन्ही अनात अपरिचित अननुध्यात सम्भावनाओ का द्वार है। मै अपनी बात ठीक से कह रही हूँ, बेटा? शायद नही।"

'इतना समझ रहा हूँ कि सम्भावना हे और इसीलिए जिजीविषा भी है। पर 'आत्मा नही समझ रहा हूँ।'

माताजी चुपचाप चलती रही। फिर उन्होने शान्त कोमल कण्ठ से कहा, "रक्व बेटा, जीने की इच्छा सबमे हे। कुछ मे जिलाने की इच्छा भी तो है—जैसे मामा मे!"

'है, मा!'

'ऐसा नही लगता कि जिसमे जिलाने की इच्छा है वह जीने की इच्छा का रहस्य जान गया है?"

'हो सकता है, मा!"

"हो नही सकता रे, है। नही तो मामा कैसे हँसते-हँसते इतनी तकलीफ झेल लेता है?"

"'है' कहना ही ठीक लगता है, मा!"

देख रे सृष्टि चलती रहेगी। जो लोग अलग बैठकर इसे बन्द करने का सपना देखते हैं वे भोले ह। जिजीविषा है तो जीवन रहेगा जीवन रहेगा तो अनन्त सम्भावनाएँ भी रहेगी। सब चलता रहेगा। यही प्रकृति है। इन सुनियन्त्रित रूप

"तुम मा भी हा, और गुरु भी हा।"

जानता हे वटा, गुरु कौन होता हे ?"

'जो ज्ञान द।"

ठीक है, पर यास्तव म गुरु वह हे जिसके सामन जाने पर तेरे व्यक्तित्व का सर्वात्तम पक्ष उजागर हो, जो तेरे भीतर सोय देवत्व को जगा दे। शुभा एसी ही गुरु हे ?"

रैक्व न कुछ देर सोचा, फिर अपन आपस बोले, तो मे शुभा को गुरु नही कह सकता। फिर मा की ओर उन्मुख हुए— मा, गुरु तुम हो, शुभा के सामने में अपने को अल्पज्ञ और हीन समझने लगा था। वह मेरी गुरु नही हा सकती। मगर ज्ञानी वह अवश्य ह मा ! उसकी सब बाते ठीक थी।"

माताजी फिर हँसने लगी।

' मिलगी ता उस डाटूगी कि तून मेरे हीरे के समान लडके म हीन भावना क्यो पैदा की ?"

रैक्व ने कातर भाव स कहा, 'नही मा डाटना मत। उस बिचारी का क्या दोप था ? दोप तो मेरे भीतर था। डाटना मत मा म अब उसके सामने अपने को हीन नही मानूगा। तुमसे मिलने क पहले मै औरा को ही हीन समझता था। सिफ शुभा के सामन मै झुका था। दाप तो मरा ही था।

"दोनो ही दोप है बेटा, अपने को हीन समझना भी दोप हे और दूसरो को हीन समझना भी दाप हे। अच्छा, मरे सामन तू अपन को क्या समझता हे ?"

"अनन्त सम्भावनाओ का भाण्डार।"

' तू मा को खुश करना जानता है ! क्या रे, अगर शुभा कहे कि वह तेरे साथ रहकर तेरी बुद्धि की परीक्षा करगी तो उसस क्या कहना चाहिए मुझे ?"

"मेरे पास अगर वह बुद्धि की परीक्षा लेन आयेगी तो उस गाडी खीचकर दीन दुखिया तक खाद्य पहुँचाने को कहूँगा। इसी मे उसकी बुद्धि की परीक्षा हो जायगी। मा, जो दीन दुखिया की सवा नही कर सकता वह क्या बुद्धि की परीक्षा करेगा ! मैं अब थोडा-थोडा रहस्य समझन लगा हूँ। कोरी वाग्वितण्डा ज्ञान नही है।"

उसन जो पाप किया हे उस भूल गया ?"

इसके लिए जो उचित समझो सो कहना। समझा दने स वह समझ जायगा, मा ! काठ की थोडे ही बनी है !"

देखूगी कि समझती है या नहा। हो सकता है कि काठ की न बना हो।'

' नही मा, वह निश्चित रूप म समझदार है।"

स चलाने का प्रयास शुभ है। यही संस्कृति है। प्रकृति को सुनियन्त्रित रूप म चलान का नाम ही संस्कृति है।"

हा मा !"

इसीलिए ऋषि लोग स्नातक को उपदेश देते है कि सन्तान परम्परा का नष्ट न होन दना— प्रजातन्तु मा व्यवच्छेत्सी।' प्रकृति का मानकर ही संस्कृति की ओर जाया जा सकता है अस्वीकार करक चलना तो विकृति ही होगा।"

एसा ही लगता है, मा!'

दर तक दोनो चुप रहे। थोडी देर बाद रक्व न पूछा, 'माँ, यह मामा आत्मज्ञ है?"

अवश्य होना चाहिए।"

फिर दर तक दोनो चुपचाप चलते रह। रैक्व क मन म उथल-पुथल हो रही थी। माताजी यथापूर्व शान्त थी। रैक्व न पूछा, 'मा, तुम क्या मेरी ही बात नही कह रही हो?"

"तेरी बात क्या बेटा?'

'यही जीवन तो प्राण ही है न?"

हा उसे बचाये रखने की इच्छा जिजीविषा है और अनन्त सम्भावनाओ की ओर उन्मुख करना उस जिजीविषा का उद्देश्य जान पडता है। प्राण ही आत्मा नही है प्राण के बचाये रखने की इच्छा का उद्देश्य हो तो हो भी सकता है। पर बेटा प्राण को आत्मा तो नही माना जा सकता।'

'अच्छा माँ राजा म जिलाने की इच्छा क्या नही जागी? वह क्या आत्मज्ञ नही है?"

'कैसे कहूँ बेटा मिलकर उसके भीतर की परम ज्योति का जगाने की कोशिश करूँगी। तू कही रुक जा मै अकेली जाना चाहती हूँ।'

शुभा भी तो मिलेगी मा!'

'हो सकता है। मगर तू अभी यही कही रुक जा। राजा का गाव नजदीक आ गया है।"

"माँ, मेरी गाडी भी तो यही कही होगी। क्या न उस म तब तक ठीक कर लू?"

गाडी तेरी कैसे है रे? वह तो शुभा की है।

शुभा की है? हा, है तो। मगर लगता है मा, कि जो वस्तु शुभा की है वह मेरी भी है।"

माताजी को हँसी आ गयी।

एसा तूने कैसे मान लिया? शुभा राजा की बेटी है, वह यो ही अपनी चीजें तुझे क्या देने लगी? उसका तू क्या है?"

मेरा गुरु है, माँ!"

'और मैं क्या हूँ?"

तुम माँ भी हो, और गुरु भी हो।"

जानता है बेटा, गुरु कौन होता है?'

'जो ज्ञान दे।"

ठीक है, पर वास्तव में गुरु वह है जिसके सामने जाने पर तेरे व्यक्तित्व का सर्वोत्तम पक्ष उजागर हो, जो तेरे भीतर सोये देवत्व को जगा दे। शुभा ऐसी ही गुरु है?"

रैक्व ने कुछ देर सोचा, फिर अपने आपसे बोले, तो मैं शुभा को गुरु नहीं कह सकता।' फिर माँ की ओर उन्मुख हुए— माँ, गुरु तुम हो। शुभा के सामने मैं अपने को अल्पज्ञ और हीन समझने लगा था। वह मेरी गुरु नहीं हो सकती। मगर ज्ञानी वह अवश्य है माँ! उसकी सब बातें ठीक थीं।"

माताजी फिर हँसने लगीं।

' मिलेगी तो उसे डाँटूँगी कि तूने मेरे हीरे के समान लड़के में हीन भावना क्या पैदा की?'

रैक्व ने कातर-भाव से कहा, 'नहीं माँ, डाँटना मत। उस बिचारी का क्या दोष था? दोष तो मेरे भीतर था। डाँटना मत माँ, मैं अब उसके सामने अपने को हीन नहीं मानूँगा। तुमसे मिलने के पहले मैं औरों को ही हीन समझता था। सिर्फ शुभा के सामने मैं झुका था। दोष तो मेरा ही था।'

"दोनों ही दोष हैं बेटा, अपने को हीन समझना भी दोष है और दूसरों को हीन समझना भी दोष है। अच्छा, मेरे सामने तू अपने को क्या समझता है?"

"अनन्त सम्भावनाओं का भाण्डार।"

' तू माँ को खुश करना जानता है! क्या रे, अगर शुभा कहे कि वह तेरे साथ रहकर तेरी बुद्धि की परीक्षा करेगी, तो उससे क्या कहना चाहिए मुझे?"

"मेरे पास अगर वह बुद्धि की परीक्षा लेने आयेगी तो उसे गाड़ी खींचकर दीन दुखिया तक पाथेय पहुँचाने को कहूँगा। इसी में उसकी बुद्धि की परीक्षा हो जायगी। माँ, जो दीन दुखिया की सेवा नहीं कर सकता, वह क्या बुद्धि की परीक्षा करेगा! मैं अब थोड़ा थोड़ा रहस्य समझने लगा हूँ। कोरी वाग्वितण्डा ज्ञान नहीं है।"

"उसने जो दोष किया है उसे भूल गया?"

इसके लिए जो उचित समझो सो कहना। समझाने से वह समझ जायगी, माँ! काठ की थोड़े ही बनी है!

देखूँगी कि समझती है या नहीं। हो सकता है कि काठ की न बनी हो।'

नहीं माँ, वह निश्चित रूप से समझदार है।'

से चलाने का प्रयोग शुभ है। यही संस्कृति है। प्रकृति को सुनियन्त्रित रूप में चलाने का नाम ही संस्कृति है।'

हाँ माँ!'

इसीलिए ऋषि लोग स्नातक को उपदेश देते हैं कि सन्तान परम्परा को नष्ट न होने देना— प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सी।' प्रकृति को मानकर ही संस्कृति की ओर जाया जा सकता है, अस्वीकार करके चलना तो विकृति ही होगा।"

ऐसा ही लगता है माँ!

देर तक दोनों चुप रहे। थोड़ी देर बाद रैक्व ने पूछा, माँ, यह मामा आत्मज्ञ है?"

अवश्य होना चाहिए।"

फिर देर तक दोनों चुपचाप चलते रहे। रैक्व के मन में उथल-पुथल हो रही थी। माताजी यथापूर्व शान्त थीं। रैक्व ने पूछा, माँ तुम क्या मेरी ही बात नहीं कह रही हो?"

तेरी बात क्या बेटा?"

"यही जीवन तो प्राण ही है न?"

'हाँ उसे बचाये रखने की इच्छा जिजीविषा है और अनन्त सम्भावनाओं की ओर उन्मुख करना उस जिजीविषा का उद्देश्य जान पड़ता है। प्राण ही आत्मा नहीं है प्राण के बचाये रखने की इच्छा का उद्देश्य होता हो भी सकता है। पर बेटा, प्राण को आत्मा तो नहीं माना जा सकता।'

अच्छा माँ राजा में जिलाने की इच्छा क्या नहीं जागी? वह क्या आत्मज्ञ नहीं है?'

"कैसे कहूँ बेटा, मिलकर उसके भीतर की परम ज्योति को जगाने की कोशिश करूँगी। तू कहीं रुक जा मैं अकेली जाना चाहती हूँ।'

'शुभा भी तो मिलेगी, माँ!"

'हो सकता है। मगर तू अभी यहीं कहीं रुक जा। राजा का गाँव नजदीक आ गया है।"

माँ, मेरी गाड़ी भी तो यहीं कहीं होगी। क्यों न उसे मैं तब तक ठीक कर लूँ?"

'गाड़ी तेरी कैसे है रे? वह तो शुभा की है।

"शुभा की है? हाँ, है तो। मगर लगता है माँ, कि जो वस्तु शुभा की है वह मेरी भी है।"

माताजी को हँसी आ गयी।

ऐसा तूने कैसे मान लिया? शुभा राजा की बेटी है, वह यों ही अपनी चीजें तुझे क्या लेने देगी? उसका तू क्या है?"

मेरी गुरु है माँ!"

'और मैं क्या हूँ?"

'तुम माँ भी हो, और गुरु भी हो।"

जानता है बेटा, गुरु कौन होता है ?"

"जो ज्ञान दे।"

ठीक है, पर वास्तव में गुरु वह है जिसके सामने जाने पर तेरे व्यक्तित्व का सर्वोत्तम पक्ष उजागर हो, जो तेरे भीतर सोये देवत्व को जगाये। शुभा ऐसी ही गुरु है ?"

रैक्व ने कुछ देर सोचा फिर अपने आपसे बोले, तो मैं शुभा को गुरु नहीं कह सकता।' फिर माँ की ओर उन्मुख हुए— मां, गुरु तुम हो, शुभा के सामने मैं अपने को अल्पज्ञ और हीन समझने लगा था। वह मेरी गुरु नहीं हो सकती। मगर ज्ञानी वह अवश्य है, मां ! उसकी सब बातें ठीक थीं।"

माताजी फिर हँसने लगीं।

'मिलेगी तो उसे डाटूँगी कि तूने मेरे हीरे के समान लडके में हीन भावना क्यों पैदा की ?

रैक्व ने कातर भाव से कहा 'नहीं माँ डाटना मत। उस बिचारी का क्या दोष था ? दोष तो मेरे भीतर था। डाटना मत माँ मैं अब उसके सामने अपने को हीन नहीं मानूँगा। तुमसे मिलने से पहले मैं औरों को ही हीन समझता था। सिर्फ शुभा के सामने मैं झुका था। दोष तो मेरा ही था।'

"दोनों ही दोष हैं बेटा, अपने को हीन समझना भी दोष है और दूसरों को हीन समझना भी दोष है। अच्छा, मेरे सामने तू अपने को क्या समझता है ?"

"अनन्त सम्भावनाओं का भाण्डार।"

"तू माँ को खुश करना जानता है ! क्या रे, अगर शुभा कहे कि वह तेरे साथ रहकर तेरी बुद्धि की परीक्षा करेगी तो उससे क्या कहना चाहिए मुझे ?

"मेरे पास अगर वह बुद्धि की परीक्षा लेने आयगी तो उसे गाडा खींचकर दीन दुखिया तक खाद्य पहुँचाने को कहूँगा। इसी में उसकी बुद्धि की परीक्षा हो जायगी। माँ, जो दीन दुखिया की सेवा नहीं कर सकता, वह क्या बुद्धि की परीक्षा करेगा ! मैं अब थोडा थोडा रहस्य समझने लगा हूँ। कोरी वाग्वितण्डा ज्ञान नहीं है।'

उसने जो पाप किया है उसे भूल गया ?"

इसके लिए जो उचित समझो सो कहना। समझा देने से वह समझ जायगी, माँ ! काठ की थोड़े ही बनी है।'

'देखूँगी कि समझती है या नहीं। हो सकता है कि काठ की न बनी हो।'

नहीं माँ, वह निश्चित रूप से समझदार है।'

दस

राजा जानश्रुति को आचाय औदुम्बरायण ने जब सारी बात बतायी तो व जस सोते स अकचकाकर जागे—"मुझे प्रजा के कष्ट की बात तो किसी न नही बतायी। राज कमचारी क्या सो रहे थ ? अन्न उगाहने के समय क्या उन्होने यह नही देखा कि अकाल पडा हुआ है ? क्या उनका कत्तव्य नही था कि व मुझे सूचना देते ? राजा तो कमचारियो की आख से ही देखता है। इतना बडा अनथ हो गया और उ होने कुछ बताया ही नही।"

आचाय ने कहा महाराज दोष तुम्हारा भी है और मरा भी। राजा जब तक स्वय जागरूक न हो तो राज कमचारी शिथिल हो जाते है, मुस्तदी स काम नही करते। राजा को चिता म न डालने की आड म व स्वय निश्चिन्त हो जाते है। राजकमचारियो की निरन्तर कसते रहना पडता है। वह हमने नही किया। दोष हमारा भी है म कहूँ कि दोष हमारा ही है।"

राजा मर्माहत हुए। बोले, 'अब क्या किया जाय, आचाय ? पाप तो हो ही गया है।

आचाय ने कहा 'राजन, मने इस समस्या पर बहुत सोचा है। अकाल ग्रस्त लोगो की सहायता करना बहुत आवश्यक है। बेटी जाबाला तो गावो म घूम घूम कर अकाल के पीडितो को स्वय देखना चाहती है और यथोचित सेवा करना चाहती है। वह व्याकुल है, पर उसका स्वास्थ्य एकदम ठीक नही है। अगर वह बाहर घूमने निकल पडेगी तो निश्चय ही उसका रहा सहा स्वास्थ्य भी जाता रहेगा। मैंने उस किसी प्रकार रोक लिया है पर अधिक समय तक वह रुक नही सकती। जब तक उस पूरा विश्वास नही हो जाता कि राज्य की ओर स प्रजा की सहायता का ठीक ठीक आयोजन कर दिया गया है तब तक उस रोकना कठिन होगा। आप तो जानते ही हैं कि वह साधारण लडकी नही है। जहाँ कुछ करना आवश्यक है वहा वह करके ही रहेगी। पर महाराज मैं बहुत चिन्तित हूँ कि दुबल शरीर लेकर वह कुछ साहसिक कदम उठा लेगी, तो उस बचाना कठिन होगा।

'आचाय वही तो मरा प्राण है। अगर उस कुछ हो गया तो मैं जीवित नही रह सकूगा। अगर किसी प्रकार जीवित रह भी गया तो प्रजा की कुछ भी सहायता नही कर सकूगा। मरी पहली आवश्यकता है उसको स्वस्थ और प्रसन्न करना। इसके बिना मैं पगु हूँ अकर्मा हूँ।"

'जानता हूँ राजन्, बहुत अच्छी तरह जानता हूँ। इसलिए मैने एक मध्यम माग सोचा है। अनुमति हो तो निवदन करूँ।"

अवश्य आचाय मरी बेटी को बचाकर आप मुझे बचायेंगे, और मुझे बचा कर सारी प्रजा को बचायेंगे। आप निस्सकोच अपना प्रस्ताव रखें।'

महाराज, कठिन समस्या यह है कि घर म कोई प्रौढा महिला नही है।

दासियों ने ओझा बुलाने को कहा था सो मन किया। वह जो सकुला बुढ़िया है, जाबाला को बहुत स्नेह करती है, पर है अटट गँवार। कुछ कहने का उसे साहस नहीं होता। एक दिन उसने डरते डरते कहा कि बिटिया को गन्धर्व का आवेश है दख नहीं रहे है कि वह भीतर ही भीतर उसका खून चूस रहा है। गन्धर्व-पूजन कराइए। मैंने उसकी बात नहीं मानी। आज वह फिर कहने लगी कि गन्धर्व पूजन कराइए। उधर सिद्ध ने कहा था कि कोहलीय लोगों का नृत्य नाटक कराइए। उससे मनोविकार दूर होते हैं। बुढ़िया ने भी कहा कि कोहलीय लोग गन्धर्व-पूजन की विधि जानते हैं। दोनों बातों को मिलाकर मुझे ऐसा लगा कि दोनों एक ही बात अपने-अपने ढंग से कह रहे हैं। मैं इन बातों को मानता तो नहीं पर बिटिया का कल्याण हो तो मैं अपनी मान्यता पर अड़ा नहीं रहूँगा। अभी मुझे सूझा कि यह अनुष्ठान और एक दृष्टि से भी उत्तम होगा।'

"सो क्या ?'

"राजन्, साधारण जनता में कोहलीयों के नृत्य नाटक का बड़ा आकर्षण है। इस आयोजन में सहस्रों की संख्या में दूर-दूर से लोग आयेंगे। आयोजन के अन्त में यदि यह घोषणा कर दी जाये कि राजा के भाण्डार से सभी दीन दुखियों को अन्न और औषधि तत्काल दिये जायेंगे तो अनायास यह बात गाँव-गाँव में फैल जायगी और हम अपना अन्न का भाण्डार खोल देंगे। बहुतों की कठिनाई दूर हो जायगी। इस प्रस्ताव से बिटिया को भी मानसिक शान्ति मिलेगी। क्या महाराज, आपको मेरा प्रस्ताव ठीक लग रहा है ?"

स्वीकार है आचार्य पर इतना और सोचना होगा कि भाण्डार के अन्न से सारी आवश्यकता पूरी हो सकेगी या नहीं। भाण्डार की तो एक सीमा है।

"सोचा है महाराज भगवान् के अनुग्रह से पानी तो बरस गया है। सहायता-कार्य थोड़े दिनों के लिए आवश्यक होगा। पर इस विषय में जानकार लोगों की सलाह लेकर कुछ और उपाय भी सोचे जायेंगे। अभी तो यह घोषणा हो जानी चाहिए। इससे प्रजा में साहस का संचार होगा। परमेश्वर की दया से हमारी प्रजा में अब भी यह सुबुद्धि है कि वह भिक्षा के अन्न पर आस्था नहीं रखती। उसे भिक्षा-जीवी बनने भी नहीं देना चाहिए। कुछ काम कराके ही उन्हें अन्न देना चाहिए। आपके सचिव लोग इस सम्बन्ध में अच्छी सलाह दे सकते हैं। मैं तो कोहलीयों के गन्धर्व-पूजन का आयोजन और उस सम्बन्ध में तत्काल घोषणा की ही बात कह रहा हूँ। घोषणा को कार्यान्वित करने में जानकार लोग ही ठीक-ठीक सलाह दे सकते हैं।"

राजा ने दोनों प्रस्ताव मान लिये। मन्त्रियों को तुरन्त आयोजन का आदेश दे दिया गया। जाबाला को भी बता दिया गया। कोहलीयों के अनुष्ठान की तैयारी शुरू हो गयी। जाबाला आश्वस्त हुई। नागरिक उसने अपने पिता और आचार्य को इस बात पर राजी कर लिया कि रंगभूमि के निर्माण के समय में ही सहायता-कार्य शुरू कर दिया जाए। अकाल ग्रस्त क्षेत्रों में सैकड़ों आदमी रंगभूमि के निर्माण के

दस

राजा जानश्रुति को आचाय औदुम्बरायण न जब सारी बातें बताया तो व जम सोत से अकचकाकर जाग— मुझे प्रजा के कष्ट की बात तो किसी न नहा बतायी। राज कमचारी क्या सो रह थ ? अन्न उगाहन के समय क्या उन्हान यह नही दखा कि अकाल पडा हुआ है ? क्या उनका कत्तव्य नही था कि व मुझे सूचना न्त ? राजा तो कमचारियो की आख स ही दखता है। इतना बडा अनथ हो गया और उ हान कुछ बताया ही नही।"

आचाय न कहा महाराज दोष तुम्हारा भी है और मरा भी। राजा जब तक स्वय जागरूक न हा तो राज कमचारी शिथिल हो जात ह, मुस्तदी स काम नही करते। राजा को चिन्ता म न डालन की आड म व स्वय निश्चिन्त हो जात है। राजकमचारियो की निरन्तर कसते रहना पडता है। वह हमने नही किया। दोष हमारा भी है, मैं कहूँ कि दोष हमारा ही है।

राजा ममाहत हुए। बोल, अब क्या किया जाय, आचाय ? पाप तो हो ही गया है।'

आचाय ने कहा, राजन मैंने इस समस्या पर बहुत सोचा है। अकाल-ग्रस्त लोगो की सहायता करना बहुत आवश्यक है। बेटी जावाला तो गावो म घूम घूम कर अकाल के पीडितो को स्वय दखना चाहती है और यथोचित सेवा करना चाहती है। वह व्याकुल है पर उसका स्वास्थ्य एकदम ठीक नही है। अगर वह बाहर घूमने निकल पडेगी तो निश्चय ही उसका रहा सहा स्वास्थ्य भी जाता रहेगा। मैने उसे किसी प्रकार रोक लिया हूँ, पर अधिक समय तक वह रुक नही सकती। जब तक उस पूरा विश्वास नही हो जाता कि राज्य की ओर स प्रजा की सहायता का ठीक ठीक आयोजन कर दिया गया है तब तक उस रोकना कठिन होगा। आप तो जानते ही हैं कि वह साधारण लडकी नही ह। जहाँ कुछ करना आवश्यक ह वहा वह करके ही रहेगी। पर महाराज मै बहुत चिन्तित हूँ कि दुबल शरीर लेकर वह कुछ साहसिक कदम उठा लेगी, तो उसे बचाना कठिन होगा।

"आचाय, वही तो मेरा प्राण है। अगर उस कुछ हो गया तो म जीवित नही रह सकूगा। अगर किसी प्रकार जीवित रह भी गया तो प्रजा की कुछ भी सहायता नही कर सकूगा। मेरी पहली आवश्यकता है उसको स्वस्थ और प्रसन्न करना। इसके बिना मैं पगु हूँ, अकमा हूँ।"

जानता हूँ राजन, बहुत अच्छी तरह जानता हूँ। इसलिए मैंने एक मध्यम माग सोचा है। अनुमति हो तो निवेदन करूँ।"

अवश्य आचाय मरी बेटी को बचाकर आप मुझे बचायेंग और मुझे बचा कर सारी प्रजा को बचायेंग। आप निस्सकोच अपना प्रस्ताव रखें।"

महाराज कठिन समस्या यह है कि घर म कोई प्रौढा महिला नही है।

दासियों न ओझा बुलाने को कहा था, सो मने किया। वह जो सकुला बुढिया है, जाबाला को बहुत स्नेह करती है, पर है अटट गँवार। कुछ कहन का उसे साहस नही होता। एक दिन उसन डरते डरते कहा कि बिटिया को ग धव का आवेश है, देख नही रह है कि वह भीतर-ही भीतर उसका खून चूस रहा है। ग धव पूजन कराइए। मैंन उसकी बात नही मानी। आज वह फिर कहने लगी कि ग धव पूजन कराइए। उधर सिद्ध ने कहा था कि कोहलीय लागा का नत्य-नाटक कराइए। उसस मनोविकार दूर होत ह। बुढिया ने भी कहा कि कोहलीय लोग ग धव पूजन की विधि जानत ह। दोनो बाता को मिलाकर मुझे ऐसा लगा कि दोना एक ही बात अपन-अपने ढग से कह रह ह। मैं इन बाता को मानता तो नही पर बिटिया का कल्याण हो तो मैं अपनी मा यता पर अडा नही रहूँगा। अभी मुझे सूझा कि यह अनुष्ठान और एक दष्टि स भी उत्तम होगा।

सो क्या ? '

'राजन, साधारण जनता मे कोहलीया के नत्य नाटक का बडा आकषण है। इस आयोजन मे सहस्रो की सख्या म दूर दूर से लोग आयग। आयोजन के अन्त म यदि यह घापणा कर दी जाय कि राजा के भाण्डार स सभी दीन दुखिया को अन्न और औषधि तत्काल दिय जायेंगे तो अनायास यह बात गाव गाव मे फल जायगी और हम अपना अ न का भाण्डार खोल देंगे। बहुता की कठिनाई दूर हो जायगी। इस प्रस्ताव से बिटिया का भी मानसिक शाति मिलेगी। क्या महाराज, आपको मेरा प्रस्ताव ठीक लग रहा है ?"

'स्वीकार है आचाय पर इतना और सोचना होगा कि भाण्डार के अन्न स सारी आवश्यकता पूरी हा सकगी या नही। भाण्डार की ता एक सीमा है।"

सोचा ह महाराज, भगवान के अनुग्रह स पानी ता बरस गया है। सहायता काय थोडे दिना क लिए आवश्यक होगा। पर इस विषय म जानकार लागा की सलाह लेकर कुछ और उपाय भी सोच जायेंगे। अभी तो यह घोपणा हो जानी चाहिए। इसस प्रजा मे साहस का सचार होगा। परमश्वर की दया स हमारी प्रजा मे अब भी यह सुबुद्धि ह कि वह भिक्षा के अ न पर आस्था नही रखती। उसे भिक्षा-जीवी बनने भी नही दना चाहिए। कुछ काम कराक ही उ ह अ न देना चाहिए। आपके सचिव लोग इस सम्ब ध मे अच्छी सलाह दे सकते ह। म तो कोहलीया के ग धव-पूजन का आयोजन और उस सम्ब ध मे तत्काल घोपणा की ही बात कह रहा हूँ। घोपणा को कार्यान्वित करने मे जानकार लोग ही ठीक ठीक सलाह द सकते है।"

राजा ने दोना प्रस्ताव मान लिये। सचिवो को तुरन्त आयोजन का आदश द दिया गया। जाबाला को भी बता दिया गया। कोहलीया क अनुष्ठान की तैयारी शुरू हो गयी। जाबाला आश्वस्त हुई लेकिन उसन अपन पिता और आचाय को इस बात पर राजी कर लिया कि रगभूमि क निर्माण के समय म ही सहायता-काय शुरू कर दिया जाए। अकाल ग्रस्त क्षेत्रा स सकडा आदमी रगभूमि क निर्माण क

लिए बुलाये गये। काम तेज़ी से हुआ। लोगों में आयोजन के प्रति उत्साह देखा गया। जो बहुत दुर्बल और रुग्ण थे उन्हें भी कुछ न कुछ काम दिया गया। आयोजन का आरम्भ बड़े उत्साह से हुआ।

राजा और आचार्य ने सचिवों से मन्त्रणा करके आगामी सहायता-कार्य की रूपरेखा बनाने का प्रयत्न किया। एक दिन इस सम्बन्ध में मन्त्रणा चल रही थी। राजा व्यस्त थे। ऐसे ही समय दौवारिक ने आकर निवेदन किया— प्रभो जमिनीय गोत्रोदभवा और महर्षि औपस्ति की पत्नी ब्रह्मवादिनी भगवती ऋतम्भरा पधारी हैं उन्होंने अनुकूल अवसर पर महाराज से मिलने की इच्छा व्यक्त की है।"

राजा एकदम उठकर खड़े हो गये—"क्या कहा भगवती ऋतम्भरा स्वयं इस अभाजन को कृतार्थ करने को पधारी है! तुरन्त ले आओ!" फिर आचार्य की ओर देखकर कहा "आचार्यपाद स्वयं जाकर उन्हें ससम्मान ले आयें।

आचार्य ने राजा का अनुमोदन किया —' जा रहा हूँ महाराज, आज सविता देवता प्रसन्न जान पड़ते हैं। विद्या और तपस्या की साक्षात मूर्ति ब्रह्मवादिनी भगवती ऋतम्भरा का आगमन परम मंगल का सूचक है।"

आचार्य औदुम्बरायण भगवती ऋतम्भरा को लेकर उपस्थित हुए। राजा इतने गदगद हुए कि उनके मुँह से वाणी नहीं निकली। परम आदर के साथ प्रणिपात करके वे अभिभूत से खड़े रह गये। सारी सभा प्रत्युत्थान और प्रणिपात करके राजा की भाँति ही चुपचाप खड़ी रही। भगवती ने शान्त मृदु कण्ठ से कहा, कल्याण हो राजन! आसन ग्रहण करें। मैं एक आवश्यक सूचना देने के लिए आयी हूँ। बहुत समय नहीं लूँगी। आसन ग्रहण करें।

राजा ने भक्ति और श्रद्धा के साथ फिर अभिवादन किया – ' भगवती जब तक आसन नहीं ग्रहण करती, तब तक मैं कैसे ग्रहण कर सकता हूँ! '

फिर चन्दन काष्ठ की एक चौकी पर कुशासन बिछाकर भगवती के बैठने की व्यवस्था हुई। उनके आसन ग्रहण कर लेने के बाद राजा, आचार्य और अन्य सभासदों ने आसन ग्रहण किया। भगवती ने एक बार सभी ओर दृष्टि फिरायी, फिर राजा की ओर उन्मुख होकर कहा ' क्षमा करें राजन! राजकार्य में विघ्न उपस्थित करना अनुचित है। पर मैं थोड़ी देर के लिए एकान्त में ही बात करना चाहती हूँ। अधिक समय नहीं लूँगी। '

राजा ने सबकी ओर देखा। इंगित समझकर लोग उठ गये। आचार्य भी जाने को उद्यत हुए पर भगवती ने ही उनको रोक लिया। वे द्वार पर ही आचार्य का परिचय पा गयी थीं। इसलिए उनसे कहा, ' आचार्यपाद की उपस्थिति से मेरे कार्य में सहायता ही मिलेगी। आप रुक जायें।" आचार्य औदुम्बरायण राजा की अनुमति लेकर रुक गये।

भगवती ऋतम्भरा ने कहा 'कल्याण हो राजन बहुत दुःख लेकर आ रही हूँ। प्रजा को अपार कष्ट है। आप आत्मतत्त्व के जिज्ञासु हैं। आपसे यह आशा करती हूँ कि प्रजा का कष्ट दूर करने का कुछ उपाय करेंगे। आप समर्थ हैं इन

दुखिया का दुख दूर करने का निमित्त बने। राजन मनुष्य निमित्त ही बन सकता है। म केवल इतना ही निवदन करने आयी हूँ।"

राजा ने विनीत भाव से कहा आज्ञा शिरोधार्य है। भगवती यथासाध्य प्रयत्न कर रहा हूँ। असावधानी के कारण विलम्ब हुआ। बहुत दुष्कृत हो गया है। अब आपके आशीर्वाद से मेरे प्रयत्न दृढ और सफल होगे इसमें रत्तीभर भी सन्देह नहीं।"

फिर राजा के इंगित पर आचार्य औदुम्बरायण ने सारी बातें बतायी। भगवती सुनकर प्रसन्न हुई। बोली, "महाराज, मुझे अधिक कुछ नहीं कहना है।' यह कहकर वे उठने लगी।

आचार्य ने तभी हाथ जोडकर निवेदन किया—'क्षण भर रुके भगवती। एक हमारी विपदा की कथा भी सुन ले।"

माताजी ने उनकी ओर आश्चर्य से देखा— 'आपकी विपदा क्या है आचार्य कहिए, मैं अवश्य सुनूगी।

आचार्य औदुम्बरायण ने जाबाला की अस्वस्थता और उसके लिए अब तक किये गये उपचारो की बात बतायी। यह भी बताया कि इस समय कोहलीया द्वारा गन्धर्व-पूजन का जो आयोजन किया जा रहा है वह जाबाला के नैरुज्य के लिए ही किया जा रहा है। राजा जानश्रुति ने अत्यन्त कातर भाव म इतना और जोड दिया कि वे कन्या के लिए उनका आशीर्वाद भी चाहते है। उनके समान ब्रह्मवादिनी के आशीर्वाद से लडकी अवश्य स्वस्थ हो जायगी। माताजी को इस बात से चिन्ता हुई कि जाबाला इतनी अस्वस्थ हो गयी है कि लोग अनुमान कर रहे है कि उस पर किसी गन्धर्व का ऐसा आवेश हुआ है कि वह भीतर ही भीतर उसका रक्त चूस रहा है। वे जाबाला म मिलना अवश्य चाहती थी, पर ऐसी आशका उन्हे नहीं थी कि वह रुग्ण हो गयी है। पहले जो कुतूहल था वह उत्कट आशका म बदल गया। चिन्तित भाव से बोली, म उसे देखूगी महाराज।'

राजा जानश्रुति को ऐसा लगा जैसे अथाह जल म डूबते हुए का सहारा मिल गया हो। गदगद होकर भगवती को भीतर ले गये। आचार्य भी साथ थे।

जाबाला ने जब सुना कि स्वय भगवती ऋतम्भरा आयी है तो उसे बडी प्रसन्नता हुई। उसने ऋषि औपस्ति और उनकी सहधर्मिणी भगवती ऋतम्भरा के बारे मे बहुत सुन रखा था। उसने कभी सोचा भी नहीं था कि घर-बैठे उनके दर्शन हो जायेग। उसने अपना भाग्य सराहा। यद्यपि वह दुर्बल थी पर समाचार सुनते ही वह एकाएक उठ गयी और आकर भगवती के चरणो म साष्टाग प्रणाम किया। भगवती ने उस सौभाग्यवती होने का आशीर्वाद दिया और स्नेहपूर्वक उसके सिर पर हाथ फेरा। जाबाला कृतकृत्य हो गयी।

आसन ग्रहण करने के बाद भगवती ने राजा और आचार्य से कहा कि आप लोग जिस महत्त्वपूर्ण मन्त्रणा म लगे थे उसे ही पूरा करें। म बिटिया से थोडी देर अकेले मे बात करूगी।

दाना चले गये। जाने से पहले आचार्य ने जावाला को बुलाकर कहा, 'बेटी, भगवती अभी ही बहुत चलकर यहाँ आयी है, अभी तक हम उनके अध्यपाद्य की व्यवस्था भी नहीं कर पाये हैं। आते ही अपनी विपदा की बात ही शुरू कर दी है। हम राज सवारी से मसान जा रहे हैं। भगवती की अभ्यर्थना में कोई त्रुटि नहीं होनी चाहिए। तू अस्वस्थ है पर यथाशक्ति कुछ उठा न रखना। हम तो भगवती की आज्ञा से जा रहे हैं।"

जावाला ने कहा तात मैं इतनी अस्वस्थ नहीं हूँ कि भगवती की सेवा न कर सकूँ। भगवती तो अकारण स्नेही हैं आप चिन्ता न करें।"

जावाला ने भगवती के मना करते रहने पर भी बड़े-से ताम्र-पात्र में जल ले आकर भक्तिभाव से भगवती ऋतम्भरा के चरण धोये। उसने देर तक उनका मृदु संवाहन किया और फिर आँचल से पोछ दिया। भगवती की आँखों में पानी भर आया —"बेटी परमात्मा तेरा कल्याण करें। तू मुझे अनावश्यक मान दे रही है। आ इधर आ तू मेरे पास बैठ। सुना है तू बचपन से ही मातृहीन है। आ बेटी, तू मुझे अपनी माँ समझ और बता कि तुझे क्या कष्ट है ?" स्नेह से माता ने उसे अपनी बगल में बैठाया।

जावाला की आँखों से जलधारा फूट पड़ी। रुद्ध-कण्ठ से उसने कहा, भगवती, आप माँ से बड़ी हैं आज मैं कृतार्थ हुई।'

'नहीं बेटी, माँ से बड़ी कोई नहीं होती। तू मुझे माँ ही समझ। मुझे भगवती कहकर अनुचित और असत्य सम्भाषण न कर। मुझे माँ कहकर बोल, मुझे माँ कहकर पुकार ! कह तो भला !"

आदर और भक्ति से विजड़ित कण्ठ से जावाला ने कहा, माँ !"

भगवती ने हँसते हुए कहा, 'नहीं हुआ तेरा स्वर सहज नहीं है। इसमें आदर और श्रद्धा अधिक है ममता कम है। तू मुझे ब्रह्मवादिनी समझकर आदर दे रही है। जानती है बेटा एक मातृ पितृ हीन किशोर मुझे रास्ते में मिल गया। बड़ा ही भोला। वन में रहकर तप करता रहा। उसे पता नहीं था कि पुरुष और स्त्री में क्या भेद है। बिचारे ने कभी किसी स्त्री को देखा ही नहीं था। उसने जीवन में पहली बार एक लड़की को देखा था। उसी ने उसे बताया कि स्त्री पदार्थ क्या होता है। दूसरी स्त्री मैं मिल गयी। कहने लगा, *'आपको क्या कहकर सम्बोधित करूँ ?'* मैंने कहा तेरी उमर के लड़के मेरी उमर की स्त्री को माँ कहकर पुकारते हैं।' उसने मान लिया। जब वह माँ कहकर पुकारता है तो हिया जुड़ा जाता है। अपने पेट का जाया भी उस सहज भाव से माँ नहीं कहता होगा। हिया जुड़ा जाता है बिटिया इतना बड़ा हो गया है पर छोटे शिशु की तरह आज्ञा मानकर चलता है। भगवान ने मुझे कोई सन्तति नहीं दी, पर जीवन भर ब्रह्मवादियों के साथ आत्मतत्त्व की चर्चा करने के बाद भी मेरी यह लालसा नहीं गयी कि कोई माँ कह कर पुकारे। उसे भेजकर भगवान ने मेरी यह लालसा पूरी कर दी है। स्त्री माँ बनकर ही चरितार्थ होती है बेटी ! तू भी उसी की तरह मुझे माँ कहकर पुकारेगा

तो मुझे अपार सुख मिलेगा। मगर तू अभी उसके समान सहज नही हो पा रही है।"

जावाला की आखें आश्चर्य से टँग गयी। यह तो उसी तरुण तापस की बात है। क्या वह भगवती के पास पहुँच गया है? वैसा तो कोई दूसरा नही हो सकता, एकमेवाद्वितीयम् तो उसी को कहा जा सकता है। उसने आग्रहपूर्वक पूछा, 'क्या नाम है उसका मा?" इस बार स्वर में कुछ अधिक सहजता आ गयी थी।

"नाम? रिक्व मुनि का पुत्र है, इसलिए लोग उसे रैक्व कहते हैं। वह अपना नाम रैक्व ही बताता है। विचारे को लोक व्यवहार का ज्ञान ही नही था।"

नाम और गुण सुनकर जावाला को धक्का लगा। यह तो उसी का नाम है। वह चकित-सी, भ्रमित सी भगवती ऋतम्भरा का मुह देखती रह गयी। एकदम चुप रहना ठीक नही लगा, इसलिए केवल कुछ कहने के लिए ही उसने कहा, "ऐसे लोगो पर मुझे बडी दया आती है मा! विचारे के न पिता न माता न भाई, न बहिन। माता भाई या बहिन तो मेरे भी नही है पर मै उसकी तुलना मे कितनी भाग्यवती हूँ पिता है तातपाद के समान स्नेही गुरु हैं, घर द्वार है। उस विचारे के तो कोई नही है, सब प्रकार से वंचित है!'

माता ने कहा, 'तेरा मन कोमल है तेरे हृदय मे सौभाग्य वंचिता के प्रति सहानुभूति है, यह देखकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई है। बेटी तेरे पिता के राज्य मे ऐसे सैकडो सौभाग्य वंचित है। सबके प्रति तेरे हृदय मे सहानुभूति होनी चाहिए।"

जावाला को दूसरी ओर से धक्का लगा—"सुना है मा! आप मुझे कुछ रास्ता सुझायें। कैसे उनकी सेवा करूँ?"

उसी के लिए तो आयी हूँ। तेरा सहयोग मिलेगा तो दीन दुखिया के लिए कुछ किया जा सकेगा। रैक्व भी कुछ करने को व्याकुल है। यहा से लौटकर जाऊँगी तो वह भी यही पूछेगा कि मा, दुखिया की सेवा करने का रास्ता बताओ।' कुछ तो करना ही पडेगा, बेटी! लोग जब भूख प्यास से व्याकुल हो, तो उनके लिए सोचते रहने का समय तो मिलता नही। राजा और आचार्यपाद भी कुछ करने जा रहे है। तू थोडा स्वस्थ हो ले, तो जा। करने को तो बहुत पडा है।'

"हाँ मा, मुझे भी कुछ रास्ता बताओ। रैक्व को तो आप बहुत प्यार करती है, उसे तो रास्ता सुझायेंगी न? वही मुझे भी सुझाये। अच्छा मा, रैक्व तो बहुत भाग्यवान् जान पडता है, उसे आप जैसी महीयसी माता का प्यार मिला है।"

रैक्व को प्यार करती हूँ—रैक्व के लिए नही अपने लिए, बेटी!

'अपने लिए?

"हा बेटी अपने लिए।"

"आपको क्या कमी है कि आप अपने लिए, रैक्व को और मुझे इतना प्यार करेंगी?"

' सुन बेटी, एक पुरानी बात तुझे बता रही हूँ। यह कथा मैंने महान् ब्रह्मवादी

ऋषि म गु ी है। गु ागा ?'

सुनूँगी माँ!

ता मुर ! ग्या ा है याज्ञवल्क्य जब अपने आश्रम को छोड़कर जाने लगे, तो उ ्हा अप ा ामित्त[पत्नी मैत्रेयी म कहा ग्या मैं ग्या गृहस्थाश्रम म पड़ रहता ा,ा ाहता मैं ऊपर उठना चाहता हूँ। आओ तुम्हारा कात्यायनी के साथ निपटारा कर दूँ।

मैत्रेयी ा ा भगवन्! अगर यह सारी पृथ्वी वित्त म पूर्ण होकर मेरी हो जाय तो क्या म उस ा अमर हो जाऊंगी? याज्ञवल्क्य न कहा ाहीं उस अवस्था ा अा्य साधन सम्पन्न व्यक्ति ा ैस आचर[विहार करत है, वैसे तुम्हारा जीवन होगा पर ाा्य ा अमरता ाा ी ा ाशा ाहीं हो सकती।

मैत्रेयी ा ा जिनस म अमर न हो सकूँ ा ा ा लेकर मैं क्या करू? भगवन्! अमर ा ा ा ाा रहस्य आप जानते है, मुझे ता उसी का उप ा दीजिए।

'याज्ञवल्क्य ा कहा, तू तो मेरी प्रिय है, और बड़ी प्रिय बात बोल रही है। आ बैठ म तुझे यह व्याख्या करके समझाता हूँ, ज्यों-ज्यों मैं बोलता जाऊँ मेरी बात ध्यान देकर सुनती जाना।'

फिर उन्होंने कहना शुरू किया पति की कामना के लिए पति प्रिय नहीं होता अपने आत्मा की कामना के लिए पति प्रिय होता है, पत्नी की कामना के लिए पत्नी प्रिय नहीं होती अपने आत्मा की कामना के लिए पत्नी प्रिय होती है, पुत्रों की कामना के लिए पुत्र प्रिय नहीं होते अपने आत्मा की कामना के लिए पुत्र प्रिय होते है, वित्त की कामना के लिए वित्त प्रिय नहीं होता, अपने आत्मा की कामना के लिए वित्त प्रिय होता है, ब्रह्मशक्ति की कामना के लिए ब्रह्म प्रिय नहीं होता अपने आत्मा की कामना के लिए ब्रह्म प्रिय होता है, क्षात्र शक्ति की कामना के लिए क्षत्र प्रिय नहीं होता अपने आत्मा की कामना के लिए क्षत्र प्रिय होता है, लोकों की कामना के लिए लोक प्रिय नहीं होते अपने आत्मा की कामना के लिए लोक प्रिय होते है देवों की कामना के लिए देव प्रिय नहीं होते, अपने आत्मा की कामना के लिए देव प्रिय होते हैं, भूतों की कामना के लिए भूत प्रिय नहीं होते अपने आत्मा की कामना के लिए भूत प्रिय होते हैं, इस सब-कुछ की कामना के लिए सब कुछ प्रिय नहीं होता अपने आत्मा की कामना के लिए यह सब-कुछ प्रिय होता है। जिस आत्मा के लिए यह सब-कुछ प्रिय होता है वह आत्मा ही तो द्रष्टव्य है श्रोतव्य है मन्तव्य है निदिध्यासितव्य है—उसी को देख उसी को सुन उसी को जान उसी का ध्यान कर! मैत्रेयी! आत्मा के ही देखने से सुनने से समझने से और जानने से सब गाँठें खुल जाती हैं।' "

"यह तो बड़ी विचित्र बात है! सब कुछ स्वार्थ के लिए ही है?'

'नहीं बेटी इस वचन का अर्थ लोगों ने अपने-अपने ढंग से कर लिया है। मेरे पति महर्षि औपरितपाद ने इसका जो भाव मुझे बताया है, वही मुझे प्रिय

लगता है। सारे कथन का अर्थ मैत्रेयी के प्रश्न के उत्तर मे समझना चाहिए। है न बेटी ?"

'हा, मा, सो तो है ही। महर्षि क्या कहते है ?

देख बेटी मैत्रेयी का प्रश्न था कि धन-धान्य से अमरता मिल सकती है या नही ? जिस चीज से मैं अमर न होऊँ उसे लेकर क्या करूँगी ! यही था न प्रश्न ?"

"हा उनका प्रश्न तो यही था।'

'याज्ञवल्क्य ने साफ कहा कि धन धान्य से अमरता नही मिलेगी। तो फिर कैसे मिलेगी ? अपनी ओर देखने से, धन धान्य ही को सब-कुछ मान लेने से नही। यही कहा था न ?"

'ऐसा ही लगता है।'

लगता है नही यही ठीक है। कोई भी वस्तु या प्राणी इसलिए प्रिय नही है कि वह अपने-आपमे प्रियता रखता है, वस्तुत सचराचर रूपराशि भगवन्त अर्थात परम वैश्वानर, रूप रूप मे अपने को अभिव्यक्त कर रहे हे। हर मनुष्य मे वे अपने को अभिव्यक्त कर रहे हैं। वे ही आत्मा रूप मे हर व्यक्ति मे विराजमान है। प्रत्येक का अपना अलग स्व भाव है। उसी अलग स्व भाव से वे मनुष्य मे प्रियता उत्पन्न करते है। हर आदमी का अपना-अपना भाव स्वभाव अलग हैं। पर है सभी परम वैश्वानर की अभिव्यक्ति। तू जिसे प्रिय समझती है वह तेरे स्व भाव की प्रवृत्ति है। मैं जिसे प्रिय समझती हूँ वह मेरे स्व भाव का झुकाव है।'

"स्व भाव ?"

"हा स्व भाव। अब ससार चक्र मे पडे मनुष्य नाना कारणो से स्व-भाव' को या तो पहचान ही नही पाते, या पहचानकर भी उपेक्षा कर देते हे।"

"यह तो विषम सकट है।

'सो तो है। इतना बडा सकट भी नही है। केवल यह बोध बना रहना चाहिए कि मै जिस प्रिय दृष्टि से देख रहा हूँ वह उसके कारण नही बल्कि अपने अन्तरतर के देवता के कारण। वह देवता ही स्व भाव का प्रेरक है। स्व भाव की उपेक्षा से उसी का अपमान होता है। धन हमको प्रिय है इसलिए धन ही सबकुछ है ऐसा नही समझना चाहिए। जो ऐसा समझेगा वह अन्तरतर के देवता की उपेक्षा करेगा। दृष्टि बदलने की जरूरत है। उसी को याज्ञवल्क्य ने जोर देकर समझाना चाहा था।"

"तो मा किसी का प्रिय लगना अन्तरतर के देवता का इशारा होता है ?"

"वह अन्तरतर का देवता अनन्त सम्भावनाओ का द्वार है। दृष्टि सदा उसी पर निबद्ध रहनी चाहिए, बाहर दिखायी देनेवाले पर नही।"

"इसके लिए क्या करना चाहिए मा ?'

मुझे तो लगता है बेटी कि परमपिता का निरन्तर ध्यान और उन्ही से प्रार्थना करते रहना चाहिए। उनका अनुग्रह हो जाता है तो यह सहज ही

जाता है।"

'सहज ही मिल जाता है।"

"हाँ वटी मुझे एसा ही लगता है। ऐस न रास्त म एक व्यक्ति मिला था—बिल्कुल अनपढ गँवार। उसके कोई अपना नही है। गाँव भर का मामा है। क्या ममता दी है भगवान ने उसे! बच्चो को किसी तरह जिलाय रखन और प्रसन्न रखने के लिए जी तोड परिश्रम करके साग पात जुटाता है। कहता है, उसका 'अपना' कहा जाने लायक कोई नही है इसलिए सब उसके हो गय हैं। दूर दूर स साग पात का गटठर ढोकर लाता है बरगद और गूलर के फल ल आता है, अपन आपको सकट म डालकर मधु लाता है बच्चो को खिलाता है, उनके साथ खेलता है। विचित्र विचित्र कहानिया गढकर सुनाता है और मस्त प्रसन्न रहता है। कहता है झूठी कहानिया स बच्चो का मन बहलाता हूँ, इसस भगवान खुश हो या न हो, मैं खुश हूँ।'

'अच्छा!"

'हाँ बेटी कहाँ स इतनी शक्ति पाता है? कहाँ स अपन स्व भाव पर इतनी आस्था बटोर पाता है? भगवान् का अनुग्रह न कहूँ तो इस क्या कहूँ? यह स्वाथ है? इससे बडा परमाथ और क्या हो सकता है? निश्चय ही परमात्मा का अनुग्रह उसे मिला है!"

'माँ, सुनकर मुझे रोमाच हो रहा है!"

'हो रहा है? परमात्मा का अनुग्रह है र! जब उसन कहा कि उसका कोई अपना नही है इसलिए सब अपन हो गय हैं तो मरे शरीर म भी रोमाच हो आया था। मुझे धक्का भी लगा था। मैं एसा हो क्या नही सोच पाती? सब अपन है—कितनी बडी बात है! लकिन यही बात मर मन म तो कभी नही आयी। वह क्या मुझस अधिक तत्त्वज्ञानी नहीं है? सबको इतन प्यार स अपना लना क्या सामान्य बात है? मन भी उसी रास्त जाने का सकल्प किया है। पर कठिन साधना जान पडती है। किसी की पूरी मा बनने की ल लसा मर मन म ज्यो-की-त्यो बनी हुई है। बनी हुई थी कहना चाहिए। रैक्व जैसा बेटा पाकर वह साध पूरी हुई ह। तू भी मुझे मा ही मान ले। कोई पूज्य सम्बोधन नही, सिफ माँ!

'रैक्व आपका बेटा ह, मा?'

'अब तो पूरी तरह हो गया ह। जननी तो उसकी कोई और थी, वह उस जन्म देकर छोडकर चली गयी। चली क्या या ही गयी होगी बटी, अपार आशका और भय लकर गयी होगी। नवीन प्राण को उत्पन्न करन का आनन्द और उसे पाल पासकर बडा न कर पान की भयकर पीडा का द्वन्द्व लकर गयी होगी। स्त्री क हृदय म भगवान न न जान क्या इतनी ममता दे रखी ह। नया प्राण देने और उस पाल पासकर पूण मनुष्य बनाने की दुर्वार लालसा क्या या ही दे दी गयी है? निश्चय ही यह परम पिता का अनिवाय इगित ह। बटी म जननी नही बन सकी, पर अब माँ बनन की लालसा पूरी हुई। बडा हो गया है पर ह अभी शिशु ही—

एकदम अबोध शिशु।'

'अच्छा माँ, यह वही रैक्व है जो पहले कभी एक टूटी गाडी के नीचे बैठे पीठ खुजलाया करते थे?"

'बिल्कुल वही बेटी! बडा हो गया है पर उस अपने अन्तर की धडकना को ठीक ठीक पहचानने की समय नहीं है। कोई शुभा नाम की लडकी अचानक मिल गयी थी अचेतावस्था मे। भोलेराम न उसे देव लोक का मनुष्य समझा। बडी सेवा की तब उसे होश आया। फिर उससे कहा कि मेरी पीठ पर बठ जाओ तुम्हे तुम्हारे घर पहुँचा देता हूँ। लडकी भला कैसे स्वीकार करती? मगर भोलेराम पीठ फैलाय उसके बठने की प्रतीक्षा करते रहे। जब उसने डाट दिया तो हटे, पर पीठ म सनसनाहट अभी भी बनी रहती है। मनोभव देवता की माया भी विचित्र है। मन में आ जाते है पर पकड मे नहीं आते। अब हालत यह है कि शुभा को सबम बडा ज्ञानी मानते है। पहले तो कहते थे कि वह उनकी गुरु है। अब कहते है— नहीं मा, गुरु तो तुम हो मगर शुभा अवश्य तत्त्वज्ञानी है।' अब बता, ऐसे वयस्क शिशु को क्या कहा जाय?"

जाबाला अब सहज हो गयी। बोली आपके पास जाके कुछ सुधर गये होगे, यहा तो लोग कहते थे कि बडा उद्दण्ड है सबको शूद्र कहता है। आचार्यपाद से भी अशिष्ट व्यवहार किया। गुरुभक्त ऐसे कि सबसे कहा करते थे आप कस जानेंगे, शुभा से तो आपकी भेट हुई नही! तातपाद का तो अल्पज्ञ भी कह दिया था। पर अब आपके स्नेह से कुछ सुधरे जान पडते है।'

'ऐसा? उसने आचार्य के साथ अशिष्ट व्यवहार किया था? मैं उसे डाटूगी।"

"डाटना मत मा, उस बिचारे का क्या दोष है? उसने लोक व्यवहार जाना नही था। समझा देना, समझदार अवश्य है, मैंने उसे जो कुछ समझाया था, वह समझ गया था। डाटना मत भोला है न?"

"तूने? तूने उसे कब समझाया?"

जाबाला जो बात दीर्घकाल से छिपाती आ रही थी, उसके इस तरह अचानक खुल जाने से उसका चेहरा लज्जा से लाल हो गया। परम ब्रह्मवादिनी भगवती ऋतम्भरा के मुख पर उल्लास-चंचल भाव खिल उठे। वे एकटक उस मनोहर मुख की शोभा निहारती रही। जाबाला की आँखें झुक गयी। फिर धीरे-धीरे बोली, "मुझे ही तो वह शुभा कहता है, मा!"

तुझे! यह तो विचित्र बात है। मेरे मन मे यह बात आयी अवश्य थी, पर पूरी तरह स्पष्ट नहीं हो पायी थी। तो उसकी शुभा तू ही है? सचमुच तू शुभा है, कल्याणमयी!"

जाबाला की आखे झुकी ही रही। माता ने उसके सिर पर स्नेह से हाथ फेरा। बोली, 'शुभा! बेटी!"

जाबाला की आँखें अश्रुपूर्ण, वाणी रुद्ध। बडे आयास से बोली, 'मां!"

भगवती ऋतम्भरा ने प्रसग बदलने का प्रयत्न किया।

'अपनी ही बात कहती रह गयी बेटी, तेरे बारे म तो कुछ जाना ही नही। बता, तू क्या इतनी क्षीण-दुबल होती जा रही है? अपना कष्ट तो बता। मं तुझे स्वस्थ और प्रसन्न दखना चाहती हूँ। मेरे बेटे की गुरु स्वस्थ रह, इसमे अब मेरा स्वाथ भी जुड गया है। बता, तुझे क्या कष्ट है?"

"नही मा !"

नही क्या रे!"

' उस भले वयस्क शिशु न नासमझी म कह दिया, उसे ही आप भी मान रही है।"

' यह तो मैने ऐसे ही कह दिया। छोड इस बात का। अपना कष्ट बता।"

"माँ, वह कहा है? उसे एक बार देखना चाहती हूँ।"

वाह, वह तो तुझे ही खोज रहा है। कहता है, गाडी क पास रहूँगा तो शुभा मिल जायेगी। भोलेराम का विश्वास है कि शुभा उस गाडी के पास ही कही चक्कर काट रही है। गये होगे गाडी के पास ही। पर जानती है? अब, वह गाडी पर सागपात लादकर गाव के दीन दुखिया की सवा करना चाहता है। कहता है, सच्चा आत्मज्ञान यही है। तू अगर दिख गयी तो तुझे भी गाडी मे जोत देगा। अभी उसस मिलना ठीक नही होगा। इस समय गाडी ठीक कर रहा हागा।"

मा !"

"हा रे मैने कहा कि गाडी तेरी नही शुभा की है। इस पर जानती है, उसने क्या कहा? कहता ह मा मुझे लगता है कि जो चीज शुभा की है वह मेरी भी है!"

"मा !"

अच्छा छोड इस बात को। तू अपना कष्ट बता!"

जाबाला की आखा स आसू झरन लग— माँ, कोई भी कष्ट नही है, उस दखन की इच्छा ही एक कष्ट है!'

माताजी स्नेहाश्रुपूरित नत्रा स जाबाला को देखती रह गयी। थोडा सम्हलकर उसन रक रुककर कहा, "मुझस बडा अपराध भी हो गया है। म पाप भावना का शिकार भी हो गयी हूँ। गाडीवान मर गया उसके परिवारवालो की किसी न खोज-खबर भी नही ली। पिताजी बेटी के सकुशल लौट आने की खुशी म एस मगन हुए कि उस बिचार की पत्नी और बच्चे की सुध ही न रही। बडा पाप हो गया है, मा! मेरा प्रायश्चित्त क्या होगा?"

' तर पिता के भूल जान का कारण तो तेरा सकुशल लौट आना हुआ, पर तू क्या भूल गयी, बटी?'

बुद्धि मारी गयी थी माँ! दिन रात उस भोलराम की बात ही सोचती रह गयी और कुछ की सुध हा नही रही।"

' सुध ही नही रही?"

'हाँ माँ बड़ा पाप हो गया। सुना है उसकी विधवा अपने बच्चे को लेकर कहीं चली गयी है। बड़ा अनर्थ हो गया, माँ!"

'सो तो हो ही गया।'

वह शल्य भी मन के भीतर गहराई में धँस गया है। न जाने बिचारी कहाँ है! उसका शाप भी तो मुझ पर पड़ेगा। क्या करूँ माँ?'

'भगवान वैश्वानर कल्याण करेंगे। तू उसकी चिन्ता छोड़ वह मिल जायगी।"

'कैसे मिलेगी माँ? मिलेगी तो उससे क्षमा माँगूगी और यथाशक्ति उसका कष्ट कम करने का प्रयत्न करूँगी। पर वह कैसे मिलेगी?"

"अपराध तेरा ही नहीं है उस रैक्व का भी है जिसने तेरे मन को ऐसा मोहग्रस्त किया कि तू कर्त्तव्य भी भूल गयी।"

"नहीं माँ, उस विचारे का क्या दोष! अपराध मुझसे ही हुआ है।'

'पर प्रायश्चित्त उसे भी करना चाहिए। किसी की बुद्धि भ्रष्ट कर देना क्या उचित है?"

जाबाला के चेहरे पर और भी लालिमा प्रकट हुई। अपने आपसे ही बोली, 'दोष तो मेरा ही है, मैं उसकी चिन्ता में खो जाऊँ तो वह क्या दोषी होगा?' थोड़ी देर तक उसके मनोभावों का उतार चढ़ाव ध्यान से देखती हुई भगवती ऋतम्भरा शान्त बैठी रहीं। फिर बोली 'उसने खोज लिया है बेटी उसने तेरी ओर से प्रायश्चित्त कर लिया है।"

'कर लिया है, माँ? हे भगवान!

ग्यारह

माताजी के चले जाने के बाद रैक्व वहीं रुक गये। वह समझते थे कि माताजी जल्दी ही लौट आयेंगी। माताजी ऐसा ही कह भी गयी थीं। बहुत देर तक प्रतीक्षा करने के बाद भी वे नहीं लौटीं तो उन्हें चिन्ता होने लगी। राजा अच्छा आदमी नहीं जान पड़ता। इतने लोग कष्ट में हैं और उसे कुछ पता ही नहीं। माताजी से मिलेगा भी या नहीं, कौन जाने। फिर यह भी हो सकता है कि वे शुभा से मिलने चली गयी हों। कैसी लगेगी उन्हें शुभा! उसकी एक आदत बहुत खराब है बात करते-करते कह देती है, 'तुम कहीं दूर छिप जाओ', और फिर चुपचाप [illegible] जाती है। माताजी को कहीं छिप जाने को कहेगी और फिर गायब हो ज[illegible]

मुझे तो अल्पज्ञ समझती है, अल्पज्ञ तो मैं था भी, पर माताजी को भी अगर ऐसा ही समझा तो मैं उसे कभी क्षमा नहीं करूँगा। पर वह क्षमा माँगने आती भी तो नहीं। मगर नहीं, ऐसा वह नहीं करेगी। समझदार तो है। ज्ञानी भी है, बात ठीक कहती है। उसकी बात न मानने से ही तो मेरी पीठ में खुजली हो गयी। उस समय रैक्व की पीठ की सनसनाहट बढ़ गयी। बार बार हाथ पीठ पर जाने लगा। शुभा को उचित-अनुचित का विवेक अवश्य है। कहीं माताजी से मेरी शिकायत न कर दे। कहेगी रैक्व गँवार है उचित-अनुचित नहीं जानता। कह सकती है। उसे अपने को विवेकशील समझने का गर्व है। तो ठीक है पर दूसरों की चुगली करना कौन सा विवेक है! माताजी क्यों नहीं आ रही हैं? क्या कुछ कह तो नहीं दिया? मगर माताजी उसकी बात क्या सुनने लगीं? मगर नहीं कहेगी। बहुत मधुर बोलती है। उसके मुँह से कटु बात कैसे निकलेगी! फिर माताजी को देर क्या हो रही है? पता नहीं, कहाँ चली गयीं। राजा से ब्रह्म तत्त्व के बारे में बात तो नहीं करने लगीं! राजा कहता होगा, सब नाशमान है, केवल आत्मा ही अविनश्वर है? माताजी उसे अवश्य डाँटेंगी। बड़ा ज्ञानी बनता है, प्रजा के कष्ट का कोई ध्यान ही नहीं! हुँ, सच्चा ज्ञान तो वैश्वानर की आराधना है समस्त विश्व में व्याप्त परम पुरुष की सेवा। राजा अज्ञानी है!

रैक्व ऐसे ही विचारों में उलझे हुए थे कि एक व्यक्ति उनके निकट आकर बोला "*प्रणाम स्वीकार करें ब्रह्मचारीजी!*"

रैक्व ने आँख उठाकर देखा—मामा! आश्चर्य से चकित होकर पूछा "मामा, आप यहाँ कहाँ?'

मामा ने अपना प्रश्न किया— माताजी कहाँ हैं?"

रैक्व ने कहा कि माताजी राजा से मिलने गयी हैं। प्रयत्न कर रही हैं कि दीन दुखिया के कल्याण के लिए राजा कुछ करे।

मामा ने प्रसन्नता प्रकट की।

'अच्छा ब्रह्मचारिन, आपकी माताजी क्या परम ब्रह्मवादिनी भगवती ऋतम्भरा हैं?"

मेरी मा हैं।"

कल बड़ा प्रमाद हो गया। पहचाना नहीं। बच्चों को छू देतीं तो वे नीरोग हो जाते।"

माताजी कह रही थीं कि सबसे बड़ी तपस्या मामा ही कर रहा है—और सब तप बेकार है।'

नहीं ब्रह्मचारी, मैं अज्ञानी माया के चक्कर में पड़ा हूँ। मैं तपस्या क्या जानूँ! पर कल सचमुच प्रमाद हो गया। भगवती माँ का आशीर्वाद बच्चों को नहीं दिला सका। बाद में लोगों से उनका नाम मालूम हुआ तो पछताकर रह गया।"

मामा, तुमने यह तो बताया ही नहीं कि इधर कैसे आये। क्या कुछ फल

फूल सग्रह करोगे ? दखो मुझे भी बताओ तो मैं भी तुम्हारी कुछ सहायता कर सकता हूँ। म गटठर भी ढा सकता हूँ। माताजी की आज्ञा लकर तुम्हार साथ चल सकता हूँ।

मामा ठठाकर हँसा – 'राम-राम ब्रह्मचारीजी क्या कह रह ह आप ! बोझा ढोना आपका काम है ? इसके लिए तो विधाता न हम लोगा को बना ही रखा है। आप वद शास्त्र का अध्ययन करेंग तप करेंग धम का उपदश देग तभी तो हम पामर जना का कल्याण होगा।

रक्व आश्चय म उसकी ओर देखन लग। मामा ने कहा आप पूछ रह थे न, कि मैं इधर कम आया। राजा ने घोषणा की है कि कोहलीया का गन्धव-पूजन नाटक होगा। उसके लिए जो लाग रगभूमि का निमाण करगे उन्ह अन्न दिया जायगा। सुनत ही चल पडा। सर भर अन्न मिल जाये तो बच्चा को खिलाऊँगा। बिचारा न बहुत दिना स अन्न का मुह भी नही दखा।'

गन्धव-पूजन क्या होता है ?'

'आप नही जानते ? कैस जानेंगे ? आप तो वन म तप करते हैं। राजा की लडकी बीमार है। लोग कहते है कि उस पर गन्धव का आवेश ह। भीतर-ही-भीतर वह उसका रक्त चूस रहा है। बिचारी एकदम ठठरी हो गयी है। उसी की शान्ति के लिए यह आयाजन है।

"राजा की बेटी बीमार है ? शुभा बीमार है ? क्या हुआ है उस ?"

'बताया न कि गन्धव रक्त चूस रहा ह। थोडी दूर पर आप एक टूटी गाडी दखेंगे। वही राजकुमारी कभी गयी थी। गन्धव वहो उसके शरीर म घुस गया।"

कहा ह वह गाडी ? मुझे दिखा दो।'

अर महाराज आप वहा क्या करने जायेंगे। सुना ह एक तपस्वी उसके नीच बैठकर तप करता था। गन्धव न उस धर दबोचा। वह पागल होकर कही चला गया।"

'पागल होकर ?

'हा महाराज लाग वहा जाने से डरते ह। म तो जाता हूँ। मुझे क्या पागल बनायगा ! मैं तो पहले स ही पागल हूँ। मैन वहा कोई गन्धव नही दखा। मेर पास आयेगा तो वह भी पागल हो जायगा।'

मामा हँसने लगा। फिर बोला 'राजकुमारी का तो वह खून ही चूस रहा है। कुछ लाग तो कहते है कि राजकुमारी भी पागल हो गयी है !

रैक्व के चेहरे पर परेशानी क भाव दिखे। मामा न समझा कि इस समाचार म वह दुखी हुए है। बोला, 'कोई चिन्ता की बात नही ह महाराज कोहलीय लोग गन्धव शान्ति के बहुत उत्तम उपाय जानते है। धर्मात्मा होते हैं महाराज !"

'कोहलीय लोग क्या करते हैं ?"

'नाटक करत है महाराज ! आजकल गाँवा म नाटक-नाच करनवाल भ्रष्ट हो गये हैं। कोहलीय वस नही है। वे कशिकी वृत्ति को नही मानत, इसलिए उनकी

पवित्रता बनी हुई है।"

"कैशिकी वृत्ति ?"

'हाँ महाराज ! कोहल मुनि भरत मुनि के प्रधान शिष्य थे। उन्हीं का सम्प्रदाय कोहलीय सम्प्रदाय कहा जाता है। ये लोग मानते हैं कि भरत मुनि ने अपने नाटयशास्त्र मे केवल भारती वृत्ति का प्रवर्तन किया था, जिसमे शब्दो के द्वारा ही भाव प्रकट करने पर जोर दिया जाता है। और दो वृत्तियाँ भी वे लोग मानते है लेकिन चौथी वृत्ति कैशिकी को वे लोग नही मानते।"

"कैशिकी वृत्ति क्या होती है ?"

'ऐसा होता है, महाराज, कि मनुष्य ही देवता या गन्धर्व का रूप धारण करके रंग भूमि पर उतरता है। इसमे अप्सराओ की भी भूमिका होती है। कोहलीय लोग कहते हैं कि अप्सराओ की भूमिका बालको या किशोरो से करायी जानी चाहिए, स्त्रियो से नही। परन्तु जो लोग कैशिकी वृत्ति को मानते हैं, वे अप्सराओ और देवियो की भूमिका मे स्त्रियो से अभिनय कराते है। वे लोग कहते है कि स्त्रियो का अभिनय स्त्रियाँ ही करें, यही स्वाभाविक है, परन्तु कोहलीय लोग लडको को ही स्त्री की भूमिका मे उतारते है। उनका कहना है कि रंग भूमि मे स्त्रियो के अभिनय करने से अधर्म की वृद्धि होती है और धर्म का ह्रास होता है।"

'यह बात कुछ समझ मे नही आयी।"

"कैसे समझेंगे, महाराज ! आप लोग तो वीतराग है। जब स्त्रियाँ सज धज कर रंगभूमि पर उतरती हैं तो साधारण पुरुषो मे उनके प्रति आकर्षण पैदा हो जाता है। फिर स्त्री-पुरुष का मिलन होता है और बच्चे पैदा होते है जो वर्णसंकर होते हैं। उनसे समाज नष्ट होता है। स्त्री और पुरुष का मिलन होगा तो बच्चे तो पैदा होगे ही।"

'बच्चे पैदा होगे, कैसे ?"

"स्त्री-पुरुष के मिलन से बच्चे तो पैदा होगे ही, महाराज ! यही तो प्रकृति का नियम है। इसीलिए तो ऋषियो ने विवाह के नियम चलाये हैं। विवाह से जो बच्चे पैदा होते हैं वे धर्मसंगत होते हैं, उनसे समाज को बल मिलता है। और जो बच्चे बिना विवाह के उत्पन्न होते है, वे वर्णसंकर होते है और अधार्मिक होते है। कोहलीय लोग मानते है कि समाज की रक्षा के लिए यह आवश्यक है कि स्त्रियो की भूमिका मे स्त्रियाँ न उतारी जायें, बालको से ही काम चला लिया जाय। इन बालको को वे लोग बहुत शिक्षा देते है। उन्हे भ्रूकुंश कहा जाता है।'

'भ्रूकुंश का क्या मतलब ?"

"अब सारी बातें तो मैं भी नही बता सकता, गँवार आदमी हूँ। मगर एक बार मैने एक भ्रूकुंश से पूछा था कि तुम लोगो को ऐसा नाम क्यो दिया गया।

क्या बताया उसने ?"

उसने बताया कि स्त्रियो मे भ्रू विलास, भ्रू वंजना और आँखो का अभिनय सहज और स्वाभाविक होता है। उनकी आँखो की बनावट ही कुछ ऐसी होती है।

पुरुष वसा नही कर पाता। बहुत शिक्षा लने के बाद पुरुषो मे आखो और भ्रूओ क अभिनय की योग्यता आती है। इन लागा को भ्रूआ का अभिनय वडे परिश्रम स सीखना पडता ह। इसीलिए उनको भ्रुकुश कहते है। विना मेहनत किय काई कला नहीं आती है, महाराज ! '

'तो य लोग स्त्रियो का सा अभिनय कर देत है ? आश्चय है ! '

' कर ता लते ही है महाराज पर उनकी वाणी उतनी मीठी नही होती। भारती वृत्ति मे ता वाणी का ही महत्त्व है।'

'तुम ठीक कह रहे हो मामा ! माताजी का गाना सुना है ?"

' नही, महाराज !"

'तो तुम क्या समझाग कि वाणी की मिठास क्या होती है ? '

' ऐसा भाग्य कहाँ ह, महाराज कि माताजी का गाना सुन सकू !"

' शुभा को बोलते सुना है ?"

' उनका तो नाम भी नहीं सुना, महाराज !"

' तो तुम कैस जानोग कि वाणी की मिठास क्या चीज हाती है ? मैंने सुना है, मैं जानता हूँ।"

"सो तो है हा। '

'अच्छा मामा, तुम अभी वता रह थे कि ऋषि लोगो ने विवाह के नियम चलाये है। मुझे वताओ कि विवाह क्या होता है !"

मामा ने आश्चर्य स ब्रह्मचारी की ओर देखा। यह ब्रह्मचारी क्या यह भी नही जानता कि विवाह क्या हाता है। बोला, "विवाह नही जानते, महाराज ? आश्चय है। विवाह स्त्री के साथ पुरुष का होता है। दाना देवताआ की साक्षी रख कर, अग्नि की प्रदक्षिणा करके यह शपथ लेत ह कि जीवन भर एक-दूसरे के साथ रहगे। दोनो मिलकर एक हो जात हैं।'

' एक हा जात है ? '

"हाँ महाराज विवाह क विना स्त्री भी आधी ही रहती है और पुरुष भी आधा ही रहता है। विवाह से मिलकर व दोना पूरे मनुष्य वनत हैं।"

'पूरे मनुष्य वनत हैं ?'

"हा, महाराज ! '

' तुमने विवाह किया है ? '

"मेरे जैस का कौन अपनी लडकी देगा ? जिसक पास घर नही, भूमि नही, माता नही, पिता नही, उसे क्या कोई लडकी देगा ?"

जिसके पास घर भूमि आदि नही होता, उसका विवाह नही होता ?"

'प्राय नही होता, महाराज। मगर मैं ता विवाह न होन स निश्चिन्त ही हो गया हूँ। विवाह होता तो बच्चे होते उनकी चिन्ता मे दिन-रात परेशान रहना पडता, किसी और की सेवा करने का समय ही नही मिलता। अब भगव न न मुझे सब ओर से मुक्ति दे दी है, इसलिए निश्चिन्त हाकर सेवा करता हूँ।'

"तो विवाह एक झंझट है ?"

'झंझट भी है, महाराज, पर इसके बिना चलता भी तो नहीं।"

'नहीं चलता ?

'कहां चलता है महाराज ? आपके समान तपस्वी ब्रह्मचारी कितने हैं ?"

रैक्व समझने की कोशिश करने लगे। मामा की बातें उन्हें विचित्र लगीं। विवाह के लिए घर और भूमि का होना आवश्यक है। जिसके पास यह सब नहीं है, उसे कोई पिता अपनी लडकी नहीं देता।

'अच्छा, पिता के दिये बिना कोई लड़की विवाह नहीं कर सकती ?"

"राजा लोगों में तो सुना है, महाराज, कि गन्धर्व विवाह भी होता है, पर हम गरीबों में वर और कन्या के माँ बाप ही विवाह का निश्चय कर देते है।"

'गन्धर्व विवाह ? वह क्या होता है ?"

लो महाराज आपको तो दुनिया का कुछ पता ही नहीं है। जब लड़का भी सयाना हो और लड़की भी सयानी हो, और दोनों में प्रेम हो जाय, तो वे माता पिता की अनुमति मिले बिना भी विवाह कर लेते हैं इसी को गन्धर्व विवाह कहते है।"

'उस समय क्या दोनों में गन्धर्व का आवेश हो जाता है ?"

मामा ठठाकर हँसा— क्या कहते हो ब्रह्मचारीजी गन्धर्व का आवेश क्या होगा ! यह तो प्रेम में हुए विवाह का नाम है।'

रैक्व सोचने लगे। मामा ने कुतूहल के साथ उनकी ओर देखा, फिर बोला, अब आज्ञा दें महाराज, कुछ कामकाज कर आऊँ।"

रैक्व खोये रहे, मामा चला गया। मामा ने बताया था कि लोग कह रहे है कि गाडी के पास कोई गन्धर्व है उसने उसके नीचे बैठकर तप करनेवाले तपस्वी को पागल बना दिया है। पागल अर्थात विक्षिप्त ! मैं क्या विक्षिप्त हो गया हूँ ? फिर लोग कहते हैं कि राजकुमारी भी पागल हो गयी है। गन्धर्व उसके शरीर में घुसकर उसका रक्त चूस रहा है। यह राजकुमारी क्या शुभा ही है ? लोगों ने कैसे जाना कि गन्धर्व यह सब कर रहा है ? किसी ने देखा है ? मामा का तो नहीं दिखा। मैंने भी नहीं देखा। लोग बिना परीक्षा किये ऐसी बात क्या कहते है ? सब शूद्र है क्या ? माताजी से पूछना होगा। पर वे तो लौटी ही नहीं। कहां रह गयीं। अगर यहां से उठ गया तो फिर मुझे खोजेंगी। नहीं मिलूंगा तो दुखी होंगी। पर गाडी के पास स्वयं चलकर देख लेना अच्छा होता कि वहां सचमुच कोई गन्धर्व है क्या ? उन्होंने बेचैनी का अनुभव किया। थोड़ा उठकर टहल लेने में क्या हानि है ? उतनी ही दूर तक चलना चाहिए जहां से यह स्थान दिखता रहे। माताजी कहीं इसी बीच आ गयीं तो उन्हें देख सकूं, इसका ध्यान रखना होगा। मामा बता गया है कि गाडी कहीं पास ही है। जिधर बताया है उसी ओर चलना चाहिए।

रैक्व उधर ही चलने लगे। गाडी बुरी तरह खींच रही है। दुर्वार आकर्षण

है उसका। थोडा और थोडा और। नही अब और आगे बढने पर माताजी नही दिखायी देंगी। यही रुक जाना चाहिए। मगर गाडी है कि खीच ही लेना चाहती है। ऐसा तो नही होना चाहिए। गाडी तो जड है। उसमे प्राण भी नही है, मन भी नही है वह कैसे खीच सकती है। मैं ही विक्षिप्त हो गया हूँ। अवश्य कोई लोकोत्तर शक्ति यहा कुछ काम कर रही है। गन्धर्व क्या उसी का नाम है! आश्चर्य है!

रैक्व ने दृढता से अपने पर रोक लिये। सन्ध्या होने को आयी। अब माताजी अवश्य आयेंगी। यही लौट चलना ठीक होगा। लौटना चाहिए। रैक्व लौट पडे।

पीछे से आवाज आयी — भैया तुम इधर कहा भटक रहे हो?" रैक्व ने चौंककर पीछे देखा दीदी है।

'दीदी तुम? यहा कैसे आयी?'

'नही रहा गया, भैया! इस बच्चे का पिता पुकार रहा है। यही फिर आ गयी। स्वप्न मे कहा है इस गाडी के पास दीप जलाओ मैं अन्धकार मे भटक रहा हूँ। सो दीप जला के आ रही हूँ।'

"अन्धकार मे भटक रहे है?

"सपना दिया है भैया! तीन दिन दीप जलाऊँगी। आज दूसरा दिन है। एक सन्ध्या को और दीप जलाकर आश्रम मे लौट जाने का विचार था। माताजी से उनके उद्धार का कुछ उपाय पूछना होगा।"

दीदी रोने लगी। रैक्व की समझ मे नही आया कि क्या कहे। दीदी ने ही पूछा, 'तुम इधर कहा आ भटके भैया, माताजी कहा है?

रैक्व ने बताया कि वे राजा के यहा गयी है, अभी लौटकर आयेंगी। दीदी ने कहा, 'अच्छा, यही बात है। राजा ने आज रग भूमि बनवाने के लिए बहुत लोगो को काम दिया है। बडी उदारता से अन्न बाटा जा रहा है। मैं भी गयी थी। काम तो थोडा ही किया। यहा आना था। मगर मजूरी मुझे पूरी मिली। सेर भर अन्न और दो भेली गुड। कल फिर जाऊँगी। माताजी ने ही राजा को यह सब करने को कहा होगा। नही तो राजा यह सब क्यो करता? माताजी अगर मिल गयी तो इनके बारे मे पूछकर जान लूगी कि इनकी शान्ति के लिए क्या करूँ। कुछ और काम मिल गया तो दो चार दिन की व्यवस्था हो ही जायगी। इनके लिए कुछ दान पुन भी तो नही कर सकी, भैया!

दीदी फिर रोने लगी। गोद का बच्चा भी व्याकुल होकर रोने लगा। रैक्व कर्तव्य मूढ!

कुछ देर बाद दीदी का रोना बन्द हुआ। उसने कहा 'उधर मत जाना भैया! लोग कहते है उधर कोई गन्धर्व है राजा की लडकी को तग कर रहा है। तुम्हे भी उधर नही जाना चाहिए।

'तुम तो गयी थी। तुम्हे क्या कोई गन्धर्व मिला था?"

'मुझे क्या मिलेगा, भैया! गन्धर्व तो कुवारी लडकियो को लगता है। तुम

भी कुवारे हो, उधर मत जाओ।"

"राजा की लडकी कुवारी है ?"

"कुवारी न होती तो गन्धव क्या उसे तग करता ?"

"तुम कुवारी नही हो, दीदी ?"

भैया, तुम्हारी बातें सुनकर तो हँसी आती है।"

'हँसी आती है ? क्या ?"

'हँसी नही आयेगी ? बच्चा बच्चा जिस बात को जानता है, वह भी तुम नही जानते। मेरा ब्याह हुआ है, बच्चा साथ म देख रहे हो, फिर भी पूछते हो कि तुम कुवारी नही हो, दीदी ?"

दीदी, मैं बहुत अल्पज्ञ हूँ। हूँ न ?"

"नही भैया तुम वेदशास्त्र पढते हो, तुम कम अल्पज्ञ हो ? तप करना, ब्रह्मचय व्रत का पालन करना, यह सब तो बहुत बडी बात है, पर तुम सासारिक प्रपचा म पडे नही, इसलिए छोटे मोटे प्रपचा को नही जानते। इनका न जानना ही अच्छा है।

अच्छा दीदी, राजा की लडकी कुवारी क्या है ?"

' थोडे दिना तक तो सभी कुवार रहते है। विवाह तो बाद म होता है। तुम भी तो कुवारे हो। राजा अपनी लडकी के लिए कोई सुन्दर सा लडका खोजेगा, तुम्हारी तरह का कुवारा, तब न विवाह होगा।"

"मेरी तरह का ?"

"हा सुन्दर होगा, किशोर होगा, बुद्धिमान होगा, कुवारा होगा। तुम्हारी ही तरह का तो होगा।"

नही दीदी, मेरा विवाह नही हो सकेगा। मामा कहता था कि जिसके घर द्वार नही होता, धन सम्पत्ति नही होती, भाई बहिन नही होते माँ बाप नही होते, उसका विवाह नही होता।"

'पागल हुए हो भैया, तुम्हारी माँ है, पिताजी है मै बहिन भी जुट गयी हू, इतना सुन्दर रूप है, ऐसा मोहन स्वभाव है, तुम्हे क्या कमी है! धन सम्पत्ति तो छोटे लोगो मे देखी जाती है, ब्राह्मण लोगो म तो विद्या और ज्ञान देखा जाता है। पागल की तरह बात न करो। मेरे भैया जैसा लडका तो तीन भुवन मे खोजे भी किसी को नही मिलेगा।'

"मैं पागल हो गया हूँ, दीदी ?"

"कौन कहता है कि तुम पागल हो गये हो ?"

'अभी तो तुमने कहा!"

"मैंने जो कहा उसका यह अर्थ थोडे ही है! मैं तो कह रही थी कि तुम अपने भोलेपन म जो बात कह रहे हो वह पागलो जसी है। राम राम मैं अपने भैया को पागल समझूगी मेरी जीभ नही जल जायगी ऐसा कहने पर! मैं क्या जानती नही कि मेरा भैया भोलानाथ है!

'भोलानाथ ?"

"हाँ भोलानाथ, दुनियादारी स एकदम अनभिज्ञ !'

रैक्व सोचने लगे।

दीदी को लगा कि उसन भैया का मन दुखा दिया है। उसे कष्ट हुआ। बोला, "बुरा मान गये, भया ! गँवार हूँ, कुछ अन्यथा कह दिया हो तो बुरा न मानना।

"बुरा ? बुरा क्यो मानूगा ! मै तो सोच रहा था कि दादी कितना जानती है ! शुभा भी बहुत जानती है !"

"शुभा कौन है ?"

'वही राजा की लडकी, जिसकी वह गाडी ह। उसन बडा पाप किया है तुम्हारी कोई खोज खबर ही नही ली।

' पहले मेरे मन म भी क्रोध था पर अब नही है। उस बिचारी पर गन्धव का आवेश हो गया, सब बातें भूल गयी। मैंने कोई बडा पाप किया होगा जिसका फल मुझे भोगना पडा। जब स सुना है कि राजकुमारी पर गन्धव आ गया है तब स मन दु खी हो गया है। तुम नही जानते भैया गन्धव हमेशा सुन्दर और सुशीला कुमारियो को ही तग करते ह। बिचारी अकारण कष्ट पा रही है। वह बहुत सुन्दर और सुशील होगी, तभी यह विपदा उस पर आयी है।"

"वह ठीक हो जायेगी न, दीदी ?'

'तो भला, इतनी पूजा हो रही हे, ठीक तो हो ही जायगी। पूजा पाने के लिए ही तो गन्धव का उत्पात होता है।'

इसी समय माताजी आ गयी। वह निश्चित स्थान पर रक्व को न पाकर इधर उधर खोजने लगी। उनकी दृष्टि रक्व पर पडी। उन्होन देखा कि वे किसी स्त्री स बात कर रह है। उन्ह दूर स ही पुकारा— रक्व बटा !'

रैक्व एकदम अकचकाकर पीछे की ओर फिरे। देखा, माताजी पुकार रही है। दोनो माताजी के पास गये। दीदी ने चरणो पर सिर रखकर प्रणाम किया। माताजी आश्चय और प्रसन्नता से बोलीं, 'तू कहाँ से आ गयी ? आश्रम अच्छा नही लगा ?"

दीदी ने रो रोकर बताया कि उसने कैसा स्वप्न देखा। वह विचलित हो गयी और दीप दान के लिए यहाँ चली आयी। वह तीन दिन तक सन्ध्या को दीप दान का सकल्प करके आयी है पर मन म बडी उथल पुथल है। उसे सूझ नही रहा कि अपने पति की सदगति के लिए क्या करे। उसने माताजी म गिडगिडाकर कहा कि कोई उपाय बतायें जिसस उसके पति का उद्धार हो। व अन्धकार म भटक रहे हैं।

माताजी सोच म पड गयी। बोली, ' बेटी, कुछ करना तो आवश्यक है। अभी रात म तो श्राद्धकम होता नही प्रात काल कुछ किया जायेगा। अभी तो चल कहीं थोडा विश्राम किया जाये।"

रक्व ने उल्लसित होकर कहा, ' माँ गाडी यही पास म ही है वहा विश्राम

किया जाय। वहाँ पानी भी है और कुछ फल मूल भी मिल जायेंगे। चलो माँ, चलें।"

माताजी के अधरों पर हल्की हँसी दिखायी दी। रैक्व की दीदी से बोली, चल बेटी, इसे गाडी बहुत प्रिय है।'

दीदी ने कहा, 'मुझे भी प्रिय हो गयी है माँ, मैं आज उसे पकडकर बहुत रोयी हू।'

माताजी का चेहरा म्लान हो गया, 'तेरी व्यथा मैं समझ सकती हू। तुम दोनों को अलग अलग कारणों से गाडी प्रिय है। मेरे भाई बहिन को जो वस्तु प्रिय हो, वह मेरी भी प्रिय है। चलो!"

रैक्व ने बडे उत्साह से माताजी को गाडी दिखायी। माताजी और दीदी के लिए पानी और फल जुटाने मे उन्हे बडी प्रसन्नता हो रही थी। ऐसा जान पडता था कि अपने घर मे आये अतिथियों का सत्कार कर रहे हो। माताजी को रैक्व का उत्साह देखकर आश्चर्य हो रहा था। गाडी के साथ लडके ने कितनी आत्मीयता स्थापित कर ली है!

थोडा विश्राम करने के बाद माताजी ने रैक्व की ओर देखा। बोली "रैक्व, बेटा!'

"हाँ मा!"

"अकेले आश्रम जा सकोगे?"

जा सकूगा, माँ!'

"तो कल प्रात चले जाना। कल आषाढी पूर्णिमा है। कल मुझे वहा रहना चाहिए था, पर तुम्हारी दीदी का काम बहुत आवश्यक है। मैं परसों पहुँच सकूगी।"

'मुझे वहाँ जाकर क्या करना होगा, मा?"

'कल गुरु-पूर्णिमा है बेटा, तुम्हारे पिताजी के अनेक शिष्य उनकी पूजा करने आयेंगे। सबका ध्यान रखना होगा। उन्हे कोई असुविधा नही होनी चाहिए। सब आशा करेंगे कि मैं भी वहा उपस्थित रहूँ पर तेरी दीदी के मन को शान्त किये बिना मैं नही जा सकती। जो लोग आवें उनसे यह बात समझाकर कहना होगा। यह सब कर सकेगा न, बेटा?"

"कर लूगा, मा!"

और देख! इसके बाद श्रावण का महीना आयेगा। श्रावणी पूर्णिमा के उपाकर्म के लिए अभी से तैयारी करनी होगी। बहुत से लोग आश्रम मे टिक जाते हैं। उनके साथ सत्संग का भी अच्छा अवसर मिलेगा।"

हाँ माँ!'

"देख, तूने कई शास्त्र अभी पढे नही फिर जो पढा था वह फिर से तयार कर लेना होगा। इस अवसर का लाभ उठाना चाहिए। क्या?

हाँ मा किन्तु "

"किन्तु नहीं, बेटा ! तुझे आपद्ग्रस्त लोगों की सेवा करनी है। बिना अध्ययन किये नहीं कर सकेगा। शास्त्र बताते हैं कि किस परिस्थिति में क्या करना चाहिए। शास्त्र-विधि से किया हुआ काम ठीक होता है।"

"हाँ माँ, किन्तु "

"और किन्तु क्या, बेटा?"

"मैं जानना चाहता था कि राजा से आपकी क्या बात हुई?"

"राजा सहायता का आयोजन तत्परता के साथ कर रहा है। तू इधर से अभी निश्चिन्त हो सकता है।"

"और मा "

"हाँ, शुभा भी मिली थी। ठीक है।"

'माँ, शुभा बीमार है?"

'थी, अब ठीक हो जायेगी। तू मन लगाकर शास्त्र चिन्ता कर। तू मेरा बेटा है न?"

"हाँ, मा।"

"मैं जैसा कहूँ, वैसा करेगा न?"

"अवश्य, मा!"

"मैं राजा से मिली थी। उनके पुरोहित आचार्य औदुम्बरायण से मिली थी। दोनो भले आदमी हैं। आचार्य औदुम्बरायण तो तुमसे मिल भी चुके है।"

"मिल चुके है?"

"हाँ बेटा, तूने उन्हें पहचाना नहीं था। उनका उचित सम्मान नहीं किया था। किया था, बेटा?"

"माँ, जब मैं इस गाडी के नीचे ध्यान कर रहा था तो वे आये थे। मैंने उनका उचित सम्मान नहीं किया होगा। मुझे मालूम नहीं था, मा! बडा दुष्कृत हो गया। शुभा ने सपने में उनका सम्मान करने को कहा। मैंने उन्हीं से पूछा कि आपका सम्मान कैसे करूँ। उन्होंने कुछ बताया ही नहीं। वह तो जब तुमने बताया कि प्रत्युत्थान और अभिवादन कैसे किया जाता है, तो बात समझ में आयी। बडा दुष्कृत हुआ यह, माँ!"

'नहीं, दुष्कृत नहीं हुआ। आचार्य ने भी बुरा नहीं माना। जानता है, क्यों?"

'क्या माँ बुरे को बुरा तो मानना ही चाहिए।"

"नहीं तेरा चित्त शुद्ध है निर्मल है इसलिए बुरा नहीं माना। पर तुझे बडों के सम्मान का ध्यान रखना चाहिए।'

हाँ माँ!"

'आश्रम में बहुत ज्ञानी, वृद्ध और तपस्वी लोग आयेंगे। उनका सम्मान कर सकेगा न?'

"अवश्य करूँगा, माँ! तुमने जितना और जैसा समझाया है उतना और वैसा

अवश्य करूँगा।"

"और "

'बताओ, माँ!"

'देख बेटा, सब लोग आशा करते है कि मेरा बटा शास्त्रज्ञ और तत्त्वज्ञानी होगा। तत्त्वज्ञानी तू है, पर शास्त्रज्ञ भी होना चाहिए। वेदा का ठीक से अध्ययन करना होगा, सभी शास्त्रो का मनन करना होगा। यथा अवसर प्रायश्चित्तपूर्वक तेरे सस्कार करने हागे, तब तू सच्चा ज्ञानी और समाज सेवक होगा।"

"प्रायश्चित्त क्या मा?"

"समय पर तेरे सस्कार नही हुए, इसलिए।"

"कौन से शास्त्र पढने होगे, मा?"

'तेरे पिताजी बतायेगे।"

"तुम नही बताओगी, मा?"

'मैंने तेरे पिताजी से बात कर ली है, वे तेरी परीक्षा करने के बाद समझेंग कि तुझे किन शास्त्रो म रुचि है। समझा, बेटा?"

'पिताजी के पास जाना होगा। वे परीक्षा लेकर बतायेंगे कि क्या अध्ययन करूँ। यही न?"

"हा यही। मेरी अनुपस्थिति मे अतिथियो की ठीक स अभ्यर्थना करनी होगी।'

"थोडी त्रुटि हो जा सकती है, मा! सब बातें मैं जानता समझता नही।"

"कोई चिन्ता नही। रास्ता ही रास्ता बता देता है, बटा, कुछ करत-करते ही सही ढग सीखा जा सकता है।"

"करूँगा, मा!"

बारह

रग मच का निमाण बडे आडम्बर के साथ हुआ। हजारो कमकर उसमे लगाये गये। उन दिना रगमच का निर्माण बडी सावधानी के साथ किया जाता था। भूमि-निवाचन से लेकर रगमच की क्रिया तक वह बहुत सावधानी स सँभाला जाता था। सम, स्थिर और कठिन भूमि तथा काली या गौर वण की मिट्टी शुभ मानी जाती थी। भूमि को पहले हल से जोता जाता था। उसम स अस्थि, कील, कपाल, तृण गुल्मादि को साफ किया जाता था, उसे सम और पटसर बनाया जाता था

और प्रेक्षागृह के नापने की विधि शुरू होती थी। प्रेक्षागृह का नापना बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य समझा जाता था। माप के समय सूत्र का टूट जाना बहुत अमंगलजनक समझा जाता था। सूत्र ऐसा बनाया जाता था जो सहज ही न टूट सके। वह या तो कपास से बनता था, बेर की छाल से बनता था या मूंज से बनता था और किसी वृक्ष की छाल की मजबूत रस्सी भी काम में लायी जा सकती थी। ऐसा विश्वास किया जाता था कि यदि सूत्र आधे से टूट जाये तो स्वामी की मृत्यु होती है, तिहाई से टूट जाये तो राज कोप की आशंका होती है, चौथाई से टूटे तो प्रयोक्ता का नाश होता है। हाथ भर से टूटे तो कुछ सामग्री घट जाती है। इस प्रकार सूत्र-धारण का काम बहुत ही महत्त्व का समझा जाता था। तिथि, नक्षत्र, करण आदि की शुद्धि पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाता था और इस बात का पूरा ध्यान रखा जाता था कि कोई काषाय वस्त्रधारी, हीन वपु या विकलांग पुरुष मण्डप स्थापना के समय अचानक आकर अशुभ फल न उत्पन्न कर दे। खम्भा गाड़ने में भी बड़ी सावधानी बरती जाती थी। खम्भा हिल गया, खिसक गया या काँप गया तो अनेक प्रकार के उपद्रवों की सम्भावना मानी जाती थी। रंगशाला के निर्माण की प्रत्येक क्रिया में भावाजोखी का डर लगा रहता था। पद पद पर पूजा, प्रायश्चित्त और ब्राह्मण-भोजन की आवश्यकता पड़ती थी। भित्ति-कर्म माप जोख, चूना पोतना, चित्र-कर्म खम्भे गाड़ना भूमि शोधन प्रभृति सभी क्रियाएँ बड़ी सावधानी से और आशंका के साथ की जाती थीं। इन बातों को जाने बिना यह समझना बड़ा कठिन होगा कि सूत्रधार का पद इतना महत्त्वपूर्ण क्यों था। उसकी ज़रा सी असावधानी अभिनेताओं के सर्वनाश का कारण हो सकती थी। नाटक की सफलता का दारोमदार सूत्रधार पर रहता था।

रंगमंच का निर्माण सकुशल हो गया। कहीं किसी प्रकार की अशुभ सूचना नहीं मिली। राजा जानश्रुति स्वयं यजमान के रूप में पूजन विधि सम्पन्न कर रहे थे। जिस दिन नाटक आरम्भ होनेवाला था उस दिन जाबाला को कुसुम्भी रंग का वस्त्र पहनाया गया। एक भरत-पुत्र ने ही उससे अशोक-वृक्ष का पूजन कराया। ऐसा माना जाता था कि गन्धर्वों का सबसे प्रिय वृक्ष अशोक है। यह वैदिक क्रिया नहीं थी, इसलिए आचार्य औदुम्बरायण उससे अलग ही रहे। परन्तु राजा जानश्रुति आरम्भ से अन्त तक इस अशोक पूजन में उपस्थित रहे। जाबाला को यह सब पसन्द नहीं था, पर उसने कोई विरोध भी नहीं किया। यथा निर्देश वह सारे कर्म शान्त चित्त से करती गयी। धूप, दीप नैवेद्य माला, उपलेपन आदि से अशोक-तरु का पूजन हुआ। भरत पुत्र ने प्रत्येक क्रिया में अत्यन्त सावधानी और गौरव के साथ निर्देश दिया। पूजा-समाप्ति के पूर्व उन्होंने अत्यन्त गम्भीर वाणी में निर्देश दिया – "शुभे अपने मनोवांछित वर का ध्यान करें और भृंगार का जल अशोक के मूल में धीरे-धीरे डाल दें।" धीरे धीरे, अभिलषित वर का ध्यान करते-करते क्षण भर के लिए जाबाला का मुख मण्डल आरक्त हो उठा। यह भी कोई बात हुई? परन्तु 'शुभा' सम्बोधन बिजली की भाँति हृदय में कौंध गया। अनायास

वह तरुण तापस उसके मन में आ गया जिसके बारे में वह इतना सोच रही है। वही क्या अभिलषित वर है ? वह स्वप्न के ध्यान में डूब गयी। वह भूल ही गयी कि पूजा वेदी पर बैठी हुई है। ध्यान भंग होने के कोई लक्षण नहीं दिखे। भरत-पुत्र ने फिर शान्त स्वर में कहा, 'शुभे, कल्याण हो, भृंगार का जल अशोक मूल में डाल दीजिए।" फिर एक झटका लगा—'शुभे !'

उसने उठकर भृंगार का पूरा जल एक साथ ही अशोक तरु के मूल में उँडेल दिया। उसके चेहरे पर स्पष्ट रूप से भरत पुत्र की अवज्ञा के भाव थे। इस निर्देश से उसे रोष हुआ था, पर सहज आभिजात्यवश वह खुलकर प्रतिवाद नहीं कर सकी थी। सारे भृंगार का जल एक साथ उँडेलकर माना उसने अपने मन के रोष को मुखर कर दिया। भरत-पुत्र अनुभवी था। उसने इस प्रकार का प्रतिवाद बहुत देखा था। प्राय लडकियाँ इस निर्देश का पालन यथावत् नहीं करना चाहती थी। उनकी प्रतिक्रियाओं से भरत पुत्र उनकी मानसिक स्थिति का अनुमान किया करते थे। राजकुमारी जाबाला ने अपना रोष प्रकट करके सोचा था कि भरत पुत्र इससे चिन्तित होगा और कदाचित फिर से भृंगार के जल को धीरे धीरे अशोक मूल में डालने का अनुरोध करेगा। कहेगा, 'शुभे, धीरे-धीरे, मनोवांछित वर का ध्यान करते हुए।' और अबकी बार वह भृंगार उसके मुह पर दे मारेगी ! परन्तु एसा कुछ हुआ नहीं। यह केवल भरत-पुत्रों का विनोद था। वे वस्तुत आराधिका के चढते उतरते भावों को पढा करते थे। अनुभवी भरत पुत्र उसी प्रकार की शान्त गम्भीर वाणी से राजा से बोला, "कल्याण हो महाराज, मंगल कार्य बहुत शीघ्र ही होगा। देवगण प्रसन्न है, भगवान् कुसुमसायक प्रीत है।"

अन्तिम वाक्य से जाबाला और भी क्षुब्ध हुई। बिना कुछ कहे झम्म से उठी और भीतर चली गयी। भरत-पुत्र के गम्भीर चेहरे पर उत्फुल्लता की लहर दौड गयी। पूजा दीर्घ दीर्घायित शंख-ध्वनि के साथ समाप्त हुई।

माताजी की सलाह मानकर राजा ने जाबाला की मौसी को बुलवाया था। वे वात रोग से पीडित थी। स्वयं तो नहीं आ सकी, पर अपनी बडी लडकी अरुन्धती को भेज दिया। अरुन्धती जाबाला की प्राय समवयस्का ही थी। उस विधाता ने बडी बडी चपल आँखें दी थी। बहुत दिन पहले उसने जाबाला को देखा था। तब से दोनो में अन्तर आ गया था। दोनों बडी हो गयी थी, पर अरुन्धती में चपलता ज्यो की त्यो बनी हुई थी, जबकि जाबाला गम्भीर हो गयी थी। पूजा समाप्ति का शंख उधर बजा, इधर अरुन्धती का प्रवेश हुआ। मन ही मन भरत पुत्र को कोसती हुई क्षुब्ध जाबाला को अरुन्धती मिल गयी। उसे अपार आनन्द हुआ। चेहरे पर झूलते हुए क्षोभ के भाव तिरोहित हो गये। उसने उल्लास के साथ अरुन्धती को हृदय से लगा लिया। पर अरुन्धती की दृष्टि से उसका क्षोभ भाव छिप नहीं सका। दोनो बहिनें घर में जा बैठी। अरुन्धती ने उसके कुसुम्भी वस्त्रों को देखकर कहा, 'ऐसा लगता है दीदी, तुम विवाह वेदी से उठकर आ रही हो, मगर गुस्सा क्यो हो गयी थी ? कितना सुन्दर लगता है तुम्हारा गुस्से से लाल

चेहरा ! लगता है अभी न मार रा अभ्यास करने लगी हो !"

जावाला ने डॉटते हुए कहा, चुप भी रह। ज ी चली आ रही है एक बार पूछा भी नहीं कि दीदी मर रही है कि जी रही है और तुम कर दी ठठाली।'

'दीदी जी रही है और युग-युग जियगी। जब न सुना कि दीदी अस्वस्थ है, सार-नागार में ही मरती रही। अब आ गयी हूँ उस मुग गन्धर्व का सिर क बल नगा नहीं दिया तो रहना। हाँ!'

'अरु, तू इतनी सयानी हो गयी और अभी तक तरी बकवास की आदत नहीं गयी।"

ा ा जावनी ? मोचकर आयी थी कि दीदी खाट पर पड़ी होगी। आकर देखती हूँ दुलहिन बनी बैठी है। इस मुग गन्धर्व को वही पहचान लिया था। माँ तो वात रोग स खाट पर पड़ी हैं। मगर पहचान उन्होंने भी लिया होगा। कहने लगा, 'अरु बेटी, तू ही जा वहाँ तेरी ही आवश्यकता है। बिचारी जावाला अकेली पड गयी है। उसके मन की बात तू ही निकाल सकती है । अब बताओ बकवास न करूँ तो क्या मुग गन्धर्व की आरती उतारूँ!"

'चुप रह। धीरे धीरे बोल। मुझसे लड़ने आयी है ?'

"अच्छा दादी तुम पूजा पर स उठकर आयी तो तुम्हारा चेहरा तमतमाया हुआ नहीं था ? था न ?'

'था तो।'

"वही पहले बताओ। क्या हो गया था पूजा के समय ?"

'मुझे पता होता कि तू अभी आनेवाली है तो तुझे ही पूजा पर बैठा देती। वहाँ तुझे मालूम हो जाता कि क्या हुआ था।'

जावाला के चेहरे पर फिर हल्का सा रोष उभर आया। अरुन्धती ने उस भाव को पढ़ लिया।

"अशोक-पूजन हो रहा था न दीदी ? य कौलीय भरत पुत्र बड़े पाजी होते हैं। माँ-बाप तो भक्ति-श्रद्धा स उन्हें बुलाते हैं और य लडकियों को परेशान करते हैं। कहते हैं, 'मनोवांछित वर का ध्यान करो।' फिर कहते हैं, 'जिधर वह रहता है उस ओर मुह करके ध्यान करो!' फिर कहते हैं, अशोक मूल में पानी डालते डालते ध्यान करो।' लड़की को हैरान कर देते हैं। मेरी बुआ के लिए ऐसा ही नाटक कराया था। उसने सारा भ गार उसी पर उलट दिया था। तुमसे भी यही सब करवाया होगा!"

"इतना तो नहीं, पर ध्यान करने को कहा अवश्य था। मुझे तो लगा था कि यह उनके पूजा विधान का अंग था। पर क्रोध मुझे भी हुआ था। भरी सभा में ऐसा करने को कहना औद्धत्य तो है ही।"

'एकान्त में ध्यान करने को कहे, कोई बात भी हुई ! मुझसे कहता तो मैं सोच ही नहीं पाती। तुमने क्या ध्यान किया, दीदी ?"

"अब चुप भी रहती है कि "

"बता दो, चुप हो जाऊँगी।"

"यदि मैं कहूँ कि तेरा ही ध्यान करने लगी थी तो "

"हाय रे, मैं तो समझती थी कि मेरी पण्डिता दीदी निर्गुण ब्रह्म का ध्यान करने लगी होगी, मगर वह तो यदि-तदि की भाषा सीख गयी है।"

"अब चल, हाथ मुह तो धो ले। तू तो मेरे ही पीछे पड गयी।"

"लो, इतनी दूर से तुम्हारे पीछे पडने के लिए ही तो आयी हूँ।"

जाबाला को अच्छा लग रहा था और सकट म पडी होने का भास भी हो रहा था। उसने अरु को झकझोरकर उठाया—'चल, बडी पीछे पडनेवाली आयी है। मे तेरे पीछे पड़ूगी, उठ भी।"

अरुधती खिलखिलाकर हँस पडी—'लो, उठती हूँ, देखती हूँ, कब तक भागती हो। मैं जब तक तुम्हारा मन नही चूस लूगी तब तक वह गधव तुम्हारा खून चसना नही बन्द करेगा।"

जाबाला ने प्यार से झिडकी दी—'बहुत बोलना सीख गयी है। मैं तुमस नही बोलूगी।"

'तो मैं उलटे पाव लौट जाती हूँ। तुम अकेले म ध्यान करती रहो।"

"नहीं अरु, लौट क्या जायेगी! अपनी दीदी को इस दशा म छोडकर चली जायेगी?"

'तो मेरा क्या दोष है? तुम नही बोलोगी तो मैं यहा क्या करूँगी!"

'कौन कहता है कि नहीं बोलूगी!"

"अभी तो कहा।"

'अरे, वह तो तुझे धमका रही थी। मुझसे यह सब न पूछा कर। मेरा मन उदास हो जाता है।'

'उदासी दूर करने तो आयी हूँ। अच्छा, अब नही पूछूगी। जितना कहोगी उतना ही सुनूगी।"

'मेरी प्यारी अरु, मुझसे अप्रसन्न न हो। मैं दुखी हूँ।"

अरुधती को लगा कि अपनी वाचालता से उसने जाबाला का दिल दुखा दिया है। वह प्यार से गले लिपट गयी—"तुम दुखी क्यो होगी दीदी? मैं दुख बँटाने के लिए ही तो आयी हूँ।'

इसी समय राजा जानश्रुति अरु बेटी!' पुकारते हुए आ गय। अरुधती ने प्रणाम किया। उसका सिर सहलाते हुए बोले, "आ गयी बेटी, देख तेरी दीदी की क्या दशा हो गयी है!"

"अब तो मैं आ गयी न, बाबा, दीदी दो दिना मे चगी हो जायेगी।"

हा बेटी, इस चगी कर दे। अकेली अकेली और भी घुलती जाती है।"

"सब ठीक हो जायगा। माँ भी थोडे दिना म आ जायेंगी।"

"उनका स्वास्थ्य अब कसा है?"

ठीक हो रही है। बात का कष्ट है न! थोडा समय लगा।"

"भगवान् उन्हे जल्दी स्वस्थ कर।"

"दीदी का स्वास्थ्य ठीक हो जाये तो सुनते ही स्वस्थ हो जायेंगी।"

सायकाल आडम्बर के साथ गन्धर्व पूजन नाटक का अभिनय शुरू हुआ। पहले रग पूजा हुई। सूत्रधार ने ही बता दिया कि पुराकाल मे जब नाटक का अभिनय किया गया था तो दैत्यो ने बडा उपद्रव किया था। उसी के शमन के लिए रग-पूजन का विधान है। नगाडा बजाकर रग-पूजा की घोषणा हुई। फिर गायक और वादको ने आसन ग्रहण किया। मृदग, वीणा, वेणु आदि वाद्यो के साथ रगभूमि म अप्सरा-वेशधारी एक कमनीय-कान्ति भ्रुकुश क नृत्य लोल नूपुरो की झकार से नाटक की उत्थापना का अभिनय किया गया। फिर सूत्रधार का प्रवेश हुआ। उसकी एक ओर गड्डुए मे पानी लिये भृगार धर आया, दूसरी ओर विघ्नो को जर्जर कर देने वाली पताका लिये जजर धर। इन दो परिपाश्वको के साथ सूत्रधार पाच पग आग बढा। य पाच पग साधारण पग नही थ। प्रत्येक पग पर गौरवपूर्ण भगिमा मे अभिनय था। फिर सूत्रधार ने बिल्कुल वैदिक विधि स भृगार से जल लेकर आचमन प्रोक्षण आदि पवित्र करनेवाली क्रियाओ का अभिनय किया। सबसे गरिमा भरा अभिनय था जजर (पताका) का उत्तोलन। इन्द्र देवता इस क्रिया से प्रसन्न हुए। दशक दीर्घिका से अक्षत-पुष्पो की वर्षा हुई। फिर सूत्रधार ने दाहिने पर के अभिनय से शिव की ओर बाये पैर के अभिनय से विष्णु की वन्दना की। पहला पद पुरुष का और दूसरा स्त्री का माना जाता था। एक तीसरा पद नपुसक माना जाता था। इसमे दाहिने पैर की नाभि तक उत्क्षिप्त करके स्थिर मुद्रा म रखा जाता था। सूत्रधार ने इस नपुसक पद के अभिनय स ब्रह्मा की वन्दना की। यह शायद तत्काल प्रचलित ब्रह्म के स्वरूप का नाटकीय उपस्थापन था। ब्रह्मवादी लोग मानते थे कि ब्रह्म न स्त्री है न पुरुष है और फिर भी सबस ऊपर वास्तविक सत्य है। चार रगो के फूलो से जजर की पूजा। और फिर सभी वाद्ययन्त्रो की पूजा हुई। इसके बाद सूत्रधार ने राजा के कल्याण की प्रार्थना की, राजकुमारी के अचल सौभाग्य प्राप्ति की शुभकामना की और फिर बडे गुरु गम्भीर भाव से नान्दी पाठ का आयोजन किया गया। प्रत्येक पद सचार म गौरव भाव था। यह नाटक मनोरजन की अपेक्षा पूजन अधिक था—प्रत्येक क्रिया मे पूजा का भाव।

जाबाला और अरुन्धती महिलाओ की दीर्घिका म सबसे आग थी। बेत की बनी एक झीना तिरस्करिणी (पर्दा) महिलाओ की दीर्घिका को अलग कर रही थी। व बाहर के दृश्य देख सकती थी, पर बाहर बैठे लोग उन्हे नही देख सकते थे।

नाटक का कथानक बहुत जाना हुआ ही था, पर उसका अभिनय करना कठिन था क्योकि भावो के उतार चढाव का सात्त्विक अभिनय निपुण कलाकारो को भी कठिनाई म डाल सकने योग्य था। कथानक यह था कि ऋषिकुमार ऋष्यशृग मातृ पितृहीन होकर तप करने लगा। उसने अपने जीवन म किसी स्त्री को देखा ही नही था। उसका चित्त सहज ब्रह्मचर्य से आलोकित था। देवराज इन्द्र को भय

हुआ कि वह तपोबल म इन्द्र का सिंहासन प्राप्त कर लेगा। उन्होंने गन्धर्वराज को ऋषिकुमार का तपोभंग करने का आदेश दिया। गन्धर्वराज ने अपने प्रमुख सेनानायक पुष्पध या कामदेव को अप्सराओं की एक टुकडी के साथ ऋषिकुमार का तपोभंग करने के लिए नियुक्त किया। कामदेव ने फूलों का धनुष और फूलों का ही बाण लेकर ऋषिकुमार ऋष्यशृंग पर आक्रमण किया।

यहाँ तक अभिनय अधिकतर वेशभूषा का ही था। अप्सरा रूप म सजे भ्रमुग दिव्य आभरणों स रंगभूमि को आलोकित कर रह थे।

आगे का प्रसंग इस प्रकार था—

ऋषिकुमार ने एक साथ इतनी सुन्दर अप्सराओं को देखकर समझा कि ये दिव्य लोक के देवता हैं। सम्भ्रम पूर्वक उठकर उसने वैदिक मन्त्रों स उनकी अभ्यर्थना की। उसके ललाट पर भक्ति की प्रदीप्त रेखा उभर आयी, आँखों म अपार औत्सुक्य लहरा उठा। उसकी पिंगल जटाएँ भावोद्रेक स काँप उठीं। दोनों हाथ जोडकर उसने वन्दना की—"आज सविता देवता प्रसन्न हैं, उप लोक धरित्री पर उतर आया है, हे दिव्य ज्योतिगण, मेरा विनीत नमस्कार लें!"

ऋषिकुमार की बडी बडी निर्मल आँखों म अपार विस्मय और श्रद्धा के भाव थे। अरुन्धती उसके भोलेपन पर हँसने का उपयुक्त अवसर मान रही थी। इसी बीच उसने जाबाला को देखा—आँखों स अविरल अश्रुधार बह रही थी, वह दबाने का प्रयत्न करके भी अपना आर्त्त क्रन्दन दबा नहीं पा रही थी। अरुन्धती ने चिंतित स्वर म पूछा, "दीदी, क्या हो गया तुम्हें! दीदी, दीदी!" जाबाला और भी फूट पडी। अरुन्धती हैरान! यह क्या हुआ, जहाँ ऋषिकुमार की मूर्खता पर हँसना चाहिए वहाँ दीदी रोने लगी। वह कुछ नहीं समझ पायी।

परन्तु उसी समय अप्सराएँ खिलखिलाकर हँस पडीं। उन्होंने ऋषिकुमार को घेरकर मनोहर लास्य नृत्य किया। उनकी आँखें निरन्तर कटाक्ष-बाणों की वर्षा कर रही थीं। ऋषिकुमार भौचक्का देख रहा था। एक अप्सरा ने फूल स ऋषि के ललाट पर आघात किया। ऋषिकुमार ने चकित मृगशावक की भाँति उसकी ओर अपनी निर्मल आँखें फेरीं। इसी समय सेनानायक ने अमोघ पुष्प-बाणों को प्रत्यंचा पर चढाने का अभिनय किया। उसकी उन्मत्त चारिकाओं स रंगभूमि हिल उठी। अप्सराएँ इंगित समझकर, यह सोचकर कि बाण को ठीक लक्ष्य पर गिरने म कोई रुकावट न हो, लीलायित गति से दूर हट गयीं। ऋषिकुमार कुछ भी न समझकर भौचक्का खडा का खडा रह गया। इसी समय एक अप्सरा सुव्रता दौडती हुई ऋषिकुमार के पीछे आकर खडी हो गयी। फूलों का बाण खींचा जा चुका था। सुव्रता ने चिल्लाकर कहा, "कुसुम सायक, अपना बाण समेटो। ऐसे पवित्र हृदय बालक पर तुम्हारे बाणों को नहीं गिरना चाहिए। रुको, रुको महान अनर्थ हो जायगा। ऐसे पवित्र ऋषिकुमार पर बाण फेंकोगे तो द्यावा पृथिवी डोल जायगी, सूर्य का प्रभामण्डल विवर्ण हो जायगा। हाय प्रभो, इस पवित्र तरुण तापस को पापिनियों के माया जाल से बचाओ!"

अप्सराएँ और भी जोर से खिलखिला उठीं। फूलों का बाण छूट चुका था। सुव्रता ने पीछे से ऋषिकुमार को ढक लिया। फूलों का बाण उसकी छाती में लगा। कुछ छिटकी पपड़ियाँ ऋषिकुमार की पिंगल जटाओं पर पड़ीं।

दर्शक मण्डली 'साधु साधु' की ध्वनि से जिस समय रंगमंच को हिला रही थी, उसी समय जाबाला ज़ोर से रो पड़ी। अरुन्धती की गोद में निढाल पड़ी वह देर तक सुबकती रही। अरुन्धती बुरी तरह मर्माहत थी— दीदी, चलो, यह नाटक तुम्हें कष्ट दे रहा है।"

जाबाला ने इशारे से कहा—'नहीं।' अरुन्धती की चपल वाचालता बर्फ सी जम गयी।

लेकिन नाटक चलता रहा।

ऋषिकुमार ने सुव्रता को देखकर उल्लसित होकर स्तुति की। प्रथम नारी-दर्शन से चकित नयन अब भी उसी मुद्रा में थे—"आज सविता प्रसन्नोदय है। आहा, कैसी आनन्द-लहरी तुम्हारी दिव्य काया से फूट रही है! दिव्य प्राणी! तुम्हारा स्पर्श कितना मीठा है, तुम्हारी वाणी कितनी मनोहर है, दिव्य आनन्द की स्रोतस्विनी, मेरा प्रणाम स्वीकार करो!" सुव्रता ने ऋषि के चरणों को अपने काले मसृण केशों से पोंछ दिया। उसकी आँखों से अश्रुधारा फूट पड़ी— हाय, ऋषि कुमार, तुम्हारे मुँह से कैसी वाणी निकल रही है! ऐसी सत्य वाणी आज तक नहीं सुनी। चाटूक्तियाँ बहुत सुनी हैं। पर ऐसा सच्चा मोहन स्तव तो मेरे अन्तर्यामी ने कभी नहीं सुना। आज मेरा नारी शरीर धन्य हुआ! मगर उधर मत देखो। हे ज्वलन्त अग्नि, इन पापीयसी स्त्रियों की विषाक्त दृष्टि की छवि तुम्हारे योग्य नहीं है। मैं मरकर भस्म बनकर तुम्हारे ऊपर छा जाऊँगी पर पापिनियों के कटाक्ष की हवि तुम पर नहीं पड़ने दूँगी। प्रभो मैं धन्य हुई।"

दृश्य बदला। जाबाला की आँखों की झड़ी वैसी ही बनी रही। अरुन्धती का चिन्ता कातर मुख यथापूर्व!

नये दृश्य में गन्धर्वराज के सामने बन्दिनी विद्रोहिणी सुव्रता लायी गयी। गन्धर्वराज क्रोध से तिलमिला रहे थे—"तू दिव्यलोक में रहने योग्य नहीं। तुझे दण्ड मिलेगा।"

"सब दण्ड स्वीकार है, प्रभो!"

"तुझे मर्त्यलोक में मानवी होकर जाना पड़ेगा।"

"जाऊँगी, प्रभो!"

इसी समय कामदेव उपस्थित हुए—"दोष मेरा है प्रभो, मुझसे ही बाण चूक गया। इसे क्षमा किया जाये।"

गन्धर्वराज असमंजस में पड़ गये— मेरी बात अन्यथा नहीं हो सकती।'

"तो प्रभो स्वर्गलोक ही वंचित होगा, मर्त्यलोक धन्य हो जायेगा।'

"मर्त्यलोक में तो इसे जाना ही पड़ेगा। पर मैं इसका अपराध क्षमा कर सकता हूँ, यदि यह अशोक पूजन करके यह अभिलाषा प्रकट करे कि इस मर्त्यलोक

से मुक्ति मिले।"

फिर अशोक पूजन का अभिनय हुआ। एक अप्सरा ने ही प्रफुल्ल अशोक वक्ष का अभिनय किया। उसका सारा शरीर लहरदार हरे रग की साडी से आवृत था। बीच बीच म कन्धे पर से ही खिले हुए लाल लाल पुष्प स्तवक उस शोभा को सौ गुना बढा रह थे। अप्सरा एक पैर पर प्रत्यालीढ मुद्रा म खडी थी। और दोना हाथा द्वारा सुकुमार भाव से विलुलित वायु स लहराते रहने का अभिनय कर रही थी। पूजा की सारी विधि वही थी जिससे प्रात काल जावाला द्वारा पूजन कराया गया था। भरत-पुत्र ने पूजा के अन्त म कहा, "अपनी अभिलाषा का ध्यान करो। तुम्ह प्रत्यक्ष फल मिलेगा।"

सुव्रता ध्यान मग्न हुई। रगमच के एक किनारे ऋषिकुमार की शान्त मूर्ति कुछ खोजती हुई सी आविभूत हुई। सुव्रता झटके से उठी और ऋषिकुमार के चरणो पर लोट गयी।

सूत्रधार ने भरत वाक्य पढा—"पृथ्वी शस्य स समृद्ध हो, राजा म प्रजा के प्रति कल्याण बुद्धि उदित हो, सारी कुमारिया अभिलपित वर प्राप्त करें, किशोरो म प्रिया के प्रति अनुराग बढे और समस्त प्रजा सुखी हो।"

नाटक समाप्त हुआ। जावाला भी उत्फुल्ल मुद्रा में उठकर चल गयी। दर्शक मण्डली के साधुवाद से रग स्थल गूज उठा। अरुन्धती ने जावाला से पूछा, "दीदी, अब कसा लग रहा है ?"

जावाला ने हँसते हुए कहा, "ठीक तो हूँ।"

जावाला उठी तो ऐसा लगा कि वेदना की प्रत्यक्ष मूर्ति ही सायास उठ पडी हो। अरुन्धती के चेहरे पर अब भी चिन्ता की भारी छाया विद्यमान थी।

चलते चलते जावाला ने कहा, "अरु सुव्रता धन्य है! स्वर्गलोक को छोडकर मर्त्यलोक का वरण क्या कोई हँसी खेल है ?"

अरुन्धती ने बालसुलभ चपलता से पूछा, "दीदी कामदेव का बाण क्या अकेले सुव्रता को ही लगा ?"

जावाला ने दीर्घ निश्वास लिया— "कैसे कहूँ!"

अरुन्धती न फिर कहा, "फूला की कुछ पपडियाँ तो ऋषिकुमार क सिर पर भी गिरी।"

अबकी बार जावाला हँसी—"उसका भी सिर फिर गया होगा, अरु!"

तेरह

रैक्व जिसे 'दीदी' कहते थे, वह अपना नाम उजुआ बताती थी। यह संस्कृत शब्द 'ऋजुका' का प्राकृत रूप था। माताजी ने उसके संस्कृत रूप 'ऋजुका' को ही अपना लिया था। आचार्य औदुम्बरायण को उन्होंने ऋजुका नाम ही बताया। आचार्य ने दूसरे दिन उससे पति के निमित्त विधिवत श्राद्ध कार्य कराया। माताजी दूसरे ही दिन आश्रम चली गयी। ऋजुका वहीं रुक गयी, क्योंकि राजकुमारी जाबाला ने उससे मिलने की इच्छा प्रकट की थी। आचार्य औदुम्बरायण ने उसे साल भर तक प्रति त्रयोदशी को उसी स्थान पर दीप जलाने का निर्देश दिया और राजा से उसे कुछ काम देने का अनुरोध किया। गन्धर्व पूजन के बाद जाबाला ने ऋजुका को बुलवाया। ऋजुका अपने नन्हे-से बच्चे को गोद में दबाये डरी डरी सी जाबाला के पास गयी। जिस समय वह जाबाला के पास ले जायी गयी, उस समय अरुन्धती के सिवा वहां और कोई दूसरा नहीं था। जाबाला ने ऋजुका को आदर के साथ एक आसन पर बैठने को कहा, पर वह आसन पर बैठने का साहस नहीं कर सकी, हाथ जोड़कर भूमि पर ही बैठ गयी।

जाबाला ने अत्यन्त व्यथित स्वर में उससे कहा, "बहिन, मुझे क्षमा करना! मेरे कारण तेरा सौभाग्य ही नष्ट हो गया। उसके बाद भी बहुत दिनों तक तेरी खोज-खबर नहीं ले सकी। मुझसे भारी अपराध हो गया।'

ऋजुका फूट फूटकर रो पड़ी—"अपने ही किये का फल भोग रही हूँ दीदी रानी, तुम्हारा इसमें क्या दोष है! जैसा किया है वैसा भोग भोग रही हूँ। दुखियारी हूँ दीदी रानी, पर मैं तुम्हें क्या दोष दूं? यह बच्चा उनकी धरोहर है, नहीं तो अब तक मेरे भी प्राण निकल गये होते। इसी को पाल पोसकर बड़ा कर सकूं तो समझूंगी, उनका ऋण चुका सकी। पर यह भी भगवान् के अनुग्रह से ही हो सकेगा।"

'बहिन, मैं तेरी खोज में थी। मैं सोच नहीं पाती थी कि तुझे कहां खोजूं। वह तो परम ब्रह्मवादिनी भगवती ऋतम्भरा न मिल गयी होतीं तो मैं तेरा कुछ पता भी नहीं पाती। तू उनके पास कैसे पहुँची बहिन?"

"आप किनकी बात कह रही हैं दीदी रानी, मैं समझ नहीं पा रही हूँ।"

'भगवती ऋतम्भरा ने ही तो आचार्यपाद से कहकर तेरे पति का श्राद्ध कराया। उन्हीं की कृपा से तो मैं तुझे पा सकी हूँ।"

"अच्छा, आप माताजी की बात कह रही हैं?"

"हाँ हाँ, माताजी।"

साक्षात् भगवती का रूप हैं माताजी। इतना प्यार मेरे-जैसे अभाजन के प्रति! ऐसा तो कहीं देखा सुना नहीं, दीदी रानी!"

"हाँ, उनके पास तो बड़े बड़े ब्रह्मवादी ऋषि भी पहुँचने में हिचकते हैं, तू कैसे

पहुँच गयी ?"

जावाला ने अपना हाथ जोड़कर ऊपर आसमान की ओर किये। अत्यंत गदगद भाव से कहा, "जब दुःख देते हैं तो उस दुःख के भीतर अपनी अपार करुणा भी भेज देते हैं। उन्हीं का अनुग्रह था दीदी रानी, नहीं तो कहाँ साक्षात भगवती रूपा माताजी और कहाँ मैं भाग्य वंचिता!"

'वही तो पूछ रही हूँ कि तू कैसे वहाँ पहुँची ?"

मैं कैसे पहुँचती दीदी रानी, भैया ले गये। रास्ते में भूख प्यास से अवश होकर पड़ी थी। इतनी भी शक्ति नहीं थी कि उठकर नदी तक जाऊँ और एक चुल्लू पानी इस बच्चे के मुँह में डाल सकूँ। यह तो मर ही गया होता अगर भगवान ने उन्हें भेज नहीं दिया होता। बेचारे दौड़कर नदी से पानी ले आये, फिर बच्चे के मुँह में डालकर इसे बचा लिया। भगवान् उन्हें सुखी रखें। बड़े दयालु हैं। और क्या बताऊँ दीदी रानी, भोले तो ऐसे कि कुछ पूछो नहीं। वही तो माताजी के पास ले गये मुझे।'

तू 'भैया' किसे कहती है ऋजुका ?"

'बड़े ज्ञानी हैं दीदी रानी, माताजी उन्हें स्वयं बेटा कहती हैं। सुनके हँसोगी, उन्होंने माताजी से लुभावने भोलेपन से पूछा, 'माँ, यह भी स्त्री पदार्थ है न ? इन्हें मैं क्या कहकर पुकारूँ ?' माताजी ने उन्हें समझाकर कहा कि समान अवस्था की लड़कियों को बहिन माना जाता है। जरा बड़ी हो तो दीदी कहा जाता है। फिर तो उन्होंने मुझे 'दीदी' कहना शुरू किया। कितना मीठा बोलते हैं! जब दीदी कहते हैं तो हिया जुड़ा जाता है। क्या कोई सहोदर भाई भी इतने प्यार से दीदी कहता होगा ? इस घोर विपत्ति के समय भगवान ने ऐसा भाई दे दिया। कैसे कहूँ कि उनकी अपार करुणा बरस नहीं रही है!"

"तो रैक्व तुझे दीदी कहते हैं ? मैं भी तुझे दीदी ही कहूँगी।"

"आप ? मैं अभागिन इतना गौरव नहीं सम्हाल पाऊँगी, दीदी रानी! भैया तो बमभोलानाथ हैं, वे कहते हैं तो आप कैसे कहेंगी ? आप स्वामिनी हैं, मैं नगण्य दासी!"

'जानती है, भगवती ऋतम्भरा को मैं माँ कहती हूँ। तू तो बस ही मेरी दीदी है।"

ऋजुका की आँखों में जल कण छलछला आये।

जावाला ने फिर पूछा, 'अच्छा दीदी, तेरे भैया क्या ध्यान करते रहते हैं ? मैंने सुना है कि वे बड़ा तप किया करते हैं।"

"ध्यान करते तो मैंने कभी नहीं देखा, दीदी रानी! माताजी से एक दिन कह रहे थे कि माँ, अब समाधि सिद्ध नहीं होती। ध्यान करता हूँ तो शुभा ही सामने आ जाती है!"

"अच्छा, तुझे बताया कभी कि यह शुभा कौन है ?"

'नहीं दीदी, मैंने पूछा था तो कहा था, तू कैसे जानेगी! माताजी ने कहा है

है कि शुभा के बारे में किसी को कुछ न बताया करो। सो मैं तुम्हें कुछ नहीं बताऊँगा।' "

"माताजी ने मना कर दिया है ?"

"यही कह रहे थे। मगर शुभा को वह बहुत भक्ति से याद करते थे। उनको तो कुछ दुनिया का पता ही नहीं है, मगर मैं समझती हूँ और शायद माताजी भी समझती हैं कि वे उसमें बहुत प्यार करते हैं।'

"माताजी ने तुझे कुछ बताया था क्या ?"

'नहीं दीदी रानी, तुम्हें मेरे भैया का भोलापन जानकर हँसी आयगी। जब माताजी से पूछ रहे थे कि मुझे क्या कहकर पुकारें और माताजी बता रही थीं कि समान उमर की लड़कियों को बहिन माना जाता है और अगर कुछ बड़ी हुई तो उन्हें दीदी कहा जाता है, तो भैया ने पूछा कि 'शुभा को क्या कहकर पुकारूँगा, मा ?' माताजी के अधरों पर हँसी की हल्की रेखा दीखी, बोलीं 'सोचकर बताऊँगी।' इस पर से मैंने अनुमान किया कि माताजी को लग रहा है कि शुभा से उनका कुछ ऐसा सम्बन्ध होने की सम्भावना है जिससे उसे बहिन नहीं बताया जा सकता। यही बात हो सकती है न, दीदी रानी ?"

"शायद तेरा अनुमान ठीक ही हो।"

"उस गाड़ी से भी उनका बड़ा प्रेम है। माताजी कहती थीं कि कभी इस गाड़ी के नीचे बैठकर तप किया करते थे।"

"अच्छा !"

"हाँ, दीदी रानी ! और जगत के प्रपंच से तो एकदम अपरिचित है। जिस दिन माताजी यहाँ आयी थीं, उस दिन अकेले गाड़ी के पास ही उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। कोई गाँव का किसान मिल गया होगा। उसका विवाह नहीं हुआ था। उसने उनसे कह दिया कि जिसके माँ-बाप नहीं, धन सम्पत्ति नहीं, भाई बहिन नहीं, उसको कोई बाप अपनी लड़की नहीं देता, उसका विवाह नहीं होता।"

"यह तो ठीक ही उसने कहा था। तुम्हारे भैया ने क्या कहा ?"

"भैया क्या कहते ! वह बिचारा तो अपनी बात कह गया था। मगर थोड़ी देर बाद जब मैं मिली तो भैया कह रहे थे कि 'दीदी, मेरा विवाह नहीं होगा।' मैंने पूछा, क्या ?' बोले 'मामा कहता था कि जिसके माँ बाप नहीं होते धन सम्पत्ति नहीं होती, उसका विवाह नहीं होता।' फिर बोले, 'अच्छा दीदी, लड़के का विवाह क्या लड़की से ही होता है ? अब बताओ, इस बमभोलानाथ को क्या बताऊँ !"

अभी तक अरुन्धती चुपचाप सुन रही थी। अब हँसी रोक नहीं सकी। बोली, "दीदी, यह उस नाटक के ऋषिकुमार जैसा ही कोई बागड़बिल्ला लगता है। पूछता है कि लड़के का विवाह लड़की से ही होता है न !" अरुन्धती देर तक हँसती रही। हँसी ऋतुम्भरा को भी आयी, पर जाबाला का चेहरा एकदम गम्भीर हो गया। अरुन्धती उसकी गम्भीरता देखकर चुप हो गयी।

जाबाला ने गम्भीरता के साथ कहा, 'दीदी, तेरे भैया देवता जान पडते है।"

अरुन्धती को विस्मय हुआ—दीदी क्या कह रही है ? उस दिन ऐसा दृश्य देखकर रोने ही लगी थी। आज कह रही है कि यह ऋजुका का भैया देवता जान पडता है ! दीदी को हो क्या गया है ? जहा हँसना चाहिए, वहा रोने लगती है, गम्भीर हो जाती है। क्या बात है ! उसने निश्चय किया कि अब दीदी के चेहरे के भावो को समझने की कोशिश करेगी। थोडा सहज होकर बोली, 'दीदी, देवता इतने भोले तो नहीं होते होंगे ?"

जाबाला ने उसी गम्भीरता के साथ कहा, "हा अरु, शायद ऋजुका का भैया देवता से भी बढकर है। ऐसा निश्छल निष्पाप चरित्र उस दिन नाटक मे देखा था, आज ऋजुका दीदी से सुन रही हूँ। तू क्या नही समझ पाती कि ऐसा सहज मनुष्य दुर्लभ है !"

अरुन्धती ने विस्मय विस्फारित नेत्रो से अपनी दीदी को देखा। जाबाला शान्त, मौन ! अरुन्धती चकित !

ऋजुका ही ने मौन भग किया—"ठीक कहती हो दीदी रानी, वह देवता से भी बढकर है। कौन दीन दुखिया के बारे मे सोचता है ? जब गाववाला के दुख की बात सुनी तो माताजी के साथ गाव गाव घूमे। मुझसे कह रहे थे कि दीदी, जब लोग इतना कष्ट पा रहे हो उस समय तप करना वैश्वानर भगवान को धोखा देना है ! कौन इतनी बडी बात कह सकता है, दीदी रानी !"

'वैश्वानर भगवान को धोखा देना ?"

'ऐसा ही कुछ कह रहे थे, मैं गँवार क्या समझूँ ! इतना ही समझ पायी कि कोई बडी बात कह रहे है। कौन ऋषि कह सकता है दीदी रानी, कि गाडी के नीचे बैठना तप नहीं है, गाडी खीचकर लोगो को कुछ खाद्य पहुँचाना ठीक तपस्या है।'

"अब क्या कर रहे हैं तेरे भैया ?"

"माताजी ने उनसे और शास्त्र पढने को कहा है। पढ रहे होंगे। मैं तो समझती थी कि बहुत ज्ञानी हैं, पर माताजी ने जब कहा कि और पढो तो कुछ सोचकर ही कहा होगा। बडे उत्साह से गये। जाते समय मुझसे कह गये कि दीदी, पढ लिखकर समझदार बनकर लौटूगा।' मैंने कहा कि 'कौन कहता है कि तुम समझदार नही हो, तो निश्छल भाव से बोले, 'शुभा के समान समझदार बनकर लौटूगा। वह बहुत जानती है। उसे धर्म अधर्म का पूरा ज्ञान है, मुझे तो अल्पज्ञ समझती है। पढकर लौटूगा तो वह देखेगी कि मैं भी उसी के समान समझदार हो गया हूँ। हो जाऊँगा न दीदी ?' "

'तुमने क्या कहा ?"

'मुझे तो हँसी आ गयी। मैंने कहा शुभा का तो मैं नहीं जानती पर इतना मैं अभी मे कह सकती हूँ कि वह मेरे भैया के पासग मे भी नहा आ सकती।"

'बिल्कुल ठीक कहा।

"यह तुम कहती हो दीदी रानी, मेरे भैया तो एकदम उजासे हो गये। कहने लगे— ऐसा न कहो दीदी, तुमने शुभा को देखा कहाँ ? वह द्युलोक की दिव्य किरण के समान पवित्र है, उषा के समान कान्तिमती है, साक्षात वाग्देवता के समान बुद्धिमती है।"

"रहने दे ऋतुका दीदी, तेरे भैया की शुभा-स्तुति सुनकर क्या करूँगी ! इतना अवश्य लगता है कि शुभा सचमुच भाग्यवती है जो ऐसे पवित्र हृदय में निवास कर रही है !"

"इसमें क्या सन्देह है, दीदी रानी !"

अरुन्धती को जाबाला की बातों में विशेष प्रकार की रुचि उत्पन्न हुई। सिर्फ छेड़ने के उद्देश्य से ही उसने हँसते हँसते कहा, 'भाग्यवती कहती हो दीदी, कहीं मिल गयी तो गाड़ी में ही जोत देगा !"

जाबाला ने जैसे दूर की किसी वस्तु पर नजर गड़ा दी—"यदि वह जुतने को इनकार कर दे तो जानती है, मैं उसे क्या कहूँगी ? कहूँगी— भाग्यहीना, अविवेकिनी !"

अरुन्धती, दीदी की ओर एकदम देखती रह गयी।

जाबाला ने ऋतुका से कहा, "आचार्य तातपाद ने तुझे गाड़ी के पास प्रति त्रयोदशी को दीप जलाने को कहा है न, दीदी !"

"कहा है।"

"तू प्रति त्रयोदशी को दीप जलाने आया करेगी न ?"

"आऊँगी, दीदी रानी !"

'तेरा घर यहाँ से कितनी दूर है ?"

'घर अब कहाँ रहा, दीदी रानी ? यहाँ से चौदह कोस मेरा गाँव है, पर घर तो अब नहीं रहा।"

"सुन दीदी, मैं तुझे कुछ काम दूँगी। करेगी ?"

"लो दीदी रानी ! मैं तुम्हारी दासी हूँ, काम नहीं दोगी तो खाऊँगी क्या ? इस बच्चे को भी तो पाल पोसकर बड़ा करना है। यह तो उनकी थाती है। काम नहीं करूँगी तो इसे पालूँगी कैसे ?

'बच्चे की चिन्ता न कर। मैं पालूँगी। मगर तेरे लिए एक काम देना चाहती हूँ। वह जो गाड़ी है न, जहाँ तुझे दीप जलाने को कहा है, वहीं तेरे लिए घर बनवा देती हूँ। तेरा काम है उसे खूब साफ सुथरा रखना। वहाँ त्रयोदशी को दीप जलाना तेरा काम है। उसके लिए तुझे सब सामग्री भिजवा दूँगी। मेरा भी एक काम कर दिया कर। उसके पास जो टीला है वहाँ मेरी ओर से प्रति सन्ध्या को धूप दीप-नैवेद्य से परम वैश्वानर देवता की अर्चना करना, मेरी ओर से। बीच बीच में मैं भी आऊँगी। तुझे जितनी गायें चाहिए, भेज दूँगी। और किसी दासी को साथ रखना चाहे तो रख ले। तेरा यह भी काम होगा कि उधर पहुँचनेवाले साधु सन्तों, स्नातक ब्रह्मचारियों को गोदुग्ध देकर उनका आशीर्वाद लेना। देख, कर

वेगी न ?"

"कर सकूँगी दीदी रानी पर विधि विधान तो जानती नहीं।"

"तेरे भीतर जो श्रद्धा होगी वही विधि विधान होगी।"

"सो तो होगी।"

"और हा अपने भया के समान ही पवित्र शरीर और मन से यह सब करना होगा।"

"करूँगी, दीदी रानी।"

"प्रमाद तो नही करेगी न ?"

"प्रमाद क्या करूँगी भला! यह तो मेरे मन का काम होगा।"

"और देख बीच-बीच मे तेरा काम देखती रहूँगी। तुझे जो आवश्यकता हो, यहाँ से ले लेना।"

"बहुत अच्छा, दीदी रानी!"

अरुधती अब तक चुप रही। जब ऋजुका उठने लगी तो उसने मन्दस्मित के साथ कहा, "ऋजुका दीदी, तूने मुझसे तो पूछा ही नही कि म भी कुछ पूजा करना चाहती हूँ या नही!"

ऋजुका बठ गयी—"क्षमा करो, दीदी रानी, भूल हो गयी।"

अरुधती ने भक्ति भावित मुद्रा म कहा, "देख, मेरी ओर से भी दो फूल नित्य चढा देना।"

"किसके लिए दीदी रानी ?"

"मेरी इस दीदी के मगल के लिए।"

"सो तो समझ गयी। पर किस दवता के निमित्त ?"

"देवता के लिए तू पूजा चढायेगी ही। सब कर लने के बाद देवता से भी जो बढकर हो उसके लिए एक चढा देना। और दूसरा "

जाबाला एकदम भडक उठी—"चुप रह अर, तुझे सब समय शरारत ही सूझती है।"

ऋजुका हँसती हुई चली गयी।

ऋजुका के चले जान के बाद अरुधती न रानी सूरत बना ली—"तुम तो हर बात मे मुझे डाट देती हो।"

"तू बात ही ऐसी करती है!"

"मैंने पूरी बात कही कहा? आधी बात सुनकर ही डाँट फटकार शुरू कर दी। आधी बात सुनकर ही अप्रसन्न हुआ जाता है? मरी मन की मन म ही रह गयी।"

"अच्छा कह मैं सुन लती हूँ।"

"तुम्हारे सुनन से क्या होगा! मैं नही क ", वहिन का

जावाला का लगा कि — न [पूरी

दिल दुखा दिया। उस प्यार

बात कह दे। मैंने तेरी बात को परिहास समझ लिया था। कह दे मेरी प्यारी बहिन।"

अरुंधती उसी प्रकार कृत्रिम उदासी का बाना धारण किये रही। जाबाला और भी आग्रह करने लगी। उसे गले लगा लिया। फिर मनुहार करती हुई बोली, "बुरा मान गयी, अरु, दीदी की डाट का बुरा मान गयी? छुटपन से तुझे डाटती आ रही हूँ, आदत पड गयी है। अब नही डाटूगी—तू पूरी बात कह दे।'

अरुंधती ने मान तोडने की मुद्रा मे कहा "नही डाटोगी न?"

जाबाला ने मनुहार करने की मुद्रा मे ही कहा, 'बिल्कुल नही।"

अरुंधती ने कहा, "मैं एक फूल उसकी पूजा के लिए चढाने को कह रही थी जो देवता से भी बढकर हो। कहा था न?" जाबाला को फिर उसमे शरारत की गध मिली पर कुछ बोली नही। उसने पूरी बात सुनने के लिए उत्कण्ठा दिखायी। अरुंधती ने गम्भीर मुद्रा धारण की, मानो कोई महत्त्वपूर्ण बात कहने जा रही हो—"दूसरा फूल दिव्य लोक की पवित्र किरण के निमित्त ।"

जाबाला ने फिर बीच मे ही झटका दिया—"जाने भी दे, मैं तेरी सब दुष्ट बुद्धि पहले ही समझ गयी थी।"

"समझ गयी, दीदी? अब समझा भी दो।"

"तेरे दोनो कान पकडकर खीचूगी, तब तेरी समझ मे आयेगा।"

"ठीक कहती हो, दीदी, अब इन्ही काना का दोष है सुनते है कुछ समझते है कुछ! अच्छा दीदी, सिर्फ इतना बता दो कि मैंने जो समझा है वह ठीक है?"

"क्या समझा है तूने?"

"अभी तो कह रही थी कि मेरी सारी दुष्ट बुद्धि समझ गयी हो।"

"तुझसे पार पाना कठिन है।"

"इतना कठिन भी नही है। हाँ या ना कह दो तुरन्त पार पा जाओगी।"

'देख अरु, तू मुझे प्यार करती है न?"

अरुंधती की आँखो मे अपार चुहल लहराती दिख रही थी। बोली "मैं अपनी दीदी को इतना प्यार करती हूँ इतना प्यार करती हूँ जितना कोई देवताओ से बढकर मनुष्य भी किसी पवित्र दिव्य ज्योति की किरण को नही कर सकता।"

'छि अरु, इतनी ढिठाई अच्छी नही।"

'तुम्हारी नादान बहिन हूँ, दीदी, इतना ही बता दो कि कितनी ढिठाई अच्छी है।"

जाबाला झटके से उठकर बाहर चली गयी। उसका चेहरा लाल था। क्रोध की लालिमा तो वह नही थी। अरुंधती अपराधिनी की भाति जड हो गयी। ढिठाई उसने की है जितनी दूर तक उसे बढना चाहिए या उससे कही अधिक बढ गयी है। हाय दीदी से कैसे क्षमा मागे? वह देर तक वही स्तब्ध की भाति बैठी रह गयी। जब उठी तो आकाश मे घुमडे बादल बरसने की तैयारी मे लगे थे। मगर दीदी गयी कहाँ? उसने एक-एक घर खोज डाला। दीदी का कही पता नहीं। उसका

हृदय बुरी तरह धड़कने लगा। हाय हाय, घर छोड़कर कहाँ चली गयी। भयंकर वज्र निनाद के साथ बिजली कड़की और ऐसा लगा कि आसमान फटकर धरती पर गिरने को है। धारासार वर्षा शुरू हुई। अरुन्धती भय के मारे सुन्न सी हो गयी। उसने चिल्लाकर दासियों को बुलाया। दीदी कहाँ चली गयी ?

वृद्धा दासी ने इधर उधर देखा। फिर घर के पीछे के उद्यान में झाँककर देखा। वह एक कुंज था, छोटा सा। उसके भीतर एक स्थण्डिल पीठिका पर एक बड़ी सी बाँस की छतरी थी। जाबाला वहीं ध्यान मग्न बैठी थी, प्रस्तर प्रतिमा की तरह। अरुन्धती दौड़कर वहाँ जाने को हुई तभी वृद्धा दासी ने रोका—"नहीं बेटी, वहाँ मत जाओ। पानी बरसने पर तुम्हारी दीदी वहीं बैठती है। अपने पास किसी को आने नहीं देती। इस समय जाओगी तो बुरा मानेगी। पानी बरसना बन्द हो जायगा तो आ जायेंगी। अभी उन्हें वहीं छोड़ दो।'

अरुन्धती रुक गयी। दीदी को वह अधिक अप्रसन्न नहीं करेगी। वह घर के कोने में खड़ी-खड़ी दीदी की निर्वात निष्कम्प दीपशिखा सी ज्योतिमयी मूर्ति को एकटक निहारती रही। चिन्तातुर हृदय गम्भीर हो गया था, पर चुहल अब भी कहीं विद्यमान थी। उसने दीदी को दिव्यलोक की पवित्र किरण के समान ही देखा। उसके सहज-चंचल चित्त में एक अननुभूत आनन्द की रेखा विद्युत तरंग की तरह चमक उठी—कैसा आश्चर्य है, एक तरफ समाधि सिद्ध ही नहीं हो पाती क्योंकि शुभा आकर खड़ी हो जाती है दूसरी तरफ समाधि टूटने का नाम ही नहीं लेती! यहाँ कोई खड़ा नहीं हो रहा है ? कौन बतायेगा ?

जाबाला शान्त निस्पन्द !

उस दिन भी भयंकर वर्षा हुई थी। धरती और आसमान पानी की मोटी धाराओं से जुड़ गये थे। पर उस दिन हवा का वेग तेज था, आज नहीं है। पर्जन्य देवता आज चंचल नहीं है। लहालेह वर्षा हो रही है। उस दिन पर्जन्य देवता ने उस भोले ऋषिकुमार को लाकर एकदम निकट खड़ा कर दिया था। हाय, कितनी मोहक थी उसकी प्रथम रमणी दर्शन से मुग्ध आँखें। उसने इन केशों को हाथ से छूकर, हल्का-सा मसलकर समझना चाहा था कि ये कितने मुलायम हैं! जाबाला उस दिन चूक गयी। सुव्रता की भाँति उसने भी अगर केशों से उसके चरण पोंछ दिये होते तो ये केश सार्थक हो जाते। समय पर वह चूक जाती है। आज फिर मेघ उमड़ घुमड़कर बरस रहे हैं। जाबाला को ऋग्वेद की वर्षा-स्तुति याद आयी। एक अज्ञात ऋषि ने पर्जन्य की स्तुति की थी। आज वह प्रत्यक्ष है। जाबाला उस स्तुति के एक-एक पद में नया अर्थ पा रही है, वि [illegible] थ। ऋषि ने कभी गाया था

"इन वाणियों क [illegible] पर्जन्य [illegible] न करो, प्रणति और स्तुति से प्र [illegible] नी [illegible] षभ के समान हैं, जो वनस्पतियों [illegible] ।

"वह वृक्षों का ताड़न [illegible] कर

महान् अस्त्र से भयभीत होता है। जब पर्जन्य दुष्टों पर गरजते हुए प्रहार करते हैं पाप शून्य पुरुष भी उस महान् के सामने से भागते हैं।

"अपने अश्वों पर कशाघात करते हुए महारथी की भांति वह अपने वर्षा दूतों का प्रदर्शन करते हैं। जब पर्जन्य आकाश को मेघाच्छन्न करके गर्जन करते हैं तो ऐसा मालूम होता है जैसे दूर से सिंह निनाद सुनायी पड रहा हो।

'पवन प्रसरित होता है, विद्युत गिरती है, औषधियां अंकुरित होती हैं, स्वर्ग उमड पडता है। पर्जन्य जब-जब पृथ्वी में बीजारोपण करते हैं तो सारे जगत में प्रकृति का जन्म होता है।

'जिसके व्रत में पृथ्वी नत होती है, खुर वाले प्राणी उत्साहित होते हैं, औषधियां विविध रूप धारण करती हैं वही पर्जन्य हमें परम कल्याण वितरण करें।"

पर्जन्य देवता गर्जनकारी वृषभ के समान आकाश में अखाड रहे हैं। पृथ्वी सचमुच नत है, उसके अंग अंग में रस भीन रहा है। वनराजि रोमांच की भांति उदगत है। वे सींच रहे हैं, पृथ्वी कृतार्थ है। अचानक पर्जन्य देवता जाबाला की दृष्टि से ओझल हो जाते हैं उपस्थित होते हैं ऋषिकुमार रैक्व! पृथ्वी विलुप्त हो जाती है आविर्भूत होती है स्वयं जाबाला की अपनी मूर्ति! मेघ बरस रहे हैं, धरती भीग रही है। उसकी नस नस में प्राणों का उल्लास मुखरित हो रहा है।

जाबाला को झटका लगा। अरुन्धती जान गयी है। उसकी तीक्ष्ण दृष्टि ने अन्तरतर को छेद डाला है। बडी चपला है। सब ओर फैला देगी बात। लेकिन उससे छिपाया ही क्या जाय? उसने सत्य को ही तो टटोल टटोलकर ढूढा है। उससे कुछ छिपाना व्यर्थ है। पर कैसी लज्जा की बात है!

अरुन्धती उसकी ओर एकदम देख रही है, दीदी का क्रोध शान्त हो रहा है। उसने सचमुच ढिठाई की है। एकदम उतावलेपन का परिचय दिया है उसने!

वर्षा शान्त हुई। जाबाला ने आँख खोली। आकाश अब भी बहुत साफ नहीं है।

अरुन्धती ने देखा कि दीदी का ध्यान टूटा है। एक क्षण का विलम्ब न करके वह दौडकर दीदी से लिपट गयी—"चूक हो गयी दीदी, क्षमा कर दो! इस नादान बहिन की बातों का बुरा न मानो। क्षमा कर दो, क्षमा कर दो!" जाबाला ने आवेश में आकर उसे और भी कसके भुजपाश में बाध लिया!

'तेरा अनुमान सत्य है, अरु!'

'सत्य है दीदी?"

"हां रे, सत्य है।'

उल्लास-चंचल अरुन्धती ने देर तक दीदी को जकड रखा।

बादल छँट गये। आसमान साफ हो गया।

दोनों बहिनें प्रसन्न वदन।

जाबाला ने कहा, 'तू कवि जान पडती है अरु।"

"कवि ! मैने क्या गडवड कर दिया कि मुझे कवि कहती हो ?"

"गडवड तो कर ही दिया ! जानती है, अनादि काल से तितली फूल के इद गिद चक्कर काट रही है, लता वक्ष को आच्छादित करके उल्लसित हो रही है, बिजली मेघ के साथ आँख-मिचौनी खेल रही है, कुमुदिनी चन्द्रमा की प्रतीक्षा म व्याकुल है। किसी ने तो इन बाता की ओर ध्यान नही दिया, किसी ने इसका रहस्य समझने का दावा नही किया, सब कुछ तो चुपचाप अपनी अपनी गति से चल रहा था। कहा जाने एक कवि आ गया। उसने चिल्लाकर कहा, मुझे मालूम है, मैं इस गुप चुप चल रही प्रेम वार्ता को पहचान गया हूँ। सुनो ससार के स्त्री पुरुषो, मैं आखो की भाषा जानता हूँ, मैं भुजाआ की भाषा जानता हूँ, मैं लुका चोरी की भाषा जानता हूँ, मैं सब जान गया हूँ !' उसी दिन तो सारा प्रकृति व्यापार गड बडा गया, अरु ! तू कवि है ! मगर देख, कवि न सबको पुकारकर कह दिया था, पर तू मेरी प्यारी बहिन, इतना चिल्लाके न कह। तू इसे चुपचाप अपने ही पास रख। तू कवि से बडी हो जा !"

"एक है देवता से भी बडा। उसी के उत्पात से तुम्हारी यह दशा हो गयी है। अब कवि से बडी होन जा रही हूँ मैं ! भगवान ही मालिक है !"

"अरु, मेरी प्यारी बहिन !"

'तुम अधिक चाटुकारी मत करो, दीदी ! तुम्हारी आज्ञा से बाहर थोडे ही हूँ !"

"हा अरु, इस बात को अपने ही तक सीमित रख। दीदी की मूखता का प्रचार मत करना। हा भला !"

"बिल्कुल ! मगर एक मेरी भी।'

"कह, क्या कहती है ?"

"यही कि पूरा सुनना चाहती हूँ।"

"पूरा ही जान गयी है। मेरे मुख स सुनना चाहती है तो सुना दती हूँ।"

जाबाला न पूरी कहानी सुना दी। अरुधती की चपल जिह्वा एकदम बन्द हो गयी। उसने अपने अश्रु पूरित नयन जाबाला के चेहरे पर गडा दिय।

चौदह

माताजी ने लौटते ही रक्त का विधिवत उपनयन कराया। कई दिना तक यज्ञ-याग चलत रह। सामगान म आश्रम मुखरित हो गया। अनक ऋषि सपरिवार पधारे।

होने लगा। जैसे जैसे वे शास्त्र ज्ञान अर्जित करते गये, वैसे-वैसे उन्हें माताजी की वाणी का अर्थ समझ में आने लगा। उन्हें शुभा अर्थात जाबाला के योग्य बनना है। उन्होंने अपने को योग्य बनाने में कुछ भी उठा नहीं रखा।

यद्यपि उन्होंने शास्त्राभ्यास को ही सदा ध्यान में रखा, पर प्रच्छन्न रूप से इस प्रेरणा देनेवाली शक्ति शुभा ही थी। बीच बीच में उनकी पीठ की सनसनाहट असह्य हो जाती। कठिनाई यह हो गयी थी कि अब वे निस्संकोच होकर माताजी से शुभा के बारे में कुछ पूछ भी नहीं पाते थे, मुँह से बात ही नहीं निकल पाती थी। कहीं से अज्ञात मनोभाव अचानक प्रकट होकर उन्हें रोक देते थे।

माताजी उनसे शास्त्राभ्यास के अतिरिक्त कुछ बात ही नहीं करती थी। उनका मन शुभा की बात सुनने के लिए व्याकुल रहता था, पर माताजी उस सम्बन्ध में एकदम मौन हो गयी थी। पहला साल बीतते ही पूरे एक वर्ष तक उन्हें दूर दूर के विभिन्न आश्रमों में जाने का आदेश दिया गया। माताजी से अलग रह कर दूर-दूर तक ऋषियों के आश्रमों में भ्रमण करना पहले तो उन्हें कष्टकर लगा, पर बाद में अच्छा लगने लगा। इस बीच में स्वयं सोचने समझने का अवसर भी पा सके। उनका पुराना मत फिर से नयी ज्योति से उदभासित हो उठा। वे फिर प्राण की महिमा की ओर लौटने लगे। पिता औपस्ति के अभिभूत कर देनेवाले ब्रह्मवाद का प्रभाव क्षीण होने लगा। वे नाना सत्संगों में इस विषय पर विचार करते और मन में कोई पूर्वग्रह न रखकर सत्य के अन्वेषण का प्रयत्न करते। इन यात्राओं में उनका साथ कुशल विवेचक ऋषिकुमार आश्वलायन से हो गया। दोनों में गाढ़ी मित्रता हो गयी। ऋषियों की दुनिया में उन दिनों जितनी भी बातें मान्य थीं, उन सब पर दोनों में वाद होता। कई बार वे उत्तेजित होकर बहस करते, पर अन्त में फिर यथापूर्व मैत्री लौट आती।

एक दिन आश्वलायन ने झल्लाकर कहा, 'रक्व, तुमने पहले जो प्राण की उपासना शुरू की थी उसे छोड़कर मूर्खता की है। तुमने मुझे बताया था कि प्राण की उपासना द्वारा एक दिन तुम समस्त विश्व को वश में कर सकते हो। मैं उससे प्रभावित हुआ था। तुम जानते ही हो मेरे कुल में यज्ञ याग का ही महत्त्व है। हमारे घर में निरन्तर सामगान होता रहता है। परन्तु तुमसे मिलने के बाद मैंने प्राणोपासना को ही विशेष रूप से जीवन का लक्ष्य बनाया था। अब देखता हूँ कि तुम्हीं भटक गये हो। क्या बात हुई कि तुम लक्ष्य से हट गये? मैं तो कभी उस पर जम ही नहीं पाया। पर मुझे अपनी दुर्बलता का ज्ञान है, तुम क्यों भटक गये?'

रक्व को धक्का लगा। वे सोचने लगे कि क्या मैं लक्ष्य से सचमुच हट गया हूँ। उदास भाव से बोले, "मित्र लक्ष्य ही शायद हट गया है। मैं प्राणायाम साधन में असफल हो जाता हूँ। ध्यान में जो मेरे सामने आता है वह वायु या प्राण नहीं कुछ और है।"

"वह क्या वस्तु है, मित्र, बता सकते हो?"

'नहीं बता सकता, माताजी की कठोर आज्ञा है कि यह बात किसी को मत

बताना।"

"विषम सकट है। पर मत बताओ, म समझ गया हूँ।'

"क्या समझ गये ? कैसे समझ गये ?"

"मैं मुक्तभोगी हूँ, मित्र !"

"भुक्तभोगी हो ? क्या मतलब ?"

"मतलब यह ह कि तुम्हारे ध्यान म पहले कोई लक्ष्य नही था। ध्यान प्रिय वस्तु का किया जाता है। पहले तुम्हारे सामने कोई प्रिय नही था। अब तुम किसी को प्रिय समझ रहे हो। सारे चिन्तन मनन को, क्रिया कम को, एक आर ठेलकर वही प्रिय रूप तुम्हारे मन म आ जाता है। यही बात है न मित्र ?"

"हा, है तो यही बात, पर तुमने जाना कस ?"

"बताया न, भोग चुका हूँ।"

"तो तुम्हारा भी ध्यान "

'बात पुरानी हो चुकी है। मैं तो तुम्हारी बात जानना चाहता हूँ।"

"हूँ!"

"देखो मित्र, मैने सुना है कि कविराज अजातशत्रु ने गार्ग्य को बताया था कि ब्रह्म के दो रूप है, मूत्त और अमूत्त। अमूत्त तो वायु और अन्तरिक्ष है और मूत्त है यह सारा प्रपच जो आखा को दिखायी देता है।"

'तो ?"

"अब ध्यान म ब्रह्म का रूप तो देखना ही होगा। नही ता ध्यान किसका करोगे ? और जो दिखायी देगा वह मूत्त रूप ही हो सकता है।"

"अजातशत्रु ने कैसा रूप बताया था ?"'

"यही तो मै तुम्ह बताना चाहता हूँ। अजातशत्रु ने कहा था कि समाधि अवस्था म उपासक को ब्रह्म का जो रूप दीख पडता है, वह ऐसा है, जैसे केसर के रग से रँगा महा वस्त्र हो, पाण्डु वण की ऊन हो, वीरबहूटी की लालिमा की तरह, अग्नि की ज्वाला की तरह, श्वेत पुण्डरीक की तरह, एक बार की चमकी विद्युत की लपट की तरह! जो इस रहस्य को जानता है उसकी शोभा विद्युत के एक सकृत प्रकाश की भांति हो जाती ह, बस, इसके आगे ब्रह्म के विषय म नेति-नेति' का ही आदश ह। इससे बढकर अन्य कुछ है ही नही। प्राणो को मनुष्य सब-कुछ समझता है इन्ह सत्य मानता है। अगर प्राण सत्य ह, तो वह प्राणा का प्राण है, सत्या का सत्य है, उसका नाम है 'सत्यस्य सत्यम'।"

"यह तो मूत्त रूप ही हुआ ?"

'सो तो हुआ ही। पर मुझे तो यह पहेली जसा ही लगता ह। उन्हान कई सुन्दर-सुन्दर रग और ज्योतिवाली वस्तुएँ बता दी और फिर कह दिया कि और आग कुछ न पूछना चाहिए। उन्ह ऐसा भी नहीं, वैसा भी नहीं' कहन म सब समा धान मिल गया।"

"यह तो वश्वानर रूप के विपरीत हो गया, हुआ न ?"

"सो तो है ही। मैं दूसरी बात सोच रहा था।"

"तुम क्या सोच रहे थे?"

"मैं यह सोच रहा था कि जब ब्रह्म साक्षात्कार किसी रूप का आधार लिये बिना नहीं हो सकता, तो क्या न उसी रूप को आधार बनाया जाये जो प्रिय हो?"

"मैं तो ऐसा समझता था कि प्रिय के रूप का ध्यान समाधि में बाधक होता है तुम तो उसी से आरम्भ करने को कह रहे हो!"

"कह नहीं रहा हूँ अभी सोच रहा हूँ।"

"मनुष्य जैसा सोचता है वैसा ही कहता है वैसा ही करता भी है।"

"तो यही मान लो कि मैं ऐसा करने को कह रहा हूँ।"

"तो तुम्हारे कहने का अर्थ यह हुआ कि अपने प्रिय का ध्यान ब्रह्म रूप में करना चाहिए?"

"ब्रह्म साक्षात्कार की पहली सीढ़ी प्रिय का ध्यान होना चाहिए। ठीक से समझ लो, पहली सीढ़ी है यह। यह लक्ष्य नहीं है। इसको आधार बनाकर परम वैश्वानर तक पहुँचना होगा। परम वैश्वानर समझ गये न? रूप रूप में रूपायित एकमात्र सत्ता!"

"अगर ऐसा हो सके तो उत्तम हो। पर मेरा अनुभव है कि शुभा का ध्यान करता हूँ तो मन, वचन, कर्म—सब वहीं अवरुद्ध हो जाते हैं।"

"तो तुम्हारी प्रिय शुभा है। नाम ही जिसका शुभा है, वह अवरोध का कारण नहीं बन सकती।"

रैक्व को लगा कि शुभा का नाम लेने से माताजी की अवज्ञा हो गयी। उन्हें अनुताप हुआ। बोले, "शुभा तो मैं कहता हूँ। उसका नाम कुछ और है। पर मित्र, अब कुछ न पूछना उसके बारे में। मुझसे माताजी की अवज्ञा मत करा देना।"

आश्वलायन को हँसी आ गयी—"मैंने कहाँ पूछा, मेरे भोले मित्र, यह तो तुम स्वयं कह गये!"

"बड़ा अविनय हो गया मित्र, माताजी सुनेंगी तो क्या कहेंगी?"

"कुछ नहीं कहेंगी, मित्र, इतना समझ लेंगी कि आश्वलायन तुम्हारा सच्चा मित्र है।"

"जान जायेंगी? बुरा तो नहीं मानेंगी?"

"नहीं। माताएँ जानती हैं कि युवक मित्र आपस में ऐसी बातें कर लेते हैं।"

"कैसी बातें?"

"यही, अपनी उन प्रियाओं की, जो उनका मन मोह रहती हैं।"

"मेरा मन मोह-ग्रस्त है न, मित्र?"

"बुरा क्या है? हमारे मन में जो प्रेम अकस्मात् उदय हो जाता है और सारे जगत् को मधुमय बना देता है वह उपेक्षणीय थोड़े ही है! तुम उसमें परम वैश्वानर का इंगित नहीं समझ पाते?"

"नहीं समझ पाता। यही तो मेरा दोष है।"

"दोष नही है, यह मोह है।"

"यह मोह कैसे दूर होगा ?"

"परम वैश्वानर की कृपा से। तुम क्यो परेशान हो रहे हो ?"

"परेशान हो जाता हूँ मित्र, होना नही चाहिए।"

"मुझे तुमसे ईर्ष्या होती है। ऐसा भोला स्वभाव है तुम्हारा! सुनो, तुमने मधुविद्या का उपदेश कही नही पाया ?"

"मधुविद्या क्या ?"

"याज्ञवल्क्य ने मैत्रेयी को इस विद्या का उपदेश दिया था। वे तो कह गये है कि उपदेश और भी पुराना है। आथर्वण दध्यङ ने अश्विनीकुमारो को यह उपदेश दिया था।"

"दध्यङ तो दधीचि का ही नाम है।"

"एक ही नाम है। दध्यङ कहो या दधीचि कहो। इतिहास पुराण मे जिन्हे दधीचि कहा जाता है वही वेदो मे दध्यङ नाम से प्रसिद्ध है।"

"मधुविद्या का सार बता सकते हो, मित्र ?"

"बताता हूँ। आथर्वण दध्यङ ने कहा था कि यह भूमि, यह जल यह अग्नि, यह वायु, यह आकाश, यह सूर्य, ये दिशाएँ, यह चन्द्रमा, ये तडतडाते मेघ—सब प्राणियो को मधु समान प्रिय है और सब प्राणी इन्हे भी मधु समान प्रिय हैं क्योकि उनमे जो तेजोमय, अमृतमय पुरुष व्याप्त है वही इस पिण्ड मे आत्मा रूप मे विद्यमान है। आत्मा ही अमृत है, आत्मा ही ब्रह्म है, आत्मा ही सब कुछ है, नही तो ये पदार्थ सबको प्रिय नही होते और न सभी प्राणी इन पदार्थो को प्रिय होते।"

"अद्भुत है!"

"इतना ही नही मित्र, यह जो मनुष्य भाव है, प्रेम है, मैत्री है, चाह है अभिलाषा है, तडप है, व्याकुलता है—यह मनुष्य भाव भी सब प्राणियो को मधु समान प्रिय है। इस मानुष भाव मे जो तेजोमय अमृतमय पुरुष है वह समष्टिरूप ब्रह्माण्ड का आत्मा है, भिन्न भिन्न व्यक्तियो मे जो तेजोमय पुरुष है वह व्यष्टि पिण्ड का आत्मा है। आत्मा ही अमृत है, आत्मा ही ब्रह्म है, आत्मा ही सब कुछ है।"

"वाह, यही तो परम वैश्वानर का रूप है!"

"तो मेरे मित्र, जो मानुष भाव सबसे अधिक मधुर है वहीं से शुरू करने मे क्या कठिनाई है ? शुभा भी तो परम वैश्वानर के ही तेजोमय अमृतमय रूप का आश्रय है। निस्सन्देह वह तुम्हारा अपना, नितान्त निजी सत्य है, पर उसी रूप को पकडकर उस परम वैश्वानर को पकडो जो सबका सत्य है सत्य का सत्य है।"

रैक्व को पीठ मे बडे जोर की सनसनाहट महसूस हुई। उनके हाथ पीठ पर पहुँच गये। चेहरा एकदम विवर्ण हो गया।

आश्वलायन को लगा कि उन्होने कोई चोट पहुँचानेवाली बात कह दी। बोले, "कष्ट हुआ मित्र, तुम्हे कष्ट पहुँचा ? छोडो, अब कोई ऐसी बात नही करूँगा।"

"कहो मित्र, तुम्हारी बातो से जो कष्ट हो रहा है वह भी मधुर लग रहा है।

है ! शुभा के प्रति जो आकर्षण है, उसे देखने के लिए हृदय में जो ममत्व आंधी बह रही है, वह परम वैश्वानर के प्रेम की सीढ़ी है, भगवान् की भेजी हुई ज्योति किरण !

वे चलना भूल गये। एकाग्र ध्यान से आश्वलायन की ओर श्रद्धाभरी दृष्टि से देखने लगे। बोले, "अद्भुत सुन रहा हूँ बन्धु, तुम महाज्ञानी हो, अब तक मैंने तुम्हारा गौरव नहीं समझा था। व्यर्थ ही तुमसे झगड़ता रहा। परम वैश्वानर भगवान् की ऐसी अद्भुत व्याख्या मैंने नहीं सुनी। तुम परीक्षित सत्य कह रहे हो इसीलिए वह इतना मनोज्ञ होकर प्रकट हुआ है। मैं धन्य हुआ, बन्धु ! धन्य हुआ !"

आश्वलायन हँसने लगे। बोले, "तुम्हारे इसी भोलेपन पर मैं मुग्ध हूँ। तुम झगड़ते हो तो मुझे सच्चा आनन्द मिलता है। अब देखता हूँ तुम झगड़ना बन्द कर रहे हो। नहीं बन्धु तुम्हारे जैसा मित्र दुर्लभ है। झगड़ा छोड़ दोगे तो मैं तुम्हारा साथ भी छोड़ दूँगा। इतना बड़ा दण्ड सहन नहीं कर सकूँगा।"

"छोड़कर चले जाओगे ? तुम्हारे ज्ञान की प्रशंसा कर दी तो इससे कोई अपराध हो गया ? अभी तुम्हारे अज्ञान की प्रशंसा तो शेष ही है। पहले उसे सुन लो, फिर यह निश्चित करना कि तुम्हारा मित्र सचमुच ऐसा भोला है कि नहीं कि मुग्ध हुआ जा सके !'

"सुनाओ, मेरे अज्ञान की ही स्तुति करो। दूसरों का अज्ञान देखना सचमुच भोलापन नहीं है। सुनाओ, सुनाओ !"

"सच कहता हूँ मित्र, तुम्हारी बात से मुझे बहुत बल मिला है। पर तुम जो बात नहीं जानते, उसे बता देना आवश्यक लग रहा है। कहूँ ?

कहा न कि सुनाओ ! कहोगे नहीं तो सुनाओगे कैसे ?"

अच्छा, तुम मेरी कठिनाई नहीं जानते। तुम किस प्रकार अपनी प्रिया को माध्यम बनाकर परम वैश्वानर तक पहुँचने का मार्ग देख सके हो ? वैसा क्या सभी कर सकते हैं ?"

क्या नहीं कर सकते ?"

'देखो, तुम तर्क का रास्ता अपनाना चाहते हो, मैं अनुभव की बात कहना चाहता हूँ।'

कहो भी तो।'

'देखो, मैं शुभा को किसी परम या चरम सत्य का माध्यम नहीं बना सकता। [illegible] मोहन रूप को देखा ही नहीं। तुम कैसे मेरी बात समझ सकते हो ? देखो मित्र, मेरे ध्यान का एकमात्र लक्ष्य वही हो जाती है। उसके उस मोहन [illegible] [illegible] पाता। नहीं देख पाऊँगा यह पक्का है।"

[illegible] मेरा अज्ञान तो तुमने खूब पकड़ा है मित्र ! [illegible] रूप देखा है, यह भी कैसे कहूँ कि तुम उसके [illegible] है ही। पर इस अज्ञान को दूर करने का

"नही, मैंने कही तुम्हारी दुखती नस को छू दिया है। देखो, मैंने अनेक ज्ञानी ब्रह्मवादी ऋषियो को सुना है कि ब्रह्म सत्यो का सत्य है। यह बात पहले मेरी समझ मे नही आती थी। तुम्हारी तरह ही भोग भोगकर मैंने अपने ढग से इसका अर्थ समझ लिया है। सुनोगे ?"

"सुनूगा बन्धु, तुम्हारी बातो से मुझे अपनी सोची समझी बातो को नया आलोक मिल रहा है।"

'थोडा रुको मित्र, मुझे अपनी बात कह लेने दो।"

'सुन तो रहा हूँ।'

पता नही, सुन रहे हो कि गुन रहे हो। तुम्हारी-जसी स्थिति मे जब मैं था तब सुनता कम था, गुनता अधिक था।"

'क्या मतलब ?"

"मतलब यह कि मेरी बात सुनते सुनते तुम कब शुभा की बात गुनने लगोगे, यह एकमात्र तुम्हारे अन्तर्यामी ही जान सकेंगे।"

नही, तुम कहो, मैं सुन रहा हूँ। गुनूगा तो अन्तर्यामी ही नही, अन्तरग बन्धु भी सुन लेगा।'

तो, बात यह है मित्र कि मैं भी किसी प्रिया के लिए व्याकुल हुआ था और सोचने लगा था कि पितृ पितामहो द्वारा अत्यन्त समादत ब्रह्मचर्य मार्ग से विचलित हो रहा हूँ लेकिन मेरे अन्तर्यामी कहते थे कि तेरा व्यक्ति सत्य यही है। मैं समझता हूँ कि हर व्यक्ति का अपना एक सत्य होता है। तुम्हारा भी है। है न ?"

'शायद।"

"शायद नही, निश्चित रूप से है।"

"फिर ?"

"अब यह सत्य अगर विश्वव्यापी सत्य के साथ एकमेक नही हो जाता तो तुम्हारा मार्ग रुद्ध करेगा। तुम वही जाकर खो जाओगे। मै ठीक कहता हूँ न ?"

'पूरी बात कह लो तो बताऊँगा।"

बात अधूरी कहाँ है ? हर व्यक्ति का अपना सत्य जब तक परम वैश्वानर को समर्पित नही हो जाता, तब तक अधूरा रहता है, अवरोध उपस्थित करता है, अनन्त सम्भावनाओ के द्वार को बन्द कर देता है।"

'यह बात समझ मे आती है।'

'आती है न! अब यह बात भी समझ मे आ जायेगी कि पुराण ऋषियो ने क्या कहा है कि परम वैश्वानर सब सत्यो का सत्य है, वही ब्रह्म है, वही आत्मा है। तुम्हारा व्यक्तिगत प्रेम परम वैश्वानर के प्रेम की पहली सीढी है। न वह उपेक्षणीय है, न लक्ष्य है। वह भगवान् की भेजी हुई एक ज्योति किरण है जिससे अनन्त सम्भावनाओ के द्वार तक मार्ग साफ दिखायी दे जाता है। ऐसा ही समझकर अब मैं निश्चिन्त हो गया हूँ।"

आश्चर्य चकित होकर रैक्व ने अपने मित्र को देखा। क्या अद्भुत बात कही

है। शुभा के प्रति जो आकर्षण है, उसे देखने के लिए हृदय में जो भयंकर आँधी बह रही है, वह परम वैश्वानर के प्रेम की सीढ़ी है, भगवान की भेजी हुई ज्योति किरण।

वे चलना भूल गये। रुककर ध्यान से आश्वलायन की ओर अश्रुभरी दृष्टि से देखने लगे। बोले, 'अद्भुत सुन रहा हूँ बंधु तुम महाज्ञानी हो, अब तक मैंने तुम्हारा गौरव नहीं समझा था। व्यर्थ ही तुमसे झगड़ता रहा। परम वैश्वानर भगवान् की ऐसी अद्भुत व्याख्या मैंने नहीं सुनी। तुम परीक्षित सत्य कह रहे हो, इसीलिए वह इतना मनोज्ञ होकर प्रकट हुआ है। मैं धन्य हुआ, बंधु! धन्य हुआ!"

आश्वलायन हँसने लगे। बोले, "तुम्हारे इसी भोलेपन पर मैं मुग्ध हूँ। तुम झगड़ते हो तो मुझे सच्चा आनन्द मिलता है। अब देखता हूँ, तुम झगड़ना बन्द कर रहे हो। नहीं बन्धु तुम्हारे जैसा मित्र दुर्लभ है। झगड़ा छोड़ दोगे तो मैं तुम्हारा साथ भी छोड़ दूंगा। इतना बड़ा दण्ड सहन नहीं कर सकूंगा।

'छोड़कर चले जाओगे? तुम्हारे ज्ञान की प्रशंसा कर दी तो इससे कोई अपराध हो गया? अभी तुम्हारे अज्ञान की प्रशंसा तो शेष ही है। पहले उसे सुन लो, फिर यह निश्चित करना कि तुम्हारा मित्र सचमुच ऐसा भोला है कि नहीं कि मुग्ध हुआ जा सके!'

'सुनाओ, मेरे अज्ञान की ही स्तुति करो। दूसरों का अज्ञान देखना सचमुच भोलापन नहीं है। सुनाओ, सुनाओ!"

"सच कहता हूँ मित्र, तुम्हारी बात से मुझे बहुत बल मिला है। पर तुम जो बात नहीं जानते, उसे बता देना आवश्यक लग रहा है। कहूँ?

कहा न कि सुनाओ! कहोगे नहीं तो सुनाओगे कैसे?"

"अच्छा, तुम मेरी कठिनाई नहीं जानते। तुम किस प्रकार अपनी प्रिया को माध्यम बनाकर परम वैश्वानर तक पहुँचने का मार्ग देख सके हो? वैसा क्या सभी कर सकते हैं?"

"क्या नहीं कर सकते?"

देखो, तुम तर्क का रास्ता अपनाना चाहते हो, मैं अनुभव की बात कहना चाहता हूँ।'

'कहो भी तो।"

"देखो, मैं शुभा को किसी परम या चरम सत्य का माध्यम नहीं बना सकता। तुमने उस मोहन रूप को देखा ही नहीं। तुम कैसे मेरी बात समझ सकते हो? देखो मेरे ज्ञानी मित्र, मेरे ध्यान का एकमात्र लक्ष्य वही हो जाती है। उसके उस मोहन रूप के परे मैं कुछ भी नहीं देख पाता। नहीं देख पाऊँगा, यह पक्का है!"

आश्वलायन को हँसी आ गयी—'मेरा अज्ञान तो तुमने खूब पकड़ा है मित्र! कैसे कहूँ कि मैंने शुभा का मोहन रूप देखा है, यह भी कैसे कहूँ कि तुम उसके पर कुछ देख पाओगे या नहीं। अज्ञान तो है ही। पर इस अज्ञान को दूर करने का

"नहीं, मैंने कहीं तुम्हारी दुखती नस को छू दिया है। देखा, मैंने अनेक ज्ञानी ब्रह्मवादी ऋषियों का सुना है कि ब्रह्म सत्यों का सत्य है। यह बात पहले मेरी समझ में नहीं आती थी। तुम्हारी तरह ही भोग भोगकर मैंने अपने ढंग से इसका अर्थ समझ लिया है। सुनोगे?"

'सुनूंगा बन्धु तुम्हारी बातों से मुझे अपनी सोची-समझी बातों को नया आलोक मिल रहा है।

थोड़ा रुको मित्र मुझे अपनी बात कह लेने दो।"

सुन तो रहा हूँ।

'पता नहीं सुन रहे हो कि गुन रहे हो। तुम्हारी-जैसी स्थिति में जब मैं था तब सुनता कम था गुनता अधिक था।"

क्या मतलब?'

मतलब यह कि मेरी बात सुनते सुनते तुम कब शुभा की बात गुनने लगोगे, यह एकमात्र तुम्हारे अन्तर्यामी ही जान सकेंगे।"

नहीं तुम कहो मैं सुन रहा हूँ। गुनूंगा तो अन्तर्यामी ही नहीं, अन्तरंग बन्धु भी सुन लेगा।'

तो, बात यह है मित्र कि मैं भी किसी प्रिया के लिए व्याकुल हुआ था और सोचने लगा था कि पितृ पितामहों द्वारा अत्यन्त समादृत ब्रह्मचर्य मार्ग से विचलित हो रहा हूँ लेकिन मेरे अन्तर्यामी कहते थे कि तेरा व्यक्ति सत्य यही है। मैं समझता हूँ कि हर व्यक्ति का अपना एक सत्य होता है। तुम्हारा भी है। है न?"

'शायद!'

'शायद नहीं, निश्चित रूप से है।'

'फिर?"

"अब यह सत्य अगर विश्वव्यापी सत्य के साथ एकमेव नहीं हो जाता तो तुम्हारा मार्ग रुद्ध करेगा। तुम वहीं आकर खो जाओगे। मैं ठीक कहता हूँ न?'

'पूरी बात कह लो तो बताऊँगा।'

'बात अधूरी कहाँ है? हर व्यक्ति का अपना सत्य जब तक परम वैश्वानर को समर्पित नहीं हो जाता, तब तक अधूरा रहता है, अवरोध उपस्थित करता है, अनन्त सम्भावनाओं के द्वार को बन्द कर देता है।"

"यह बात समझ में आती है।"

'आती है न! अब यह बात भी समझ में आ जायगी कि पुराने ऋषियों ने क्या कहा है कि परम वैश्वानर सब सत्यों का सत्य है, वही ब्रह्म है, वही आत्मा है। तुम्हारा व्यक्तिगत प्रेम परम वैश्वानर के प्रेम की पहली सीढ़ी है। न वह उपेक्षणीय है, न लक्ष्य है। वह भगवान की भेजी हुई एक ज्योति किरण है जिससे अनन्त सम्भावनाओं के द्वार तक मार्ग साफ दिखायी दे जाता है। ऐसा ही समझकर अब मैं निश्चिन्त हो गया हूँ।'

आश्चर्य चकित होकर रैक्व ने अपने मित्र को देखा। क्या अद्भुत बात कही

है। शुभा के प्रति जो आकर्षण है उसे देखने के लिए हृदय में जो भयंकर आंधी वह रही है, वह परम वश्वानर के प्रेम की सीढ़ी है, भगवान् की भेजी हुई ज्योति किरण।

वे चलना भूल गये। रुककर ध्यान से आश्वलायन की ओर अर्थभरी दृष्टि से देखने लगे। बोले, 'अदभुत सुन रहा हूँ बन्धु तुम महाज्ञानी हो। अब तक मैंने तुम्हारा गौरव नहीं समझा था। व्यर्थ ही तुमसे झगड़ता रहा। परम वश्वानर भगवान की ऐसी अदभुत व्याख्या मैंने नहीं सुनी। तुम परीक्षित सत्य कह रहे हो इसीलिए वह इतना मनोज्ञ होकर प्रकट हुआ है। मैं धन्य हुआ बन्धु! धन्य हुआ।'

आश्वलायन हँसने लगे। बोले, 'तुम्हारे इसी भोलेपन पर मैं मुग्ध हूँ। तुम झगड़ते हो तो मुझे सच्चा आनन्द मिलता है। जब देखता हूँ तुम झगड़ना बन्द कर रहे हो। नहीं बन्धु तुम्हारे जैसा मित्र दुर्लभ है। झगड़ा छोड़ दोगे तो मैं तुम्हारा साथ भी छोड़ दूंगा। इतना बड़ा दण्ड सहन नहीं कर सकूंगा।'

'छोड़कर चले जाओगे? तुम्हारे ज्ञान की प्रशंसा कर दी तो इसमें कोई अपराध हो गया? अभी तुम्हारे अज्ञान की प्रशंसा तो शेष ही है। पहले उसे सुन लो फिर यह निश्चित करना कि तुम्हारा मित्र सचमुच ऐसा भोला है कि नहीं कि मुग्ध हुआ जा सके।'

"सुनाओ, मेरे अज्ञान की ही स्तुति करो। दूसरों का अज्ञान देखना सचमुच भोलापन नहीं है। सुनाओ सुनाओ।"

'सच कहता हूँ मित्र, तुम्हारी बात से मुझे बहुत बल मिला है। पर तुम जो बात नहीं जानते, उसे बता देना आवश्यक लग रहा है। कहूं?'

"कहा न कि सुनाओ। कहोगे नहीं तो सुनाओगे कैसे?"

"अच्छा, तुम मेरी कठिनाई नहीं जानते। तुम किस प्रकार अपनी प्रिया को माध्यम बनाकर परम वश्वानर तक पहुँचने का मार्ग देख सके हो? वैसा क्या सभी कर सकते हैं?"

'क्या नहीं कर सकते?'

देखो, तुम तर्क का रास्ता अपनाना चाहते हो, मैं अनुभव की बात कहना चाहता हूँ।"

'कहो भी तो।'

'देखो, मैं शुभा को किसी परम या चरम सत्य का माध्यम नहीं बना सकता। तुमने उस मोहन रूप को देखा ही नहीं। तुम कैसे मेरी बात समझ सकते हो? देखो मेरे नानी मित्र, मेरे ध्यान का एकमात्र लक्ष्य वही हो जाती है। उसके उस मोहन रूप के परे मैं कुछ भी नहीं देख पाता। नहीं देख पाऊँगा यह पक्का है।'

आश्वलायन को हँसी आ गयी— मेरा अज्ञान तो तुमने खूब पकड़ा है मित्र। कैसे कहूँ कि मैंने शुभा का मोहन रूप देखा है, यह भी कैसे कहूँ कि तुम उसके पर कुछ देख पाओगे या नहीं। अज्ञान तो है ही। पर इस अज्ञान को दूर करने का

एक ही रास्ता रह जाता है।"

"क्या ?"

'यही कि एक बार मुझे दिखा दो।"

तुम देखोगे उसे ? मुझसे तो वह मिलेगी ही नहीं, तुम्हें कब मिल जायगी ? तुम उसके समान ज्ञानी हो ? उसके समान पण्डित हो ? उसके समान शीलव्रती हो ? तुम भला उसे कैसे देख सकते हो ? चुप भी रहो !"

चुप तो नहीं रहूँगा। शुभा से कहूँगा कि मेरे मित्र रैक्व ने मुझे 'महाज्ञानी' माना है। फिर कैसे नहीं मिलेगी !"

रैक्व ऐसा हँसा मानो कोई अत्यन्त मूर्खतापूर्ण बात सुन ली हो।

'बताया न कि तुम्हारा अज्ञान प्रशंसनीय है। मुझे तो वह अल्पज्ञ समझती है। मेरा नाम लेकर कहोगे तो वह तुम्हें भी मूर्ख ही समझेगी। अल्पज्ञता का दोष दूर करने के लिए ही तो मैं शास्त्रों का अध्ययन कर रहा हूँ। वह दिव्यलोक की किरण के समान पवित्र है पद्म लक्ष्मी के समान कमनीय है। तुम उससे मिल नहीं सकते। वह तुम्हें मूर्ख समझेगी। उसे साक्षात् वाग्देवता समझना।"

'तो तुम्हारी प्रिया तुम्हें मूर्ख समझती है ? शायद ठीक ही समझती है।"

'तुम भी मुझे मूर्ख समझते हो ? तुम कैसे मुझे मूर्ख समझ सकते हो ? शुभा की बात और है वह जो कुछ कहती है वह प्रत्यक्ष सा दिखायी देता है, वह दिव्य नारी है, ज्योति-रेखा से बनी। तुम कैसे उसका अनुकरण कर सकते हो ?"

"नहीं कर सकता भाई ! अब शान्त हो जाओ। तुम्हारी शुभा से मिलने का दुष्प्रयास नहीं करूँगा। पर वह तुम्हें मूर्ख समझेगी तो प्रेम का यह व्यापार आगे नहीं बढ सकेगा।"

"तुम क्या समझोगे कि उसका ऐसा समझना कितना मनोहारी है !"

"कहा तो कि नहीं समझ सकूँगा। तुम धन्य, तुम्हारी मूर्खता धन्य, तुम्हें मूर्ख समझनेवाली धन्य और इस विचित्र प्रेम को न समझनेवाला मेरा अज्ञान भी धन्य ! लो, अब तो क्रोध नहीं करोगे न !'

"नहीं, नहीं, क्रोध क्या करूँगा ! तुम अपनी गलती समझ गये, बात आयी गयी हो गयी !"

'अच्छा मित्र, तुमने कितनी बार उसे देखा ?"

'केवल एक बार। अब अधिक न पूछो।'

'केवल एक बार ? चलो, यह भी अच्छा है। दो बार देखा होता तो मुझे मार ही डालते।"

'नहीं देख पाया मित्र। एक बडा कष्ट है।"

रैक्व का मुख विवर्ण हो गया। आश्वलायन ने उनकी ओर ध्यान से देखा। उनकी आँखें डबडबा आयी थीं। बोले, 'क्या कष्ट है मित्र, मैं तुम्हारी कुछ सहायता कर सकता हूँ ?"

'शायद नहीं।"

"सहायता न भी कर सकूँ तो भी सुनना चाहूँगा। जानते हो अपने अन्तर की व्यथा बन्धुजन से कहने से वह हल्की हो जाती है। तुम अपना कष्ट बताओ।"

"माताजी की कठोर आज्ञा है कि शुभा के बारे में किसी से कुछ न कहा करो। वे कुछ बताती नहीं, मेरा मन दुःख से टूटता जा रहा है, क्या करूँ?"

"भोलेराम, शुभा से तुम एक ही बार मिले हो। उसके बारे में तुम जानते ही क्या हो जो बताओगे! अपनी व्यथा बताओ।"

"यह भी ठीक ही कह रहे हो। मैं जानता ही क्या हूँ! पर जानना चाहता हूँ यही तो कष्ट है।"

"तो तुम्हारा यह मित्र किसी काम आने योग्य नहीं दिखता?"

"अच्छा, एक बात बता सकते हो?"

"पूछो, जानता हूँगा तो अवश्य बता दूँगा।"

"यह गन्धर्व-पीड़ा क्या है? दीदी कह रही थीं कि कुमारी और सुशीला लड़कियों को ही गन्धर्व सताता है। शुभा का तो वह रक्त ही चूस रहा है।"

"यह बात है? मेरे प्यारे मित्र, निरुक्तशास्त्र पढ़ा है कि नहीं?"

"क्या नहीं पढ़ा! जो चाहो पूछ लो तुमसे कुछ अधिक ही जानता हूँ।"

"अभी पता चल जायगा कि अधिक जानते हो या कम।"

रैक्व वाद के लिए प्रस्तुत हो गये। बोले, "जिस शब्द की निरुक्ति चाहो बता सकता हूँ। पूछो!"

"अच्छी बात है। यह बताओ कि बाचक्नु कपिशा और गान्धारा के उच्चारण के बारे में क्या बताते हैं?"

"पहले यह बताओ कि तुम निरुक्त के बारे में प्रश्न करना चाहते हो या शिक्षा के बारे में? यह प्रश्न शिक्षा का है।"

रैक्व ने पूरे शास्त्रार्थी पण्डित की मुद्रा धारण कर ली। ऐसा लगा कि वे भूल गये कि थोड़ी देर पहले क्या प्रसंग चल रहा था। वे अखाड़े में उतरनेवाले मल्ल की भाँति प्रतिद्वन्द्वी को देखने लगे। आश्वलायन को हँसी आ रही थी, पर उन्होंने अपने मित्र के इस भाव परिवर्तन का पूरा आनन्द लेने के लिए कृत्रिम रोष के साथ उत्तर दिया—"जो पूछ रहा हूँ, वह बताओ। किस शास्त्र से इस प्रश्न का सम्बन्ध है, यह बाद में बताऊँगा।"

"तुमने बात निरुक्त की चलायी थी, प्रश्न शिक्षा के बारे में कर रहे हो। यह उचित नहीं है।"

"तो तुम मानते हो कि शिक्षाशास्त्र के प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सकोगे?"

"क्या नहीं दे सकूँगा! पर तुम्हें विवेक के साथ शास्त्र चर्चा करनी चाहिए।"

"अच्छा, शिक्षा की दृष्टि से ही उत्तर दो।"

"बाचक्नु का मत है कि कपिश गन्धार के लोग कोमल वर्णों के स्थान पर परुष वर्णों का प्रयोग करते हैं। वे 'गगनम्' को 'ककनम्' कहते हैं।"

"साधु मित्र, तुमने ठीक उत्तर दिया। अब बताओ कि वे लोग 'गन्धर्व' शब्द

का कैसा उच्चारण करेंगे ?"

"गन्धर्व' को वे लोग 'कन्दर्प' कहेंगे।"

"साधु बन्धु ! पर वाचक्नु लोग कुछ अपवाद भी बताते हैं !"

'बताते हैं क्वचित्-कदाचित मध्यवर्ती कोमल महाप्राण वर्ग को कोमल अल्पप्राण ही रहने देते हैं। जैसे ग ध को वे लोग 'क द' कहते हैं।"

"अब मित्र, शास्त्रार्थ में तुम जीत गये। यह मुद्रा हटाओ, तुम सचमुच जानते हो—मुझसे थोड़ा कम।"

'कम कैसे ?"

"यही कि तुम यह नहीं सोच सकते कि 'गन्धर्व' और 'कन्दर्प' वस्तुतः एक ही शब्द के दो उच्चारण हैं। अब समझ गये न ? गन्धर्व एक देवजाति है, उसी का प्रधान सेनानायक कन्दर्प है। कन्दर्प समझ रहे हो ?"

"कन्दर्प ? निघण्टु में जिसे कुसुमसायक, कामदेव, पुष्पधन्वा आदि कहा जाता है !"

"बिल्कुल ठीक। प्रेमपरवश युवतियों और युवकों का यही कन्दर्प देवता—चाहो तो गन्धर्व भी कह सकते हो—फूलों के बाण से वेधा करता है। तुम्हें भी वेधा है और तुम्हारी शुभा को भी—यही गन्धर्व-पीड़ा है। चाहो तो कपिश गान्धारों की भांति कन्दर्प पीड़ा भी कह सकते हो।"

"मुझे किसी ने फूलों के बाण से नहीं वेधा।"

'वेधा है। वह बाण तुम्हारी पीठ में लगा है। जितनी बार तुम शुभा का नाम लेते हो, उतनी बार तुम्हारा हाथ पीठ के उस आघात को सहलाता है। बिचारी शुभा को उसने छाती में वेधा होगा। तभी उसका रक्त क्षीण हो रहा है। समझ रहे हो ?"

"नहीं।"

'नहीं। यह चोट दिखायी नहीं देती, इसकी पीड़ा बड़ी मीठी होती है ! तुम्हारी पीड़ा मीठी लगती है न ?"

लगती है।"

"तो फिर निश्चित समझो कि वह फूलों के बाण की चोट है। जान पड़ता है, अहेरी ने भागते समय तुम्हारे ऊपर चोट की थी !"

"बिल्कुल नहीं।"

'बिल्कुल !" आश्वलायन जोर से हँसे— 'तुम हो बौड़म !'

'क्या मतलब ?'

"क्या बताऊँ तुम्हें ! घर लौटो। माताजी से आज्ञा लेकर विवाह करो। गन्धर्व शान्त हो जायगा।'

'विवाह !"

'हाँ देखो विवाह भी साम गान है, ऐसा पुराणऋषियों ने कहा है।'

विवाह साम गान है ? यह कैसे हो सकता है ?'

"तुमने वामदव्य साम कभी गाय जाते सुना है ? '
सुना क्या, गा सकता हूँ। उसके पाचा अग—हिंकार, प्रस्ताव, उदगीथ, प्रतिहार और निधन—भलीभांति गाकर दिखा सकता हूँ। वामदव्य साम तो मेरे पिता रिक्व ऋषि का प्रिय साम था। तब मैं समझता नहीं था।

"यह तो बहुत अच्छी बात है। प्रजापति ने देवताओं के स्वामी इन्द्र को वामदव्य साम का रहस्य समझाया था। उन्होंने कहा था विवाह म जो आपसी बातचीत होती है वही हिंकार है, सबको सूचित करना प्रस्ताव है, पति पत्नी का साथ शयन उदगीथ है, अलग अलग शयन प्रतिहार है प्रेमपूर्वक जीवन बिताना निधन है (निधन अर्थात व्रत समाप्ति)। इस प्रकार स्त्री और पुरुष के प्रेमी युगल के रूप म वामदव्य साम पिरोया हुआ है। यही पचविध वामदव्य साम है। जो व्यक्ति प्रेमी युगल म इस प्रकार वामदेव्य साम को जान लेता है पुन पौन समन्वित हो पूर्णायु प्राप्त करता है उज्ज्वल जीवन व्यतीत करता है प्रजा, पशु और कीर्ति पाकर महान् होता है। कोई स्त्री यदि प्रेमपूर्वक निकट आती है तो उसका परित्याग नहीं करना चाहिए। विवाह सूत्र म आबद्ध होकर पवित्र दाम्पत्य व्रत का निर्वाह करना चाहिए। यह मत भूलना कि यह व्रत है। यह व्रत है।

' रूपक जान पडता है मित्र।
' ता क्या हुआ।"
'तुमने विवाह किया है क्या ?"
' नहीं मित्र, चाहता तो हूँ, पर अभी तो इस साम का हिंकार ही नहीं शुरू हुआ।"
' मरा भी नहीं हुआ।"
"तुम्हारा हो चुका है।'
"हो चुका है ?"
' हा, हो चुका है। जब तुम मेरे साथ माताजी के पास चलो।'
तुम्हारे साथ ?"
हाँ, मेरे साथ।"
' तुम क्या माताजी से कहोगे कि मैंने तुमसे शुभा के बारे म बात की है ?"
' शायद कहना पडे।"
नहा मरे प्यारे मित्र, माताजी बहुत रुष्ट हो जायेंगी।
ता नहीं कहूँगा। पर माताजी यदि स्वय कह ता ?'
' तो तुम बाद म माताजी स मिलना। मेरे साथ नहीं।'
' तुम समझते हो कि तुम्हारे साथ जाऊँगा तो माताजी तुम्हें छोडकर मुझे ही विवाह के लिए तैयार करायेंगी ?"
' नहीं मित्र, मरा विवाह नहीं हो सकता।'
' क्या ?"
मामा ने बताया था।'

'मामा कौन ?"

"मामा बड़ा तपस्वी है। मैं उसी के साथ तो सेवा-कार्य करूँगा।"

"वह कौन सा कार्य है ?"

"तुमने मामा को देखा ही नहीं तो कैसे जानोगे कि सेवा कार्य क्या होता है ? माताजी से पूछ लेना।"

"मामा क्या कहता था ?"

'हाँ याद आया, शुभा के पिता ने कोहलीया का गन्धर्व-पूजन नाटक कराया था। मामा कहता था उससे शुभा की गन्धर्व बाधा दूर हो जायेगी। अब तक तो दूर भी हो गयी होगी। पर कोई बताये भी तो !"

'तुम क्या राजा जानश्रुति की कन्या जाबाला को शुभा कहते हो ?"

रैक्व रहस्य उद्घाटन से चकित हो उठे। जैसे किसी ने चोरी करते पकड़ लिया हो। वे कातर भाव से आश्वलायन की ओर देखने लगे।

'तुम कैसे जान गये ?"

"उसी की गन्धर्व शान्ति के लिए तो बड़े समारोह के साथ कोहलीया का नाटक खेला गया था।"

रैक्व के सिवा कोई भी दूसरा व्यक्ति होता तो आश्वलायन के चेहरे की कालिमा अवश्य देख लेता। पर रैक्व अपने ही पकड़े जाने से म्लान हो गये थे। मित्र के चेहरे का विकार देख ही नहीं सके।

महर्षि औपस्ति के आश्रम में पहुँचने पर रैक्व सीधे माताजी के पास गये। आश्वलायन ने दूसरे दिन उनके दर्शन करने का निश्चय किया।

एक विशाल न्यग्रोध की छाया में वे देर तक चुपचाप बैठे रहे। फिर झोले में से भूर्जपत्र का एक टुकड़ा निकाला। गेरू की स्याही से आचार्य औदुम्बरायण के नाम एक पत्र लिखा। फिर किसी परिचित ब्रह्मचारी के हाथ पत्र यथास्थान पहुँचवा देने की व्यवस्था करने के लिए उठ पड़े। पत्र में लिखा था

परम श्रद्धास्पदेषु आचार्यतातपादेषु,

साष्टांग प्रणतिपूर्वक विनीत शिष्य आश्वलायन निवेदन करता है कि राजकुमारी जाबाला के शुभ विवाह के सम्बन्ध में आप अपनी दुविधा का परित्याग कर दें। आपका आदेश मानकर मैंने जाबाला के पाणिग्रहण की स्वीकृति दे दी थी। आपने मुझे संकोच के साथ सूचना दी थी कि जाबाला अभी विवाह के लिए तैयार नहीं हो रही है। आपने अधिक कुछ नहीं बताया। आज मुझे जाबाला के योग्य, उसका मनोऽनुकूल वर मिल गया है। सब प्रकार से जाबाला के [illegible] है। वह भगवती ऋतम्भरा का अंगीकृत [illegible] मैं अपनी स्वीकृति से [illegible] मानसिक द्वन्द्व का कारण बना था। [illegible] वर मैं स्वयं बहुत [illegible] हूँगा, क्योंकि मेरा विश्वास है कि उसे [illegible] गी। जो कुछ भी [illegible] हुआ हो उसके लिए क्षमाप्रार्थी हूँ।

इस भग अंतिम निराय मानें। अनुगत आश्वलायन का विनीत प्रणाम स्वीकार हो।

पन्द्रह

रैक्व का चेहरा मुरझाया हुआ था। उन्होंने माताजी को साष्टांग प्रणाम किया। माताजी ने बड़े प्यार से उन्हें उठाया और मस्तक सूंघ लिया। उल्लसित स्वर में बोलीं, 'बेटा, मैं आज बहुत प्रसन्न हूँ। मैंने तेरी विद्वत्ता की प्रशंसा कई लोगों से सुनी है। तूने अनेक शास्त्रों का अध्ययन कर लिया है। आज मैं बहुत प्रसन्न हूँ। अब चल, तुझे तेरे पिताजी के पास ले चलूँ। तुझे देखकर वे बहुत प्रसन्न होंगे। चल, मुँह हाथ धो ले। उनके पास जाने का यही उपयुक्त अवसर है।'

लेकिन रैक्व जड़वत खड़े रहे। उनका सुंदर मुख राहु ग्रस्त चन्द्रमा की भांति विवर्ण हो गया था। माताजी ने प्रसन्नता के आवेश में उधर ध्यान ही नहीं दिया था। जब उनका ध्यान उधर गया— क्या बेटा इतना मुरझा क्या गया है? कोई कष्ट है क्या?"

रैक्व के मुँह से आवाज ही नहीं निकली। माताजी ने व्याकुल होकर उनके सिर पर हाथ फेरा— 'क्या बेटा, क्या बात है, बता भी तो!"

रैक्व ने उदास-भाव से कहा, 'माँ, बड़ा अपराध हो गया।"

'क्या, क्या हुआ?"

"मैंने कुछ बताया नहीं माँ, आश्वलायन शुभा के बारे में स्वयं ही जान गया।"

'तूने कुछ बताया नहीं तो कैसे जान गया?"

फिर रैक्व ने निश्छल भाव से आश्वलायन से हुई अपनी पूरी बात माताजी को ज्यों की त्यों सुना दी। पुत्र के इस सहज व्यवहार से माताजी प्रसन्न हुई। उनके मुख पर हल्की सी हँसी की किरण भी खेल गयी। पुत्र के भोलेपन का आनन्द लेते हुए उन्होंने कहा, 'तूने तो सब कह ही दिया! लेकिन चल, इसमें अपराध की कोई बात नहीं है। आश्वलायन तेरा सच्चा मित्र जान पड़ता है।"

"हाँ माँ, बहुत अच्छा मित्र है। कभी कभी थोड़ा झगड़ा भी करता है!"

'वह तुझे प्यार करता है। मित्रों में कभी कभी झगड़ा तो होता ही रहता है। उसकी चिंता न कर। सच्चे मित्र से अपने मन की बात कहना कोई अपराध थोड़े ही है!"

'मामा कौन ?"

मामा बड़ा तपस्वी है। मैं उसी के साथ तो सेवा-कार्य करूँगा।"

'वह कौन सा कार्य है ?"

'तुमने मामा को देखा ही नहीं तो कैसे जानोगे कि सेवा-कार्य क्या होता है ? माताजी से पूछ लेना।

'मामा क्या कहता था ?"

'हाँ याद आया शुभा के पिता ने कोहलीयों का गन्धर्व-पूजन नाटक कराया था। मामा कहता था, उससे शुभा की गन्धर्व बाधा दूर हो जायगी। अब तक तो दूर भी हो गयी होगी। पर कोई बताये भी तो।"

तुम क्या राजा जानश्रुति की कन्या जाबाला को शुभा कहते हो ?"

रैक्व रहस्य-उद्घाटन से चकित हो उठे। जैसे किसी ने चोरी करते पकड़ लिया हो। वे कातर भाव से आश्वलायन की ओर देखने लगे।

तुम कैसे जान गये ?'

"उसी की गन्धर्व शान्ति के लिए तो बड़े समारोह के साथ कोहलीयों का नाटक खेला गया था।"

रैक्व के सिवा कोई भी दूसरा व्यक्ति होता तो आश्वलायन के चेहरे की कालिमा अवश्य देख लेता। पर रैक्व अपने ही पकड़े जाने से म्लान हो गये थे। मित्र के चेहरे का विकार देख ही नहीं सके।

महर्षि औपस्ति के आश्रम में पहुँचने पर रैक्व सीधे माताजी के पास गये। आश्वलायन ने दूसरे दिन उनके दर्शन करने का निश्चय किया।

एक विशाल न्यग्रोध की छाया में वे देर तक चुपचाप बैठे रहे। फिर झोले में से भूजपत्र का एक टुकड़ा निकाला। गेरू की स्याही से आचार्य औदुम्बरायण के नाम एक पत्र लिखा। फिर किसी परिचित ब्रह्मचारी के हाथ पत्र यथास्थान पहुँचवा देने की व्यवस्था करने के लिए उठ पड़े। पत्र में लिखा था

परम श्रद्धास्पदेषु आचार्यतातपादेषु

साष्टांग प्रणतिपूर्वक विनीत शिष्य आश्वलायन निवेदन करता है कि राजकुमारी जाबाला के शुभ विवाह के सम्बन्ध में आप अपनी दुविधा का परित्याग कर दें। आपका आदेश मानकर मैंने जाबाला के पाणिग्रहण की स्वीकृति दे दी थी। आपने मुझे संकोच के साथ सूचना दी थी कि जाबाला अभी विवाह के लिए तैयार नहीं हो रही है। आपने अधिक कुछ नहीं बताया। आज मुझे जाबाला के योग्य उसका मनोऽनुकूल वर मिल गया है। वह सब प्रकार से जाबाला के योग्य है। वह भगवती ऋतम्भरा का अजीवृत्त पुत्र रैक्व है। मैं अपनी स्वीकृति से आपके मानसिक द्वन्द्व का कारण बना था। उस स्वीकृति को लौटाकर मैं स्वयं बहुत सुखी हूँगा, क्योंकि मेरा विश्वास है कि उससे जाबाला सुखी होगी। जो कुछ अविनय हुआ हो, उसके लिए क्षमाप्रार्थी हूँ।

इसे मेरा अन्तिम निवेदन मानें। अनुगत आश्वलायन का विनीत प्रणाम स्वीकार हो।

पन्द्रह

रैक्व का चेहरा मुरझाया हुआ था। उन्होंने माताजी को साष्टांग प्रणाम किया। माताजी ने बड़े प्यार से उन्हें उठाया और मस्तक सूंघ लिया। उल्लसित स्वर में बोलीं, 'बेटा, मैं आज बहुत प्रसन्न हूँ। मैंने तेरी विद्वत्ता की प्रशंसा कई लोगों से सुनी है। तूने अनेक शास्त्रों का अध्ययन कर लिया है। आज मैं बहुत प्रसन्न हूँ। अब चल, तुझे तेरे पिताजी के पास ले चलूं। तुझे देखकर वे बहुत प्रसन्न होंगे। चल, मुँह हाथ धो ले। उनके पास जाने का यही उपयुक्त अवसर है।'

लेकिन रैक्व जड़वत खड़े रहे। उनका सुन्दर मुख राहु ग्रस्त चन्द्रमा की भांति विवर्ण हो गया था। माताजी ने प्रसन्नता के आवेश में उधर ध्यान ही नहीं दिया था। अब उनका ध्यान उधर गया—'क्या बेटा, इतना मुरझा क्यों गया है? कोई कष्ट है क्या?"

रैक्व के मुँह से आवाज ही नहीं निकली। माताजी ने व्याकुल होकर उनके सिर पर हाथ फेरा—'क्या बेटा, क्या बात है, बता भी तो!"

रैक्व ने उदास भाव से कहा 'माँ बड़ा अपराध हो गया!"

'क्या, क्या हुआ?"

"मैंने कुछ बताया नहीं माँ, आश्वलायन शुभा के बारे में स्वयं ही जान गया!"

"तूने कुछ बताया नहीं तो कैसे जान गया?"

फिर रैक्व ने निश्छल भाव से आश्वलायन से हुई अपनी पूरी बात माताजी को ज्यों की त्यों सुना दी। पुत्र के इस सहज व्यवहार से माताजी प्रसन्न हुई। उनके मुख पर हल्की सी हँसी की किरण भी खेल गयी। पुत्र के भोलेपन का आनन्द लेते हुए उन्होंने कहा, 'तूने तो सब कह ही दिया! लेकिन चल इसमें अपराध की कोई बात नहीं है। आश्वलायन तेरा सच्चा मित्र जान पड़ता है।"

'हाँ माँ, बहुत अच्छा मित्र है। कभी कभी थोड़ा झगड़ा भी करता है!"

"वह तुझे प्यार करता है। मित्रों में कभी-कभी झगड़ा तो होता ही रहता है। उसकी चिन्ता न कर। सच्चे मित्र से अपने मन की बात कहना कोई अपराध थोड़े हो है!"

"नही है मा ? वह भी कहता था कि माताजी इस बात का बुरा नही मानेंगी।"

"नही मानूगी। पर और किसी से भी ऐसी बाते नही करना ! समझ गया ?"

"समझ गया, मा !"

"अब थोड़ा हाथ-मुह धो ले। फिर पिताजी के पास तुझे ले चलूगी। तुझे भूख तो लगी होगी। पिताजी को प्रणाम किय बिना कुछ खा भी तो नही सकता। चल बेटा, विलम्ब मत कर।"

रैक्व स्नान करके तैयार हो गये। माताजी महर्षि औपस्ति के पास उन्हे पहुँचाकर लौट आयी। रैक्व ने उ हे साष्टाग प्रणाम किया। महर्षि औपस्ति ने बडे प्यार से उनका मस्तक स्पश किया और परम वश्वानर भगवान की कृपा प्राप्त करने का आशीर्वाद दिया। रैक्व ने आज पहली बार महर्षि के आशीर्वाद प्राप्त होने से कृतार्थता का अनुभव किया। इसके पूव अभिभूत हो जाते थे, पर यह अनुभव नही करते थे कि कृताथ हुए। महर्षि औपस्ति ने बडे स्नेह से पूछा, 'वत्स, मैंने तुम्हारी कुशाग्र बुद्धि और शास्त्रीय मीमासा की ग्राहिका शक्ति के बारे म बहुत सुना है। तुमने जिन शास्त्रो का अध्ययन किया है, उनके उद्देश्य को ठीक स समझा है न, वत्स ?"

रैक्व क्या उत्तर दें, यह निश्चित न कर सके। बोले, "तातपाद के प्रश्न का क्या उत्तर दू, यह सोच नही पा रहा हूँ। जो कुछ पढा है उसका अथ समझने का प्रयत्न किया है, पर उद्देश्य क्या है यह ठीक ठीक नही बता सकता। मैं सब कुछ पढने के बाद भी यह नही समझ पाया कि जो सबमे बडा तत्त्व प्राण है, उसकी उपेक्षा क्या की जाती है ? तातपाद मेरा अविनय क्षमा करें ! मैं शायद पूवग्रह से ग्रसित हूँ। मैंने लोगो को भूखा मरते देखा है, बच्चो को दाने दाने क लिए तरसते देखा है। प्राण की रक्षा को मैं सबसे बडा कत्तव्य समझता हूँ। जो प्राण की उपेक्षा करता है, वह परम वश्वानर की उपासना का अधिकारी नही हो सकता। भगवन्, शास्त्रो का अध्ययन मनन करने के बाद भी मैं प्राणतत्त्व की महिमा नही भूल पाता हूँ।"

महर्षि औपस्ति के मुख मण्डल पर आनन्द की लहर दौड गयी। बोले, "यह तो कोई नयी बात नही कर रहा है, बेटा ! सचराचर विश्व रूप भगवान क उपासक महर्षि सनत्कुमार के पास समस्त शास्त्रो का अध्ययन करके जब देवर्षि नारद ने जाकर कहा कि भगवन् मैं मन्त्रविद हो गया हूँ पर आत्मविद नही हुआ,' तो जानते हो, उन्हे क्या उत्तर मिला था ?"

'क्या उत्तर मिला था, भगवन ?"

"कहा था, य ऋग्वेद, सामवद, अथववद आदि जो कुछ तुमने पढ़ा है वह 'नाम' मात्र है। आत्मविद बनने क लिए नाम मात्र तो सीढ़ी का पहला पाया है। तू नाम की उपासना कर—नाम स, अर्थात् शब्द मात्र से शुरू कर, परन्तु यही तक रुक मत जा।'"

'नाम म आग क्या बताया था, महर्षि न ?'

'ऋषि ने कहा था, ''वाणी' नाम से बडी है। ऋग्वेद, यजुर्वेद सामवेद अथववेद आदि सभी विद्याओ का वाणी ही जतलाती है, परन्तु इनसे अधिक बातो को भी वह बताती है। द्यु पथ्वी, वायु, आकाश, जल तेज, मनुष्य पशु पक्षी, तृण, वनस्पति, हिस्र जन्तु कीट, पतग, चीटी—इन सबका ज्ञान भी वाणी द्वारा ही होता है। इसके अतिरिक्त धम अधम, सत्य-अनत, साधु असाधु सहृदय-असहृदय—इन सबका ज्ञान भी वाणी ही देती है। 'नाम' से बढकर वाणी' है, 'नाम' का ज्ञान अपने तक रहता है, वाणी द्वारा ज्ञान दूसर तक पहुँचता है। इस लिए हे नारद! वाणी की उपासना कर। पर यही तक जाकर रुक न जा।' "

"क्या इससे आगे भी कुछ बताया था?'

"हा। ऋषि ने कहा, ' मन' वाणी से बडा है। दो आवले, दो वेर या दो वहेडे बन्द मुट्ठी मे अनुभव किय जाते है। यह मन की ही तो करामात है, और फिर मनुष्य पहले मन मे ही तो सोचता है कि मन्त्र पढू या कम करूँ—जब मन मे सोचता है तब मन्त्र पढने लगता है कम करने लगता है। पुत्र, पशु आदि की मन मे इच्छा करता है तो इन्हे पा लेता है, इस लोक तथा परलोक की इच्छा करता है, तो इन्हे पा लेता है। मन, वाणी तथा नाम इन दोनो स बडा है। तू मन की उपासना कर। पर यही तक रुक न जा।' '

'यह तो मेरी समझ म आ रहा है। पर आगे क्या बताया था?"

'उन्होने धीर-धीर बताया कि 'मन स भी प्रबल सकल्प है।' फिर चित्त, ध्यान, विज्ञान बल, अन्न तेज, आकाश, स्मति और आशा का उत्तरोत्तर प्रबल बताते हुए अन्त मे कहा था—''प्राण' इन सबसे से बडा है। "

'प्राण को सबसे बडा कहा था भगवन?"

"हा बटा, ऋषि न कहा था 'पाण' आशा से बडा है। आशा भी तो प्राण के लिए ही होती है। जिस प्रकार अरे चक्र की नाभि म अर्पित होत है, इसी प्रकार 'नाम से लेकर 'आशा' तक सब अरे प्राण रूपी चक्र म समर्पित ह। सब कुछ प्राण के सहारे चल रहा है, प्राण को लक्ष्य मे रखकर चल रहा है, प्राण ही पिता है, प्राण माता ह प्राण भ्राता है, प्राण भगिनी ह, प्राण आचाय है प्राण ब्राह्मण है।

'अगर कोई जीवित पिता को, भाई को बहिन को, आचाय को, ब्राह्मण को कुछ अनुचित सा कह भी दे तो लोग कहत है धिक्कार है तुझे! तू पितृहा है मातृहा भ्रातृहा स्वसहा आचायहा ब्राह्मणहा है। परन्तु अगर प्राण निकलन के वाद इन्हे शरीर सहित कोई अग्नि म भस्म कर दे और शूल स उलट पुलट करे, तो कोई नही कहता कि तू पितहा मातहा भ्रातहा, आचायहा ब्राह्मणहा है।

प्राण ही तो यह सब कुछ है। जो इस प्रकार देखता है इस प्रकार मानता है इस प्रकार जानता है 'नाम' से प्रारम्भ कर जो प्राण' तक पहुँच जाता है, उस अतिवादी कहते है। वह आगे ही आगे बढ रहा है, कही अटकता नही। जहाँ पहुँचता है उसस आगे की बात करने लगता है। अगर एसे व्यक्ति को कोई वह कि त तो 'अतिवादी' है बहुत बाते करता है, बकवादी है, तो उस यही उत्तर दना

चाहिए कि मैं आगे ही-आगे वढना चाहता हूँ---इस दष्टि से 'अतिवादी' हूँ, इस बात को छिपाता नही हूँ, हाँ, वक्वादी होने के कारण अतिवादी' नही हूँ।"

"अदभुत है भगवन !"

"हाँ, प्राण ब्रह्म की उपासना का अथ है, निरतर आगे बढते रहना ! किसी भी बात को अन्तिम सत्य न समझकर और भी, और भी आग बढने की ओर धावमान गति !"

रैक्व चक्ति दृष्टि से महर्षि को देखने लगे---क्या निरतर आगे बढने की प्रक्रिया ही प्राणोपासना है !

"भगवन, मैंने पिण्ड म प्राण और ब्रह्माण्ड म वायु को चरम सत्य मानकर क्या कोई भूल की है ?"

"थोडी सी।"

"जरा समझाकर कह, तात !"

महर्षि औपस्ति थोडा रुके। फिर धीरे से बोले, तुझे स्मरण है वत्स, कि नारद ने क्या पूछा था ? नारद ने कहा था कि 'भगवन मैं मन्त्रविद हो गया हूँ, आत्मविद नही हो पाया हूँ।' महर्षि सनत्कुमार उन्ह आत्मविद बनाने की दिशा म ले जा रहे है। आत्मविद् वह है जो क्ही किसी बात पर अटकता नही, निरन्तर आग की ओर बढता जाता है--और भी आग। तू अपनी मान्यता को वसा ही मानता है पुन ? तू प्राण-तत्त्व को कोई स्थिर और अतिम लक्ष्य मानकर रुक तो नही जाता ?"

"रुक जाता हूँ तात।"

"देख वेटा, जिसे तू ब्रह्माण्ड म वायु और पिण्ड म प्राण कहता है, वह गति मात्र है, वह रुकना नही चाहता। तू क्या रुक जाता है ?"

'रुक जाता हूँ, भगवन ! क्या रुक जाता हूँ, यह नही जानता।"

"साधु वत्स, तू सत्य कह रहा है। सत्य की अपेक्षा म ही सव कुछ बना हुआ है। सत्य न हो तो सव वेकार है।"

'तो भगवन्, सत्य प्राण स भी वडा हुआ ?"

"नही समझा, वटा ? प्राण इसलिए वडा है कि वह सत्य है। पर तुझे नारद और सनत्कुमार की पूरी बात सुननी चाहिए।"

"सुन रहा हूँ, तात !"

'भीतर की ओर देख। सनत्कुमार न कहा था कि सत्य तक पहुँचन के लिए ज्ञान की आवश्यक्ता है। जिस ज्ञान नही होगा वह सत्य को कस पा सकता है ! उन्होन ठीक कहा न ?"

"हाँ, भगवन् !"

और वटा, ज्ञानमनन के विना नही हो सकता, मनन श्रद्धा क विना असम्भव है श्रद्धा निष्ठा क विना वनी नहा रह सकती और निष्ठा स्वय सा त रहनवाले क वश की नही। जो समथ नहा वह निष्ठावान् भी नहा। सम विना

सुख की आशा के बिना नहीं किया जाता, ऐसा सनत्कुमार का मत था। ठीक समझ रहे हो, बेटा ?"

'ऐसा लगता है भगवन्, कि सत्य के लिए ज्ञान की और ज्ञान के लिए कर्म की आवश्यकता है। यह तो समझ मे आता है, पर सुख की बात नहीं समझ म आयी।"

'नहीं समझ म आयी, बेटा ? ऋषि सनत्कुमार ने कहा था 'यो वै भूमा तत्सुखम —जो 'भूमा' है, असीम है, निरतिशय है महान् है, वही सुख है। 'नाल्पे सुखमस्ति'—जो अल्प' है, ससीम है, परिमित है, क्षुद्र है उसमे सुख नहीं है।'

रैक्व देर तक मौन बैठे रहे।

महर्षि औपस्तिपाद ने पूछा कि सारी बातें उनकी समझ म आयी या नही। रैक्व खोये से उनकी ओर ताकते रहे। ऋषि ने समझ लिया कि वे ठीक से समझ नही पा रहे है। बोले, "दूसरो की बात समझा रहा था। हो सकता है कि मैंने ही ठीक से समझा न हो। यह भी हो सकता है कि तुम्हारा मन ठीक उसी स्थिति मे न आया हो जिस स्थिति मे नारद का था। इसलिए मै आग्रह नही करूँगा। मैं तुम्हे अपने अनुभव की बात बताता हूँ।"

रैक्व ने उत्फुल्ल होकर कहा "वही बतायें, तात!"

'बात यह है वत्स, कि जिसे तुम ब्रह्माण्ड मे वायु कहते हो और जो पिण्ड म प्राण रूप म विद्यमान है वह वस्तुत गति मात्र है। वह चेतन का आधार है या चेतन का एक विशिष्ट गुण है लेकिन वह स्वय चैतन्य नही है। इतिहास विधाता ने इस जड तत्त्व स और भी सूक्ष्मतर तत्त्व प्राण-तत्त्व को प्रकट किया है, परन्तु वही अन्त नहीं है। उसके भीतर इससे अधिक सूक्ष्मतर तत्त्व मन को विकसित किया है। मन मननशील है, इस अर्थ मे वह प्राण स भिन्न है—और इसलिए उसे मन की सन्तान कहा जाता है किन्तु मन भी सूक्ष्म तत्त्व है। उसके भीतर सूक्ष्मतर तत्त्व बुद्धि का विकास हुआ है, इसको पुराण ऋषियो ने विज्ञान कहा है। यह सत्य से असत्य वस्तु को अलग कर सकती है गलत और सही मे अन्तर कर सकती है। बुद्धि के इसी धर्म का नाम विवेक है। सत्य स असत्य को पृथक करके जानना विवेक का काम है।

"परन्तु जानना ही काफी नहीं है। आदमी बहुत सी बातें जान जाता है। जानी हुई बात को ठीक ठीक आचरणो मे ले आना वास्तविक धर्म है, इसलिए बुद्धि का एक दूसरा और विकसित कार्य है वैराग्य। जो चीज़ गलत है उसका त्याग वैराग्य का लक्षण है। कई बार आदमी जानता है कि अमुक बात झूठ है और अमुक बात सच है, फिर भी वह झूठ को छोड नही पाता। विवेक उसे हो जाता है, लेकिन वैराग्य नहीं होता। विवेक स सत्य और असत्य का भेद खुल जाता है, वैराग्य से असत्य को परित्याग करने की शक्ति मिलती है। असत्य को छोड देने पर केवल सत्य ही बचता है, इसीलिए कभी कभी पुराण ऋषियो ने असत्य का त्याग करने का ही उपदेश दिया है। उनके मत स सत्य स्वयसिद्ध है।"

"मुझे भी यही ठीक लगता है, तात ! असत्य का त्याग होना चाहिए। सत्य तो स्वय उजागर है।"

'लेकिन मुझे लगता है कि सत्य को पाने के लिए भी किसी निश्चित दढ अवलम्ब की जरूरत होती है। उस दढ अवलम्ब को खोजना आवश्यक हो जाता है। वही दृढ अवलम्ब सच्चिदानन्द स्वरूप परम ब्रह्म है जो मनुष्य के भीतर भी है और बाहर भी। मुझे ऐसा लगा है कि अगर हम उसे ठीक ठीक पा लने की अभिलाषा रखे तो वैराग्य स्वत सिद्ध हो जाता है। प्रयत्न वरा य की सिद्धि का नही, बल्कि सच्चिदानन्द-स्वरूप परम ब्रह्म की पकड के लिए होना चाहिए। तुमने जो प्र ण को सबसे बडा विश्वजनीन सत्य स्वीकार किया है वह गलत तो नही है, परन्तु ठीक ठीक सही भी नही है। तुम्हारी दृष्टि परम सत्य स्वरूप सच्चिदानन्द पर स्थिर होनी चाहिए। बाकी सब स्वयसिद्ध हो जायेगा।"

"तो भगवन, क्या अज्ञानी जना के प्राणा की रक्षा के लिए प्रयत्न करना निरथक प्रयास है ?

"नही बेटा, यह बहुत उत्तम प्रयास है। क्याकि प्राण की रक्षा करने स ही उससे सूक्ष्मतर तत्त्व मन की रक्षा सम्भव है और उससे भी सूक्ष्मतर तत्त्व विज्ञान की रक्षा सम्भव है। लेकिन न प्राण और न मन और न विज्ञान ही अपने आप म सत्य है। सब सच्चिदानन्द स्वरूप परम ब्रह्म की अपेक्षा ही म सत्य है। वे ही अपने को सूक्ष्म से सूक्ष्मतर रूपा म अभिव्यक्त कर रहे हैं। उन्ही की अभिव्यक्ति के वाहन होने के कारण प्राण मन और विज्ञान मूल्यवान वस्तुएँ है। उनको छोड कर सोचो तो यह सारी सष्टि प्रपच-मात्र और निरथक जान पडेगी। इसका कोई उद्देश्य ही नही जान पडेगा। एसा लगगा कि निखिल विश्व म व्याप्त क्षुद्र पिण्ड स लेकर मनुष्य पयन्त की सारी सष्टि व्यथ का भटकाव मात्र है। उसका कोई उद्देश्य नही है। मेरा मन कहता है कि उद्देश्य है। यह सब कुछ साथक और सोद्देश्य है। बुभुक्षित लोगा को अन्न, पिपासित लोगा को जल, निराश लोगा को आशा, और मरणोन्मुख लोगा को अमत का प्रयोजन है। परन्तु वह इसलिए है कि य सारे काय निखिलात्मा परम वैश्व नर की तृप्ति के लिए हैं। एस कत्तव्या का पालन न करना निखिलात्मा को ही धोखा दना है। मेरी बात समय रहे हो, वत्स !"

"समझ रहा हूँ, भगवन ! परन्तु मुझे ऐसा लगता है कि देर तक यह बुद्धि मेरे मन म बनी नही रहेगी। जब तक आपके निकट हूँ तब तक तो लगता है कि मैंने ठीक ही समझा है, पर ज्व दूर हट जाता हूँ तो एसा जान पडता है कि य सारी बातें भूलने लगेंगी। इसका क्या कारण है, भगवन ?"

साधु वत्स ! तुमने ठीक ही प्रश्न किया है। इसका एक कारण है। दो बातें होती हैं एक तो बाहरी दुनिया की बाता की उनके परस्पर सम्बन्धा की जानकारी। मन और बुद्धि के द्वारा यह जानकारी प्राप्त हो जाती है। यह जीवन का अग नही बन पाती। मनुष्य एसा समझता है कि मैंने बाहरी दुनिया की बहुत-सी

बातें जान ली और अपनी जानकारियों पर उसे गर्व भी होता है। लेकिन मैं जिस तत्त्व की ओर इशारा कर रहा हूँ वह जानकारी का विषय नहीं है। तुम जब मेरे पास आते हो तो थोड़ी देर के लिए तुम जानकारी संग्रह करने का काम करते हो और सच्चिदानन्द परब्रह्म के विषय में थोड़ी जानकारी प्राप्त कर सकते हो। पर ठीक ठीक कोई जानकारी कैसे प्राप्त करोगे वत्स ? जिसको तुम नहीं देख सकते अनुमान नहीं कर सकते, कल्पना नहीं कर सकते उनके विषय में जो जानकारी संग्रह करोगे वह गलत जानकारी सिद्ध होगी।

मनुष्य की अन्तरात्मा में विधाता ने प्रज्ञा नामक जो शक्ति दी है, वह अनुभव कराती है। मैं जिस तत्त्व की ओर इशारा कर रहा हूँ वह बुद्धि का विषय नहीं है, वह बोध का विषय है। स्वयं अनुभव करने का विषय है। शान्त और स्थिर चित्त में बैठोगे तो तुम्हें उसकी झलक मिलेगी। वह तेज तुम्हारे दरवाजे पर आकर दस्तक दे रहा है परन्तु तुमने कभी उसके स्वागत के लिए द्वार खोला नहीं। हाँ वत्स, मनुष्य उस परम प्रेमी की दस्तकों की निरन्तर उपेक्षा किये जा रहा है। वह परम प्रेमिक तुम्हारे द्वार पर आकर खटखटा जाता है। एक बार प्रयत्न करो कि तुम उसे अपने हृदय-देश में पकड़कर बैठा सको, उसका स्वागत कर सको, उसके चरणों में अपने-आपको निछावर कर सको।"

अन्तिम वाक्यों ने रैक्व को भीतर से झकझोर दिया। वे थोड़ी देर तक गद्गद भाव से वृद्ध ऋषि की ओर ताकते रहे फिर उल्लास मुखर होकर बोले, "सुन रहा हूँ भगवन्! उसके पगों की आहट सुन रहा हूँ। परन्तु मन में अनेक कुण्ठाएँ हैं, द्वार खोलना सम्भव नहीं जान पड़ता। आशीर्वाद दीजिए—मैं द्वार खोलने में समर्थ हो सकूँ।"

महर्षि औषस्ति ने प्रेमपूर्वक उनके सिर पर हाथ फेरा। रैक्व को जान पड़ा कि उस स्नेह स्पर्श से वे एकदम नये प्रकाश लोक में पहुँच गये हैं। उन्हें ऐसा जान पड़ा कि विराट् जड़ पिण्ड के अन्धकार में रुद्ध चैतन्य धीरे धीरे अन्धकार से प्रकाश की ओर बढ़ रहा है। वह पहले प्राण रूप में, फिर मन रूप में फिर सूक्ष्म-से-सूक्ष्म रूपों की ओर विकसित होता चला जा रहा है। अन्धकार उसका मार्ग नहीं रोक पा रहा है। जड़ता उसे नीचे की ओर नहीं खींच सकी है अवरुद्ध चेतना उसे पीछे की ओर नहीं धकेल पा रही है। अद्भुत प्रकाश की ओर वह निरन्तर बढ़ता चला जा रहा है। जिस प्रकार पौधा पहले अंकुर के रूप में, फिर शाखा व पत्र के रूप में निकलता है और अन्त में उसके मनोहर फूल निकल आते हैं। कली की एक एक पंखड़ी फूट रही है—रूप, रस, गन्ध के रूप में, नाना वर्णों की छटा के रूप में। अपने विकास का कार्य साफ दिखायी दे रहा है। दूर तक उज्ज्वल प्रकाश ऊपर से नीचे की ओर और नीचे से ऊपर की ओर जा रहा है। फूल खिल रहा है, विकसित भी हो रहा है, पर मार्ग अवरुद्ध नहीं हुआ है। लेकिन और भी आगे कुछ है, और भी आगे और भी आगे! फिर धीरे धीरे वे स्वाभाविक अवस्था में आये। उन्होंने चकित मृगशावक की भाँति अपने चारों ओर देखा। वे तो महर्षि

औपस्ति के सामने उसी प्रकार हाथ जोड़कर बैठे हुए थे।

भगवन, मैंने क्या देखा ?"

'बेटा तुमने वही देखा, जो है। यह सत है अर्थात जैसा है वैसा है। कोई नहीं जानता कि 'महा अज्ञात परम सत' क्या अपने आपको विकसित करता जा रहा है परन्तु इतना निश्चित है कि उसका अपना कोई उद्देश्य है। उसी के लिए यह सारी लीला चल रही है। वह सभी जगह नीचे से ऊपर की ओर तक व्याप्त है और अपने को रूप में, रंग में, शब्द में निरन्तर बिखेरता चला आ रहा है। इस दान की कोई सीमा नहीं है। ऐसा अवढरदानी भी तो कहीं दिखता नहीं। बेटा, जो कुछ अनुभव कर रहे हो, वह उसी का रूप है। केवल इतना ध्यान में रखो कि ये बातें चरम और परम नहीं हैं। सब मिलाकर किसी महासत्य की अभिव्यक्ति के माध्यम मात्र हैं।"

रैक्व की आंखों में व्याकुलता के भाव दिखायी पड़े। उन्होंने आचार्य के चरणों के पास अपना सिर रख दिया — 'भगवन मैं भ्रान्त हूँ। समझ नहीं पा रहा हूँ। माताजी की आज्ञा है कि मैं अपने मन की उथल-पुथल किसी से न कहूँ। आज्ञा हो तो माताजी की अनुमति ले आऊँ और अपनी जिज्ञासा इन चरणों में निवेदित करूँ।" आचार्य प्रसन्न भाव से मुस्कराये—'बेटा, मुझे पता है कि तुम्हारे मन में कौन सी उथल पुथल है। तुम्हारी माताजी की जो आज्ञा है उसका पालन करना धर्म है। मैं केवल एक बात तुमसे कह देना चाहता हूँ कि संसार में जहाँ कहीं प्रेम या लगाव का भाव दिखायी देता है वह उपेक्षणीय नहीं है। यदि उसी को अन्त समझ लो तो यह बात रास्ते में बैठ जाने के समान होगी। वह परम प्रयाण के प्रेम का अंगुलि निर्देश मात्र है। सारे सौन्दर्य और सारे लगाव उस परम प्रेमिक के प्रेम की ओर अंगुलि निर्देश बनकर सार्थक होते हैं। अंगुलि निर्देश, समझ रहे हो न, बेटा!

"समझ रहा हूँ, भगवन्! कह नहीं सकता कि ठीक ही समझ रहा हूँ या नहीं।'

"मान लो बेटा, तुमने किसी से पूछा कि अमुक आदमी का घर कहाँ है। वह आदमी अगर जानता होगा तो अंगुलि निर्देश करेगा। अर्थात अपनी अंगुलि उठा कर तुम्हें बतायेगा कि घर किस ओर है। है न यही बात ?"

'हाँ भगवन्! यही अंगुलि निर्देश कहा जाता है।"

'अच्छा बेटा, बुद्धिमान आदमी क्या करेगा ? क्या उसकी अंगुलि का अगला हिस्सा पकड़कर लटक जायगा ?'

'नहीं भगवन, वह उस दिशा की ओर देखेगा जिधर इशारा किया गया है और धीरे धीरे उस मकान को खोज लेगा।"

"साधु वत्स, तुमने अंगुलि निर्देश का सही अर्थ समझा। परन्तु तुम क्या यह सकते हो कि उस मनुष्य ने जो अंगुलि उठाकर दिखाया, वह निरर्थक था ?"

निरर्थक तो नहीं था, भगवन्! वह अंगुलि नहीं दिखाता तो हम गन्तव्य

तक पहुँच न सकते।"

"साधु वत्स, तुम ठीक ही समझ रहे हो। ससार म जहा कही सुदरता दिखती है, प्रेम दिखता है, वात्सल्य दिखता है, अनुराग दिखता है, वही यह अगुलि निर्देश भी प्रत्यक्ष हो जाता ह। वह उपेक्षणीय नही है। निरथक भी नही है, लेकिन वही अन्त भी नही है। उसी के सहारे गन्तव्य तक पहुँचा जा सकता है।"

रैक्व देर तक मौन बैठे रह। उनके हृदय म एक दूसरी प्रकार की उथल पुथल दिखायी देने लगी। यह जो सुदर रग है, रूप है, मोहन आकषण ह, वाणी है, अभिव्यक्ति है, वह सब किसी बडे प्रेममय प्रेमिक का अगुलि-निर्देश है और उसी रूप म वह साथक है, ग्रहणीय है। अचानक उनके मन म शुभा की दिव्य मूर्त्ति उतर आयी। शुभा भी क्या कोई अगुलि निर्देश है। वे चुपचाप महर्षि के चरणा म प्रणाम करके उठ पडे—"भगवन, अनुमति हो तो इस विषय पर कुछ और सोचने समझने का प्रयत्न करूँ ?"

महर्षि औषस्ति ने प्रेम गदगद वाणी म कहा, "अवश्य वत्स! तुम्ह स्वय सोचना, समझना और अनुभव करना चाहिए। किसी की बात पर तब तक विश्वास नही करना चाहिए जब तक स्वय उसकी परीक्षा न कर ली जाये। तुम्हार भीतर जो देवता स्तब्ध रूप से बठे है उनको पहचानो! वे तुम्हारा ठीक माग दशन करग। वही प्रज्ञा रूप है। पुराण ऋषिया ने कहा है, 'प्रज्ञानम ब्रह्म'।"

रैक्व जब महर्षि के पास से चले तो उन्ह एसा लगता था कि वे किसी दूसरे लोक म पहुच गये है। वहा केवल प्रकाश ह, केवल आनन्द है, केवल 'है' ह।

सोलह

जाबाला अपने म खोयी रही। इधर बहुत कुछ घट गया, उस पता ही नही चला। एक दिन अरुधती उदास होकर चली गयी। जाते समय उसकी आँखे छलछलायी हुइ थी। जाबाला उसे रोकना चाहती थी, पर वह रुकी नही।

दूसरे दिन उसने सुना कि आचाय औदुम्बरायण चुपचाप घर छोडकर कही चले गय है। राजा जानश्रुति एकाएक इतने मर्माहत हुए हैं कि सत्सग के लिए समाहूत ऋषिया की विचार गोष्ठी मे भी नही जा सके। दासिया ने बताया कि राजा एक एकान्त कक्ष म सुन्न से चुपचाप जा बठे ह। जाबाला को बडी चिन्ता हुई। इधर कई दिना स वह अपने म ही इतनी खोयी हुई थी कि पिता की सेवा म उसस भारी प्रमाद हो गया। जब तक अरुधती थी, पिता की देख रेख का सारा

भार उसने अपने ऊपर ही ले रखा था। उसके चले जाने के बाद राजा जानश्रुति उपेक्षित ही रह गये थे। जाबाला अपने में ही कुछ ऐसी खोयी थी कि उसे उनकी ओर ध्यान देने की सुधि ही नहीं रही। अब उसे अपने प्रमाद का ध्यान आया।

जाबाला वहां पहुँची जहां उसके पिता चुपचाप शांत निस्पन्द पड़े थे। जान पड़ता था, देर तक आंखों से अश्रु झरते रहे हैं, क्योंकि आंखें सूजी हुई थीं और चेहरा भभराया हुआ था। जाबाला का हृदय सनाका खा गया। वह घबराकर चिल्ला पड़ी— "पिताजी, क्या हो गया आपको!" पिता ने कातर दृष्टि से पुत्री को देखा। वाणी रुद्ध ही बनी रही आंखों से आंसुओं की धारा झरने लगी। उन्होंने स्नेह के साथ जाबाला को गोद में खींच लिया। बोले कुछ नहीं, केवल उसे दुलारते रहे। देर तक दोनों इसी तरह बैठे रहे। बाद में पिता ने बताया कि अरुन्धती जो अचानक चली गयी, उसका कारण यही था कि वह उनसे बुरी तरह नाराज हो गयी थी। आज आचार्य भी चले गये। उनको प्रसन्न रखने के लिए ही अरुन्धती को अप्रसन्न करना पड़ा था, पर आज वे स्वयं ही कहीं चले गये। कारण का कुछ पता नहीं, पर गये हैं नाराज होकर ही।"

जाबाला के लिए यह नयी जानकारी थी, फिर पिता की अवस्था देखकर उसने उस समय कुछ अधिक नहीं पूछा। केवल उन्हें आश्वस्त करने के लिए कहा, "इतनी सी बात के लिए इतना व्यथित होने की क्या आवश्यकता है! आप बिल्कुल परेशान न हों मैं दोनों को मना लूंगी।" सरल पिता सचमुच ही आश्वस्त हुए। जाबाला जानती थी कि पिता ऐसे अवसरों पर इतने दुःखी और निराश क्यों हो जाते हैं। उनके मन में ऐसे अवसरों पर जाबाला की मां की स्मृति घुमड़ती रहती है। वे किसी से कह तो नहीं पाते, पर कोई प्राणाच्छेदी हूक उन्हें विचलित कर जाती है। जाबाला का आश्वासन ही इस हूक की एकमात्र दवा हुआ करती है। जाबाला के मन में रंचमात्र भी सन्देह नहीं था कि उसके एक स्नेह भरे शब्द से सरल प्रकृति पिता आश्वस्त हो जायेंगे। इसलिए नहीं कि उपस्थित समस्या सुलझ जायेगी, बल्कि इसलिए कि जो हृदय विदारी हूक वचन किये हुए है, वह कुछ प्रशमित हो जायगी।

यहां तक तो ठीक था, पर जिस बात ने अरुन्धती और आचार्य को उद्विग्न किया था, वह इतनी आसान थी नहीं। पिता तो पुत्री के आश्वासन पर बिल्कुल निश्चिन्त हो गये। उन्होंने पूरी बात उसे बतायी भी नहीं। वृद्धा दासी सकुला ने उनसे पूछ-पूछकर जो कुछ पता लगाया, उससे जाबाला बहुत चिन्तित हो उठी। उसने पिता को वचन दिया था कि वह आचार्य और अरुन्धती दोनों को मना लेगी, पर मातकल्पा वृद्धा सकुला से उसने जो कुछ सुना, उससे उसे लगा कि अपना वचन पालन करने में वह एकदम असमर्थ होगी।

सकुला की कही बातों को जोड़ने से कहानी कुछ ऐसी बनी थी —

जिस दिन अरुन्धती चली गयी थी उस दिन आचार्य औदुम्बरायण बुरी तरह मर्माहत हुए थे। उन्होंने आश्वलायन का जाबाला के पाणिग्रहण के लिए राजा पर

लिया था। उनके विचार स इससे अच्छे सम्बन्ध की कल्पना भी नही की जा सकती थी। विदुषी जावाला का जैसा वर मिलना चाहिए था, उनके मत से आश्वलायन ठीक वैसा ही वर था—विद्वान, सुरूप और शीलवान। आश्वलायन को शास्त्र-चर्चा के वहा निमन्त्रित करके उन्हाने उसे जाबाला को देखने समझने का अवसर दिया था। आश्वलायन मुग्ध हुआ था। जब आचाय यह बात राजा जानश्रुति और जावाला को वताने का अवसर ढूढ रहे थे।

गन्धव पूजन समारोह के बाद से आचाय अधिक सक्रिय हो गय। उन्हे भय हुआ था कि राजा जिस प्रकार अवैदिक क्रियाओ की ओर बढ रहे है उससे वे कही वदिक विधिया स पराङमुख न हो जायें। आश्वलायन का पाकर उनकी चिन्ता दूर हुई थी। अब उचित अवसर मिलन की देर थी। गन्धव पूजन समारोह के एक वष बाद यह अवसर मिला। शुभ मुहूत्त खोजकर उन्होने राजा जानश्रुति के समक्ष यह प्रस्ताव रखा। सरल प्रकृति के राजा, आचाय के दिय हुए शुभ समाचार से आह्लादित हुए। उनका मुख उल्लास से जगमगा गया। मन ही मन व भी आश्व लायन को जावाला के योग्य मानने लगे थे। परन्तु सयोग से वहा अरुन्धती पहुँच गयी। उसने जब सुना तो तीव्र प्रतिवाद किया। बोली 'तात अपराध क्षमा करें, मैं अपनी प्यारी दीदी को इस प्रकार मत्यु के मुख म धकेलने नही दूगी। मेरी बहिन यह सम्बन्ध एकदम स्वीकार नही करेगी। और आप दोनो क सकोच मे यदि उसने इसे स्वीकार कर लिया तो वह जीवित नही रह सकेगी। मेरा यह निश्चित मत है।" अरुन्धती का मुह आवेश से लाल हो गया था। वह इतना कहकर धम्म-स चली गयी। आचाय और राजा, दोनो हतप्रभ होकर देर तक मौन बठे रहे। दोनो ने देर तक एक दूसर की ओर देखा भी नही। आचाय औदुम्बरायण को अधिक कष्ट हुआ। वे आश्वलायन को बात दे चुके थे। उन्हे समझ म नही आया कि क्या मुह लेकर आश्वलायन से अस्वीकृति की बात कहग। अरुन्धती न जो कुछ कहा है, वह क्या सचमुच जावाला के मन की बात है? अवश्य होनी चाहिए। अरुन्धती उसकी बहिन ही नही, अन्तरग सखी भी है। तो?

आचाय ममाहत हुए। व चुपचाप उठकर चले गय। राजा की भी मानसिक स्थिति ऐसी हो गयी थी कि वे न उन्हे कुछ कह सके, न जाने स रोक ही सके। बाद म आचाय को किसी ब्रह्मचारी से एक पत्र प्राप्त हुआ और एकाएक आचाय अपना घर छोडकर ही चले गय।

पत्र मे क्या लिखा था, यह जावाला को ज्ञात नही हो सका। स्वय राजा जानश्रुति भी नही जान पाये थे कि वह पत्र कहाँ से आया था। जावाला सब सुन कर बहुत विचलित हुई। उसे कत्तव्य नही सूझा।

जावाला का उद्वेग बढता ही गया। उसी को लेकर अरुन्धती और आचाय घर छोड गय। पिता इस समय थोडे निश्चिन्त अवश्य ह, पर वह इस आशा स कि जावाला कुछ समाधान अवश्य खोज लेगी। पर समाधान क्या है? अरुन्धती न जो कुछ कहा है, वह ठीक ही कहा है। उसस अधिक स्पष्ट और प्रभावशाली ढग

स तो वह स्वयं भी अपने मन की बात नहीं कह सकती थी। अरुन्धती उसके मन की बात जानती है, सिर्फ जानती ही नहीं, सही ढंग से उसे प्रस्तुत भी कर सकती है। मन ही-मन उसने अरुन्धती के प्रति कृतज्ञता प्रकट की। पर आचार्य को तो पिताजी ने ही उसके योग्य वर ढूढ़ने का अधिकार दिया था। उन्होंने ढूढ़ा और अपनी ओर से कुछ बातें आगे बढ़ा दीं तो उन्हें दोष तो नहीं दिया जा सकता। क्या किया जाय? आचार्यपाद दुःखी हुए, यह अच्छा नहीं हुआ। उनसे अधिक अपना जाबाला का कौन है? परन्तु उन्होंने कुछ निश्चय करने के पहले एक बार जाबाला से पूछ लिया होता। अति विश्वास के कारण ही पूछा नहीं। या हो सकता है, पूछने का विचार कर रहे हों और अवसर न पा सके हों। जो हो, हुआ बहुत बुरा। उपाय भी क्या है? जाबाला जितनी ही सोचती, उतनी ही उलझती जाती। आचार्यपाद जो चाहते हैं वह हो नहीं सकता, पर उन्हें अप्रसन्न करके वह जी भी कैसे सकती है! विषम संकट है!

दो दिन तक सोचते रहने के बाद अचानक उसे आलोकशिखा-सी मिल गयी। क्या न वह भगवती ऋतम्भरा के निकट जाकर उनसे इस विषय में सलाह ले। वही कुछ रास्ता बता सकती हैं। यह सोचकर उसे आश्चर्य हुआ कि इतनी देर तक उसे यह बात सूझी क्या नहीं। मन इस विचार से काफी हल्का हुआ।

वह निश्चित जानती थी कि अपने पिता से अनुमति उसे मिल जायगी। मिल भी गयी। कठिनाई हुई पिता के इस आग्रह पर कि वे भी साथ चलेंगे। वह भगवती से एकान्त में बात करना चाहती थी। उस समय किसी तीसरे का रहना उसे स्वीकार नहीं था, पिताजी का रहना तो एकदम नहीं। पर पिता का आग्रह भी ऐसा था कि टालना कठिन था। राजा जानश्रुति महान तपस्वियों के दर्शन का प्रलोभन नहीं छोड़ पाये। अन्त में, पिता की अनुमति से जाबाला औपस्ति-आश्रम के लिए रवाना हुई। साथ में दीदी भी थी। दो चार विश्वस्त अनुचरों के साथ राजा भी चले। यात्रा बहुत कठिन नहीं थी। औपस्ति आश्रम उनके गाँव से बहुत दूर नहीं था, पर रथ से जाने योग्य मार्ग भी नहीं था। सो, पैदल ही चलना पड़ा।

आश्रम-द्वार से कुछ पहले ही राजा जानश्रुति अपने अनुचरों के साथ रुक गये। उन दिनों राजा लोग आश्रमों में कुलपति के आदेश के बिना नहीं जाते थे। साधारण लोगों पर ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं था। ऐसा माना जाता था कि तपस्या और स्वाध्याय के क्षेत्र में राजा का किसी प्रकार का दबाव धर्म संगत नहीं है। इसलिए राजा का आश्रम में प्रवेश के लिए कुलपति की अनुमति और राजवेश का परित्याग, ये दो बातें आवश्यक मानी जाती थीं। राजा ने एक अनुचर को महर्षि औपस्ति के पास पत्र देकर अनुमति प्राप्त करने के लिए भेजा। पर जाबाला अधीर हो रही थी। उसने माताजी के पास जाने की अत्यधिक उत्कण्ठा व्यक्त की। राजा ने उसे और उसकी दीदी ऋजुका को माताजी के पास जाने की अनुमति दे दी। स्वयं आश्रम के बाहर ही रहकर कुलपति की अनुमति की प्रतीक्षा करने लगे।

ऋजुका को माताजी की कुटिया तक पहुँचने में कोई कठिनाई नहीं हुई।

कुटिया छोटी ही थी। बाहर की भूमि पर गोमय से पातकर सामान्य मण्डिनकाएँ फूला से ही बना ली गयी थी। सरकण्डा और पत्ता से बना एक हल्का सा अवरोध पडा हुआ था जिसे 'कपाट' कहना केवल औपचारिकता ही मानी जायगी। जाबाला और ऋजुका जब द्वार पर पहुँची तो वहा सन्नाटा था। भीतर कोई था भी तो या तो सोया हुआ था या समाधि की स्थिति म ही था। एक क्षण के लिए जाबाला कुछ साध्वस की अवस्था म चुपचाप खडी रही। फिर न जाने किस आन्तरिक प्रेरणा से विह्वल व्याकुल भाव स अनायास बोल उठी—"मा!"

भगवती ऋतम्भरा उस समय रैक्व की प्रतीक्षा म बैठी थी, वे रैक्व के अपूर्व पाण्डित्य और उनके भविष्य की मोहन कल्पना मे रमी हुई थी, वह एक प्रकार का दिवास्वप्न था। वे आनन्द-विह्वल होकर शान्त-निस्पन्द बठी रही। बीच बीच वे केवल देख लेती थी कि उनका लाडला पुत्र पिता के पास से अभी तक लौटा या नही। इसी समय जाबाला की पुकार उनके कानो म पहुँची। आवाज़ पहचानने मे उन्ह देर नहीं लगी, पर उन्ह आश्चय अवश्य हुआ। क्या सचमुच जाबाला का ही स्वर है? यह कसे हो सकता है? व जब तक सोचें तब तक दूसरी बार वही कातर पुकार—"मा!"

भगवती हडबडाकर उठी। बाहर आकर देखती है—जाबाला ही तो है! जब तक वह उनके चरणो मे साष्टाग प्रणिपात के लिए झुकी तब तक माताजी ने धधाकर उसे छाती से लगा लिया। देर तक उसका सिर चूमती रही। ऋजुका की उपस्थिति का भान तो उन्ह बहुत बाद मे हुआ। वह दूर स ही प्रणिपात के लिए झुकी हुइ थी। उसे देखकर माताजी जैस होश मे आयी पूछा, 'कहा स आ रही हो तुम लोग, कोई सूचना भी नही दी!" जाबाला की आखो से आसू का प्रपात ही झरने लगा। वाणी एकदम रुद्ध थी। ऋजुका भी रोने लगी थी। उत्तर मे उसी न कहा, 'घर स ही आ रहे हं, माताजी! राजा भी आये हैं। आश्रम के बाहर ही रुक गये है।"

माताजी इस समाचार से आश्वस्त हुइ कि जाबाला पिता के साथ आयी है। एक क्षण के लिए वे सोचने लगी थी कि कहीं पिता से कोई विवाद करके तो वह नहीं आयी है। आश्वस्त होकर जाबाला को खीचकर वे भीतर ले गयी। ऋजुका को बाहर ही रहने का आदश दिया।

देर तक माताजी की गोद मे पडी हुई जाबाला सुबकती रही और उनका प्यार पाती रही। मुह से किसी न एक भी शब्द नही कहा। जाबाला न मन ही मन सोच रखा था कि माताजी स सारी बाते किस प्रकार खुलकर कहगी, पर सब सोचना बेकार हो गया। वाणी जो रुद्ध हुई तो मानो समाप्त ही हो गयी हो। कोइ उपक्रम नही, कोई उपसहार नही, केवल अविरल अश्रुधारा। माताजी को अचानक स्मरण हो आया कि राजा जानश्रुति आश्रम द्वार पर रुके हुए कुलपति औपस्ति की अनुमति की प्रतीक्षा कर रहे ह। यह समय महर्षि के ध्यान का है। हो सकता है कि उन्ह अभी तक अनुमति न मिली हो। महर्षि के ध्यान स उठन म अभी दर

है —यह सोचकर वे उद्विग्न हो उठीं। जावाला को प्यार से दुलारते हुए उन्होंने कहा, "क्या परेशान हो रही है, वेटी ? अव तू मा के पास आ गयी है। तेरी सारी चिन्ता अब मेरी है। तू स्वस्थ होकर वैठ जा। मुहूर्त भर में मैं आती हूँ। मुझे आशंका है कि तेरे पिता का अनुचर जव महर्षि के पास गया होगा तो व ध्यानावस्थित होंगे। वह अभी तक वहीं खडा होगा। मैं तेरे पिताजी के स्वागत की व्यवस्था करके अभी लौट आऊँगी। बस, मुहूर्त्त भर में आती हूँ। स्वस्थ प्रसन्न हो जा, मेरी वेटी!"

उत्तर की प्रतीक्षा किये विना वे घर से बाहर निकल गयीं। द्वार पर ऋजुका को देखकर कहा, "आ बेटी, मेरे साथ आ। लगता है, महर्षि के ध्यान का समय हो गया है, अभी तक राजा को आश्रम में प्रवेश करने की अनुमति नहीं प्राप्त हुई है। मैं कुछ विश्वस्त ब्रह्मचारियों को तेरे साथ लगा दूँगी। वे राजा को सादर आश्रम में ले आयेंगे। जावाला यहीं है। कुछ चिन्ता की बात नहीं है। इस आश्रम में कोई भी भय नहीं है। आ जा मेरे साथ।" उसे एक प्रकार से घसीटकर ही माताजी अपने साथ लेती गयीं।

जावाला भगवती ऋतम्भरा की कुटिया में अकेली रह गयी। अवसर पाकर एक बार बातचीत आरम्भ करने की योजना बनाने लगी, कैसे शुरू करे! माताजी से कौन सी बात पहले कही जाये! माताजी धर्मबुद्धि से विचार करेंगी। क्या उसके मन में जो है वह धर्म संगत होगा! माताजी कहीं यह न सोचने लगें कि रैक्व उनका बेटा है, इसलिए उसके सम्बन्ध में विचार करते समय ऐसी बात न कह जिसमें पक्षपात या ममता का संस्पर्श हो। फिर रैक्व है कहाँ ? यहीं तो नहीं है! उतावली में उसने इस सम्भावना की बात तो सोची ही नहीं। कहीं यहीं मिल गया तो न जाने कैसा आचरण कर बैठेगा! लोक-व्यवहार का ज्ञान तो उसे है ही नहीं। पर माताजी के साथ इतने दिनों से रह रहा है, कुछ तो सुधरा अवश्य होगा। जावाला को स्वयं इस बात पर हँसी आ गयी। उसमें दोष क्या है कि वह उसके सुधरने की बात सोच रही है! ऐसा अम्लान सहज भाव तो त्रैलोक्य में खोजे नहीं मिलेगा। वह वैसा ही भोला है, सुधरने का मतलब तो है कुछ बनावटी शिष्टाचार का अभ्यास। नहीं, रैक्व का सहज-सुन्दर रूप, अव्याज मनोहर स्वभाव, भोला भाला प्रियदर्शन वपु ही काम्य है! पर अकेले में मिलता तो अच्छा होता। दस आदमियों के बीच जाने कैसा व्यवहार कर बैठे। जावाला मन-ही मन प्रसन्न हुई। मिले भी तो! कहाँ मिलता है! यह बाद की बात है। तब जो होगा, देखा जायगा।

माताजी के आने में देर हो रही थी। राजा ने देर तक कुलपति औपस्ति की अनुमति की प्रतीक्षा करने के बाद अनुचर के आने में देर होती देख, एक अन्य अनुचर को माताजी के पास भेजा था। वह कुटिया के बाहर ही माताजी को मिल गया था। माताजी समझ गयीं कि प्रथम अनुचर अभी महर्षि के ध्यान टूटने की प्रतीक्षा में बैठा होगा। उधर राजा देर से आश्रम के बाहर प्रतीक्षा कर रहे हैं। माताजी ने अब देर न कर स्वयं राजा की अगवानी के लिए जाना उचित समझा।

वे यज्ञशाला के व्यवस्थापक को अतिथि की उचित अभ्यर्थना का निर्देश देकर स्वयं राजा के पास गयीं। लौटने में देर हुई।

जाबाला कुछ विचलित हुई। माताजी को देर क्या हो रही है? इस बार उनके आते ही वह अपनी समस्या उनके सामने रख देगी। वह फिर बातचीत के उपक्रम और उपसंहार का ताना बाना बुनने लगी। यहां आकर यही नहीं समझ पा रही है कि वह माताजी से क्या पूछने आयी है। कैसे वह कह सकेगी? क्या कहेगी? वह इतना निश्चित जानती है कि बात इस प्रकार रखना चाहिए, जिससे माताजी को कोई बात अक्रम-पुष्ट न प्रतीत हो। जाबाला इस धर्माधर्म की उलझन को अपने ढंग से स्वयं सोच रही थी। उस किसी समय स्वयं आचार्य औदुम्बरायण ने ही वाग्दान और कन्यादान का रहस्य समझाया था। आचार्य की बातें उसके गले नहीं उतरी थीं, पर आचार्य ने यह कहकर उसे चुप कर दिया था कि श्रुति के विपरीत सोचना कुतर्क है। कुतर्क आज भी उसके मन में उठ रहे हैं। डर यही है कि यहां माताजी भी उसे इसी अस्त्र से चुप न कर दें।

जाबाला को अच्छी तरह याद है। आचार्य औदुम्बरायण वाग्दान और कन्यादान के प्रसंग पर उसके तर्कों का उत्तर दे नहीं सके थे। केवल श्रुति की महिमा बताकर उसे चुप कर दिया था। जाबाला ने पूछा था कि 'कन्यादान' का अर्थ क्या है? पिता किसी को कन्या दे तो उसे कन्यात्व ही दे सकता है, पत्नीत्व नहीं दे सकता। यह शब्द ही गलत बनाया गया है। आचार्य ने अनेक धर्मसूत्रों का हवाला देकर बताया था कि यह केवल एक रूढ़ शब्द मात्र है। पिता केवल रक्षण तथा भरण पोषण का उत्तरदायित्व किसी योग्य वर को सौंप देता है। वह कन्या का नहीं, उसके रक्षण और भरण पोषण के दायित्व का दान करता है। जाबाला को इस पर भी आपत्ति थी। उसे यह अर्थ बनावटी लगा था। अगर सचमुच पिता कन्या को किसी व्यक्ति को पत्नी के रूप में नहीं देता तो दैव विवाह अत्यन्त गर्हित विधान है। दैव-विवाह में पिता दक्षिणा के रूप में कन्या को उस व्यक्ति को दे देता है जो यज्ञ करता है। फिर कन्या की सहमति के बिना किसी अन्य व्यक्ति द्वारा उसका वाग्दान भी तर्क सम्मत नहीं है। आचार्य इस बात पर कुछ चिढ़ गये थे और कहा था कि तर्क उतनी ही दूर तक ग्राह्य है जितनी दूर तक वह श्रुति-सम्मत होता है। श्रुति-विरोधी तर्क कुतर्क है। जाबाला को लगा था कि आचार्य उत्तर नहीं दे पा रहे हैं और उसे आगे चलने से रोकना चाहते हैं। और अब? आचार्य इसलिए नाराज हैं कि वे जाबाला की इच्छा जाने बिना उसके विवाह के लिए वाग्दान कर चुके हैं। जाबाला का मन किसी प्रकार यह मानने को प्रस्तुत नहीं है कि ऐसा वाग्दान धर्म-सम्मत है। पर माताजी से क्या ये बातें वह कह सकती है? शायद नहीं कह सकती है। यहां आना ही ठीक नहीं था। आकर तो और भी विषम संकट में वह फँस गयी है!

विवाह वह नहीं करना चाहती। वह आजन्म ब्रह्मचारिणी रहकर ब्रह्मवादिनी बनना चाहती है। रैक्व के सम्बन्ध में उसके मन में कोमल और मोहन भाव हैं,

है—यह सोचकर वे उद्विग्न हो उठीं। जाबाला को प्यार से दुलारते हुए उन्होंने कहा, क्या परेशान हो रही है, बेटी ? अब तू माँ के पास आ गयी है। तेरी सारी चिन्ता अब मेरी है। तू स्वस्थ होकर बैठ जा। मुहूर्त-भर में मैं आती हूँ। मुझे आशंका है कि तेरे पिता का अनुचर जब महर्षि के पास गया होगा तो वे ध्यानावस्थित होंगे। वह अभी तक वहीं खड़ा होगा। मैं तेरे पिताजी के स्वागत की व्यवस्था करके अभी लौट आऊँगी। बस, मुहूर्त्त भर में आती हूँ। स्वस्थ प्रसन्न हो जा, मेरी बेटी !"

उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना वे घर से बाहर निकल गयीं। द्वार पर ऋजुका को देखकर कहा, "आ बेटी, मेरे साथ आ। लगता है, महर्षि के ध्यान का समय हो गया है अभी तक राजा को आश्रम में प्रवेश करने की अनुमति नहीं प्राप्त हुई है। मैं कुछ विश्वस्त ब्रह्मचारियों को तेरे साथ लगा दूँगी। वे राजा को सादर आश्रम में ले आयेंगे। जाबाला यहीं है। कुछ चिन्ता की बात नहीं है। इस आश्रम में कोई भी भय नहीं है। आ जा मेरे साथ।" उसे एक प्रकार से घसीटकर ही माताजी अपने साथ लेती गयीं।

जाबाला भगवती ऋतम्भरा की कुटिया में अकेली रह गयी। अवसर पाकर एक बार बातचीत आरम्भ करने की योजना बनाने लगी, कैसे शुरू करे ! माताजी से कौन-सी बात पहले कही जाये ! माताजी धर्मबुद्धि से विचार करेंगी। क्या उसके मन में जो है वह धर्म संगत होगा ! माताजी कहीं यह न सोचने लगें कि रैक्व उनका बेटा है, इसलिए उसके सम्बन्ध में विचार करते समय ऐसी बात न कहें जिसमें पक्षपात या ममता का संस्पर्श हो। फिर रैक्व है कहाँ ? यहीं तो नहीं है ! उतावली में उसने इस सम्भावना की बात तो सोची ही नहीं। कहीं यहीं मिल गया तो न जाने कैसा आचरण कर बैठेगा ! लोक-व्यवहार का ज्ञान तो उसे है ही नहीं। पर माताजी के साथ इतने दिनों से रह रहा है, कुछ तो सुधरा अवश्य होगा। जाबाला को स्वयं इस बात पर हँसी आ गयी। उसमें दोष क्या है कि वह उसके सुधरने की बात सोच रही है ! ऐसा अम्लान सहज भाव तो त्रैलोक्य में खोजे नहीं मिलेगा। वह वैसा ही भोला है सुधरने का मतलब तो है कुछ बनावटी शिष्टाचार का अभ्यास। नहीं, रैक्व का सहज सुन्दर रूप अव्याज मनोहर स्वभाव, भोला भाला प्रियदर्शन वपु ही काम्य है ! पर अकेले में मिलता तो अच्छा होता। दस आदमियों के बीच जाने कैसा व्यवहार कर बैठे। जाबाला मन ही मन प्रसन्न हुई। मिले भी तो ! कहाँ मिलता है ! यह बाद की बात है। तब जो होगा देखा जायेगा।

माताजी के आने में देर हो रही थी। राजा ने देर तक कुलपति औपस्ति की अनुमति की प्रतीक्षा करने के बाद अनुचर के आने में देर होती देख, एक अन्य अनुचर को माताजी के पास भेजा था। वह कुटिया के बाहर ही माताजी को मिल गया था। माताजी समझ गयीं कि प्रथम अनुचर अभी महर्षि के ध्यान टूटने की प्रतीक्षा में बैठा होगा। उधर राजा देर से आश्रम के बाहर प्रतीक्षा कर रहे हैं। माताजी ने अब देर न कर स्वयं राजा की अगवानी के लिए जाना उचित समझा।

वे यज्ञशाला के व्यवस्थापक को अतिथि की उचित अभ्यर्थना का निर्देश देकर स्वयं राजा के पास गयी। लौटने में देर हुई।

जाबाला कुछ विचलित हुई। माताजी को देर क्या हो रही है? इस बार उनके आते ही वह अपनी समस्या उनके सामने रख देगी। वह फिर बातचीत के उपक्रम और उपसंहार का ताना बाना बुनने लगी। यहाँ आकर यही नहीं समझ पा रही है कि वह माताजी से क्या पूछने आयी है। कैसे वह कह सकेगी? क्या कहेगी? वह इतना निश्चित जानती है कि बात इस प्रकार रखनी चाहिए जिससे माताजी को कोई बात अक्षम पुष्ट न प्रतीत हो। जाबाला इस ऊमाधम की उलझन का अपने ढंग से स्वयं सोच रही थी। उस किसी समय स्वयं आचार्य औदुम्बरायण ने ही वाग्दान और कन्यादान का रहस्य समझाया था। आचार्य की बातें उसके गले नहीं उतरी थीं, पर आचार्य ने यह कहकर उसे चुप कर दिया था कि श्रुति के विपरीत सोचना कुतर्क है। कुतर्क आज भी उसके मन में उठ रहे हैं। डर यही है कि कहीं माताजी भी उसे इसी अस्त्र से चुप न कर दें।

जाबाला को अच्छी तरह याद है। आचार्य औदुम्बरायण वाग्दान और कन्यादान के प्रसंग पर उसके तर्कों का उत्तर दे नहीं सके थे। केवल श्रुति की महिमा बताकर उसे चुप कर दिया था। जाबाला ने पूछा था कि 'कन्यादान' का अर्थ क्या है? पिता किसी को कन्या दे तो उसे कन्यात्व ही दे सकता है पत्नीत्व नहीं दे सकता। यह शब्द ही गलत बनाया गया है। आचार्य ने अनेक ग्रन्थ सूत्रों का हवाला देकर बताया था कि यह केवल एक रूढ़ शब्द मात्र है। पिता केवल रक्षण तथा भरण पोषण का उत्तरदायित्व किसी योग्य वर को सौंप देता है। वह कन्या का नहीं, उसके रक्षण और भरण पोषण के दायित्व का दान करता है। जाबाला को इस पर भी आपत्ति थी। उसे यह अर्थ बनावटी लगा था। अगर सचमुच पिता कन्या को किसी व्यक्ति को पत्नी के रूप में नहीं देता तो दैव विवाह अत्यन्त गर्हित विधान है। दैव-विवाह में पिता दक्षिणा के रूप में कन्या को उस व्यक्ति को दे देता है जो यज्ञ करता है। फिर कन्या की सहमति के बिना किसी अन्य व्यक्ति द्वारा उसका वाग्दान भी तर्क सम्मत नहीं है। आचार्य इस बात पर कुछ चिढ़ गये थे और कहा था कि तर्क उतनी ही दूर तक ग्राह्य है जितनी दूर तक वह श्रुति सम्मत होता है। श्रुति विरोधी तर्क कुतर्क है। जाबाला को लगा था कि आचार्य उत्तर नहीं दे पा रहे हैं और उसे आगे चलने से रोकना चाहते हैं। और अब? आचार्य इसलिए नाराज़ हैं कि वे जाबाला की इच्छा जाने बिना उसके विवाह के लिए वाग्दान कर चुके हैं। जाबाला का मन किसी प्रकार यह मानने को प्रस्तुत नहीं है कि ऐसा वाग्दान धर्म-सम्मत है। पर माताजी से क्या ये बातें वह कह सकती है? शायद नहीं कह सकती है। यहाँ आना ही ठीक नहीं था। आकर तो और भी विषम संकट में वह फँस गयी है।

विवाह वह नहीं करना चाहती। वह आजन्म ब्रह्मचारिणी रहकर ब्रह्मवादिनी बनना चाहती है। रैक्व के सम्बन्ध में उसके मन में कोमल और मोहन भाव हैं

पर उसने विवाह तक इस बात को बढाने की कभी सोची नही। वह रैक्व से कैसा सम्बन्ध चाहती है ? उसका मत स्पष्ट नही है। आखिर वह चाहती क्या है ? माताजी अगर यही पूछ बठें तो वह क्या उत्तर देगी ? फिर रैक्व क्या विवाह करना चाहेगा ? वह बिचारा क्या जाने कि विवाह क्या होता है। जाबाला को अपने ऊपर ही हँसी आ गयी। किसी ने तो नही कहा कि उसका विवाह रैक्व से होने जा रहा है, या होने की सम्भावना है, फिर वह विवाह के बारे में ही क्या सोच रही है ? रैक्व के चाहने-न चाहने का प्रश्न ही कहाँ उठता है ! यह तो उसके अपने मन का ही चोर है !

जाबाला इसी उधेड बुन मे थी कि एकाएक कोई 'मा, मा' कहता हुआ कुटिया म घुस आया। जाबाला अपने मे खोयी हुई थी। आवाज सुनकर आँगन म निकल आयी। कौन अतिपरिचित की तरह यहाँ धडाधड घुसा आ रहा है ? सामने देखा, रैक्व ! स्तब्ध रह गयी।

रैक्व ने देखा, शुभा ! दोनो स्तब्ध ! एकदम रुद्ध-चेष्ट ! दोनो हैरान—भय दृगचल चारु अचचल ! कुछ देर ऐसी ही स्थिति रही। फिर रैक्व ने मौन भग किया—"शुभे, मैंने स्वप्न मे तुम्हे कई बार देखा है। पर आज जाग्रत अवस्था म देख रहा हूँ। पर कौन जाने आज भी स्वप्न ही देख रहा होऊँ ! बताओ शुभे, कहीं मैं स्वप्नावस्था म तो नही हूँ ?" ऐसा कहकर रैक्व ने अपनी आखो पर एक बार हाथ फेरा।

जाबाला ने मदुकण्ठ से उत्तर दिया, "नही तापनकुमार, तुम स्वप्नावस्था मे नही, जाग्रत अवस्था मे ही अपनी शुभा को देख रहे हो। कहो, प्रसन्न तो हो ?"

चकित मगशावक जिस प्रकार वीणा की ध्वनि सुनता है, उसी प्रकार रैक्व ने उस मनोहर वाणी को सुना। 'आज सचमुच प्रसन्न हूँ। सविता प्रसन्नोदय है, वायु प्रसन्न भाव से प्रवहमान है, दिशाएँ प्रसन्न है, मेरा भाग्य प्रसन्न है। पर शुभे, तुम्हारा चेहरा कैसा धूमाच्छन्न सा हो गया है ? ऐसा जान पडता है जैसे उपराग-ग्रस्त चन्द्रमा हो। सब कुशल तो है ?"

"तुम्हे देखने के बाद सब ठीक हो जायगा, ऋषिकुमार ! पर तुम मेरी एक प्रार्थना सुनो "

"प्रार्थना ! आज्ञा दो देवि ! पिछली बार तुम्हारी बात न मानने से जो पाप हो गया, उसका फल अभी तक भोग रहा हूँ। देखो, यह मेरी पीठ कैसी क्षत जर्जर हो गयी है। तुम्हारी बात न मानूगा तो और किसकी मानूगा ?"

रैक्व ने अपनी पीठ जाबाला के सामने कर दी। जाबाला ने देखा सारी पीठ लाल हो गयी है। सहानुभूति दिखाते हुए कहा, 'यह क्या हो गया है, ऋषिकुमार ?"

"हो क्या गया है पाप का फल भोग रहा हूँ। तुमने कहा था न, कि किशोर को अपनी पीठ पर किसी किशोरी को बठाने की बात सोचना भी पाप है ? मैं उस समय नही माना। पाप लग गया। सब समय पीठ म खुजली होती है और तुम्हारी

याद आने पर तो छाती तक छेद डालती है। माताजी तो कहती थी कि यह पाप नही, केवल अभिलाष भाव है, मैंने तुम्हे किसी न किसी प्रकार पाने की अभिलाषा की है, इसलिए पीठ मे खुजली होती है, पर आश्वलायन कहता है कि यह अभिलाष-भाव भी पाप ही है क्योकि तुमने शुभा की स्वीकृति पाये बिना अभिलाषा की है। शुभा ही इसे ठीक कर सकती है। ठीक कर दो न शुभे बडा कष्ट हो रहा है।"

"ठीक हो जायगी, पर यह आश्वालयन कौन है ? '

' मेरा मित्र है, बहुत समझदार है। मैंने तुम्हारे बारे म कुछ नही बताया, पर सब समझ गया ! "

"सब समझ गया ? क्या समझ गया ?"

"यह तो मैं भी नही जानता। कहता था कि सब समझ गया है। सदा ठीक ही कहता है।"

' तो तुमने यह नही पूछा कि वह क्या समझ गया है ? '

"तुम बता रही हो तो मुझे लगता है कि पूछना चाहिए था। उस समय किसी ने बताया ही नही।"

जाबाला हँसने लगी। रैक्व न समझा कि उससे कोई बडी गलती हो गयी है। गिडगिडाकर कहा, ' तुम्हारे सामने नासमझ हो जाता हूँ। अपने को छोटा समझने लगता हूँ।"

'नही, इसमे छोटा समझने की क्या बात है ! मुझे तो लगता है कि तुम बहुत महान हो। तुम मनुष्यो मे देवता हो। जी म आता है, तुम्हारी आरती उतारूँ। पर सुनो, इस समय तुम सचमुच नासमझी कर रहे हो।"

' क्या ?"

"तुम थोडी देर बाद यहा आना। माताजी के आने के पहल कही चले जाओ। व आनेवाली ही है। और देखो उनके सामन या किसी और क सामने यह अभिलाष-भाव वाली बात नही करना। अच्छा ! "

रैक्व ने स्वीकृति मे सिर हिलाया। पर हटे नही। जाबाला ने फिर मदुकण्ठ से कहा ' मेरे अच्छे तापसकुमार, तुम थोडी देर के लिए यहा से कही अन्यत्र चले जाओ।"

रैक्व ने अविश्वास के साथ जाबाला की ओर दखा। बोले, "नही, इस बार मैं कही नही जाऊँगा। उस बार तुम्हारे कहने से छिप गया था और तुम चुपचाप खिसक गयी। इस बार यह नही होगा। म तुम्हे नही छोडूगा।

"मै वचन देती हूँ ऋषिकुमार इस बार ऐसा नही करूँगी।"

"सच कहती हो शुभे मुझसे मिले बिना नही जाओगी ? तुम जानती नही अब मैं तुम्हारे बिना जी नही सकूगा। पता नही मुझे क्या हो गया है ! ध्यान नही कर सकता समाधि नही लगा पाता, जप तप भूल जाता हूँ। तुम्ही मेरी आराध्या हो, परब्रह्मस्वरूपिणी ! "

"ऋषिकुमार ! तुम जरा कम नही बोल सकते ? जानते हो न, ऐसा कहना अनुचित है ?"

"अनुचित है ? नहीं कहूँगा। पर सत्य है। जब जब तक तुम्हारा इंगित नही होगा, तब तक मैं मौन ही रहूँगा। एक बार प्रमाद हुआ, बार-बार नहीं होगा।"

"नहीं, मैं मौन रहने को नही कहती, जरा कम बोला करो और मेरे बारे में तो बिल्कुल कुछ न बोलो। समझे ! और अभी तो जरा जल्दी ही यहाँ से हट जाओ। बस, थोडी देर के लिए। फिर मैं तुमसे बात करूँगी। अभी तो मैं माताजी के पास और रहूँगी। पर तुमने ध्यान, प्राणायाम, समाधि, जप-तप क्या छोड दिया है ? मेरे कारण ? तब तो मैं तुमसे कभी नहीं मिलूगी।"

"नही, नहीं शुभे तुम मेरे ऊपर ऐसा क्रोध न करो ! अगर इन बातो से तुम्हें सुख मिलेगा तो अवश्य करूगा। मगर वह गाडी तो तुम्हारी ही है न ? वह मुझे चाहिए।"

"गाडी तो तुम्हारी ही है और मैं अच्छा, गाडी मैं अभी मँगवा देती हूँ।"

"हाँ, उस गाडी के बिना मैं क्या समाधि लगाऊँगा ? वह गाडी मुझे अपार शक्ति देती है !"

जाबाला के अधरो पर मन्दस्मित खेल गया। गाडी अपार शक्ति देती है ! भोलेराम, कभी यह भी सोचा कि गाडी नही, कोई और है जो अपार शक्ति देती है। पर यह बात मन में ही रखकर उसने कहा, "ठीक है, गाडी मिल जायेगी। लेकिन तुम थोडी देर के लिए यहाँ से चल जाओ। माताजी आती ही होगी। बुरा तो नही मान रहे हो, मेरे अच्छे तापसकुमार ?"

"जाता हूँ, मगर तुम भाग मत जाना। नही जाओगी न ?"

"नहीं, तुम विश्वास करो।"

रैक्व ने एक बार सन्दिग्ध दृष्टि से जाबाला की ओर देखा। फिर चुपचाप चले गये।

मन उनका आश्वस्त नही था। पिछली बार शुभा इसी प्रकार उन्हें छिपने को कहकर कहीं चली गयी थी। *इस बार कहीं चली न जाये। लेकिन पिछली बार* उसने इस प्रकार नही जाने का वादा नही किया था। इस बार वह वचन बद्ध है। जाना तो नही चाहिए। पिछली बार तो जगल था, झाडियाँ थी, छिपना आसान था। इस बार कहा चले ! वैसे इस बार शुभा ने छिपने को नही कहा। केवल कुछ देर के लिए हट जाने को कहा है। बहुत देर तक रैक्व आश्रम में इधर-से-उधर *भटकते रहे। फिर यज्ञशाला की ओर चले गये। मध्याह्न काल में वहा कोई नही* रहता। रैक्व ने वही जाने का निश्चय किया।

यज्ञशाला के पास ही कुछ दूर पर अतिथिशाला थी। श्रावण के महीने में वहा अधिक भीड रहती थी। इस समय प्राय खाली ही रहा करती थी। रैक्व ने देखा कि वहाँ कई ब्रह्मचारी व्यस्त है। निश्चय ही कोई बडा अतिथि आनेवाला होगा। कुछ आगे बढकर रैक्व ने एक ब्रह्मचारी से पूछा कि क्या कोई *अतिथि पधारे है !*

ब्रह्मचारी ने बताया कि "राजा जानश्रुति परिवार के साथ पधारे है। ब्रह्मचारी ने गौतम और आपस्तम्ब के वचना की याद दिलाते हुए रक्व स कहा कि तुम तो जानते ही हो कि अतिथि का सम्मान नृयज्ञ माना जाता है। उसका आगे बढकर स्वागत किया जाता है, पैर धोने के लिए जल देना पडता है। आसन, शय्या, दीप आदि की व्यवस्था करनी पडती है और ऐसे भोजन की व्यवस्था करनी पडती है जो अतिथि के उपयुक्त हो। द्वार पर से माताजी उनको ले आयी है शेष आचार हम लोग कर रहे ह। माताजी इनकी अगवानी करके और यहा तक पहुँचाकर लौट गयी है। राजकया जाबाला पहले से ही माताजी की कुटिया म चली गयी ह, उनकी भी तो व्यवस्था करनी है। माताजी ने हम लोगा को वहा भी जान का आदेश दिया है। यहा का काम अब समाप्त हो गया है, हम लोग वही जा रह है।"

ब्रह्मचारी की बात से रैक्व की समझ मे आया कि शुभा (जाबाला) क्या माताजी की कुटिया म है। उन्ह सबमे बडा सन्तोष इस बात स मिला कि शुभा के पिता यही हे और जब तक ये यहाँ रहेगे, तब तक उसके जान की कोई आशका नही है।

एक बार शुभा के पिता को देख लेने की इच्छा भी हुई। नाम तो सुना है पर अभी तक दखा नही है। मगर वे उधर जा न सके। एक प्रकार का सकोच, जिसका स्वरूप और स्वभाव उनकी समझ म नही आया, उन्हे उधर आगे बढने म बाधक सिद्ध हुआ। यज्ञशाला और अतिथिशाला के मध्य म स्थित विशाल तितिडी वक्ष की छाया मे बठकर शुभा की बातो का अर्थ समझने का प्रयत्न करन लगे।

शुभा कहती है, कम बोला करो। मै कुछ वाचाल हो गया हूँ। मुझे अपनी वाणी पर सयम रखना चाहिए। गाडी मिल जाय ता मैं फिर अपन तप और समाधि के माग पर लौट चलू। शुभा की यही इच्छा है। शुभा बिना विचारे कोई बात नही कहती। कुछ सोच के ही कहा होगा। अब शुभा के बार म तो बिल्कुल कुछ नहीं बोलना चाहिए। मैं शायद निरथक या अनथपरक बातें कह जाता हूँ। पुराण-ऋषियो न कहा है, अन्न स मन बनता है जल मे प्राण बनता ह और तज म वाणी बनती है। मुझम तज की कमी होगी। ऐसा न होता तो मरी वाणी सदोष क्या होती! तेज तो शुभा है। स्थिर विद्युत् शिखा! तभी शुभा की वाणी इतना स्पष्ट, इतनी मीठी और इतनी मोहन हे। बोलती है तो अमत की वषा सी हान लगती है। मुझे वाणी का सस्कार सीखना हागा। कम हागा—तजस का ध्यान करूँ? तेजस् का स्रोत आदित्य है, सविता देवता। उसकी शक्ति का प्रत्यक्ष विग्रह शुभा है—तजारूपा। सविता दवता का वरण्य भग धरती पर शुभा क रूप म मूर्तिमन्त हुआ है—तत सवितुवरेण्य भर्गो दवस्य धीमहि!—रक्व को याद आया, अभी थोडी दर पहल महर्षि औपस्ति ने कहा था—'मनुष्य की अन्तरात्मा म विधाता न 'प्रज्ञा' नामक एक और शक्ति दी है। वह अनुभव कराती है।' उन्होंन बताया था कि मैं जिस तत्त्व की ओर इशारा कर रहा हू वह बुद्धि का विषय नही है वह बोध का विषय ह। स्वय अनुभव करन का विषय ह। शान्त और स्थिर चित्त न

वढोग तो तुम्ह नलक मिलेगी।' कहा था, 'वह तज तुम्हारे दरवाजे पर आकर दस्तक दे रहा है, परन्तु तुमने कभी उसके स्वागत क लिए द्वार खोला नही।' महर्षि ने और भी कहा था, 'हाँ, वत्स, मनुष्य उस परम प्रेमी की दस्तक की निरन्तर उपेक्षा किय जा रहा है। वह परम प्रेमिक तुम्हार द्वार पर आकर खटखटा जाता है। एक वार प्रयत्न करो जिसस तुम उस अपन हृदय म पकडकर वठा सको, उसका स्वागत कर सको, उसके चरणा म अपन-आपको निछावर कर सको।' रक्व का आज सब स्पष्ट हो रहा है। कही कुछ दुविधा नही है। शुभा ही तो प्रज्ञा रूप है। आज हृदय के सभी बन्द द्वार अनायास खुल गय है। अभी तक य रुद्ध थे। आज माना जो मिलना था वह मिल गया। अब तक उनका मन उत्क्षिप्त था। आज समाधि सिद्ध होने जा रही है। महान् गुरु औपस्तिपाद के शब्द अमृत की धारा के समान सिर पर वरस रह है—'तुम्हार भीतर जो दवता स्तब्ध होकर वठे है व तुम्हारा ठीक माग-दशन करेंगे। वही प्रज्ञारूप है, पुराण ऋषियो न कहा है प्रज्ञान ब्रह्म'।' हाय, वह देवता तो शुभा से भिन्न नही है।

वहुत दिना वाद रैक्व न अपने चित्त म ऐसी स्थिरता का अनुभव किया था। आज वे अनुभव कर रहे है कि शरीर, इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि आदि—सभी आवरण हट रहे हैं। सबको अभिभूत करके एक अपूव तेज उनके अन्तरतर को आलोकित कर रहा है। वे अनायास समाधि की अवस्था म पहुँच गये।

सत्रह

रैक्व को यहाँ से हटने मे आयास करना पडा। नयी अनुभूति से थोडी ही दर जो हलकापन अनुभव हुआ था, वह धीरे धीरे तिरोहित होने लगा। थोडी दूर चलने पर उन्ह नया ज्ञान भार जैसा लगने लगा। वे महर्षि के पास फिर लौट आये। महर्षि स वे इस भारानुभूति का कारण पूछने आये थे। पर महर्षि तब तक समाधिस्थ हो चुके थे। उनका मुखमण्डल शान्त और प्रसन्न था, पर ऐसा लगता था कि उन्हे वाह्य जगत् की कोई अनुभूति नही है। रैक्व ने शास्त्रा म जिस ब्राह्मी स्थिति की बात पढी थी, वह कुछ ऐसी ही होती होगी। पर उन्ह वह प्राप्त नही हो रही है। उन्ह ज्ञान हुआ है, बोध नही। वे निराश और खिन्न भाव स वहाँ से फिर चले। अभी जो कुछ जाना था, अनुभव किया था, वह सब इतनी जल्दी

समाप्त हो जायगा, इसकी उन्हें आशंका भी नहीं थी। कहीं कुछ दोष है जो उन्हें ब्राह्मी स्थिति में आने में बाधक सिद्ध हो रहा है। वे अपना विश्लेषण करने लगे। दोष कहाँ है, क्या है ? क्या इतने बड़े गुरु का उपदेश इस तरह व्यर्थ हो जाता है ! वे शायद अब भी शब्दविद् ही रह गये हैं, मन्त्रविद् नहीं हो पाये ! अभी जो आलोक उन्होंने अपनी प्रत्यक शिरा उपशिरा से अनुभव किया था, वह इस प्रकार क्यों उड़ गया ? लगता है गाड़ी की तरह वह दूर चला जा रहा है, केवल कुछ लकीरें उनके मन पर बनी रह गयी हैं। उस आलोक का स्मरण अब भी है, पर वह सत्ता का अंग नहीं बन पाया है। क्या कारण हो सकता है ? शायद यह उनके स्वभाव का अंग है, आलोक का बोध क्षण स्थायी है। पानी आग के पास गरम हो जाता है जरा दूर हटते ही फिर ठण्डा-का ठण्डा क्योंकि पानी का स्वभाव ही ऐसा है। कब तक खौलाओगे ? मन सावधान, ठण्डा तो उसे होना ही है ! तभी पीछे से किसी ने कन्धे पर हाथ रखा—"बड़े परेशान लगते हो मित्र ! क्या बात है ? '

रैक्व ने पीछे फिरकर देखा। सुहृद आश्वलायन है ! सदा की भांति प्रसन्न, खिला हुआ ! रैक्व को प्रसन्नता हुई। बोले, ' मित्र, अच्छे मिले तुम। मैं आज सचमुच परेशान हूँ। अभी महर्षि औपस्तिपाद ने मेरे सिर पर प्यार से हाथ फेरा और इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि के आवरणों को भेदकर मैंने एकदम नया प्रकाश, नया आनन्द प्रत्यक्ष अनुभव किया। परन्तु ज्योंही उनके पास से उठा, वह अनुभव एकदम विलुप्त हो गया है और अब ऐसा लग रहा है कि यह सब न देखता न जानता तो अच्छा होता। क्षण भर पहले जो सारी नाड़ियों को भेदकर सारी शिरा-उपशिराओं को छेदकर दिव्य आनन्द प्रत्यक्ष हुआ था, उसकी जानकारी ही अब बोझ मालूम होती है। ऐसा क्या हुआ मित्र, तुम बता सकते हो ?'

आश्वलायन हंसने लगा—"बात तो बिल्कुल स्पष्ट है, पर तुम्हें कैसे बताऊँ ! यह बताओ, माताजी से मिले या नहीं ? मैं सोच रहा था कि उनसे मिल लूं। वहीं जा रहा था। लेकिन तुमको उदास देखा तो सन्देह हुआ कि कहीं माताजी ने तुम्हें डांटा तो नहीं दिया।"

' माताजी से मैंने तुमसे हुई बातचीत ज्यों की त्यों सुना दी है। उन्होंने कहा है कि इसमें कोई अपराध नहीं हुआ है, आश्वलायन तेरा अच्छा मित्र जान पड़ता है।"

"सब ज्यों-की त्यों सुना दी ?"

"हां, सब सुना दी। माताजी ने बुरा नहीं माना। तुम तो पहले ही कह चुके थे कि बुरा नहीं मानेंगी।"

' हाय मित्र, तुमने मेरी सारी बातें कह दीं ! अब मैं माताजी के पास जाने योग्य भी नहीं रहा।"

"क्या ? माताजी ने तो कहा है कि आश्वलायन बहुत भला लड़का मालूम होता है। तुम्हें उनसे अवश्य मिलना चाहिए।'

"नहीं मिलना चाहिए।"

"क्या, इसमें दोष क्या है ?"

"क्योंकि माताजी तुमसे अधिक समझदार हैं और मैं भी तुमसे थोड़ा अधिक ही समझदार हूँ।"

"माताजी मुझसे अवश्य अधिक समझती हैं, पर तुम मुझसे अधिक क्या जानते हो ? अभी भी अगर तुमको ऐसा भ्रम है तो किसी विषय पर शास्त्रार्थ करके देख सकते हो।"

"रहने भी दो। शास्त्र-चर्चा के लिए कुछ बुद्धि-वैभव की आवश्यकता होती है, विधाता ने वह तुम्हें दिया ही नहीं।"

कहकर आश्वलायन जोर से हँसा। फिर पुचकारते हुए कहा, 'मेरे भोले मित्र, तुम इतनी-सी बात पर चिढ़ गये और तुम्हें खेद है कि मन और बुद्धि को लेकर जो महान सत्य दिखायी दिया था, वह अब लुप्त होता जा रहा है। धन्य हो!"

रैक्व को अपनी इस अहंकार वृत्ति पर खेद हुआ। सोचकर बोले, "मित्र, मुझमें सचमुच दोष है। मैं उतावली में तुम्हारा उत्तर दिया करता हूँ। जानते हो, मैंने क्या समझ लिया था ? मैंने समझा था कि तुम मुझे मूर्ख कहना चाहते हो ?"

"अब क्या समझा ?"

"अब ? अब मैं समझ रहा हूँ कि मुझमें सचमुच बुद्धि-वैभव नहीं है।"

"साधु मित्र! अब तुम ज्ञानी की तरह बात करने लगे। पर सुनो, बुद्धि-वैभव कोई ऐसी चीज नहीं है जिसके न होने पर दुःखी हुआ जाय और होने पर सुखी हुआ जाय। बड़ी चीज वही है जो तुम हो।"

"क्या मतलब ?"

रैक्व ने देखा, आश्वलायन के चेहरे पर अद्भुत उल्लास का भाव था। रैक्व की पीठ थपथपाते हुए बोला, 'तुम्हें किसी ऐसे गुरु की आवश्यकता है जो तुम्हें बता सके कि तुम क्या हो। तुम जब तक स्वयं को नहीं पहचानते, दूसरों द्वारा अनुभूत सत्य का पिटारा सिर पर से फेंक नहीं देते, तब तक ऐसे ही भटकते फिरोगे। चाहो तो मैं तुम्हें ऐसे गुरु से मिला सकता हूँ। बहुत दूर नहीं जाना पड़ेगा। चल सकोगे ?"

"चल सकूँगा। मेरा भटकाव जो दूर कर सके उसके पास अवश्य चलूँगा। पर माताजी की आज्ञा ले लूँ।'

'देर हो जायगी। रमता राम है। कब चल देंगे, कोई नहीं जानता। तुम्हें उनके पास छोड़कर मैं आ जाऊँगा और माताजी के पास किसी को भेजकर समाचार दे दूँगा कि तुम कहाँ गये हो। माताजी बुरा नहीं मानेंगी।"

"नहीं मानेंगी न ? तुम उनको ठीक समझते हो। चलो!"

आश्रम के एक किनारे पर थोड़ी नीची जमीन थी। बरसात में वह पानी से भर जाती थी पर इन दिनों वह सूखी थी और उस पर घास-फूस निकल आया था। वहीं खुले मैदान में एक जटिल साधु बैठे हुए थे। वहाँ तक पहुँचने में दोनों मित्रों को बहुत देर नहीं लगी। रास्ते में आश्वलायन ने बताया कि 'ये महात्मा

सब तरह स विचित्र ह । ब्राह्मण नही है, क्याकि ब्रह्म या वेद किसी के कायल नही है। ब्रह्म या वेद को चरम और परम माननवाले ब्राह्मण महात्मा 'ऋषि' कह जात हैं, लोग इन्ह 'मुनि' कहत ह । न आश्रम के लोग इनकी विशेष परवा करत ह, न ये आश्रमवाला की । य अपन को अनेकान्तवादी बतात है। कहत है, हर आदमी का सत्य अपना और निजी होता है। किसी के भी बताय माग पर आख मूदकर नही चला जा सकता है। हर व्यक्ति का अपना सत्य हे, उसी की खोज करनी चाहिए। प्रत्यक आत्मा अपने सत्य पर अचल रहकर परमात्म पद पा सकता है। वे अपने श्रम स उत्पन्न अन्न ही ग्रहण करते है, किसी का दिया कुछ नही लेत । महर्षि औपस्तिपाद पर इनकी अपार श्रद्धा है। उन्ही स मिलने कभी कभार आ जाते है। मिलन पर दाना म कोई बातचीत नही हाती। केवल हाथ जोड दते है और उनके जुडे हाथा को महर्षि अपन हाथा मे ले लेते है। दोना चुपचाप घण्टो बठे रहते हैं और फिर एकाएक उठकर चल दत हैं। अभी तक महर्षि स मिल नही पाये हैं। इसीलिए यहाँ बठे ह।" रैक्व को कुतहल हुआ। उत्सुकतापूवक बोले, क्या मुनस भी नही बोलेंगे ?"

"तुमने क्या नही बोलेगे ? अभी मुनी से देर तक बात करत रहे। नही बोलने का व्रत केवल महर्षि के साथ ही चलता है। औरो से खूब बोलत है। आश्रम के उपाध्याय लोग ही उनसे बोलना उचित नही समझते। कारण अभी समझ जाओग।'

रक्व का कुतूहल बढ गया। निचली भूमिवाले मदान मे पहुँचकर तो वे कुछ चकित से भी लग। जटिल मुनि घास छील रहे थे। रक्व को चकित देखकर आश्वलायन कहन लगे— घास क्या छील रहे ह, जानत हो ? किसी गहस्थ को दकर कुछ दूध लेग और आज का भोजन उसी से पूरा होगा।" कहकर आश्वलायन ज़ोर स हँसे।

जटिल मुनि न दोना का देखा। आश्वलायन से पूछा, 'ये कौन है, आयुष्मान !"

'मेरे मित्र रैक्व है। व्याकुल है कि कुछ उपदेश इनके मन मे नही टिक पा रहा है। इसीलिए अपने को भटका अनुभव करते है। आपस कुछ सहायता पान की आशा रखते है।"

"सहायता ? उसके बदले मे तो मरे लिए थाडी घास छील देनी हागी, आयुष्मान् ! आ जाओ, वहा एक छाटा सा पत्थर का क्षुरप्र (खुरपा) और है। उठा लो! और तुम, आयुष्मान आश्वलायन, जा सकते हा, मेरे पास तीसरा खुरपा तो है नही।"

"जाता हूँ मुनि श्रेष्ठ, तीसरा होता भी तो मुझे अवकाश नहीं था। मेरे मित्र की जिज्ञासाओ को शान्त करें। मेरे हाथा मे तो पहले ही फफोले निकल आये हैं।"

आश्वलायन रैक्व की ओर दखे बिना ही चल पडे।

जटिल मुनि रक्व की ओर बराबर देखे जा रह थ। रैक्व को लगा, जसे कोई भयकर उल्का उनकी ओर बढी आ रही है। वे आगे बढन की जगह दो कदम पीछे

हट गये।

जटिल मुनि ऐसा हँसे जैसे कोई आँधी सनसनाकर बढ़ती चली आ रही हो—'फफोला से डर गये आयुष्मान्, देखूँ तुम्हारे हाथ। बहुत कोमल हाथ। आ जाओ।"

बिना कुछ सोचे विचारे रैक्व ने अपनी हथेली खोलकर उनके सामने कर दी। ज़रा-सा ठुककर जटिल मुनि ने उस हथेली की ओर ताका और एकदम हाथ का खुरपा फेंक खड़े हो गये। उन्होंने सिर से पैर तक रैक्व को देखा। ऐसा लगा वे कुछ विस्मित हो गये हैं— भटक तो तुम अवश्य गये हो, कुमार! बहुत भटके हो, बहुत।"

फिर थोड़ा रुककर बोले, "तुम्हें घास नहीं खोदनी चाहिए। आज इतने से ही मेरा काम चल जायगा। मैं तुमसे बस ही बात कर लूँगा। थोड़ा श्रम तो तुम्हें करना पड़ेगा, पर वह बाद में बताऊँगा। अभी बैठो, यहीं बैठ जाओ। तुम बैठे रहो। मैं अपना काम भी करता रहूँगा और तुमसे बातें भी करता रहूँगा।"

रैक्व अभी भी बोल नहीं पा रहे थे। कुछ साहस बटोरकर बोले, 'मैं घास खोद सकता हूँ।' और पास ही पड़ा क्षुरप्र (खुरपा) उठा लिया।

शिराएँ झनझना उठीं। लगा, जैसे सिर चक्कर खा रहा है। जटिल मुनि ने क्षुरप्र उनके हाथ से ले लिया—"कहा न, रहने दो। तुम्हारे बस का नहीं है। बताओ अपनी समस्या—अवहित हूँ।"

उन्होंने रैक्व का कंधा दबाकर बैठा दिया। कंधा बुरी तरह चरमरा गया। रैक्व को लगा कि कोई भारी पिण्ड उन्हें नीचे की ओर दबाता जा रहा है। वे बैठ गये। महात्मा उनकी ओर देखते रहे। रैक्व रुद्धवाक, निश्चेष्ट।

जटिल मुनि ही बोलते रहे— देखता हूँ आयुष्मान, तुम वृथा मोह के वहकावे में भटक गये हो। विधाता ने तुम्हें सब प्रकार से निश्चिन्त कर दिया था, माँ नहीं, बाप नहीं, भाई नहीं, बहिन नहीं, द्वार नहीं—यही तो बड़े-बड़े महात्मा कठोर तपस्या के बाद सिद्धि-रूप में प्राप्त करते हैं। तपस्या का फल यही न होता है मेरे प्यारे, कि आदमी में कोई ममता न बचे, मम' (मेरा) कहा जानेवाला कुछ न रहे, वह तो तुम्हें अनायास विधाता की ओर से मिल गया था। मैं कुछ अलीक कह रहा हूँ, आयुष्मान ?"

जटिल तापस बड़ी मधुर वाणी में यह सब कह रहे थे, परन्तु उनके अधरों पर एक रहस्यमयी मुस्कान बराबर खेल रही थी।

रैक्व धीरे धीरे प्रकृतिस्थ हो रहे थे। जटिल मुनि की वह हँसी उनके मन में बेचैनी भी पैदा कर रही थी। उन्होंने यथासम्भव अनुद्विग्न रहने का प्रयत्न करते हुए कहा, "अपराध क्षमा हो भगवन कैसे कहूँ कि आप अलीक कह रहे हैं ? मैं तो केवल शब्दविद हो पाया हूँ, मन्त्रविद अभी नहीं हुआ। मैंने सुना है कि सिद्धि उसे कहते हैं जो संकल्पपूर्वक प्रयत्न करके पायी जाती है। जो वस्तु अनायास मिल जाय, वह सिद्धि कैसे कही जा सकती है ?"

"नही कही जा सकती न ? तुम ठीक कह रहे हो, आयुष्मान ! पर देखो, मेरी तो यही सिद्धि है। यह देखो, मेरे हाथ म ठीक वही रेखाएँ है जो तुम्हारे हाथ मे है — हू-ब हू वही ! तभी तो मैं तुम्हे तुरत पहचान गया।"

जटिल मुनि ने अपनी हथेली रैक्व के सामने रख दी और उनके हाथ की रेखाओ स मिलती जुलती रेखाओ को दिखाने लगे। रैक्व ने आश्चर्य से देखा कि कुछ रेखाएँ बिल्कुल एक जैसी है। जटिल मुनि की आखो म विचित्र प्रकार की चमक थी। बोले, 'ये रेखाएँ बताती है कि इस प्रकार के हाथवाला को न माता का सुख मिलता है, न पिता का, न भाई का, न बहिन का। वे जन्म से ही अनिकेत होते है। है न, आयुष्मान् ?"

रैक्व चुप ! देर तक वे चुपचाप केवल मुनि की आखो की विचित्र चमक देखते रहे। उन्हे ऐसा लगा कि अचानक उनकी वाक्शक्ति लुप्त हो गयी है।

मुनि ही बोले, 'मैं समझ सकता हूँ मेरे प्यारे कुमार, तुमको कितना कष्ट भोगना पडा होगा। मुझे भी भोगना पडा था। पर फिर भी मैं तुम्हे खुरपा उठाने स रोक रहा हूँ जब कि स्वय चला रहा हूँ। जानते हो, क्या ? सीधी सी बात है। यह जो बाहुमूल से अनामिका तक गयी हुई तुम्हारी रेखा है जो जरा सा मध्यमा की ओर झुक गयी है, वह तुम्हे मेरी तरह नही रहने देगी। वह परम सौभाग्य की सूचना देती है—बडी भारी सिद्धि की। देख रहे हो न, आयुष्मान ?"

रैक्व बार बार अपने हाथ की रेखा को आश्चर्य से देखते रहे। फिर थोडा आश्वस्त से होकर बोले, "तो भगवन, इसका अर्थ यह हुआ कि सब कुछ पहले से ही तय है। मनुष्य को कुछ करने धरने की आवश्यकता नही है।'

"नही आयुष्मान, मनुष्य को करने के लिए बहुत कुछ पडा है। मैंने अभी तुमको बताया न कि जिसे लोग परम दुर्भाग्य समझते है, वही मेरी सिद्धि है। बस, जानते हो ? मै अपने दुर्भाग्य से बहुत व्यथित था। लगता था, मेरे जैसा भाग्यहीन कोई नही है। दूसरे बच्चो को अपनी माँ के हाथ से प्रसन्नतापूर्वक भोजन करते देख मेरे मन म भारी हूक उठती, मै कराहकर रह जाता। द्वार द्वार ललात बिल-लाते भीख मागते दिन बीतता। लोग कुत्ता के सामने भी अन्न डालते समय उनका तिरस्कार नही करते थे जितना चार दाना देते समय मेरा करते थे। एक दिन मैंने सकल्प कर लिया कि भिक्षा नही मागूगा। मैं भूख स कई दिना तक व्याकुल रहा। जगल में जहाँ कही कन्द, मूल, फल मिल जाता वही उसे खा लेता। एक दिन मेरे पेट म दर्द हुआ, बेहोश होकर गिर पडा। शायद कुछ ऐसी ही वस्तु खा गया था जो खाने योग्य नही थी। देर तक उसी अवस्था म पडा रहा। सज्ञा लौटने पर मेरे आश्चर्य का ठिकाना नही रहा। एक वृद्धा माता मेरा सिर अपनी गोद म रखकर मुँह पर पानी का छीटा दे रही थी। तुम शायद विश्वास नहीं करोगे, आयुष्मान ! ऐसा भव्य रूप मैंने कही देखा नही था।

"उनका सारा शरीर तेज स ही बना लग रहा था। आँखो म करुणा का अपार सागर लहरा रहा था। उनके वल्कल समावृत देह के अग अग स प्रकाश की किरणें

फूट रही थी। माताजी ने दुलार के साथ पूछा कि मैं कौन हूँ और कैसे गिर गया था। मैंने उन्हें संक्षेप से अपने दुर्भाग्य और भिक्षा न मांगने के संकल्प की कहानी सुना दी। माताजी का चेहरा प्रसन्नता से खिल उठा। बोलीं, तू अपने को इतना हीन क्या समझ रहा है रे! ऐसा संकल्प तो किसी बड़े गुरु की प्रेरणा के बिना सम्भव नहीं है।'

"मैंने कातर-भाव से कहा, 'मुझे अभी कोई गुरु तो नहीं मिला माताजी, अपने मन से ही मैंने ऐसा संकल्प किया था।' माताजी ने प्रसन्न भाव से कहा, तेरा गुरु तो तेरे भीतर बैठा है। तेरे भीतर तो अनन्त सम्भावनाएँ भरी पड़ी हैं। तू बाहर क्या देखता है? तेरा देवता तेरे भीतर ही है।' माताजी का साथ थोड़े ही दिन रहा। उन्होंने मुझे यह मन्त्र दिया कि 'बाहर की ओर ढूंढ़ता फिरेगा तो भटक जायगा। अपने भीतर ही ढूंढ़, तेरा गुरु, तेरा देवता, तेरा सब-कुछ भीतर ही है। बाहर भी वही है पर उसे बाहर खोजने में कठिनाई है। सबके लिए नहीं कह रही हूँ, सिर्फ तेरे लिए बता रही हूँ। सबका मार्ग एक ही नहीं हो सकता।' माताजी की छाया मुझे सिर्फ इक्कीस दिन ही मिली। उन्होंने मुझे कुछ ध्यान की विधियां बता दीं। जब मैं ध्यान में विलीन होने लगा तब वे चुपचाप चली गयीं। शायद अन्तर्धान हो गयीं।

'सो, मेरी सिद्धि यह अनाथ दशा ही है। तुम क्या भटक रहे हो, आयुष्मान? बताओ, मुझसे अधिक समानधर्मा तुम्हें कहाँ मिलेगा? बोलो, संकोच की क्या बात है?"

रैक्व आश्चर्य से सुनते रहे। जब जब जटिल मुनि बिल्कुल उनके स्तर पर उतर आये तो उन्हें लगा कि अभी तक जितने ज्ञानी महात्मा मिले, उन्हें—यहां तक कि भगवती ऋतम्भरा को भी—वह ऊँचे स्तर पर खड़ा देखते आये हैं। आज ही कोई महान गुरु उनके स्तर पर उतर आया है, अवतार हुआ है! उन्होंने सुना था कि कुछ धार्मिक सम्प्रदाय ऐसा मानते हैं कि भगवान जब भक्तों का उद्धार करना चाहते हैं तो धरती पर उतर आते हैं और मनुष्य के स्तर पर आकर ही भक्त का उद्धार करते हैं, इसी स्थिति को लोग 'अवतार' कहते हैं। उनका मत है कि बिना 'अवतार' (उतर आने की प्रक्रिया) के 'उद्धार' नहीं होता—उद्धार, अर्थात ऊपर उठाने की प्रक्रिया। आज वे महान सिद्ध का 'अवतार' प्रत्यक्ष देख रहे हैं—शायद 'उद्धार' की प्रक्रिया शुरू होनेवाली है।

अत्यन्त आश्वस्त होकर रैक्व ने अपनी कहानी सुना दी। उपसंहार करते हुए उन्होंने कहा कि महान् गुरुओं के उपदेश उनके मन पर टिकते ही नहीं। कहीं कोई बाधा है, कोई दोष है, जो उन्हें विचलित कर देता है। ध्यान करते हैं तो शुभा ही पहले आ जाती है। अखण्ड ज्योति का साक्षात्कार होता है तो शुभा के रूप में ही!

जटिल मुनि सुनकर अत्यधिक उत्फुल्ल हो गये। बोले, 'तो इसमें दोष क्या है कुमार? तुम्हें तो भगवान ने विशेष अनुग्रह का प्रसाद दिया है। मगर देखो, मेरी माताजी ने इस विषय में एक अच्छी सलाह दी थी। मेरे जीवन में तो ऐसा कोई

प्रसग ही नही आया, इसलिए मै तो उस सलाह का कोई उपयोग ही नही कर पाया। पता नही, उन्होने क्या सोचकर सलाह दी थी। शायद वे भविष्य देख रही थी। उन्होने पहले ही यह जान लिया था कि तुम मेरे पास आओगे और वह सलाह तुम्हे दे सकू, यही उनका उद्देश्य रहा हो।"

"पहले जान लिया था, यह कैसे सम्भव है?"

'अब मै तुमसे इस सम्बन्ध मे क्या बताऊँ! कुछ भी असम्भव नही है, केवल अपने भीतर की अपार सम्भावनाओ को विकसित करने सच पूछो तो, उदघाटित करने का सवाल है। छोडो, हम अनन्त सम्भावनाओ को अपने भीतर दबाये बठे है। ये जो तुम्हारे ऋषि लोग है इनकी बाते कभी कभी मुझे चक्कर मे डाल देती है। मुह से तो कहगे कि जो परम सत्य है वह न पुरुष है, न स्त्री है, न जड है, न चेतन है इत्यादि इत्यादि, पर जब ध्यान करेगे तो उसकी कल्पना पुरुष रूप मे ही करेंगे। कुछ समझाना हुआ तो 'पुरुष एवेद सव' कहेंगे! मैं अपनी माताजी का ध्यान करता हूँ—कही कोई कठिनाई नही आती। मेरे लिए वे ही परम सत्य है। जो परम सत्य है, उससे क्या छिपा है आयुष्मान? पर ये लोग मेरा परिहास करते हैं। एक महर्षि औषस्तिपाद ही मेरी बात समझ पाते है। वे इन लोगो से भिन्न है।"

'तो भगवन, माताजी को परम सत्य मानकर आप जब ध्यान करते है तो कोई सिद्धि प्राप्त कर लेते है?"

'यह तो मेरी त्रुटि है कि मैं पूरी सिद्धि नही प्राप्त कर सका। सिद्धि कोई चमत्कार तो है नही, आयुष्मान! अपने आपको देख लेना ही तो सबसे बडी सिद्धि है, बाकी छोटी मोटी बातें तो अपने आप सिद्ध हो जाती है। यह जो तुम मेरा खुरपा नही उठा पा रहे थे, वह केवल मेरी इच्छा के कारण। पर यह कोई बडी बात तो है नही। उठा भी लेते तो क्या बन या बिगड जाता? आश्वलायन ने उठा लिया, क्योकि मै चाहता था कि वह उठा ले, तुम उठाने मे कठिनाई अनुभव करने लगे क्योकि मैं नही चाहता था कि उठाओ। यह कोई सिद्धि नही है। चित्त के एकाग्र होने पर इच्छा शक्ति अनायास प्रबल हो उठती है।'

'किसी बात पर एकाग्र करने से, भगवन्?"

"किसी बात पर एकाग्र करने से आयुष्मान, किसी बात पर। तुमने ध्यान, धारणा और समाधि की बात सुनी होगी। सुनी है न?'

'सुनी है।"

"देखो ससार मे कोई नही है जो कुछ न-कुछ ध्यान न करता हो, किसी न किसी तरह की धारणा न करता हो और किसी न किसी प्रकार की समाधि की स्थिति न प्राप्त करता हो। ठीक कह रहा हूँ न?"

हाँ भगवन ठीक ही लग रहा है।"

"पर सब योगी नही होते। क्या, जानते हो? क्योकि एकाग्र नही हो पाते। एक ही विषय का ध्यान उसी की धारणा और उसी की समाधि —इसी का नाम एकाग्रता है। ध्यान किसी और का, धारणा किसी दूसरे की, और समाधि किसी

अन्य की हुई तो 'योग' कहाँ हुआ ? ध्यान, धारणा और समाधि एकाग्र हो जायें तो योग हो जाता है।"

"समझ म आ रहा ह लेकिन फिर ?"

"फिर क्या भोलेराम, सत्य क्या नही है ? जिस वस्तु म मन रम उसी का ध्यान, धारण और समाधि उत्तम योग है। उसी सूत्र को पकडकर तुम परम सत्य का साक्षात्कार कर सकत हो। परम सत्य—जो तुम स्वय हो !"

"यह बात भी मेरी समस्या का समाधान नही है, भगवन। और बातो की तरह यह भी भूल जाऊँगा। मेरी समस्या का यह भी समाधान नही है। मुझे एसा लगता है कि परम सत्य को अवश्य उपलब्ध करना चाहिए, पर साथ ही मैं अनुभव करता हूँ कि धुभा के बिना जी नही सकता और उस परम सत्य तक पहुँचने की सीढी भी नही बना सकता !"

जटिल मुनि ठठाकर हँस —'यह तो मैं पहले ही जान गया था। इसलिए अपनी माताजी की सलाह तुम्हे दना चाहता था। तुम्ही तो बेकार बातो म उलझते जा जा रहे हो।"

"तो वह सलाह ही बता दें, भगवन् !"

"अब तो रास्त पर आय। तुम्हारी भाग्यरेखा अनामिका मूल से थोडा तिरछी होकर मध्यमा की ओर बढ गयी है, सकल्प से उसे सीधी कर सकत हो अर्थात भटकने की प्रवृत्ति पर अकुश लगा सकते हो। विधाता की दी हुई सभी रेखाओ को सकल्प शक्ति से जिधर चाहो मोड सकते हो। करके देख लेना।"

"अभी कर सकता हूँ ?"

"पहले सलाह सुन लो। फिर मैं तुम्हें दिखा सकता हू कि इन रेखाओ को जिधर चाहो मोड सकते हो।" रैक्व ने अपना हाथ उनके हाथ म देकर पूछा कि किस रेखा को किधर मोडने का सकल्प करना होगा। जटिल मुनि हँसन लगे। एक रेखा दिखाकर कहा, 'यदि यह अनामिका मूल की ओर मुड जाय तो न तुम भटकोगे, न मुझे भटकाओगे।' रैक्व प्रभावित हुए। बोले, 'अभी करूँ, भगवन ?"

'नही भोलेराम, उतावले क्या होते हो ! पहले वह बात तो सुन लो। उद्देश्य नही समझोगे तो प्रयत्न बेकार जायेगा।"

रैक्व अब पूर्ण रूप से सहज हो गये थे। आरम्भ म अभिभूत होने का जो भाव था, धीरे-धीरे समाप्त हो गया। उन्होंने जटिल मुनि की ओर ध्यान से देखा और बोले, 'महात्मन, अविनय क्षमा हो, मैं स्वय अनुभव किये हुए सत्य को वास्तविक शक्ति मानता हूँ। यहाँ आप अनुभव किया हुआ सत्य नही कह रहे है बल्कि अपनी माताजी का बताया हुआ कोई परामर्श देना चाहते है, इसलिए मैं शुरू से ही उसके प्रति इतनी आस्था और आग्रह नही कर पा रहा हूँ जितनी मुझसे आपको आशा है। मैं केवल उतना ही सुनना चाहता हूँ जितना आपका अनुभव सत्य है। उसे मैं तभी स्वीकार करूँगा जब मैं स्वय उसका अनुभव करूँगा। आपने स्पष्ट ही कहा कि माताजी की सलाह पर चलने का आपको अवसर ही नहीं मिला। फिर मेरे

लिए उस अप्रत्यक्ष सलाह की क्या उपयोगिता हो सकती है ? आपको देखकर मैं अभिभूत हो गया था इसलिए मूल बात को सुनने से कतरा तो रहा था परन्तु साफ साफ आपसे कह नही पा रहा था। अब आप जो उचित समझें, मेरे लिए उसका निर्देश दें।"

जटिल मुनि ने सुना तो उनकी भौंह तन गयी। उनका चेहरा क्रोध से तमतमा उठा। डाटकर बोले, 'दुर्ललित बटु, तू मेरी माताजी पर अविश्वास कर रहा है ? और मुझ पर भी अविश्वास कर रहा है ? तूने क्या यह सोच रखा है कि माताजी से मैं भिन्न हूँ या माताजी मुझसे भिन्न है ? देखेगा मेरी माताजी को ? बैठ जा सामने ! देख मेरी आखो की ओर !" बिना उत्तर की अपेक्षा किये ही जटिल मुनि स्थिर आसन म बैठ गय। क्षणभर म वे समाधिस्थ हो गय। रैक्व ने आश्चर्य से चकित होकर उनकी ओर देखा। क्षण भर मे पद्मासन बद्ध शरीर लौह-शलाकाओ से निर्मित मूर्त्ति की भाति कठिन और ऋजु हो गया। उनकी नासाग्र-बद्ध दृष्टि थोडी ही खुली थी, फिर भी उससे एक अदभुत ज्योति निकल रही थी। ऐसी ज्योति का अनुभव रैक्व ने कभी नही किया था। धीरे-धीरे उनके सारे शरीर से उसी प्रकार की आभा नि सृत होने लगी। वह कुछ नीलिमा लिप्त तेजोमण्डल सी दिखायी दे रही थी, किन्तु धीरे-धीरे वह और भी उज्ज्वल रूप म प्रकट होने लगी। फिर रैक्व ने आश्चर्य के साथ देखा कि वह सारी तेजो रेखा अदभुत अपूर्व सुन्दर नारी-मूर्त्ति के रूप म प्रकट हो गयी। ऐसी दीप्ति भी रैक्व ने कभी नही देखी थी। यह मूर्त्ति पहले कुछ अस्पष्ट ज्योति-रेखाओ से बनी जान पडी, परन्तु धीरे धीरे ठोस होती गयी और रैक्व के आश्चर्य का ठिकाना नही रहा, जब उन्होंने देखा कि जटिल मुनि के स्थान पर वह मूर्त्ति पद्मासन बद्ध होकर विराजमान हो रही है। रैक्व के मन म यह बात आयी कि यह दिव्य मूर्त्ति जटिल मुनि की माताजी है। वे आविष्ट होकर हाथ जोडकर स्तवन करने लगे। उन्हें इस बात म कोई सन्देह नहीं रह गया कि यह कोई मानवी नही बल्कि साक्षात देवी हैं। उन्होंने शास्त्रो मे सविता देवता की मूर्तिमन्त शक्ति सावित्री का नाम सुना था। ऐसा लगा कि वह तेजोमण्डल से उदभूत सावित्री देवी का ही दर्शन कर रहे है। जटिल मुनि के क्रोध से वे थोडा विचलित हुए थे परन्तु जिस देवी का दर्शन वे कर रहे थे उसमे क्रोध नही था, स्नेह और करुणा का भाव था। उन्होंने अपना दाहिना हाथ उठाकर रैक्व को आशीर्वाद दिया। उनके चेहरे पर हल्की हल्की मुस्कान की आभा स्पष्ट दिखायी दे रही थी, लेकिन उनके मुह से कोई शब्द नही निकल रहा था। रैक्व इतने अभिभूत हुए कि वे साष्टाग प्रणिपात की मुद्रा मे पृथ्वी पर जा गिरे और थोडी देर के लिए उन्होंने अपनी आखे बन्द कर ली। फिर उन्होंने अनुभव किया कि कोई उनके सिर पर हाथ फेर रहा है। उठकर देखते है कि सामने जटिल मुनि हँस रहे हैं और कह रहे है—'उठो, आयुष्मान !" रैक्व उठकर तो बैठ गये, लेकिन उनके चेहरे पर विस्मय का भाव तब भी ज्यो-का त्यो विद्यमान था। कुछ देर म प्रकृतिस्थ होकर उन्होंने जटिल मुनि से पूछा कि वे इतने रुष्ट क्यो हो गये और रुष्ट होने के

बाद यह कैसा चमत्कार दिखाया। जटिल मुनि ने हँसते हुए कहा, "कोई चमत्कार नहीं है, आयुष्मान! और न मैं रुष्ट ही हुआ हूँ। तुम्हें रास्ते पर लाने के लिए थोड़ा रोष का नाटक करना आवश्यक था। तुमने तो ठीक ही कहा था कि अन्य स्रोतों से छनकर आया हुआ सत्य बहुत बार अपने शुद्ध रूप में दिखायी नहीं देता, लेकिन तुम्हारी बहुत भारी गलती यह थी कि तुमने कभी अनुभव नहीं किया कि मनुष्य श्रद्धेय के साथ एकमेक हो सकता है। और यही तो तुम्हारे भटकने का कारण है। तुमने कभी अपनी शुभा के साथ अपने को एकमेक करके नहीं देखा। कदाचित तुम देख भी नहीं सकते, क्योंकि तुम्हारा स्वभाव द्वैत में आनन्द पाने का है। अब तुम माताजी की सलाह सुन लो और फिर यदि मन रमे तो उसका पालन करो।"

हाथ जोड़े रैक्व बैठे रहे। बोले, "अवश्य सुनूँगा, भगवन! मुझे इतना तो मालूम हो रहा है कि आप अपनी माताजी से अभिन्न हो गये हैं।"

जटिल मुनि ने कहा, "देखो आयुष्मान, शुभा से तुम्हें प्रेम है। मैंने शुभा को तो नहीं देखा, परन्तु तुम्हारी बातों से मालूम होता है कि शुभा भी तुमसे प्रेम रखती है। मेरी माताजी ने भी बताया था कि किसी तरुणी की ओर आकृष्ट होना 'काम' है। परन्तु उसके लिए अपने आपको निछावर कर देने की भावना 'प्रेम' कही जाती है। माताजी ने कहा था कि तुम कभी काम भावना से किसी तरुणी की ओर आकृष्ट न होना, परन्तु यदि कभी तेरे चित्त में प्रेम का उद्रेक हो तो उसे पाप न समझना। काम आध्यात्मिक विकास का बाधक है, जब कि प्रेम उसका उन्नायक है।"

रैक्व ने पूछा, "कैसे पता चले कि चित्त में जो आकर्षण पैदा हुआ है वह काम है या प्रेम?" जटिल मुनि ठठाकर हँसे—"मैं कैसे बता सकता हूँ, आयुष्मान्? जिसने कभी अनुभव किया हो वह कदाचित बता सके। मैं तो माताजी की बात तुमको सुना रहा हूँ। मेरे जीवन में कोई तरुणी आकर्षित करने के लिए आयी ही नहीं। तुम भाग्यवान हो। तुम अनुभव कर सकते हो कि तुम्हारे मन में काम है या प्रेम। यदि तुम्हारे मन में उस तरुणी के प्रति ऐसी भावना हो कि उसके सुख के लिए तुम अपना सर्वस्व निछावर कर सकते हो, अपने प्राण तक दे सकते हो तो मेरा अनुमान है कि वह तुम्हारी प्रेम भावना है। लेकिन छोड़ो इस प्रसंग को। जो बात मैं जानता नहीं उसे बता भी नहीं सकता। जो बात तुम्हें विशेष रूप से बता देनी है वह यह है कि पुरुष और स्त्री के सम्बन्ध तीन प्रकार के होते हैं—एक तो ऐसा कामजन्य सम्बन्ध, जो धर्म संगत नहीं होता। दूसरा जो धर्म संगत होता है जिसे शास्त्र में विवाह कहा जाता है, लेकिन एक तीसरा भी होता है जिसे माताजी की कृपा से मैंने सुना अवश्य था, देखा कभी नहीं।'

"वह क्या है, भगवन्?"

'देखो, तुमने धर्मसूत्रों में शब्द पढ़े होंगे—एक विवाह है दूसरा उद्वाह। आजकल दोनों शब्दों का एक ही अर्थ समझा जाता है। दोनों के अर्थों में कोई भेद है, इसे कोई जानता ही नहीं। विवाह धर्म सम्मत होता है और शास्त्र के

नियमो के अनुसार मान्य भी। उद्वाह भी ऐसा ही होता है, परन्तु उद्वाह मे पति पत्नी को और पत्नी पति को ऊपर की ओर वहन करती है, अर्थात परस्पर की आध्यात्मिक चेतना को परिष्कृत करती है। माताजी ने बताया था कि अगर ऐसी पत्नी मिले जो आध्यात्मिक उन्नति की ओर ले जाय, तो उससे विवाह नही, उद्वाह कर लेना। मेरा ता हुआ नही, आयुष्मान्! तुम अपना सोच लो।" रैक्व जटिल मुनि की ओर और भी जानने की इच्छा से चुपचाप ताकते रहे। जटिल मुनि ने कहा, "मैं तुम्हे विवाह की सलाह तो नही दूगा, उद्वाह की सलाह अवश्य दूगा। शास्त्रकारो ने विवाह के लिए पाणिग्रहण का विधान किया है, जबकि उद्वाह मे पाणिग्रहण नही, उपोदग्रहण होता है। उपोदग्रहण समझे ?"

"नही, भगवन!"

'देखो, उपोदग्रहण पाणि का नही, मुख का होता है। वह मानसिक होता है। मैं सिर्फ इतना ही जानता हूँ। कैसे होता है, यह नही बता सकता! अब तुम जा सक्ते हो।" इतना कहकर जटिल मुनि ने एकदम मुह फिरा लिया और अपना खुरपा लेकर घास छीलने लगे।

अट्ठारह

आकर भगवती ऋतम्भरा ने जाबाला को अत्यन्त प्रसन्न देखा। उनके मन मे आशका थी कि देर तक अकेली बैठी रहने से ऊब गयी होगी और पहले से ही मुरझाया चेहरा और भी मुरझा गया होगा। पर जाबाला के चेहरे पर प्रसन्नता देखकर उन्हे सन्तोष हुआ। अपने आने मे देर होने का कारण बताते हुए उन्होने प्यार से जाबाला के सिर पर हाथ फेरा और कहा कि 'अब मैं कुछ देर के लिए निश्चिन्त हूँ। अब तुझे जो कुछ कहना हो कह जा। मैं तेरे मुह से सब सुनना चाहती हूँ।' जाबाला को लगा कि माताजी ने औरो के मुह से कुछ सुन रखा है, अब उसके मुह से सुनना चाहती है। पर किसके मुह से क्या सुना होगा! रैक्व से कुछ सुना होगा? वह भोला कुछ छिपा भी तो नही सकता। क्या उसने अभी थोडी देर पहले जाबाला से हुई बात भी माताजी से कह दी? जाबाला के चेहरे पर विषाद का धूम छा गया। उसने कातर भाव से पूछा, "क्या रैक्व आपको मिल गये थे, मा?"

माताजी ने कहा "नही तो। वह आया था क्या? अरे, बिचारा भूखा ही रह गया। आज दूर से आया था। मैंने उसे महर्षि के पास भेज दिया था। फिर

तुम लोगों के अचानक आ जाने से मैं उसकी बात तो भूल ही गयी। आया था क्या? कहाँ गया?" जाबाला को धक्का लगा। भूखे थके रैक्व को उसने अकारण ही वहाँ से चले जाने को कह दिया था। माताजी ने आश्चर्य से जाबाला की ओर देखा। चेहरा लाल था। पूछा, "जाने को कह दिया था? क्या?" जाबाला का मुख मण्डल पाण्डुर होने लगा। बड़े आयास से बोली, "बड़ा अपराध हो गया, माँ! मुझे नहीं मालूम था कि वे थके और भूखे हैं। कहीं दूर नहीं गये होंगे। पता नहीं, उनके यहाँ रहने से मुझे अकारण लज्जा का अनुभव हो रहा था। अब क्या करूँ, माँ? देख लेती हूँ, कहीं पास ही होंगे।" जाबाला की वाणी स्खलित हो रही थी। इतना कहने में उसे काफी आयास हुआ। भगवती ऋतम्भरा ने उसके मनोभावों को ठीक ही समझा। बोलीं "नहीं, तुझे कहीं नहीं जाना होगा। अभी यहाँ कुछ ब्रह्मचारी आयेंगे, उन्हें ही भेजकर उसको ढूँढ लूँगी। तू आश्वस्त होकर बैठ। कोई अपराध नहीं हुआ। तू एकान्त में जो उसके साथ बात करने में लज्जा अनुभव करने लगी वह तो स्वाभाविक ही है। इसमें अपराध की क्या बात है! तूने ठीक ही किया जो उसे कुछ देर बाद आने को कहा।" जाबाला आश्वस्त होने के बदले और भी लजा गयी। थोड़ी देर पहले ही रैक्व बता गये थे कि माताजी ने उनसे कहा था कि तेरे मन में शुभा के प्रति अभिलाष भाव है। माताजी क्या मेरे मन में भी इस समय कोई अभिलाष भाव देख रही हैं? परन्तु वह तुरन्त प्रकृतिस्थ भी हो गयी। यह अभिलाष-भाव बताने के लिए ही क्या वह माताजी के पास नहीं आयी है? अगर माताजी ने बिना बताये ही जान लिया तो यह तो अच्छा ही हुआ। पर इतना अवश्य है कि इससे माताजी पूरी बात नहीं समझ सकेंगी। वह अपनी उलझन बताने आयी है। अभिलाष भाव अपने आपमें तो कोई उलझन नहीं है। वह प्रकृतिस्थ होकर भी निश्चिन्त नहीं हो सकी।

इसी बीच ब्रह्मचारियों का दल मधु, दधि, कन्द, मूल, फल आदि के साथ आ गया। वे माताजी से निर्देश लेने आये थे कि सम्माननीय अतिथि और उनके परिवार के लिए उन्हें क्या करना है। माताजी ने यथोचित निर्देश भी दिया और रैक्व को खोजकर उनके पास भेज देने का भी आदेश दिया। ब्रह्मचारियों के जाने के बाद माताजी ने जाबाला के आतिथ्य का आयोजन किया। परन्तु जाबाला ने अत्यन्त संकोच किन्तु दृढ़ता के साथ उत्तर दिया कि जब तक रैक्व नहीं लौट आते और आकर कुछ आहार नहीं ग्रहण करते तब तक वह कैसे भोजन कर सकती है। माताजी को उसकी यह बात अच्छी लगी। उन्होंने इसका प्रतिवाद भी नहीं किया, और रैक्व से पहले ही कुछ फल मूल लेने का आग्रह भी नहीं किया।

ब्रह्मचारियों ने आकर सूचना दी कि रैक्व अतिथिशाला के पासवाले इमली-वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ बैठे हैं। बुलाने पर बोल नहीं रहे हैं। ऐसा लगता है कि वे समाधि की दशा में हैं। माताजी के पूछने पर उन्होंने यह भी बताया कि ऐसा नहीं लगता कि उन्होंने प्रयत्नपूर्वक समाधि लगायी है, क्योंकि किसी प्रकार के आसन या बन्ध में नहीं हैं। माताजी ने ऊपर से यह नहीं दिखाया कि उन्हें इस समाचार

से कोई चिन्ता हुई है, पर वे थोडी उद्विग्न हुई अवश्य। उनके मुख पर जो उल्लास भाव था, वह एकाएक लुप्त हो गया था। उन्होंने जाबाला से कहा कि 'बेटी, अब उसके आने म देर होगी, इसलिए थोडा सा यज्ञशिष्ट प्रसाद ग्रहण कर ले। फिर निश्चिन्त होकर एक बार उसे देख आऊँ।" किन्तु जावाला ने दढता के साथ कहा, "नही मा!" फिर आखें नीची किये ही कहा, "मा म भी आपके साथ रैक्व के पास जाऊँगी, क्योंकि मुझे भय है कि मैं जब तक नही कहूँगी, वे इधर आयेंगे नही।" माताजी ने आश्चय के साथ जावाला की ओर देखा। उनके मुख पर हँसी की एक हल्की रेखा आयी और तुरन्त चली गयी। जावाला ने न उसे देखा और न समझा। माताजी ने कहा, तू भी चल।"

रैक्व ध्यानावस्थित थे। आज उन्हे नया उल्लास और नयी ज्योति मिली थी। अब तक जो पढा था और जो सुना था, वह चेतना के उपरले स्तर को छूकर तिरोहित हो गया था। आज सबमें नया अर्थ दिखायी देने लगा था।

जटिल मुनि से उन्हे नया प्रकाश मिला था। वे अत्यन्त उल्लसित थे। अभी तक उन्हे किसी ने नही बताया था कि उनके भीतर शुभा के प्रति जो अभिलाष भाव है, वह क्या है। आज वे सोचने लगे कि शुभा के सुख के लिए अपने आपको दलित द्राक्षा की भाति निचोडकर दे सकते है या नही? अपने आपको पूर्ण रूप से उलीचकर दे सकते है या नही? क्या उनमे अपने को सुखी करने का भाव है या शुभा को प्रसन्न करने का भाव है। उन्हे स्पष्ट दिखायी दिया कि प्रथम दर्शन मे ही उनका मन शुभा के लिए स्वय को हर प्रकार के कष्ट मे डालने को प्रस्तुत था। कुछ पाना उनका उद्देश्य नही था। पर यह शुभा है कि उसने उन्हे सेवा करने का अवसर ही नही दिया। पीठ की सुप्त वेदना आज बुरी तरह सुलग उठी है, सेवा करने का अवसर मिल गया होता तो शायद यह उठती ही नही। नही, उनके मन मे जो है वह प्रेम ही है। वे किसी समय, कही भी शुभा के लिए प्राण तक दे सकते हैं। मगर शुभा अधिक समझदार है। उस बार भी वह जानती थी कि मैं पाप भावना से चालित हूँ। आज भी उसने मुझे उस मार्ग से ही विरत किया होगा। मैं ही कम समझदार हूँ। इस बार मैं हटना नही चाहता था पर हट गया। क्या? क्योंकि शुभा को इसी मे प्रसन्नता थी। मेरे मन मे प्रेम ही होना चाहिए। मैं अपने-आपको शुभा के किसी इगित पर निछावर कर सकता हूँ।

विवाह और उद्वाह! पाणिग्रहण और उपोदग्रहण! यह तो विचित्र बात है! मुझे क्या शुभा का उपोदग्रहण करना चाहिए? क्या होता है उपोदग्रहण? जटिल मुनि जानते ही नही। जानते तो बता देते। शुभा यही है, बता तो सकती है। पर कैसे जाऊँ? प्रबल निषेध की बाधा है। जो हो शुभा चाहती है कि फिर से ध्यान और समाधि की ओर लौट चलू। कुछ ऐसा अद्भुत विरोध है मेरे भीतर कि समाधि सिद्ध ही नही होती। जटिल मुनि कहते है भीतर देखो, बाहर नही। शुभा का ही ध्यान करो। वही तुम्हारा सत्य है। निश्चय ही शुभा मेरा सत्य है।

आज उन्होंने दो महान गुरुओं के उपदेश सुने है। क्या दोनो म कोई विरोध

है ? सोचते सोचते वे अतिथिशाला के पास वाले विशाल वृक्ष के नीचे बैठ गये और अपने में ही खो गये। शुभा की मानसी मूर्ति सामने खड़ी हो गयी—अत्यन्त प्रसन्न मुद्रा में। उन्हें लगा कि वह मूर्ति कुछ कह रही है— ऋषिकुमार, तुमने आज जो पाया है वह कम लोगों के भाग्य में होता है। सम्हालकर रखो। खोना मत।' वे सोचते सोचते समाधिस्थ हो गये। उन्होंने सुना था, कभी-कभी महान गुरु अंगुष्ठ मात्र से शिष्य के ललाट का स्पर्श करके उसके सारे आवरणों और मलों को भस्म कर देते हैं। आज उनका ललाट किसी ने अंगुष्ठ से या किसी भी अन्य अंगुलि से नहीं छुआ। पर मल और आवरण नष्ट होते जान पड़ते हैं। सारे इन्द्रियार्थ तन्मात्र रूप में गलते जा रहे हैं। इन्द्रिय प्राणों में, प्राण मन में, मन बुद्धि में और बुद्धि आत्मानन्द में अनायास प्रवेश करने को व्याकुल हैं। उन्हें आज पहली बार यह सत्य प्रत्यक्ष हुआ है कि जो पिण्ड में है, वही ब्रह्माण्ड में है। उनका चैतन्य प्रसारित हो रहा है। जड़ जगत के ऊपर प्राण लोक, उसके भी ऊपर मनोलोक, उसके भी ऊपर विज्ञानलोक, और उसके भी ऊपर आनन्दलोक, उन्हें प्रत्यक्ष दिखायी दे रहा है। जड़ आवरण क्रमशः क्षीण से क्षीणतर होते जा रहे हैं। ऊपर आनन्दलोक केवल प्रकाशलोक है। दिन रात रटायी जानेवाली उन ऋचाओं का अर्थ स्पष्ट होता जा रहा है जिनमें कहा गया है, 'मुझे असत से सत की ओर ले चलो, अन्धकार से प्रकाश की ओर ले चलो, मृत्यु से अमृत की ओर ले चलो।' पढ़ा बहुत था, आज उसका अर्थ प्रत्यक्ष हो रहा है। रैक्व आनन्द से भीग रहे हैं।

यह विचित्र बात है कि जटिल मुनि से जो कुछ सुना, उससे उनमें आत्मविश्वास अवश्य संचारित हुआ, पर अभी जो प्रत्यक्ष अनुभव हो रहा है वह महर्षि औपस्तिपाद का उपदेश। समझ नहीं पा रहे हैं कि कुंजी कहाँ और कैसे खुली है। शुभा को देखकर जो उपदेश लुप्त हो रहे थे, जटिल मुनि के मिलन के बाद वे ही प्रत्यक्ष हो रहे हैं। क्या कारण हो सकता है !

माताजी ने उनके सिर पर हाथ रखा। उस शीतल स्पर्श से उनकी चेतना बहिर्मुखी हुई। आँखें खुलीं। सामने माताजी को देखा। उल्लसित भाव से बोले, 'माँ, आज अपूर्व अनुभव हुआ। पिताजी से जो सुना था उसे प्रत्यक्ष देख रहा हूँ। बिल्कुल साफ देख रहा हूँ माँ।" माताजी ने स्नेहपूर्वक उनके ललाट और आँखों पर हाथ रखा। बोलीं, 'यह आरम्भ है बेटा, इसे चरम न समझ ले। अब उठ, दिन भर कुछ खाया नहीं। चल मेरे साथ।"

रैक्व ने माँ की ओर कातरता के साथ देखा। बोले, 'तुम अपनी कुटिया में जाओ माँ, मैं थोड़ी देर बाद आऊँगा।" माताजी मन ही-मन रैक्व के मनोभावों को समझकर प्रसन्न हुईं। बोलीं, 'क्या, अभी चलने में क्या बाधा है ?"

रैक्व ने कहा, "माँ, वहाँ तुम्हारी कुटिया में कोई तुम्हारी प्रतीक्षा में बैठा है। पहले तुम चलो बाद में मैं आऊँगा।" माताजी ने रैक्व की परेशानी का आनन्द लेते हुए कहा "कोई बैठा होगा, उससे तेरे चलने में क्या कठिनाई है ?" रैक्व की समझ में नहीं आया कि क्या उत्तर दें। पर शुभा ने तो कुछ कहने का

बरज दिया है। शुभा बिना सोचे कुछ कहती नहीं। विषम संकट है। कुछ हकलाते हुए से बोले, "तुम चलो न मां उससे पूछना भी तो होगा।" माताजी ने इसका आनन्द लेते हुए पूछा, "किससे पूछना होगा?" रैक्व बुरी तरह धर्म संकट में पड़ गये।

जाबाला पीछे खड़ी सुन रही थी। उसे लज्जा और सुख दोनों का अनुभव हो रहा था। रैक्व के इस असमंजस को दूर करने के लिए ही उसने कहा, "मैं तो यहीं हूँ, ऋषिकुमार! माताजी के साथ ही आयी हूँ। माताजी की आज्ञा का तुम्हें पालन करना चाहिए।"

रैक्व ने घूमकर शुभा की ओर देखा! एकदम उठकर खड़े हो गये। बोले, "मां, यही शुभा है। इन्होंने ही तो कहा था कि जब तक माताजी न आ जायें तब तक तुम बाहर रहो। मां तुम इन्हें पहचानती हो न? महाभागा शुभा है। तभी तो आज ध्यान सार्थक हुआ है। मां शुभा परम ज्ञानी है।"

इसी समय जाबाला ने आंखों से ही रैक्व को रोका—यह क्या बकने लगे! रैक्व सकपका गये। माताजी ने मन्द मुस्कान के साथ कहा, "अब तो चल बेटा, तूने अभी तक कुछ अन्न जल नहीं ग्रहण किया, तो तेरी गुरु यह शुभा भी भूखी प्यासी ही रह गयी। उठ, अब तो कोई हानि नहीं है।"

चलते समय माताजी ने देखा कि अतिथिशाला के द्वार पर खड़े राजा जानश्रुति चुपचाप यह दृश्य देख रहे थे।

उन्नीस

रैक्व गाड़ी पा गये थे। वे दिन भर सेवा कार्य में लगे रहते। परम वैश्वानर की सच्ची उपासना कहकर माताजी ने उन्हें इसी ओर प्रवृत्त किया था। उन्होंने आयुर्वेद का ज्ञान भी प्राप्त कर लिया था। दूर दूर से आये रोगियों की सेवा करते, जो नहीं आ पाते उनके घर जाकर यथासम्भव चिकित्सा करते। सायंकाल लौटते, कभी कभी तो आधी रात तक बाहर रहते। ऋतुम्भरा उनकी सहायिका थी। औषध तैयार करने से लेकर रोगियों की देख-भाल का काम भी उसी की अपूर्व सेवावृत्ति के कारण सुचारु रूप से चल रहा था। रैक्व सायंकाल थककर चूर होने पर भी गाड़ी तक आना नहीं भूलते थे। रात को उनका जप-तप ध्यान धारणा का काम चलता। पीठ की खुजली दिन-भर गायब रहती, पर गाड़ी के स्पर्श में ही जाग उठती। प्रथम ध्यान उनका शुभा पर ही केन्द्रित होता। धीरे-धीरे वे उसका

सहारा पकडकर चेतना के विभिन्न स्तरो को पार करने म सफल होते। जो बात उन्ह मालूम नही थी, वह थी ऋजुका को उत्साहित करते रहनेवाला प्रच्छन्न हाथ। जावाला ने प्राण ढालकर प्रच्छन्न-भाव से इस सारी तपस्या को गतिशील बना रखा था। केवल ऋजुका ही यह रहस्य जानती थी। रैक्व तो इतना जानते थे कि वह नित्य शुभा से मिलने जाती है, पर उससे शुभा के बारे म कभी कुछ पूछते नही थे। शुभा की ऐसी ही आज्ञा थी। वे अत्यन्त आवश्यक होने पर ही कुछ बोलते थे अधिकतर मौन ही रहते थे। वे वाक संयम का रहस्य जान चुके थे। उन्हे दुख तप्त प्राणियो की सेवा म रस मिलने लगा था।

एक दिन प्रात काल ही कई लोग बहुत-सी सामग्री लेकर उनके पास पहुचे। अन्न वस्त्र, गायें और गधे, खच्चर तक उनके पास थे। इंगित से उन्होने पूछा, वे किसलिए यहा आये है? उन लोगो ने बताया कि ये वस्तुएँ उनके लिए ही हैं। रैक्व एकदम भडक उठे। उन्होने डाँटकर उन्हे भगा दिया और अपने सेवा-कार्य के लिए समय से कुछ पहले ही निकल पडे।

निकल तो गये पर दिन भर उन्हे अपने चित्त विक्षोभ से ग्लानि होती रही। उस दिन बहुत क्लान्त होते गये। इतनी थकान उन्हे कभी नही अनुभूत हुई। कही कोई दोष रह गया है उनमे। प्रायश्चित्त करना चाहिए। उन्होने दृढ निश्चय किया कि वे अब मौन ही रहेगे। क्रोध कभी नही करेंगे। अगर फिर चित्त विक्षोभ हुआ तो शुभा की शरण जायेंगे। उसी से पूछेंगे कि कैसे इस दुर्बलता से मुक्ति मिल सकती है। उस दिन वे देर से लौटे। चेहरा एकदम सूख गया था। ऋजुका ने उनका सूखा उदास मुह देखा तो रो पडी— 'हाय भैया, आज तुम्हारा चेहरा कैसा उतरा हुआ है! हाय, रानी दीदी को क्या उत्तर दूगी? हाय, क्या हो गया है तुम्हे?"

रानी दीदी? रैक्व एकदम सकपका गये। रानी दीदी अर्थात शुभा। तो क्या दीदी को शुभा के पास उनके लिए उत्तर देना पडता है? क्यो उत्तर देना पडता है? वे खोयी खोयी दृष्टि से ऋजुका को देखने लगे। इसमे क्या उत्तर देने की बात है?

ऋजुका ने उत्तर की प्रतीक्षा नही की। कुटिया से गरम पानी ले आयी— "आओ, तुम्हारे पैर धो दू। बहुत थके हो।"

'नही दीदी, मैं ठीक हूँ। तुझे क्या मेरे बारे म शुभा देवी को नित्य बताना पडता है? क्यो?"

"लो, बताना नही पडेगा! तुम तो भोले के भोले ही रह गये। आज बिचारी अभी तक भूखी-प्यासी है, तुमको तो चिन्ता ही नही है। बिना खाये पिये चल गये! उस बिचारी का तो बुरा हाल है!'

'बुरा हाल है? दीदी, तूने पहले क्या नही बताया? देख दीदी, अब मैं मौन ही रहूँगा। प्रात काल ही मन खराब हो गया। गुस्सा हो आया।'

"बुरा हुआ, भैया! रानी दीदी के पिताजी आनेवाले थे। उन्होने ही तो उन

लोगों को उस सामग्री के साथ भेजा था। रानी दीदी ने भी वैसा करने की स्वीकृति दे दी थी, पर तुम तो बस, कुछ समझते ही नहीं।

"समझता नहीं? क्या समझना था इसमें। तेरी रानी दीदी क्या चाहती हैं कि मैं भिक्षा ग्रहण करूँ? माताजी सुनेंगी तो क्या कहेंगी? उनका बेटा सेवा के लिए प्रतिग्रह स्वीकार करेगा तो उन्हें क्या अच्छा लगेगा?

ऋतुंभरा दीदी हँसने लगी। बोली, "माताजी ने तो पहले ही अनुमति दे दी है। माताजी की अनुमति पाये बिना रानी दीदी कभी अनुमति दे सकती है? इसमें प्रतिग्रह की बात कहाँ उठती है?"

रैक्व हैरान।

दीदी ने हँसते हुए कहा, "ऐसे क्या ताकते हो भैया? माताजी भी आनेवाली हैं। कल ही तो राजा आश्रम से लौटे हैं। सुना है, आज वे यहाँ आयेंगे। कोई ज्ञान यज्ञ जैसा कुछ होनेवाला है। वे लोग तुमसे ज्ञान चर्चा करेंगे। सुना है महर्षि ने ही कुछ इस प्रकार के यज्ञ की व्यवस्था दी है।

'ज्ञान चर्चा? पर दीदी, कल से तो मैं मौन धारण करने जा रहा हूँ।

"सो सब मैं नहीं जानती। रानी दीदी से पूछे बिना तुम कैसे मौन धारण करोगे?"

"रानी दीदी की आज्ञा से ही सब कर रहा हूँ।

'सो तुम समझ लेना। अभी राजा आवें तो क्रोध न करना। तुम्हारी दीदी इतना ही कह सकती है।"

ऋतुंभरा के चेहरे पर हल्की हँसी थी। रैक्व कुछ भी नहीं समझ सके। ऋतुंभरा ने उनके पैर धो देने के लिए हाथ बढ़ाया। रैक्व ने उसके हाथ से पानी ले लिया। बोले, 'दीदी, मैं धो लेता हूँ। क्रोध नहीं करूँगा। मगर अब तू मुझे मौन हो जाने दे।'

ऋतुंभरा चली गयी।

रैक्व नित्य-कृत्य से निवृत्त हो यथा नियम गाड़ी के नीचे बैठ गये। वे चिन्तित थे। ज्ञान यज्ञ क्या होता है? पहले तो किसी ने बताया नहीं। माताजी आयेंगी तो पूछेंगे। पर उन्होंने यह सब सामग्री लेने की अनुमति क्या दी? दीदी कैसे जानती है कि अनुमति मिल गयी है। माताजी ने तो स्पष्ट निर्देश दिया था—प्रतिग्रह बुरी चीज़ है। कभी प्रतिग्रह स्वीकार न करना। फिर बीच में यह परिवर्तन कैसे हो गया? उनसे पूछना तो पड़ेगा ही। कब आयेंगी। दीदी कह रही है आज ही वाली हैं। जल्दी आ जाती तो अच्छा होता। उसके पहले ही ये लोग आ जायेंगे क्या करना होगा? मन में शान्ति तो रहनी ही चाहिए। दीदी ठीक कह रही है, क्रोध नहीं करना है।

दीदी कहती है कि शुभा ने भी स्वीकार कर लिया है कि मुझे यह सब सामग्री दे दी जाये और मैं ग्रहण कर लूँ। विश्वास नहीं होता कि शुभा ने यह बात मान ली होगी। मगर दीदी मुझसे कभी झूठ बात तो कहती नहीं। कहती है तो सच ही

होगा, लेकिन वह कहकर हँस देती है। हँसने की क्या बात है? शुभा ने कहा था कि मुझे कम बोलना चाहिए। कल मैं कुछ अधिक बोल गया क्या? नहीं, मैंने ऐसा कुछ नहीं कहा। अब तो मौन रहने से ही कुछ प्रायश्चित्त हो सकेगा। पर दीदी कहती है, पहले उसकी रानी दीदी से पूछ लेना चाहिए! इसमें ऐसी पूछने की क्या बात है भला? मौन में कोई हानि तो नहीं है। लाभ भी क्या है? असली बात है मन को वश में करना। शुभा तो मौन नहीं रहती, पर उसने मन को वश में कर लिया होगा। तभी इतना मधुर बोलती है। शुभा का सब-कुछ मधुर है। शुभा से मिलना चाहिए। वही ठीक ठीक बता सकती है। रैक्व कुछ विचलित हुए। कई दिना से पीठ की खुजली कम हो रही थी, आज कुछ बढ़ गयी है।

रैक्व ने दृढ़ता के साथ अपने आप पर नियन्त्रण रखने का प्रयत्न किया। वे परम वैश्वानर का ध्यान करने लगे। परम वैश्वानर जो विश्वरूप हैं, जो 'रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव' है। रूप मात्र उन्हीं का रूप है। रूप में सर्वश्रेष्ठ रूप है शुभा का। शुभा ही परम वैश्वानर की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति है। माताजी ने कहा था, बेटा, मनुष्य की शक्ति ही कितनी है? वह दो ही खेल खेलता है—प्रिय को देवता बना लेता है या फिर देवता को प्रिय बना लेता है।' ये ही खेल चल रहे हैं रैक्व के मनोमन्दिर में। एक बार शुभा परम वैश्वानर बन रही है, दूसरे क्षण में परम वैश्वानर शुभा बन रहे हैं।

इस खेल का अन्त नहीं है। रात भर उनके मन में यही खेल बारी बारी से खेला जाने लगा। शुभा अर्थात् परम वैश्वानर—परम वैश्वानर अर्थात शुभा! 'अल्प भूमा बन रहा है—'भूमा' अल्प बन रहा है!

यह विचित्र समाधि थी। यही सकोच और प्रसारण की लीला है, यही प्राण और अपान का द्वन्द्व है, यही केन्द्रानुगा और केन्द्रापगा शक्ति का द्वन्द्व है!

रात बीत गयी। रैक्व विचित्र समाधि के आनन्द से भीगते रहे। ऋजुका बार-बार आकर देख जाती थी कि वे नित्य कृत्य के लिए तैयार है या नहीं। राजा जानश्रुति अपने दलबल के साथ उपस्थित हो गये हैं। उपहार अलग रखे गये हैं, कुछ दूरी पर। कहीं उन्हें देखकर वे फिर न बिगड़ न उठें। रैक्व अचल समाधि में हैं। राजा हाथ जोड़कर बैठे है, आचार्य औदुम्बरायण भी उत्सुक मुद्रा में प्रतीक्षा कर रहे हैं मन्त्री लोग भी शान्त विनीत भाव में बैठे हैं। ऋजुका दीदी सावधान मुद्रा में अपने भैया के निकट खड़ी हैं। कहीं आज भी वह बिदक न जाये! समाधि टूट नहीं रही है। सब कुछ शान्त है। ज्ञान यज्ञ का यह अद्भुत आयोजन है। कोई ऋत्विक नहीं है, कोई यजमान नहीं है कोई होता नहीं है कोई आहुति नहीं है, अग्नि, कुशा आदि कुछ भी नहीं है। पर यज्ञ होनेवाला है! सब शान्त, सब प्रह्लादमय!

इस ज्ञान यज्ञ का सबसे महत्त्वपूर्ण पात्र थी जाबाला। वह आयी नहीं थी, ले आयी गयी थी। वृद्धा सकुला उसे प्राय गोद में ही उठाकर ले आयी थी। उसके आते ही सारे वातावरण में शामक आभा व्याप्त हो गयी। रैक्व के अन्तरतर तक को वह आभा निश्चय ही छेद गयी होगी। तभी उनके अन्तर में हलचल हुई।

उनकी आंखें खुली। हाथ अनायास पीठ पर चल गये। ऋजुका ने बिना किसी भूमिका के तुरन्त कहा, "महाराज आये हैं भया, रानी दीदी के पूज्य पिता!" रैक्व ने उनकी ओर देखा, दृष्टि बगल में बैठे आचार्य औदुम्बरायण पर पड़ी। एकदम अभ्युत्थान की मुद्रा में आ गये। खड़े होकर आचार्य और साथ ही राजा जानश्रुति को प्रणिपात किया। बोले कुछ नहीं। शान्तभाव से अपने आसन पर बैठ गये। केवल उत्सुकता भरी दृष्टि के इंगित से ही पूछा, क्या सेवा करूं?

आचार्य औदुम्बरायण ने कहा 'ब्रह्मचारिन्! हमारे परम जिज्ञासु महाराज ने आज आपके महार्ह प्रवचन के श्रवणार्थ इस ज्ञान यज्ञ का आयोजन किया है। इस यज्ञ के प्रधान ऋत्विक् आप ही हैं'

आचार्य कुछ और कहने जा रहे थे, पर बीच में ही रैक्व ने हाथ जोड़कर इंगित किया कि वे आज मौन हैं।

राजा जानश्रुति बिल्कुल विचलित नहीं हुए। बोले 'हम तो आपसे परम ज्ञान का प्रवचन अवश्य सुनेंगे। यदि आप मौन हैं तो यह यज्ञ तब तक चलता रहेगा जब तक आपका मौन भंग नहीं होता।'

थोड़ा रुककर उन्होंने कहा, "ब्रह्मचारिन्, हम तत्रभवती भगवती ऋतम्भरा की आज्ञा से इस ज्ञान यज्ञ का आयोजन कर रहे हैं। पुराकाल से यज्ञ के अन्त में दैवविवाह के रूप में कन्यादान का विधान है। यह मेरी कन्या जाबाला है, मैं इसे आप जैसे ज्ञानी को देने का संकल्प लेकर आया हूँ। तत्रभवती भगवती ऋतम्भरा भी आनेवाली हैं। अब आपकी जैसी आज्ञा हो! संकल्प किया जा चुका है।"

रैक्व अवाक्!

आचार्य औदुम्बरायण ने और स्पष्ट किया— ब्रह्मचारिन्, यज्ञ में कन्यादान शास्त्र सम्मत है। पुराण ऋषियों ने इसे उत्तम विवाह बताया है। इसीलिए यह ज्ञान यज्ञ आयोजित हुआ है।"

फिर राजा ने जाबाला को खींचकर अपने पास बैठाया। रैक्व फिर एक बार उठकर खड़े हो गये, 'अहा! महाभागा शुभा!' वे कुछ और कहें उसके पहले ही जाबाला की आंखों से उनकी आँखें मिलीं। उस दृष्टि में कातर अभ्यर्थना थी, तुम कुछ कम नहीं बोल सकते!' रैक्व लज्जित होकर चुप रह गये। महाराज जानश्रुति आह्लादित हुए। उन्होंने रैक्व को आसन ग्रहण करने और ज्ञान-यज्ञ को सफल बनाने का अनुरोध किया। रैक्व की कातर दृष्टि शुभा के चेहरे पर टिकी रही। बिना शब्द के ही वह दृष्टि कह रही थी—'क्षमा करना देवि, फिर गलती हो गयी!'

जाबाला की दृष्टि ने आश्वस्त-सा करते हुए कहा, 'बोलो!'

धीरे धीरे रैक्व की दृष्टि जाबाला के मुख पर से हटी। वे बहुत शान्त मृदु कण्ठ से बोले, 'राजन् आचार्य, आप लोग विद्वान् हैं मनीषी हैं मैंने मौन रहने का निश्चय किया था, पर आप लोग नहीं जानते कि मेरे मन में आपकी परम मधाविनी कन्या के प्रति कैसा आदर के भाव हैं। मैं इन्हें ही महाभागा शुभा कहता हूँ। इन्होंने

ही मुझे ज्ञान का मार्ग दिखाया है। मैं इस शोभन मुख की उपेक्षा नहीं कर सकता। मैं तो इसके उपोद्ग्रहण मात्र से कृतार्थ हूँ। ज्ञान का लवमात्र भी मैं नहीं जानता। जानता हूँ केवल इस मुख की अपूर्व उदग्राहिका शक्ति। इस मोहन मुख की सभी आज्ञा मेरे लिए श्रुति वाक्य के समान हैं। मैं संवा व्रती हूँ, इनका मार्ग दर्शन पाऊं तो असाध्य साधन कर सकूंगा। मैं आप लोगों से प्रार्थना करता हूँ कि मुझे अवसर दें ताकि इस मोहन मनोरम मुख का उपोद्ग्रहण कर सकूं।"

इसी समय सारी सभा 'जय जय' कर उठी। रैक्व ने देखा, माताजी आ गयी हैं। वे उठे और माताजी के चरणों पर साष्टांग प्रणत हो गये। माताजी ने उठाकर छाती से लगा लिया। उनका इंगित समझकर जाबाला भी चरणों में उसी प्रकार आ गिरी। माताजी ने दोनों को प्यार से उठाया और आचार्य की ओर देखकर कहा 'आचार्य, अब विवाह की सब विधियाँ पूरी कर ली जायें।" रैक्व ने चकित दृष्टि से माताजी की ओर देखा। जाबाला की आँखें धरती में गड़ी रहीं। सभा ने फिर एक बार जय निनाद किया।

रैक्व ने कातर भाव से माताजी की ओर देखा। अत्यंत भोलेपन से कहा, "विवाह नहीं माँ, उद्वाह!" माताजी ने प्रश्नभरी दृष्टि से पुत्र की ओर देखा। बोलीं, "एक ही बात है बेटा! पर तू क्या दोनों में अन्तर मानता है?" सकुचित रैक्व ने उत्तर दिया—"हाँ, माँ!"

बीस

उपसंहार

औपस्ति आश्रम के उपाध्याय कुटिल तर्कराक्षस को रैक्व पर कभी आस्था नहीं थी। वे तो उनके ब्राह्मण वंश में जन्म लेने को भी सन्देहास्पद समझते थे। रैक्व जब जटिल मुनि के पास गये तो उन्हें बिल्कुल अच्छा नहीं लगा था। वे नहीं चाहते थे कि आश्रम में शास्त्र विरुद्ध चर्चा हुआ करे। उन्होंने जब सुना कि राजा जानश्रुति की कन्या जाबाला का उद्वाह रैक्व के साथ हो गया तो इसे भी उन्होंने धर्म विरुद्ध कार्य ही समझा। अनेक लोगों से सुनी सुनायी बातों को इकट्ठा करके उन्होंने रैक्व की एक कहानी लिखी जो बाद में छान्दोग्य उपनिषद के चौथे प्रपाठक में ले ली गयी। उसका अनुवाद नीचे दिया जा रहा है

प्राचीन काल में जानश्रुति पौत्रायण नामक एक राजा था। वह श्रद्धा से दान

देता था, थाडा नही बहुत दान देता था। उसके यहा खूब अन्न पकता था। उसने जगह-जगह धमशालाएँ बनवा दी थी ताकि भिन्न भिन्न स्थानो से आकर अतिथि लोग उसके यहाँ भोजन किया करें।

एक बार रात्रि को कुछ हस उतरे। उनम स एक हस न दूसर हस मे कहा 'ह भल्लाक्ष ! जानश्रुति पौत्रायण राजा का यश द्युलोक के समान फैल रहा है। उसस टक्कर न ले बैठना, कही वह तुझे अपन तेज स भस्म न कर डाले। उस दूसर हस न उत्तर दिया, "अरे, तुमने इस साधारण से राजा को एसा कैस कहा जस मानो वह गाडीवाला रैक्व ऋषि हो ?" पहले हस ने पूछा, 'यह गाडीवान रक्व ऋषि कसा है ?" दूसरे न उत्तर दिया, जसे जुए मे सबसे मुख्य पासा 'कृत' कहाता है, नीचे के पासे 'अय' कहलाते ह, और कृत' के आ पडने पर उसस निचले सब 'अय' उसी म आ जात है, इसी प्रकार यह ऋषि 'कृत' के समान है। लोग जो कुछ भलाई करते हे उसका फल रक्व को मिल जाता हे। जो व्यक्ति उस रहस्य को जानता है, जिस रैक्व जानता है, वही कुछ जानता ह एसा मैने अन्या से भी कहा है।" हसो का यह सवाद जानश्रुति पौत्रायण न सुन लिया। उसने प्रात काल उठते ही अपने सारथि स कहा, 'प्यारे ! तू क्या मेरी प्रशसा गाडीवान रक्व ऋषि की प्रशसा की तरह करता हे ?" सारथि न पूछा, 'वह गाडीवान रक्व ऋषि कैसा है ?" राजा न उत्तर दिया, 'रात को मैने दो हसो को यह कहते सुना 'जस जुए मे कृत' पासे के आ पडने पर उसस निचले सब 'अय' उसी मे आ जाते हे, इसी प्रकार यह ऋषि कृत' के समान है लोग जो कुछ भलाई करते ह उसका फल रैक्व को मिल जाता ह। जो व्यक्ति उस रहस्य को जानता है जिस रक्व जानता है, वही कुछ जानता है, ऐसा मैंन अन्या से भी कहा हे।' इसलिए, ह सारथि ! यह पता लगाओ कि रक्व ऋषि कौन है !"

सारथि न खोज की, और लौटकर राजा से बोला, "कुछ पता नही चला।" राजा ने कहा, "अरे ! उस ऋषि का वहा अन्वेषण करो जहा ब्रह्म ज्ञानियो को ढूढा जाना चाहिए, महलो म नही, झोपडिया मे उसकी खोज करो।' सारथि फिर निकला। एक गाडी की छाया के नीचे दाद को खुजलाते हुए एक व्यक्ति को देखकर वह उसके निकट बैठ गया। उससे पूछा, "भगवन ! क्या आप ही गाडीवान रक्व ऋषि है ?" उसने उत्तर दिया, अरे हा ! मे ही रक्व हूँ।" सारथि न लौटकर राजा से कहा, मैंने रैक्व का पता लगा लिया।"

जानश्रुति पौत्रायण छह सौ गायें, एक रत्नमाला और खच्चरो का एक रथ लेकर चल पडे और ऋषि के पास पहुँच, ह रक्व ! य छह सौ गायें ह यह रत्नमाला है, यह खच्चरो का रथ है। हे भगवन ! जिस देवता की आप उपासना करते है उसका मुझे उपदेश दीजिए।"

ऋषि बोले, "अरे शूद्र ! यह हार और य गाये तू अपने पास रख।" जानश्रुति पौत्रायण फिर एक सहस्र गाये, रत्नमाला खच्चरो का रथ और अपनी कन्या को लेकर ऋषि के पास पहुँचे। बोले, 'ह रैक्व ! य सहस्र गायें हैं, यह रत्ना की

माला ह, यह राच्चरा वा रथ है, यह मरी कन्या ह जिस म आपरा देन को तयार हूँ, यह ग्राम जिसम आप विराजत हैं, यह भी आपको भेंट है। ह भगवन ! मुझे आप उपदश दीजिए।"

ऋषि न कन्या के मुख का उपोद्‌ग्रहण करत हुए कहा, 'ऐ शूद्र ! तुम य सारे लाय हो, पर तु मैं कुछ न बोलता, इस कन्या क मुख की लाज रखन क लिए मुझे बोलन का बाधित होना पडेगा।" जहाँ रैक्व ऋषि न निवास किया, उस स्थान का नाम रक्वपण प्रसिद्ध हुआ। यह स्थान महावृष नामक उपवना म से एक था। राजा का ऋषि न निम्नलिखित उपदेश दिया—

'ह राजन ! 'अधिदैवत' अथात् 'ब्रह्माण्ड' की दृष्टि स वायु ही सवग' है, सबको अपन भीतर समा लेनवाली ह। जब आग बुझती है तो वायु म ही लौट जाती है, जब सूय अस्त होता है तो वायु म ही लौट जाता है, जब चन्द्र अस्त होता है तो वह भी वायु म ही लौट जाता है। जब पानी सूखत हैं तो वायु म ही लौट जात है वायु ही इन सबका सवरण करता है, इन सबको ढाप लता है। यह अधि दवत, अथात ब्रह्माण्ड की दृष्टि से वणन हुआ।

अब 'अध्यात्म' अथात् 'पिण्ड' की दृष्टि से सुनो। पिण्ड, अर्थात शरीर की दृष्टि से प्राण ही 'सवग' है, वह सब इन्द्रिया को अपन भीतर समा लेनेवाला है, जब मनुष्य सोता है तो वाणी प्राण को ही लौट जाती है, प्राण को ही चक्षु, प्राण को ही श्रोत्र, प्राण को ही मन लौट जाता है, प्राण ही इन सबका सवरण करता है, इन सबको ढापता है। इसलिए 'सवग' अर्थात् लय स्थान दो ही है—ब्रह्माण्ड के देवा मे 'वायु' तथा पिण्ड की इन्द्रिया म प्राण'।

"राजन ! एक बार की बात है कि शौनक कापय तथा अभिप्रतारित काक्ष सनि को जब भोजन परोसा जा रहा था, तब उनस एक ब्रह्मचारी ने आकर भिक्षा माँगी। उसे उन्होंने भिक्षा न दी।

'ब्रह्मचारी न कहा, 'अग्नि, सूय, चन्द्र और जल—य चार, एव वाणी, चक्षु, श्रोत्र तथा मन—य चार मानो महात्मा है, इन चारा के मुकाबले म एक देव है—अधिदवत (ब्रह्माण्ड की) दृष्टि से वायु तथा अध्यात्म (पिण्ड की) दृष्टि से 'प्राण'। वह कसा है ? वह ऐसा है जो अकेला होता हुआ इन चारा को खा जाता है, परन्तु फिर भी हे कापेय ! हे अभिप्रतारित ! वह भुवना की रक्षा करता है, अनेक रूपो मे वह बस रहा है, मैं उस प्राण के लिए ही तो भिक्षा मागता था, परन्तु जिसके लिए अन्न है उसी को तुमन नही दिया, तुमन मुझे नहीं, प्राण-ब्रह्म को अन्न देने से इन्कार कर दिया।'

'शौनक कापेय ने ब्रह्मचारी के कथन पर मनन किया और उसस कहा, 'निस्सन्देह ब्रह्माण्ड मे 'वायु उन चारा देवा का तथा पिण्ड मे 'प्राण' चारो इन्द्रियो का आत्मा है, य चारा 'वायु' तथा 'प्राण' की क्रमश प्रजाएँ हैं। 'वायु' तथा प्राण' इन चारा को खा भी जाते ह और जाग्रत म इन्ह प्रकट भी कर देते है। वायु' तथा 'प्राण' सोन के दातवाले है, खा जाते है,—सब-कुछ अपन भीतर समा लेत हैं,

मानो जीवित हो। इनकी महिमा महान है, क्योंकि स्वय न खाये जाते हुए ही जो खाया नही जा सकता, उसे भी खा जाते है। हे ब्रह्मचारिन ! हम भी ब्रह्माण्ड म 'वायु ब्रह्म' तथा पिण्ड मे 'प्राण ब्रह्म' की उपासना करते है। यह कहकर उसने परोसनेवाले को कहा कि 'ब्रह्मचारी को भिक्षा दे दो ! उन्होने ब्रह्मचारी को भिक्षा दे दी।"

'वायु तथा 'प्राण' के सम्बन्ध म यह कथानक सुनाने के बाद रैक्व ने फिर कहा 'राजन ! 'ब्रह्माण्ड' के चार देवता (अग्नि, सूर्य, चन्द्र, जल) तथा वायु मिलकर पाच होते है, इसी प्रकार पिण्ड' की इन्द्रिया (वाणी, चक्षु श्रोत्र मन) तथा 'प्राण' मिलकर पाच होते हैं, ये सब दस है, और ये सब दसो मानो 'कृत हैं ससार जुआ खेलने के पासे है, इन्ही मे यह विश्व का प्रपच खेल रहा है। जैसे 'वायु अग्नि, सूर्य, चन्द्र, जल इन चारो का भक्षण कर जाती है, इन्हे अपना 'अन्न बना लेती है। जैसे 'प्राण' वाणी, चक्षु श्रोत्र मन इन चारो को समेट लेता है इन्हे अपना अन्न बना लेता है, वैसे ही विश्व की यह विराट् शक्ति सबको 'अन्न' बनाकर उसका भक्षण कर रही है, वह सबकी 'अन्नाद है सबको जुए म लगाये बैठी है, सबकी 'भोक्ता' है और 'द्रष्टा' रूप में वर्तमान है। जो यह जानता है वह 'द्रष्टा'-रूप होकर विचरता है ससार मे भोक्ता होकर रहता है।"

अनामदास की टिप्पणी

[अनामदास ने रैक्व आख्यान की विश्वसनीयता की पूरी जाच की है। उसके कौन से अश किस उपनिषद से लिये गय है, इसका पूरा लेखा जोखा प्रस्तुत किया है। वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि इसके अधिकाश स्थल छान्दोग्य उपनिषद से लिये गये है। सारा खतियान यहा नही दिया जा सकता, क्योकि उस पाठको के धैर्य पर हमला करके अपराध मान जाने की आशका है। पर उनके कुछ मन्तव्य कुतूहली पाठको को रुचिकर भी लग सकते है। यही सोच-कर उनकी टिप्पणी का कुछ अश उद्धृत किया जा रहा है।]

प्राचीन मानी जानेवाली ग्यारह उपनिषदो का एक साथ विचार किया जाय तो याज्ञवल्क्य उपनिषद् काल के सबसे बडे तत्त्वदर्शी है। य बृहदारण्यक उपनिषद के शक्तिशाली चरित नायक है। परन्तु एक-एक ग्रन्थ के रूप म यदि इनका विचार किया जाय तो सबसे प्राणवन्त तत्त्वान्वेषियो का विचार पिटक छान्दोग्य है। छान्दोग्य म एक से-एक फक्कड और अक्खड विचारक मिलते हैं जो रूढियो के बिल्कुल कायल नही। ऐसा लगता है कि छान्दोग्य और बृहदारण्यक समकालीन उपनिषदे है और दोनो के रचयिताओ म एक प्रकार की प्रच्छन्न प्रतिस्पर्द्धा है। एक म जो मुख्य और स्वाधीन विचारक है, उसे दूसरी म गौण स्थान दे दिया गया है। प्रस्तुत कथा के प्रधान तत्त्वज्ञानी महर्षि औपस्तिपाद इस सन्दभ म एक विचित्र कुतूहल पैदा करते है। प्रस्तुत कथा म व याज्ञवल्क्य से तो किंचित प्रभावित जान पडते है, पर अपने पिता उपस्त या उपस्ति चाक्रायण की अक्खडता का रच-मात्र प्रभाव उनम नही मिलता। रक्व के प्रसग म उपस्ति का स्मरण होना बिल्कुल स्वाभाविक होता, पर उनके सिद्धान्तो की कोई चर्चा न तो उनके पुत्र औपस्ति करत है न पुत्रवधू ऋतम्भरा ही करती है। ऐसा क्या हुआ ?

छान्दोग्य उपनिषद् म उपस्ति चाक्रायण बहुत ही गरीब लेकिन स्वाभिमानी व्यक्ति है। उनमे अक्खडपना भी है और फक्कडाना मस्ती भी है। उनके विचार भी चौका दनवाले है। आफत के मारे भूख प्यास से व्याकुल वे एक ऐसे ग्राम म

गये जहा खाते-पीते लोग रहते थे। साथ मे उनकी पत्नी अटकी भी थी। भाग्य की विडम्बना देखिए कि पाण्डित्य की बात सुनकर राजा किसी यज्ञ मे उन्ह प्रधान ऋत्विक् बनाने के लिए खोज रहा था और आप भूख की ज्वाला से व्याकुल होकर कही अन्न की खोज मे निकल पडे थे ! एक आदमी उडद खा रहा था। उसी से उन्होन थोडे उडद के दाने माग। उसने कहा, 'उच्छिष्ट हे महाराज आपको कमे दू ?' उपस्ति ने कहा, 'दे दे भाई, इस समय मुझे प्राणा की रक्षा करनी हे।' सकोच के साथ उस आदमी ने उडद के दाने दे दिय। फिर उसने कहा, यह पानी भी ले लो, महाराज !' उपस्ति ने कहा, 'तेरा उच्छिष्ट पानी क्या लू ?' आश्चय से चकित वह आदमी बोला, 'उच्छिष्ट तो वह अन्न भी था, महाराज ?' उपस्ति ने समझाया था—'मगर उसके बिना मै प्राणा की रक्षा नही कर सकता था। प्राणा की रक्षा होगी तो मैं कुछ काम कर सकूगा। काम करन के लिए प्राणा की रक्षा जरूरी है। पर पानी तो मै जितना चाहूँ मिल सकता है। उसक लिए किसी का अहसान क्या लू ?' सो उन्होने पानी नहीं लिया! निश्चय ही वह बचारा इस विचित्र तपस्वी की ओर देर तक ताकता ही रह गया होगा।

उपस्ति को इस बात का दुख नही हुआ कि उन्होने भिक्षा म उच्छिष्ट अन्न लिया, उन्हे भिक्षा मागने से कष्ट हुआ। कुछ करके खाना चाहिए। भिक्षा मागना गलत काय था। सो वे राजा के पास पहुँचे। राजा कोइ यज्ञ करा रह थे। उपस्ति को खोजवाया था पर वे मिल नही सके थे। वे चाहते ता सीधे राजा के पास पहुँचकर अपना परिचय देते और बाद की घटनाओ स स्पष्ट ह कि राजा भी उन्ह अवश्य सम्मानित करते।

परन्तु यह पहलवान कोई और होता होगा जो लोगा के जय जयकार मात्र से सन्तुष्ट हुआ करता है। सच्चा पहलवान तो वह है जो प्रतिद्वन्द्वियो को अखाडे की धूल चटा देने के बाद जय-जयकार ग्रहण करता हे। उपस्ति ऐसे ही पहलवान थे। यज्ञशाला मे पहुँचते ही उन्होने एक एक पण्डित की खबर ली। प्रस्तोता, उदगाता, प्रतिहर्त्ता सभी से उन्हाने अलग-अलग जाकर प्रश्न किया 'प्रस्ताता महोदय, प्रस्ताव से जिस देवता का सम्बन्ध है उसका नाम बताओ ! बिना बताय मन्त्र पढोगे तो तुम्हारा सिर गिर जायेगा !' प्रस्तोता चुप ! फिर उदगाता और प्रतिहर्त्ता स भी ऐसा ही प्रश्न ! सभी चुप ! यज्ञ रुक गया। सही उत्तर न दन से सिर गिर जाता, कौन इस झमत म पडे ! यज्ञ बन्द ! यजमान अर्थात राजा परेशान! कौन हो महाराज ? क्या चाहत हो ? यज्ञ का काम तो चलन दो !'

उपस्ति ने अपना परिचय दिया। राजा ने अपना भाग्य सराहा। बाल, 'महाराज ! मैं आपको ही खाजवा रहा था, परन्तु आप मिले नहा। अब तो मैंन इन ऋत्विको का वरण कर लिया है लेकिन कोई बात नही। आप मेर मुख्य ऋत्विक बनकर यज्ञ का काय करावें। आपको मै प्रधान ऋत्विक् के रूप म वरण कर रहा हूँ।' उपस्ति न कहा, 'स्वीकार ह महाराज, लेकिन एक बात है। राजा न चिन्तित होकर पूछा, 'शत क्या है, ऋषिवर ?' उपस्ति न अपनी बात बतायी—

'शर्त यह है कि ये ऋत्विक मेरी देख-रेख में प्रसन्नतापूर्वक कार्य करें और मैं प्रधान ऋत्विक के रूप में इनसे काम कराऊँगा, लेकिन दक्षिणा सबकी बराबर होगी। प्रधान ऋत्विक होने के कारण मुझे कुछ भी अधिक नहीं दिया जायगा।'

इस बार राजा ने चकित दृष्टि से इस विचित्र विद्वान् की ओर देखा।

यज्ञ का काम शुरू हुआ। प्रस्तोता, उदगाता, प्रतिहर्त्ता—तीनों ही प्रधान ऋत्विक उषस्ति के पास जाकर बोले, 'भगवन्, आपने जो प्रश्न पूछा था, उसका उत्तर पहले बता दें, तो हम लोग उन्हीं देवताओं को ध्यान में रखकर अपना काम शुरू कर दें।' उषस्ति ने प्रस्तोता को बताया कि 'प्रस्ताव का सम्बन्ध प्राण देवता से है। समस्त भूत, सारे प्राणी उसी प्राण देवता से उत्पन्न होते हैं और अन्त में उसी में विलीन हो जाते हैं। इसलिए जब कभी शुभ कर्म का प्रस्ताव हो यानी आरम्भ किया जाय तो उसमें प्राण देवता को ही अनुगत समझो। यदि यह बात न जानकर तुमने प्रस्ताव किया होता तो तुम्हारा सिर गिर जाता।'

उदगाता को उन्होंने बताया—'उद्गीथ का देवता आदित्य है, वही उदगीथ का प्रतीक है। अगर तुमने उसे जाने बिना उद्गीथ का गान किया होता तो तुम्हारा सिर गिर गया होता।'

प्रतिहर्त्ता को उन्होंने बताया—'प्रतिहार कर्म का देवता अन्न है। समस्त प्राणी अन्न का प्रतिहरण या ग्रहण करते हुए जीवित रहते हैं। सो यदि तुमने इस अन्न देवता को जाने बिना प्रतिहार कर्म किया होता तो तुम्हारा सिर गिर गया होता।'

इस प्रकार तीनों पर अपनी विद्वता की धाक जमाते हुए उषस्ति ने यज्ञ कराया था। उनमें जहाँ फक्कड़ाना मस्ती थी, वहीं अपने ज्ञान और पाण्डित्य का उचित अभिमान भी था। छान्दोग्य के यही मस्तमौला और अक्खड़ ऋषि बृहदारण्यक में उषस्ति चाक्रायण के नाम से आते हैं। लगता है, उषस्त और उषस्ति एक ही नाम के दो रूप हैं। क्योंकि दोनों ही चक्र के पुत्र बताये गये हैं। यहाँ भी वे इसी अक्खड़ाना अन्दाज़ में याज्ञवल्क्य से भिड़ गये थे। उन्होंने कहा था—'याज्ञवल्क्यजी, जिसे आप साक्षात ब्रह्म कहते हैं और उसे सबके भीतर रहनेवाली आत्मा भी कहते हैं, उसकी व्याख्या कीजिए! यह कथन कुछ पहेली सा लगता है साफ-साफ समझाइए।' याज्ञवल्क्य ने 'यह तुम्हारा आत्मा सबके भीतर है' कहकर उन्हें निरुत्तर करना चाहा था, मगर उषस्ति चाक्रायण ने कहा, 'हे याज्ञवल्क्य! जैसे कोई गौ और अश्व के विषय में पूछे और उसे गाय तथा घोड़ा न दिखाकर 'दूध देनेवाली गौ होती है' 'दौड़नेवाला घोड़ा होता है'—यह कहकर टाल दिया जाय, वैसे ही 'साक्षात् ब्रह्म आत्मा, जो सबके भीतर है, क्या है?'—यह पूछने पर तुमने मुझे यह कहकर टाल दिया कि 'जो सबके भीतर है, वह 'आत्मा' है! हे याज्ञवल्क्य! सबके भीतर रहनेवाला 'आत्मा' कहाँ है दिखाओ तो?'

याज्ञवल्क्य ने अपनी स्वाभाविक शान्ति के साथ कहा, 'वह तो स्वयं देखनेवाला है उसे तुम किससे देखोगे? वह तो स्वयं सुननेवाला है उसे तुम किससे मनन

करोगे ? वह तो स्वयं मनन करनेवाला है, उसको तुम किससे प्राप्त करोगे ? तेरा यह आत्मा सबके भीतर है ! अर्थात् जब तुम पूछते हो 'दिखाओ, आत्मा कहां है', तो मैं यही तो कह सकता हूं कि 'आत्मा तो सबके भीतर दीख रहा है'—इससे भिन्न कोई उपदेश तो दुःख पहुंचानेवाला ही है।'

सुनकर मस्तमौला उषस्ति चुप लगा गये थे। छान्दोग्य के उषस्ति चुप होने वाले नहीं थे, लेकिन बृहदारण्यक में उनका तेज धूमिल पड़ गया। याज्ञवल्क्य विजयी हुए।

अब प्रस्तुत कथा में यद्यपि छान्दोग्य के तत्त्व ही प्रधान हैं फिर भी रैक्व के प्रसंग में इनका इस रूप में कहीं भी स्मरण न किया जाना कुछ आश्चर्यजनक है। लगता है, महर्षि औषस्ति बृहदारण्यक के ऋषि उषस्ति के पुत्र हैं और याज्ञवल्क्य से काफी प्रभावित हैं।

प्रस्तुत कथा का यह एक पहेली जैसा अंश है। औषस्तिपाद के प्रसंग में फक्कड़ और अक्खड़ उषस्ति की याद भी चर्चा न होना कुछ समझ में न आनेवाली बात है।

[अनामदास का पोथा लिखते समय आचार्य द्विवेदी ने इस उपन्यास की परिकल्पना दो खण्डों में की थी। पहला खण्ड अनामदास का पोथा अथ रैक्व आख्यान शीर्षक से प्रकाशित हुआ और दूसरा खण्ड उन्होंने लिखना शुरू ही किया था कि काल के क्रूर हाथों ने उन्हें सदा सदा के लिए हमसे छीन लिया। दूसरे खण्ड का जितना अंश वे लिख पाये थे उसे नीचे दिया जा रहा है।]

अनामदास लिखते हैं

कभी-कभी लोग बेढब सवाल कर बैठते हैं। एक सज्जन मेरे पास आये। अच्छे पढ़े-लिखे युवक थे। किसी विश्वविद्यालय में शोध कार्य कर रहे थे। उनके शोध का विषय था, साधारण लोगों का जीवन दर्शन। वे झोले में एक प्रश्नावली की बहुत-सी छपी प्रतियां लिये हुए थे। एक प्रति उन्होंने कृपा करके मुझे भी दी। गांव के कई लोगों को दे चुके थे। पहले तो मुझे लगा कि वे बहुत परेशान हैं। सत्य की खोज कोई मामूली बात तो है नहीं, उसमें परेशानियां तो होंगी ही। पर बाद में लगा कि वस्तुतः वे परेशान थे नहीं। उन्होंने बताया कि उन्हें सब लोगों की बात इकट्ठी करके उनका विश्लेषण और वर्गीकरण करने की ही चिन्ता थी। वे किसी निश्चित तथ्य पर न पहुंचे थे और न पहुंचना चाहते थे। उनका विश्वविद्यालय सिर्फ इस बात से ही सन्तुष्ट हो जानेवाला था कि उन्होंने तथ्यों का संग्रह ईमानदारी से किया है और उनका विश्लेषण आलोचनात्मक ढंग से और सूझ-बूझ के साथ किया है। निष्कर्ष के बारे में न उन्हें चिन्ता थी, न उनके विश्वविद्यालय को। वे अनासक्त चिन्ता के साथ चलने का प्रयास करनेवाले परिश्रमी पथिक मात्र थे।

गन्तव्य का न उन्हें ज्ञान था, न जिज्ञासा। इसीलिए वे जितना परेशान दिख रहे थे, उतना थे नहीं। सो तो ठीक है। पर मुझ गरीब को तो उन्होंने बुरी तरह झकझोर दिया। उनकी प्रश्नावली का पहला प्रश्न ही मेरी वाणी रुद्ध कर गया। बाद वाले प्रश्नों को तो मैंने देखा ही नहीं। पहला सवाल था—आपका जीवन दर्शन क्या है?

जीवन दर्शन? मैं शपथपूर्वक कह सकता हूँ कि इसके पहले मैंने कभी सोचा भी नहीं था कि मेरा भी कोई जीवन दर्शन हो सकता है। सही बात तो यह है कि मुझे इस शब्द का अर्थ भी नहीं मालूम था। 'जीवन' भी थोड़ा-बहुत जानता हूँ और 'दर्शन' का नाम भी सुना है, पर 'जीवन-दर्शन' क्या पदार्थ है? सुना है कि पुराने ऋषि लोग तप करते थे, स्वाध्याय करते थे, श्रवण मनन निदिध्यासन से बुद्धि और मन के समस्त मलों को दूर करते थे और इस प्रकार शुद्ध दृष्टि से चरम और परम सत्य का साक्षात्कार करते थे। वे जो कुछ देखते थे (दृष्टसत्य) उसे युक्ति से, तर्क से, शास्त्रीय प्रमाणों से पुष्ट करके जो कुछ कहते थे उसे 'दर्शन' कहते थे। ऐसी चीज को 'दर्शन' तो कहा ही जा सकता है। उनसे ही पूछा जाता तो शायद वे बता सकते कि उनके जीवन और उनके दर्शन का क्या सम्बन्ध था। पर ये मेरे सामने बैठे हुए अत्यन्त सुशील और सुसंस्कृत युवा मित्र साधारण मनुष्यों के जीवन दर्शन जानना चाहते थे। साधारण मनुष्य के योग, तप और स्वाध्याय, मनन और ध्यान द्वारा निर्मलित आँख ही कहाँ कि वह सही सही देख सके? वह क्या जाने कि दर्शन क्या पदार्थ है। और लोग जानते भी हों तो भी मैं तो नहीं जानता। मगर द्वार पर एक अत्यन्त प्रियदर्शन सुसंस्कृत सज्जन आये हैं और पूछ रहे हैं। उत्तर न देना अक्षम्य होगा। क्या उत्तर दूँ? अभ्यागत युवा सज्जन दयालु भी मालूम हुए। मैं बहुत से सज्जनों से मिला हूँ। मेरा अनुभव है कि सभी सज्जन दयालु नहीं होते। कई बार तो वे नियम क़ायदा-कानून का अनुवर्ती होने का दया से बड़ा गुण मानते हैं और साफ कह देते हैं कि आपके साथ मेरी सहानुभूति तो है पर नियम-कानून व्यक्तिगत सहानुभूति से कहीं बड़े हैं। अभ्यागत सज्जन ने मेरा असमंजस देखा और उन्हें दया आयी। बोले, 'तुरन्त उत्तर देना जरूरी नहीं है। बाद में सोचकर बता दीजिए।" एक हफ्ते का समय देकर वे चले गये। पर मेरी जान की सांसत बढ़ा गये। जरूर उनके सौजन्य और भव्य व्यक्तित्व ने मुझ पर मोहिनी डाल दी थी, नहीं तो इस प्रश्न का उत्तर खोजने के लिए मैं इतना व्याकुल क्यों होता? उनसे फिर मुलाकात नहीं हुई। लगता है, उन्होंने अधिक समझदार लोगों से पर्याप्त उत्तर संग्रह कर लिये और उनका विश्वविद्यालय उतने से ही संतुष्ट हो गया। जो भी हो, भगवान उनका भला करें, मुझे तो वे मध्यकालीन साहित्य में पढ़े हुए 'सद्गुरु' के साक्षात रूप ही जान पड़े— 'सद्गुरु', जो शब्द की चोट मारकर व्याकुल कर जाता है। मुझे सचमुच शब्द की चोट लगी। मैं व्याकुल हूँ। कौन है जो मेरी सहायता करेगा? कोई-न-कोई तो मिल ही जायेगा। खोजना चाहिए। पढ़ा भी है— 'जिन खोजा तिन पाइयाँ।'

एक बड़े महात्मा के बारे म सुना करता था। उनकी तपस्या उनका ब्रह्मचय उनके व्रत उपवास और सबसे बढ़कर उनकी अदभुत सिद्धिया काफी चर्चा का विषय थी। जिस पर प्रसन्न हो जाते थे उसके लिए कुछ भी दुलभ नही होता था। कितने रोगी रोगमुक्त हो गये, कितने निराश आशा की ज्योति पा गये कितने नि सन्तान पुत्र मुख पाकर धन्य हो गये—इसकी कोई गिनती नही थी। उनको प्रसन्न करना ही कठिन समस्या थी। सोचा, उनसे ही सत्सग किया जाये, कुछ न कुछ वे जीवन दशन का रहस्य बता ही सकते है। अगर नही बता सकेंगे तो कम स-कम मुझे तो यह सन्ताप हो ही जायगा कि मै ही नही, बडे बडे महात्मा भी इस रहस्य से परिचित नही है। और फिर इसी बहाने एक महान आत्मा से परिचय हो जायेगा।

हिम्मत करके उनके पास पहुँच गया। हिम्मत जरूरी थी। लोग बताते थ कि पहले तो वे भयकर गालियाँ देते है। भक्त उनकी गालिया की चोट बर्दाश्त कर ले तो उनकी प्रसन्नता भी प्राप्त कर लेता है। लोग प्राय बर्दाश्त कर लेते थे। कम लोगो को क्षुब्ध होते देखा गया था। मै जब पहुँचा तो भीड लगी थी बाबा अन्धाधुन्ध गालिया की बौछार कर रहे थ और लोग अविचल श्रद्धा के साथ सिर झुकाकर चोट बर्दाश्त कर रहे थे।

परीक्षा चल रही थी। एक बहुत ही शिष्ट प्रौढ व्यक्ति सबसे पीछे रहकर कुछ खिन्न भाव से भीड की ओर देख रहे थे। उन्होंने मुझे भी देखा और देखते ही समझ गये कि मैं भी गिरफ्तारो म हूँ। उन्होंने मुस्कराकर मुझे जब नमस्कार किया तो मैंने समझा कि वे मुझे पहचान रहे है। मैंने भी हाथ जोड लिये। परिचय न भी रहा हो तो अब हो गया। मेरे पास आकर उन्होंने कहा कि आप यहा किस मनोरथ की पूर्ति के लिए आये है?' मैंने उन्हें बताया कि ज्ञानी और तपस्वी लोग ही मेरे मनोरथ को पूरा कर सकते है। मै जीवन दशन के बारे म बाबा से सत्सग की इच्छा से आया था। बाबा के मुह से अनर्गल गालिया सुनकर हिम्मत खो बैठा हूँ। क्या इनके साथ सत्सग करने से म अपनी जिज्ञासा शान्त कर सकूगा? आपकी क्या राय है?'

मेरे यह नये मित्र मुझे एक ओर खीचकर ले गये। थोडा एकान्त म आकर वे खूब जोर से हँसे। बोले, 'देखिए पण्डितजी, बाबा कुपित ब्रह्मचय के रोगी हैं। इनकी गालिया पर ध्यान न दे।"

मुझे लगा कि ससार म जानने योग्य बहुत सी बातें है जिन्हें मैं नही जानता। अभी तक मेरी जानकारी मे 'जीवन दशन' नही था और इसी बात न परेशान था। अब देखता हूँ, कुपित ब्रह्मचय की जानकारी भी मुझे नही है। कातर भाव से बोला, मेरे मित्र मेरी भारी अल्पज्ञता पर ध्यान न दें। क्या आप मुझे बता देंगे कि यह कुपित ब्रह्मचय कौन सा रोग है। अबकी बार वे और जोर से हसे। इधर उधर देखकर बोले 'आप ही नही, बहुत सारे लोग इस रोग के बारे म कुछ भी नही जानते। बाबा ने इतना ब्रह्मचय पालन किया है कि अब वह पच नही पा रहा है। शकरा (चीनी) जैसी बढिया चीज भी जब पच नही पाती तो रोग पैदा

पर रहती है। यह तो और कड़ा तेज है। जो भी तेज नहीं पा पाती वह कुण्ठित हो जाती है। कुण्ठित वाक् रोग से बढ़ कर भयंकर होता है कुण्ठित मन्तव्य। उनके रोगी बाबा का प्रत्यक्ष ही रूप रहे हैं।"

मैं उनके मुँह की ओर टुकुर-टुकुर ताकता रहा। वे भी विनोद की मुद्रा में मेरी ओर देखते रहे। फिर बोले, 'मैं आपको पहचानता हूँ पण्डितजी, आप इस शहर में ही परिचित नहीं, आस-पास के गाँवों में भी लोग आपको जानते हैं। मैं तो गाँव का ही रहनेवाला हूँ, पर आपको पहचानता हूँ। आप परम जिज्ञासु हैं और शास्त्रों में परम कृपण। काम की बात आप नहीं बताते। आप निश्चित जानते हैं कि शास्त्रकारों ने बताया है कि अन्न से मन बनता है और तेज से वाणी। बाबा का मन विकृत नहीं हुआ है पर वाणी विकृत हो गयी है। मन भी विकृत हो सकता था पर बाबा ने दूषित या पापविद्ध अन्न नहीं खाया है, इसीलिए उनका मन अभी तक शुद्ध है। तेज अवश्य म्लान हो गया है। आपका प्रश्न तो शुद्ध मन से ही सम्बन्धित है इसलिए आप सत्संग कर सकते हैं। मैं ही चक्कर में हूँ। समझ नहीं पा रहा हूँ कि मेरा मनोरथ यहाँ सिद्ध हो सकेगा या नहीं, क्योंकि उसका सम्बन्ध तेज से हो जाता है और बाबा प्रतिक्षण वाणी का दुरुपयोग करके अपना तेज म्लान करते जा रहे हैं।"

मुझे यह आदमी ज्ञानी जान पड़ा। मैंने उपनिषदों में यह बात पढ़ी थी, पर मौके पर सूझी नहीं। सत्संग तो इनके साथ भी किया जा सकता है। मैंने विनम्र भाव से पूछा कि आप क्या अपने मनोरथ की बात बता सकते हैं। उन्होंने कहा—"आपसे कहने में क्या हर्ज है, लेकिन यहाँ नहीं बताऊँगा। आप यदि कृपा करके मेरी कुटिया पर चलें तो अवश्य बताऊँगा।'

मैंने उत्साह के साथ कहा, "अवश्य चलूँगा।" मन ही मन मैं सोच रहा था कि बाबा के पास जाना ठीक नहीं है। जिसका तेज ही म्लान हो गया है उसमें विवेक बचा ही कितना होगा! इन ज्ञानी सज्जन के घर ही चला जाय। लेकिन उसी समय एक आदमी भीड़ में से निकलकर आया और बोला कि बाबा आपको बुला रहे हैं, अभी कहीं जाइएगा नहीं।' मैं चकित रह गया। बाबा ने क्या मेरे मन की बात जान ली? मेरे नये मित्र भी कुछ चकित और कुछ लज्जित से लगे। ऐसा मालूम हुआ कि उनके मन में भी मेरी ही तरह यह भाव आया कि बाबा अन्तर्यामी हैं। वे जान गये कि हमारे मन में उनके प्रति अश्रद्धा है। मेरी ओर देखकर बोले, "आप मिल आवें, मैं चलता हूँ।' बिना विलम्ब किये वे चलते बने। न मुझे याद रहा कि उनके घर का पता पूछ लूँ और न उन्हें ही याद रहा कि निमन्त्रित व्यक्ति को घर का पता भी बता देना चाहिए। वस्तुतः ऐसा जान पड़ता था कि वे चोरी करते पकड़ लिये गये हैं और जल्दी से जल्दी भाग जाने के सिवा उनके लिए अब कोई रास्ता नहीं रह गया है। देखते देखते वे आँखों से ओझल हो गये और मैं अपराधी की भाँति बाबा के सामने पहुँचा।

बाबा शान्त थे। भीड़ बहुत-कुछ छँट गयी थी। जो लोग अब भी रह गये थे

वे भी जाने की तैयारी म थे। शायद वावा से मिलने का समय निश्चित था और यह वात सवको मालूम थी। इसीलिए लोग अव विना कुछ कहे ही समझ गये थे कि आज अव वावा को छोडना ही पडेगा। मुझे वाद म पता चला कि वाकी वचे लोगो को कल प्राथमिकता दी जायेगी।

मुझे वैठने की आज्ञा देकर उन्होंने उन लोगो की ओर देखा जो अभी तक वहाँ खडे रह गये थे। उन्होंने सवको भगाया। भगाने की उनकी अपनी शैली थी। उनका सबसे मृदु सम्बोधन था—मूखनिपुण। सवसे कठोर सम्बोधन लिखा नही जा सकता। मगर अधिकतर लोग उनके भ्रूभग मात्र स भाग खडे हुए। अकेला मैं ही रह गया। कही वावा मुझे भी किसी अप्रत्याशित सम्बोधन से सम्बोधित करके भगा न दें यह आशका मेरे मन म वरावर वनी हुई थी। लेकिन सवके चले जाने क वाद वे अत्यन्त शान्त मृदु वाणी म बोले, 'कहो महाराज आप कसे इन मूर्खों की भीड म आये? आपके वारे म अभी कुछ लोगो ने वताया, उसस मुझे वडा आश्चय हुआ। आपको ही देखकर मैं कह सकता हूँ कि आप विद्वान और तपस्वी पुरुष हैं। आप जसे लोग तो यहा आते नही। कैसे पधारना हुआ? मैं पहले ही समझ गया था कि आप यहाँ का दृश्य देखने के वाद ज्यादा देर नही टिकेंगे। इसीलिए आपको बुलवा लिया। भाग रहे थे न?"

मेरे मन मे श्रद्धा और आश्चय दोनो एक ही साथ उदित हुए। हाथ जोडकर बोला, "आपको क्या वताना है? आप तो अन्तर्यामी है।"

वावा जोर स हँसे, "यह आपको किस मूख ने वता दिया! मैं अन्तयामी कसे हो सकता हूँ? अन्तर्यामी तो जो है सो है।'

वावा की हँसी स मेरा अन्तस्तल काप उठा। क्या कहूँ, कुछ सूझा ही नही। सच्चे मूख की तरह उनकी ओर मुलुर मुलुर ताकता ही रह गया।

वावा प्रसन्न थे—'सुनो महाराज, मैं आपकी मानसिक उलझन समझ रहा हूँ। आप जसे लोग जब मेरे पास आते है तो प्राय इसी प्रकार की उलझन म पड जाते है। वे सोचते हैं कि यह वावा कहानेवाला आदमी सचमुच कोई साधु है या पामर है। इतनी अनगल गाली वकनेवाला क्या साधु हो सकता है! ठीक कह रहा हूँ न, महाराज? आप भी ऐसा ही कुछ सोच रहे थे न?'

मैं अवाक् होकर वावा की ओर देखने लगा।

वे फिर वोले, 'साधु तो मैं सचमुच नही हूँ, पर एकदम लम्पट या पामर भी नही हूँ।' म आश्चय स वावा को देख रहा था। जी म आया कि पूछूँ कि आप इतनी गालिया क्या देते हैं, लेकिन कसे पूछूँ किस प्रकार कहूँ कि वावा को वुरा न लगे, यही नही सोच पा रहा था। इस समय वावा विल्कुल शान्त, शिष्ट और सुजन दिखायी पडते थे। कौन जाने कुछ पूछने पर वुरा मान जायें और फिर उग्र रूप धारण कर लें। बुद्धिमान का अस्त्र मौन है। चुपचाप ताकता रहा। वावा प्रसन्न भाव से मुस्कराये जा रहे थे। फिर स्वय ही वोले, "मैं दीर्घकाल से आप-जसे किसी सरलहृदय पण्डित की प्रतीक्षा म था। आप वस्तुत अपनी गरज ने